

प्रसाद काव्य-कोश

प्रसाद काव्य साहित्य के सम्बन्ध में
सन्दर्भ-ग्रन्थ



हिन्दी प्रचारक संस्थान
वाराणसी • लखनऊ • कलकत्ता



प्रसाद

काल

काश

सुधाकर पाण्डेय

हिन्दी प्रचारक संस्थान

द्वारा प्रकाशित

रविवार ४ अक्टूबर १९६६]

प्रधान कार्यालय

८ बावस नं० १०६, विशाचमोचन,

वाराणसी-१

शाखाएँ बलरत्ना, सखनऊ

●

संगोपित परिवर्धित द्वितीय संस्करण

मूल्य ७५.००

●

नागरी मुद्रण

री प्रचारिणी सभा, वाराणसी द्वारा
मुद्रित

निवेदन

मानू जगशकर प्रसाद हिन्दी की खड़ी बोली की कविता ने या आधुनिक कविता ने शीर्षस्थ सिद्धि है। हिन्दी साहित्य में उनका अनुमान ऐतिहासिक और मौलिक महत्त्व का है। आधुनिक काव्य को उन्होंने न केवल नई शिखा दी, यद्यपि, उन्होंने इतिवृत्तात्मक आधुनिक काव्य को रस का धरातल दिया। कामायनी हिन्दी में अपने ढंग का मौलिक काव्य है। ऐसे तो नाटकों ने क्षेत्र में हिन्दी में उनका शान्ति नहीं, क्या ने क्षेत्र में वे एक विशेष शैली ने स्थापक हैं और निरर्थक ने क्षेत्र में अपने चिन्तन ने कारण उनके निरर्थक गौरव-शाली हुए हैं। फिर भी उनका करिष्य सृजनी ही हृदय को व्याकुल कर लेता है और उनके काव्य के द्वारा खड़ी बोली की अभिव्यक्तिक्षमता का भान होता है। साहित्य के सृजनी प्रेमी होने के नाते प्रसाद जी के प्रति मेरी सदा से रुचि रही है। यह ग्रन्थ उसी का परिणाम है।

हिन्दी कविता पर अनेक कोश प्रकाश में आए हैं और नवम्बर १९५७ में प्रसादजी ने सत्रध में मने भी एक प्रयत्न किया था। वह प्रयत्न समाप्त हुआ है। वास्तव में वह शब्दकोश ही नहीं है, प्रसादजी ने काव्य का ज्ञानकोश भी है इसे मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

शब्द का चयन उनके निम्नांकित काव्य प्रथा से किया गया है—

(१) आँख, (२) कल्याण, (३) कानन-कुसुम, (४) कामायनी, (५) चित्रागार, (६) भरना, (७) प्रेम-पथिक, (८) महाराणा का महल और (९) लहर। इसने साथ ही उनकी जो रचनाएँ उन सग्रहा में संगृहीत हैं या संगृहीत नहीं हैं उनसे भी शब्दचयन किया गया है। प्रसाद के नाटकों के गीत नई ओजस्वी हैं। उन्हें भी उनके सुपुत्र ने 'प्रसाद गीत' में संकलित कर दिया है। उनकी चतुर्दशियों ने साथ उन्हें भी इसमें ले लिया गया है। एक ही विशिष्ट शब्द किन्ति प्रथा में आया है उनका सम्मेलन भी दे दिया गया है। लेकिन ऐसे शब्दों ने जो त्रियापद हैं या त्रिभक्ति हैं उन्हें केवल दे दिया गया है। उनका सम्मेलन पूरा नहीं दिया गया है, क्योंकि भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन की दृष्टि से उसकी आवश्यकता अनुभव नहीं की गई।

वही-वही सामासिक शब्द भी एक साथ ले लिए गए हैं ताकि पद का जोष हो जाय और जहाँ सामासिक योग के कारण या शब्द योग के कारण नए अर्थ की संभावना है वह भी प्रकट हो जाय। यह उदा श्रमसाय काम है, सहज काम रहा है। उसे अपनी शक्ति भर प्रामाणिक ढङ्ग से करने का यत्न किया गया है। शब्दा के अर्थ देने में इस बात की सावधानी रखी गई है कि उसने सभी सम्भारित अर्थ दे लिए जायें ताकि भावों में सुन्दर से सुन्दर अर्थ निकाल सके। छायावादी और रहस्यवादी परम्परा शब्दों को नया अर्थ भी देती रही है। उसका भी ध्यान रखा गया है। ब्रज भाषा और गूढ़ी गौली दोनों भाषाओं में प्रमाणी ने रचना की है। इसलिए शब्दों का वह मौलिक रूप ही इसमें रहने दिया गया है।

प्रत्येक रचना और प्रत्येक पुस्तक का परिचय भी उसकी गरिमा के अनुरूप सव्याख्या दे देने का यत्न किया गया है। ये रचनाएँ किन पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं यह भी इसमें दे दिया गया है। जो ऐतिहासिक और प्रागैतिहासिक या भौगोलिक बातें या, चाहे वह व्यक्ति के सन्ध्या या स्थान के सन्ध्या में हों, उसने जहाँ भी सत्ति रूप से पारचय दे दिया गया है। अतः एक उपयोगी परिशिष्ट भी इसमें सम्मिलित कर दिया गया है। इस प्रकार इसे प्रसादजी के काव्यसाहित्य के सन्ध्या में सन्ध्या ग्रन्थ बनाने का यत्न किया गया है।

निश्चय ही किसी ग्राधुनिज कवि का इस प्रकार का कार्य जो साहित्यिक भी हो और भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से भी मामूली प्रस्तुत करता हो, इस ढंग का शायद ही कोई ग्रन्थ हो। ज्ञान का लायन बने साथ है। फिर भी मने यत्न किया है कि वह उपयोगी रचना प्रकाश पा सके। यह कार्य नेत्रल आस्था के कारण सम्भव हो सका है। हो सक्ता है कि इसमें त्रुटियाँ हों। यह भी समझें कि इसमें और कुछ सामग्री देनी चाहिए या। किन्तु जीवन की इस व्यस्तता के बीच भा जो कर सका हूँ मैं मने किया है और श्रद्धा तथा आस्थापूर्ण किया है। आस्था कभी निष्फल नहीं जाती। आशा है कि लोग इस कृति को सन्ध्या ग्रन्थ के रूप में पसन्द करेंगे।

मुझे विश्वास है कि अपनी उपयोगिता के कारण इस ग्रन्थ के अनेक संस्करण हाने और प्रत्यक्ष सम्मरण में इसमें मरदाने होता रहेगा, क्योंकि प्रमाणी का साहित्य अमृत है। उसकी छाया भी निश्चय ही लोगों को पसन्द आएगी।

—सुधाकर पाण्डेय



प्रसाद काव्य-कोश

● सकेत

- (अ०) अग्नेवी
- (अ०) अरवी
- (अव्य०) अन्यय
- (अप०) अपभ्रंश
- (क्रि०) क्रिया
- (क्रि० श०) क्रिया अव्यय
- (क्रि० स०) क्रिया सक्रमक
- (क्रि० वि०) क्रिया विशेषण
- (दे०) देशज
- (दे०) देखिए

- (पु०) पुल्लिङ्ग
- (पूव० क्रि०) पूर्वकालिक क्रिया
- (फा०) फारसी
- (बहु०) बहुवचन
- (वि०) विशेषण
- (अ० भा०) व्रजभाषा
- (स०) संस्कृत
- (सना) सना
- (सव०) सवनाम
- (स्त्री०) स्त्रीलिङ्ग

● पुस्तक सकेत

अनुक्रम में इस पुस्तक में श्री जयशंकर 'प्रसाद की जिन रचनाओं का उपयोग एवं प्रयोग किया गया है उनका संस्करण और सकेत निम्नलिखित है—

- आखू—द्वितीय संस्करण
- करणालय—तृतीय संस्करण
- कानन-मुमुक्षु—पंचम संस्करण
- काश्यापिनी—नवम संस्करण
- विनायक—द्वितीय संस्करण
- भरना—सानवाँ संस्करण
- प्रेम पथिक—द्वितीय संस्करण
- महाराणा का महत्व—तीसरा संस्करण
- सहर—पंचम संस्करण

- २०१३ वि०
 - २०११ ,,
 - ,, ,,
 - २०१३ ,,
 - १९८५ ,,
 - २०१३ ,,
 - ,, ,,
 - ,, ,,
 - २०१३ ,,
- प्रा०
 - क०
 - का० कु०
 - का०
 - वि०
 - भ०
 - प्रे०
 - म०
 - ल०

[ये सभी पुस्तकें डबल माउन्ट सोल्ड पेजी प्रान्शर में हैं]

प्रसादकाव्य कोश

अ

अक = का०, १८, १७६, २८६ । चि०, १६२,
[स० ५०] १८०, १८२ ।

(स०) अक, चिह्न, आप, निशान । लिखावट,
लेख, अक्षर । सख्यासूचक चिह्न । गोद,
क्रोड, अक्वार । दुख, पाप । बार,
दफा । घंटा, दाग । डिठोना, नजर
बचाने के लिये वस्त्र के माथे पर
लगाया जानेवाला काजल का टाका ।
भाग्य, तकदीर, विस्मय । नाटक का
एक अंग जिसमें सामान्यतः अनेक दृश्य
होते हैं । पत्र पत्रिका की कोई एक
सख्या । रूपक का एक प्रकार ।

अक मैंह = चि०, ७२ ।
(व० भा०) अक मे (द० 'अक') ।

अकमो = चि०, ७३ ।
(व० भा०) अक म (द० 'अक') ।

अकित = अा०, २२, ३० । का० कु०, १२० ।
[चि०] पा०, ३४, ११७, १८० । ल०, २८ ।
(स०) चिह्नित । चित्रित । वर्णित । निशान
बना हुआ, अक बना हुआ ।

अकुर = का० कु०, २७ । का०, ७३, २१० ।
[स० ५०] अ०, ५६ । ल०, ४७ ।

(स०) अकुप्रा, गर्भ, नया उगा हुआ वृक्ष,
वह नवीन कोमल डठल जो बीज से
पहलपहल निकलता है और जिससे
पत्तियाँ फूटती हैं । अख । कौपल ।
भराव । अपूर । किसी पाव के दानेदार
वर्ण । जल । नोक । कलिका ।

अकुरित = का०, १८२ ।

[चि०] अकुप्रा निकला हुआ । अकुर रूप में
(स०) दिखाई पड़नेवाला । उत्पन्न । विकसन-
शील वस्तु का आरम्भिक रूप ।

अग = का० कु०, १२, ६५ । का०, ८३, ६८,
[स० ५०] १६२, २४७ । चि०, २, ३८, ४७,
(स०) ६३ १५६, १७७ । अ०, २२, ३२ ।
प्रे०, १, ११ । ल०, ६२ ।

शरीर, बदन, तन, गात, देह ।
पक्ष । भाग, अंग, टुकड़ा, खंड । भेद,
प्रकार । कार्य संपादित करने का
साधन, उपाय । पावन । जलन ।
सहायता पहुँचानेवाला । मुहूर्त तरफ-
दार । प्रवृत्ति । उपाय ।

अग अग = चि०, ५६, ६६ ।
[स० ५०] (हि०) प्रत्येक अग ।

अग अगन = चि०, १, ५६ ।
[स० ५०] (व० भा०) अग अंग मे ।

अगडाई = का० २३ । ल०, ४४ ।
[स० ख०] शरीर का मद से दृटना । सोकर उठने
(हि०) पर, आलस्य के समय अथवा ज्वर की
स्थिति होने पर शरीर का कुछ क्षण
के लिये ऐँठकर तनना । जमुहाई ।

अगडाईया = ल०, ६२ ।
[स० ख०] अगडाई का बहुवचन ।

अगभगियो = का०, ११ ।
[स० ख०] अगभगी (स०) का बहुवचन । हावभाव
(हि०) प्रदर्शन । क्रिया द्वारा अंग प्रत्यंग

अंगराई

अंगराई = (ग्र० भा०)

अंगराई ली = ल०, ६।

[७] (ग्र० भा०) अंगराई के समान।

अंगलतिना = ल०, ६०।

[स० ली०] [म०] शरीर कपी बेन या लता।

अंगहि = लि०, १४।

(ग्र० भा०) अंग को।

अंगुलिया = ल०, ८६।

[स० ली०] (हि०) उगली बा यहूबन।

अबल = श्री०, १६, २३, ३२, ३३, १६, ६६।

[स० पुं०] फा० कु०, १८। फा०, ८, २६, ४० ६३

७३, ७४, ६७, ६८, १०६, ११६, १३१, १४८, १६८ १७२। लि०, ६२

अ०, २८ ३४, ३५। ल० १०, १६, २०, ३० ३२, ६१।

अबल, छोर, किनारा। सही, धानी

अथवा बादर के बने का एक भाग।

तट। देश या राज्य की सीमा का

कोई प्रदेश।

का०, १५६।

अजन = का०, १०३।

[स० पुं०] अजन, मुरमा काजल। रात्रि। स्याही,

(घ०) मसि। एक वस्तु। एक वृक्ष। अन्कार

की एक वृत्ति। माया।

अजन ली = का०, १०३।

[वि०] अजन के समान काली।

अजलि = श्री० ४५, ५८। वा०, १२३, २८५।

[स० ली०] ल०, ३२।

(घ०) दोनों हथेलियों का मिलाने से बना हुआ

वह गड्ढा, जिसमें भस्कर कुछ दिया

अथवा लिखा जाता है।

अत = श्री० ५२। का०, कु०, २६। वा०, १६, ८१।

[स० पुं०] लि०, १४१, १६६। ल०, ७०, ७७।

(घ०) आखिरी। समाप्ति। मृत्यु अवसान।

नाश। परिणाम। प्रत्यय।

अतक = ल०, ७६।

[वि०] (म०)

अतकाल = प्रे०, ५।

[स० पुं०] (म०)

अतरग = का०, १२१, १६२। प्रे०, १०।

[वि०, पुं०] (म०)

अतर = श्री०, ११, ३४ ५१। का० कु०, २०,

[स० पुं०] ७७। का०, ७२, ७१, ८१, ६८, १०१,

१०५, १०६, १५४। लि०, १७४,

१७६, १८६। अ०, ४४, ६८, ६५,

प्रे० २०।

भेद, बर्क, भिन्नता। दो वस्तुओं

के मध्य की दूरी, वास्तव। मध्य

वर्ती समय। आद्य, परदा। वपट।

हृदय, मन।

अतरतम = का०, ६, ११०, १२१। अ० ३१।

[स० पुं०] अत करण। किसी वस्तु के सबसे भीतर

(म०) का भाग। हृदय का आंतरिक स्थल।

अतरिच = श्री०, ४६। का०, ११, १३, २६,

[स० पुं०] ३५, ६३, ६५ ७३, १७८ १८५,

२०२, २५२, २६३। अ०, ४१, ४५

(घ०) ६०। ल०, ५७।

आकाश। स्वर्ग। गुप्त अमरक। पृथ्वी

और सूर्यादि लोक के मध्य का भाग।

पृथ्वी और आकाश जहाँ मिले हुए

प्रतीत होते हैं। क्षितिज। तीन नेतृगो

के एक।

[अतरिच म अभी सो रही—'लहर' म पृष्ठ ४५ पर

सकल गीत। ७०—लहर। एक मुदर

रमानक गीत। उपा ली मधुबाला

अभी सो हा रही थी और न तो प्राची

की मधुबाला ही अभी खुली थी। बिहग

मे, रात अभी बाकी हो है कि मिलारी

अपना हृद व्याला लेकर दान माँगता

किरता है और आवाज देता है कि

उसके कवि बहता है कि तू उप सुप

के दोनों दम भरता हूया शरीर धारण

किए हुए है। दिन मे कही रास्ता

बाटना है और कहाँ तू नेवल चलने में ही रात कर देगा । तू अपना अविचन स्वर छोड़कर बढ़ता जा और जो सोए है जगने पर अपने मुख का स्वप्न दर्शे ।]

अतरिच्छ — चि०, १८० ।
(द्र० भा०) (दे० 'अतरिच्छ' ।)

अतर्दाह = का०, ११६, १२१ ।
[सं० पु०] (सं०) अतर्बेदना ।

अतर्निहित = का० कु०, ७१ । का०, २३ । ल०, ७४
[वि०] (सं०) अतर् छिपा हुआ ।

अतर्धामी = का०, १६७ ।

[सं० पु०, वि०] ईश्वर, भगवान् । दूसरे के मन की भाँसा को समझनेवाला ।

अतस्तल = अ० ४७ । का०, १३८, १६७ ।
[सं० पु०] मन अथवा हृदय का भीतरी भाग,
(सं०) अतर्हृदय ।

अतहीन = का०, १६७ ।
[वि०] (सं०) जिसका अंत न हो, अनंत ।

अत सलिला = का०, ६७ ।
[सं० ली०] (सं०) अत सात, श्रुत गंगा, भावधारा ।

असिम = का० कु०, १२२ । का०, ८२, ८८ ।
[वि०] ल०, ४१ ।
(सं०) हर प्रकार का । सबसे बढ़कर । अत का । साक्षिरी ।

अत करण = का० कु०, १५ । अ०, १६, ३१ ।
[सं० पु०] (सं०) मनुष्य के अंदर की वह शक्ति जिससे वह सकल्प विकल्प, अच्छे बुरे की पहचान, निश्चय, स्मरण आदि करता है । हृदय, मन ।

अत पुर = का०, कु०, ६७ । का०, ३० ।
[सं० पु०] (सं०) घर या महल का भीतरी भाग ।

अध = का०, ८८, १६६ । अ०, ५१, ७७ ।
[वि०] (सं०) ल०, ५७, ७६ । चि०, १६६ ।

अधा, जिसकी नेत्रा की ज्योति चली गई हो, नन्हीन, बिना आँख का । अज्ञानी, नासमर्थ, अविवेकी, भूल । उमर, मतवाला, अचेत, अनजान ।

जलू, चमगादट । अधेरा । आँखें बंद कर परिपाटी से चले जानेवाले कार्य को करनेवाला । रुढ़िप्रस्त ।

अधकार = का० ७३ । का० कु०, ४१, १२३, १२५ ।
[सं० पु०] का०, १४, १८, ७० ११२, १२६, १३६, १५६, १७२, १८४, २०६, २२१, २५१, २६७, २७१ । वि०, २२, ४०, ११४ । अ०, ३५ । ल० १० २५, ३५, ३७, ४१, ४३, ५७, ७४ ।

तिमिर, अधेरा, प्रकाशहीनता । अज्ञान ।
अधकारमय = का०, ७ । प्रे० २० ।
[वि०] अथकार से परिपूर्ण, तमोयुक्त, अधेरा । अज्ञानमय ।

अधकार सा = का०, २६६ ।
[वि०] (हि०) अधकार के समान, तिमिराच्छन्न ।

अधकारि = चि० १६४ ।
(द्र० भा०) (दे० 'अधकार' ।)

अधड = का०, २०० । अ०, ५५ । ल०, ५७ ।
[सं० पु०] अयो, धूल सना भयकर हुवा का आका, तूफान । अफा । दबी दुर्योग या नियति से आया कष्टप्रद समय ।
[हि०]

अधतमस = का०, २२७ ।
[सं० पु०] धीर अथकार, भयकर अधेरा, धार अथकार से आच्छादित नक ।
(सं०)

अधानुरक्त = प्रे०, २४ ।
[वि०] आँख भूँदकर पीछे चलनेवाला । अधभक्त । अधयद्बालु ।

अधानुरक्ति = का०, २३७ ।
[सं० ली०] अथी अद्धा । विवेकरहित भक्ति ।

अधियारो = चि०, १६४ । अ०, ६२ । प्रे०, १, ५ ।
[सं० ली०] अथकार, अधेरा, घुघलापन, घुघ । एवं प्रकार की आँखा पर बाँधी जाने वाली पट्टी जो घोड़ा और भयकर जलुओं के नेत्रा का डौकन के काम में लाई जाती है ।

अधेर = क० २६ ।
[सं० पु०] अयय, अत्याचार । ऐसा काय जिसमें कर्तव्यावर्तव्यका विचार न किया गया हो । दुर्बलवस्था । दुर्प्रवध । गढ़बडा ।
(हि०)

अधेरा

अधेरा
[सं पु०]
(हि०)अधेरी
[सं पु०]
(म०)

= का०, ११४। चि० १६।
तम, अधनार, धुध। प्रकाश वा उलटा
अधवा विलोम। परछाया, काली छाया।

= मा०, १६ ध०।
(दे० 'अधियारी'।)

= मा०, २७, ३४। का० कु० ४३। वा०
६३, ७८। १६२, २५७, २६३। वि०
३८, ७१। १४६ १५७, १५८, १६१,
१८६। ल० १४, १६ २७ ४२, ४४।
आवास। मध, बादल। अमृत। बल
कपडा।

अशुमाली = का०, कु०, २।
[सं पु०] (स०) शुभ, पदमावर। वारह वा मूल्या।

अस = का०, ४७।
[सं पु०] (हि०) (दे० 'अश'।) (स०) वया। मय।

अ

= का०, २६६।
घमड करना सँभना, राव दिलाता,
हठ करना। ठिठई करना तनना
अभिमान, गैली या गवभाव का
प्रदर्शन करना।

अकथ = का०, २२४।
[वि०]
(म०) बहान करने से जो परे हो। निमका
बहान करना, धमनाह हो। जा बहान
जा मरे।

अकपट = का०, ११, १६ २०, २१, २३।
[वि०] (स०) धनरहित। प्रपञ्चरहित।

अकबर = म०, ११, १६ २०, २१, २३।
विश्यात भारतीय गुगल सम्राट,
हुमायूँ का सुपुत्र। जन्म १५ अक्टूबर
१५४२ ई०, अमरकोट (सिंध) में।
राज्यकाल-२० जनवरी १५५६ से १६
अक्टूबर १६०५ ई०। अकबर द्वारा
चित्तौड़ पर चढाई १५६७ ई०।
उसके प्रधान सेनापति अबुलहीम
खानखाना को प्रताप की चारित्रिक
सहसा का नाम १५७२ ई०। [२०—
खानखाना मजुहोम।]

अकरूण = ल०, ३४।
[वि०] (स०) बरपारहित, निदय, कठोर, निष्ठुर।
अकस्मात् = चि०, १७, २२।
[वि०] दबयाय से, आकस्मिक, अचानक,
एकाएक, सहसा, एकदम से, तत्क्षण,
अचानक।

अकारन = चि०, ४।
[वि०] जिना जियो तैनु के, निष्प्रयोजन, कारण
(म० भा०) रहित, व्यर्थ, या ही। स्वयम्भू। भाप से
आप रोतेवाला।

अकाल = क० १८, २८।
[सं पु०] (स०) कुलमय, अमृतपुलक समय। अमृतल समय

अनरअवनिहि = चि०, ५३।
[सं स्त्री०] (स० भा०) आकाश और पृथिवी की।

अवरजुबी = का०, ११०।
[वि०] आकाश भूमिनेवाला। बहृत उंचा।
गगनजुबी।

अवरतल = म०, ३३।
[सं पु०] बादल की सतह। आकाश की सतह।

अवरपथआरट = चि० १५७।
[वि०] (म० भा०) आकाशमार्ग में विचरण करता हुआ।

अयु = चि०, २८, १४७।
[सं पु०] (स०) जल। सुगमवाला। चार का सख्या।

अयुधि = ल०, ३०।
[सं पु०] (स०) सागर। समुद्र।

अयुनिधि = का०, २८६।
[सं पु०] (स०) सागर। समुद्र। सत की सख्या।

अवे = का०, २३६।
[सं स्त्री०] अवा का सबोधन। हे माँ। हे दुर्गे।
(स०) हे पावती। हे गौरी।

अश = का०, कु०, १०८। का०, १६, १६५।
[सं पु०] चि० १६१। म०, २४।
जिसी पूण वस्तु का कोई भाग, टुकड़ा।
उन अवयवों या अशों में से कोई एक
जिनसे किसी पदार्थ या वस्तु का निर्माण
होता है। हिस्सा। भाग्य अक। पृथक्।
चद्रमा की कला। भिन्न की लकार के
ऊपर की सख्या। वृत्त की परिधि का
३६०वाँ हिस्सा।

से पहले का या बाद का समय ।
दुर्भिक्ष, महंगी । ऐसा समय जब अनादि
की अत्यंत कमी हो । दवा प्रकाप ।

अकाश = चि०, १६६ ।
(४ भा०) (२० 'आकाश')
अकास = चि०, ६३ १५६ ।
(४० भा०) (३० 'आकाश')

अफिचन = भा० १७ । वा० कु०, ११३ । वा०
[वि०, सं० पु०] ४०, १३६, १७७, २४० । ल०, १७
(सं०) ३४, ४५, ७०, ७८ ।
दरिद्र, गरीब, निचन, घनराहित, कगान
दीन घनहीन । निचन व्यक्ति । सामा य
विलकुल मामूली । परिग्रहयोगी,
आवश्यकता से अधिक सग्रह न करन
वाला । जन घमानुकूल मोह भावा
से जिस विराग उत्पन्न हो गया हो ।
निरीह ।

अकुलाह = चि०, ६४ ।
[क्रि० घ०] (४० भा०) (२० 'आकुल')
अकुलाई = चि०, ७१, ७३ । ल० १७ ।
(क्रि० घ०) (४० भा०) (२० 'आकुल')
अकुलाय = चि०, ५६ ।
[नि० वि०] (४० भा०) (२० 'अकुलाह')
अकूल = वा०, ६२ १६२ । ल०, १५ ।
[वि०] = अनीम, अनत, जिसका कोई कून,
(सं०) किनारा अथवा घट न हो ।

अकेला = वा०, ५२, १३४, १६४, २०० ।
[वि० पु०] = एकाकी जिसका कोई सहायक न हो,
(हि०) जिसका कोई साथ दनवाला न हो ।

अकेली = भा०, ६० । वा० ४, १४४, २६० ।
[वि० स्त्री०] प्रे०, ५ ।
(हि०) अनेन वा स्त्रीनिग ।

अकेले = भा०, ७३ । वा०, ३२, ३७, ५६, १३३
[क्रि० वि०] १७६, २०८ । चि०, ६५ । अ०, ५२ ।
(हि०) नेवल, सिर्ष । एकाकी, तनहा ।

अकेल्यो = चि०, १०७ ।
(४० भा०) (२० 'अकेला')

अक्षय = वा०, ३६ ६६ । प्रे०, २५ ।
[वि०] (सं०) अनम्वर । अविनाशा । नित्य ।

अक्षयवट = प्रे०, २२ ।
[सं० पु०] प्रयाग तथा गया का प्रसिद्ध वरगढ़ का
(सं०) वृक्ष । (किंवदन्ती है कि इसका नाश
कभी नहीं होता ।)

अक्षर = प्रे० २० ।
[वि०] (सं०) नाशरहित । नित्य ।

अक्षोहिणी = चि०, ६७ ।
[सं० स्त्री०] चतुरागणी सेना । वह सेना जिसमें
(सं०) १०८३५० पद नियाहो ६५६१०
घुडमवार, २१८७० रथ मवार और
२७८७० हाथी मवार होते थे ।

अखड = वा०, २५२, २६४ । चि० १३६,
[वि०] १५५ ।
(सं०) अविच्छिन्न, जमके टुकड़े या 'उड हा न
सकें, अटूट । पूरा, संपूर्ण । क्रमबद्ध ।

अँखियाँ = चि०, १८३ ।
[सं० स्त्री०] (४० भा०) (२० 'आँखें')

अखिल = भा०, ६६ वा० कु० ८६ ८२ । का०
[वि०, सं० पु०] १५, १८, ५८, १२२ १६७ १७१ ।
(सं०) अ०, ३०, ३१, ३५, ७५ । ल०,
२१, ६१ ।

मवागपूण, अगट सपूण, समस्त,
सब, सारा, समग्र । जगत, विश्व ।

अग = वा०, १५७, २४६ ।
[वि०] (सं०) अवल । स्थिर । अचर ।

अगणित = वा० कु०, २५ ।
[वि०] (सं०) असंख्य, अगणित, अगणनीय ।

अगतिमय = का०, १८ ।
[वि०] स्थिर । जो गतिमय न हो ।

अगन्य = चि०, ६७ ।
[वि०] मामाग्य, तुच्छ, नगण्य । बहुत अधिक ।
(४० भा०) जिसे गिन न सकें ।

अगम = का० ३१ ।
[वि०] न जान योग्य, जहाँ कोई न जा सके
(हि०) जहाँ पहुँचना दुर्लभ हो, दुर्गम, गहन,
कठिन, विकट । गहरा, अथाह । दुर्गम ।

अगर = का० १८३ ।
[सं० पु०] (सं०) अगर की सुगंधित लकड़ी ।

[वि०] १५७, २५१, २५२ । चि०, १७०,
[सं०] अ० ३० ।
निश्चय, स्थिर, टिकाऊ, ठहरा हुआ ।
अचला = का०, २६ १२६ ।
[सं० की०, वि०] पूर्वी । जो न चल, ठहरी हुई, स्थिर
[हि०] (सं०) साधुशा वा गले में पहनने का
वस्त्र ।
अचानक = क० २६, का० कु० १४, का० ६, १७,
[कि० वि०] २४, ४१, १८४, १८५ । अ०, १५,
[हि०] १६, २६ ।
अचानक, सहसा ।
अचेत = का०, ४७, ४६, ८६ ।
[वि०, सं० पु०] चेतनारहित, सन्नानुय । भ्रातृच, विह्वल,
[हि०] नासमर्थ, अनजान । जड़ । अचेतय ।
अचेतन = ल०, ३७ ।
[वि०] जिनमें चेतना न हो, बेहोश, जीवन या
[सं०] प्राण से रहित । सनाहीन । चेतनारहित ।
अचेतनता = का०, १३२ ।
[सं० की०] (हि०) जड़ता, बेहोशी निष्प्राणता ।
अच्छा = क०, ११, १६ । का० कु०, ७६, ८४ ।
[वि०] अ०, ४४, ६१ प्र०, ५ । म०, २४ ।
[हि०] ल०, ११ ।
उत्तम, बढ़िया, चरा, चाखा, भला ।
ठीक । बढ़ा आदमी, श्रेष्ठ पुरुष ।
अच्छी = क०, ६ । का० कु०, ११६ । का०,
[वि०] १८०, २११ । अ०, ६० । प्र०, ५ ।
[म०] अच्छा का स्त्रीलिंग ।
अच्छुत = का० कु० ६१ । का०, २७१ ।
[वि० सं० पु०] पवित्र, बिना छूआ गया, प्रयाग रहित,
[हि०] जा काम में न लाया गया हा, नया,
बारा । निम्नवर्ती का व्यक्ति या जाति,
अत्यन्त अस्पृश्य ।
अज = वि०, १२ ।
[वि० म० पु०] अजमा जिगका जन्म न हा, स्वयम्भू
[सं०] (ईश्वर) । कामदेव । ब्रह्मा । विष्णु ।
शिव । वक्रा, मेड़ा । माया, शक्ति ।
रघु के पुत्र तथा दशरथ के पिता ।
‘रघुवश’ म कालिदास ने अज इदुमती
विवाह, इदुमती शत्रु एवं अज विलाप
का अत्यन्त रसात्मक वर्णन किया है ।
पुराणों में भी इनकी चर्चा है ।

अजगम = का०, १८५ ।
[सं० पु०] (सं०) जिवजी वा धनुष, पिनाक ।
अजमेर = म०, २४ ।
[सं० पु०] (हि०) मध्यप्रदेश का एक नगर ।
अजय = वि०, ६१ ।
[सं० पु०] (सं०) पराजय, हार ।
अजर अमर = का०, २७० ।
[वि०] ईश्वर वा एक विनोद । जो जरा-
[म०] मरण से रहित हो ।
अजस्र = ल०, ५६ ।
[वि०] (सं०) अपरिमित, अत्यधिक । निरन्तर, सदा ।
अजहूँ = वि०, १४, ६७ ।
[म०] अभीनक, इस समय तक, आज तक,
[म० वा०] भव भी ।
अजान = का०, ३०, १६३ । वि०, १४२ । ल०,
[वि०, सं० पु०] ७४ ।
[हि०] अनजान, अवोध, अनभिज्ञ, नासमर्थ,
भ्रूभू । जो न जाना जाय । अपरिचित,
अनात । अज्ञान, अनभिज्ञता । एक
प्रकार का पीपल की तरह का ऊँचा
पेड़ जिसमें नीचे जान स बुद्धि भ्रष्ट हो
जाती है । प्रातः मसजिद में पुकारे
जानवाले शब्द ।
अजित = ल० ७४ ।
[वि०, सं० पु०] अपराजित, जिसे जात न सकें, जा हारा
[सं०] न हो । बुद्ध, शिव, विष्णु । जनिया
के दूसरे तीर्थवर ।
अजिर = का०, ६४ । अ०, ३१ । ल०, २३ ।
[सं० पु०] वायु, हवा । इन्द्रिया का विषय ।
[सं०] आगम सहन । शरीर । मेढर ।
अजी = क०, १८ । का० कु०, ८२ ।
[म०] (हि०) सवायन मुचक शब्द । हे, धर, जी ।
अजीर्त = क०, १७ ।
[सं० पु०] शुन सेप के पिता ।
अनीर्त = शुभकुल में उत्पन्न एक ब्राह्मण, जा शुन-
पुच्छ शुन नेप और शुनालाशून—नोन
पुत्रा का पिता था और वरुण को बनि
दत्त के लिये अपने पुत्र शुन दाप का
हरिश्चन्द्र व दास विक्रय कर दिया

या । ऐतरेय ब्राह्मण तथा लिंग पुराण
मे द्वयवी बषा है ।

अजे = चि० ४८ ।

[सं पु०] (ब० भा०) हार, अजय, पराजय, असफलता ।

अजौ = चि०, ४१ ४८ १६८ ।

[क्रि० वि०] आज भा, अब तक, अभी भी ।

अज्ञात = का० कु०, ४८ ७३ । वा० ५२, ८३ ।

[वि०] (स०) अ० २८ ५८ ८५ । प्र०, ८, १२ ।
जो बात न हो । जिसके बारे में कुछ
ज्ञात न हो ।

अज्ञान = का०, १३ । वा० कु०, ११६ ।

[सं पु०] (स) ज्ञान का अभाव । भ्रमता, अनाडीपन ।

अटकता, अटकते = का०, १६०, २२७ ।

[क्रि० प्र०] रुकना, चलत चलत रुकना, फस कर

[हि०] रुकना, अडना अगड करना, उलझना,
सगा रहना । प्रम में फसना । विवाद
करना ।

अटकाय = का० ८१ ।

[सं पु०] अटवने की क्रिया का भाव । रुकाव,
(हि०) प्रतिबन्ध, रोक, बाधा, विघ्न ।

अटगो = ल०, ५७ ।

[क्रि० प्र०] (हि०) अटका (= रुका) का लीलिंग ।

अटल = का० कु०, ७७, का०, २३२, ल०, ६७ ।

[वि०] (स०) न टननेवाला, स्थिर, निश्च । दृढ,
अचल ।

अटै (अटैना) = चि०, ६४ ।

[क्रि० प्र०] (ब० भा०) अटना, समाना । जो न अटे, जो
न समाय ।

अटटहास = का०, १२ ३६, १६५ । ल०, ६५, ६८ ।

[सं पु०] अधिक जोर की हसी, वाग्वस हसी ।
(स०) ठाकर हसना, ठहाका ।

अड = का०, २५६ ।

[सं पु०] (हि०) हड़, जिद, टक्, प्रख ।

अडना = का० कु०, ११३, का०, ८१ ।

[क्रि० प्र०] रुकना, ठहरना, हठ करना ।

अडे = का० ३ ।

[क्रि० प्र०] रुके, ठहर ।

अडे = चि० १०६ ।

[क्रि० प्र०] (ब० भा०) अडे ।

अणु = का०, ६५, २६६, २७० । ल० ३८ ।

[सं पु०] (स०) कण छोटा टुकड़ा, परमाणु से बड़ा
कण, धूलकण, साठ परमाणुओं का
एक प्राचीन मान । संगीत के अनुसार
तीन बाल के चतुर्थाय समय, एक मुहूर्त
का ५४६७००० वाँ भाग । सूक्ष्म
कण । अत्यंत सूक्ष्म माप ।

अणु अणु = का०, २०३ २८६, २६१ ।

[सं पु०] (स०) प्रत्येक अणु । कण कण ।

अतल = का०, १६८ । ल०, ५१ । ल०,
[वि०, सं पु०] ७४ ७६ ।

(स०) गहरा, जिसका तल न हो बिना पेंदी
का । सात से दूसरे पाताल का नाम ।

अतलात = ल०, १५ ।

[वि०] (स०) जिसके तल का अत न हो ।

अति = का०, १५, २५ । का० कु०, ३३, ४६,

[वि०, सं ली०] ६६ १०६ । का०, १५, ५० ५५, १२१,
(स०) १५७, १५८, १६३, १६८, २०२,
२३६, २५५, २५६, २५८, २६८, २७६,
२८०, २६१, २६३ । चि०, १, ५, ५६,
५८, ६०, ६१, ६२ ६३, २२ ६७,
६८ ७१ ७२, ७३, ७५, १४७,
१५०, १५१, १५८, १६२, १७३ ।
ल०, ३८, । प्र०, ७ । सं, ६ । ल०
३४, ४५, ६४, ७१ ।

बहुत, अधिक, अतिशय । अधिकता,
अत्यधिकता ।

अतिक्रमण = चि०, ६८ ।

[वि०] (स०) गहरे बाले रंग का । बहुत बाला ।

अतिक्रमण = का०, २०८ ।

[सं पु०] पड़न, चढ़ती, उल्लंघन, भग, अपने
काय या अधिकार क्षेत्र आदि की
सामान्य पार करके ऐसी जगह पहुँचना
जहाँ जाना या रहना अव्यय तथा मर्यादा
विच्छेद या अनुचित है । उल्थापन ।

अतिचार = का० ७१ ।

[सं पु०] व्यतिक्रम । साध जाना, अपने अधिकार
या अधिकृत सीमा के बाहर अनुचित
रूप से और इस प्रकार जाना कि दूसरे
के अधिकार में बाधा पहुँचे । ग्राह की
शोषण चाल । अनुमतानुसार विभाता ।

अतिचारी = का०, १६६, १८५।

[वि०] भूमे फिरेनेवाला ! वह जो अतिचार करता हो, अतिचार करनेवाला।

अतिछवि = वि०, ७२।

[सं० शी०] (हि०) मार्य की अधिकता, अत्यंत सुंदरता।

अतिथि = का०, ८१, ८३, ८५, ८६, ८७, ८८

[सं० पु०] ८६, ९०। वि०, १५६। ऋ०, ८२

(स०) ८३। प्र०, ५।

पाहुन, अग्न्यागत, मेहमान, घर में आया हुआ अनात व्यक्ति। वह साधु जो एक स्थान पर एक रात से अधिक न ठहर, आराम। यानी मुनि, सयासी, जनाधु। जिसकी तिथि नियत न हो। अति। यो मे सोमलता लागेवाला।

[अतिथि— 'करना' शृष्ट (८२-८३) पर सकलित प्रेम विषयक कविता। कवि के मन में घर शीघ्र वसने की बात हृदय गुफा झुनी रहने के कारण उठी। अपरिवित 'प्रेम' प्रतिधि बनकर निशान आकर घर बना गया जिससे मन को विनाश और कवि के हृदय को बड़ा आनंद मिला। उसकी पहचान नखरेल लगने पर कवि को हुई। यद्यपि वह अतिथि या लेकिन तो भी वह घर के बाहर न था और उसका खेल देखकर कवि को अनुभव हुआ कि वह बहुत बाहर था।]

अतिथिसेवा = वि० १४०।

[सं० शी०] (स०) अग्न्यागत की सेवा। पाहुन का स्वागत सत्कार। (अतिथि का स्वागत सरकार भारतीय समाज का आवश्यक अंग है।)

अतिथिसेवारस = वि०, १४०।

[वि०] अग्न्यागत की सेवा करने में लीन।

[सं०] पाहुन का स्वागत करने में तमय।

अतिभायो = वि०, १७५।

[क्रि० अ०] (प्र० भा०) अत्यंत पसंद आया।

अतिरजित = का०, ४, १०६, ११५।

[वि०] (न०) बहुत बड़ा चमक कर कहीं गई। अत्युक्ति पूर्ण।

अतिनाद = स०, १३।

[सं० पु०] बड़ोर वचन, कड़ु शब्द। सखी बात, खरी बात। अत्युक्ति। डींग हँकना, बड़ा चढाकर बातें करना।

अतिशय = वि०, ४०।

[वि०, सं० पु०] बहुत अत्यंत ज्यादा, अधिक। एक प्रकार का अलंकार जिसके द्वारा उनरी स्तर संभावना या अनुभावना प्रदर्शित की जाती है। (अतिशयोक्ति)।

अतिहि = वि०, १६१, ६४, १०६, १७६।

(प्र० भा०) २० प्रति।

अतिही = वि० ५१।

(प्र० भा०) (६० 'अति')।

अतीन्द्रिय = का०, ३५।

[वि०] (स०) अगोचर। जिसका अनुभव इन्द्रियो द्वारा न दिया जा सके।

अतीत = भा० ७७। का०, ६, ४६, ८६, १०३,

[वि०] १२७, १४१, १६२, १६५, १७७,

(स०) २०६। वि०, १४१। प्र०, ६। स०,

४३, ४४, ५३।

भूत, व्यतीत, बीता हुआ, गत। पृथक्, अलग, पारा, निलंब, विरक्त विलग, असंग। मत, मरा हुआ। संगीत शास्त्रानुसार परिमाण विशेष।

[अतीत— 'प्रसाद' अतीत को अभिव्यक्त करने करनेवाली व्यक्तितगत शोषक विशाल की कविता। ३०—प्रसाद संगीत।

अतीतकथा = का० कुं०, ११०।

[सं० पु०] (स०) अतीत की कथा। पुरा काल का आख्यान। पूजको की गाथा।

अतीतकथा मकरद = का० कुं० ११०।

[सं० पु०] (म०) अतीत की कथा का रस।

[अतीत का गीत—सबप्रथम 'माधुरी' में 'अतीत का गीत' शोषक से वष ५, खंड २, सख्या ३, सन् १९२७ में प्रकाशित, 'कामना' का गीत। प्रसाद संगीत में संकलित।

२० प्रसाद समीत—सघन बन बत्तरिया
के नीचे ।]

अतीतादि = का० कु०, ६८ ।

[स० पु०] (हि०) अतीतरूपी सागर ।

अतुल = का०, ४० । ऋ०, ३८ । ल०, ३२ ।

[वि०] अनुपम, अद्वितीय, अपूर्व, अनुलनीय,
(स०) जिसका तुलना न की जा सके बेजोड़,

अवेना । बहुत अधिक, समित, असीम,
अपार । जो तोना या बूता न जा सके ।

अतुल = वि०, ६६ ।

[वि०] (स०) > अनुन' ।

अतुल = आ०, ४१ । ऋ०, ६४ ।

[वि०] (स०) असतुष्ट, जो तृप्त या सतुष्ट न हो,
जिसका मन न भरा हो । भूखा, जिसका
पेट न भरा हो ।

अतृप्ति = का०, १२, ६१, १०२, १८४ २२६,
[स० ली०] २३७ । तुष्टि का न होना । मन न

(स०) भरने की दशा । चित्त का अशांति ।

अत्यत = ल० ३४ ।

[वि०] बहुत अधिक, आवश्यकता से अधिक,
(स०) अतिशय, हृद से ज्यादा, बृहद् ।

अत्याचार = का०, १६६ । ल०, ५२ ।

[स० पु०] दुर्व्यवहार, कुंयवहार, अवाय जुग,
(स०) विरडाचरण, ज्यादाती, आचार का
अतिव्रमण, मदाचार का उल्टा । पाप,
दुराचरण आडंबर, पाखंड, ढकीमला,
ढोंग । दूसरा के साथ किया जानेवाला
वह काम जिससे उनको कष्ट हो ।

अत्याचारी = का० कु० १०८ ।

[वि०] अत्याचार करनेवाला, अवायी दुरा
(स०) चारा जालिम, वह जो अपने बल के
आपार पर दूसरी के साथ बहुत बुरा
व्यवहार करता है, बहुत अधिक कष्ट
पहुचानेवाला । निष्ठुर, पाखंडा ढोंगी ।

अथरु = ल०, ७६ ।

[वि०] न धनेवाला, जो न धने, अथात ।
(हि०) परिधमी ।

अथवा = का०, २७ । का० कु०, १०७, १२१ ।

[स०] (स०) प्र० २३ ।

वा, या, विवा (एक प्रकार का अव्यय
जो नियोज्य होता है । इसका प्रयोग
यहाँ होता है जहाँ कई शब्दों या पदों
में से एक का ग्रहण अभीष्ट हो ।)

अथहि = का० कु०, ७० । का०, २४१ ।

[वि०] जिनका थाह न हा बहुत गहरा,
(हि०) अथाव । कठिन, गूढ़, गभीर, अपार
अपरमित जिनका कोई पार न
हा सके ।

अथम्य = प्रे०, ४ ।

[वि०] प्रचंड, अजय, उग्र । जो दबाया न जा
(स०) सके, जिसका दमन न हो सके ।

अदृश्य = का० कु०, १०१ ।

[वि०] सुप्त, गायब, अलक्षित, छिपा हुआ,
(स०) अगोचर, पराक्ष जिसका ज्ञान इन्द्रियो
को न हो । अलक्ष, जो दिखाई न दे ।

अदृष्ट = का०, १३१, १६७ । ल०, २२, ५३, ७६ ।

[वि०] अतवाल, तिरोहित, सुप्त, गायब,
(स०) ओम्बर, अलक्षित, न देखा हुआ ।
प्राज्ञात्मक (प्रवृत्ति न उत्पन्न), भाग्य
अग्नि या जलादि से प्राप्त भय ।

अदृष्टानारा = का० कु०, ११२ ।

(स० पु०) (स०) अलक्षित आवास । भाग्यरूपी आवास ।

अदृष्ट्य = का०, २६३ ।

[वि०] (हि०) (हि० 'अदृश्य') ।

अद्भुत = का० कु०, ६४ । का०, १६७, २४७ ।

[वि०] (स०) वि०, १६, ७५, १४२, १५८, १६३

५०, ५५ । प्र०, ३ । ल० ६६, ७२ ।

अनोता, अनुठा, विलक्षण, अजीब,
विचित्र अपूर्व अलौकिक, आश्चर्य
जनक । वाच्य शास्त्र के अनुसार नौ
रखा म से एक ।

अधखिले = ल०, ६२ ।

[वि०] (हि०) अध विकसित, आधे खिले हुए ।

अधखुला = का०, ४६ ।

[वि०] (हि०) आधा खुला हुआ ।

अधम = का०, ३१ । का०, १८, ८४, २२७ ।

[वि०] (स०) विलुप्तनाश या निरुद्ध कोटि का अव्य,

अधरे

बुरा, खोटा, निरुष्ट । बहुत बड़ा
पापी, दुष्ट या दुराचारी ।

अधर = क०, १७ । का० कु०, ४५ । वा०,
[स० पु०] १२८ १३४ १३५, १८० । ल०, ६,
[स०] १७, २७, ४१, ४२ ६० ।
आठ, होठ, नाच का आठ ।

अधर्मी = चि०, १७८ ।
[स० पु०] पापी, दुराचारी, पातकी, धर्म क
(हि०) विरुद्ध कार्य करनेवाला, कृत्तमा, बुरा
कार्य करनेवाला, अध्याय ।

अधराति = चि०, १६८ ।
[स० स्त्री०] (२० भा०) अधराति ।

अधरान = चि०, १७६, १६१ ।
[स० पु०] (२० भा०) अधरान ।

अधरानहि = चि०, ४६ ।
(२० भा०) अधरानहि ।

अधरा = प्रा०, ६१ । का०, १७, ६६, १५२
[स० पु०] १८४, २६१ । ल०, १० १८ २१ ।
(हि०) स० अधर का बहुवचन ।

अधार = चि०, ४८, १७५ ।
(स० पु०) (२० भा०) (२० भागार ।)

अधिक = प्रा०, १६ । का०, ४७, ५१, ५२, ८६,
[वि०] १३८, १५७, १५८, १६१, १७६,
(स०) १६८, २१३ । चि०, ५८, ६१ ।
प्रवर्धित, आतिरिक्त, शेष, बचा हुआ,
फालतू । विगण, बहुत, ज्यादा । तलछट ।

अधिकार = का०, ५४, ८२, १६२, १६०, १६२,
[स० पु०] १६४, २२० । चि०, ५१, ५६, ५८,
(स०) ३० । ल०, १२, १३, ७०, ७८, ७९ ।
याम्यता, गान, परिचय । प्रभुत्व,
आधिपत्य । राजा, स्वत्व, अल्लिया,र,
हूँ । क्षमता, शक्ति, सामर्थ्य । प्रकरण,
शोषक । वस्तु ।

अधिकारछुध = क०, १२ । का०, १७६, २३७ । चि०,
[वि०] (स०) १२, २२ । न० ७७ ।
प्रभुत्व से व्याकुल । अधिकार से
परवाना । आधिपत्य और कायनार से
परवाना ।

अधिकारी = का० १६२ ।
[स० पु०] प्रभु, मानिक, स्वामी । वह जिससे
(स०) कोई हक या स्वत्व प्राप्त हो । अफसर,
जिमी बाय या पद पर कार्य करने
वाला । वह जो विशेष योग्य हो ।
उपयुक्त पात्र ।

अधिकारों = का०, १८६, २७१ ।
[स० पु०] अधिकार का बहुवचन ।
अधिकृत = चि०, ५३ । क०, १३ ।
[वि०] (स०) स्वत्ववाला, अधिकारी, अध्यक्ष ।
जो किसी के अधिकार में हो, जिसपर
अधिकार कर लिया गया हो । जिसको
कोई काम करने का अधिकार दिया
गया हो । जिसको कोई काम करने का
प्रभुत्व प्राप्त हो ।

अधित्य = चि०-४८ ।
[स० पु०] (हि०) (२० 'अधित्यका' ।)
अधित्यका = का० कु०, १०१ ।
[स० स्त्री०] पवल व ऊँच की समतल भूमि,
(स०) टेकुल जैद, उपत्यका का उलटा ।

अधिपति = का०, १७० ।
[स० पु०] (स०) राजा, प्रभु, स्वामी । नायक, मुखिया ।
अधीर = का०, १२, २७, ३६, ५१, ५२ ५५,
[वि०] ५६, ८६, ८६, ८१, १३६, १४६,
(स०) १५४, १५४, १६६, २५०, क०, २६
३८, ६५ । ल०, २१, २५, ३७, ४४,
५४, ६६ । क०, १८ ।

अधिर, उदित, वचन । च वन, अस्थिर ।
असंतोषी ।

[अधीर न हो चित्त विरत मोह जाल में—प्रजात
शत्रु की विषया मल्लिका की प्रायना ।
दुखमय यह मसार है तो भी दुख भी
सद्व नदी रहता । उसका जीवन
क्षणिक है । हे प्रभा विश्व के माह-
जाल में हमारा चित्त अधीर न हो ।
उक्त कविता का यही भाव है । ८०—
प्रसाद मगात ।]

अधीरतम = का०, ३६ ।
[वि०] (स०) व्याकुलतम, विह्वलतम, चञ्चलतम,
अत्यंत अस्थिर, उतावला, अत्यंत

आतुर, अथवा सज, अथवा धैर्यहीन,
अत्यधिक बेचन ।

अधीरता = वि०, १७२ ।
[१० स्त्री०] आश्रुतता, विह्वलता, बेचलता,
(स०) उतावनापन ।

अध्ययु = का० कु०, ११४ ।
[१० पु०] (स०) यज्ञ करनेवाला षडुर्वेदीय पुरोहित ।
अनरा = आ०, २४ । क०, ११, ७४, १५६ ।
[वि०, स० पु०] वि०, ३ । १८२ । ल०, ४७, ७७ ।
(स०) बिना शरीरबाला । कामदेव ।

अनरा बालिकाएँ = ल०, ६० ।
[स स्त्री०] कामिनीयाँ, कामवती लड़कियाँ । काम
बालिकाएँ ।

अनल = आ०, ११, ६८ । का० कु०, १ ।
[वि० स० पु०] का०, ६० । १०, १८, २६, ४०, ६८
(स०) ८७, ९१, ११३, १२०, १२३, १४८,
१६६, १६३, २६० । वि०, २२, २३,
६६, १३६, १६० । क०, २६, २६
३३, ३८, ६३ ।

असीम, बेहद, अपार, जिसका मत न हो,
अत्यधिक, असंख्य । निरुद्ध, अविनाशी ।
निव । विरगु । नेपथ्य । लक्ष्मण ।
मन्थराम । आकाश । अवरक । एक जन
नीचकर का नाम । भुजा में पहना
जानवाला एक गहना । एक व्रत ।
रामानुजाचार्य का एक परम शिष्य ।

अनल नीलिमा = ल० ११ ।
[स० पु०] (स०) एसी नीलिमा जिसका अंत न हो ।
अपार नीलिमा ।

अनल मदिर = का० कु०, ६ ।
[स० पु०] (स०) अनल का मदिर । ईश्वर का निवास ।
अनलता = का०, १२८ ।
[स० पु०] (स०) अनल के गुण धर्म वाता ।

अनल = वि०, ६, ३१, ५६, १५२, १५६ ।
[स० पु०] (स० भा०) (दे० 'अनल') ।

अनलमय = वि० ५६ ।
[वि०] (स० भा०) (२० 'अनलमय') ।

अनलित = वि०, ५६ । ६४, १५० ।

[वि०] (स० भा०) (दे० 'अनलित') ।

अनलकर = क०, ५६ ।
[क्रि० अ०] (हि०) रुद्धकर, निमित्तकर, क्षय करने ।

अनले = वि०, १८८ ।
[वि०] (हि०) भुक्त्याएँ हुए कोट भर हुए, सित ।

अनलदे = का०, ४७ ।
[वि० पु०] बिना गढ़े हुए जो किसी के द्वारा न
(हि०) बनाया गया हो, बेडगा, अनलही,
अपरिपुष्ट, वैकुण्ठा स्वयम्भू ।

अनलगति = वि०, १६३ ।
[वि० पु०] बिना गिना हुआ, अगण्य, अगणित,
(हि०) बहुत, बेगुमार ।

अनलजान = का०, ४६, ४१, ५२, १६४ । वि०,
[वि०] १४३ । क०, २४, ३८ । ल० ७४ ।
(हि०) अज्ञात, अपरिचित, नासमझ, अनभिज्ञ,
नादान, माथा, भन, अज्ञानी । बिना
जान पहचान का ।

अनलजानि = वि०, १७६ ।
[वि०] (स० भा०) (दे० 'अनलजान') ।

अनलजानी = आ०, १५ ।
[वि०] (हि०) दे० 'अनलजान' ।

अनलजाने = का०, १६३ । ल०, १७ ।
[वि०] (हि०) (दे० 'अनलजान') ।

अनल = वि० १८८ ।
[क्रि० वि०] (स० भा०) दूसरी जगह, अथवा ।

अनल्य = का०, १४७, २०८ ।
[वि०, स० पु०] दूसरे से सब न रचनेवाला, एकनिष्ठ,
(स०) एक हा में सीन । विरगु ।

अनल्यन = का० कु०, ६५ ।
[स० स्त्री०] विरोध, विवाद, मगडा, भभट, विद्रोह ।
(हि०) { वि० } अलग, पृथक्, भिन्न, विविध,
नाला (प्रकार) ।

अनलमना = वि०, ११ ।
[वि०] (हि०) विरक्त, अव्यक्त, उदात्त, मुक्त ।
अत्यन्त, योग्य ।

अनलमनी = का०, १४२ ।
[वि० स्त्री०] (हि०) उग्रम विद्रो । अत्यन्त ।
अनलिल = का० कु०, ३०, ५३ ।

[वि०] असबद्ध; बेमेल, असंगत । अलग, भिन्न,
(हि०) विलिप्त, पृथक् ।
अनमेल = वि०, १४२ ।
[वि०] बेमेल, असबद्ध, बेतुका असंगत । बिना
(हि०) मिलावट का, बिभुद्ध, खालिस ।
अनरण्य = वि०, ४८ ।
[म० पु०] रावण द्वारा अपदस्थ इक्ष्वाकु वंश का
(सं०) एक सुयवशी राजा ।
अनराज्यता = वि०, ४८ ।
[सं० ली०] (हि०) अराजकता ।
अनरीत = वि० १५६ ।
[सं० ली०] बुरीति, बुरी बाल, कुप्रथा अनुचित
(हि०) व्यवहार ।
अनल = आ०, ३० । का०, कु० ५ । का०,
[न० पु०] ११६, १५७ । सं० ६५ । वि० ६७ ।
(सं०) अग्नि, आग ।
अनलादिक = वि० १८६ ।
(श० भा०) अग्नि आदि ।
अनलशिखा = सं०, ४६ ।
[सं० ली०] (सं०) अग्निशिखा । अग्नि की ज्वाला ।
अनरत = का०, १६४ ।
[क्रि० वि०] निरत, सतत, सदैव, अजल, लगातार,
(सं०) हमेशा ।
अनरथा = का०, २७१ ।
[सं० ली०] अव्यवस्था, अनियमितता । व्यग्रता,
(सं०) आधारता । न्याय की वह त्रुटि जिसमें
सक निकलता जाता हो और विवाद
का अंत न हो ।
अनस्तित्व = का०, २० ।
[वि० पु०] (सं०) अस्तित्वहीनता । मत्ता का अभाव ।
अनहित = का०, १६७ ।
[सं० पु०] (हि०) अहित, अमंगल, अपनार, बुराई ।
अनाथ = का०, २५ । वि०, १५५ । प्रे० २१ ।
[वि०] बिना स्वामी का, अछाया, बेसहारा,
(सं०) दीन-दुखी, नाथहीन, जिसका कोई
रक्षक न हो ।
अनाया = प्रे०, २० ।
[वि०] (सं०) अनाथ का स्त्रीलिंग ।

अनादि = का० कु०, १ । का०, ३५, ७२ ।
[वि०] (सं०) जिसका आदि न हो, जो सदा से हो ।
अनामिका = आ, ६६ ।
[वि०, सं० ली०] सबसे अच्छी, बिना नाम या तुलना की ।
(सं०) कनिष्ठा और मध्यमा के बीच का उंगली ।
अनायास = अ०, ६१ ।
(क्रि० वि०) सहसा, अकस्मात् अचानक । बिना
(सं०) प्रयास या परिश्रम के, बिना उद्योग,
बिना प्रयास के ।
अनार्य = का०, कु० ११५ ।
[वि०] (सं०) जो आर्य न हो स्लेख अग्र्येष्ट ।
अनाहत = का०, २५३, २७३ ।
[सं० पु०, वि०] बिना चोट किया हुआ जिसपर
(सं०) आघात न किया गया हो । योगशास्त्र
में अँगूठा से दोना कानों को बंद कर
लेने से सुनाई देनेवाला शब्द । हठयोग
के भीतर के छह चक्रों में से एक ।
अनिच्छित = का०, १६४ ।
[वि०] (सं०) बिना इच्छा के, अनचाहा ।
अनियारे = वि०, १७५ ।
[वि०] नीचीना, बटोला, तीप्पल, पैना,
(श० भा०) तीक्ष्ण धारवाना ।
अनिर्वचनीय = का० कु० ८१ ।
[वि०] जिसका वर्णन न किया जा सकता हो,
(सं०) अवगतीय, अकथ्य, अकथनीय । [पु०]
ब्रह्मा, परमात्मा । माया । जगत् ।
अनिल = आ०, १० । का० कु०, ५, ६६ । का०,
[सं० पु०] १८, १५७, २३४ । वि०, १५०,
(सं०) १८२, १८५ अ०, परिचय । सं०, २६ ।
वायु पवन, हवा, समीर, मारुत ।
अनिलनिर्देश = का० कु०, ६६ ।
[सं० पु०] (सं०) हवा का रूप ।
अनिवार्य = अ० १६ ।
[वि०] जिसका निवारण न हो, जिससे बचा
(सं०) न जा सके । जिसे लेना, रखना या
मानना आवश्यक हो । जो हटाया या
छोड़ा न जा सके ।
अनिष्ट = प्र० ५ । का० कु०, १०८ ।

[वि०] (स०) जा इष्ट न हो, अनिहलपित ।
अनिहलवाडा = स०, ६१ ।

[स० पु०] (हि०) एक स्थान का नाम । गुजर प्रदेश
का कुतुबुद्दीन ऐबक तदनंतर अलाउद्दीन
द्वारा विजित नगर । लहर में 'प्रलय'
की छाया' में वर्णित स्थान । १०—
प्रलय की छाया में और लहर ।
चि०, ५३ ।

अनी =
[स० का०] सिरा कीर, नोक । खेद ग्लानि ।
(हि०) छेद, समूह दल ।
अनुकरण = स०, ६३ ।
[स० पु०] (स०) नवन, दलाली दिया जानेवाला काय ।

अनुकूल = क० ६ । वा० कु० ५० । वा०
[वि०] १३६ । चि० १४ ६ १० १५०
१६० । प्र० १० । अनुसार मुभाफिक ।
हितकर पक्ष में रहनेवाला । प्रम न ।
वा० ७६ ।

अनुकृति =
[स० ली०] (स०) अनुकरण ।

अनुगत = स०, ६४ ।
[वि०] अनुयायी अनुगामा, पीछे चलनेवाला ।
(स०) अनुकूल, मुभाफिक अनुसार ।

अनुगामी = क० २२ ।
[वि०] अनुसरण करनेवाला । समान आचरण
(स०) करनेवाला आशाकारी ।

अनुमद = स०, ७३ ८६ ।
[स० पु०] दया, दया, अनुकृपा । अनिष्ट निवा
(स०) रण ।

अनुचर = क०, २६ । चि० ६६ । न० ७२ ।
[स० पु०] पीछे चलनेवाला । सबक दास । सह
(स०) चारी, सामा ।

अनुचरन = चि०, ७० ।
[स० पु०] (स० भा०) पाद चलने का क्रिया ।

अनुचित = चि० ७३ । म०, ११ ।
[वि०] अयोग्य अनुत्त उरा खराब जा उचित
(स०) न हो, नास्तुनामिक ।

अनुन = चि०, ६४ ।
[स० पु०, वि०] (स०) जो बाद में पग टूटा हो । छोटा
भाई ।

अनुतापदि = चि० = ७४ ।

[ब० भा०] जलन से । नपन से ।
अनुदिन = वा०, ७१, १०५ ।

[क्रि० वि०] (स०) प्रति दिन । हर दिन । रोज ।

अनुनय = क०, ७३ । ल० ७१, ७३ ।

[न० पु०] विनती, विनय प्राथना । लठे हुए को
(स०) मनाना ।

[अनुनय (१)]—इडु बला न जनवरी १६२७ मे
सबप्रथम प्रकाशित । चद्रगुप्त का गात
'नुवा माकर से नहला दा' । प्रसाद
समय में संकलित । १०—नुवा सीनर
से नहला दो और प्रसाद संगीत ।

अनुनय (२)—'अनला' में प्रकाशित एक लघु
कविता । इस आठ पात की कविता का
मकरद उसक । इन दो पत्तियां हैं—
क्रोध से, विषाद से दया या पून प्रीति
ही से [कभी भी वहाने से तो या]
किया कीजिए ।]

अनुनयवायो = वा० १२७ ।

[म० ली०] (स०) प्राथना से भरी हुई शादावली ।
विनती ।

अनुपम = का० कु० ६७ । चि० ७२ ४६ ६६,
[वि०] १६० १६३ । म० = १३ ।
(स०) बबाद अनुठा, उपमारहित, जिसकी
टकर का दूसरा न हो, अथवा उत्तम ।

अनुपस्थिति = म० १४ ।
[स० ली०] (स०) अविद्यमानता मौजूद न होना गैर
मौजूदगी, गहराजिरा ।

अनुभव = श्री १४ । वा० कु० ८०, ८७ ।
[न० पु०] वा० २२७ २६, २६१ । प्र० २५ ।
(स०) ल० ८८ ।

योग द्वारा प्राप्त ज्ञान । पराज्ञा से प्राप्त
ज्ञान तजबा । प्रत्यक्ष द्वारा प्राप्त ज्ञान ।
अनुभाव = वा० ६४ ।
[स० पु०] प्रभाव महिमा बढाई । रग का वाक
(स०) करानवान गुण और क्रिया । माहिल्य
या वाक्य में रस के अन्तर्गत चित्त का
भाव प्रकट करनेवाला बढाई रामांच
भावि बढाए ।

- अनुभूत** = का० कु०, ८६। ऋ०, ८६।
 [वि०] अनुभव से जात, परीक्षित, तज्ज्ञा
 (सं०) किया हुआ।
- अनुभूति** = का०, २६। ल०, ६८।
 [मं० स्त्री०] (सं०) अनुभव, परिचय, तज्ज्ञा। प्रत्यक्ष ज्ञान।
- अनुमान** = का०, ३५। ५०, ८३, १७७। चि०,
 [मं० पु०] १८६। ऋ०, ६३।
 (सं०) गणन मन से यह समझना कि ऐसा
 ही सकता है या होगा, अंदाज,
 भटकन। विचार, भावना।
- अनुमानि** = चि०, १७६।
 [क्रि० वि०] अंदाज लगाकर, अनुमान करके,
 (प्र० भा०) अनुमानत।
- अनुरक्त** = का० कु०, २६। ३०, ७५। का०,
 [वि०] १०। ऋ०, ३५। ६७।
 (सं०) आसक्त, अनुरागयुक्त, प्रेमयुक्त, लान।
 रगीत। लालिमा युक्त। प्रमत्त।
- अनुराग** = का० कु०, ११, ७६, १११। का०
 [मं० पु०] ११, ५३। ७२, ८८, ६८, १६८,
 (सं०) १७६, २१८, २३७। चि० २१,
 २२। १७५। १८०। ऋ०, २८। ६६।
 ल० ३८। ६७, ७६।
 प्रेम प्रीति। (द० 'अनुरक्ति')।
- अनुरागमयी** = का०, ६५।
 [वि०] (सं०) अनुराग से भरी हुई। लालिमा युक्त।
- अनुरागिनी** = ल० ११।
 [वि० स्त्री०] (सं०) प्रेम या आसक्ति रखनेवाली। अनुराग
 रखनेवाली स्त्री।
- अनुरागी** = चि०, १७। ऋ०, ५५।
 [वि०] (सं०) प्रेमी, अनुराग रखनेवाला।
- अनुरागी** = चि० ६८।
 (प्र० भा०) अनुराग करता है।
- अनुरूप** = चि० ७३, १८०।
 [वि०] (सं०) समान रूप का। अनुकूल। साम्य।
- अनुरोध** = का०, १७०।
 [सं० पु०] (सं०) मादत। स्थावर वाचा। प्रेरणा, उन्ने
 जना। विनययुक्त हठ।

[अनुरोध—'मस्ति के व सुदरतम क्षण यों ही
 शून नहीं जाना' स्वदगुप्त का यह
 गीत उक्त शीपक से 'मुभा', वप १,
 खंड ३, मितवर १६२१, सख्या १,
 पूरा सख्या २, मे प्रकाशित हुआ और
 स्कन्दगुप्त तथा प्रसाद संगीत में
 संकलित। १०—प्रसाद संगीत एवं
 मस्ति के वे सुदरतम क्षण ।]

- अनुलेप** = ल०, ५०।
 [सं० पु०] (सं०) लीपना। लेपन।
- अनुलेपन** = का०, १५।
 [सं० पु०] (सं०) लीपना। लेपन।
- अनुशय** = का०, २५०।
 [मं० पु०] (सं०) पश्चात्ताप, अनुताप। पुराना वर,
 अदावत, झगडा, वादविवाद, विग्रह।
- अनुशासन** = का०, २७०, २७२।
 [सं० पु०] (सं०) आदेश, आना। उपदेश, शिक्षा।
 आचार, व्यवहार के नियम।
- अनुशीलन** = का०, ७१। प्रे०, १५।
 [सं० पु०] चिंतन मनन। बार बार किया जानेवाला
 अध्ययन या अभ्यास।
- अनुश्रुति** = का०, ७३।
 [सं० स्त्री०] परंपरा से प्रचलित या प्राप्त कथा, उक्ति,
 (सं०) बात आदि।
- अनुष्ठित** = का० कु०, ११३।
 [वि०] (सं०) पूरा, संपन्न, जिसका सबविधि अनुष्ठान
 हुआ हो।
- अनुसरण** = का० कु०, ७३। का०, ५६। चि०,
 [मं० पु०] १८८।
 (सं०) पीछे पीछे चलना। अनुकरण, अनुकूल
 आचरण नकल।
- अनुसारिण** = चि०, १७१।
 (प्र० भा०) पीछे चलाने। अनुकरण करिए।
- अनुसूया** = चि०, ५६, ५६।
 [सं० स्त्री०] शकुन्तला की मन्त्री का नाम। अग्नि
 मुनि की स्त्री। अग्नि ऋषि का पात्र
 उपनिबन्धी पत्नी। गान्धर्व पुराण में
 इस दक्षकन्या की बताया गया है।
 ऋग्वेद में भी इसका अग्नि की त्रिव्य
 पत्नी के रूप में उल्लेख है। वा भीति

रामायण म यनवात के समय सीता को इनके उपदेश का बर्णन है तथा इन्होंने सीता को ब्रह्म, भूषण उभटन, अनुलेप को वस्तुएं भी दी थी। य परम सती व रूप मे प्रतिष्ठित हैं। (हि०) हमारे के गुण म दोष न निहालना ईश्याहीन होना।

अनुहारत = वि०, १६३।

[क्रि०] (प्र० भा०) समान सुख, सहज बरानर करना।

अनुहारि = वि० ३४।

[वि०] समान, सहज, बराबर योग्य, उपयुक्त,

(प्र० भा०) अनुहार सामक।

अनुहारो = वि०, १४८।

(प्र० भा०) दे० 'अनुहार'।

अनूठा = वा० कु०, २१६।

[वि०] अप्रव निराला, अनीला, विलक्षण,

(हि०) अच्छा।

अनुप = वा०, १४३। वि०, ६२, ६६, ७२,

[वि०, सं० पु०] १५२, १५६। अ, ६४।

(हि०) जिसका कोई उपमा न हो अनुपम, बजोड़, अद्वितीय। (सं०) अधिक जनवाता स्थान।

अनुपम = वि० ५६, ६०, ७२। वा० ४१।

(प्र० भा०) (१० 'अनुपम')।

अनेक = वि० ३१ ४८ ५२ ५८ ६०, ६५

[वि०] १११ १६२। अ०, ६४।

(सं०) एक से अधिक बहुत, अत्यन्त।

अनेकरूपी = वा० कु०, ६।

[वि०] (सं०) अनेक रूपवाला। बहुरूपिया।

अनोखा = वा०, ७७।

[वि०] अप्रव, विलक्षण निराला, विविध,।

(हि०) सुंदर, मनोहर।

अनोखे = वि० १८ १८८, १३० ४।

[वि०] (हि०) दे० 'अनोखा'।

अनोखी = वा०, ३७। वा० कु०, ४१, ४३, ११४,

[वि०] (हि०) ११५। वि०, ४६ ५८, १४३।

प्र०, १६।

अनोखा वा स्त्रीणि।

अन्त = वा०, १२, ५२, ८४, १४१।

[सं० पु०]

साध पत्नी। अनाज, धान, गन्ना, नाज। धृष्टी। प्राण। जन। वह जो सबका साथ तथा ग्रहण करे। मृत्यु।

अन्ध = वा०, ६६, १२८, १३३, १४४,

[वि०] २८४। प्र० २।

(सं०) कोई दूसरा। और व्यति। भिन्न।

अन्धभनसक = वा० कु० १८।

[वि०]

जिस व्यति का मन कही और लगा हो। जिसका ध्यान किसी दूसरा बात के सोचने में गया हो।

(सं०)

अन्योन्य = वि०, १५।

[सव०, सं० पु०] परस्पर। आपस में। एक आपसका जिसमें दो पदार्थों के बिना गुण या क्रिया को एक दूसरे के कारण उत्पन्न हुआ कहा जाय।

अन्धात = वि०, १७६।

(प्र० भा०) स्नान किया हुआ।

अपदार्थ = वा० ४१।

[वि०] (सं०) अयथा, अवस्तु, सुख, नावीज पदार्थ भिन्न।

अपना = वा० २३। का०, १८, २६, ३१।

[सव०] का०, कु०, २२। का०, ३१, ६३,

(हि०) १०२, ११०, ११४, ११७, ११८,

११६ १२६, १८५, २१०, २३७,

२४८। प्र०, १। म०, २, १८। स०,

२१, ४५।

हरएक को दृष्टि से स्वकाय। निज का, निजी।

अपनापन = वा०, २४१।

[सं० पु०] (हि०) आत्मोपता। आत्मभिमान। स्वाय बुद्धि। अपनत्व।

अपनाया = वा०, १७२, २०१। अ०, ५८।

[क्रि० सं०, हि०] अपनाया। अपना बनाया, स्वतंत्र किया, शरणा में लिया।

अपनी = वा०, २६ २६। वा०, कु०, ६, ४७।

[मर्व०, स्त्री०] का० ३१ ८६ ८८, १०२, १०६, ११८, १७७, २०२, २३५, २६२,

२७१। चि०, १४२, १४७। ल०, ६,
५६, ६३, ६४, ६६, ७५, ७८।
निजा।

अपनी अपनी = का०, १८।

[सर्व०] (हि०) प्रत्येक का। मिफ अपनी अपनी।

अपने = का०, ६, २६। ना० कु० २८। का०

[मव०] (हि०) ७, ३२ १०४ १०६, १६६ २०६,
२१०, २०६, २३७, २८२ चि०, ७२
१४४, १४७, १५८। अ०, १६।
प्र० २। म० १३, १५। न० २८,
७१, ७१, ७८ ५२ ६४ ६८, ७८।
निजा। आत्मीय। स्वभाव।

अपनेपन = चि०, ६६।

[म० पु०] आत्मीयता। अपन व।

अपनी = चि०, ६६।

(न० भा०) (२० 'अपना')।

अपमान = का० कु०, ४५। का०, १८६। चि०,
[स० पु०] १३, १०२। म०, १४। ल०, ५२,
(स०) ७७।

अनादर। अवना। अवमना। तिर
स्कार। बदज्जती।

अपमान उवाला = अ०, ७८। ल०, ७, ६६।

[म० स्त्री०] तिरस्कार की सपट। तिरस्कार का
(म०) अति। अपमान की दाह।

अपमानित = का०, २७। का० कु० ६४।

[वि०] (हि०) तिरस्कृत। जिसका अवना की गर्द
है। जिसे नाचा दिखाया गया है।

अपमानित हिय = चि० १८।

[वि०] (वह हृदय) जिसका निरस्कार किया
(न० भा०) गया है। तिरस्कृत हृदय या मन का।

अपयश = म०, १७।

[म० पु०] (स०) अपकीर्ति, बदनामा। कलक लाक्षण।

अपर = चि०, ५६।

[वि०] (म०) पट्टे का। पूर्ण का। दूसरा। अथ।

अपरचित = 'माधुरी' वष ४ गड २ मनु १६२६,
सत्या १ म सबप्रथम प्रकाशित।
अज्ञातशत्रु का 'निजान गाधूति प्रातर
में खाल पणकुटी के द्वार।' गीत।

प्रमाद संगीत म भी मकलित। १०—

प्रमान संगीत एव निजान गाधूति।

अपराध = का०, ३१। वा०, ८४, १२२, १७७,
[म० पु०] २०८, २४८।

(म०) वह अनुचित काय जिसमें किसी को
हानि पहुच। विधान के विरुद्ध कोई
एवा काय, जिसके कारण काना को द
मिल सनना हा। बुरा काम। दोष।
पाप। गलती।

अपराधी = का०, २१०, २२८, २३८।

[वि० पु०] शेष करनेवाला। पापा। बमूरवार।
(म०) मुनजिम।

अपरिचित = का०, ३२, ८१। चि०, २०।

[वि०] अनात। अनान। जिसके बारे में कुछ
(स) ज्ञात न हा। जा जाना पहचानाना हो।

अपरिमित = का०, २७६।

[वि०] असीम। बहद। असंख्य। अनत।
(म०) जिसकी माप न की जा सव।

अपरूप = ना०, ६१। चि० १८६। अ०, ८३।

[वि०] बदशकल। भद्दा। वैनील। अदभुत।
(म०) अप्रव।

अपलक = का०, १८। का०, १२, २८०।

[वि०] ल०, ३१।
(म०) जिसकी पलकें न गिरें। निरतर।
निनिमप। निना झल भये।

[अपलक जगती हो एक रात—नहर, पठ २१।

कविता का भाव है कि अभाव लेकर
साए हुए लोगों का प्रात न हो ताकि
व अभाव का शोध कर सकें। स्वप्न
म हा वे खाये रह। जस पथ हरियाली
म और मुमन डाली म मोते ह।

अपहत = का० ८४। म०, २।

[वि०] जबदस्ती छीना गया। हरण कर लिया
(म०) गया। छाना हुआ। चुराया हुआ।

अपाग = अ०, १६, २४।

[म० पु०, वि०] (स०) जिसका कोई अंग हट गया हो। झाल
की कार, कटाज।

अपार = का०, ४, ८, ८, ५२, १५६, १६६,

[वि०] २३४। ऋ०, २१, ४२। चि०, १४६,
(सं०) १७७।

जिमका पार न हो सीमारहित। अनत,
असीम, असरय अतिशय।

अपारा = चि० ७४ २५०।

[वि० म० स्त्री०] (हि०) जिमका पार वा अन न पाया
(न०) जा सके। पृथिवी। दुर्गा। महाशक्ति।

अपावन = आ०, ७४।

[वि०] (सं०) अपवित्र। न छूने योग्य।

अपर्या = का० कु०, ८१। का०, ११८ १६०

[वि०] १६१ १६४ १६४।

(सं०) अघूरा। अस्मात्। कम। जा पूरा या
भरा न हो।

अपूर्णता = का०, १६३।

[सं० स्त्री०] (सं०) पूर्ण न होना। भरा हुआ न होना।
अघूरापन।

अपूर्ण = चि०, ११।

[वि०] जो पहल न रहा हा। अद्वय।

(सं०) अनाया। विचित्र। उन्म। श्रुत।

अप्रसूतित = प्रे० २२।

[वि०] जा प्रवृत्त न किया गया हा। जो प्रका
(सं०) शित न हा। जा प्रत्यक्ष न किया गया
हा। अप्रत्यक्ष।

अप्रतिम = चि० १०। सं० ७३।

(वि०) जिमके समान कोई न हा। अनुपम।

(सं०) जो अद्वितीय हो।

अप्रतिष्ठित = का० २०६।

[वि०] जिमका विपात न किया गया हा।
(सं०) अपराजित। न रोका हुआ।

अप्रत्याशित = प्रे० २३।

[वि०] जिसका आशा न की गयी हा। अचानक
(सं०) या अचानक होनेवाला।

अप्रमाद = का० १६७।

[सं० पु०] (सं०) प्रमा या ध्यानपन का अभाव।

असरा = चि० ६ १६ ७७ ६१। सं० ६०।

[सं० स्त्री०] स्वयं का वस्त्र। वारागना। अनुपम
(सं०) मुन्ना। जन बग। वात बग।

अस्मरगान = चि० ११३।

[सं० पु०] अपराधों के गीत। स्वर्गीय गान।
(हि०) सुंदर स्त्रियों द्वारा गाया गया गान।

आसगियो = का०, २६४ २६०।

[सं० स्त्री०] अपराध। सुंदर स्त्रियाँ।

अप्सरे = का०, १२७।

(हि०) अप्सरा का सवावन।

अन = आ०, १२ ३०। का०, १, १०, २१,

२२ २८। का० कु०, ५६, ८३।

का०, ४ ८१ ८७ १०६, ११३, १४४,

१६२ १६३, १७३, १७७ १८१ १८६,

२०७ २५६ २६० २६६। चि०, ४७,

७२ ७३ ७४, ११८ १६०, १७०,

१८३। ऋ० समपण। प्रे०, ४।

म० १० १२ १७, २०, २१। ल०,

२४, ५१।

अनी। इन समय। अचकी।
इसी बार।

[अथ जागो जीवन के प्रभात—लहर (पृष्ठ २४) में
संक्षेपित गीत। इस प्रभात में कवि ने
जीवन के प्रभात का मनोमोहित कर उसे
जगाने का उद्बोधन किया है क्योंकि
वसुधा पर पड़े मोक्ष की जो क्षात्र के
आसु के समान हैं ग्रहणागत ऊषा बढ़ा
रने लगी है। तम के नयन तार किरण
दल में मुद रहें हैं और मलयज समार
चलने लगा है। रजनी की लज्जा समेट
कर (निद्रा त्यागकर) कवरय (जाग
रण) में भेंट करा मोद जागा।]

[अन भी चेत लूँ नोच—० प्रसाद सगत।
जयश्रीं मैं दिनाकर मित्र का नेपथ्य
का गीत। है नोच लूँ प्रय भा चेत
न। दुख से परित्त घरा का स्नेह के
जल से भाव। कृष्णापास से फले नर
कठ का करणा गरावर में स्नान करा
ताकि कीच धुन जाय।]

अनला = चि०, १०३। म०, ११, १२। ल०,
[वि० सं० स्त्री०] ६८ ७१।

(सं०) स्त्री। महिला। नारा। नगरहिता (स्त्री)।

अनहि = चि०, ११८।

[क्रि० वि०] (हि०) इसी समय । इसी वक्त । अभी ।

अवही चि०, १५६ ।
(प्र० भा०) (२० 'अवहि') ।

अवहूँ = चि०, ६६ ।
(प्र० भा०) भय भी, इस पर भी, अत्र तक भी ।

अवहूँ = चि० १८८ ।
(प्र० भा०) [क्रि० वि०] अव भी । इसपर भी । अतक भा ।

अवाध = का० ७८ ५४ । ल०, ७६ ।
[वि०] (स०) निर्विघ्न । बाधा रहित । अनियमित ।
अपार । असोम ।

अवोध = का०, १५७, १६३ ।
[वि०, म० पु०] (स०) प्रनजान । नादान । मूर्ख । अज्ञान ।
बोधहीन ।

अव्र (अव्र) = का०, १४८ ।
[स० पु०] गदल । मेघ । आकाश । स्वर्ण,
(स०) सोना । अव्रव धातु ।

अवग = का० १५६ ।
[वि०] (स०) अलङ्घ्य, क्रमबद्ध । जिमना भग न
हुमा हा । पुरा ।

अवय = का०, १६८, २४४ ।
[वि०] (स०) निभय । निडर । बलौक ।

अवया = ल०, ३२ ।
[वि० स० स्त्री०] (स०) अव्यहिता । हरीतकी । हरें ।

अवागा = ल०, ७२ ।
[वि०] (हि०) भाग्यहीन । बदकिम्मत । मद भाग्य ।

अवागिनी = प्रे०, १८ ।
[वि० स्त्री०] (हि०) भाग्यहीना । भाग्यरहिता ।

अवाध = का०, कु०, ६७ । का०, ५, १८ ३०,
[स० पु०] १२८, १३१, १४५, १५१ । प्रे०, ३
(ग०) ल० ३१, ७४ ।

अवस्तित्व । अवत्त्व । अवत्ता । टाटा ।
कमी । घाटा ।

अवितन = का०, १०२ । ल०, १३, २८ । चि०,
[स० पु०] ७, ६१, ६२ ।
(ग०) प्रापना । प्रो साहू । आनद । प्रसता ।
उत्तना । सतोष ।

अविनय = का०, ७६ । व०, १० । का०, कु०,

[स० पु०] ५६ । का०, १०४, १३५, १५८, २२४,
२४१, २६३ प्रे०, १३ । ल०, ६५ ।
(स०) वनावटी । हाव भाव द्वारा किसी विषय
का वास्तविक अनुकरण करके दिख
लाना । हृदय के भावा की व्यक्त करने
के लिए अगा द्वारा की गयी चेष्टा ।

अविनयमय = ल०, ७६ ।

[वि०] (स०) अविनय से युक्त ।

अविनव = का०, १६४ २२५ २६०, २७७ २८५
[वि०] २६२ । चि० ६६ । म०, ६७ । प्रे०,
(स०) १८ । स० ३६ ।

नया । नवीन । नूतन । ताजा ।

अविनवेदु = चि०, १६८ ।

[स० पु०] (स०) नवीन वस्त्रमा । नया चौद ।

अविभारक = प्रे० १० ।

[वि०] (म०) रज्ज्व । सरपरस्त । देखरेख करनेवाला ।
पराजित करनेवाला । तिरस्कार करन
वाला ।

अविमान = का० २८ । का०, कु०, ४५, ८३ ।
[स० पु०] का० ४६, १५७, १७७ । चि० १६४,
(स०) १७७ । म०, ३८, ६४ । ग०, ४६,
६७, ७५, ७६ ।

अहकार । गव । घमट । अपने का
अधिक योग्य और समय समझने की
भावना ।

अविमानी = का०, १७७, २५७ । चि०, १६४ ।
[वि०] (म०) अहकारी, घमडा, गर्वीना ।

अविराम = का०, कु०, ६७ । का०, ४६, ४७ ५३ ।
[वि०] (स०) चि०, १५६ । म०, ५६, ६३, ६६ ।
प्रे०, ७ ।

गनाहर । मुदर । शासन ।

अविलपित = का०, १६४ ।

[वि०] (स०) जिसकी अभिलाषा की जाय । वाञ्छित ।
चाहा हुआ ।

अभिलाप = चि०, १७७ ।

[स० पु०] (स०) इच्छा । कामना । चाह ।

अभिलाषा = का०, ३८, ६५ । का० कु०, ४८ ।
[स० स्त्री०] (स०) का०, ४८, ६६, १०२, १०९,

११३, १३०, १४८ ११० १६६
१८६। अ० ३६ ४३ ४९। प्रे०, ३,
१६। १०, २०, ६०।
कामना। आकांक्षा। चाह।

अभिलाषाया = श्री० ११। का० १६४ १७७।
[म० गी०] अ० ७०।
अभिलाषा का बहुवचन।

अभिलाषा शलभ = का १७८।
[म० पु०] (म०) इच्छा रूपा पतंग। चाह या कामना
रूपी कृतिगा।

अभिलाषित = चि० ४८।
[नि] (गि०) इष्ट। चाहा हुआ।

अभिधान = क० २१। म० २०।
[म० पु०] प्रणाम नमस्कार वदना स्मृति
(म०) किसी वंश के प्रति प्रवृत्त का जागरूकी
प्रज्ञा या आदर भावना।

अभिलक्ष्य = का० १४०।
[ग० ला] स्फुटारण। साक्षात्कार। आविर्भा
(म०) उक्त वस्तु या प्रायश्चित्त होना या पक्ष
प्रत्यक्ष न हो।

अभिशाप = श्री० ७८।
[नि] (ग०) शाप पाया हुआ। वदुमुद्रा पाया हुआ।
अभिशाप = श्री० ७७। का० ५ १८ ५३ १६२
(स० पु०) १६७ १६६ २२८। ल० ७६।
(म०) शाप वदुमुद्रा। मिथ्या दोषारोप।

अभिषेक = श्री०, ६६। का० कु० ११३। ग० ३
[म० पु०] ४१। अ० १७।
(म०) शानि या मंगल के निमित्त मन्त्र पठकर
पुनः तया द्रव्य से जल छिन्नना।

जलमिचन। विधि के अनुसार मन्त्र
द्वारा जल छिन्न कर अधिकार प्रदान
करना। राय पत्र पर निवाचन।
यत्न के पश्चात् शानि के निमित्त
स्नान। छत्रपुत्र बहुपत्नी या शिरोधार्य
पर जल टपकने के नियम निश्चय पर
रखा जाय।

अभिसारि = का० ११।
[नि] नागर या नायिका का परस्पर मिलन

के लिये सकलित स्वान पर जाना
युद्ध। चण्ड। आक्रमण। सहारा।

अभी = क० १७ १६। का० कु०, १२०,
[क्रि० गि०] १२१ १२४, १२५ १२६। का०,
(हि०) ८२ १२८ १४०, १६० १८३, १८४,
१८४, २०६। चि०, १६६। म०, १,
३ ७ ५ १७। ल० ४५ ७६।
इसी समय। इसा वक्त।

अभीष्ट = का० कु० २८। म० १८।
[गि०] (म०) वांछित। चाहा हुआ। मनोवात।
पसन्द का। अभिप्रेत। अभीष्टित।
अभिप्रेत।

अभीष्ट = चि० ६६ १४१। अ० ७०।
[गि०] (म०) न डरा हुआ। भय न लाया हुआ।
भय रहित। निभय। निडर।

अभूतपूर्व = न० ६८।
[गि०] (स०) जो पहले न हुआ हो। अपूर्व।
अभेद = का०, २८८। अ०, ६३।
[म० पु०] भेद का अभाव। एक का न रहना।
(स०) माहिल्य से एक अन्तर का नाम।

अभ्यक्ष्णा = म० १४।
[म० गी०] नियम। प्राप्ति। दरबारात। अग
(स०) वाली। समान के लिये आगे बढ़
कर अभिवादन करना।

अभ्यास = का० ४१ २८७।
[म० पु०] किसी कार्य का बार बार करना। पुन
(म०) पुनः अनुमालन। पुनरावृत्ति। दोहरा
राज। स्वभाव। मुशवरा। आन।
टव। शिक्षा। एक काव्यकार का
नाम जिसमें किसी दुष्कर बात की
निष्ठ करनेवाले कार्य का वर्णन हो।

अभ्युद्य = का० कु०, ३६। का०, ४६।
[सं० पु०] मुख्य आदि प्रह्ला का उद्य। अभीष्ट कार्य
(सं०) या काम का निष्ठ। उपरति। बन्नी।
उत्पन्न। शुभ फल। ईश्वर।

अभ्युद्य = का०, ४६ १६८। चि० १ २५ ६१,
[गि०] (म०) १२८ १४०, १६१, १६२, १६४,
१६५, १६६, १७६। ल० १८।

मद या घीमा या मध्यम न होना ।
तेज । उत्तम । श्रेष्ठ मुदर । उद्योगी ।
वायकुशल । चलता पुरजा ।

अमर = का०, ५, १४, २८, ७४, ११२, २२२ ।
[म० पु०] ल०, १४ ।
(म०) देवता । पारा नामक घातु । मँहुड

का पेड़ । अमरकोश के रचयिता
अमरसिंह का नाम । उचास पवना
मे से एक पवन । विवाह के पूव वर
कथा के राजिवग के मयोम वं निमित्त
नक्षत्रा का एक गण ।

अमरतरंगिनि = चि० ७१ ।
[म० स्त्री०] देवताओं की नगी । देवतनी ।
(चि०) देवगगा ।

अमरता = का०, ७, १८ ।

[म० स्त्री०] (म०) अमरत्व, दनत्व ।

अमरते = का०, १२ ।

(म०) अमरता का सवाधन ।

अमात्य = का०, १६६ ।

[म० पु०] अमर का भाव । अमरता । दबक ।
(स०) दबों का जीवन । ज ममरण से मुक्ति ।

अमरवेलि = मा०, ७३ ।

[म० स्त्री०] कभी नष्ट न होनेवाली लता । आकाश
बदर ।

अमरप = चि० ११ ।

[सं० पु०] (हि०) अमर । ज्ञाप । कोष । रस के तृतीय
नवारी भावों में म एक ।

अमरपभरे = चि०, ४१ ।

[वि०] ज्ञापयुक्त । कोषयुक्त । ज्ञाप्रयुक्त ।
(हि०) ज्ञाप्र स भरा हुआ ।

अमरसिंह = म० ७ ।

[म० पु०] महाराणा प्रताप के पुत्र का नाम ।
महाराणा प्रताप सिंह की मृत्यु के
पश्चात् यह विनामी हो गया था ।
'अमर मटल' का निर्माण टमी न
कराया और जहाँगीर स मणि का था ।

अमरार्द्र = का० कु०, ३६ ।

[सं० स्त्री०] (प्र० भा०) आम की बारा । आम का बाग ।

अमरावती = चि०, ६७ ।

[सं० स्त्री०] (स०) देवी की नगरी । इन्द्र की राजधानी ।

अमल = का० ७१, का० कु०, ६२ । चि०, १

[वि०] १० १६० १७४ १७६, १७७ ।

(स०) ल०, ३५ ।

निर्मल । दोषरहित । पापशून्य ।

अमला = का० ७६ । चि०, १४६ ।

[वि०, म० स्त्री०] (स०) दोषरहित । स्वच्छ । पवित्र । लक्ष्मी ।

अनि अग्नि को ब्रह्मवादिनी कथा ।

अमा = का० १६४ । चि० १०१ । म० ८५ ।

[म० स्त्री०] (स०) अमावस्या । वह रात्रि जिसम चंद्रमा
की कान कला उदित नहीं होता ।]

[अमा को करिये सुदर रात्रा—(२० बिंदु) सब
प्रथम सुदरता से प्रकाशित हुएक
पूव इंदु कता ५ फरवरी १८१४ इ०
किरण २ म 'अमा को करिये सुदर
रात्रा' शीपक से प्रकाशित ।]

अमाय = चि० १२, ७१ ।

[म० पु०] (स०) मत्री । यजीर ।

अमिट = का० २२२ ।

[वि०] (हि०) न मिटनेवाला । नष्ट न होनेवाला ।

अमिद = चि०, १ ६ २२, १७४ । प्रे०, १७ ।

[वि०] (म०) अमीम । बह्म । अरपयिक ।

अमिताभ = ल०, १३ ।

[वि० सं० पु०] अययिक चमक मक काना । अमाम

(स०) प्रमा गपत । भगवान बुद्ध (ई० पूव
५६३-४८) । कपितवस्तु के राजा शुद्धा
दन के पुत्र और बौद्ध धर्म के प्रवक्तक ।
अग्नि पत्न (मारताथ) म अमृत धम
का प्रचारारम्भ लगभग ५२७ इ० पूव ।

अमरु = म० ७४ ।

[वि०] (स०) फना । वह या यह । वार्द ।

अमृत्यु = म०, ८० ।

[वि०] (स०) मृत्युरहित । अनमृत ।

अमृत = का० १८, १२४, १४७, १५२, २२४,

[सं० पु०] २६४ । चि०, ७४ । म०, ३० ।

(सं०) ल०, १५ ।

समुद्र मयन से निकले १४ रत्ना म स
एक । मधा । यमूष । जल । रोगहारी
श्रीपथि । दध । इद्र । सूर्य । शिव ।
पारा । धन हरि । उदद । माना ।
अन । मोमरम । युति ।

अमृत राम = वा० १६० ।

[वि०] (स०) अमन का घर ।

अमृतसतान = वा०, १८ ।

[वि०] (स०) अमर पुत्र । भगवान क पुत्र ।

[अमृत हो जायगा विष भी = १० प्रसाद मगी,
पृष्ठ १७ । अजातशत्रु का चार पक्षियों
का मीत । प्रयाग की शर्द्ध क प्रति
आमक्ति इतनी बड़ ग० है । क मारे
ममार को भुना कर वह उसका नाम
जपता है उसका रूप व नवन देखती
है । उसकी चरना बोलन लगा है और
पलकों डक चुकी ह । यहा तक बि
शर्द्ध व १०५ वा दिया हुआ विष भा
उमक त्रिष अमृत बन जायगा बड़
मान बठी है ? और इन गान का यही
भाव है ।]

अमोघ = वा० १६५ ।

[वि०] (स०) निष्पन्न न टानवाला । अमृत । लक्ष्य
परपहुचने वाला । अमृत न जान
वाला ।

अमोल = वा० ८१ १४८ १६८ । अ०, ७४ ।

[वि०] (हि०) अमूल्य ।

अम्लान = वा० १८ । वा १२ २५ ४० १६८,

[वि०] (स०) ०४६ । जो कुम्हनाया या उदाम न
हो । प्रसून । प्रमत्त ।

अमृङ्ग = वि०, ६५ ।

[वि०] (स० भा०) माए ।

अमरा = वा० कु० ११६ ।

[म० पु०] (स०) अमरानि । वनामा ।

अमराचित = वा० कु० १०५ ।

[वि०] (स०) न मीठा हुआ । जो बिना मीठ
मिठा है ।

अयि = वि०, १३२ ।

[अव्य०] (स०) स्त्री वा भवान, हे, मर, घरी ।

अयोध्या = अयोध्या कल्याण एव अयोध्याद्वार
मे वर्णित । हरिश्चन्द्र, हनुमान्, राम की
राजधानी । कुश द्वारा उद्धार । मरु
नदी के किनारे पजाबाद के निकट
अवस्थित तीर्थ ।

[अयोध्याद्वार—हनु कला १, किरण १०, वशात
६७ मे संवप्रथम प्रकाशित । चित्राधार
म संकलित प्रथम सम्करण म अयो
ध्याद्वार शीपक से और दूसरे तथा
तीसरे संस्करण म अयोध्या का उद्धार
शीपक मे (चित्राधार) तृतीय संस्
रण, पृष्ठ ५१ । ५७ छंदों में १० पृष्ठ
की लंबी रचना । प्रसादजी ने इस
रचना मे बालदास का अनुसरण किया
है और सुबुद्ध क १६वें सग का
आधार बनाया है क्योंकि बालमाकि
रामायण मे राजा कृपण द्वारा अयोध्या
के उराने की बात है और उत्तर बाह
के विषय मे ऐसा भी मा यता है कि
यह बाह का है । एमी स्थिति में सभ्य
है कि बालदास के समय तक यह बात
प्रचलित न हो । इसलिय प्रसादजी न
बालदास का आधार बनाना अभिप
क्षित समझा और कविता क पूर्व इन
मवय म टिप्पणा भी की है । महाराज
रामचंद्र क पुत्र कुशावती नरेश कुश का
अयोध्या की राज्यलक्ष्मी न स्वप्न मे
उनक पूर्वजा हरिश्चन्द्र, हनुमान् और राम
की नगरी अयोध्या का नागवर्गी कुमुदा
द्वारा हननगत करने की बात बना
उनक उद्धार क लिय उत्प्रेरित किया
और महाराज कुश न प्रसाद हान हो
अयोध्या का उद्धार किया और नाग
राज ने अनायास का उह भविष्य
कर दी । प्रबोधन की नमनता एव
कल्याण का माधुन नमना का इन
रचना मे है । महान क अमर
छंदों का प्रयाण इनमे है ।]

अरघ = चि०, ४५।

[म० पु०] सोनह प्रकार के उपचारा मे मे एक।
 (म० अघ) दवता के मामने फूल, अक्षत, जल
 गिराने का काय। महापुरुष के आग
 मन पर हाथ धुनाने के लिय दिया
 जानवाला जल। पूजा के लिय जल।
 मुल धान के लिय जल। अतिथि क
 मकार के लिय जल।

अरुण्य = क०, १६।

[म० पु०] (म०) वन। जंगल।

अरसोहें = चि०, ३।

[वि०] (हि०) आलस्यगुण। आलस्य भरा।

अरराय = का०, १६८।

[वि० वि०] (हि०) अरर शब्द करके विदीर्ण होने हुए।

अरविद = का० कु०, २६, ६७, ८३, ११२।

[सं० पु०] (म०) २, २१ २२, १४५। क०, परिषद।
 प्रे०, १०।

कमल। पद्म। सारस। तीर्था।

अरबिंदिकाससहित = चि०, १४५।

[वि०] कमल क विकास के साथ।

अरसी = चि०, २२।

[वि०] (हि०) तीसी।

अराएँ = का० २६४।

[सं० स्त्री०] (सं० अरा) पक्षि क मध्य चारो ओर लगी
 लकटियाँ।

अराति = का०, कु० ११२।

[सं० पु०] (म०) शत्रु। दुश्मन।

अराम = चि०, २५, १४५।

[म० पु०] (सं०) उद्यान, बाग।

अरामहिं = चि०, १५८।

[सं० पु०] (प्र० भा०) उद्यान बाग।

अराल = का, १६८।

[वि०, म० पु०] (सं०) टंग। कुटिल। मस्त हाथी। राल।

अरावली = सं०, १७।

[सं० पु०] राजस्थान का प्रसिद्ध पर्वत श्रृंखला
 जो तीन सौ मील तक फैली है।

अरि = क०, १५। चि०, २०, ५३, ६६, ६७,
 १०३, ११२।

[सं० पु०] (सं०) शत्रु दुश्मन।

अग्निगन = चि० ५०।

[सं० पु०] (प्र० भा०) शत्रुघ्न का ममूर। दुश्मन का दन।

अविर्दुर्ष = चि०, ६७।

[म० पु०] (सं०) शत्रु का घमंड।

अग्निमन = का० कु०, ११०।

[वि०] (सं०) शत्रु का दमन करनेवाला। शत्रु का
 नाश करनेवाला।

अरिशिर = चि० ६७।

[म० पु०] (सं०) शत्रु का सर बरी का कपाल।

अग्नि = का० कु० १०६। का ५, ६, ७,

[म०] ३६ ८४, १२७, १७७, १८४। ल०

(हि०) ११ १०, ५१।

विस्मयवोधक।

[सं० पु०] (सं० अरि) शत्रु।

[अरी वरुणा को शांत कट्टार—'जागरण', वष

१, राख १ माघ १६८८ वसंतपंचमी,

११ फरवरी १६३० मे मुद्रित।

सारनाथ मे मूलगयकुटी विहार के

उत्सव के अवसर पर कार्तिक म०

१६८८ का पठित और लहर मे पृष्ठ

१२ १३ पर मकलित। मूलगयकुटी

विहार अंतरराष्ट्रीय बौद्ध तीर्थ सारनाथ

का आकर्षण है। मूलगयकुटी विहार

की स्थापना के अवसर पर महा एक

अंतराष्ट्रीय समलन हुआ था उमा पर

इस स्थान की गरिमा का वाय करान-

वाला यह गान जिनमे बुद्ध की गरिमा

का भी आस्थान है और उन रोजहर

मे विश्व मानव के अभिप्राय की शता-

ब्दिया बाद इस नई प्रतिध्वनि का

विश्ववाणी के रूप मे प्रवर्तित करने-

वाला विहार बन यह मंगलकामना भी

है। द०—लहर।]

अरुची = चि०, १, ५७।

[वि०] (प्र० भा०) अनिच्छा। घृणा। नफरत।

अरुण = का०, ६७। क०, १०। का० कु०,

[सं० पु०] १०, ३६, ११८। का०, ६, ४६, ४७,

(सं०) ८३, ८६, १३५, १४६ १६७, १७५,

१७६, २२१, २६१, २८४। वि०,
१८, २१, २८, १५, ६३, १७०। ऋ०
पश्चिम, २१, २२, २५, ६६। प्रे०,
१०। ल०, १०, १५, ४१, ५६, ६०।
लाल। मूय। मूय का सारथी। गरुड।
मध्या की लालिमा। एव दानव।
प्रातः काल की लाली। कुसुम। मिदूर।
मजिष्ठा। पुत्राग वृद्ध। लाल कमल।
गाल मणि।

अरुण कपोल = ल०, ११।

[म० पु०] (स०) लाल गाल। रत्नाम कपोल।

अरुण किंशुक = वि० २१।

[स० ली०] (स०) लाल किरण। रक्त किरण।

अरुण यह मधुमय देश हमारा—पसाद मगीत में
पृष्ठ १०६ पर सजलित चन्द्रगुप्त नाटक
का एक मील जो श्रीस कुमारी कान्ते-
लिया के भारतीय छात्रपण की प्रथि
व्यक्ति का प्रतीक है। यहाँ की
गोष्ठति प्रकृति और जीवन का
सौंदर्य और मगनसौख्य हमस प्रकट
होता है। ६०—प्रसाद मगीत।

अरुण योवन = ऋ० ६७।

[म० पु०] (स०) लाल जवान। नई जवान।

अरुणसिद्धिभूषित = वि० २८।

[वि०] (हि०) लाल सिद्धर स मुमजित।

अरुणाचल = का०, २२२। ल०, २४।

[म० पु०] (म०) रत्नाचल। लाल प्रचरा।

अरुणाश्रित = वि०, २८।

[वि०] (म०) भरण का आश्रित। लालिमायुक्त।

अरुणिमा = वि०, १६८। ल०, १०, ६०, ७६।

[म० ली०] (म०) ललाई। लालिमा। मरुणता।

अरुणो = मा० ६१।

भरण का मवायन।

अरुणोदय = का०, ३१, ७७। म०, ३८। प्रे०

[म० पु०] १८ २६।

(म०) प्रातः काल। सुमोदय।

अरुनारो = वि०, १७८।

[वि०] (६० भा०) माल। रत्नाम।

अरे = का०, १०, २७, २८। का०, ७, २५,
[म०] (हि०) ११४, १२७, १४३, १६२ १७७,
१७८, २११, २१४ २२६, २५७।
वि०, १५२, ऋ०, ८३ का० कु०, ८८,
१२४। म०, ६। ल०, ५, ५७।
मबीधन। ह। ऐ। अयि।

[अरे आ गई है भली सी—६०—नहर, पृष्ठ
४०। सनत पतमन्मय जावन में भूलकर
कमत धाने पर बधि बहता है कि मरा
नधु प्राची में ठपा जवाकुसुम के पुष्प
भी खिलगी। जीवन का काटकाट स
सूखे तिनके हटेंगे और किमलय का
यह लघु मसार किमी की खेलेगा भा
नहीं। इसलिय कवि इस एकात भव
सृजन के सबध में बहता है—हम
एकात सृजन में कोई कुछ बाधा
मत बाला। जा कुछ अपने सुंदर से
है दे देने हो इनको।]

[अरे कहीं ऐसा है तुमने—६०—लहर, पृष्ठ ३८।
लहर का यह गीत रहस्यात्मक सत्य की
आर मकेत करता है। वह ओसा में
आकर ओसा बनकर डरता है। मने
हृदयाकाश में आग जनावर उन
गलाता है और उससे जावनरूपी
सध्या का नहलाकर रित्त मानस
रूपी सागर का भरता है। रजना के
लघु से लघु रूप में ससार ऊमा के
बन से तथा उसपर पड़नेवाले सधन
तुपावपात में भी वह धिया रहता है
पर वह जीव से डरता है और भत
में बधि बहता है—

मिद्धुर छला पर जा अपने
रहा दरता मुख का अपने
आज लगा है क्या वह अपने
देग मोल भरनवाल को।]

अर्चना = का० ६१। ऋ० ३६, ३७।

[म० ली०] (म०) पूजा। श्रद्धा की भावना। स्वागत
मन्त्रा करना।

[अर्चना—सर्वप्रथम 'इदु', का० ६, परवरी १११५ में

प्रकाशित घोर करना पृष्ठ ३६, पर
मकलित । प्रियतम का हृदयभवन म
लोट चले आने के लिये पंचम स्वर
म कवि ने अर्चना की है । यद्यपि वह
प्रियतम का नृत नहीं कर सका है
इसलिये भव कुछ समझाने बुझाने के
उपरात कवि कहता है कि इतने निदय
न बनो, अश्रुमयिनी का अभिप्रेत भी
तुम्हें नृतन कर सका फिर निराश मन
म जब कभी हमारा ध्यान आयेगा
ता तुम्हें दया आवेगी । फिर भी
अगर तुम क्षुब्ध हो ता भलोभाँति
सोच लो फिर जैसा मन आवे वैसा
करो । कविता अतुल्य है ।]

अर्चियाँ = का० ३२ ।

[म० ली०] (स० प्रवि) किरणें ।

अर्जुन = का० कु० ११५ । चि०, ६१ ।

[म० पु०] (स०) पाहु और कुनो के पुत्र । युधिष्ठिर
क एक भाई का नाम । पाँच पादक—
युधिष्ठिर भीम अर्जुन नकुल और
महर्देव म मे नृनाय अनय योद्धा
एव धनुर्धर । महाभारत म कृष्ण
स्वयं इनके सारथा बन थे । अश्वमेध
यज्ञ म अश्व का रक्षा करत अर्जुन
मणिक्कूट (मणिपुर) गए । वहाँ पुत्र
बभ्रुवान्न द्वारा क्षत्रियाविन समान
म प्राप्त होने पर अर्जुन ने उनकी
भजना की । अपनी मा उरूपा के
प्रास्ताह्न पर बभ्रुवाह्न ने अर्जुन म
मुद किया जिसम अर्जुन भुञ्जित
हुए । बभ्रुवाह्न की मा रणनेत्र म
आई और पिता पुत्र की यह स्थिति
देख विनाश करने लगी । फिर उरूवी
का भक्तना की गई और मजाक मणि
म अर्जुन का जाग्रत किया गया ।
२०—बभ्रुवाह्न मञ्जन ।

अर्थ = का०, ८७, ११०, १४६ । न० ३४ ।

[म० पु०] (म०) शत्रु का अभिप्राय मानो । प्रयाजन ।

हनु । वाम । वार पुण्यायों म एक ।
स्वाय । मू य । फन । परिणाम ।

अर्द्ध = न०, ७५ ।

[म० पु०] (म०) आधा ।

अर्ध = का० ३३ । ऋ०, २४ ।

[म० पु०] (म०) आधा ।

अर्धक्षेम = ऋ० ३८ ।

[म० पु०] (म०) आशिक कल्याण ।

अर्धांगिनी = का० २८ ।

[म० ली०] (स०) धर्मपत्नी । विवाहिता स्त्री ।

अर्पण = का०, १०५ । ऋ०, ममपण ।

[स० पु०] (स०) देना । सत्त्व त्याग । एकदम द देना ।

अर्पित = का०, २०, १२८ ।

[वि०] (स०) दिया हुआ । स्थापित । प्रदत्त ।

अर्बुदगिरि = म० का० ७ ।

[स० पु०] (स०) शत्रु नामक पर्वत जो राजस्थान मे है ।

अलक = का० १७६ । चि०, ५० ६६ १७५ ।

[म० पु०] ऋ० ३१ ।

(म०) मस्तक के इधर उधर लटकनवाना
गान । घुघराल वाल । कु-फ ।

अलकस्त्री = का० कु० १८ १८ । ल० १८ । का०

[म० ली०] २५२ ।

(म०) घुघराल वाला की पत्ति ।

अलकजाल = का० २४२ ।

[म० पु०] घुघराल वाला का समूह । वेशपाश ।

अलका = (म०) कुदर की नगरी ।

[अलका की जिस निरुल्ल निरहिणी—० प्रमाण
मगत । अज्ञानशु का एक छाया
वादी रमात्मक गीत । विरहक का
गीत । वह हम गान क मायम
म मल्लिका क प्रति अपने भावानेन
को छाया प्रतीका के मायम से व्यक्त
कर रहा है क्योंकि प्रतीत का प्रणय
पिपासा उसकी स्मृति म चपना सी
जग रही थी ।]

अलकें = का०, २५ । का०, १४२, १६८, २०१ ।

(श० भा०) अश्व का बहुवचन ।

अलर्का = प्रा०, ७७। का०, ३६ ६६ १०३
[स० पु०] १२५, १५६, २८६। ल०, १०, १८,
(स०) ७८। अलर्क वा बटुवन।

अलर्करु = ल०, ६०।
[स० पु०] (स०) अलता। आलता। महार।

अलर = ल०, २०।
[वि०] (हि०) अहश्य। न दीतनवाला। भगवान्।
अलग = प्रा०, २०। का० कु०, १०६ ११६।
[वि०] (हि०) का०, ११७, १६३, १६४, २६१।
ल० ७०
पृथक्। वारा। भिन्न। जुना। लटस्थ।
सुरक्षित।

अलग अलग = का० १८६।
[वि०] (हि०) भिन्न भिन्न।
अलगया = का०, १३६।
[वि०] (हि०) अलगाना का भूतवाल। पृथक् हुआ।
अलग हुआ।

अलनेली = प्रा० २४। वि० ५६।
[वि०] (हि०) मुदरी। अपूर्व सौंदर्यमयी।

अलभ्य = ल०, ७०, ७३।
[वि०] (म०) प्राप्ति के अयोग्य। न मिलने योग्य।
दुर्लभ।

अलम् = अ०, ८१।
[अ०] (स०) दम। पयास। पथ। निष्फल।

अलम्बुपा = का०, २६३।
[स० स्त्री०] गारुडगुहा। स्वर्ग का एक अप्सरा।
(म०) पुनः से रक्षने के लिय रक्षी बर्द्ध
रेखा। लज्जावती।

अलस = प्रा०, ६७। का० १८ ३५ १२०
[वि०] (म०) १० १६६। अ० २४। ल० २५
३१, ४४ ६१।
आलस्ययुक्त। आलसी।

अलस कटाक्ष = प्र० १८।
[म० पु०] आलस्ययुक्त कटाक्ष। मदभरे वटाक्ष।

अलसाई = प्रा०, २७। का० २५, ६३, ६७,
[वि०] ८८, २२१।
(अ० भा०) शिथिल। क्लान्त। आलसभरी।

अलाउद्दीन = ल०, ७७।
[म० पु०] ए। खिजरी सम्राट का नाम।

[अलाउद्दीन गिलगी—राज्यपाल १२८६-१३१५
ई०। मनु १२६६ ई०। म। अर्पण भाद
उत्तर रां श्रीर यजार उमरत गी की
गुजरात विजय के लिय भजा। गुजर
नरेश वरादेव मिह बघेला भागवर
अपना पुत्री दवल दवी क साथ दवगिरि
में छिप गया। उमकी राता वमना दवा
उनक हाथ पग गई श्रीर गिल्ली हरम
म भेजी गई। २०—प्रलय का छाया।]

अलान चक्र = का० २००।
[म० पु०] किमी अलता हुई तक्का का आनाश
(म०) मं गुमान से बना हुआ घेरा। बनेटी।

अलि = क० १६। वि०, १७१ १७५।
[स० पु०, स्त्री०] कायल। भौरा। बौवा। बिच्छू।
(स०) कुत्ता। सखा सहला।

अलि अलरा = प्रा० १२।
[म० पु०] भौरों क नमान काल वंश।

अलिअयली = का० कु० ६७। वि० २।
[स० स्त्री०] अमरो की पति। सतिमा का पात।

अलिकुल = प्रा० ३१।
[म० पु०] (म०) अमरो का कुल।

अलिकुलमिपित = वि० १४४।
[वि०] (अ० भा०) अमरो क समूह द्वारा मर्दित।

अलिगन = का० कु० ३६।
[म० पु०] (हि०) भार।

अलिन = वि० १६७।
[म० पु०] (अ० भा०) भौर। अलि का बहुवचन।

अलिपुज = का० कु० १४। वि० १४।
[म० पु०] (स०) अमरो का झुंड।

अलियों = प्रा०, ३०। अ० १७।
[म० पु०] (हि०) भौरों।

अलिवृद्ध = प्र० १४।
[म० पु०] (स०) अमरो का समूह।

अलसम = वि०, १४।
[वि०] (अ० भा०) भौरों के समान।

अली = चि०, ६।

[म० स्त्री०] (हि०) मली, महीनी। पत्ति। (पुं०) भौरा।

[अली ने क्यों भला अवहेला की—अज्ञानशत्रु का चार पत्तिया का एक त्रुषु गीत। प्रसाद मगत मे पृ० ४४ पर सरलित। २० 'प्रसाद समीत'।]

अलीक = का०, २५१।

[पि०] (मं०) अलस्य। झूठा। बमिर पर का।

अलीगढ़ = का० कु०, १३।

[स० पु०] अमरा का समूह। मारा का दन।

अलीक्रीक = का० कु० ५६। चि०, ३६।

[वि०] अयुक्। आश्रयमय। अभूतपूर्व। अमा (म०) माय। अमाधारण।

अल्पना = चि०, १६६।

[स० स्त्री०] (मं०) सामी। आगम पुरने का कला।

अल्हड = ल०, २३।

[पि०] (हि०) अल्पवयस्क। कमसिन। अनुभवहीन।

अनकाश = मा०, १३, ४१, ४८। का०, १२०

[म० पु०] १७६ २३५, २४६। फ०, २१ ३३, ४३।

(मं०) छुड़ा। विश्राम।

अनकाशागत = का० कु०, ६३।

[पि०] (स०) अवकाश स सबद्ध। छुट्टी में सबद्ध।

अनगत = चि०, २५।

[वि०] (स०) नात। जाना गया।

अनगाहिते = का०, कु०, २७ ८४।

[अ० क्रि०] (हि०) नहाते। अच्छी प्रकार समझते।

अनगाहिन = प्रे० १४।

[म० पु०] (सं०) नहान। समझ। पठ।

अवगाहिना = का० कु०, ८४।

[क्रि०] (हि०) नहाना। धुलाना।

अवगुठन = का० ६५, ६८। आ०, ६८।

[स० पु०] (सं०) घुल।

अनचय = चि०, ७०॥ प्रे०, ११।

[स० पु०] (मं०) फूल आदि कुत कर इकट्ठा करना।

अवज्ञा = चि०, ७४, ६६।

[स० स्त्री०] (सं०) अपमान। तिरस्कार। माना या नियम का उल्लंघन करना।

अनृतार = का० कु०, ६४।

[स० पु०] प्रादुर्भाव। अवतरण। उतरना। ज म लेना। शरीर धारण करना।

(मं०) अवधराज = चि०, ५०, ५३, ५४।

[म० पु०] राज्य, जहाँ बंध का अभाव हो। कांजल देश। अयोध्या। अयोध्या का राजा।

[अनृतार—३० अयोध्याद्वार। अवधराज की शोभा देखकर अयोध्या भी मुग्ध हो जानी थी। हनुमान् रघु दिलीप, आदि ने जिसका काति पताका फरायी और पालन किया वही नगरी नागकुंज क अयोध्या ही गई और उनकी विलासता वहाँ व्याप्त गई है। कुश सुम उमका उद्धार करा।]

अनधि = चि० ५६। ल० १५, २६।

[म० स्त्री०] (मं०) साधा। हृद। काल। मनोयोग। अपा दान। (अन्यथ) तब, पयत।

अनत = का०, २३४ २३७।

[पि०] (सं०) गिरा हुआ। पतित। मुका हुआ।

अवनति = म०, २।

[म० स्त्री०] (सं०) पतन। गिरावट। नीचे झुटना।

अवनति करण = का०, २३६।

[म० पु०] नीचे झुटना। गिराना।

अवनि = चि०, ५३, १८६। ल०, १४।

[स० स्त्री०] (सं०) भूमि। पृथिवी।

अनभूत = ल०, ६३।

[म० पु०] अन के अत म किया जानेवाला स्नान। वह भेष कम जिसके करने का विधान मुख्य यज्ञ के समाप्त होने पर है।

अनयव = का०, ४, १४, १०४, २७७, २८७।

[सं० पु०] (मं०) आग। अग्न। हिंसा।

अवराधि = चि०, २६।

[क्रि० अ०] (प्र० भा०) पूजकर।

अनरुद्ध = का०, १४५।

[पि०] (म०) मवा हुआ । गतिविहीन । मवा हुआ ।

अपरेखो = चि०, २७ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) दखा । चित्रित करने । मोचो । कल्पना करो । अनुमान करो ।

अपरैरयो = चि०, ७४ ।

[क्रि०] देखा । चित्रित किया । साचा । कल्पना (प्र० भा०) किया । अनुमान किया ।

अपलथ = क०, २८ । का० ५६ १३५ १६८

[म० पु०] १७० २१३, २१८ २१६ २६ ।

(म०) म० १२ । ल० ७४ ।

प्राथम्य । ठिकाना । आधार । महारा ।

अपलनन = का० २६ ६८, १२१ २३७ ।

[म० पु०] प्रे० १८ ।

(म०) महारा आश्रय आधार ठिकाना ।

अपलवित = का० ७४ ।

[वि०] हि०) महारा लिया हुआ । आश्रित । निभर ।

अपली = चि० ६३ ७१ ७२, ६३ १४७

[म० भा०] (हि०) १७४ । पक्ति । समूह ।

अपलीन = चि० ६८ ।

[वि०] (म०) छिया हुआ । नाव धमा हुआ ।

अवशिष्ट = का० ३२, १०३ १६७ । म० ।

[वि०] (स०) बचा हुआ । शेष पड़ा हुआ ।

अवशेष = चि० १७० ।

[म० पु०] (म०) बचम न बचा हुआ । शेष ।

अवश्य = म० १६ ।

[वि० भा०] (म०) जरूर ।

अवसर = क० ११ । का० कु० ३३ ३४, ४८ ।

[म० पु०] का० २०० । चि० १० १८ ६४ ।

(स०) समय । काल । अवकाश । मौका । फुरत । मयाग ।

अवसाद = का० ६, १८ ५५ ७० ८२ १२६

[म० पु०] २०६ । म० ३५ । ल० ५६ । २७ ।

(स०) नाग । क्षय । विपाद । पीनता । बका बट । रज ।

अवसाद धोर = का० १३६ ।

[पुन० क्रि०] (हि०) दुख या चिन्ता को दूर करके ।

अपसान्मयो = का०, १०३ ।

[वि०] (हि०) दुःखमयी । विनामया ।

अवसान = का० २ । म० ३४ ८८ ।

[म० पु०] (म०) समाप्ति । अन्तिम स्थिति । अन्त समय ।

अवस्था = का० २०० । प्रे० ४, ६, ६ ।

[म० ली०] (म०) दशा । स्थिति ।

अवहेलना = ल० ७६ ।

[म० ली०] (म०) अपमान । निरस्कार ।

अवहेलि = चि० ५६ १४२ १४३ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) निरस्कार करने । अपमान करने ।

अवहेली = चि० ४६ ।

(वि०) (प्र० भा०) निरस्कार अपमान करनेवाला ।

अवाध का०, १५७ २०८ ।

[म पु] (म०) निरंतर । बिना बाधा के । बराबर ।

अवाध = म० २२ ।

[वि] न रोका जाने योग्य । निमुक्त । रोकने से न माननेवाला ।

(म०) अविच्छिन्न = का० कु० ८३ । चि० ४६ ।

[वि०] गया का त्याग । बिना उलटफेर का ।

(म०) पूरा, पूरा ।

अविच्छिन्न = का० ६८ । का० १६१ २२० ।

[वि०] चि० ३३ ।

(म०) स्थिर । अटल । अचल ।

अविज्ञात = का०, २६६ ।

[वि०] (म०) न जाना हुआ । न समझा हुआ ।

अविनाशी = का० कु० ६०, ८१ ।

[वि०] जा ब्रह्मा नष्ट न हो । निर्या । मर्णा

(स०) एकरस रहनेवाला । अक्षर ।

अविनाश = का० १८६ ।

[वि०] अविनाश उद्भूत उच्छिन्न ।

अविरत = का० कु० १३ । का०, ८१ १७० ।

[म० पु०] विराम का अभाव । निरंतर लगातार

अविरल = का० कु०, १३, ४३ । का०, २३४,

[वि०] २४०, २४५ २६४ २७३, २७८ ।
 (म०) चि०, ५५ । अ०, २६, ७० ।
 मिता हमा । अग्नि । घना ।

अग्निम्न = का० १ ५ ।

[वि०] (स०) अग्नित्तुल । जा प्रतिबुल न हा ।

अग्निश्वास = अ० ८० ।

[स० पु०] (स०) विश्वास वा अभाव ।

अग्न्यस्त = का०, ७२, ८० । चि०, ७२ ।

[स० पु०] (म०) विष्णु । वायव्य । शिव ।

[वि०] जा स्पष्ट न हा । जा प्रत्यक्ष न हा ।

अग्न्यस्थित = (स०) जा व्यवस्थित न हा ।

[अ-ग्न्यस्थित—माधुरी, वप २ २४१ मर्या ५,
 मन् १८०० २४ में सबप्रथम प्रकाशित
 और भरना' म पृष्ठ १७ पर मर
 नित कविता । मानम को जबजब कवि
 शात करने का यत्न करता है ता मी
 हलवन विश्व का नारव निजन में हाती
 है कि कवि भ्रात होकर विश्व के
 कुमुमित कानन में भटकने लगता
 है । और विश्वपति के आगम मे
 विचरना बढ़ती जाती है जब वह
 बलरिया से दान लेने लगता है और
 कवि कहता है—

जग करता है कवि प्रार्थना,
 कर सकलित विचार,
 मभी कामना के मूचुर की ।
 हा जाती भनकार,
 और यह मन चमकृत हो जाता है ।]

अशानीरी = का० २६४ ।

[वि०] (म०) आकार या शरीररहित । निराकार ।
 भाट्टविहीन ।

अशात = का०, ८५ ६२, ६३, १४४ १५८,
 [वि०] (म०) १६०, १६१, १६७, २४०, २४१ ।
 जो शात न हा । कचल ।

अशुद्ध = का० १६६ ।

[वि०] (स०) अपवित्र । जो शुद्ध न हा । जा मदा हा ।

अशोष = का०, १४ ।

[म० पु०] (स०) पूरा । समूचा । गैर रहित । अतहीन ।
 अतत । अपार ।

अशोक = चि०, ५७, १४० १५४, १५५ ।

[म० पु०] आवरहित । एक वृक्ष जिसकी पत्तिया
 आम की पत्तिया के समान लंबी
 तथा लटकती होती हैं । पारा ।
 एव भारतीय प्रसिद्ध सम्राट का
 नाम जिन समस्त एशिया में बोद्ध
 धर्म का प्रचार किया । राज्यकाल
 २७६ ई० पूर्व से २३६ ई० पूर्व ।
 शासनमूर्ध प्रहण करने का नगमग दग
 कप बाद रणिय का युद्ध । हम युद्ध के
 भयकर हिंसा के परिणाम न उस
 बोद्ध धर्म का अनुगामी बना दिया ।
 वह धर्मज्ञान और लारजमी महान्
 सम्राट का रूप में विश्व का इतिहास में
 प्रसिद्ध है ।

[अशोक की चिता—०—लहर पृष्ठ ४६ । निवार
 छद म 'अशोक की चिता' कलिंगविजय
 में उत्पन्न पीडा को आधार बनाकर
 लिखी गई है । इसमें विजय पराजय
 के दुःख की भवना का गद है, तथा
 मानव में मानव का प्रति स्नेह की
 याचना की गई है । जग का वैभव
 की मधुशाना में पागल बताने उठने
 और गिरनेवाला कहा गया है तथा
 इस क्षणिक रागरग के रूप में
 मायता दी गई है । इस रचना द्वारा
 भुवती वसुधा और सपन जग पर स्नेह
 का कल्याण बरमाड गद है और मनुष्य
 की मंगलकामना का गद है ।]

अश्रात = का० पु०, ११६ । का०, ४७, ८१,
 [वि०] (म०) ६१ । अ०, २८, ५६, ७१, ७२ ।
 ल०, २१ ।

अम रहित । न यका मादा ।

अश्रु = का० पु०, ४५ ४६, ६८ । का०,
 [स० पु०] १७७ । चि०, ५६, ७३ । प्र०, २० ।

अश्रुकाण

(मं०)

नेत्र, जल, घातू। घातू से निननने
याला जल। वायव्य के नव गात्विक
घनुभावा म एर घनुभावा।

अश्रुकाण = बा० कु०, २६। प्र० ४०।
[मं० ली०] (मं०) घातू की सू०।

अश्रुजल = बा० १०६। प्र० २२।
[मं० पु०] (मं०) घातू का जल। घथुगारि। घातू।

अश्रुभरे = बि० ११७।
(वि० हि०) घातू भर।
अश्रुमय = बा० १३।

[वि०] (मं०) घातू न भरा हुआ।
अश्रुमय = बा० ७५।

[वि०] (मं०) घातू से भरा हुआ।
अश्रुगारि = बि० ६।

[मं० पु०] (मं०) घातू का वाता। घातू।
अश्रुसर = बा० २७।

[मं० पु०] (मं०) घातू का साराव।
अश्रव = बा० कु० ४४ ७० १७५। बि० २
६४। मं०।

[मं० पु०] (मं०) घाहा। घुरग। वाजि।
अश्रमी = मं० ७२, ८१। प्र० ११।

[मं० ली०] (मं०) घातवीं। घातवीं तिथि। घृष्ण का
ज मन्त्रि।

अश्रुमूर्ति = [मं० पु०] (मं०) शिव।
[इडु बला २, निराल ३ घातिवन
६७ में मयप्रया प्रवागित कविता।
चित्राधार में 'वराग' के अतगत मक
लित। (उताय मस्करण, गृष्ठ १४१)।
६ छोटे में परमात्मा व स्वप्न का
स्थिति कवि ने राजमाया में बताइ है।
घात छदा मे उनकी महिमा है घोर नव
मे उपसहार इस प्रकार है —
बगुनरा धनु, घनजयादि में।
विहायसी, पौन, दिनेग भादि मे।
शशाक घी सज्जन में मुभावती।
प्रमो तिहारी, मुखमा प्रभावती।

असरय = बा० १६ २४२ २६१। बि०
[वि०] १४०। मं०, ६८। ल०, ११।

(मं०)

असतोप = मं०, ४१।
[मं० पु०] (मं०) मताप का प्रभाव। प्रथम। घट्टमि।

मन्यारहि। घना। घगणि।
प्रथम।

मं०, ४१।
मताप का प्रभाव। प्रथम। घट्टमि।

प्रथम नता।
[माधुरा] उप ७ गड २ मन्
१६७४ म मयप्रथम प्रवागित घोर
भरनाम गृठ ४१ पर मन्त्रित बनिता।
विश्व का गरिमा का मार त्रिपिमा का
ध्यापार हा जाता है घोर मुतामय
उपहार अथुनगों का हार बन जाता
भर का सार त्रिपिमा मिषु मा लम
है विश्व पर तर गया बधाव जब कवि
का मताप हा नदी है ता इसम सुहार
बसा गता। म भरता।]

असयत = बि० १।
[वि०] (मं०) मयम रहित। उड्ड।

अस = बि० २२ ३३ १०७।
[मन् वि०] (प्र० मा०) मया। घट। इस प्रकार का।

असत् = बा० २४१।
[वि०] (मं०) प्रमत्य। मिथ्या। सत्य रहित।

असत्य = बा०, १४।
[वि०] (मं०) मिथ्या। झूठ।

असफल = बा०, ७, ४३ १२३ १८६।
[वि०] (मं०) न० ८०।

असफलता = बा० १०३।
[वि०] (मं०) सफलता का प्रभाव।

असफलताओं = बा०, ३७ ६४, १२१, १४८।
[मं० आ०] (हि०) प्रसिद्धियों, नाकामयाविया।

असप्रय = बि० ८४।
[वि०] (मं०) घमिष्ट। गवार। उज्ज्वल।

असमय = बा० ७६। कुममय।
[मं० पु०] (उं) घुरे समय।

असल = प्र० ६। मं०, २८।
[वि०] (हि०) मन्वा। खरा। अष्ट। शुद्ध। उज्ज्वल।

असवारी = चि०, ७२ ।

[सं० गी०] यह चीज जिनपर सवार हा । पालकी,
(हि०) नालकी ।

असहाय = का० २५, २८ । का०, ४०, ४८, ५६,
[वि०] (सं०) ८२, ११६ ।

सहारा रहित । निरवलंब । अनाथ ।

असीम = श्री०, ७, ३४ ४८ । का० कु० ७ ।
[वि०] का०, २६ १६५, १५७, १८०,
(सं०) १८८, २०६, २४५, २६० । चि०, ५६,
१३८ । का०, २० ।

सीमा रहित । अनंत । अवधिरहित ।

असीस = चि०, १५२ ।

[सं० पु०] (ग०भा०) आशीर्वाद, दुआ ।

असुर = का० ५६, १११, ११४, २०१ ।

[सं० पु०] (सं०) दाय, दानय । राक्षस । देवा व शत्रु ।

असुरों = का०, १६१ ।

[सं० पु०] (सं०) राक्षसा ।

अस्त = का०, ८४ ८८, २६१ । चि०, १०१ ।
[वि०] (सं०) ऋ०, ८५ । ल० ४४ ।

हूबा हुआ । समाप्त । मृत । स्वप्न ।
गुप्त । गुप्त । छिपा हुआ ।

अस्तधाम = चि०, ६६ ।

[वि०] (सं०) अस्तावन । यमभूमि । मृत्यु का घर ।

अस्त व्यस्त = चि०, १४ । ऋ०, २२, २४, २४ ।
[वि०] (सं०) अव्यवस्थित, बिखरा हुआ । परधान ।
चितित ।

अस्ताचल = श्री० ५६ । प्रे०, ५ ।

[सं० पु०] पश्चिमाचल पर्वत जिनका पीछे मृग
(सं०) भस्त होना है ।

[अस्ताचल पर युवती सध्या—]—प्रगाढ़ सगत
पृष्ठ १२२ । छल स्वामिनी का गीत ।
शकराज के दुग म ननकिया द्वारा माया
जानवाला एक माणिक्य गत जिनका
सार निम्नांकित चार पक्तियां म इस
प्रकार है—

भर उठी प्यालियां मुमनों ने सौरभ मकर मिलाया है ।
कामिनियां न अनुराग नर अघरा म उठ लगानी है ।
यमुधा मदमाती हृद उभर आवाश लगा दला भुवन ।
मद भूम रह अपने मुम म मुमन क्या बाधा डाली है ।]

अस्ति नास्ति का० २७० ।

[क्रि० वि०] (सं०) सत्ता या अभाव ।

अस्तित्व = का० कु०, ७८ । का० २६, ३३,
[सं० पु०] ७२, १४०, १४१, १५७ । प्रे० १३ ।

(सं०) सत्ता का भाव । विद्यमानता मौजूदगी ।

अस्तु = का०, ३०, ३१ । चि०, ६४ ।

[क्रि० वि०] (सं०) जा हा । सत्य । भरा ।

अस्त्र = का०, १४६, २०० । ऋ०, ८८ ।

[सं० पु०] ल०, ६५ ।

(सं०) पेंकुर चलाया जानवाला हथियार ।
वह हथियार जिसका द्वारा बर्द वस्तु
केंरी जाय, जैसे बंदक, ताय ।

अस्थि = का०, ११६ । ल०, ५७ ।

[सं० ला०] (सं०) हड्डी ।

अस्थिर = का० ३३, २८१ । ल० ४६ ।

[वि०] (सं०) जा स्थिर न हा । चलन । अवाडोल ।

अस्पष्ट = का०, ६४ १७५ ।

[वि०] (सं०) जा स्पष्ट न हा । जो प्रकट न हो ।

अस्पृष्ट = का०, १०५ । चि०, १६६ ।

[वि०] (सं०) विरल । अत्यक्त । जो ग्राह्य न हा ।
गूँ । जटिल, दु सह ।

अहकार = का०, कु० ८१ ।

[सं० पु०] (सं०) घमंड, अभिमान, गहर ।

अहता = का०, १६१, १६५ ।

[सं०] (सं०) अह का भाव ।

अहा, अहा ! = का०, कु०, १०३ । का०, ८ । का०
[अ०] कु०, १५, ५३, १०८ । ऋ०, १८ ।
प्रे० २ ।

आश्चर्य भूचक उद्गार ।

अहेर = का०, ११० । चि०, ६ ।

[सं० पु०] (सं०) शिकार । मृगया ।

अहेरी = का०, १४२ ।

[सं० पु०] (सं०) शिकारी । आघटक ।

अर्ध

अर्ध = पि०, १५, २६, १७, ७२, ७३, ६१
[मि०] १०३, १७३।
(२० भा०) है।

अर्धो = व० १६, १७ २८। वा० कु० २०
[म०] (म०) २८ ३६ ४१, ७५, ८३। बि०,
११ ७२ ७३ १५२, १५६ १५७,
१७२, १८३ १८४। म० ७३।
म०, ४ ६। म० १६ १७।

एक अथवा जिनका प्रमाण क्या सवा
धन के समान और क्या बरखा मन्,
प्रगता एव और विन्मय प्रवट करने
के लिये लिया जाता है। हाय। घर।
वाह वाह। शाबास।

[अर्धो नित प्रेम करत दिन गयो—दुहु बला ४
किरण ६ जून सन् १६१३ म सप्तप्रथम
प्रेमापासम गोपक से प्रवाहित।
मकरद बिंदु शार्पक से चित्राधार में
पृष्ठ १८४ पर मकलित। २०—मकरद
विष्ट प्रमापानम और चित्राधार।]
ल० ७८।

अर्धभाग्य = भाग्यशाली लुगविस्मृत।
[वि] (हि०) भाग्यशाली लुगविस्मृत।

अर्धो = बि० ५०।

[क्रि०] प्र० भा०) है।

अर्धो = बि० ३१ १४१ १७१ १८६।
[क्रि०] है।

अर्ध = क०, २६। वा० २५।
[क्रि०] (हि०) आशा।

अर्ध = आ० २० ३० ३६ ४६। क०
[म० स्त्री] १०। २० कु० ६० १०७। वा०
(हि०) ५१ ६६ ७८ ८५, ८६ ८८ २१८,
२६१। म० १६ ३२। ल०, ३२
६३।
नत्र। चल।

[अर्धो वचाकर न मिरकिरा कर दो—बाजू
की बेला जोपक से माधुरी वष २,

गड २, गन् १६२४, म० ५ मे
प्रवाणि तथा भरना पृष्ठ २२ पर
मकलित। २० बाजू का वचा, धोर
भरना।]

अर्धमिचोनी (मीडा) = प्र०, १७।
[म० पु०] (हि०)

उडवा का गग मन तिमर एव उडा
तिमी दूगर लखे रो घान उद कर
दना है धोर बाबा उडा दूगर उवर
खिलन है। घान मुद नटव का उह
कूट कर छूना पटा है।

= बि०, ६२।

घोल का बहुवचन।

= घा०, ५७, ६५। वा०, १७ ३५ ६३,
६७, २१५, २२१, २६४। बि०, ५६।
म०, २३, ४०। म०, ६।
घोल का बहुवचन।

= घा० ५३ ५८ ६८। वा० कु०,
= ७७। वा०, ६४ ६५ ६६ ८८,
६७ १०१, १०४, १२२ १४२ १५१
१८४, २१६। म०, २१, ३६, ४४,
४६, ४७ ४८ ६१। ल० १६ २०
२२ २३ २७ ३७ ३८ ५२।
घोल का बहुवचन।

[अर्धो से अलख जगाने को—सहर पृष्ठ ३० पर
सबलिन बारह पक्ति की कविता। इसका
भाव है कि आज घालो से अलख
जगाने के लिये भरवी आई है। उनकी
आँखों में उषा भी प्रगम (बितनी ?)
ललित भरा हुई है। मनम पवन
दिगत से कहता है कि रात मधुवन
मे घूम आइ है और यह प्राची का
राजभरा बितवन है और आनन्दपूर्ण
रजनी का प्रगडा है और—उहरी मे
यह क्लाडा बजल सागर का उदलित
अवन। है पाउ रहा घाँसे छन छन,
किमत यह चोट नगाई है। यह
रहस्यमयी गीत है जिसमें भरवी

का स्वर ही नहीं स्पष्टि हो सुवर (हि०)
हूँ है।

आँगन = घां, १६ ५१ ५१। वा०, २६२।
[म० पु०] (हि०) = अ० २८। प्र० १२।

पर व अदर वा महन। अजिर।
चोक। अयना।

आँच = वा० कु० ५१। अ, ३४।
[म० वा०] (हि०) जि०, २४।

घमक। अग्नि की चपट। गमा।
उगना।

आतर्किक = वा० कु० १५, १६ २६ ५५, १२३
[वि] (म०) १२५। वि, १८ २००। प्र० २४।
मीनरा। अदर का।

आदोलन = वा०, १६८, १८६।
[म० पु०] (म०) हलचन। घूम। उबल पुबल।

आदोलन = ल०, ६२।
[वि०] (म०) हलचन भरा। भावा लाना हूँ।

आँवी = वा०, २२३ २२८। वि०, १६। अ०,
[म० स्त्री०] (हि०) ५२, ८४। न०, १६, ७१, ७७।

बन्त गग का हूँ जिमम दूना धून
उत्ता है कि चारा आर अभियाना
छा जाना है।

आँसुओं = (हि०) आँसू का बहुवचन।

[आँसुआँ के प्रति—वागी, वप २ अक्ष १२,
जुनाई १६३३ म प्रकाशित। आँसू
का नृत्य सस्वरण म समाहित कुछ
छा जो दूसर सस्वरण म नहीं हैं।
२०—आँसू।]

आँसुन = (अ० ना०) आँसुआँ द्वारा।

[आँसुन अन्दात—इदु कला ५ किरण ५ मई
१६१४ म मकरन्दिदु शोषक म
प्रकाशित। चिन्ताधार मे उसी शीर्षक
क अतगत पृष्ठ १८० पर सक्तित।
८०—चिन्ताधार और मकरन्दिदु।]

आँसू = घां, ११ १२, १३, ३२, ५३, ७८
[म० पु०] (हि०) ७६। का० कु०, २३, ३१। का०,

१०६, १६४, १७८। अ० २१ ३१,
४६। प्र० ११। न०, २४ ३०,
३० ३८, ४२ ४८।

आँव का घाना, अथु घाँव का जन।

[आँसू प्रमाद को यह गमावक नाव्यहृति है,
जिमकी आर मक्का 'यान सहज ही
साहज हा जाना है। 'आँसू' का प्रथम
सस्वरण विज्रमाय म० १८८२ म
गाहिय मन्, बिरगान, भाभी स
प्रकाशित हूँ आर उमका द्वितीय
परिवर्द्धित मनाधिन सस्वरण साठ
वर्षा पश्चात् भारता भंडार, नाच
प्रेम प्रयास स निकता। प्रथम सस्वरण
म द्वितीय सस्वरण परिवर्द्धित है,
इसका काव्यक्रम परिवर्द्धित है एव
इसमे अन्तर स्थाना पर नवीन पद्य है।
सीमर सस्वरण म जा प्रमादजी की
मुमु व उपरात हूँ कुछ नवीन
समाधान है। 'आँसू' शृंगार का रचना
है। शृंगार का दा पत्न है, मिनन
श्री विवाह। 'आँसू' का सवय वियोग
शृंगार स है।

प्रसादकाव्य जहाँ सावमगन व लिय सचेष्ट है,
वही वह आत्मपरक भावा को व्यक्त
करने के लिय कम सवदनशील नहीं।
व्यक्ति की आत्मपरक अनुभूति जीवन
म अधिक तीव्र हूँ करती है। अपने
पूर्ववर्ती काव्य म कवि अपने प्रेम के
लिय विह्वल है। अनुभव, विनय, विवक
व्याख्या, उपासना, सभा कुछ एक एक
कर समाप्त हा गए हैं, पर प्रेम की
निन्दुरता उनके प्रति इतनी भयकर हा
गद है कि दुर्दिन का एकान बेला म
स्वय 'आँसू' छत्र पडन है।

माच, मन् १६३२ म 'आँसू' के सशोधनवाले नवीन
अक्ष पत्र पत्रिकाया म प्रकाशित हूँ।
वन्ना की भूमि निर्दिष्ट करने के लिय,
तथा एक समकित प्रभाव का सृष्टि के

जिसे प्रमादजी ने गंगा बिगा हो
बयोवि प्रसादजी दुराग्रह पर जमे
रहनेवासी भय जहना के पक्षपाती
नहीं थे। व अपनी रचनाओं के बराबर
प्रिय गुणों के बराबर जाव थे।

श्रीमू' त वतमान सस्वरण मे विश्वजय पाडा लय
तरंगमयी विभिन्न भाषा का विभिन्न
क्रमो मे वगन है। प्रारम्भ म कवि
कल्याणकान्त हृदय म विष्णु रामिनी
वजने श्रीर असीम वेदना म हाहाकार
स्वरो मे गरजने की बात का जिनासा
भरी वाणी स पृष्ठता है। साथ ही वह
अतीत की बातों की स्मृति भागमन,
विनाशाता दृष्ट पमली मानम की प्रति
ध्वनि के प्रत्यावतन तथा चेतना की
तरंगा की नई हितार की ओर भी
जिनासा भरी दृष्टि स दलता है।

जिनासा के पश्चात् वतमान स्थिति के मूल म
उपस्थित जीवन की अभिव्यक्ति है।
इस अभिव्यक्ति की उपनय के रूप
मे महाभिलन के नेप चिह्न, अर्थात् कवि
का स्मृतिमा की बस्ती उम हृदय म
दाख पडती है और ऐसी प्रत्येक स्मृति
अब इस उवागमयी जलन के लिये
स्फुलिंग है। इन नवस्फुलिंगों से
हृदय म शीतल ज्वाला जलती है।
श्रीमू' वहते हैं और श्रीमू' विरह ज्वाला
का प्रज्वलित करने मे इधन का काम
करते हैं। सारा सुख सपना हो जाता
है। जीवन निरर्थक जान पडता है
और कवि अनुभूति करता है, मन
बहलाने की वह प्रणयवीणा जो कभी
मादक और मोहमयी थी, आज वही
प्रेम की पीडा बनकर हृदय हिला
दती है। दुदिन म रा रो कर सिसक
कर श्रीमू' से आ अभिन करण अपना
बहानी कवि कहता है। अपने इस
मिथ्या जग के विरगुदर और सत्य
प्रियतम के प्रथम मादक दशन की बात
आ वह चहता है। उम समय उमका

प्रियतम उमे सुग गुग से परिवित
गंगा था और उम ममय मधु का राखा
मुसबरा रही था। जावन की मूरी
पुनबारी म कवि का प्रियतम नवमुम
निष्ठाकर निमग्न गा गायी और
उमकी मुश्रिबि औता म समा गई।
उमग वेदन रूप का मय नहीं, कवि
व मन का आ मय था क्याकि उमकी
कमनीयता बना की मुपमा कवि का
अति प्यारी गयी।

दुगने पश्चात् कवि अपने प्रियतम के मुदर मुख,
मादक नेत्र, अजनरखा के सौन्दर्य,
बरीनीयपी बमान, लाली की स्मिति
रखा, भी क बल, माती से दाँत, वान,
शरीर, मन, हृदय, अन्तर्, तथा तजज
निल आवरण का मादक बर्णन
करता है। फिर प्रणय के हावभावों
एव व्यापारों का—चुपन, मयरा का
मुदरी, परिभन श्रमसाकर, मिलनकुज
म शिथिल बोदनी का शयन, प्रादि
वगन बत करके चहता है कि प्रियतम
मानम का सब रस पीकर तुमने मुला
प्याला चुका दो और बिकसे स्नेह
सराज की मुखा दिया।

वह प्रकृति के विभिन्न चित्रा में हृदय का पीडा
का साक्षात्कार करता है और उनकी
मिलन के समय के दृश्या स तुलना
करता है। मादकता का नया उत्तर
गया है और उस वनवभाभी की चर्चा
बिन करता है जो उसके प्रियतम
छोटकर बले गए। अब जब प्रियतम
का स्पष्टकर शीतल समीर माता
है तो कवि सिहर उठता है और पुन
निराशा क श्रीमू' वह जात है। उस
अब प्रतीक्षा व्यय लगती है और वह
मान बठा है कि दुःख ही केवल मेरा
एक मात्र सहारा है। वह लाचार हो
जाता है पर उलाहता देना अब भी
उह नहीं भूलता।

उसमे कोई शक्ति और सहारा तोप नहीं रह गया है।

श्रीमू नद मे उसका हृदय मग्म्वल डूब गया है, वह प्रत्यावर्तन की बात भी करता है। पर उम पथ मे पदचिह्न का भी तिरोधान हो चुका है। गेयु का प्रेम श्रीमू का धार म कवि की नोका लिए बना जा रहा है, पर प्रियतम का कहा न कही पाणि की बात को भी कवि तिलाजलि नहीं दे पाता। पुन अनुनय विनय व आचार पर कवि प्रेम की दाहाई देने लगता है। बार बार पढनेवाली घाट उम दाग निश बना देती है और वह कह उठता है कि मानव जीवन का बेगी पर विरह मिलन का परिणय हो दुख मुप दाना उम अवसर पर नाचग वह विरह मिलन की आँख और मन का खेन मानन लगता है।

फिर वह आश्रयामन के छन की बात और प्रियतम के भागन की बात प्रियतम का सवनाम में पुकारकर कहता है और रटे हुए व मनावन की बात भा करता है। जबतक दुख मुप का मेल न हो तबतक समस्त सृष्टि मे वदना का प्रलय छा जाय, ऐसी वह कल्पना भी करता है कयाकि उमके लिये प्रियतम के बिना सारी सृष्टि सूनी है।

वह मोचता है कि मेरे दुख स दुकी होकर प्रियतम आण्णि विन्तु प्रतीक्षा इस जिनामा की कला कहानी का अंत कर देता है।

वह इस अंत का विस्मृति की समाधि पर धक्के हुए सुप के सोन की कामना करता है ताकि वह विपत्ति स भुक्त हो सके।

इसके बाद तद्वर्जित परवशता कं ध्यान ज्ञान का आश्रयान करता है और उमे अपमान का भी बोध होता है, फिर भी वह स्वय को परित्याप देता है और पुन अनुनय करता है कि नई वरमात होने दो और कसिया का खिल जान दो। प्रकृति

के नियम की दुर्गार देता है अथाव विरह व बाद मिलन की कामना करता है।

यह मय तो होता है, पर जब मारा समार शात हो जाता है तब भी उसके प्रेम की ज्वाला नियति मय पर अकनी जलती रहती है। वह इस ज्वाला स निबदन करता है कि गाढा का मारा कनुप मिटाकर अनल वाला सा जनकर शाति दो। और कवि यह कामना कर उठता है कि हृन्प की यह जलनी ज्वाला निमम जगती का मगलप्रकाश द।

फिर वह प्रेम की अम्यधना पर उम जगान का प्रयन करता है। मानगमन्हे के प्रतीक प्रेम स जीवन मधु के अनंत मोत क प्रगाह का याचना करता है और यह भा कता है कि मरा वन्ना मधुर हो जाय और उम सहृदयता मिने।

आतागत्य उम विरह मे जान व्यतात हल जाने पर कष्ट होता है, पीडा होती है। उसकी कामना का सुपूर भचार श्रीमू की वरमा म दोना हो कूना का हरा करन व सिप उद्धतित हो उठता है। वह यह चाहने लगता है कि मुह डक कर पडी हुई मन का ममस्त पीडाए काभल क्रीडाग करती हुई मुमन सी हसने लगे। इस पाडाप्पी पाप को निमल पुण्य म बदलने के लिये ज म ज म के जावनसाधी म कवि पुन आग्रह याचना कर उठता ह।

वह अपनी पूरी कवा को सनेनसूना म दोहराता है और पूजता है कया तुमने जाने म स्थित कुटिया म लघु स्नेहभरे दापर को रजना भर जलत दला है और फिर उसे एकात बुझते भी। इस विरहदशन के अंत म निचाड के रूप मे वह श्रीमू से विश्व सदन म हिलवण के रूप म वरस कर याचना करता है तथा मगल प्रभात क पूवानास देने का।

आमू

मक्षर म आमू मे यहा बखन बिया गया है। इन बखन मे निदिष्ट भूमि ता है पर किमी एन भावकथा का गठन नहीं, अपितु विद्वज मन का धातुल व्याकुल विशृणुल विरहस्पदन है। इन काव्य की निदिष्ट भावभूमि प्रम के प्रति अनन्य विरह की पाछा है। यदि कथा म कोई गठन नहीं है तो मुक्तक रह जाने से ही आमू का महत्ता कम नहीं होगा।

आमू निरहकाव्य है। आमू व माघ ही एक प्रश्न यह उठा दिया जाता है कि इस विरह का आनयन क्या है। कवि का प्रेम किमी लो क प्रति है या किमा पुरुष के प्रति। यह जका दुर्मानय उठाई जाती है कि प्रगाञ्जा ने कुछ स्वाना पर अपने प्रमी का पुरुष के रूप म गवाधित किया है। इसका उत्तर प्रमाद जी न श्रीगुरुद्वय प्रसाद गोह का आमू की उनकी प्रति म निम्नरूप स अजित किया है

भा मरे प्रम बता द
तू नारा है कि पुरुष है ॥
दानो ही पूछ रह है
तू कोमल है कि पुरुष है ॥
उनका बसे बरलाक।
तर रहस्य का बातें ॥
जा सुनको समझ चुके है
अपने विलास की बातें ॥”

बहुत स साग ‘आमू’ के सबय में यह भ्रम भा उत्पन्न करते हैं कि यह रचना रहस्यवाद व अलगत आणवी तथा वे दूसरे आत्मा और परमात्मा व विरह निबदन का रूपक भी हो सके हैं। किंतु जो लोग ध्यान से आमू तथा उसने पूव का प्रमाद काव्य पढ़ेंगे व आमू का निश्चित रूप म मानवाय बतलायेंगे। आमू मे छायावादी पद्धति पर भावों का अभिव्यजना हुई है। उसम प्रमान्वित प्रष्ट व प्रतीकों म सङ्ख्याप्रधान शला

द्वारा का गर्द है। हमने माघ हा आमू म अनंतर घोर ममात्मात्क प मृज मुर रग स आए है। ‘आमू’ का छायावादी व अभिव्यजना शैली व मुक्तक काव्य व रूप म प्रतिष्ठित मानता अधिक उपादय होगा और उचित भी।

द्वय मयध में यह पातव्य है कि अपने दश में नरगजित वगन का प्रथा मटिय म बड़ी प्रानोन है। जय नगजित बखन म पर व नातून म मिर का धार धीर बार मन प्रयग का बखन दिया जाता है ता यह मोन्मोभिपत्ति दबा मानी जाती है। मानवीय सीदयबखन म मिर स पर की धार कवे चलता है। प्रमादजी नखजित वगन म मिर स पर की धार हा बसे हैं। इसलिये यह मृज हा कहा जा सकता है कि आस्ताय काय परपरा के समन प्रसाद का प्रियतम मानव है परमात्मा नहीं। आमू विप्रनम भूवार का योवनमय काव्य है। उसम भावा की चित्रनम ध्वनितम एवं रमय अभिपत्ति है। स्मृति के महार १६ छदा म प्रमिका क सीदय का बखन किया गया है तथा नौ छंदा म मिलने क मुखा का। यह वखन प्रमिका के माध्य का मदभरा प्रमूप स्वरूप रखा कर दता है। उदाहरण व रूप म, मुख का यह सीदय देख—

बाया या विष्णु का जिसने,
इन काली जजीरो स,
मणिलते फणियों का मुख,
क्यों भरा हुआ हीरों से।
केवल यहां नहीं जिम भी भग का बखन कवि ने किया उसम सुम गमीर सीदयबखन है। उसन रूप की जिन सुंदर दशाभा का सवाक चित्र उपस्थित कर दिया है, वे मधुसूता योवन की प्रणाय व स्नेह मूक मे आलिंगन करने के लिय भावा मयल देते हैं। बाजल का खामासे

लेकर शरीरसौन्दर्य की समस्त सौंदर्य-प्रभा के कण कण को जिनना मधुमय मोहनोचित रूप में कवि ने खड़ा कर दिया है, उतना मदमरा चित्र हिली के किसी एक मुक्तक में अत्यन्त मिलना दुरम है। एक एक मादक हाव भाव का उमन जीवन दकर सवारा है। यद्यपि शृंगार भिन्न के पक्ष पर खुन कर छाया है अर्थात् शृंगार में उत्तम रूप का निरूपण कवि ने किया है ता भी उस एसा शरीरक बना हुआ है एसा सवारा है कि कवन भाव, चित्र के सौंदर्य पर मन मुग्ध हो नाच उठता है।

जहाँ कवि ने व्यक्तिगत पीना में आन्तरिक होकर आँसू की मृत्ति की है, वही उमका परिहार हान पर वह अपने व्यक्ति से भी ऊपर उठा है। अपना कण्ठा का ज्वाला से चिरदग्ध हुआ समुद्र का वह आतल आनाक दन को बात भी करता है। यह तथ्य कवि ने आगस्त विवक का परिचायक है। वह पाटा में खा नहीं जाता है, हूबकर भा विवक में महार पीड़ितों के लिये मगल सृष्टि का रचना का भाव उद्यान करता है जिसकी पूर्णाति 'कामायनी' के रूप में आग बलकर होनी है।

यह तथ्य इस बात का साक्षी है कि प्रसादजा व्यक्तिपरक माधना की पृष्ठभूमि में भी लोकमगल का मगनभावना 'आँसू' में नहीं भूलते हैं।

अब हम 'आँसू' के वस्तुवर्णन में भवष में विचार करेंगे, यद्यपि वियाध शृंगार के अतगत स्मृति के दाग अनात भिन्न-मुख का रूपरूपना आँसू में की गई है और जीवन मधुमय का विवर्णित वर्णनात् उपानाती का सवत्र एकत्र किया गया है ता भी आँसू मूलतः वियाध का वर्णन है। वमत, ऊषा, सव्या, पराध,

विमलय, केली सवत्रा महारा लेकर प्रियतम का रूप रखा किया गया है। इस रूपसृष्टि में माहमया, माहक मानकता है जो मुठवि मयम है, एव छाया में वम जाती है। जब सवन में रूपचित्र खड़ा करना पटना है ता कवि-रम अत्यन्त दुःख हो जाता है। उम दुःखना में महजना लाने में नित्ये परिचिन मकरद भग्न मनप्रताका का प्रयाग किया जाता है। और प्रमादजी ने जिम रूप में वह नाद किया है, वह काय पूर्ववर्ती कवियों में कवन 'विहारी' ही कर सके है। 'प्रमाद' ने इस रूप सृष्टि में अपनी विमृष्टता भी स्थापित की है। उम विमृष्टता में रूप में प्रवृत्ति में उहाने व्याख्याना का नाद लिया है और उमका भरतूर उपयाग उपमान में लिया गया है। रूपचित्र का मजीव भूतिकरण जिममें मादरता को रूप-ज्वाला है प्रमाद का अपना विरोधता है। उदाहरण के रूप में य पत्तिया दी जा रही हैं—

कानी आवा में जिनने
 धीरेन के मर का लानी
 मानिक मदिरा में भर दा
 किमन नानम की प्याना।
 तिर रहे अतृप्त जलधि में,
 नीलम की नाव निराली,
 बाना पानी बला भी
 है अजन रखा काली।

विरह की स्थिति का सूत्र निराज्ञाकर जिस रूप में उहाने उमका वर्णन किया है वह सूत्र निरीक्षण आधुनिक कवियों का विरह-वर्णना में अत्यन्त नहीं दाखना। एत सूत्र वर्णन का कारण है, कवि का गभीर दृष्टिदर्शन। उदाहरण के रूप में य पत्तियाँ पयात हामा—

जैम गरिता के तट पर
 जा जहाँ खड़ा रहता है,

आसू

विधु बा आनोच तरल पय
समुल देखा करता है ।

बजि ने परपरा से प्राप्त वणन की बाती को नई
कल्पनाओं तथा उद्भावनाओं से समृद्ध
किया है। प्रणय के नाथ व्यापारा
एक वणनो मे ये बातें जगह जगह पर
छानकती मिलेंगी। इस नवानता के
प्रवाह मे परपरा हूबो नहीं अपितु
अभी भी अविक निलर कर
उभर आई है। उदाहरण के रूप
मे रचनाएँ दवर व्यथ मे स्थान नहीं
भरना चाहता। मामा यत यह मज
आसू मे सवय दृष्टिगत होगा।
उदाहरण के रूप मे बाजल का वणन
या उस आसूव प्रणय वन का वगन
निया जा सकता है।

विप्र-भ शृंगार मे जिन तत्वा का वगन प्राचान
ममय मे साहित्य मे निया जाता रहा
ह उन सभी तत्वा का दशन आसू मे
होगा। आत्मविकृत आत्मसमयण,
उनाहना हाकार प्रलय असीम
पाडा, मधुमृत अक्षय्य वरण स्थिति
नाचारा आह विश्वास प्रियन का
प्रमल, स्नेह मल और अततोमल
व्यक्ति का हम करण वेदना से उपनय
सजीव अनुभूति से समस्त मसृति का
मगलवाचना ।

बाद के घेर में वधा दृष्य साहित्य सीमित तो
होना हा है जीवनविहीन भी
इमान्ये आसू किमा बाद की रचना
नहीं है। वह मोत्रन के सरल हृदय का
पुकार है। यह पुकार सृष्टि व शाश्वत
तबों व समान ही अनत जवनमया
है। प्रमादजी दुखवाद नहीं मे
मानावादा मे। जिन आनंद से उनका
सवय था, वह आनंद सृष्टि व आरम
से प्रलय व अनत का वत ररनवाना
है जिनमे महार और सुजन दाता व
क्रियाकल्प मे मानम धम का रम है।

प्रमादजी से यदि किसी बात का
सवय जोड़ा जा सकता है तो वह
आयावाद का। आयावाद भाव प्रका
शन की प्रवृत्तियों प्रणाली है, बुद्धि
विवेक व जीवनदर्शन नहीं।

आसू प्रमाद के व्यक्तिक जीवनदर्शन के अंतर पक्ष
का एक अघ्याय मात्र है। वह उनकी
ममय सृष्टि नहीं। इसलिय आसू को
दुखवाद के अंतगत केवल इतने
समेटना उचित नहीं होगा कि उसमे
दुख व कातरता का अत्यत व्याकुल
वर्णन है। आसू मन की उस दशा का
वगन है जहाँ दुख का प्राभा य हाता
है। इसलिय इसमे कृष्णा के प्रतिरिक्त
और क्या वीख पड सकता है ? लेकिन
इस कृष्णा मे मगलसृष्टि की बात भी
हो गई है। अतएव दुखवाद और
आसू को एक बता देना भूल है।

कुछ लोग निम्नलिखित उदाहरण दत हैं और कहते
ह कि आसू मे प्रमादजी नियति
वादी है।

‘बती है नियति नटा सी
बहुक क्रीडा सी करता,
इस व्यथित विश्व प्रागन मे
अपना धनुम मन भरती ।’ (आसू) ।

प्रमादजी ने लिखा है कि धनुय प्रवृत्ति का धनुवर
तथा नियति का दाम होता है
(अनातमय) ।

नियति जीवन मे बाती है जीवन को नबाती है।
इस वरम नय बाई भी मथेतन नहीं
मानता किनु उनका मना को अम्बी
बार भा को समझार व्यक्त नहीं
कर सकता। प्रमादजी नियत व
माननेमान तो ये और नियति ने माय
प्रवृत्ति व धनुवर हान को बात भी
प्रमादजी करते हैं। प्रवृत्ति की वतन
मला जीवन का प्रणय व नियति
प्रानाशमयी है। इस आनाक आमा क

मूल मे प्रगति और गति की चेतना का विकास है। ऐसी स्थिति मे नियति की बात देखकर प्रवृत्ति के अनुचर होने की बात न मानना अग्रय है। बिना कुछ सोचे समझे भी अजातशत्रु का यह उन्माहरण अपनी बात का पुष्ट करने के लिये वाग दे देने हैं—

नियति का डारी पकड़ कर मैं निभय कमरूप में ब्रू
सकता हूँ। क्योंकि मैं जानता हूँ कि
जा होता है वह ता होगा ही फिर
कतव्य से विरत क्यों रहूँ ?

यहाँ नियति की डार ता लोभा को दिखाई पड़ जाती है किन्तु कमरूप का दक्षन लोभ नहीं कर पाता। अतएव आमू मे नियति का उतना तो स्थान दना चाहिए जहाँ जीवन में उसका है।

प्रवृत्तिसाम्य पर प्राप्त अनुभूति की अभिव्यक्ति विरहवेदना के मयोग से रहस्यवाद नहीं होनी अपितु आत्मा का परमात्मा में विलीनीकरण, अपरोक्ष अनुभूति तथा समरमतामय समन्वय रहस्यवाद है। प्रसाद का प्रियतम अपरोक्ष नहीं था, पराक्ष था इसलिये रहस्यवाद की बात भा आमू से सम्बंध नहीं रखता। और रहस्यवाद हा जान से ही काई चीज बड़ी भी तो नहीं होती।

आमू भारतीय विरह काव्य परंपरा का नवरत्न है। छोटी बोनी में वह अपने ढंग का अकेला विरहकाव्य है। सामान्य ऐसी धारणा है कि प्रसादजी के आमू पर अनेक प्रभावों का संकलन है किन्तु सत्य यह है कि विरह के सर्वोत्तम तत्वा की भावपाती को युग के अनुरूप 'आमू' में निखारकर उहाने रखा है। और सौंदर्य और विरहवर्णन की परंपरा का भाग बढ़ाया है।

प्रसादजी ने अपने देश के गौरवमय साहित्य के रत्नों को नई खराद देकर, काव्यरत्न

मज्जा में नई साजमजा के साथ रखा है। इसमें पूर्व मनीषियों का प्रभाव तो है, पर यह प्रभाव उतना ही है, जितना पूर्व ज्ञान का प्रभाव किसी अनुभवान कर्ता की मौलिक खोज के मूल में रहता है। कहा यह जाता है कि आमू पर उर्दू और फारसी का प्रभावों भी बहूँ देखता है। उन प्रभावों को मूलतः यहाँ माना जाता है, जहाँ कवच बनने की, छाया फाड़ने की और विरह में सृष्टि की प्रलयमयानि लगान का बात घाती है। विरह में कवच बदलना साधारण सी बात है। छाया की बात भी नई नहीं है। ये चीजें उर्दू में भाई हैं और उर्दू हिंदी की एक शली है, अपनी उस शली से भी प्रसाद ने कुछ गिया है, ता इस व्यापक भावना की प्रशंसा होनी चाहिए तथा निश्चित रूप से प्रसाद की दृष्टि की प्रशंसा की जाना चाहिए। प्रसादजी के आमू को यह श्रेय प्राप्त होता है कि विरह की आदि भारतीय परंपरा से आधुनिकतम मायताओं तक के सुंदर तत्वों की छवि का उसने ग्रहण किया है। यह हमारी परंपरा की महान् धाता तो है ही, माय ही हमारे साहित्य में नय रूप से मौलिक जीवनमूल्यों की स्थापना भा है।

एक बात और कहने की है। वह यह कि केवल भेषदूत ही एक ऐसा काव्य है जिससे आमू का तुलना की जा सकती है। लेकिन यह तुलना केवल विरह और रूपसाम्य के बखान से ही हो सकती है, क्योंकि दोनों की भावभूमि प्रलय अलग है।

आमू धारा = मां०, ३६। का० कु०, १३।

[म० जी०] (हि०) आमू का प्रवाह। मधुधारा।

आ आकर = ल० ६०।

[म०] (हि०) उपस्थित होकर।

आइ

आइ = १० ५७।
[वि० प्र०] (प्र० भा) आर।

आई = ५०, ७६, १००, ३०। का० १६६
[वि० प्र०] (हि०) १७२, १७२, २२६ २३३। १०,
८६। ल० ६२।
आई। उपस्थित हुई।

आओ = ५०, ५१। का० कु० १० ८४,
[वि०] (हि०) ८८। वि० ३४। प्र०, ४३।
उपस्थित हाथा।

[आओ हि० में आओ प्राण प्यारे—बार पक्ति का
प्रजातन्त्र का गीत जो प्रमान्तगीत
में भी मन्तलित है। मागधा का प्रणय
गीत का उदयन का निभान व लिए
गाया गया है। हृदय में प्राणप्यारे
आओ ताकि तन घोर मन का तपन
हुके और हम तुम एक पल भी भग्न
न रहें क्योंकि सबका आदर कुम्ह
पाया है। २० प्रवाद संगीत।]

आकर = ५०, १६, २८, ३४। का०, कु०, ३०,
[म० पु०] (म०) ३४। का०, २१२, २१५ २६५। ५०,
३६ ४८, ७८। प्र०, १४। १०,
१५, ३८।

आर = ५०, १६, २८, ३४। का०, कु०, ३०,
[म० पु०] (म०) ३४। का०, २१२, २१५ २६५। ५०,
३६ ४८, ७८। प्र०, १४। १०,
१५, ३८।

आरठ = का० कु०, ५१।
[वि०] (म०) भूगर्भपेग। गल तक।
आरुप्य = ५०, ३०।
[वि०] (म०) मुदर। अपनी बार खींचतवाला।
आनपण करनेवाला।

आरुप्य = ५०, २०, ४३ ५६ ५८, ७२,
[म० पु०] (म०) ७३ १२८ २२७, २३७, २४४।
वि० ३१।

निचाव। किता वस्तु का दूसरी वस्तु
निचाव। किता वस्तु का दूसरी वस्तु
व पाम उमका भक्ति या प्रेरणा से
नामा जाना। तब मास्त्र में एक प्रकार
का प्रयोग जिनके द्वार द्वारस्त्र अनुप्य या
पनाम पर पाम जाने के जिये प्रभाव
डाला जाता है।

आरुप्यमय = ५०, १२, १०, ३०।
[वि०] (म०) मोनमय।

आरुपित = १० १२। प्र० २।
[वि०] (म०) विना दृषा। मुप्य।

आरुपिक = ५०, १८६।
[वि०] (म०) प्रवान व या मृत्मा हातावा। निगा
पटनाव व या मयामवम हा जानवा।
प्रवाचन।

आरुसा = का० १६८ ५६७।
[म० लो०] (म०) इन्हा व ह, प्रामना।

आरुसा जलनिधि = ५०, १६५।
[म० लो०] (म०) प्रमिताया न्यो नागर। इन्हाविनु।

आरुसा वृत्ति = ५० ७४।
[म० लो०] (म०) इन्हा की पूति। प्रमिताया की गुष्टि।

आरु = ५०, ३२। का० कु०, ६२। का० ७२,
[म० पु०] (म०) १०५, १२६, १७६, १६२, २८६।
आइति रूप। स्वरन। डालडीन
क्या। बनावट। मपटन। चिह्न।
वेप।

आरुश = ५० ४८ ४८ ७३। ५० = ११।
[म० पु०] (म०) का० कु० ५६ ७३ २६ ४२,
५०। का० ८१ १६० १६५। वि०
८ १०१ १३८। ५०, २४। प्र० १४।
नम। मयन। प्राममान। प्रनरिह।

आरुश पट = ५० कु० ८।
[वि०] (म०) प्राकाश का या प्राकाशका वल।
दियबर।

आरुशविहारी = ५०, १५।
[वि०] (हि०) प्राममान पर विवरनवाता (मुमदि
ग्रह। पक्षा)।

आरुशरध = का० ६६।
[म० पु०] (म०) प्राकाश का वि०।
वि० १८। का० १५०। वि०, ६८।

आहुल = १० १५।
[वि०] (म०) यम, व्यस्त, बवडाया हुमा।
५०, ११६, १२८, १४५। वि०, ७३।

आकुलता = ५०, ११६, १२८, १४५। वि०, ७३।

[स० स्त्री०] विनयता । अस्थिरता । खचनता । (हि०)

(म०) विक्षोभ ।

आकुलि = का०, १११ ११२ २०१ ।

[स० पु०] (म०) अमुर पुराहित का नाम । मनु का पुरोहित । दे०—नामयनी की कथा शीघ्र खरिन ।

आकुलि = का०, २६३ ।

[स० स्त्री०] (स०) आकार । रूप । स्वरूप ।

आकृमया = म०, २३ ।

[स० पु०] (म०) हमला, चण्ड, वार ।

आनात = का० ६, ६३ । चि० ३ ।

[वि०] जिन पर आक्रमण या हमला किया गया हो । पराजित । अभिभूत ।

आके = का०, कु०, ४६ ।

[क्रि० प्र०] (दे० 'आकर') ।

आपेट = चि०, १५१ ।

[म० पु०] शिकार, मृगया ।

आगतुक = का०, ५०, ४४, १६१ ।

[वि०] आगवान् । आगमनशील । जा इधर-उधर से घूमता हुआ आ जाय । अतिथि । अन्त्यागन ।

आग = का०, २०० । चि०, ४७ । ल० ३८ ।

[म० स्त्री०] (हि०) अग्नि । ताप । सुदर ।

आगत-पतिका = का०, ७ ।

[स० स्त्री०] (स०) जिनका पनि परदश न आ गया हो ।

आगम = चि०, १५६ । प्रे० २ ।

[स० पु०] आगमन । होनहार, अवितथ्यता । आग, आगदनी । वः, शास्त्र । नीति ।

आगमन = का०, कु०, ६६, १२४ । चि०, ३१,

[स० पु०] ६३ । ल०, १५ ।

(स०) आगम । आगम । आना ।

आगरे = म०, २० ।

[स० पु०] उत्तर प्रश्न का प्रसिद्ध नगर आगरा । यह मुगल आगको की राजधानी थी ।

आगे = का०, ६४ । का०, ६६, ११६, १४१, १८१, २५७, २७८, २८३ । का०,

कु०, २१ । प्रे० ४ । म० ५ ।

अग्रभाग म । समस्त । मामन । जीवन कान में । जीते जी । बाद में । अनन्तर । आह्ला । भविष्य म ।

आग्रह = चि०, ४ । म०, ७४ ।

[स० पु०] (म०) अनुरोध । लूट । परायणता । तत्पत्ता । बल । जार । भावश ।

आगत = चि० १३ ।

[स० पु०] (स०) ऊपर । चक्का । मार । चाट । आक्रमण ।

आगतों = का०, कु०, ६२, ६३ । का०, १८१ ।

[म० पु०] (हि०) आघात का बहुवचन ।

आन्ध्यादित = का० कु०, १२२ । प्रे० ३ ।

[वि०] (स०) ढका हुआ ज़िपा हुआ गुप्त । आशुत ।

आज = का०, २६, २६ । का०, १० १२, १३,

४८, ५२ ५८, ८६ १४२, १५४ ।

[स०] १६२, १६७, १७० १७७ २००,

२८६ । का० कु०, १०६, ११८ । म०,

२८, ३६ ४५, ४६, ५६, ५६ ६१,

६६ ६६ । म०, १२ १४, १५ ।

वर्तमान दिन । जो दिन बीत रहा है ।

[आज इस घन के अधिपति मे—इडु कला ५

किरण ३, मितवर १६१४ में मकरद

विन्दु के अतगत प्रकाशित शीघ्र करना मे

'विन्दु' शीघ्रक स गृष्ट ६२ पर सक-

लित । "हरिमाली में य दानो ह्य कयो

बरस रहे हैं । हँसकर बिजनी सी चमका

कर हम कीन रताता है । इस सजी

हुई मुख की कयारी में कीन तमाल

भूमता है" ? दे०—"करना" शीघ्र

विन्दु ।]

[आज इस यौवन के माधवीकुज मे—चदगुप्त

का गीत । प्रसाद समीन म गृष्ट ११२

पर सकलित । गुवातिनी का गीत ।

आठ पति की कविता मे दा दाह है ।

गुवायिनी की यौवन के माधवीकुज मे

वाक्चि वीन रहा है कयाकि उसका

हृत्प काम का मधु पीकर पागल हो

गया है और अपने आप प्रलाप कर
जिधिया होना जाता है अतः लज्जा के
सारे बंधन हीन रह गये हैं। जया म्ना
बहित छवि में मतवाली रात है और
नौपते हुए अंधार से चट्खानेवासी
बात कर रही है। यह वासना का
मधु मदिरा कीन घाल रहा है। २०—
प्रसाद मगातः ।]

[आज तो नीके नेह निहारो—अधरद बिंदु जीर्णव
के अतर्गत इह, वत्ता ५, विरग ३,
सितंबर १६१४ और चिवाभार मवरद
बिंदु के अतर्गत अतिम पृष्ठ (१८८) पर
सकनित । वधि की भावाज्ञा है कि—
“चातक ली नित रटन रहत हम,
हे सुंदर पा प्यारो ।
हरित करो यह मरमम मो मन
देह प्रसाद पिघारो ॥”
विरह की बात भूनी और समझो कि
वह बिजली की भाति जा जीवन में
चमक उठा था वह बरसा में सह गया ।
२०—चित्राभार और मवरद बिंदु ।]

[आज मधु पी ले—विशास में नतकी द्वारा नरदेव
के दरबार में गया जलवाला दूगरा
गोत । प्रसाद संगीत पृष्ठ १६ पर
मन्त्रित भाठ पत्तिया का गोत । नर्तकों
कटती है कि काम भा मधु पीले क्याकि
यौवन का वसत बिना हुआ है । प्रकृति
धानावरण प्रस्तुत कर रही है और
यह यौवन का घम है क्योंकि कोकिल
शीतल एकांत प्रभात में हृत्पक्षी बुझ
में वारव कर मुख-मुज का बरसा
कर रहा है जिसमें मज्जरित रसातल
हित रहा है । चंदन वन की छाया से
आनेवाला मद मन्त्रय तमोर निश्रास
का कर अमीर कर रहा है । अंधार का
मधु मुकुट में मिलने का क्या कारण
है ? यह प्रश्न वह पूछता है और सज्ज
में उत्तर भा देती है । यौवन का वसत
बिना है इसलिए आज कामना ॥
पी ले । ३०—प्रसाद-मगीत ।]

आनीना = २०, ७८ । म० ६ ।
[वि० वि०] (म०) जीवन पया । त्रिदगी भग ।

आतुर = वि०, ७९, ७४ ।

[म०] (म० भा०) (२० भा० ।)

आशा = २०, ११, २१, २३ । का० २४३ ।
[म० मी०] ६१, वि०, ४१, ६४, ६६ । म०, ४६,
(म०) ८५ । ल०, ७३ । म० ३ ।

आदग हुक्म अनुमति ।

आशा पत्र = म०, २४ ।

[म० पु०] (म०) आदगपत्र, हुक्मनामा ।

आटा = ल०, ४२ ।

[म० पु०] पित्तन । विनी अन्न का भूषण । बुकनी ।
(हि०)

आडगर = म०, १४ ।

[म० पु०] गभीर शब्द । ऊपरी बनावट । झूठा
(म०) धायोजन । मुद्र में बजाया जानेवाला
बड़ा ढोल । ६५ ।

आड = का० कु०, ६३ ।

[म० मी०] (हि०) आट, परदा । रत्ता । शरण ।

आसक = का०, १६५ । म०, १ ।

[म० पु०] राय । दबदबा । प्रताप । भय । शका ।
(म०) रोग । ज्वर । पीडा ।

आसक ग्रन्थ = का०, १२१ ।

[वि०] (म०) रोग से डरा हुआ । भय में परेशान ।

आतप = का०, ३८ । म०, ३६ ।

[म० पु०] धूप, दीप्प, सूर्यो, उष्णता । मूष का
(म०) प्रताप ।

आना = म० २७ ।

[वि०] (हि०) आगमन करना ।

आती = श्री०, ३५ । व०, ३४, ३८, ३९, ४०, ४१, ४२, ४३, ४४, ४५, ४६, ४७, ४८, ४९, ५०, ५१, ५२, ५३, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२, ६३, ६४, ६५, ६६, ६७, ६८, ६९, ७०, ७१, ७२, ७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ७८, ७९, ८०, ८१, ८२, ८३, ८४, ८५, ८६, ८७, ८८, ८९, ९०, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९८, ९९, १०० ।

आगमन करता ।

आतुर = का०, १२२ । म०, ६५ । ल०, २४,
[वि०] ४४ ।

(घ०) व्याकुल, व्यग्र, उद्विग्न, घमराया हुआ ।
 आधीर, उत्सुक ।
 आते = भ०, १६, ५२ ।
 [क्रि०] (हि०) आगमन करत ।
 आत्म = का०, १६१ । चि०, ६५ ।
 [वि०] (म०) अपना, स्वकीय, निजा ।
 आत्मकथा = प्रे०, ४ । ल०, ११ ।
 [सं० स्त्री०] (सं०) अपनी जीवनी, अपनी कहानी । स्वनिखिन
 जीवन भरित्र ।

[आत्मकथा—'हम' के आत्मकथाक जनवरा परबरी
 १९३२ शापक से 'मधुप गुन गुना कर
 कह जाता ? शोधक से प्रवाशित
 श्रीर 'लहर' म पृष्ठ ११ पर सन्निहित ।

'प्रमाद' की यह आत्मकथा विदु मे मिथु छिनाए हुए
 है । यह उनके भरित्र क ममल मुत्रा
 पर पूरा प्रकाश डालती है । इस यह
 सृष्टि ही जाना जा सकता है कि
 उनका व्यक्तित्व किन्ता गभार था ।
 उनके बड़े जीवन का यह सत्य म कहा
 गई क्या अत्यंत प्रभावशालिनी है ।
 वे श्रीरों का मुनन श्रीर देखनवाले
 गभीर द्रष्टा श्रीर स्रष्टा थे । उहाँ
 अपने भील जावन म श्रीरों का देखा
 था । जीवन की अन्त नीलिमा म
 प्रसन्न जीवन इतिहास का व्यग्र
 मलिन उपहास भा उहाँन देखा था ।

यह सब होत हुए भा वे अपनी शार स दृष्टि
 केरनेवाल व्यक्ति नहीं थे । उह अपना
 मधुर भूसा का ज्ञान था, उनका
 उहनि अपने जीवन म परिष्कार
 करना भा सीखा था । इतना हात हुए
 भी उनका भा भासापन उनक जीवन
 की सहज प्रवृत्ति था ।

यह गात इन बात का साक्षी है कि कवि श्रीर
 की मुनना चाहता है पर विगत जावन
 की स्मृति अब भा उनक गीता का
 प्रेरणा है । साथ हा कवि सकेत मुत्रा
 मे यह भी सदा दता है कि अभी
 आत्मकथा कहने का समय नहीं आया
 है क्योंकि अभी उनके प्रयन की

पूराता, हृदय का कामना के अनुसार,
 अपनी सृष्टिरचना नहीं कर पाई
 है । यह जीवनमावृत्ति सतत गतिशील
 चेतना के मगल विकास का मणिदीप
 है । उसके भासपन का हनी बराबर
 उठाई गई, लविन वह तटस्थ रहा ।
 उसन दूसरा की प्रवचना नहीं का ।
 शार अत म कहता है—

मुनकर क्या तुम भला करोग—

मरी भाता आत्म कथा ।

अभी समय भी नहीं—

धकी साई है मरी मौन व्यथा ।

२०—'प्रसाद' श्रीर लहर ।]

आत्म गौरव = ल०, ६३ ।

[म० पु०] (सं०) अपना यष्टता । अपनी बढाई ।

आत्मज्ञा = का०, १०५ ।

[सं० स्त्री०] (म०) पुत्रा कथा । स्वय से उत्पन्न
 होनेवाली ।

आत्ममल = प्रे०, २२ ।

[म० पु०] (सं०) आंतरिक शक्ति । आत्मिक बल ।

आत्मबलि = का० पु०, ४८ ।

[सं० पु०] आत्मबलिदान, अपने आपको हाम कर
 देना या खपा देना ।

आत्ममगल = का०, १६१ ।

[म० पु०] (सं०) अपना कथा ।

आत्म निश्वास = का०, १६१ ।

[म० पु०] (सं०) अपनी शक्ति या वाग्यता पर विश्वास ।
 निजी भरोसा ।

आत्मविश्वासमयी = का०, १३२ ।

[वि०] (सं०) अपने अपर विश्वास रखनेवाली ।

आत्मसमाप्ति = ल० ७७ ।

[म० पु०] (सं०) अपना आदर । निज गौरव ।

आत्मविस्तार = का०, ५६ ।

[म० पु०] (म०) अपना फसाव ।

आत्मसमर्पण = प्रे०, २४ ।

[सं० पु०] (म०) अपने आप को अर्पित करना ।

आत्मा = का० पु०, ६, ११६ ।

[सं० स्त्री०] चित्त, चतय, मन, बुद्धि । जीवात्मा ।
 ब्रह्म । मन या अत करण के व्यापारा
 का ज्ञान करानेवाली सत्ता ।

आत्मोपपत्ति

आत्मोपपत्ति = का०, २१६।
[म० श्र०] (स०) अपनान, मित्रता। घनिष्ठ सख्य।
आत्मोत्सर्ग = म०, ११।
[म० पु०] (म०) अपनान त्याग। दूसरो का भलाई में
अपने हित की बलि करना।
आदर = म०, ३५।
[म० पु०] (म०) समान, सत्कार, प्रतिष्ठा, इज्जत।
आदि = का० कु०, ७७। वि० १२, १७०,
[म०] १७३।
[स०] त्रिभुल प्रथम। पहला। आरम्भ का।
[म० पु०] आरम्भ। बुनियाद। मूलधारण। ईश्वर।
आनिक = वि० ५०।
[म०] (म०) आदि। बगल। इ यादि।
आदित्य = वि० १०१।
[म० पु०] (म०) अदिति के पुत्र। सूर्य। इन्द्र।
आदेश = का०, १२, १५। न०, १३।
[म० पु०] (म०) आना। ह्वन। उपदेश। नमस्कार।
प्रणाम।

[आदेश—भरना, पृष्ठ ७७ पर सकलित कविता।
मुझ मानव मैं उठनेवाली भाव सह
रियो हा पावन पत्नि को के समान है
जि हैं पदकर सहा आदेश का बोध
होना है क्याकि विद्वान् सद्यःवशासा
हृदिगत आदेश नलाह है। इन्द्र का
विपमान मत कर अपितु जावन व
घट की बापा बदन और भेद ताडकर
मुखा से भर ले। निज पापी स डर कर
प्रार्थना और तपस्या अपना अपमान
है घोर यह किसी के प्रति भक्ति नहीं
हो सकती। प्रहर्षों आयना करने की
अपेक्षा दुखियो पर क्षण भर की करणा
अधिक आत्मगमान की निष्पत्ति करगा।
ऐसा कवि का सचा विश्वास है।
२०—भरना।]

आधार = का०, ३१। का०, ७८, २०६, २६०
[स० पु०] म० ७५।
[स०] महारा। आश्रय। अवलंब। योग
मात्र मे एक वक्र का नाम।
आधि = का० कु०, ७२।

मानसिक व्याधि, पाटा या निता।
रहन। गिरवा। बचन।

वि०, १०।
आधिन, मातहत, वशीभूत।
का० २, ५३, ५५,
५६, ६२, ६७ १०१, १०२, १३६
१६१, २७२, २८५ २८६, २८७।
का० कु०, १६ २७, २८, ३०, ३१,
३, ७७, ६३, ८६, ८६, ११६,
१८४। वि०, ६, १७, ६०, ६२, ७३,
११६ १७३। म० १६, २० ३६,
७१ ८१। प्र० ८।
हय। प्रसन्नता। खुशी। माद। मीज।
[निष्पत्ति—कामायनी की क्या घोर
रामायना का दशन।]

आनन्द अथ निधि = प्र०, २५।
[म० पु०] (स०) प्रसन्नता रूपी वागर।
आनन्द आसन = का० कु०, ३१।
[म० पु०] प्रसन्नता का निवास। आनन्दरूपी
आसन।
आनन्दकद = वि०, १५५।
[स० पु०] (स०) प्रसन्नता का मूल। आनन्दमय।
आनन्द धन = का० कु० ७३। वि०, ५६।
[म० पु०] (स०) प्रसन्नता रूपी धन। प्रसन्नता का
दाजाना।

आनन्ददायक = का० कु०, ७२।
[वि०] (स०) प्रसन्नता प्रदान करनेवाला।
आनन्द दृश्य = का० कु०, १६।
[स० पु०] (स०) खुशी का दशन, प्रसन्नतादायक वस्तु या
घटना का दशन, आनन्द प्रदान करने
वाला दशन।

आनन्दपूर्ण = का०, २५१।
[वि०] (स०) प्रसन्नता से भरा हुआ। खुशी से युक्त।
आनन्द भजन = का० कु० १६।
[वि०] (हि०) प्रसन्नता का घर।
आनन्द गदिर = का० कु०, ३०।
[स० पु०] प्रसन्नता का भवन। आनन्दरूपी
मन्दिर।

आनन्दमय = का० कु०, १६, १२४ ।

[वि०] (स०) प्रसन्नता म भरा हुआ ।

आनन्दवान् = (१०—वामावनी का दशन ।)

आनन्दमयी = प्र० १ ।

[वि०] (स०) प्रसन्नतामयी ।

आनन्द विभोर = का०, ६ ।

[वि०] (स०) खुश भ मस्त । प्रसन्नता में मग्न ।

आनन्द शिखर = का०, ६६ ।

[सं० पु०] (स०) प्रसन्नता का चोट ।

आनन्द समन्वय = का०, ७४ ।

[सं० पु०] (स०) प्रसन्नता का मिश्रण ।

आनन्द सहित = वि०, ६३ ।

[वि०] (स०) प्रसन्नतायुक्त । खुशी के साथ ।

आनन्द सुधा रस = का० २८१ ।

[सं० पु०] (स०) प्रसन्नता रस प्रभु ।

आनन्दित = वि०, ५८, १६, ७५ ।

[वि०] (स०) प्रसन्न । खुश ।

आनन्द = का० कु०, ४५ ।

[सं० स्त्री०] मर्यादा । मर्यादा । मोग्य । प्रतिभा ।

(हि०) प्रण ।

आनन = का०, १६८ । का० कु० ६६ ।

[सं० पु०] (स०) मुख । मुह ।

आनन सरोज = १०, ६२ ।

[वि०] (स०) मुखवर्षी कमल ।

आनि = वि०, १६८ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) लाकर ।

आनी = वि०, ५७ ।

[द्व० क्रि०] (प्र० भा०) (आनि) ।

(प्र० भा०)

आने = का०, १२५, १७८ १८६, २२० ।

[क्रि०] (हि०) आ०, ३२ ।

लाण । ल आए ।

आप = का०, ११, २१, ३१ । का०, कु०, ६८ ।

[मव०] (हि०) का०, १३६, १६३, १६६ । वि०,

५३, ६४, ६५, १०६ । अ०, ६३,

६४ । म०, २१, २३ । ल० ५५ ।

स्वयं । खुद । तुम, तब, व व स्थान में

भादराय प्रयुक्त शब्द ।

आपान्तस्तक = का० कु०, ३० ।

[क्रि०] (स०) एका में चोटो तर ।

आपान्तश्चो = का०, ६ । १०, ६६ ६८ ।

[सं०] (हि०) आपान्त रा वृत्तचन । दुःख, वक्ता ।
विपत्ति मन्द ।

आपान्तवृत्त = का०, १४ ।

[सं०] (स०) आपनित्य का समूह ।

आपान्तक = का०, २१ ।

[म० पु०] (स०) मन्त्रालय । मधुगाना ।

आभा = का० ११८, २८८ । का० कु०, १०० ।

[सं०] (स०) वि०, २१ २८, ६० १०७, १०६ ।

जाति, प्रभा द्युति दाता । भात
छाया प्रतिबिम्ब ।

आभारी = का० २२६ । का०, १७ ।

[वि०] (स०) उपरुत ।

आभास = का०, ४६ ।

[म० पु०] (स०) भक्त, छाया प्रतिबिम्ब । मकन ।

आभूषण = का०, १८१ १८२ । म०, १३ ।

[सं० पु०] (स०) भूषण, गहना ।

आभरण = का०, १२५ ।

[सं० पु०] (स०) निमग्न, धारा ।

आमन्त्रित = का०, ३३ ।

[वि०] (स०) निमन्त्रित ।

आमखास = का० कु०, १०८ ।

[सं० पु०] (स०) महान् क भस्तर राजा स लागे के
मिलने का स्थान ।

आमिष = का०, १११ ।

[सं० पु०] (स०) भोग्य वस्तु । ताम्र, कृष्ण । माम ।

आमृत = वामावनी ।

[सं० पु०] (स०) भूमिका । प्रस्तावना । [वामावनी की
प्रस्तावना द्वारा निम्ना पृष्ठ ३ से ८ तर
का महत्त्वपूर्ण भूमिका जा वामावनी के
अध्ययन व लिय सक्तमुत्र प्रस्तुत
करती है । ३०—वामावनी की कथा
और वामावनी का रूपन तत्त्व ।]

आमोद = का० कु०, ५१, ५३ । का०, ६४,

[सं० पु०] (स०) १३३ । वि०, १ ।

प्रसन्नता, हय, खुश ।

आमोदभरी

आमोदभरी = का०, १८३।
[वि०] (हि०) प्रसन्नता से भरी हुई। हृष्यमान।

आयत = बि०, २२।
[वि०] (ध०) विस्तृत, दीर्घ विमाल।

आया = क०, २१। का० कु०, १६ ३४,
[क्रि० प्र०] (हि०) १०२। २६१। का० १४३, १६७।
क०, ६६। म० ११, १५। १६६,
१७८, २०६ २१६, २५०। ल०, ३६,
६८। उपस्थित हुआ।

[आया देवो विमल वसत—इदु वत्ता ५ विरल
२, फरवरी १६१४ मे विनाद बिंदु के
भतगत प्रवाहित तथा करना मे सक-
तिन प्रतिम रचना (पृष्ठ ६६)। क.व
का कथन है कि विमल वसत आ गया
हैं देखो कला सुश्रवणा सुदतर समय
आया हुआ है। है नाथ मनमानल
पर धार धार हस्त हस्त पधारा। वसत
सभी मुमन खिल जाए स्वागत मे हम
स्वयं माला लिए हुए लड़ ह प्रौर प्राण
रूपी कोकल भी स्वागत मे वचन स्वर
जहरी मे गा रहा है। ०—करना
प्रौर बिंदु।]

आयी = का० २८५, २८६।
[क्रि० प्र०] आया का स्त्रालिग।

आयुध = का० १४१।

[सं० पु०] (सं०) नख।

आये = का०, ११२ ११४, १४२ १६० १७५,
[क्रि० प्र०] (हि०) २८५ २६०, २८७ २८८। क० ३२,
६३ ६३।

उपस्थित हुए।

आयो = बि० ५३ ५४ ६० ७३।
(सं० भा०) (सं० भा०)

आरक्षि = बि० १६३।

[वि०] (सं०) रक्षाम। अरक्षाम।

आरक्ष्यक = का० १२।

[वि०] (सं०) जगती। वय। बनना।

आरति = बि० ४१।
[सं० को०] (हि०) विरति।

आरभ = का० कु०, ४८। का०, ३४, ७५।
(सं० पु०) क०, ८८। म०, ५। ल०, ६५।
शुभ्रात। प्रारभ।

आरभिक = का०, ७२, ७६, १४०।
[वि०] (सं०) प्रारभिक। शुरु की।

आरसी = बि०, ७१।

[सं० को०] (हि०) दण। शीमा।

आराधना = का० कु०, ७२।

[सं० को०] (सं०) पूजा। उपासना।

आराधो = बि०, ७४।

[क्रि० सं०] (सं० भा०) पूजा करो। उपासना करा।

आराध्य = का०, १६१।

[वि०] (सं०) पूज्य। पूजनीय। उपास्य।

आराम = का० कु०, ६६। बि० १६, ४६,

[सं० पु०] (सं०) १६४।

उद्यल। वाग। कुन्वारी। उपवन।

आरुढ = बि० १५७।

[वि०] (सं०) बढा हुआ। विवरण करता हुआ।

आरोहण = का०, १८१।

[सं० पु०] (सं०) बढना। सवार होना। प्रचुर निह
लना। माली।

आर्ति = ल०, ६५।

[सं० पु०] (सं०) पीडित। बदनामस्त। बोट क्षाय
हुआ। दुहित।

आर्तिग्राह = बि० २।

[सं० पु०] (सं०) दुखी की रक्षा। पीडित का उद्धार।

आर्ति = सं० १५।

[वि०] (सं०) शीमा। सर। लयपद। गीता।

आर्य = का० ६, १०, ३१। का० कु० ६८,

[वि०] (सं०) १०१ १०२। बि० २। म० = १।

श्रेष्ठ। उत्तम। बडा। पूज्य। श्रेष्ठ
कुतोन्वय।

आर्य जाति = म० ६।

[सं० पु०] आदि मन्व जाति।

आर्यनाथ = म०, १०।

[वि०] श्रेष्ठ पुत्रा व स्वामी। आर्य जाति व
(सं०) स्वामी।

आर्यपताका = का०, १० ।

[म० स्त्री०] (स०) ग्राम जाति की ध्वजा ।

आर्य मंदिर = वा० कु०, १२० ।

[स० पु०] (स०) ग्राम जाति का देवस्थान ।

आर्य राज्य = म०, १० ।

[म० पु०] (स०) श्रेष्ठ राज्य । आर्य जाति का राज्य ।

आर्य वीर = वि०, १३ ।

[म० पु०] (स०) श्रेष्ठ वीर । महान योद्धा । आर्य जाति (स०) का बरवान पुत्र ।

आर्य-दूत = वा० कु०, १०५ ।

[म० पु०] (स०) श्रेष्ठ युवकों का समूह । आर्यों का (स०) समुदाय ।

आर्य शिल्प = वा० कु०, १०८ ।

[स० पु०] (स०) आर्यों का कला-वीक्षण ।

आर्योंनत = वि०, ३ ।

[स० पु०] (स०) आर्यों का निवास स्थान । उत्तरी भारत ।

आर्य = वा० कु०, ४५ । वि०, १२ १३,

[वि०] (स०) १०० । म०, ६, ७ ।

ऋषि सवधी । ऋषिभृत । वदित ।

आलमगीर = वा० कु०, १०८ ।

[स० पु०] (म०) मुगलमन बादशाह औरंगजेब की एक उपाधि ।

[आलमगीर—मुगल सम्राट मुहीउद्दीन मोहम्मद औरंगजेब ने सन् १६५८ ई० में अपने पिता शाहजहाँ की कद बर मिहानना-रुद्ध होने पर अपने लिये 'आलमगीर' उपाधि धारण की, जिसका अर्थ होता है विश्वजयी । मृत्यु—महमदनगर दक्षिणी भारत में १७०७ ई० ।]

आलस = भा०, ७४ । वा०, ११, ७०, ७२

[स० पु०] ११८, १४२ । वि०, १०६ । म० ३१, ६४ । प्रे०, १८ । न० ३१, ६४ ।

आलस्य, सुस्ती ।

आलस्य = का०, ४५ ।

[स० पु०] (पु०) सुस्ती, नाहिली ।

आलाप = वा०, १७८ । वि०, २६ ।

[स० पु०] (म०) बातचीत । बातना । गते समय सातो स्वरों का राम सहित उच्चारण । गान ।

आलिगन = भा०, ७३ । वा०, १२, ११, २०, [म० पु०] (म०) ८६, ६७, १२५, १४०, १७५ १७७, १८१, २४५ २५०, २६३ । वि० ३६, ६४ । म० ३६ । न०, ११, २१, ३४ ।

परिरक्षण, भववारी, गले में लगाना ।

आलिगित = वा०, २३५ । वि०, १६३ ।

[वि०] (स०) परिरक्षित ।

आलियों = वि०, ४६ ।

[म० स्त्री०] (हि०) (२० 'अलिपा' ।)

आली = का० कु०, ३६ । वि० ५८ । ल०,

[स० स्त्री०] १६ । (२० 'अली' ।)

आलोक = भा०, २४, ५५, ५७, ७२ । का०

[स० पु०] कु०, २५, ४३ ६३, ६६, ६२, १२६ ।

का०, ३४, ६५, ६६, ८१, ८७,

११२, ११४, १६७, १६८, २४१,

२५२, २६१ । वि०, २० । म०, ३४ ।

म०, १३, १८ ।

प्रकाश, उजाला, ज्योति । दशन ।

बौद्धी । किसी विषय पर लिखित

टिप्पणी प्रथवा सूचना ।

आलोक अधीर = का०, ११ ।

[म० पु०] (हि०) प्रकाश के लिये धर्मरहित ।

आलोक किरन = वा०, २२५, १८१ ।

[म० स्त्री०] (हि०) ज्योति किरण, प्रकाश रश्मि ।

आलोकपूरन = वा० कु०, ४२ ।

[वि०] (हि०) प्रकाशपूर्ण । आलोक से भरपूर ।

आलोक भिरारी = वा०, १८४ ।

[वि०] (हि०) प्रकाश का मिश्रक । आलोक का इवत्रुक ।

आलोक मणि = का० कु०, २६ ।

[स०] (म०) प्रकाशमय रत्न ।

आलोकमय = म०, ५७ ।

[वि०] (म०) प्रकाशमय । प्रकाश से युक्त ।

आलोकमयी = भा०, ६८ । का०, १०४, १६६ ।

[वि०] (स०) प्रकाशयुक्त । प्रकाश से भरी हुई ।

आलोक रश्मियाँ—का० १२० ।

[स० स्त्री०] (हि०) प्रकाश का किरणें ।

आलोकनिधु = का०, ७५, २६४ ।

[म० पु०] प्रवाश का कद। प्रवाश का मुख्य स्थान।

आलोक शिखा = का०, १८२।

[म० स्त्री०] (म०) प्रवाश की चोटा। प्रकाश का उद्यति।

आलोकहु = चि १३६।

[त्रि०] (प्र० भा०) भलाभाति देखो। (१० 'अवलोकन'।)

आलोकित = का० कु०, १२०। का० १८१। चि०, २०। अ०, ८६।

(स०) प्रकाशित। उद्यतिमय।

आलोकन = का०, १७।

[म० पु०] (म०) मयन। हिडोरला। मयन।

आवत = चि० १४ १६ ५८, ६४ ७०।

[त्रि०] (प्र० भा०) माना।

आवत ही = चि०, १४७ १५६।

[त्रि०] (प्र० भा०) मात ही।

आवन = चि० ६६।

[म० पु०] (प्र० भा०) आगमन।

आवरण = का०, ६५ ६६ ६८ ६९, १३६ १४७ १४९ १६४। अ० ६९।

(म०) ल०, १७६ १६२ २०६, २५२।

आच्छादान। ढक्कन। ढपना। किसी वस्तु पर लगेटा गया वस्त्र। पदा। बैठन। दावात इत्यादि का धरा। घानन।

आवरणयुक्त = का०, २८।

[चि०] (म०) आच्छादित।

आवर्जिता = का० १०२।

[चि० स्त्री०] (म०) लकड़ा छाड़ी हूँ।

आवर्तन = का० ११ २० ७२।

[म० पु०] विराव। घुमाव। जबबर दना।

(म०) विनोक्त मयन।

आवश्यक = म० ७५।

[चि० म०] जिस अवश्य होना चाहिए। जरूरी। काम का। मापन।

आवरणयुता = का० २०। प्रे० ३।

[म० स्त्री०] (म०) आवरण। जरूरत। प्रयाजन। मननव।

आवही = चि० ५१।

[त्रि०] (प्र० भा०) भात है।

आवहु = चि०, १५६।

[त्रि०] (प्र० भा०) भाण।

आवास = का० कु०, ६६ १०८। का० ८७।

[म० पु०] (प्र०) घर। निवास स्थान। रहने का जगह।

आवाहन = का० कु० २६।

[म० पु०] (म०) बुलाना। पुकारना। निमंत्रित करना।

[आवाहन—दुहु कला ३, विरला ३ करवरी १६१२ में प्रकाशित कवित। चित्राधार में सकलित। १०—मकरद बिंदु और चित्राधार।]

आवृत्त = का० १६१ १६६ १७२, २७७

[चि०] (म०) अवगुठन। छिपा हुआ। घिरा हुआ।

आवे = का०, १४८, १६५, १८२, २१६

[त्रि०] (हि०) का० कु० ५६। चि०, १०८। अ०, ३६, ४३।

उपस्थित हो।

आवेग = का० कु० ५३। चि०, ५६।

[म० पु०] (म०) जोश। चित्त का प्रबल बग। उ कठा महित मन का बग।

आवेश = का० ५८।

[म० पु०] (म०) जाश। मन का प्रेरणा। भाव। बग।

व्याप्ति। संचार। दौरा।

आशाएँ = का० १०६।

[म० स्त्री०] (हि०) शका। शक। सह। भय। डर।

आशा = चि०, १६६।

[म० स्त्री०] (हि०) (देखिए 'माया'।)

आशा = का०, ६७। का०, १८। का० कु०, ५० ६५। का०, २७, ५०, ६४

(म०) १०६, ११३, ११४, १३० १४५

१६६, १६६, १७७, १८४ २२५,

२६४। चि०, ८, १७ १८, ६४

१४१ १४३। अ०, २३ २७ ३३

४० ४१ ४८, ७०, ७१ प्रे० १।

ल०, १८, ४०, ४४, ५७ ६१, ७२

७४ ७५।

जिमा पनाय व पान का इच्छा या

कामना। अग्रत का पाने की आकांक्षा।

[आशा—३०—कामपनी की कथा।]

आशामय = का० कु०, ११६। चि०, ६८।
[वि०] (स०) प्रे०, ३।

आशा से पूछ। आशा से भरा हुआ।
कामनामय।

आशामयि = का०, २३७।

[म०] (हि०) आशामयी का संबोधन।

आशालता = भ०, ५६।

[म० स्त्री०] (म०) आकांक्षा स्त्री। बल्लरी।

[आशालता]—करना, पृष्ठ ५८ पर ३० पंक्ति का ५ पदो में सङ्कलित गीत। प्राणेश की कहणा ने नव माह्न वंश बनाकर दीनता का अवनयन और इगस स्नेह बढ़ाया। इनलिये लता बहणा का शुभ हाथ पा घनात बढ चली। नित्य स्वण घट में प्रवृत्ति के याग स कांति का जल दानता अथात भरती थी। दया व स्पक स वह मुरभि का घाम बन गई। मधुपों को बुलाया और व उसपर प्राण योद्धावर करने लगे। सिंचन का यह अविरल अनिवार्य क्रम बहुत दिनों तक चलता रहा। फलत लता को अक्षुर मात्र मिला और एसा करत करते एक दिन बरणा ऊँ गइ और वाली "आशालता बहुत ले चुपा और वह वादित दाव नहीं देती। सींचन का फल ता यहाँ मिला कि फल बी हाम न लगा।" धार नाल घनमात्रा केवल दीनता का वृष्टि करती था। २० करना।]

[आशा बिकल हुई है मेरो—राज्यश्री' एवं 'प्रसादनगीत' का पहला गीत। प्रेम के लिये अर्पण मुरमा गाती है कि उसक मन की प्यास कभा नहीं बुझी और उमका भाषा व्याकुल हो गई है। नव धन की ध्वनि भी उम नहीं सुन पड रहा है और शातल सरोवर उनस दूर हट रहा है, यहाँ तक कि वह आभन हा होनेवाला है और प्रतीक्षा व प्रति उमका आस्था शिथिल हावी जा रही

है। और अत मे कहती है कि र बेन्दी। पीडा से हारी अथमरी घायन दुखियारी में जावनधन की गठि भूतकर मिमक रही है। यह दम पक्ति का गीत है। २०—प्रमाद समीत।]

आशिप सह = चि० ७३।

[य०] (ब० भा०) आशीर्वाद के साथ।

आशीप = चि० ६०।

[म० स्त्री०] (ब० भा०) घमीस। आशीर्वाद। हुआ। शुभ वा वयाग की कामना।

आशुतोप = चि० ६६, १५२।

[वि०] (स०) शास्त्र समुद्र हानवाला।

आशुशान्ति = चि०, ६६।

[म० स्त्री०] (म०) शीघ्र शमन।

आश्चर्य = का० कु०, १०६। का०, २२। प्रे०, ४।

[स० पु०] (म०)

अचभ। ताज्जुब। रस के नौ स्थायो भावो मे स एक।

आश्रम = का०, १८, ३०। का० कु०, १०५,

[स० पु०] (स०) १०६। चि०, ५८।

ऋषिया, मुनियों के रहने का स्थान। निवास स्थान।

आश्रय = का० कु०, २८, ४४, १२५। का०,

[म० पु०] (म०) १००, १८१, १८२, १८५, १६३।

५०, ३६। प्रे०, ११।

सहारा। आधार। अवलंब। भरोसा।

जीवन निर्वाह का अवलंब। धर।

मकान।

आश्रित = का० कु०, ४४। का०, २२६।

[वि०] (स०)

आधार पर ठहरा हुआ। वशवर्ती,

अधीन। सबक, दाम।

आश्वासन = भा०, ४६।

[स० पु०] (स०) सात्वना। भरोसा।

आस = का०, २४७। चि०, ५, २७, ६६

[स० स्त्री०] (ब० भा०) १०१, १०८।

(२० 'आशा'।)

आसक्त = भ०, ६७।

[वि०] (स०) अनुरक्त। लान। लिप्त। मोहित। मुग्ध।

आसन = का०, १५। का० कु०, २६। का०,

[म० पु०] (सं०) १२३। प्र०, ४, ६।
उठको। जिम वस्तु पर बठा जाता है।

आस पास = का० कु०, ५४, ६७।

[क्रि० वि०] (हि०) चारों ओर। अगल वगल। पटोस।

आस भरी = चि०, १५१।

[वि०] (अ० भा०) आशा भरी।

आसप = का०, १८३। ल० ४७।

[सं० पु०] (सं०) फल या अन्न के रस से बनाया गया
मद्य। छाना हुए तरल रसोद। अक।

आसीन = चि०, ४१।

[वि०] (सं०) बिराजमान। बैठा हुआ।

आसीस = चि०, ३१।

[सं० पु०] (हि०) आशीर्वाद। दुआ।

आसु = चि०, १५।

(अ० भा०) आसरा। आश्रय। आशा।

आसुर = का०, २७।

[वि०] (सं०) असुर मन्थी। राक्षसी।

आसुरी = का०, २७, ३१।

[वि० स्त्री०] (सं०) असुर सभा। राक्षसी।

आह = का० ६५।

[ध०] (हि०) का०, ६, ११। का०, ६, ७, ३८, ४६,
५१, ५२, ५४, ८४, ९२, ९४,
१७६, २०७, २१५, २४८, २४९।
चि०, १२। अ०, २६। ल०, १०,
४०, ५७, ६४।

दुख चिता थीर शोक व्यक्त करने के
लिए प्रयुक्त ध्वनि। हाय। हूँ। हा।

[आह—चतुर्थ का गान 'निजल मत बाहर
दुर्जन आह'। प्रसादसंगीत में पृष्ठ
१०७-१०८ पर मन्थित। 'आह'
शेषक में माधुरी वष ५ खंड १
सन् १८२६-२७ में प्रकाशित। २०—
'निजल मत बाहर दुर्जन आह' और
प्रसाद-मन्थित।]

आहन = का० १२। का० २००, २४५।

[वि०] (म०) चि०, १६।

धामल, जन्मी।

आहरण = चि०, २२।

[सं० पु०] (म०) धुराना। धानना। जबरन लाना।

आहरे = ल०, २१।

[अ०] (हि०) दुःख व्यक्त शब्द। हाय र।

[आहरे वह अधीर शीघ्र—'हम', अग्रिम १६३१
में प्रकाशित और लहर, पृष्ठ २१ पर
संकलित एक लघु गीत। २०—'लहर'।]

[आह वेन्ना मिली प्रिया—विदाई शीर्षक से
माधुरी, वष ६, खंड २, सन् १८२७—
२८ में प्रकाशित स्वर्णमय का गीत,
प्रसादसंगीत में पृष्ठ १०० पर संकलित।
दबसना का अंतिम गीत। उसका
आशय है कि मैंने अमवशा जीवन में
संचित प्रेम लुटाया। मेरी यह यात्रा
नीरव चलती रही। अंतिम स्वप्न की
माया में उनीचे इस पवित्र का यह
विश्रांति का तान जिसने सुनाई।
सबका सासली दृष्टि कब से बंधाकर
मैं फिरती ही रहूँ फिर भी पगली
आशा न सारी बचाई लो डी। मेरे
जीवनरूपा रूप पर काल स्वयं बंद
कर चल रहा है फिर भी अपने इन
दुःख पावा के बल पर मैं उससे हाथ
लिया पर अब—

खोटा लो यह अपनी माती,
मेरी करण हा हा लाती।

विश्व न सभलगी यह मुझसे,

इसने मन की लाज मचाई।

यह रमसिद्ध गीत अत्यंत भावप्रवण
तथा मोति के समी तत्वा से संकलित
है। २०—प्रसाद संगीत।]

आहृति = का०, ३२, २३६, २४२। चि०, ६७।

[सं० को०] (म०) मन द्वारा अंगित म पृत, सामग्री आदि
आलना। होम। उपाग, त्याग।

आहृतियों = ल०, ५६।

[सं० स्त्री०] (हि०) आति का व्यवहार।

आहार = का०, १३। चि०, १८। ल०, ११।

[सं० पु०] (सं०) म०, २२।

आजन। नाथ वस्तु।

इ

इमि = का० कु०, ५७। ल० ६१।

[सं० पु०] (सं०) इनाप। चेष्टा। मदन चिह्न।

इंदिरा = का०, २८ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) लक्ष्मी । आभा, छवि ।

इंदीवर = का०, ६५, १४२ १७५ । चि०, ६७ ।

[सं० पुं०] (गं०) वसन । नील वसन । नीलरत्न ।

इंदु = का० कु०, १, १७, ४३ ५१, १०० ।

[सं० पुं०] (सं०) चि०, १०७ । ल०, ३५ ।

चंद्रमा, मणि । वपुः ।

[इंदु—प्रसादजी का प्रेरणा से उनके भाजे बाबू धर्मिदाप्रसाद गुप्तजी ने इन पत्रिका का प्रकाशन थावला सुदी २ सं० १९६६ में किया, इन पत्रिका में प्रसादजी की भारभ की रचनाएं प्रकाशित हुईं । यह पत्रिका लगभग १॥ वष लगातार निवर्तनी रही । फिर बीच बीच में बंद होती रही, और यह क्रम सं० १९७३ तक चलता रहा । फिर १० वष के पश्चात् हमका प्रकाशन भारभ हुआ । पांच वष इग्वे पुन प्रकाशित हुए और पत्रिका सदा के लिए बंद हो गई ।]

[यह पत्रिका प्रसादजी के भारभिव साहित्यिक विवासात्म की व्यक्त करती है । इन लिए हमका महत्व एतिहासिक है ।]

इंदुकर = का० कु०, ४२, १०० ।

[सं० पुं०] (सं०) चंद्रकिरण ।

इंदुकला = चि०, १४५ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) चंद्रकिरण । चंद्रमा की कला ।

इंदुहि = चि०, ५६ ।

(गं० भा०) (गं० 'इंदु') ।

इंद्र = का०, १५ । का०, ४७, १६० ।

[चि०, सं०] (सं०) विष्णुतिमपन । ण्वर्यमान । भारत का प्रथम सम्राट् । देवताओं का प्रथम सम्राट् ।

[इंद्र—इंद्र का चचा उवशी वपु, बरखाालय, कामायना, अश्रुवाहन, ब्रह्मापि म है । कामायनी के इंडा सर्ग में वृत्रामुर के बध के प्रथम म भी इमका उल्लेख है ।]

इंद्रजाल = का० ३८, ४६, ६७, १३६, १७०,

[सं० पुं०] (सं०) २२६, ७६१ । ल०, ७३, ७७ ।

जादू । माया वम ।

[इंद्रजाल—और वह दगा सुंदर दृश्य, नयन वा इंद्रजाल धमिराम ।

कामायनी श्रद्धा गर्भ का यह घन (पृष्ठ ४६ पृष्ठ तक) इंद्रजाल शापक से 'मायुरी' वर्ष ७, खंड १, सन् १९२८-१९२९ में छपा था । २०—कामायनी की कथा ।]

इंद्रधनुष = भा०, ३४ । का०, १६४ ।

[सं० पुं०] (सं०) वह सात रंग का भयवृत्त जा वर्षा ऋतु में सूर्य के विलाम दिशा में दील पड़ता है ।

[इंद्रधनुष—'इंद्र' बना २, किरण २, भाद्रपद १९६७ में सप्तप्रथम प्रकाशित । चित्राधार में 'पराग' के अंतर्गत पृष्ठ १६४ पर संकलित । इंद्रधनुष के रंग और शोभा का वर्णन करने के उपरांत कवि कल्पना करता है कि यह क्या कथा है और अंत ॥ कहता है—

पावन ऋतु की विजय वजयती है फहरत ।
नवल चिनारी सब रंगन की लिलि धनुहरत ॥
कियाँ मानु के सप्त अक्षर का बणा यह ।
विषी मेघ वाहन वाहन पै घरे धनुष यह ॥
२०—चित्राधार और पराग ।]

इंद्रनील = का० २४ ।

[सं० पुं०] (सं०) नीलम, नीलमणि ।

इंद्रधूटी = चि०, १५७ ।

[सं० स्त्री०] (सं० भा०) बारबहुटा ।

इंद्रिय = का०, १३० । का० कु०, ८२ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) शरीर के दश अंग या भवयन जिनमें बाह्य जगत् का वाघ या शरीर श्रिया संपन्न होती है । य दस हैं—पांच ज्ञानेंद्रिय और पांच कर्मेंद्रिय तथा ग्यारहवा और ।

इक्षत = चि०, ७४ ।

[चि०] (गं० भा०) एवान । निरन्ता ।

इक्ष = का० कु०, १८, ४२, ५१ । चि०, ३५ ।

[कि०वि०] (गं० भा०) ४२, ५१ । फ०, ५६ ।

एव ।

इक्षुता = का०, १३१ । चि०, १० ।

[चि०] (हि०) एकत्रित । एक जगह बटोरा हुआ ।

इन्द्राकु = चि०, ५०, ६६।

[सं० पु०] (मं०) एक प्रमुख सूर्यवंशी राजा।

इन्द्राकु नश = क०, २६।

[मं० पु०] (मं०) इन्द्राकु का कुल। राम दशरथ अश्वत्थामादि प्रतापी मन्त्राट इन्द्राकु के वंशज थे।

[इन्द्राकु—वयस्वन मनु के पुत्र जो मृग वंश के आदि सस्यापव सम्राट थे। प्रमराज्य और करणालय में इनकी चर्चा है।]

इन्द्राकुकुल = क०, १०।

[मं० पु०] (सं०) इन्द्राकु राजा का वंश।

इन्द्रा = का०, कु० १२२। का०, ५३ ७२,

[मं० स्त्री०] (सं०) १२२ १४१ १४३, २६२। बि० २२। क० ७७।

बाछा चाह अभिलाषा।

इच्छित = क० १४।

[वि०] (सं०) राक्षस अभिलाषित।

इच्छाना = श्री०, १७। क०, ६। का० १००

[क्रि० प्र०] (हिं०) १४० २५८ २६२, २८१।

इच्छाना गरुड वरना, गव स भवडना।

इच्छा = का०, १६६, १७२, १८१, १८३

[मं० स्त्री०] (सं०) १८५ १८६, १८६, १६० १६१ १६७ २०६, २०७, २१२, २१३ २१४ २२६, २३०, २४४, २७७, २७६, २८०।

मनु की बुद्धि। बुद्धि की अभिप्राया देवा। इरा सारस्वता, भारती। माणी।

[इच्छा—बुद्धि का अभिप्रायी देवा तथा सारस्वत प्रदेश का रानी। >—कामायनी की कथा और कामायनी के चरित्र।]

इत = वि० ४१, ५३, ६६ १४७।

[क्रि० वि०] (हिं०) यहाँ। इतर।

इतना = श्री० ४८। क०, १३। का०, ८,

३८, ८४ १००, १०४, १४४, १४५ १८०, १६१, २०८, २२३, २३४, २३६, २७२। क०, ७६। मं०, १५। ल०, ४४ ७१।

इत मात्रा में, इत कदर इस समय में, इत बाव में।

इतर = क०, ६४।

[वि०] (मं०) भय। दूभय। नीच। गाधारण।

इतराई = चि०, १४७, १५२।

[ध०] (श्र० मा०) गरुड त भर कर।

इतराई = श्री०, ६८।

[क्रि०] (हिं०) इतरा गई।

इतराता = का०, ६८।

[वि०] (हिं०) इतराता हुआ।

इतिप्रलोना = चि०, १३३।

[मं०] (सं०) इस प्रकार छिया हुई। इस प्रकार हुआ हुई।

इतिहास = का०, ३८। स०, ५२।

[मं० पु०] (मं०) विगत प्रसिद्ध घटनाओं और पुरुषों का वानप्रज में अनुसार वगण। तवारीख।

इधर = का० ११, ५२ ८२, १८१, २३३।

[क्रि० वि०] (हिं०) इस तरफ। इस ओर।

इधर उधर = का० १७८।

[क्रि० वि०] (हिं०) इस तरफ उस तरफ। इस ओर, उग आर। इतस्तत।

इन = का० ४४। क० ३१। वि०, ६४

[सं०] (हिं०) ७४। ल०, ४६, ७६।

इस शब्द का बहुवचन।

इही = ल० ७६।

[सं०] (हिं०) इन लोगों की हा।

इमि = चि०, ६१।

[क्रि० वि०] (हिं०) ऐम, इस तरह।

इष्ट = का० कु०, २८।

[वि०] (मं०) चाहा हुआ, ईप्सित, आकांक्षित।

इस = क०, ६ ११, २५, २६, ३०, ३१।

[सर्व०] (हिं०) का० ८४, ८७, १५६ १५४, १७०,

२७०। क०, ४०, ४१, ४८, ५६, ८१।

वर्तमान वस्तु का ओर सवेतबोधक शब्द।

इसीलिए = का०, १६३। क०, ५४।

[क्रि० वि०] (हिं०) इसी वजह से। इसी कारण से।

ई

ईयाँ = का० कु०, ३१। का, ८४।

[सं० स्त्री०] (सं०) दूमरे का साम या उत्पन्न देखकर जचना।

[ईर्ष्या—वामायनी का एक सग। २० वामायनी की कथा।]

ईर्ष्यापन्न = का०, ८४।

[म० पु०] (म०) ईर्ष्या की हवा। दूसर के उत्कर्ष का देखकर जलने का भावना की हवा।

ईप्सित = का०, १४।

[वि०] (म०) इष्ट। चाहा हुआ। प्रत्याशित।

ईश = का० कु० ११६। का०, ६ ५३।

[म० पु०] (म०) वि०, ७४। प्रे०, ३।

ईश्वर। भगवान्। स्वामी। राजा। मालिक। शिव।

ईशकृपा = का० २६।

[म० लो०] (म०) ईश्वर की कृपा। भगवान् की दया।

ईशान = वि०, १५५।

[म० पु०] (म०) अधिपति। स्वामी मालिक। शिव। महादेव। परमात्मा। स्यारह क्रमा म से एक। स्यारह की मख्या। पूरव और उत्तर का कोना।

ईश्वर = वि०, ५, ७४।

[म० पु०] (म०) भगवान्। परमात्मा। शिव। याग शालानुरूप बलेश। बर्मविपाक तथा अक्षय स पृथक।

उ

उंगली = का० कु०, ६३। का०, ६७, २००,

[म० लो०] (हि०) २१३। का०, ७२।

हथेली में छुआ हुई पाँव शालाएँ जिनमें श्रीं पकड़ी जाती हैं। इन पाँव में से प्रत्येक को उंगली कहते हैं।

उह = वि० ४।

[म०] (हि०) सम्मीकार घृणा या बेपरवाही का सूचक शब्द। वेदनासूचक शब्द। कराहने का शब्द।

उकसाना = ल०, ५६।

[क्रि०] (हि०) उभारना। ऊपर उठाना। उठा देना। उत्तेजित करना।

उखड़ी = का०, १६।

[क्रि०] (हि०) दृढ स्थिति से हटी।

उगना = मा०, १४ ७८।

[क्रि०] (हि०) उदय होना। जमना प्रकुरित होना। उत्पन्न होना। उपजना।

उगलना = मा०, २०। का० कु०, २४, २५।

[क्रि०] (हि०) का०, १४।

गुप्त तथ्य या बात बता देना। पट के भीतर की चीजा का मुख द्वारा बाहर निकालना।

उग्र = ल० ७७।

[वि०] (म०) कठार। भयकर। उकट। तीव्र। प्रचंड। प्रबल। धीर। रौद्र।

उचित = का०, २३। का० कु०, ७१। वि०, ६०, ७।

[वि०] (म०) योग्य। ठाक। सुधामिव। बाजिव।

उच्च = का० २२८।

[वि०] (म०) उन्नत। ऊँचा। श्रेष्ठ। उत्तम। महान। बडा।

उच्चरुतल = का० ३८ २२०। प्रे० २४।

[वि०] (म०) जो शृंगनाबद्ध न हो। क्रमहीन। निरकुश। स्वच्छावाही। उद्द।

उच्छलित = का० १६१।

[वि०] (हि०) छनका हुआ।

उच्छवास = मा०, ५३, ७१। का० ५४, २६०।

[म० पु०, (म०) ल०, ११।

उत्साह। ऊपर का भार रीची हुई नाम। श्वान। प्रय का विभाग या प्रकरण।

उच्छ्वासमय = का० कु०, ७३। का०, ६१, १६५,

[वि०] (म०) २८१।

उच्छ्वास से पूरा।

उछल्लि = वि०, ७०।

[क्रि० वि०] (प्र० भा०) उछल कर।

उछाल = का०, ८३। वि०, १६१।

[म० पु०] (हि०) महत्ता ऊपर उठने की क्रिया। ऊपर उठने की हद। ऊबाई। छोटा। पलंग।

उछालि = वि०, ४२।

[क्रि०] (प्र० भा०) उछालकर।

उछाह = वि०, ६६।

[म० पु०] (प्र० भा०) उत्साह। उमग।

उजडा = का०, २०, ४६, १५८, १६०, १६६,

[वि०] (हि०) १७१।

धस्त। धस्त यस्त। नष्ट।

उजरी = बि० ५१।

[वि०] (२०) उजरी। नष्ट हुई।

उजला उजले = का०, १६६, २३३।

[वि०] (हि०) उज्ज्वल, निमल, साफ। श्वेत।

उजरी = बि०, ५६।

[क्रि०] (२० भा०) उजारी हुई। नष्ट की गई।

उजला = का०, ५१, ६२, ६३। का०, १६,

[स० पु०] (हि०) २८४। अ० ४८।

प्रकाश। अपने कुल, परिवार या देश
काल में उत्तम।

उजल = बि०, ४३।

[वि०] प्र० भा०) (२० उज्ज्वल)।

उज्जल = का०, १७, ५८, ७२। का० कु०,

[वि०] (म०) ३८, ४१, १२०। का० १०२ १२५,

१३०, १४१ १६८ २५१ २७६।

बि० ७१, ७२। अ०, ६६। म०

३। ल० ११, १२, ३०, ३४, ६७।

उजला। सफे। साफ। चमकता

हुआ। निर्दोष। पवित्र। निमल

स्वच्छ।

उटजो = ल०, ३२।

[स० पु०] (हि०) कुटियो, भोपडिया। (म०) उटज जा
का हिंसा बचपन।

उठ = ल० १।

[क्रि०] (हि०) उठो। (द० 'उठना')।

[उठ उठ री लघु राघु लोल लहर—स्व० इच्छदेव
प्रसाद गीठ बेब बनारसी का 'तरंग'
पद के पहले शब्द में सन् १६३३ ई० में
'लहर' शीघ्र से मुद्रापृष्ठ पर सवप्रथम
प्रकाशित और 'सहर' का पदसा गात।
भक्तजीवन के मुखे तट पर कल्या की
भगडाई के समान और मलयानल की
मुखद छाया का समान मानद की तील
सहरिया जिक्र का छहरे। उठना
हुई मानद लहरा शीतल कामल चिर
आत्मा सी और दुगलित हठोले वचन
की भांति लोट जाती है जब कि कवि
का भाव है कि मानद का खेल वह
ठहरकर कवि स खेल ले। मानस में
उठ उठ कर गिर गिर कर माने में वह
ओ निशान छाड़ जाता है उससे जीवन

तट की रेत में और भी दुल का रेखाएं
उमट जाती है और उसमें मानद
उमिया का तरल हमी भर जाती है।
इसलिए कवि उसमें प्राग्रह करता है—
तू भूत न री, पवन बन में,
जीवन का इस मुने पद में
घो प्यार तुलन स मरी दुल
भा भूम तुलन का विरस भवर।
२०—सहर।]

[उठती है लहर हरी हरी—मुयबा का चार पंक्ति
का गायन। प्रसाद संगीत पृष्ठ १३ पर
संकलित। सुप्रवा नाग गाता है कि
मन्मथार में धार निगा में बंदा है न तो
नल्लन दिखाई पड़त है, ससार निम्नत्व
है कहीं कुछ दिखाया नहीं पड़ता, प्रलय
पवन का पड़बा लग रहा है और पतवार
पुरानी है, कहीं कुछ नहीं फिर भा
सर्प मचा हुआ है। ऐसी स्थिति में भी
चरबाया नहीं। धर्म स बड़ा पार लगेगा
—यह स्वर किमने छोड़ा है। द०
'प्रसाद संगीत'।]

उठना = का० १७, ३०, ५०, ५१, ७७।

[क्रि०] (हि०) का०, ८। का० कु०, ८, १६, ७५,

६५। का०, ८, १०, ३१ ३६, ५१

६८, ८२ ६६, ११८, १२५, १३६,

१३६, १४३, १४८, १५३, १५६,

१६४ १६८, १६९, १८४ १८५

१८६, १८०, २०६, २१२, २२१,

२३३, २४६, २४८, २५४, २५६,

२६३, २६२। बि०, ३४, ४६, ५८,

६५, ७०, ७४ १४३। अ०, २६, ६६,

७३। म०, १। ल०, ६ १३, ३४, ४२,

४५, ४७, ४८ ५२, ६६, ७० ७६।

ऊपर बढ़ना, उन्नत होना। उभाप
होना।

उड़ = का०, २३३। अ०, ६८।

[क्रि०] (हि०) उड़कर। उड़ो।

उड़ती = का०, १७५।

[क्रि०] (हि०) हवा में एक स्थान से दूसरे स्थान पर
जाता। पृथक् होना। फांका पड़ता।

उड़ना = का०, १४। का० कु०, १८, २५,

उडा

(हि०)

६६ १०७। कर्त्ति०, ८८, १६२,
१८६।

वायु मे एव स्थान से दूसरी जगह
जाना। पक्ष के सहारे हवा में ऊपर
उठना। सहाराना फहराना। फीका
पडना, नष्ट या लुप्त होना।

उडा = क०, ७०।

[क्रि०] (हि०) उडना का भूतकालिक क्रिया।

उडाय = चि०, ५, १७०।

[क्रि०] (स० भा०) उडाकर। वायु में तैराकर। भगाकर।

उडाती = क०, २८।

[क्रि०] (हि०) उडने में प्रयुक्त करना।

उडावत = चि० ६२।

[क्रि०] (स० भा०) उडा रहा है।

उडुगन = का०, १७८, चि०, ३१, १०८।

[स० पु०] (हि०) तारा मडल। नक्षत्र मडल।

उडु दल = का०, २३५।

[स० पु०] (म०) ताराओं का समूह। तारा मडल।
पद्मा दल। पक्षियों का झुंड।

उडुराज = चि०, १४६।

[स० पु०] (हि०) ताराओं व स्वामी। नक्षत्राधिपति।
चंद्रमा। पक्षीराज।

उतना = का० कु०, ६, ६१।

[वि०] (हि०) उस मात्रा में, जितना वह है उसके
बराबर।

उतरना = का० कु०, ३०। का०, १४, १६,

[क्रि०] (हि०) २७१। चि०, ४७, ५८, ५९, ६२,
१०१। क०, ४८।

ऊँचे स्थान से क्रम से नीचे की धारा
पाना।

उतराई = ल०, ४३।

[स० जी०] (हि०) ऊपर से नीचे धाने की क्रिया। नदी
के पार जाने का महसूल।

उतारना = प्र० स०, ८५। ऊपर न नाचे लाना।
हटाना। दूर करना।

[उतारोगे अब कब भू भार—स्कंदपुराण का गीत,
प्रसाद संगीत में पृष्ठ ८५ पर सकलित।
मानवपुराण भीर मुगदस का समकत
मान। प्रलय का हाहाकार मचा हुआ
है। भूगर्भ हरने के लिए अब कब

अवतार लोभे। कवि पुकार पुकार कर
भगवान् को सावधान कर रहा है अब
वह जाने क्याकि वह पुकार चुका। द०
प्रसाद संगीत।]

उताली = चि०, ५८।

[म० जी०] (स० भा०) शीघ्रता। उतावली।

उत्कठा = का०, ५०, १७९, क०, १२, ५४।

[स० जी०] (स०) प्रबल इच्छा, प्रबल कामना।

उत्तम = का०, १९२। चि०, ५।

[वि०] (स०) सर्वश्रेष्ठ सर्वोत्कृष्ट।

उत्तमता = का० कु०, ८२, ९३, का० २७१।

[म० जी०] (स०) श्रेष्ठता, उत्कृष्टता।

उत्तर = का० कु०, ४५। का०, ८१ १००,

[म० पु०] (स०) १५८। चि० ६८। म०, ३।

दक्षिण दिशा के सामने की दिशा।

जवाब। प्रतिवाद। प्रतिकार। एक

वदिक गीत। विराट राजा का पुत्र।

[उत्तर—'उत्तर' शीर्षक से विनोद बिंदु मे 'इंदु' कला
४ किरण ६ जून १९१३ में प्रकाशित
श्रीर मकरद विंदु क अतगत चित्राधार
मे पृष्ठ १८४ पर सकलित। द०—
चित्राधार एव मकरद विंदु।]

उत्तरगिरि = का०, १७।

[स० पु०] (स०) उत्तरी पहाड़। हिमालय।

उत्ताल = भा० ६०।

[वि०] (स०) लहराता हुआ। उंची तरगावाला।

उत्ताल जलधि = भा० ६०।

[म० पु०] (स०) ऊंची तरंगीवाला लहराता समुद्र।

उत्ताल जलधि वेला = भा०, ६०।

[स० जी०] (स०) महासागर का चिनारा। विशाल सिंधु
का तट।

उत्तुग = का०, कु० ५३, १०४, का०, ३।

[वि०] (म०) चि०, ६९।

बहुत ऊँचा।

उत्तेजना = का०, ९२। क०, ५३। ल०, ७१।

[स० जी०] (स०) प्रताप। प्रेरणा। मत्वा।

उत्तेजित = का०, १३४। १६५, २३७। म०,

[वि०] (स०) १५। क०, ३१।

प्रात्याहित। उत्प्रेरित।

उत्सर्ग = का०, ३०। का०, ५७, १०६।
[न० पु०] (म०) त्याग। छोड़ना। दान। यौद्रावर।
उत्सव = का० ८८ १०२, ११५। चि० ६४।
[म० पु०] (म०) प्रे० १३।
 उछाह। मंगल काय। धूमधाम।
 धानद मंगल का समय। त्यौहार।
 पर्व। समारोह।
उत्सवशाला = ल० ४८।
[म० का०] (स०) धानद मंगल का काय सपन्न करने का स्थल। रंग शाला।
उत्साह = का० कु० ११७। का० २७ ५१।
[म० पु०] (म०) १४, ६०, १०६, ११०, १८१ १८२।
 प्र० १८। ल० ७०।
 उमग। उछाह, जोश। हीमला।
 साहस। वीर रस का स्थायी भाव।
उत्साह पूर्ण = का० कु०, १६।
[वि०] (स०) जोश से भरपूर।
उत्साहित = चि० ६५।
[वि०] (म०) जाश से भरा हुआ उमगित।
उत्साही = का० २५७।
[वि०] (स०) उमग से पूर्ण। जाशाला। उत्साह से पूर्ण। हीमलशाला।
उत्सुक = का० कु० ८०। का० ५५।
[वि०] (स०) उत्कण्ठित, इच्छुक।
उत्सृजि = का० ४१। का०, १६, १२१ १६०।
[म० पु०] (स०) समुद्र। सामर। सिंधु।
उद्धृष्टी = चि० ४८।
[स० पु०] (प्र० भा०) (२० उद्धृष्टि)।
उत्थ = का०, २४१ २४४। चि०, २४ ३६,
[स० पु०] (स०) १०१। क० ३८, ५६ ६७।
 उगना। निकलना। प्रकट होना।
 बाहर आना।
उद्यत = चि० १०७।
[क्रि०] (प्र० भा०) उद्यत होना हुआ। निकलता हुआ।
उद्धार = का० ३२। का० ४६ ८१ १५६।
[वि०] (म०) १७२ २३६, २४८। चि० ४७ ५२,
 १४८। क०, ४१। ल०, ३४। म०,
 १७।

विशाल हृदय का, व्यापक हृदयवाला, दाता।
उत्तरता = का०, १४८। क०, ५२।
[म० मी०] (हि०) सहृदयता, उद्यता, दानशालता।
उत्पास = का०, १८० २३४। चि०, १६६।
[वि०] (हि०) ल०, ४४ ४८।
 रंजीता, विरक्त हुआ। तटस्थ।
उदासी = का०, १०६ ११० १२०।
[म० मी०] (हि०) विरक्तता। उदासीनता।
उदासीन = का० ५०। क० ६१।
[वि०] (म०) विरक्त। जिसका किसी कारण से किसी वस्तु से मन दृढ़ गया हो।
 तटस्थ। निरपक्ष। भगडे से भ्रमण।
उदासीनता = का० २६६।
[म० मी०] (स०) विरक्ति, उन्मादी।
उद्धित = का० कु०, का०, २३, ६७,
[वि०] (स०) २६१। चि०, १६४ म० ६।
 उग्र हुए। प्रकट हुए। निकले हुए।
 प्रकाशित।
उद्गम = का० १४० १६३, २६५।
[म० पु०] (स०) निष्काय। निकलने का जगह। मूल स्थान। प्रकुर।
उद्गीथ = का०, ३४।
[स० पु०] (म०) सामवेद के गायन का एक ध्रुव।
उद्गीथ = का० ८३।
[वि०] (स०) ऊपर गढ़न किए हुए।
उद्घोषित = प्रे० ७।
[वि०] (म०) तावज्जनिक रूप से सूचित की गई।
उद्गम = का०, ६१, ११६।
[वि०] (स०) बधन रहित। निरकुश। उग्र। उन्मत्त। स्वतंत्र। गम्भीर। महान।
उद्देश्य = का० कु०, ८३। क०, ८६।
[वि०] (स०) लक्ष्य। इष्ट। मतलब का। कहने योग्य वह वस्तु जिस पर ध्यान रक्त कर कोई बात कहा जाय। अभिप्रेत (पदार्थ या बात)।
उद्धत = ल० ७८।
[वि०] (स०) चञ्चल। उत्कट। उग्र। प्रचंड प्रगल्भ।

उद्धार = वि०, ५२। ल, १२।

[सं पु०] (सं०) मुक्ति। छुटकारा।

उद्बुद्ध = का० ६०।

[वि०] (सं०) जाग्रत। बुद्धिमान्। प्रबुद्ध। चतुर्थ।
ज्ञान प्राप्त किया हुआ।

उद्भ्रात = का० ४६, ६२। सं० २१।

[वि०] (सं०) भ्राति स युक्त। भूला हुआ। बकित।
भोववक्ता। घूमता या चक्कर मारता
हुआ। उन्मत्त, पागल। विह्वल।

उद्यत = क० ३१।

[वि०] (सं०) भुस्तत्। तत्पर। तगा हुआ। उठाया
हुआ। ताना हुआ।

उद्यम = क०, ३०।

[सं पु०] (सं०) प्रयत्न। प्रयत्न। उद्योग। मेहनत।
काम। धमा। व्यापार। व्यवसाय।
पशा।

उद्यान = क०, ६। वि० २१।

[म० पु०] (म०) बगीचा। बाग। फुलवारा। आराम।

[उद्यान लता—विनाशर] म पराग के अंतर्गत उद्यान
लता मायक स पृष्ठ १५३ पर सन्निहित
अज्ञाता की एक पारपरिक कविता।
लता तुम एकांत नीरस सर से जितना
हो वैच बनाकर मिलना चाहती हो
उतनी हो इसका दक्षता बढ़ता जाती
है पर क्या किया जाय माली तुमको
जहाँ सीपकर लगता है वही तुम्हारा
मन माता है इसलिए उम नीरस के
गले लौट कर तुम लग रही हो। ८०—
विनाशर श्रीर पराग।]

उद्योग = क०, ११। का० कु०, १३। वि०, ६,
[सं पु०] (सं०) ६५, १०१।

प्रयत्न। मेहनत। परिश्रम, प्रयास।
व्यवसाय।

उद्विग्न = म० ३।

[वि०] (सं०) उद्विग्न। धातुन। घबड़ाया हुआ।
व्याकुल।

उद्वेग = का० कु०, १३, ७३। का०, ५२।

[म० पु०] (सं०) म०, ५४।

चित्त की व्याकुलता। घबड़ाहट।

मनोविष। घ्रावण। जोष। भाक।
सचारी भावों में एक।

उद्वलित = का० ६ १२१ २२१। ल, २।

[वि०] (सं०) छनका हुआ। छनछनाया हुआ।

उधर = का० ४, २३ ३२ ८६, १० १४१,

[क्रि० वि०] (हिं०) १८४, १८६, २१५ २१८ २३३
५३, २१७।

उम तरफ। उम ओर। उहाँ।

उगार = का०, २६। ल० ३६।

[म० पु०] (हिं०) उगार। बज। छुटकारा। उद्धार।

उन = श्रॉ० २५, ४६। का० कु० २५

[सब०] (हिं०) २६। का०, १० ६६ १४३, १५८,

१७१, १७६, १८५, १८६, २००,

२३६, २५४, २७८ २६१। वि०,

६५। म० २, ३। ल, ४४, ४६।

‘उम’ का बहुवचन।

उनीदा = वि०, ३। ल०, ३१।

[वि०] (हिं०) नीद स भरा हुआ, ऊपना हुआ। उतिद्र।

उन्नत = का० कु०, ३०। का०, १३१, १६६

[वि०] (सं०) २४७। वि०, १३। ल०, ६३।

उत्कृष्ट। श्रेष्ठ। समृद्ध। बढा हुआ।

बढा। महान्।

उन्नतहृदय = म०, २३ २८।

[वि०] (सं०) विशाल हृदयवाला। उन्नत। महान्।

उन्नति = का०, ११० १८१, २३५, २६८।

[म० स्त्री०] (सं०) म० ६६।

वृद्धि। बढती। बढोत्तरी। समृद्धि।

का राग।

उन्निद्र = का० कु०, १००। का० ६८, १७१।

[वि०] (सं०) (‘‘उन्नीय’’)। (पु०) नीन् न तगने

का रोग।

उन्मत्त = का०, ६८, ७१, ६२।

[वि०] (सं०) मतवाला। पागल। मदाध। धमृष।

उमद = का०, १८४, १८३, २६२।

[सं पु०] (सं०) पायनपन, उमाद। (वि०) पागल। मत्त।

उन्मन = का० २८५।

[वि०] (सं०) अयमनम्क।

उमाद = श्रॉ०, ५४। का०, ७०, ६१, ६७

[सं पु०] (सं०) १००, ११६, २०१।

पायलपन। विनिता। रग र तपीय
गारी भाग म स लव।

उमात्क =

[नि०] (म०)

प्रे० १८।

नाथ बननाला। पायल करीगाया।

उन्मीलन =

[म० पु०] (म०)

का० ११ ७१।

(पक्ष वा) खुलना। लिखना। विरगित
हना।

उन्मीलित =

[नि०] (म०)

स० ३७।

विबलित। खुला हुआ। प्रकाशित।

उन्मत्त =

[नि०] (म०)

का० कु० ४। का० ८६ १५७।

१५८ १६१ २३४ २७७। म० ६।

खुला हुआ। वनरहित। निज। मुक्त
बिया हुआ।

उन्मेष =

[स० पु०] (स०)

का० कु० १२।

झर का खुलना। चमक। विषम।

उन्ही =

[स० पु०] (हि०)

का० कु० ४१। का०, २७८ २८४।

प्र० ६।

उनकी।

उपनुरण =

[स० पु०] (म०)

का० १०। का० १७ १८ ८२

साधन। नामश्री। सामान।

उपकार =

[स० पु०] (म०)

का० १०० २०६ २२६। क० ६१।

हित साधन। भलाई। नेकी। लाभ।

उपकारी =

[नि०] (स०)

का० १४६ २१०।

उपकार करनेवाला। भलाई करनेवाला।

उपकूल =

[म० पु०] (स०)

का० १६०।

तट किनारा। किनारे का भूमि।

उपचार =

[स० पु०] (स०)

का० ६४ ६५ १०५ १६६।

व्यवहार। प्रयोग। विनिता। इलाज
या सेवा। पूजन व अंग।

उपजती =

[क्रि०] (हि०)

क० ६१।

पदा होती। उत्पन्न होती। बनता।

उपजावन =

[क्रि०] (प्र० या)

वि०, ६३।

परा करते हैं। उत्पन्न करते हैं।

उपद्रव =

[स० पु०] (स०)

का० १६३।

उत्पन्न। हलचल। कथन। दगा
पसाद।

उपगान =

[म० पु०] (म०)

भा० ३६। म०, २०।

तर्किया। गुट्या। विगत। प्रम।
प्रणय।

उपभोग =

[म० पु०] (म०)

का० ६८।

त्रिषी वस्तु का उपयोग का मुग या
भारतना। काम म माना। भरतना।

उपयुक्त =

[नि०] (म०)

प्रे० २१। म० २४।

वाय उपिन। वाजिय। मुतासिब।

उपयोग =

[म० पु०] (म०)

का० कु० १३। का० १६३। म०,

१६ १६।

काम। व्यवहार। प्रयाग। वायना।

नाम वायना। प्रयाजन। प्रावश्यकता।

उपयोगी =

[नि०] (म०)

का० १४६।

काम में आनेवाला। प्रयोजनाय।
लाभकारी।

उपल =

[म० पु०] (स०)

का० १६७ २७८।

परपर। रल। बापन। घाता।

उपलग्रह =

[स० पु०] (स०)

का० कु० ५४ ६६।

परपर का दुवडा। बापन का दुवडा।
रल का दुवडा। शान का दुवडा।

उपलज =

[नि०] (स०)

का० कु० ३०।

प्राप्त।

उपलोपम =

[नि०] (म०)

का० २३६।

परपर के समान। बापन के समान।
रल के समान। शोला व समान।

उपजन =

[म० पु०] (स०)

का० कु०, २ ३५ ४६। वि० २२

६३। प्र० १३।

बाग कुज आराम उधान बाटिका
कुनवारी।

उपस्थित =

[नि०] (स०)

का० ३३।

विद्यमान। मौजूद। हाजिर। ध्यान म
आया हुआ।

उपहार =

[म० पु०] (स०)

भा० १७। का० कु० ५२। का०

१८१। क० ४२। वि०, ५४। ल०,

६२ ७६। प्र०, १३।

भेंट। नजर। नजराने की वस्तु।

उपहारों =

[स० पु०] (हि०)

का० १०। क०, ६४।

उपहार (स०) का बहुवचन।

उपहास = का०, २३। चि०, ६७। ल०, ११,
[स० पु०] (म०) ७६। अ०, ३३।
निदामुचक हास। हसा। ठट्ठा। मखौन।

उपादान = का०, २३७।
[म० पु०] (म०) प्राप्ति। मिलना। स्वीकार। ग्रहण।
वह कारण जो स्वयं कार्य रूप में परि-
णत होता है।

उपाधि = चि०, १३६।
[म० ली०] (स०) प्रतिष्ठामुचक पद। सिनाव। श्रीर को
श्रीर बतानेवाला छत्र। कपट। उपद्रव।

उपाय = का०, ११२, १२४, १७०, १७१,
[स० पु०] (स०) १८१, १६६, २६। चि०, ५०।
समीप पहुँचना। प्रयत्न। साधन।
मुक्ति, तरकीब। तरीका।

उपायान = चि० ४६।
[म० पु०] (स०) प्राचीन वृत्तान्त। कथा-कहानी। पुरानी
कथा।

उपालभ = का०, १२७। अ०, ४६।
[म० पु०] (म०) निदा, घुराई। उलाहना। शिवायत।
श्रीरहना।

उपाय = चि०, १६६।
(ब्र० भा०) (दे० 'उपाय')।

उपासना = का०, ७१, १५७, १६१, २४०, २६४,
[स० ली०] (स०) २६७।
भाराधना। पूजा। परिवर्षा।

उपेक्षा = का०, १५७, १७५। अ०, ८६।
[स० ली०] (स०) उदासीनता। लापरवाही। विरक्ति।

[उपेक्षा करना—करना पृष्ठ ८६ पर सक्रित
कविता। तुम शीतल रहो, हम जलने
दो। तमाशा इसका तुम देखो और
मुझे हाथ मलने दो। तुम्हें हमारी शपथ
है क्योंकि प्रेम के आश्रय में कवि
कहता है कि किसी पर भरोसा यहाँ
तो दुख है और इस प्रकार सवस्व
निष्ठावर करनेवाले को उपेक्षा करना
यह भी उपेक्षित का सुख ही है।
दे—करना।]

उपेक्षामय = का०, ४।

[वि०] (स०) उपेक्षा से पूर्ण। विरक्तिमय।

उपेक्षित = का०, १६७। अ०, ३७।
[वि०] (स०) जिसको उपेक्षा की गई हो। तिरस्कृत।
अनादृत। जिसका अनादर किया गया
हो। अवमानित।

उफनी = ल०, १७।
[क्रि० वि०] (हि०) ऊपर आई। उफनाई। उबली। पौनी।

उगार = का, कु०, १२।
[म० पु०] (हि०) मुक्ति, उद्धार। किया को ज़िमी बट
स बचा लेना।

उभचूभ = का० कु०, १५।
[क्रि० वि०] (हि०) खचाखच। मुट्मुट। ऊपर तक भरा।

उभरी = का, २५८।
[क्रि०] (हि०) सतह से ऊपर उठी हुई। ऊपर का
भार निकली हुई।

उमग = का०, ८५, २२६। चि०, ४२। ल०,
[स० ली०] (स०) ४६, १४।

उल्हाह। चित का उभाह। सुख
दायक मनावेग। जाश। अधिकता।
पूखता।

उमगित = चि०, ६४।
[वि०] (स०) उत्साह पूर्ण। उमग से भरा हुआ।

उमगा है = चि०, ६५।
[क्रि०] (ब्र० भा०) उमगित या उत्साहपूर्ण होता है।

उमड = का०, ८, २६, १०६, १२२। ल०,
[म० ली०] (हि०) ५७।

उमडने की क्रिया। घाट। बडाव।

[उमड कर चली भिगोने आज—'सबोधन' शीपक
से मनारामा, खंड २ भाग २, स० १,
सन् १६२७ में प्रकाशित, प्रमादमगीत म
पृष्ठ ६० पर सकलित स्कंदगुप्त नाटक की
आठ पंक्तियों की कविता। विजया
द्वारा ग्रिय की स्मृति में गाया गया
गीत। 'तू इस घोर फिर कर दल ले
तुम्हारे निश्चल अचल का छोड़ नयन
का प्रतिकूल जलपारा उमड कर भिगान
चला है। तुम्हारा यह कल्पनामय
लोभ और हृदय की अतारतम मुसकान
प्रेम को उस अरुणिमा में लय है लव
लीन है? इन आँखा की घोर का और
तो देखो।]

उमङ्गता = का० कु० ६०। १० का० ५४। ६६।
[वि०] (हि०) बड़ा हुआ। गोमा स बाहर निक
ता हुआ।

उमङ्ग = वि० ११ ५५।

[त्रि०] (प्र० भा०) बड़ा। गोमा स बाहर निकलकर।
उर = श्री० ५४। का० १८, २१० ३४६।
[म० पु०] (म०) वि० २२ ५२। भ० २६। ल० २३।
हृदय। मन। गिन। घाती। वल्लभ्यत।

उरस्थल = का० कु० २६।

[म० पु०] (म०) हृदयस्थल। वल्लभ्यत।

उराहनी = वि० ६०।

[म० स्त्री०] (प्र० भा०) (२० उताएना।)

उमियौ = १० ५६।

[म० स्त्री०] (हि०) नहरियाँ। तरंगें। पाठा। दुःख। निगान।
(म०) ऊर्मि का हिस्सा घट्टावन।

उर्मिल = श्री० ६८। का० ३५ ३६ १०६।

[वि०] (हि०) तरंगित। जिसमें लहरें उठा हो।

उर्रै = का० कु० ५७।

[३] (म०) उपजाऊ। जखजख।

उर्रैशी = वि० १ ६ ७ ८ ९ १० ११।

[म० स्त्री०] (म०) हड़पुरी का एक सम्पत्ति।

[उच्छरी—गव कविता। २० विवाधार।]

उलम्भ = का० २८६ २३०।

[म० स्त्री०] (हि०) फसाव घटवना। गौठ। बिना।

उलम्भना = का०, ३५।

[क्रि०] (हि०) फसना। घटवना।

उलम्भन = श्री०, २५। का० २११ २३५
२८६। प्र० ६।

उलम्भन का स्थिति या भाव। (२०
'उलम्भ')।

[उलम्भन—'उलम्भन' शीपक स मनोरमा खड २,
भाग २ म० ५, सन् १६२७ में प्रका
शित स्वदगुप्त का अमर धूम की श्याम
वहिरियाँ गात प्रसाद संगीत में पृष्ठ
६६ पर संकलित। एक सम्राट्क
भाषक रसमिद्ध गीत। विजया स्वदगुप्त
की अपने को अर्पित करती हुई इस
गाता है—अमर धूम का सीरम मेरा
इन अनलो से उनभा हुआ है और माद
कता की लाली के डार पनकी से

बैस है। हृदय का मनोरमा मनमात्र
में तुम अत्यन्त विवर्ती गा चमका।
मनापु रानी में उतभ है। घोर
घमर प्रम व भान में। प्रणय का
मनापु रानी गो गो वन नागर जावन
हा उतभे घोर उगम मन का माना
प्रेम प्रतापन में घटकी रह। जावन व
मनिय म शरि व प्रकाशन का विराग
उतभा रह क्याकि व मुनित रन
पता था व मनकन व बारण
नारिया। इस मनापु जावन का पहिया
दन प्रमाणाग न घोर मर दुःख के
अगणिता अनुनाग न मुगर रह। जावन
का व उलटी सारी प्रम का घटवन व
बुद्ध मानित हा घोर भी व निग
अनुनाय (प्रमा व) निरतबर से नाछित
होना रह। प्रम का व मर पानना
उतभा रह। फिर चाह निन्दना व
व चरणा में इस दुःखामो ताकि तुमका
भी मुग भिन्न। यह अत्यन्त भावप्रवण
प्रणयवान है। २०—प्रसाद मगीत।]

उलम्भन सतिरा = का० १६५।

[म० स्त्री०] (हि०) फसने की बल। उलम्भन क्या सता
या बलरा।

उलम्भना = का० २०५।

[क्रि० प्र०] (हि०) फसना घटवना लोट में घटना।

उलम्भ = श्री ६७। का०, १२७ १३५ १५८।

[क्रि०] (हि०) ल० ४४, ४८।
फसा।

उलम्भाये = श्री० ६०।

[क्रि०] (हि०) फसाए।

उलम्भी = का० ३६ ११५ ११६ १७७ १८२।

[वि०] (हि०) फसी हुई।

उलम्भी अलम्भ = का० २६।

[सं० भा०] (नि०) फसा हुई या घायल म गुयी हुई वालो
की लटें।

उलटता = न०, ५४।

[क्रि० प्र०] (हि०) पतटता।

उलटी = का० १६२।

[वि०] (हि०) विपरीत, विरुद्ध।

उल्लाहना = का० कु०, ८४ ।

[ध० स्त्री०] (हि०) उपासना, गिता, शिवायत । निदा ।

उलीच = झ, ३२ ।

[ध० स्त्री०] (हि०) उडेल ।

उल्का = का०, १४ ।

[म० स्त्री०] (म०) तीव्र प्रकाश । तज ज्वाला । जलती लकड़ी ।

उल्लाघारी = का०, २०४ ।

[वि०] (हि०) जलती लकड़ी का प्रकाश या ज्वाला लिए हुए ।

उल्लाघन = का० कु०, १२१ ।

[म० पुं०] (ध०) लाघना । पार होना । जीकना । घनि क्रमण करना ।

उल्लासित = का० २५४ ।

[वि०] (ध०) प्रमत्त । खुश ।

उल्लास = का० कु०, १० ४४ ६६, ७२ । का०

[म० पुं०] (ध०) ३० ६३, ६५, ६४ ११६ १४० १४५ १८१, २२० २७८ । भ० ३६, ८६ । प्र० ११ । ल० ६५ । प्रमत्तता । खुशी । उमग ।

उल्लासपूरा = का०, २४२ ।

[वि०] (म०) प्रमत्ततामय । उमगमय ।

उल्लासशील = का०, १६१ ।

[वि०] (ध०) प्रमत्त स्वभाववाला ।

उल्लास सहित = का० कु० ४६ ।

[वि०] (ध०) प्रमत्ततायुक्त ।

उबारो = वि० ४२ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) उड़ार करे ।

उशीर गृह = का० कु०, ६२ ।

[ध० पुं०] (ध०) सुगन्धि खम स बना हुआ घर ।

उषा = का० कु०, ६६, ७६ । का०, १०, २३,

[म० स्त्री०] (ध०) १६८, १७१, १७२, १७६, १६७ २१७, २८६ । भ०, २८, २६, ४८ ६४, ६७ । प्र०, ८ । ल०, १०, ११, २०, ३२, ३५ ४० ।

[उषा सुनहले तौर धरसती — कामायनी का एक पद । विष्णु ३० — कामायनी कथा ।]

उषा पट = का० कु०, ११ । वि०, २८ ।

[ध० पुं०] (ध०) लाल वस्त्र ।

उषा सी = का० १७२, २१७ । न० १६१२० ।

[वि०] (हि०) उषा व समान ।

उष्ण = का० ७७ । भ० ८६ ६ ।

[वि०] (ध०) गरम । तज । उष्मा ।

उस = धा०, ७८ । न० ८ ६, ३१ का०

कु०, ४२७ । का० ६ ४६, ७०, १०० ११, १३६ १४०, १४८ १६६, १७०, १८४ १८५ २१६, २६५ । प्र० २, २० । ल० ५६ ६०, ६१ ६५ ६६ ७५ । भ० २४ ४१, ४७ ५२, ७३ ७४, ८७, ८६ । वह का कमकारक ।

['उस दिा जन जीवन के पथ मे — तहर पृष्ठ १७-१८ पर मकलित रहस्यवादा गात । जीवनयात्रा में उस दिन जब कवि का अकिंचन चेतन अपना ठूटा पान ल मानस मंदिर मे प्रानन् का रटन लकर प्रविष्ट हुआ ता उसके हृदय के छित पात्र मे वह रम इतना भर भर आता था कि बरबस उसमे समाता न था । इस निकटस्थ अपरिचित प्रदेश मे यह दृश्य दलकर वह स्वय चकित हा गया कि ऐसा आनंद कहा छिया था । आनंदरूपी मंगल की वषा हो रहा थी, कष्ट भी सुख मे और रोती हुई आशा उह अपना धन समझकर बटार रही थी । ३० — तहर ।]

उसपर = का० कु०, ४२ । ल०, ३८ ।

[मव०] (हि०) वह का अधिकरण कारक का रूप ।

उसास = का०, १४२ । वि० ४६ ६६ ।

[ध० स्त्री०] (हि०) लंबी साँम । ऊपर का लोचनी हुई साँम । उज्ज वास । ठंडा माँम । तुल या शोकमुचक साँस ।

उसी = भ०, २३, ४८, ५८ ।

[सर्व०] (हि०) उसका ही ।

उसे = भ०, ७४ ७६ ।

[सव०] (हि०) उमको ।

उह = का०, १७६ ।

[ध०] (हि०) आट ।

उ

ऊँचा = बा० कु०, ११८। बा० २६, २४७।
[वि०] (हि०) ल० ४६ ५४ ७४। म० ८।

दूर तक ऊपर का ओर गया हुआ।
उठा हुआ। उन्नत।

ऊँचाई = बा० २५७।

[सं० श्री०] (हि०) ऊपर की ओर वा विस्तार। उन्नत।
उंचता। गौरव, बड़ाई।

ऊँची = ल० ५७।

[वि० स्त्री०] (हि०) ('—ठका')।

ऊँचे = का० ८८, १४७ १८२ २५८। भ०
[क्रि० वि०] (हि०) ४५।

ऊपर की ओर। ऊपर से (शब्द
करना)। बड़े।

ऊँचे ऊँचे = बा०, २५७।

[क्रि० वि०] (हि०) बड़े बड़े। उन्नत। विशाल।

ऊँजड़ = बा० १६०।

[वि०] (हि०) उजड़ा या ध्वस्त। जनहीन। निजन।
जगल। विषाधान।

ऊन = बा० १४२ १४७।

[सं० पु०] (हि०) भैंस, बकरी आदि का रोग जिसमें
[वि०] (सं०) कसत बनता है। (सं०) बस, चाटा।

उदास। मुस्त।

ऊपर = बा० ३ ६८, १८२ १८५, १८५

[क्रि० वि०] (हि०) २४५ २४६, २५८, २६०। वि०
६५, ७०। ल० ४०।

ऊँच स्थान में। ऊँचाई पर। आगार
पर। सहार पर। ऊँची धोखा में।
सद म सबम पटल। अधिवर व्याप्त।
प्रगट म। दखन म। तट पर। अति
रिक्त सिवा।

ऊपर नीचे = बा०, १७०।

[पु०] (हि०) एक पर एक। उत्थान पतन। ऊपर से
संहर नाच तक।

उय = भ० ५८।

[सं० स्त्री०] (हि०) व्यापार। ऊन का क्रिया या
भाव। उद्वेग। ध्वराहट। उत्था।
व्यग।

ऊर्जस्वित = बा०, ४। ल०, ५४।

[वि०] (सं०) बलवान। वीर्यवान। तेजस्वी। चढा
हुआ।

उर्जित = ल० ६३।

[वि०] (सं०) बलवान। शक्तिमान। उन्मादित।

उर्ध्व = बा०, २५७।

[क्रि० वि०] (सं०) ऊपर। ऊपर का ओर।

उर्मिल = बा०, ७३।

[वि०] (सं०) तरंगित। जिसमें तरंगें उठती हैं।
भादोलित।

उष्मा = बा० २६१। ल० ३८।

[सं० श्री०] (सं०) गर्मी।

अ

अगवेद = (कामाग्नी आमुल में कहा।) मगार का प्राप्ति
[सं० पु०] (सं०) शय। १०२८ सूक्त, १०५८० मंत्र।

अजु = बा० ११८ १८२।

[वि०] (सं०) सीधा सरल सहज।

अणु = बा० ७६, ११० २४८, २४९।

[सं० पु०] (सं०) बर्ज उधार।

अतु = का० १७८ २१७।

[सं० श्री०] (सं०) मोम।

अतुओं = का० २६१।

[सं० श्री०] (सं०) अतु का (हि०) बह्वचन।

अतुपति = बा०, ७३ १०१।

[सं० पु०] (सं०) वसत, अतुराज।

अतुनायक = वि० १४७।

[सं० पु०] (सं०) अतुराज अतुपति वसत।

अयि = क०, २७।

[सं० पु०] (सं०) मन्त्रा। परम बुद्धिमान, ज्ञान विज्ञान
का ज्ञाता दूरदर्शी। संचरित्र
व्याप। परोपकारी। तपस्या।

अयिपुल = वि०, ५६।

[सं० पु०] (सं०) अयिया का परिवार।

अयियों = ल० १२।

[सं० पु०] (सं०) अयि का (हि०) बह्वचन।

अयिवर = वि०, ५८।

[सं० पु०] (सं०) अयिया में अष्ट।

ऋषिवर्य = का० कु०, १०५ ।
[म० पु०] (म०) श्रेष्ठ ऋषि । महर्षि ।

ऋषे = क०, ३० ।
[सब०] (म०) ऋषि का संबोधन ।

॥

एक = का० २७७, २७८ । म० २३ ।
[वि०, सभा] (हि०) सबसे छोटा सख्या, अथवा गिनती ।
एकताबद्ध । अभिन ।

एकटङ्क = वि०, ११ ।
[क्रि० वि०] (हि०) अनियम या स्थिर दृष्टि से । लगातार
देखात हुए ।

एकती = वि०, १४८ ।
[स० की०] (ब्र० भा०) एक जगह । एकर ।
एकता = का०, १६४ ।
[स० की०] (स०) मिलकर एक होने का भाव । एक
[वि०] (हि०) मत । भेल । समानता । बराबरी ।
अनेला । अनोखा । अद्वितीय । यस्ता ।
अनुपम ।

एकत्र = का०, १६८, १८२ १८६, २७२ ।
[क्रि० वि०] (स०) का०, कु०, ११८ । ल०, ६० ।
एकट्ठा । एक जगह ।

एकत्रित = म०, ७८ । प्रे०, १२ ।
[वि०] (म०) सङ्गृहीत । एकट्ठा किया हुआ ।
एकाल = का० कु०, ४३ । का० २४ ३४, ४५
[वि०] (म०) ६५, १३२, १३४ २४६ । म०, ७१ ।
ल०, ४१ ।
अत्यंत, बिल्कुल । अनग । अनेला ।
निर्जन । मूना ।

[एकात में—इदु कता ३, किरण २ सन् १९१२
में सर्वप्रथम प्रकाशित एवं काननकुमुम
म पृष्ठ ५२-५३ पर सन्निहित ३० पक्ति
की कविता । प्रकृति का, एकात वर्षा
ऋतु का औसपन्न एवं सजीव चित्र
उपस्थित करने के उपायों अतः मे
कवि अपना दर्शन इस प्रकार अभिव्यक्त
करता है—

चलचित्त चलत वेग को तलाज करता घोर है
एकात में विश्रान्त मनः पाता, सुशीतल नीर है,

निस्तथना समार की उम पूग से है मिल रही,
पर जल प्रकृति सब जीव म सब आर ही अनमिल रही ।
२०—कानन कुमुम ।]

एकाएक = वि० ५ ।
[क्रि० वि०] (हि०) अकस्मात् । अचानक । सहसा ।

एकाग्र = वि०, १० ।
[वि०] (म०) एक रूप में स्थिर । अवलनारहित ।
ध्यानमग्न ।

एकाधिपत्य = वि० १७ ।
[म० पु०] (स०) किसी वस्तु पर एक व्यक्ति का पूरा
अधिकार या पूरा प्रभुत्व ।

एडरड सप्तम = (३०—शोकोग्य वास ।)

एपगु = का०, २६६ ।
[स० की०] (म०) इच्छा । अभिलाषा ।

एहि = वि०, २३, ५७ ।
[सब०] (ब्र० भा०) इसे । इसका ।

ते

एँठ = ल०, ६९ ।
[म० पु०] (हि०) एँठने की क्रिया या भाव । अकड़ ।
ठमक । गव, घमड ।

एँठी = म०, २५ । का०, ११६ ।
[वि० की०] (हि०) मुड़ा हुई । फिरी हुई । अकड़ी हुई ।
घमड में चूर ।

ऐरायत = वि०, २८ ।
[स० पु०] (म०) इद्र का हाथी । इद्र का अनुप । इरा
वान नामक मय । विजली । एक नाग
का नाम । नारगी ।

ऐश्वर्य = का०, २७० । ल० ६८ ।
[स० पु०] (स०) विभव, संपन्न । गौरव महिमा,
महत्त्व ।

ऐसा = म०, ६७ । क०, २२ । का० ४०,
[वि०] (हि०) १४४, १८६, १९१ २५८ । म०,
म० ४ । ल०, १८ ।

इस प्रकार का । इस ढंग का ।

ऐहें = वि० ६४ ।
[क्रि० म०] (ब्र० भा०) आयेंगे ।

ओ = क० १६। का० ४१ ४० ६१ १५४
[अ०] (हि०) १७० १८४ १९६ २०१। ल०, ६,
४३।

संवाधन और आश्रयवाचक शब्द।
ओघ = का० ७१।
[म० पु०] (म०) समूह। २२। धन व घनापन।
बहाव। धारा।

ओष सा = ल० ६६।
[वि] (हि०) प्रवाह का तरह। उलटे हुए व मयान।
घनटे हुए के समान।

ओष = का ८७। वि ६४, १४३। ल०,
[म० पु०] (म०) ५६।

प्रताप तज। उजाला प्रकाश। साहित्य
शाल का एक गुण। शरीर में रेशों का
सां भाग।

ओभल = का० २४६।
[म० पु०] (हि०) घाट घाड़।

ओढ = का० ६० ४३। भ० ६४।
[म० पु०] (हि०) घाड़। परदा। रात।

ओढ = ७० ४३।
[क्रि० स] (हि०) शरीर का ढक्कर धाँसादित कर।
अपन मिर उबर। अपन ऊपर या
जिम्मे लकर।

ओढि = वि० २४।
[क्रि० म०] (म० भा०) (देखिए आ० १)
ओढनी = म० १३।
[६० स्त्री०] (हि०) बिपों व घामन का बल। चान्द।

ओढे = का० ३० २३५।
[क्रि० म०] (हि०) शरीर का धाँसादित किए ढके।
अपन मिर लना या जिम्मे लना।

ओत प्रोत = का० ६० ६४। का ४।
[वि] (म०) बन्त मिला जुता। गुया हुआ।

ओपकार = वि० ६२।
[वि०] (हि०) उगार में मयध रखनेवाला। उपकार
स भरा हुआ।

ओ मंगी नौबत की स्मृति—चन्द्रगुप्त का गान।
अपन प्रियतम व लिय अपना उल्लग

ओस = का० ६४ २७१। ल० २४। ७०
[६० स्त्री०] (हि०) हवा में मिला हुई आप ज़ा राग का
मर्ग म जमकर बग्गा व रूप में निरती
है। धवनम।

ओस सा = ल० ७०।
[वि०] (हि०) भाग व समान मुँदर या नुस्तर।
क्षितिज।

कर रहा मालविका जिसका मामले कान
रखा है सतीमुखक उसकी पुरानी
स्मृतिया उमा प्रकार उसका पाम धा
अतीत को जगाना है जैसे धनत नागर
म अलग अनुराग स्वास्तिम पान बन
सहरा रहा हो। और वह नाविक से
कहती है—

कहीं से चले बीनाहन से घुमरित तट का छाड़ मुदर।
आह। तुम्हारे निरप धाड़ो से होती है लहरें बुर।
नल नहीं सबके तुम दोनों चकिन निराशा है भीमा,
बहुको मत क्या न है बता दो क्षितिज तुम्हारी नन मामा।
यह गात प्रसाद संगीत में कुछ ११६ पर
सकलित है। >—प्रसाद सगात।]

[ओरी मानस की गहराई—सहर पृष्ठ ४३ पर
सकलित गात। यह मानस धुन, शात,
निर्वात जल से भरे बाल का भाति
शीतल नूतन मुदर और नीलमणि क
फलक व समान पारदर्शी और चिर
चबल हा जिनम विश्व का परछाई
दिराता है। तरा विपास तरल गरल की
भाति है लेकिन पानेवाला उसी प्रकार
ग्रुधिन वही रहता जैसे गरल पान स।
तुं गुप्त की मुदर सुन्दर अचिरल लहर
उठा। गुप्तमे जीवन के सादर्य का हवा
है। तुम्हारी हसी हा प्रकृति की हसी
है। इसलिये—

हल से भय शोक प्रभ या रण,
हल स वाला पट धो मरण
हय से जीवन के लघु सपु लण
द्वर निज चुबन के मधु कण
नाविक अतीत की उतराई।
२०—प्रसाद सगात।]

श्री

श्री = का० कु०, १२६। चि०, १६ १०१।
[म०] (हि०) ऋ० २६।

कविता म श्रीर वा सूचक शब्द।

श्रीद्वय = का० कु०, १०५।

[म० पु०] (स०) उग्रता। अथर्वपन। घृणता। धवि
नीनता। अशालानता।

श्रीर = का०, ८, ६१। का० कु० ४१ ५७
८३। का० ४, १० ५१ ८४, ८५,
१०५, १२६, १२६, १८३, १६७
२६२ २६५। चि० १५ ७६ ६५,
७३, १७०। ऋ० २५, ७४, ७७।
मै०, ४, ६। म०, १०। ल०, ७०,
७४, ५२, ५६, ६२, ६५, ६७, ६८,
७०, ७६।
संयोजक शब्द। तथा।

[श्रीर देखा यह सन्त्र न्य—० कामायनी की
कथा, इन्द्रजात।]

[श्रीर जय कहिहै तय ना रहिहै—इदु कना ५
खड १ निरण ३ माच १६१४ म
प्रकाशित चित्राधार पृष्ठ १८६ पर
मकरद्विदु के अतगन सक्निन।
०—चित्राधार एव मकरद्विदु।]

श्रीरहु = चि०, ५२ ५७, १४४।

[म०] (म० भा०) श्रीर भी।

श्रीरों = का० कु०, ७५। का०, १३२, १७२,
[म०] (हि०) २१०। ऋ०, ७४, ५३। ल०, ११।
श्रीर दूसरे भी। दूसरी की, य की।

श्रीपथी = म०, ८८।

[म० ली०] (म०) दवा।

श्रीपथीश = चि०, १६४।

[म० पु०] (स०) श्रीपथि के स्वामा वध, हकीम।
चंद्रमा।

- ' व

कनकनप्रणित = का०, ११।

[म० पु०] (म०) ध्वनिमय कणक।

ककन = चि०, ६१।

[म० पु०] कनार्द्ध म पहिने का धातूपग, कडा,
(म० भा०) कगन कगना ककग, चुडा खटुआ।
वट घागा जा हिंदू मस्तिष्क के अनुसार
विवाह व अगसर पर वर बधू व
गहिने हाथ म रत्नाय बांधा जाता है।

ककल = का०, २२७।

[म० पु०] (म०) अग्निपत्रर। शरीर की ठंडा मान।

कचन = चि० ६१।

[म० पु०] (स०) मुखण मोना, सपति घन। धनूरा।
निरीग, स्वस्थ। मनाहर।

कचन सा = का०, २०७।

[वि०] (हि०) मुखण सटण। साने की तरह।

कज = का०, ३०। का० कु० ६४। चि०,
[म० पु०] (म०) ३, २३, १८८, १८६। ऋ० ६४।
कमल, सरोज। ब्रह्मा। अमृत। केश।

कजकली = का० कु० ८६।

[स० ली०] (स०) कमल की कली। सरोज की कनिका।

कज कानन मित्र = का० कु० १०।

[म० पु०] (म०) कमल वन का मित्र, मूर्ध।

कज-कोरा = चि०, १८१।

[स० पु०] (स०) कज = ब्रह्मा। कमल। अमृत। शिर क
बाल केश। कोरा = ब्रह्म ब्रह्मा।
डि बा, गालक। कून की कनी। ब्राव
रण। वेदांत के अनुसार पाव मपुट।
कजकोरा = कमल के फूल का पराग
स्थान।

कजनाल = चि०, १४।

[म० ली०] कमल, कुमुद आदि फूलों की पाली
श्रीर लबी डनी पीरे का डठल, काड,
नली, नाल।

कजलोचन = का० कु०, १००।

[स० पु०] (म०) कमल के समान धात।

कटक = का० कु०, ४, ५०, ६३। चि० १०,
[स० पु०] (स०) ११, १६४ १८४। ल०, ५०।

काटा। मुई का अग्रभाग या नोक। काम

मे होनेवाली बाधा । ऐसा काम जिससे बिना की दुःख हो । रोमाच । कवच ।

कटक संग = का० १६३ ।

[सं पु०] (स०) कांटी के साथ । कांटी के सहित ।

कटककोर्ण = का० कु०, ५१ ।

[वि०] (स०) कांटी से बिधा हुआ, कांटी से घिरा हुआ । आपत्तिमय ।

कटकित = का०, १२९ ।

[वि०] (स०) काटेदार । रोमाचित । पुलकित ।

कठ = का० कु० ४३ छ० । का०, १८३ २६
[सं पु०] (स०) ४२, ७० १४६, १५४, १७५,
२७४ । भ०, ४५, १० छ० स०,
३४, ७१ ।

गला । गले का वे नलिया जिनसे भाजन
अदर उतरता है और आवाज आती
है । घाटी । स्वर । सीर, लट, बरार ।

फथा = स०, ११ १५ ।

[सं ली०] (स०) गुदड़ी । चिबड़ा ।

फदरा = वि० १५६ २२ ।

[मज्ञा ली०] (स०) गुफा, गुहा ।

फनील = प्रे० १५ ।

[सं ली०] (प्र०) मिट्टी भरकर कागज, लाला आदि की
बनी हुई वह लालटेन जिसका मुह
ऊपर की ओर रहता है । भारत में
जातिक मास में सनातनधर्मावलंबी
उत्ती को आकाशदीप के रूप में
जलाते हैं ।

फदुक = का० कु० १० । वि० १६१ । का०

[सं पु०] (स०) २६८

गेंद ।

फध = वि० ६६ ।

[सं पु०] (हि०) डाली शाला । बधा स्तब्ध ।

फधर = वि०, ४१ ।

[सं पु०] (स०) गरदन, शीर्ष । बाहल मय ।

कप = का० २४६ । ल० २५ ।

[सं पु०] (स०) कापना । साहित्य में साहित्य अनुभाव ।

कप कप = ल०, २५ ।

[क्रि प्र०] (हि०) काँप काँप कर, भयभीत होकर ।

कपन = का ३५, ६५, १५७, १६४, ६६,
[सं पु०] (स०) २६३ । ल०, ६४६ । वा कु० १०८ ।
कंपकपा, धरधराहट ।

कपन सी = का० कु०, १०८ । ल०, ६ ।

[वि०] (स०) धरधराहट के समान ।

कॅप सी = का० १ ।

[वि०] (हि०) वापने के समान ।

कॅपाइ = वि० १ ।

[प्रव० क्रि०] (हि०) कॅपाकर, धरधराकर ।

कपित = का० १६ ४४ १४४, १५३ १६२,

[वि०] (स०) २१३ २६७ । ल०, १७, ३४ ।

कापता हुआ । चलायमान, चलन ।
भयभीत । डरा हुआ ।

कॅपती = का० १४ ।

[वि०] (हि०) धरधराती कापती ।

कॅपते = प्रे०, ४ ।

[वि०] (हि०) धरधरात कापत ।

कॅपा देना = प्रे०, ११ ।

[क्रि० स०] (हि०) धरधरा देना, चलायमान कर देना ।

कॅपी = म० १३ ।

[क्रि० प्र०] (हि०) काँप गई । भयभीत हो गई ।

कप = का० कु० ४३ ।

[सं पु०] (स०) शल । शल का कूबी । हाथी । घोषा ।

[कस—] श्रीरूपण जयती श्रीरूपण । यह उपसर्ग
का पुत्र और भगवान् रूपण का मामा
था । रूपण ने इस अनाकारी का वध
किया था ।]

कई = का०, २३४ । म०, १८ ।

[वि०] (हि०) एक से अधिक । धनैक । वृत्तिपय ।

कक्षा = का०, ५ ।

[सं ला०] (म०) परिवर्तित घेरा । प्रत्याग । अणु ।

कव = वि० ६८ ।

[सं पु०] (स०) कव, बाल । वृत्तपति का पुत्र । कुट ।
बाल । धन या कुमन का शब्द
या भाव ।

कचनार = चि०, ७७ ।

[स० पु०] (हि०) एक सुगन्धित पुष्प वृक्ष । पुष्प विशेष ।

कचभार = का० कु०, ६७ ।

[स० पु०] (स०) केश का भार या बोझ । बादल का धेरा ।

कचोट = ऋ०, ७३ ।

[स० पु०] (हि०) धमने या चुभने का भाव, कम्ब, टोस ।

कचछप = का०, १५, ५६ ।

[म० पु०] (स०) कछुआ । दम ध्वतारा म स एक ।

कछार = प्र० ३ । ल०, १२, १३ ।

[म० पु०] (हि०) समुद्र या नदी के किनारे की तर ओर नीचा भूमि । दलदल ।

कछु = चि०, ७६ ६०, ६४ ।

[वि०] (हि०) थोड़ा कुछ ।

कछुक = चि०, ६४, ७२, १४१, १८४ ।

[वि०] (हि०) कुछ । थोड़ा ।

कछुक वेर = चि०, ६० ।

[प्रि० वि०] (हि०) कुछ समय बाद या पश्चात् । उपरान्त ।

कटक = चि०, ७२, ५२ ।

[स० पु०] (स०) सेना । राजशिविर । वनण । पर्वत का मध्यभाग । समूह । एक नगर का नाम ।

कटना = का०, २१४ । ऋ०, १५ । म०, ६ ।

[क्रि०] किसी वस्तु का मोड़ार स कटकर टुकड़ा में (विभक्त) होना । अलग होना । मुट्ठ में मरना ।

कटाक्ष = का०, १५३ । ऋ०, ८१ । ल०, ७६ ।

[स० पु०] (स०) मा० २६ । का० कु० ६० ।

तिरछा चितवन, मोहक मयनभयिमा ।
आक्षेप में व्यग्यपूर्ण वात ।

कटि = का०, १४३ । चि०, २२, २४ ५४,
[सं०जी०] (स०) ६४, १४८ ।

कमर, शरीर का मध्यभाग । हाथी का गण्डस्थल ।

कटिवद्ध = चि०, १५ ।

[वि०] (स०) कमर बांधे हुए, तैयार, उत्पन्न, उद्यत ।

कटीला = ऋ०, ४८ ।

[वि०] (हि०) काट करनेवाला । तीक्ष्ण, चाखा, बहुत तीव्र प्रभाव डालनेवाला । मोहित करनेवाला । काटेदार ।

कटु = का०, १०६ ।

[वि०] (म०) छह रमा म से एक रस । कटुवा, चरपरा । बुरा लगनेवाला अप्रिय ।

कटुता = का०, ३६ ११६ १५७ ।

[म० जी०] (स०) कटु भाषन, कटुवाह । मतभेद ।

कटुवचन = चि० ४१ ।

[स० पु०] (हि०) कठार बात अप्रिय वाणी ।

कटे = का०, ११४, १४८ ।

[क्रि० म०] (हि०) वात, समाप्त । टुकड़े हुए ।

कठिन = का० कु०, ८ ११२ । का० ३,

[वि०] (स०) १७८ । चि०, ४१ । ऋ०, ८३ । ल०, ६६ ।

कड़ा, सहन, कठार । जन्दा समझ म न मानवाता, दुष्कर दुःसाध्य ।

कठिनाई = का० कु०, ४५ । चि० ७२ ।

[स० जी०] (हि०) कठिना, कठारता, कटाई ।

कठार = आ०, ६८ । क०, २४ । का० कु०,

[वि०] (म०) ८२, ११२ । का०, १७०, १६४, २४८ । चि०, १४ ।

वाटन । सहन, कड़ा, निदय, निष्कुर ।

कठोरता = ऋ०, १४३ ।

[स० जी०] (म०) कड़ाई, निदयता, उरहमी, सक्ता ।

कडाकर = का०, ७७ ।

[पूव० क्रि०] (हि०) सक्त कर, कठोर कर, तान कर ।

कडियाँ = आ०, ७०, का० ७७ ।

[मं० जी०] (हि०) जजोरें, लडो । गात का एक पद ।

कडी = क०, २ । का० कु०, ५१ । का०,

[सं०जी०] (हि०) १५८, ६ । ऋ०, ८ । म०, ३ ।

सिकड़ा का लडा का छल्ला, जजोर ।

गीत का एक पद । वाठ को धरन ।

सकट ।

कड़े = म०, १, ५ ।

[सं० पु०] (हि०) मल्ला, कठिन । एक प्रकार का आभूषण ।

कडे = चि०, १०६।

[म० पु०] (ब० भा०) बडाई, कठोरता, निर्दयता।

कदत = चि०, १४४।

[त्रि० घ०] (हि०) निक्कनना बाहर होना, आग बरना।

कन्ना = चि०, ६, १८४।

[त्रि० घ०] (ब० भा०) निकल जाना, बाहर हो जाना।

कडि = चि० १८५।

[पू० त्रि०] (त्र० भा०) निक्कन कर, बाहर हाकर।

कदी = चि०, १८।

[त्रि० म०] निक्कन गइ, बाहर हो गई, आग बर (हि०) गइ।

कडे = चि०, १६६।

[त्रि० घ०] (घ० भा०) निक्कन जाय, बाहर हो जाय।

कण = भा०, ११। का०, ६, ३६ ८४, ८८, [म० पु०] (म०) ८७, १२३, २४२ २६३। ऊ०, ३१। प्र०, २५।

बहुत छोटा टुकड़ा, तिनका, रवा, दाना।

कण कण = का०, १६, १२५, १७८ २८६।

[म० पु०] (म०) ल०, ४६।

प्रत्येक स्थान, हर जगह जरा जरा।

कण सा = का०, ६१।

[वि०] (हि०) कण के समान छोटा दान के समान।

कण-सी = का०, २०।

[वि०] (हि०) 'कण पा' का लोभ।

कणहिं = चि०, १५३।

[म० पु०] (ब० भा०) कण मान बहुत थोड़ा।

कण्य = चि०, ५८।

[म० पु०] (घ०) एक ऋषि का नाम जिन्होंने 'शकुतला' का पात्रन किया था।

[कण्य ऋषि—शकुतला] नाटक में कालिदास ने इनका तथा इनके आश्रम की चर्चा की है। महाभारत आदिपर्व में इनकी चर्चा है। मालिनी के तट पर इनका आश्रम था जहाँ शकुतला का देहान्त पालन पोषण किया था। कण्य का अनु प्रसिद्धि में शकुतला और दुष्यंत का

आश्रम में ही गायत्री विवाह हो गया। आश्रम में धान के उपरांत इन्हें इनकी सुचना दी गई। तब आश्रम विजयोर के पास बनाया जाता है।]

कण्य चरण = चि० ५, ६०।

[म० पु०] (म०) कण्य ऋषि का चरण।

कण्य महषि = चि० १५, ८५।

[म० पु०] (म०) (द० कण्य)।

कतहुँ = चि०, ५५।

[घ०] (ब० भा०) वही।

कतार = चि०, १५८।

[म० भा०] (घ०) पक्ति, अथवा समूह झुंड।

कथन = का०, १०८।

[म० पु०] (म०) कुछ कहना। किसी की वही हुई बात। किसी के समुख किया गया वक्तव्य।

कथन सन्देश = प्र०, ७।

[वि०] (म०) कहने के समान, कही बात के समान।

कथा = भा०, १३, ५८। का०, ३७, ६५,

[म० भा०] (म०) २७६। चि० ४६। प्र० ६। म०, २। त०, ११।

वह जा कहा जाय। धार्मिक आख्याना या चर्चा।

कथाओं = म० १५।

[म० भा०] (हि०) कथा का बहुवचन।

कथानुसूल = चि० ६०।

[वि०] (हि०) कथा के अनुसार। धर्म विषयक कथा का पक्ष में अवस्था हित में।

कदम्ब = का० ६८, २२३, २८५। चि०,

[म० पु०] (म०) ५५ ६२।

एक वृक्ष तथा उसके फल का नाम।

कदम्ब-जानन = का०, २२३।

[म० पु०] (म०) कदम्ब का फल अथवा उपवन।

कदम्ब सा = का०, ९४। ल० १६।

[वि०] (हि०) कदम्ब के समान। रोमांचित।

कदली = चि०, ७०।

[स० स्त्री०] (स०) केना । बाले तथा ताल रंग का हिरन ।

कन = आ० ३२ । वा०, २१७ २३५ । ल०, [स० पु०] (हिं०) ३४ ।
(देगए वण' ।)

कनक कुसुम रज = वा २६१ ।
[स० पु०] (म०) पनास क पुनो वा परास ।

कनिष्ठ = का०, १८ ।
[वि०] (म०) मदन ज़ाटा । तट्टा ।

कनो = चि०, २८ ।
[स० स्त्री०] (हिं०) छोटा दुक्का, हीर का बहुत छोटा दुक्का । किनकी ।

कन्या = चि० ३३ ।
[स० स्त्री०] (म०) बरारी लटरी पुआ, उगी । बाग्ह रागिया म स पव ।

कपट = चि०, ४२ । भ०, ४२ । प्र०, १६ ।
[स० पु०] (म०) छत्र, घोसा, दुराव, छिपाव ।

कपटी = चि०, २६ ।
[वि०] (म०) कपट करनेवाला, धोखेबाज छूत ।

कपाल = का०, १२२, १८७ ।
[स० पु०] (म०) खोपड़ी, ललाट, मस्तक । दव । भाग्य, घट्ट । नियति ।

कपिश = ल०, ५१ ।
[स० स्त्री०] (स०) एक नगरी का नाम । मघ, मुरा ।

[कपिश—] ७० गरमिह का शलसम्पण । यह प्रदण हिंदूकुश पर्वत क दक्षिण मे है । कपिश एक नदी का नाम है जो उत्त प्रदेश में है ।]

कपूर = वा० कु०, १० ।
[स० पु०] (हिं०) कपूर । कपूर ।

कपोल = मा० २२ ३२ । वा० १०, ६६ ।
[स० पु०] (म०) चि० । ६ ७० । भ०, २२ । म०, १३ । न० ११ ।
गाल ।

कपोल-कला चि०, १६६ ।
[स० स्त्री०] (स०) कपोल का सीदय ।

कपोलन = चि०, ३ ।
[स० पु०] (न० भा०) कपोल का बहुरचन ।

कपोलों = का० १०३ १७१ ।
[स० पु०] (हिं) कपोल का बहुवचन ।
कबध = चि० ४७ ।

[स० पु०] (म०) जन, पानी । मेघ, बादल । त्रिना मिर का बट । एक राजस का नाम । एक मुनि का नाम । एक गवय का नाम । राटू केतु ।

कव = घा० १७ २० । वा० १५ १६ २८, [क्रि० वि०] (हिं०) ६३ ८१ १४, १४/ १५७, १५८ १७०, १८४ १६० २३२ २७८ ।
किस समय ।

[कव—मातुरी यप र ख १ मक्या १ मन् १८०३ २४ म मवययम प्रकाशित भरना पृष्ठ ३८ पर मक्यति १० पत्तिधा की कविता । इसका भाव यह है कि कव शून्य हून्य मे प्रम घनमाला विरगी और कव आला व म्नेह निचन म मुख छाएया । मुपनकलिका मधु मे रिक्त हो रही है और उसका मोरभ दुर के आतप से मूल रहा है कव घट खिलकर विस्तार कर मकेगी । हम लवीविश्वव्यापा में भरस मधुर शाति आकर कव उमी प्रकार बस जाएगी जम निद्रा मे आला म सुबद स्वप्न । आदि आदि सारी कामनाएं आनंद आन म लीन हा कव विरति पाएगी' । २०—भरना ।]

कवतक = वा०, १७, २७ १८१ ।

[क्रि० वि०] (हिं) किस समय तक ।

कव से = वा० २५७ ।
[क्रि० वि०] (हिं०) किस समय से ।

कवरी = का० २१२ ।

[क्रि० वि०] (हिं०) बताया कव ।

कवहुँ = चि०, १६१ ६४ ।

[क्रि० वि०] (व० भा०) कव से । किसी समय भी । कभी भी ।

कवों = चि०, १५, १५६ ।

[त्रि० वि०] (प्र० भा०) किसी समय । कभी ।

कभी = भा०, १७। क०, ७ १५, २६, २६,

[त्रि० वि०] (हि०) ३१। वा० कु० २३। वा०, ३३, ५५, ८३, १०५ १४१, ११८, १४८, १५१, १५२ १७७ १७८ १८६, १६०, १६२ २१४, २४४। भ० ८९। प्र०, ३ ५ १३ १५ १६, २०, २६। म०, ५ ११ १२ १४, १८ २२ ल०, १० ३४ ३४। (प्रायः अनेक पृष्ठा पर।)

अथ किसी समय । किमा समय ।

कभी कभी = वा० १६१।

[क्रि० वि०] (हि०) किसी किसी समय ।

कभी मत = वा १३।

[क्रि० वि०] (हि०) किसी समय भी नहीं ।

कसनीय = भा० ३८। वा० कु० ४८ १३। वा०, [वि०] (म०) २/४ २६२। म० ६१।

मनोहर । मनोरञ्जक । सुन्दर । कामना करने योग्य ।

कसनीयता = भा० २०। वा० कु० ८२। भ० ६३।

[म० स्त्री०] (म०) सौम्य मनोहरता ।

कमल = वा०, २६ ४५ १६८ २६१। वि० २ [म० पुं] (म०) १४१ १५७। प्र० १३। ल०, ४४।

जल में उगनेवाला एक पौधा जो अपने सुन्दर फूल के कारण प्रसिद्ध है। जल पानी। गन्धाय का अग्रभाग। फूल। एक प्रकार का पित्त रोग का रोग। बुक्कम। आरत का बोझ। दीपक राग का दूसरा पुनः। छह मात्राओं का एक छन्द। छप्पय क ७१ भेदा म स ग क। एक प्रकार का राग। हिरन की एक जाति।

कमलश्लो = वा० कु० ९६। वि०, १२०।

[म० स्त्री०] (स०) कमल की श्लो या वारक ।

कमलकोश = वा० कु० १२२। वि० १६५।

[स० पुं०] (स०) कमल का बाह्य जिम्मे पराग रहता है।

कमलदल = वा० कु० ४८।

[स० पुं०] (स०) कमल का पत्रपत्रिका ।

कमललोचना = म०, १७।

[म० स्त्री०] (म०) कमल जस नवावाला ।

कमला = वा० कु०, ८०। वि०, १४६। ल०

[म० स्त्री०] (म०) ७८।

लम्बा। मनः। एषवय । नारगी, मतरा ।

एक नदी का नाम । मुदरी ।

[कमला—कमलावती। गुजरनरेश कण्देव सिंह के पराजित होने पर उसका पत्नी कमला अलाउद्दीन क हुरम में आकर भारत का सम्राज्ञी हुई। १० प्रलय की छाया, अलाउद्दीन बाकूर एक मासिक ।

[कमलावती—१० कमला ।]

कमलावली = वा० कु०, ५०।

[म० स्त्री०] (स०) कमला का समूह ।

कमलिनी = वि० २४ १७०। भ०, ७०।

[स० स्त्री०] (म०) कमल । कुमुदिना । छाटा कमल ।

कमली = म० ५ २१।

[म० स्त्री०] (हि०) छाया कमल कमला । कुमुदिना ।

कमान = वि० ३ १६३।

[म० स्त्री०] (पा०) धनुष । इन्द्रधनुष । महाराजदार बना वट । तीप, बटुक । फौजी बाय का माता । नौकरी । ग्युटी । फौजी काम ।

कमाल = वा० कु० ४३।

[स० पुं०] (प्र०) परिपूर्णता । निपुणता । काबलियत आश्चर्य । अद्भुत काय ।

कमी = वा०, ११४ १६५ २८७। भ०

[स० स्त्री०] (का०) ८६। ल० ६४।

गुणता प्र पता । हाति ।

कर = वा० २६ २८ २६, ३२ ३३, ३६

[म० पुं०] (स०) ३६, १२ ५३, ६७ ६२ ६८ १०५

११६ ११७, ११८, १३२ १२७

१३३ १३६, १५३ १६५ १७०,

१७५, २४४ १८३ १८५, १८६

१६६ २००, २२८ २३०, २३७

२३८ २४२ २४३, २५८ २७०।

प्र०, ४॥ म०, २ ३, ५ ६ ७ ८।

ल०, १। भ० २७। वि० ३०।

हाथ। हाथी का मूँड़। मूय या चद्रमा
की किरण। ओला, पत्थर। महमूल।
ठकम। करनेवाला। छन, युक्ति।
पाखण्ड। भवभी और ब्रजभाषा की
सप्तमी की विभक्ति।

[क्रि०] (हिं०) (३०—'करना')।

करकमल = का०, ८५। चि०, २।

[सं० पु०] (म०) कमल के समान हाथ या कमलमयी
हाथ। करसरज।

करका = का० ६।

[सं० पु०] (म०) ओला, बनीरा।

करका घन = का०, ६।

[सं० पु०] (म०) ओले गिरानेवाले या बरमानेवाले
बादल।

कर जोरे = चि०, ६४।

[वि०] (ब० भा०) हाथ जोड़े हुए।

करत = (२० 'करना')।

[करत सनमान को—हुं कया ३, किरण ११,
सन् १९१२ में बिंदु के अतगत प्रकाशित
और चित्रधार में मबलित। ३०
चित्रधार।]

करतल गत = का०, १३६। चि०, १ ६, ६३

[वि०] (सं०) १४१। म०, ५३। म० ३।

हाथ में धाया हुआ, मरल। अधिष्ठान।

करतुत = का० कु०, ६६।

[मं० पु०] (हिं०) कार्य, कर्म करनी। कला, हुनर।

करना = भा० १५। क, १५ २१। का० ६,

१५ २०, २३ २६, २८, २९ ४५

५०, ५१, ५२, ५३ ५५, ५६, ६४,

७०, ७१, ८३ ८४, ८८ ८०, ८२,

८६, १००, २०३, १०४, १०५ १२३

१३३ १६१, १६१ १६४, १६५,

१६७, १७०, १८१ १८३, १८४

१६१ १६४ १६६, २१६, २१८,

२२६ २३६, २४३, २४७, २५०,

२५१, २५६, २६२, २६७, २७०,

२७१, २७३ ३८१, २८६, २८८।

वि० ५६ १४८। प्रे०, ५, २५।

म०, ३, ६, १४। ल०, ११।

(२० करने।)

करनी = का०, २३६।

[सं० जी०] (हिं०) करतून।

करने = का०, ८४ ६४ १०४ ११७ १४६,

[क्रि०] (हिं०) १४७, १५० १८३।

एक रूप से दूसरे रूप में जाने की
क्रिया। बनाना।

करनेवाले = ल०, ११।

[वि०] (हिं०) क्रिया का आरम्भ में समाप्ति की आर ले
जानेवाले, संपादित करनेवाले, बता।

कर पल्लव = का० २५०।

[मं० पु०] (सं०) पल्लव हाथ या हाथ।

कर पे = चि०, ७३।

[क्रि० वि०] (हिं०) हाथ पर। मूँड़ पर, किरण पर।

[कर रहे हो नाथ जब तुम—विशाख का गीत।

प्रसाद संगीत म पृष्ठ ३४ पर सबलित

चदलखा का चार पक्ति का गान।

हे नाथ, जब तुम स्वयं विश्वमंगल की

कामना कर रह हो तो हमी क्यों

चितित रह और हमारा दुःख का

सामना क्या हा। दम झुद्ध जीवन

के लिये हम इतने कष्ट क्यों सह। अपनी

पतवार ह कलाधार सम्हाल कर

धामना। ३० प्रसाद संगीत।]

करबीच = म० ८।

[म०] (हिं०) कर के मध्य में।

कर लाघव = म० ६।

[मं० पु०] (म०) कायपटुता, दक्षता, निपुणता, किसी

काम को शीघ्र और निपुणता के साथ

करने का भाव।

करवट = ग्रां० ११। का०, १८८।

[मं० स्त्री०] हाथ या पाश्वक बल लटने की स्थिति

(हिं०) या मुद्रा।

करवा = क० २६।

[मं० पु०] (हिं०) जल देने का टाँपेदार पात्र।

करवाल = चि०, ४६, १०३। म०, ८।

[मं० पु०] (सं०) तलवार। नाखून।

कररपरी = का० कु०, १६।

[सं० पु०] (म०) हाथ से छूने का भाव, छूना, सहलाना।

आरम्भ करना।

करहु = नि ३० ५७, ७२, ७६ १४१ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) (२० करहूँ १)

करहुगे = चि०, १५७ ।

[क्रि० म०] (प्र० भा०) कराग ।

करहूँ = चि०, ६६ ।

[क्रि० म०] (२० भा०) करो । (२० करना १)

कराती = वा०, २५० ।

[क्रि०] (हि०) कराता हूँ । (२० करना १) ।

कराना = म० ७ ।

[क्रि० ग०] (हि०) कितना काम वा दूसरों से मपावित कराने की क्रिया ।

कराल = चि० १०६ ।

[वि०] (म०) कठिन, दुःख भयङ्कर, भयानक ।

करालिका सी = चि० १० ।

[वि०] (हि०) भयायना भीषणता प्रदर्शित करनेवाला के समान ।

कराहू = क० २४८ ।

[म० पु०] (प्र०) व्यास मूलक शब्द ।

कराहती, कराहते = चि० १६४ । वा०, २६६ ।

कराहना = वा० कु०, ७ ६५ । वा० १ । न

[क्रि० प्र०] (प्र०) ५२ । 'व्यासमूलक शब्द' निश्चालना ।

करि = चि० १६ २८ ४६ ।

[म० पु०] (म०) हाथी ।

[पूर्व क्रि०] (प्र० भा०) करक ।

करिस्स = चि० २० ।

[म० पु०] (म०) हाथा का मूढ़ ।

करिस्स सम = म० ८ ।

[वि०] (म०) हाथा की मूढ़ के समान ।

करि के = चि० १५ ६६ ।

[पूर्व क्रि०] (प्र० भा०) करक ।

करि कै = चि० ६० १४८ १५२ ।

[पूर्व क्रि०] (प्र० भा०) (२० करि के १)

करिस्स = चि० ४१ ।

[म० पु०] (म०) मद मस्ती ।

करियो कछु = चि०, ६ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) कुछ करता है । कुछ करा ।

करी = चि०, १८ ३१, ४१ ।

[म० पु०] (म०) (२० करि १)

कर = चि०, १०० ।

[क्रि० त०] (प्र० भा०) करा किया काम वा करने वा प्राप्तमूलक क्रिया ।

करण = घा०, १३ । वा० ६७ ५१ १२६

[म० पु०] (म०) ८६ । अ०, २७ ३ । न०, ५६, ७० ।

दृष्ट स्पष्ट वक्रगायुष भाव ।

साहित्यशास्त्र में एत रस का नाम ।

करण कथा = वा० २०६ ।

[म० स्त्री०] (म०) दयाद्वारा रक्षणी तथा स पूरा गाथा ।

करण कहानी = घा० १५ ७६ ।

[म० पु०] (हि०) दया से पूरा कथा ।

करणकदन = वा० कु०, ७-८ ।

[म० पु०] (म०) कल्याण से भरा हुआ राना ।

[करणकदन—४८, कला ७, विरण ७, अग्रत

१६१३ में प्रकाशित श्रीर कानन कुमुम

में पृष्ठ ७-८ पर सङ्केतित । हे प्रभा ।

आनन्दाना ज्ञान हमका दीजिए' का

शला में लिखा गई प्राथना है जिसकी

अंश में वास्तवों इन प्रकार हैं —

हे नाथ, पर सारथा बन जाव मानम युद्ध में ।

फिर ता ठहरने से अचन एक भी न विरुद्ध में ॥

२०—कानन कुमुम ।]

करण कामना = वा०, ४७ ।

[म० स्त्री०] (म०) वह अभिलाषा जिसमें कूट कूट कर

व्यनायता भरी हो वातरता ।

करणव्यथा = वा० कु०, ६३ ।

[म० स्त्री०] (म०) कल्याण के कारण प्राया हुआ दुःख ।

करण वेदना = वा०, २१२ ।

[म० स्त्री०] (म०) (२० 'करण' यथा ।)

करुणा = घा०, ७ ११ २५ ३८, ६६ । क०,

[म० स्त्री०] (स०) २५, ३० । वा०, ४ ८३, १६५,

१८०, २८१ । प्र०, १६, २२ । म०

६ । ल० ६ २८ ३२ ।

मन का वह दुःख भाव जो दूसरा का

दुःख देखने से उत्पन्न होता है और

जो कुछ दूर करने की प्रेरणा देता है।
प्रिय के विभाग से होनेवाला दुःख।

कल्याणकटाक्ष = भा०, २६। वा० कु०, ८०।

[म० श्री०] (म०) कल्याणकी कटाक्ष। उसे विविध प्रकार से देखना जिससे कल्याण निश्चित हो।

कल्याणकलित = भा०, १। वा० कु०, ५३।

[वि०] (म०) कल्याण में पूर्ण या भरी हुई।

[कल्याण कल्याणि धरसे—राज्यशा का गीत जिसमें इस नाटक की रचना का मूल भाव है। प्रसाद संगीत में पृष्ठ ७ पर सन्निध चार पंक्ति का गीत। दुःखतम धरा प्रयुक्ति है, जगती में प्रेम का प्रचार है, दया दान है, कलह का नाश है, जब जगम मजमे मगल भाति प्रवट हो। ८० प्रसाद संगीत।]

कल्याणकुज = वा० कु०, १८।

[स० पु०] (म०) कल्याण से भरा हुआ स्थल। कल्याण की प्रतिमूर्ति।

[कल्याणकुज—इदु कथा ३, किरण ४, मार्च १९१२ में सवप्रथम प्रकाशित और कानन कुमुम में पृष्ठ १२-१४ पर प्रकाशित एक महत्वपूर्ण रचना। अपने ऊपर भारी बोझ लाद लिया है जो न ता सहेल रहा है और सतत कष्ट सहते रहने पर भी 'उमस' उबार नहीं है। शोष, वषा, शरत्, प्रवृत्ति आदि की सुंदर सुपमा रहत हुए भी सतत वाक्य लेकर चलते रहने के कारण वह दाख नहीं पड़त। इसी भ्रम पहिलिका म सुम भ्रमित हो। इमलिय—

‘नस्त पथिक, देखा कल्याण विप्रवश का
खड़ी दिताती मुंह याद हृदय का
शीतातप का भाति सना मवती नहीं,
दुख ता उसका पता न पा सकती वही
आत आत पथिका का जीवनभूत है
इमका ध्यान मिटा देना सब भूल है

कुमुमित मधुमय जहाँ सुखद अलिपुज है
आत हनु देखा वह वरगा कुज' है।
१० कानन कुमुम।]

कल्याणनिधान = वि० १७८ १८५।

[स० पु०] (स०) जिसका हृदय कल्याण से परिपूर्ण है।
बन्त बड़ा दयालु।

कल्याणनिधि = वा० कु०, ७, ६३। [वि०, १८१।

[स० पु०] (म०) प्रे० २०।

(२० कल्याणनिधान)।

कल्याणपट = भा० १४।

[स० पु०] (स०) कल्याणकी वस्त्र या परदा।

कल्याणप्लानित = प्रे०, ७।

[वि०] (स०) कल्याणकी जल की बाढ। वतुर्विक्
कल्याण से व्याप्त।

कल्याणमय = वा० ४।

[वि०] (स०) मकरण, धर्मयुक्त कल्याणवाला।

कल्याणमिश्रित = म०, ८।

[वि०] (स०) कल्याण से युक्त।

कल्याणर्त्रि कथा = भा०, १३।

[स० श्री०] (स०) कल्याण कहानी।

कल्याणालय = वा०, २६, ३०।

[स० पु०] (म०) कल्याण का घर। त्या का घर।

[कल्याणालय—इदु, कथा ४, पृष्ठ १ किरण १,
परवरी १९१३ में प्रथम प्रकाशन,
चित्राधार प्रथम सस्करण १९१८ में
पुस्तकाय रूप में। सन् १९२८ में
स्वतन्त्र पुस्तकाकार प्रथम सस्करण।

‘इदु’ के प्रकाशन से प्रसादजी एक प्रयोगकर्ता के रूप में हिंदी जगत् के ममुख आए। ‘कल्याणालय’ की लोग गीतिनाट्य में भावनात्मक की सजा देने हैं। नाटकों में स्तन में यह अपने पूर्ववर्ती प्रयागो, यथ सज्जन, प्रायश्चित और कल्याणीपरिण से सन्ध्या भिन्न नया प्रयाग है जो मभवत् हिंदी का प्रथम भाव । गीतिनाट्य भी। नाटक की विधा ‘कल्याणालय’ काव्यरचना है तथा मूल कविता ही है। गीतिनाट्यों के क्षेत्र

हिंदी में यह निम्न ही प्रथम प्रयोग है। इस गीतिनाट्य का स्थान परीक्षागत है। राजा हरिश्चंद्र साधना में यम्य का वरन्त पुत्रप्राप्ति के लिये प्रतिनाम्य हुआ प्राप्त करने है। हरिश्चंद्र को यह प्रतिनाम्य भी कि वह गृह्य अपने पुत्र का वरन्त कर देगे। किंतु पुत्रप्राप्ति ने यम्य व उम व्रत से विचलित होने से तथा निरन्तर होला ह्यासी वर इस कार्य को स्थगित करत जाते हैं। एवं निम्न सेनापति ध्यातिमान ने साथ नीचा बिहार करते समय आकाशवाणी होती है और सहर्ष में भयबर सन्तान मंच जाता है। साक्ष प्रयत्न करने पर भी नीचा विनाश नहीं लग पाता। उसी बीच आकाशवाणी सुन पड़ती है जिसका भाषण यह है कि पूव व्रत की उपेक्षा का परिणाम यह गहन तज्ज है। हरिश्चंद्र अपने पूव व्रत के पालन का पुन वचन देत है। नीचा फिर चल देती है।

हरिश्चंद्र का पुत्र रोहिताश्व यम से विचरणा करने
 हुए यह चितन करता धूम रहा है नि
 द्रुत के कारण बलि के मन्त्र में पिना
 से प्राप्त आना का पालन अथर्वर है
 भयवा नहीं। अतोगत्या उसके हन्म
 को तक और चितन इद के मध मद्र
 स्वर म भयोप्या छाडकर अमत्र
 प्रस्थान के निचे उप्रित करते है।

अकालपीडित भोजीगत और उनकी पत्नी तारणा ने
 आश्रम में राहिताश्व पट्टचकर उनकी
 दयका साथ उठाता है और गानन
 के बदले उन्हें मन्त्रे पुत्र शुन शेष का
 सोना करता है। शुन शेष से मा और
 पिता का ममता नहीं, क्योंकि वह न
 ती उनका बड़ा पुत्र है और न छोटा
 हों। रोहित शुन शेष के साथ पुन
 अपने पिता के समुद्र उत्थित होता
 है। उसे पिता के बोझ से स्वर मुन

पटा है। तिसु रोन्ति वा तक धीर
मुग वनिष्ठ की मृमति जुन गप की
ननि वे शिपे हरिअद का उमत कर
उनका वाप जाना करना है धीर
हरिअद वनिष्ठ का मज्जवस्था करन
की धामति दा है।

यंग धारम हाना है पर यमिष्ठ का पुत्र नरबलि
 जा म हुनार करता है। इपर भजी
 गत भी गीनों व लाभ में धायुष दना
 स्वीकार कर अपन पुत्र पर शस्त्रप्रार
 करन चता है उभर शुन १५ कासा
 बरसालय का प्रायना करता है।
 धावाय म गजन तर्जन धारम होता
 है। सय बितित हः जात है। तब तय
 विरामिय अपने सी पुनों व साथ
 बतिभूमि में प्रविष्ट हान है और नर
 बलि का धार भनाय कम घोषित
 करत है।

अग्रिम पृष्ठ पर यह कहना है कि ध्यापक अपने पुत्र की बलि नहीं दे सकते। वहाँ उसी समय राजा का एक दास जो विश्वामित्र का पत्नी और शुन नेप की माता है प्रविष्ट होती है। उसकी गर्मिणी प्रवस्था ही में विश्वामित्र तप करने चल गए थे। अकाल में आकाश व्याधिता मुमना की गाँव छोड़ना पड़ा राजासी बनना पड़ा। पुन शुन नेप को मजोरत की साधना पड़ा। मन्त्र सम्राट् छा गया। कल्याण विपाद स वातावरण बहना हो उठता है। विश्वामित्र पत्नी की ग्रहण कर्म है बिना नरबलि के हाँ बहना भा सतुष्ट होने हैं।

सुत्रता की प्रमुखचर्चा इसमें है जो प्रमोद साहस्य का विनिष्ठता है। यहाँ बीज रूप में ही यह सञ्चि होती है। विश्वामित्र की प्रधानता इसमें है। करणालय काव्य में कहानी ही है। यह बहुत उच्च कोटि की रचना नहीं है किन्तु समाज में ममूख

जिस धादश का आस्थान कवि ने विधा है, निश्चय ही वह मानव हृदय की विशालता का आस्थाता है, कवि के मानवप्रेम का प्रतीक है। वह इस बात का साक्षी है कि बिना नर की बलि चढ़ाए ही वांछित उद्देश्या का प्राप्ति की जा सकती है, मानव की मनोवामना पूरा की जा सकती है। जिसकी बलि चढ़ाई जानी है व एक दूसरे के भग ही है। एक दूसरे को समाप्त करना मानव उत्थान को उपादयता नहीं। जहाँ तक कथा का प्रश्न है साथ सरल रूप में यह क्या पुराण से लो गड़ ह। उस छाना में बाध दिया गया है किन्तु छाटो मा क्या पाच रूडा में कटकर जिस तरह जिज्ञासावृत्ति जगाई गई, है वह बौशल मराहनाय है। प्रष्टात का विशुद्ध मूल्याकन यहाँपर स्पष्ट ही दील पड़ता है। जहाँ तक छदा का प्रश्न है, उस अवुकात अरिल छद म यह रचना है जिस बाद म लागो न ग्रहण किया। खडा बोली म इसक प्रधान प्रयोगकता काववर प्रसाद ही है। सभव है कि कुछ लागा का इसमें कोई मौलिकता और काइ कला न दिखाई पड़े। किन्तु यह उनका दाप नहीं, यह कामायना क शिखर पर प्रसादों को देखने क भूमाम का धोप ह। इसकी काव्यकला पहले से विकसित है। कही कही अच्छे स्थल भा है जहा काव्य म चित्रात्मक शली दृष्टिगत होती है। प्रष्टि का धोडा सु दर रूप भी दिखाइ पड़ता है।

“नोक। धार और जरा धीर चला,
भाट, तुम्ह क्या जल्दी है उस भार का
कही कही उपात प्रभजन का यही,
मलबानिल अपने हाथा पर है धर
तुम्हें, लिये जाता है अच्छा चाल स,

प्रष्टि सहचरी सी कसी है साथ मे
प्रेम सुधामय चद्र तुम्हारा दीप है।”]

कल्यालोक = वा०, ८२।

[म० पु०] (म०) कल्या का नसार।

कल्यासद्व = व०, ६।

[म० पु०] (म०) कल्या का घर, कल्यालय।

कल्यासमुद्र = चि०, १७८।

[म० पु०] (म०) कल्यासपी मागर। कल्या का समुद्र।
अत्यंत कारणिक।

कल्यासिंधु = व० २४।

[म० पु०] (म०) (३० कल्यासमुद्र)।

कल्यासुदन = चि०, १७।

[म० पु०] (म०) विलाप।

करू = व०, ११, १८। वा०, १३४, १५३,
[क्रि०] (हि०) २३०। प्र०, ६। म०, १६, २३, ३०।
करना क्रिया का रूप।

कर = का०, ८५ १३२ १४६ १७० १७८,
[क्रि०] (हि०) १८४ २१० २८३। प्र०, ८। म०,
२, १८।
(“करना”।)

करेरे = चि०, ६६।
[वि०] (ब० भा०) कठार, बटा बठिन। करेर।

करै = चि०, ६, १०१।
[क्रि०] (ब० भा०) (३० ‘करना’।)

करे = चि०, २३, ६६।
[क्रि०] (ब० भा०) (३० ‘करना’।)

करा = व०, १३८।
[क्रि०] (हि०) (३० ‘करना’।)

करो = वा०, १११, ११४ १६४, १७१,
[स० पु०] (हि०) १८७।

कर वा बहुवचन।

ककश = वा० पु०, ४४, ११६।

[वि०] (म०) कठार, हिसक। तलवार। क्रूर, निदय,
माहिसिक, प्रचंड। सुगुरा, बाटदार।

कर्म = वा०, ६४।

[मं पु०] (सं०) मूय का पुत्र। भगदेश का दानी सभाट।

[कर्म—विवाह स पूव ही मूर्ध द्वारा कुत्ती के गभ स उत्पन्न पुत्र। गमा यमुना म वक्त मे बद बहूत दुःख उठाया। धृतराष्ट्र के सारथा धर्मधरथ द्वारा इसका उद्धार हुआ घोर दवप्रदत्त पुत्र मान क राधा ने इसका पालन किया। यह महाभारत मे कौरवों का, धनुन के समकक्ष, महान् योद्धा था। धनुन ने इसका वध किया। यह मेधावा तेजस्वा तथा दाना था।]

कर्मदेश = सं० ७५।

[मं पु०] (मं०) गुर्जर देश के एक नरेश का नाम।

[कर्मेश्वर सिंह—कमला का पति गुजरनरेश जो कमला के सौम्य पर सुम्य था। १० प्रलय का छाया।]

कर्मधार = व० ६। वा० कु० ८। मं० ११।

[मं पु०] (मं०) मल्लाह, मौजो। पतवार। प्रथम देने वाला। पथप्रणाली। नाविक।

कर्मधार रक्षित = मं० ११।

[वि०] (मं०) प्रथममास मरक्षित।

कर्मिहार = वि० ५५।

[सं पु०] (मं०) चपा का वृक्ष।

कर्मव्य = मं० ६६। वा० कु० १०८।

[वि०] (सं०) करने के योग्य जैसे करना आवश्यक हो।

कर्मव्यपथ = वा० कु० १०८।

[सं पु०] (मं०) कर्ममार्ग, कर्मव्य का राह।

कर्त्ता = वा० २६८।

[सं पु०] (सं०) करनेवाला करने या बनानेवाला।

कर्त्तृत्व = वा० १६५।

[सं पु०] (सं०) कर्त्ता का भाव कर्त्ता का गुण धर्म।

कर्मपूल = वि० ५५।

[सं पु०] (व० भा०) धातुप्राण जो कान में पटना जाता है।

कर्मर = मं०, ३।

[सं पु०] (सं०) कर्म नामक सुगन्धद्रव्य।

कर्म = व०, २३, २४, २७। वा० कु०, ६४,

[सं पु०] (मं०) ६४। वा०, ३३, ५६, ७५, ८२, १०६, ११३, ११५, १४६, १८७, १८३, २०५, २४०, २४२, २४४, २६८। प्र०, ५। सं०, १३, ३४।

वह जा किया जाय। क्रिया, कार्य, काम। धानिव कृषि। व्याकरण में वह शब्द जिसका वाक्य पर कर्त्ता का क्रिया का प्रभाव पड़। भाव।

[कर्म—कामायनी की कथा।]

कर्मकलश = वा० १६८।

[मं पु०] (मं०) कर्मकलश घट।

कर्मकुसुम = वा० १२३।

[सं पु०] (वि०) कर्मकलश फूल।

कर्मचक्र = वा०, २६६, २६७।

[सं पु०] (सं०) भाग्यचक्र समय का केर।

कर्मजगत् = वा० २६६।

[सं पु०] (सं०) क्रियाजगत्।

कर्मजाल = वा०, ३३।

[मं पु०] (मं०) रस्मों का समूह।

कर्मपथ = व० १५। वा० कु० ११६।

[सं पु०] (सं०) (१० 'कर्मव्यपथ')।

कर्मफल = मं०, ८।

[सं पु०] (मं०) कर्मों का फल परिणाम या तत्तीजा।

कर्ममयी = वा० ३१।

[वि०] (मं०) कर्म से युक्त। कर्म न युक्त वातावरण।

कर्ममार्ग = व०, १४। वा० कु० १२५।

[सं पु०] (सं०) (१० 'कर्मव्यपथ')।

कर्मयोगरत = मं०, ७, १८।

[वि०] (सं०) कर्म में निष्ठ।

कर्मलौन = वा० १७१।

[वि०] (सं०) कर्म करता हुआ कर्म में दत्तचित्त।

कर्मलोप = वा० २६६।

[सं पु०] (मं०) मगार मर्मलोप।

कर्महिं = वि०, १५५।

[मं पु०] (मं० भा०) = कर्म का।

कर्म = वा०, २६७।

[सं पु०] (हिं०) कर्म का द्रव्यजन।

कर्मों की पुकार = वा०, १७२ ।

[सं पु०] (हि०) कर्मों की अपेक्षा, कम करने की प्रेरणा ।

कर्मोन्नि = वा० २११ ।

[सं स्त्री०] (सं०) कम करते हुए प्रागे बढ़ने का प्रवृत्ति ।

कलक = वि०, ६७ । ऋ०, ७३ । ल०, १६ ।

[सं पु०] (सं०) चिह्न । अपवाद । पातुषा का मल विचार, दोष ।

कल = प्रा०, २६ । वा०, २६, ११६ । चि०,

[सं पु०] (हि०) २३, १७३ । ऋ० ६८ ।

अथ्यल मधुर ध्वनि सुदर । भाराम ।
साल कुक्ष । प्राग भानेवाला दिन ।
शाति ।

कलकपु = वा० ६३ । वि० ४७ ।

[सं पु०] (सं०) मुमधुर ध्वनि करनेवाला शल मा कठ ।
वाक्वि ह्य वव्वर ।

फलकमल = वा० कु०, ३६ ।

[सं पु०] (सं०) सुदर कमल पुण विधमित कमल ।

फलकल = प्रा० ८ । वा०, ८ । वा० ६३ २७८ ।

[सं पु०] (सं०) चि०, १५० । म०, ४ २४ ।

भरतो आदि क गिरन या चलन का
श ॥ वागाहल, गार ।

कलकल ध्वनि = वा कु०, ६७ ।

[सं स्त्री०] (सं०) प्राक्पक्ष ध्वनि, मुमधुर शब्द ध्वनि
भार भाव्युट करनेवाली गुजार । भरतो
आदि के गिरन स उत्पन्न ध्वनि ।

फलकल नाद = वा० कु०, ५७ ।

[सं पु०] (सं०) (२० कलकल ध्वनि ।)

कलकलनादिनी चि०, १ । ल०, ३२ ।

[वि० स्त्री०] (हि०) मुमधुर ध्वनि करनेवाली, नदी ।

कलकपोल = वा०, ११ ।

[सं पु०] (सं०) रोमविहान बोमल चिक्का गाल ।

कलकिक्किनी = चि०, ५१ ।

[सं स्त्री०] (हि०) सुधमट्टिका, वरधनी की तरह का मुधुल-
दार भाभूपण विधाय का नाम ।

कलकिशोर = चि०, ७० ।

[सं पु०] (सं०) ग्यारह स पदह का धवस्था का सुदर
बालक, पुत्र, बेटा ।

कलनेली चि०, १६१ ।

[सं स्त्री०] (सं०) सुदर विनवाड सुदर हँसी । रति,
मधुन स्त्री प्रसंग । ठटठा दिन्तगी ।

फलना = वा० ८ ।

[सं स्त्री०] (सं०) गगना, विचार लनदन, व्यवहार,
धारण या प्रत्यक्ष करना विधेय नाम
प्राप्त करना ।

फलना = वा० कु० २६ । चि० २, ६१, ६३ ।

[सं पु०] (सं०) मधुर ध्वनि ।

फलनादिनी = चि० १८४ ।

[सं स्त्री०] (सं०) सुदर ध्वनि करनेवाला नदी ।

कलनिनाम्नि = चि० १६७ ।

[सं स्त्री०] (सं०) (२० कलनादिना) ।

कलभ = चि०, २२ । वा० कु० ५१ ।

[सं पु०] (सं०) हाथी का पञ्चवर्षीय बच्चा । ऊट का बच्चा ।

कलरज = प्रा० ३१ ६५ । वा० कु० १६ ३३,

[सं पु०] (सं०) ७५३ । वा०, ११ ६७, ६८, ६९
१००, १५० १६८ १७२ १८८,
२७७, २८५ । चि० २३, १४४ । प्र०,
१८ । ल० १५ २७, ३६ ।
मधुर ध्वनि या भावाज गुजार शार ।

कलश = वा०, १८२ ।

[सं पु०] (सं०) घट, घड़ा गगरा । मंदिर का ऊपरी
भाग । चाटो या शिखर । पूजा का
का एक विशेष उपकरण ।

कलसी = चि०, ६६ ।

[सं स्त्री०] (हि०) (३० 'कलश') ।

कलहस = वा०, २८५ ।

[सं पु०] (सं०) हस राजह्व । श्रेष्ठ राजा । परमात्मा ।

कलह = वा०, २१६ । ऋ० ८८ ।

[सं पु०] (सं०) विवाद भयडा ।

कला = प्रा०, २०, ३८ । वा० कु०, ५०, ५१,

[सं स्त्री०] (सं०) ४२ ५३ । वा० १०४, १५३ १६५,
१७५ २६७ । ल०, ३७ । चि०, ८२,
१४६ ।

प्रश हिस्सा । चद्रमा का सालहवा
भाग । सूर्य के प्रकाश का बारहवा
हिस्सा । समय का एक विभाग जा ३०
वाक्का का होता है । राशि के तीसवें

अथ वा साठवीं भाग राशि चक्र के एक अथ वा साठवीं भाग । कौशल ।
नाम शास्त्र का चौसठ कलाए । विभूति,
तज शोभा छटा । कौतुक खेलवाड ।
छल कपट । अथ, युक्ति, नटो का एक
कसरत हुनर ।

कलाकार = ल० ३७ ।

[म० पु०] (म०) कौशलपूर्ण कार्य करनेवाला कला
कुशल ।

कलाशोशल = का० कु० ५१ ।

[म० पु०] (म०) किमा बना का निपुणता ।

कलाधर = का० १५३ ।

[म० पु०] (स०) चंद्रमा । शिव । कला का नाता ।

[कलाधर—प्रसादजी का आराधक कविताधो
म उपनाम ।]

कलानियि = का० कु० ५० ।

[म० पु०] (म०) चंद्रमा ।

कलाप = वि० ४८ ।

[म० पु०] (म०) गुच्छा गुच्छ मयूर ।

कलापी = वि० २३ ।

[स० पु०] (म०) मोर । कवि ।

कलिका = श्री० ३५ । का० ६७ । वि० ५५ ।

[स० श्री०] (स०) बिना रिता हुआ फूल । फूल का बली ।

कलिंग = ल० ४६ ।

[स० पु०] (म०) एक प्राचीन प्रदेश जो गंगाबरा और
वतरणा के बीच था । यहीं पर अशोक
ने नरसिंहार द्वारा प्राप्त विजय से
विरक्त हो महिमा का व्रत लिया ।

कलित = श्री०, ७ १६ । का० २६ ४८ ८१ ।

[वि०] (स०) वि० २२ ३३ ६८ ७५ । म०, ८० ।
भरा हुआ युक्त, मुद्राभिन ।

कलिन = वि० ३८ ६८, १६७ ।

[स० श्री०] (स०) बरग का वृक्ष । (° 'कलिका')

कलियाँ = श्री० २३८ ७८ । का० कु० १८

[स० श्री०] (स०) ६१ ७० । का० ६१ १२३ १७८
१७५ । वि० ३३ १८७ । म० ६ ।
(° कलिका)

कलो = का० कु० ८ ३४, ५२ । का०, १८१,

[म० श्री०] (हि०) २१२ । वि०, ६, २६, ५६ । प्र०, २ ।
(° 'कलिका')

कलीकुल = प्र० २ ।

[स० पु०] (हि०) कलियों की जाति या वन ।

कलोनिहर = वि०, २४ ।

[स० पु०] (म०) कलिया का समूह ।

कलुषित = का० २२६ । म०, ७६ ।

[वि०] (म०) मलिन मला, निदिन ।

कलुषित ज्ञाया = का० २२६ ।

[म० श्री०] (म०) मलिन या पापा शरार, निहित या
कलमि शरार ।

कलुस = का० ६१ । का०, १२० १६३, १८५ ।

[म० पु०] (हि०) को । पाप, मलानता ।

कलुजर = का०, २६२ । वि०, २२ ।

[म० पु०] (म०) शरार, वह ।

कलोल = का० २५२ । वि०, ८३ ।

[म० पु०] (हि०) घामाद प्रमोद झाडा ।

कलोलिनी = ल० १८१ ।

[वि०] (स०) झाडा करनेवाली कलोल करनेवाली ।

कलोलै = वि० ४६ ।

[वि० म०] (स०) घामाद प्रमोद करता है । क्रीडा
करता है ।

कल्पना = का० २६ । का० कु०, १८ ७५ ।

[स० श्री०] (म०) का०, ३७ ५०, १२६ १८२, २११,
२२८ । वि०, ७२, १०५, १६५ । प्र०,
६ । ल०, ८४ ।

अच्छा रचना, मजाबट । वह शक्ति जो
व्रत करण से नई और अनोखी
वस्तु या वृत्त की उपस्थित करती
है । उद्भावना । जिमा वस्तु से दूसरी
वस्तु का आराध मान लेना, अनुमान
करना ।

कल्पनाचम = का०, १७८ ।

[स० पु०] (म०) आराधित मगार मनपड़न दुनियाँ
का पना का गमर ।

कल्पनातीत = का० ५१ ।

[वि०] (स०) कल्पना से पर या बाहर । जिसका
अनुमान या अनुमान से लगाया जा
सक ।

कल्पनामदिर = प्रे० ३, १

[म० स्त्री०] (म०) कल्पना का मंदिर । उम स्थान के
महण जहा स हृदय को अधिक स
अधिक भावनाओं र्य विचरणा करते
की प्रेरणा मिलती हो ।

कल्पना मराल = चि०, १४३ ।

[म० पु०] (म०) बनावटी हस मनगहन हस । कल्पना
रूपी हस । नीर धीर विक्की कल्पना ।

कल्पनालोक = का०, १५८ ।

[म० पु०] (म०) कल्पना का ससार । वह देश या प्रदेश
जहाँ संघटन की प्रेरणा मिलती हो ।
उद्भायना का ससार ।

फलपनाबीणा = का० कु०, ६३ । का०, २६ ।

[म० श्री०] (म०) कल्पनारूपा या कल्पना की धीरगा ।

[कल्पनासूत्र—इदु, कला १, विरण ५ अमहन
६६ तथा चित्राधार पृष्ठ १४३-१४४।
वर्तमान भूत श्रीर भविष्य को रजित
करनेवाली शक्ति कल्पना है जो मनुज
के जीवन का प्राण है। कल्पना सारे
मसार को शासन छाया देनी है श्रीर
मनुज को मुख भी। कल्पना के प्रति
यह भाव उमर काव्य माहिय के
अध्ययन में सहायक है। *० पराग
एव चित्राधार।]

कल्पनाहि = चि० १४३ ।

[स० स्त्री०] (द्व० भा०) कल्पना ही, कल्पना की, कल्पना मे।

पटपट्ट = का० ११ । वि०, १५३ ।

[म० पु०] (स०) नदन बानन या हृद के बन का वह कल्पित वृक्ष जो इच्छित फल देता है। कल्पतरु। मसुद्र मथन से प्राप्त चीन्ह रत्नो में स एक रत्न।

कल्पित = बा० कु०, ७५। बा०, २३४। चि०,
[वि०] (म०) १४१।

जिमकी व पना की गई हा। मन से
गडा हुआ। बनावटी। नरुनी।

कल्पितगेह = वा० । ५४ ।

[मं० पुं०] (मं०) मन से गढ़ा हुआ घर । हवाई महल ।

कल्याण = ग्रां०, १०, ५५। का०, १०१, १६२।

[म० पु०] (म०) प्रे०, २३ ।

मंगल भलाई, कुशल क्षम ।

कल्याणकला = वा०, ३२८ ।

[मं० स्त्रो०] (म०) वह कना जिमसे कल्याण प्राप्त हो
अथात् श्रद्धा ।

फलयाण-कामना = प्र०, १६, २३ ।

[म० स्त्री०] (म०) मंगल की अभिलाषा या इच्छा ।

कल्याणभूमि = का० १६६।

[म० जी०] (म०) वह भूमि या लाख जहाँ सब प्रकार का भ्रष्टाचार, धर्म, काम और मानव-जनित कल्याण प्राप्त हो।

कल्याणमयी = का० २४६ ।

[प्रि०] (म०) कल्याण या भगल करनेवादी ।

कल्याणमार्ग = प्रे० २३ ।

[सं० पु०] (म०) पुरुषार्थ साधन का पथ या उन्नति का माग । मगतपथ ।

कल्याणी = भा०, ६३ । का०, २६४ ।

[म० श्री०] (म०) कल्याण करने वाली देवी, (भद्रा) ।

फल्लोल = का० ६८ ।

[म० पु०] (म०) (२० कलान'।)

कृत्रय = वि० ३८ ।

[मं० पु०] (मं०) युद्धस्थल में शरीर को रक्षा करने वाला पहनावा, यर्म। तत्रशास्त्र का एक प्रकार का यंत्रात्मक अस्त्र। एक वृत्त विणेष का नाम।

अवगति = अ०, ४५ ।

[म० ग्री०] (स०) चाटो, जूडा, वेणी ।

क्षत्रीभार = ५०.२१।

[म० पु०] (म०) जूड़ा, केशो का बोभ या समूह । घलका की राशि का भार ।

कवि = का० ४५ ५० । वि० ४८, १४२,
[म० पु०] (म०) १६५ ।

काव्यरचना करनेवाला । काव्यमग्न ।
व्रत्या । त्रिवालयग्री ।

कशाघात = का०, २६७।

[म० पु०] (म०) चाबुत के मारने स लगी हट्ट चोट ।

मर्यादा = का० कु०, १०६। चि०, ५८।

[सं पु०] (सं०) एक ऋषि का नाम जो मरानि ऋषि क पुत्र थे। विभिन्न प्रकार के ऋषि। मृग एक मछलिया का नाम।

फट = का० ११४ १६६। वि० ३५, ३६,

[सं पु०] (सं०) १०१। प्र०, ६ ७।

दुस पीठा यथा।

फटपूर्ण = का० ७७।

[वि०] (सं०) ध्यपिन, दुत्तित पाडिन।

फसक = का० ११६ १६०, १७१। ल०

[सं ली०] (हि०) ६२।

बहत हुन्वा भीठा दद, टीस। सान।

गिनोका भारी द्रव या वर। हीमना।

फसकर = का० ७१। ल० ५७।

[पु० क्रि०] (हि०) बाँधकर।

फसत = वि० १७६।

[वि०] (श० भा०) फसता हुआ बाधता हुआ।

फसता = का० १२४, १४५।

[क्रि०] (हि०) बाँधना।

फट = का० १६८ ११४ १७७ १७८

[क्रि०] (हि०) १८६, १८८ १६४ १६५ १६६,

२००, २०१ २०६ २१२ २२०

२३४ २४५ २७८। ल० १० ११।

शब्दोच्चारण द्वारा अभिप्राय व्यक्त करना। फटना।

फहता = का० १५७।

[क्रि०] (हि०) शब्दोच्चारण द्वारा अभिप्राय करता।

फहती = का० ७७ १०० १०६ १११ १३१,

[वि०] (हि०) १३६ १५६ १६५ २०१ २११,

२१६ २४८ २६० २७३।

वर्णन करती। शब्दों द्वारा अभिव्यक्त करती।

फहते फहते = का० ६४ ६० ३६१।

[प्र०] (हि०) वर्णन करते-करते।

फहते हैं = का० १०७ १२० २१५ २२७

[क्रि०] (हि०) २३८।

वर्णन करते हैं।

फट नेना = का०, १२०।

[क्रि०] (हि०) फटना का भविष्यत् काल।

फट नेना = का० ३७।

[क्रि०] (हि०) फटने का धातुसंज्ञक।

फहन = वि०, ६२।

[प्र०] (श० भा०) फटना।

फहना = का०, १५। का०, २७, १० ५४ ५५

[क्रि०] (हि०) ६३, ६८ ७३ १६७, १८६ १६९,

१६८ २८२। प्र०, २ १६, २०।

वाचना।

फहने = का० ६० १२७ २१६।

[क्रि०] (हि०) कहना का बहुवचन।

फट रे = का० २८६।

[प्र०] (हि०) कहा, बाना।

फहो = का० २६, ४०। का०, ४, २४। का०,

[प्र०] (हि०) १०, १६, १८ २६ ३७, ६१ ७०

८४, ८६ १११ १२३, ११३, १४०,

१४४ १७५ १७७, १७६, १८३,

१६६, २११, २१३ २१६ २२४

२३० २४५ २५८ २५६ २६१

२७८ २६२। प्र०, ८ १७ १८

म० ७

किस जगह।

फहा = का०, ४८ ८५, ८६, ८७ ८६ ११२,

[क्रि०] (हि०) ११४ १६२ २१५, २८०। प्र०, ५

७ ८, २३। म०, ४, ५ १०, १४

१६ १८ २१, २३।

कहना का भूतकालिक क्रिया।

कहानी = का०, ५२ ७८। प्र०, ६, २२। म०

[सं ली०] (हि०) ११।

मन से गढ़ा या किसी घटना का

आधार पर प्रस्तुत किया हुआ विवरण,

कथा किंसा आख्यायिका भूटा या

मनगढ़त बात। गल्प।

कहानी सी = का० ४।

[वि०] (हि०) कहानी की तरह कथित किंतु व्याप

हारि सत्य का तरह।

कहावति = वि० १८३।

[क्रि०] (श० भा०) कहा जातो है।

कहि = वि० ५७, ६४ ७४, १८१ १६१।
 [प्र० क्रि०] (प्र० भा०) कहकर।
 कहिये = व०, १७। वि०, ४, ७४। म०,
 [क्रि०] (वि०) १०, २०।
 बानिए।

कहीं = क० १, २८ ३०। का०, ३०, ४१
 [प्र०] (वि०) १०, ४३ ४८, १०४ १४६,
 १४८, १५८, १८५ १७१, १७७
 १८० २१८, २१६। अ० ७६१, ६२,
 ८६। प्रे०, ५ १० १४ २६। म०,
 १ १८। न० ११।
 किसी स्थान पर।

कहीं = का० १६४।
 [क्रि०] (प्र० भा०) कहा वा आनिग।
 कहूँ = वि० १५, १५१।
 [प्रत्य०] (प्र० भा०) कही किसी स्थान पर।

कहू रे = वि० ४।
 [क्रि०] कहोर।
 कहँ = का० ८६, ११७, १६१। वि०, १।
 [क्रि०] (वि०) प्रे० ८, ११।
 कहना वा प्रथम पुरुष में रूप।

कहूँ = वि० २।
 [प्र०] (प्र० भा०) कहीं वा किसी स्थान का।

कहे = का० १६५ १७१ १७७। प्र०,
 [क्रि०] (वि०) १५, २०। म०, १७।
 कहा का बहुवचन।

कहै = वि० २५, ४८।
 [क्रि०] (प्र० भा०) कहने है।
 कहो = का०, ३७ ६०, ६१ ६४ १२२,
 [क्रि०] (वि०) १६६, १६६, १८४। म०, ६, १०,
 १४ २१, २३।

शान उज्ज्वारण करो, बानो।

[कहो—इ] बना ३ किरण ३ फरवरी १६१२
 में प्रकाशित और भरना पृष्ठ ४४ पर
 सजलित माठ पत्तियों की कविता।
 आज प्रति पत्र पर छत्र व्याकुल है,
 बाणा अपने में मस्त है, कुछ कहने

नही बनता, गदगद कठ वह स्वयं
 मुनता है जा कहता है। आज क्या
 हो गया है प्रियतम बाण या अंतर
 बियाग, एक मिलन का क्या कारण
 है, बताओ। > भरना।]

कझो = वि०, ४१, ७४।
 [क्रि०] (प्र० भा०) कहा।
 कही = वि० ३१, ६७, १६५।
 [क्रि०] (प्र० भा०) कहा।
 कसौटी = वि० १७६। अ० ८०।
 [स० स्त्री०] (वि०) मोता का परग करनेवाला पत्थर।

कस्तूरी = न०, ५६।
 [स० स्त्री०] (वि०) एक सुगंधित पदार्थ जो हिरण की
 नाभि से निकाला जाता है। एक
 प्रकार का हिरण।

कस्तूरीकुरग = का०, १५३।
 [म० पु०] (म०) कस्तूरी जानि का हिरण, वह मृग
 जिसमें कस्तूरी हो।

काचनीय = वि०, २६, १६१।
 [वि०]
 (स०) स्वयंयुक्त, स्वामिग। कचनारमय। क्या
 सह्य। धतूरा के दुग्ध।

काँटन = वि०, ३५।
 [स० पु०]
 (प्र० भा०) कटक काटा, वृक्ष का टहनियों का
 नुकासा अधिक जो पिन का तरह तेज
 होता है।

काँटे = क०, ७। का० कु०, ४६, ८२।
 [म० पु०] (वि०) का०, १५४, १५८। अ०, २१, २६,
 ५२। प्रे०, १२, १६। म०, २। ल०,
 १८, ३५।
 (प्र० काँटन।)

कात = का०, ८२ १३१, २४२, २४५। अ०,
 [म० पु०] (म०) २८, ५६ ७१। ल०, १३।

पति, जोहर। बदमा। मुदर एक प्रकार
 का बढिया साहा, कातिसार। मुनुप।

काति = का० कु०, ६, १३। का०, ३७,

[सं स्त्री०] (मं०) २३६। वि०, ११, ३०, ४५ ७०
१४६, १५३। ऋ०, २७ ३४।
दाति, चमक, शोभा, छवि। एक
प्रकार का आम छद्म।

कातिसिंधु = का०, २५४।

[मं पु०] (सं०) शोभा गायर अव्यक्ति शोभा या
छवि। छवि का रत्नाकर।

काँपना = का० २५, ८६, १२० १८४ १८६,
[क्रि०] (भनु०) १६८।

हिलना, धरधराना धरना भय से
धनित होकर काँपना।

काहूँ = का० ८४।

[सं स्त्री०] (हि०) जल के ऊपर जमा मल।

काहूँ सी = का० ४०।

[वि०] (हि०) त्याग्य उपेक्षित।

काकली = का० कु० १६। का० ६३, १७४
[सं स्त्री०] (सं०) १६२। वि०, १७१।

मधुर ध्वनि बलनाद कोकिल या मार
का मधुर तथा मीठा स्वर।

कादे = वि० १७।

[सर्व०] (हि०) निस्वे।

काटत = का० कु० ५। वि० ४२ १७१।
[प्र० क्रि०] किसी वस्तु को दो टुकड़ों में किसी
तोपे धारदार औजार से विभक्त
करते हुए पीसते हुए समय वित्तात
हुए विभट्ट करते हुए, ढसत हुए।

काटपेच = वि० १८१।

[मं पु०] (हि०) छलछिद्र। दक्षिणेंच। काटछाट।

काटना = का० २५७। मं०, ६।

[क्रि० सं०] (हि०) किसी वस्तु को औजार से काटकर
टुकड़ा में करने की क्रिया। दिताना
जस समय काटना। घटना जस
चकार काटना।

कोटि = वि० ४२।

[मं स्त्री०] {मं०} श्रेणी। कराड।

काठ = नं० ५२।

[मं पु०] (हि०) पड़ का काई भग जा बत्कर या गिर
कर मूल गया हो, लकड़ी।

काठों की सघि = का०, १३६।

[मं पु०] (हि०) न गूखी हुई लकड़ियों का जोड़।

कातर = का० ११६। मं०, २४।

[वि०] (सं०) अधीर, व्याकुल, डरा हुआ, भयभीत,
घात, दुःखित।

कानरता = का० १६।

[सं स्त्री०] (मं०) प्रवीरता याकुलता भयभीति, अत्यंत
दुःख युक्त हानि का भाव।

कातरताएँ = का० १२।

[मं स्त्री०] (हि०) कातरता का बहुवचन।

कादबनो = का०, ५६। वि० १५०, १५७। मं०,
[मं स्त्री०] (मं०) ३६।

बाँला का समूह मेघमाला।

कादर = का० कु० ११५। मं० ६।

[वि०] (हि०) डरपोन, भीर। अधीर याकुल।

कातरता = वि० ६३ ६५।

[मं स्त्री०] (हि०) भीरता डरपोकपन। अधीरता,
याकुलता। कातरता।

कान = का०, २७ १०३ १६० १८५, १८४।

[मं पु०] (हि०) सुनने का इन्द्रिय अवयव श्रुति श्रोत्र।

कानन = का० कु० ८२। का०, ३२ ७३

[मं पु०] (मं०) १४४ २६२, २७६ २८४। प्र०, ४,
७ १४ १६ २०। मं० १ ५, ७,
८ १४ १६।

जगल वन, घर।

कानन अचल = का० ४८।

[मं पु०] (सं०) वन, उपवन हपी अचल।

काननकुसुम = का० कु० ११३।

[मं पु०] (मं०) वन गुण, जगल व प्रमून।

[काननकुसुम—काननकुसुम अब जिस रूप में है
उमम खरा बाना का रचनाएँ मात्र
मिलती हैं और सन् १६२६ ई० में इन
कविताओं में प्रमाणों न मशायन,
परिवर्द्धन एवं परिवर्तन भी किया था,
एमा तामरे मस्वरण व वक्तव्य से
प्रकट होता है। प्रकाशक व अनुसार
इन रचना का प्रथम मस्वरण सन्
१६१२ (सं० १६६६) में हुआ है जिसमें

चित्राधार भी था। पर रचनाओं के बालक्रम तथा पत्र पत्रिकाओं की पाइता का दखन हुए ठाम आचार पर बाबू किशोरलाल गुप्त ने इसे १८४३ की ही रचना माना है।

संवत् १८६६ से स० १८७४ तक की स्फुट कविताओं का संग्रह काननकुसुम में है और काननकुसुम के मुख पृष्ठ पर क्या मरि-त्सागर का यह श्लोकाव है— 'राधिका हि बहत्का य पुण्यामादामवालयन' ।

रचनाएँ	पृष्ठ
१ प्रभा	१
२ वदना	३
३ नमस्वार	४
४ मंदिर	५
५ वरुण व्रतन	७
६ महाक्रीडा	८
७ वरुणावुज	१२
८ प्रथम प्रभात	१५
९ नव वमत	१७
१० मम क्या	२०
११ हृदय वदना	२२
१२ ग्राम का मध्याह्न	२४
१३ जलद आवाहन	२६
१४ भक्तिपाण	२८
१५ रजनीगवा	३३
१६ सराज	३६
१७ मलिना	३८
१८ जल विहारिणी	४१
१९ ठहरा	४४
२० बाल प्राण	४६
२१ बोधिन	४८
२२ सौंदर्य	५०
२३ एषात मे	५२
२४ दानि कुमुदी	५४
२५ निमीष नदा	५६
२६ विनय	५८
२७ तुम्हारा स्मरण	६०

२८ याचना	६२
२९ पतित पावन	६४
३० राजन	६६
३१ विरह	६८
३२ रमणी हृदय	७०
३३ हा, मारये ! रय राक दा	७२
३४ गंगागागर	७४
३५ प्रियतम	७६
३६ माहन	७८
३७ भावसागर	८०
३८ मिल जाओ गल	८२
३९ नही डग्ले	८४
४० महाकाव तुनसीदास	८६
४१ धमनीत	८८
४२ गान	९०
४३ मकरद बिदु	९२
[क] तम हृदय ५१ जम उशीर	९२
[ख] ह पलक परद खिने	९२
[ग] हृदय नाहि मरा शून्य रहे	९३
[घ] मिल प्रिय इन चरणों की धूल	९५
[ङ] प्रथम परम आदेश विश्व	९५
[च] गज ममान है द्रस्त	९४
४४ चित्रकूट	९४
४५ भरत	१०४
४६ शि-प मौदय	१०७
४७ कुम्हव	१११
४८ बार बालक	११८
४९ श्री शृष्ण जयती	१२३

इनमें पत्र पत्रिकाओं में निम्नांकित रचनाएँ प्रकाशित

हुई थी—

इंद्र वना २, विरग २ आवाण ६७	चित्र
" " ५ ४	जलविहारिणी
" ३, " १, आखिन ८८ प्रभा	
	रजनागवा
	दव मंदिर
" " २, वानिक ६८	एकान मे
	ठहरा
	बालक्रीडा
	राजराजेश्वरी
	नव वमत

टुट	बला ३,	४, मार्च '१२	मरोज महाम्रीडा करगाकुज सौन्दर्य कोविल
"	३	" १०, मिन० '१२	मम क्या
"	३,	" १२ नव० '१२	हृदय वदना
"	४,	" १ जनवरी '१३	मत्स्यव्रत (चित्रकूट) भरत ।
"	४,	" ४, अप्रैल '१३	कल्याणजन भक्तियाग निगाव नदी
"	"	" ५ मई	दलित दुष्टाना प्रथम प्रभात भूल गजल
"	"	" १, जून	नमस्कार
"	४	१५ २ किरग २ अगस्त	नमस्कार कृष्ण जयन्ती
"	५	२४ १ किरग १, जनवरी १९१४	पतिन पावन रमणा हृदय
"	"	" २ फरवरी १४	याचना राजन विनाद बिंदु
"	"	३ मार्च १९१४	हा मारच । रथ राव दी ।
"	"	४ अप्रैल "	गगामाघर विरह मात्र
"	"	५ मई "	मिलन-है पलक

इन रचनाओं के आंतर प्रसाद के विवान के चित्त स्वयं स्पष्ट हैं। प्रमाद क समुल खड़ी बाला के धा उनक प्रवर्ती आधुनिक युग क जितन भा कवि वतमान थे मवका रचनापद्धति का उ हान प्रयाग रूप म ग्रहण किया यथा यहा पर भारतहु भा हैं, आवर पठक भा हैं हरिऔध और यथिला गरण गुप्त भी ह तना स्वयं प्रमाद जी भा ह। इसमें रंगान सादा सुगम बानी मकरव और परागवाली मभा प्रकार का रचनाए एक साथ एकत्र हा गइ हैं। इतना विविध चयन उस यक्ति का हा प्रतात हाता ह जा तसा राह पर गइ हा। जहा म रास्त अनैक शिक्षाओं का भार मुठ रह हा। प्रमादजी भा यहा बस हा दाफन ह। ब मभा रास्ता पर पाडा दूर चलकर पुन दूनर रास्त पर चलन लगत ह। और मभा रास्ता पर चलकर अत म मनुष्टि न पा स्वयं रास्ता बनान दाखन है। उस पथ का साजिशिदु इन रचनाओं म है। य प्रयागकालान रचना है। इध रचना म यह सक्त जय चित्रकार का भीत स्पष्ट रूप स मिन जाता है जा चित्रनार वत बड़ आदश क निय चित्र बनानेवाला हा तथा धुन म अपना प्रयागकाला म जिन रात बरष कर रता हा।

मरण तथा मृत्यु है। जगत् बनाए
घटना महत्त्व रखता है। प्रकृति घटना
घटन भाषा व रूप में यही निर्धार
पहली है और बचि व मरि घटित
विषय है जहाँ पर प्रकृति का मानन
धारण है यही रव और नरक मानन
है। बचि ने उम मरि व दक्षता को
विषय गृहस्थ माना है। बचि न पुन
की मरिगाहा भी प्रकृति के साथ रखा
है और इस ब्रह्माण्ड का हा निर्दि
का हेतु माना है। इस ब्रह्माण्ड में
प्रथम प्रभात भा है नव वसन भी है
और उम व भाग को मर्म बचा भी
है। मर्म बचा ने हृदय का रचना पूरा
है और व हृदयवन्ता भाग र हा बाव
भी उठा है। यह हृदयवन्ता प्राणप्रिय
का है। इसमें निरुद्धा चितवन भा है।
मानन तथा मनन का और भाग
वरमाने को बात भा है, प्राधिन हार
सतान का बाव भी है और मरि की
बात भा है। प्रमाण व बाध्य व मध्य
में प्रममयी जिम पाठा का स्वर सुनना
मुसरित भा वट यही भा है। बभा
बभा उम पाठा का क्या रूप हा जाता
है और वह कितनी विषय हो जाती
है, इसका चित्र दखना अप्राप्तिक
न होगा।

कभी कभी हा ध्यान बचिना यथा विषय हो जाती है
प्राधिन होकर फिर यह हमका प्रियतम। बट सताता है
इस तुम्हारा एव महारा, किया करा इसमें ब्रौडा
में ता तुमको भूल गया हूँ पावर प्रममया पीडा।

प्राकृतिक दृश्या से सम्बन्धित रचनाएँ भी इसमें हैं।
श्रीम का मध्याह्न भी श्रीमचक्र भा
भूल उठाता, प्रवल प्रमजन व साथ
राड राड शब्द यही उपास्थित करता
है। नत्र निमर व सात्विक से जनाम
का भावाहन ध्यानपुर उगान व लिय
महाँ किया गया है। रजनामभा भा

धरा मीरम ग रित प्रकृत बनती
हृद वृषि बावा भा मजा। नीन पहली
है। मगत्र भी मपुत्र धारण व
परागमय नरक ग मुगधित हा यही
प्रतिविधि है। इत भा मरि रिरगावनी
व्याम में प्रमाणित रखा हुआ भा
पहला है तथा प्रकृति भा मनारा म
जन्मरिरागिना का रखा भा धान
को घना व निर धि रखा है। कानि
भा नवा वमनाम बट लरर मनार
मुसबानी रीति उमिधन कर रखा है।
एतान में निस्तपना है, पर साथ ही
योगवपना भी है। ब्रौडागर व बाध
नरित वुमुनि भा यही मुसबरा रखा
है। चित्रपूठ और तुनगीदाग तथा
गुग्य जयता मयथा रचनाएँ भी हैं।
इसमें बचि न प्राय उन गभा विषया
पर जा उमके गामन आए हैं भाव
ध्यान किए हैं। रचना में व व प्रम
प्रमया का परमना तथा जिम रूप भा
उपागव बचि रह मकता या उसका
दशन करना अधिक उपाद्य होगा।
इसमें पृष्ठ ६० और ६१ पर निग ग
मान हा धार ध्यान प्राकृत बनना
चाहूँगा।

उपपुन रचना में उम सुनना व चिरजय हान का
बाधना का गर्द है जा दग, समाज,
विषय और मानवता व कल्याण व
निय अधिनाशा हा। या ता यह रचना
इतिवृत्तारमन है। इसमें बाध्य व विनाय
गुग्य सम्भवत न शर्तों। साथ सरल
भाव हा स्पष्ट रूप से आए है। किन्तु
प्रमाण व जीवन का समस्त आदेश
जा बाद में उनका बाध्य का आधार-
विन्दु बिना, यही पर जिम भाति एकर
दृष्टा है सम्भवत यह प्रयत्न न शक्त।
सम्भवत आदेश पुन्य का इसमें मुदर
चित्र भा प्रमाण की भावना क अनुसार
प्रयत्न न, मिल सकगा। बाधा का

इंदु कला २,	४ मार्च '१२	मरोज महाक्रीडा कम्पाकुज सौंदर्य कोविल
" ३	" १०, सित० '१२	मम कथा
" ३,	" १२ नव० '१२	हृदय वदना
" ४	" १ जनवरी '१३	सत्यव्रत (चित्रकूट) भरत ।
" ४	" ४ अप्रैल '१३	कल्याणदत्त भक्तियोग निशाथ नदी
" " "	५ मई	दलित कुसुमों प्रथम प्रभात भूल गजल
" "	६, जून	नमस्कार
" ४	२४ २ किरण २	अग्रस्त नमस्कार वृष्ण जयंती
' ५	खंड १ किरण १, जनवरी १९१४	पतिन पावन रमणी हृदय
" "	" २ फरवरी १४	याचना राजन विनोद बिंदु
" "	३ मार्च १९१४	हा मारण । रथ राज दा ।
" "	४ अप्रैल "	गगनागार निरह मोहन
" "	५ मई "	मिलन-हैं पलक परद खोच
" ५	३ मितबर "	भवरविंदु—हृदय तहि मरा शून्य रहे
" ६,	१ जनवरी १९१६	गुम्हारा स्मरण हमारा हृदय
" कला ६, किरण ४	१५-मकू० नव०	मिन जाभा गल
सरस्वती—वप १३	मक ६ जून १२	जलद आह्वान
नागराप्रचारिणा	परिभा—जय हा	तुनभागन की (तुनभाजयता क भवभर पर)

इन रचनाओं व भीतर प्रमाण के विधान के
चिह्न स्वयं स्पष्ट हैं। प्रमाण क समुच्चय
खड़ी यात्रा क या उनक पूरवर्ती
आधुनिक युग क जितने भा कवि
वर्तमान थे, सबकी रचनापद्धति का
उद्देश्य प्रमाण रूप में ग्रहण किया,
यथा यहाँ पर भारतेंदु भी हैं, आकर
पठक भा हैं, हरिऔध और भविली
शरण गुप्त भा ह तथा स्वयं प्रमाद
जा भी ह। इसमें रमान, सादा सुगम
वाला मकरद और परागवाला
मन्त्री प्रकार का रचनाएँ एक साथ
एकत्र हो गई हैं। इतना विविध ध्यान
उस व्यक्ति का हा प्रताप होता ह जा
एसा राह पर पड़ा हो जहा स रास्त
अनेक दिशाओं का भार मुठ रह ह।
प्रमादजी भा यहाँ वस हा दाखत ह।
व सभी रास्तों पर धाटा दूर चलकर
पुन दूसरे रास्त पर चलन लगत ह।
और सभी रास्ता पर चलकर अंत में
संतुष्टि न पा स्वयं रास्ता बनात दाखत
है। उस पथ का बाजबिंदु इन
रचनाओं में है। यह प्रमाणवाचक
रचना है। इस रचना में यह मकल
जम चित्रकार का भाति स्पष्ट रूप में
मिल जाता है जा चित्रकार बहुत बड़े
आदर्श क नियम बनायवाला हा
तथा छुन स अपनी प्रमाणशाला में
दिन रात काम कर रहा हा।

इसमें तुल्यविंदु और नारमता है साथ हा बहुत
बड़ा वस्तु और भा है और वह वस्तु
है उस परिधि का नाम जिस परिधि
में अविद्यम कवि का अग्रज काव्य का
वृत्त बनाया था। इसमें स्वतंत्र इति
वृत्तात्मक कथा, इतिवृत्त वाल प्रतीति
द्वजन पौराणिक आध्यात्म तथा
रामाष्टिक रचनाएँ हैं। कुछ रचनाएँ
आधा और भाव का दृष्टि से मध्य

प्रतिष्ठित जगद्वरी १६१३ की 'भरत' रचना इसमें मननित है। उम समय यह रचना 'इदु' में प्रकाशित थी। गभी दृष्टिमा में यह रचना प्रसाद व बाध्य व विवाम व धर्म्यवन व लिय धपना मह्य रचती है। इसमें बाध्य का नया शक्तता, जो प्रसाद का सपना था, मधन स्पष्ट हुआ है।

कानन कोने = प्र०, ३।

[म० पु०] (हि०) जगत् व एव कानन म या घर व एव कोने म।

काननचारी = का०, १६६।

[म० पु०] (म०) जगत् में विचरण करनेवाले जगती जगत्, प्राणी। घर में विचरण करने वाले मानव।

कानन सा = का०, २२३।

[वि०] (हि०) जगत् या वन के समान। घर के समान। वन महान।

कानों के कान गोल = का० ८०।

[मु०] (हि०) श्रवण ध्यान से सुनना।

काफूर = ३०, ७०।

[म० पु०] (प्र०) एक सुन्तित व्यक्ति का नाम।

[काफूर—कमना के साथ ही सनापतिमा द्वारा मलिन काफूर जिसका कमना नाम मानिक या और जा एक हजार पानार में सरीस गवा धति सुन्द गुनाम था—दिल्ली भेजा गया (३० अलाउद्दीन)। मानिक कमना का बाल सहचर था। सन् १२६२ में उसने अलाउद्दीन की मोहित किया। कुछ समय बाद सेना पनि बना लिया गया। उसने दक्षिण में चारंगन का विजय की और वहा जाता है कि फिर पटयन द्वारा अलाउद्दीन का सन् १३१६ में हत्या करवाई। अलाउद्दीन ने छोट लठव गुलारक में उम मरवा डाला।]

काम = का०, ६, ५२, ५३, ७१, ७४, ८८,

[म० पु०] (म०) ६०, ६३, १०८, ११०, १३६, १४७, १६२, २६०।

इच्छा, मनोरम। इन्द्रिया की धपने धपने विषय की धार प्रवृत्ति। सहवास या मधुन की इच्छा। कामदेव। महा दन। चतुर्वर्ग या चार पन्था में से एक। वह जा गया जाय। ध्यापार। बाय।

कामवासना = प्र०, ११।

[म० जी०] (म०) प्रिय महवास एक मधुन की इच्छा।

काम = का० ६०, ६६।

[वि०] (म०) कामना का पूरा करनेवाला। मनुष्य प्रदान करनेवाला।

काम कानन = का० ६०, ६६।

[म० पु०] (म०) अभिमार वन। मनुष्य प्रदायक वन।

कामना = का० ३८। का० ३८, ८७, १३१,

[म० जी०] (म०) २८०, २६३। म० १८, ३७, ३६, ६४। प्र०, ६६, २४, ८०, १८। मन की इच्छा, मनान्ध स्मृति।

कामायनी = का०, १७७।

[म० जी०] (म०) ह कामायनी। कामायनी का मन्त्र।

कामायनी = का० ११८, १२६, १३१, १८०,

[म० जी०] (म०) २१४, २३०, २६०, २६५, २६०।

मनु की पत्नी, अर्द्धा का एक नाम।

[कामायनी—पञ्च पञ्चिकाया में इस रूप में इसमें अष्ट प्रकाशित हुए—'इन्द्रजाल' माधुरी, वर्ष ७, ए० १, सं० १, सन् १८२८-२६ (अर्द्धा मग से)। 'कौन' माधुरी, वर्ष ८, ए० १, सं० १ सन् १८२६ ३०—कौन हो तुम गीतकार या मुझे धपनी धार (वासना, मग पृष्ठ ८६, ८७) मानवता का विवाम—डरा मत ओ अमृत सतान, हम, मई १८३० (अर्द्धा मग, पृष्ठ १८ स अत तक), जीवन सवात—नया, वही, नया वही में भ्रम पुत्र, प्रभा, जनवरी ३१, कोशोत्सव स्मारक सग्रह १८२८ में (चिता मग का अष्ट) मनु की चिता, हिममि

पड़ रहा था। इस स्थिति में भीष्म
जनपथान् वाणं वे रूप में उड़ता
चला जा रहा था या प्रमात् का
संदेश लेकर मृत्यु निकट आया जा
रहा था यह मनु को समझ नहीं
पड़ता था।

आशा—एनी ही स्थिति में प्रकृति का विवर्ण
मुख पुनः हमने नगा और ज्ञा जयलम्भा
भी उड़ित हुई। सृष्टि की वषा भीत
गई। शरद का विकास नए मिरस
आरम्भ हुआ। धरा में हिम का आच्छादन
हटने लगा। वनस्पतियाँ उगने लगीं।
निघुस्र पर मधुचिन्त धरावधू प्रकट
होने लगीं। ध्रुव मनु व मन का
खटका घात बना।

व माचन तग विमल क्षामन में विश्वेदेव,
सविता पूषा, द्यौ, मरुत, पवन,
वर्ग आदि धम्मन् हाकर धूमन
है। य मरु क मव और हम देव
नहीं थे, अपितु परिवर्तन के पुतले
थे। पुनः उनकी यह जिज्ञासा जगती
है कि सृष्टि का मूलमन्त्रालय यह
विश्वदेव कौन है। उनके मन में
ममता जगती है और जीवन का
लासमा पुनः उठती है। फिर न स्वयं
प्रश्न करते हैं कि क्या ध्रुव में और
जाऊ लेकिन जाकर मुझे क्या करना
पड़ेगा ?

मन में भ्रम होता है। प्रकृति का भीर्ण उन्हें
जीवन की नव प्रणया दता है और
मनु एक शृंग में रहने लगते हैं। व
सागर व तीर पर धमिहाज जान
लग और उड़ाने जीवन का तप म
नगा लिया। ध्रुव व कम की भीतन
छाया में स्वस्थ हाकर युग्म नयन स
प्रकृति का विभूति जान हाकर देखने
लग। उन्हें पाव यन आरम्भ किया।

यह मा मोचने लगे कि मभवत
मेरी ही भाति बाड और जीव भी
बचा है। इसी वचा हुआ मन
दूर रख आते थे ताकि इसमें एसा
अपरचिन मुख पा सक।

सहानुभूति का मुख्य उम असलपन में भी व
ममभन तग और एकाग्र चिन्तन करने
लग। नित्य नग प्रश्न उपस्थित होने,
जा पलपन में अघना रग बदलन।
उनका अघ प्रसृष्ट चिन्तन उत्तर
दना और व अघन जावन का अस्तित्व
बनाए रखने व नित्य ध्यम्न भी रहते ?
उनके कम गिनितर बढने ना।

उनके मन में प्रकृति का दखकर अनादि वायना
जयी और मितन की अभिगता जीवन
के अमिल सागर के उम पार हमने
लगीं। उन्हें ममवदना का चोट लगा
तथा व साचने लग कि कल्पना का
साक भी चिन्तना मधुर होता है। व
अघन स ही पूजने लगे कि अघ
और कब तक अघने रहेगा हागा ?
प्रकृति में मन की इस कामना का व
रहस्य बूझने लग तथा प्रकृति का
प्रेमिका सा अनुराग देने लग। उम
अनुराग में व चिन्तन करने लग कि मैं
कुछ भूल गया हूँ, वह प्रेम है, वेदना
है या आनि है। वह चाह ना ना
निश्चय ही उममें मन का मुख
मोता है।

भाषा मय यही समाप्त होता है तथा अघने
मग म अद्या प्रकट होती है।

अद्या—अद्या न मनु म पूछा कि मसृति सागर व तीर
पर प्रभान के अग्रदूत म तुम कौन हो ?
यह स्वर उन्हें मधुहरी के गुजार सा
मधुर लगा। मनु न अद्या का आर
दधा। अद्या का गाथार दश व नीन
रागवाले मेघा के कम से दना हुआ

प्रथमुत्ता मुँदर का मामो गीगा।
यह उ, लगा लगा मात बाग में
मार गुलाबी रंग व बिजली का पुन
गिरा है। मनु का जटता म उग
गोरा रसि है भाता भर दी। मनु
थला व प्रश का उत्तर दिया,

‘तब धीरे धरगा है मध्य म धरगाय धीरे
गिर रहा है। मरा जाया गया गा
धरगा है धीरे में धाजाना उगगा
हूमा जायायाया कर रहा है।’

धरगा उगग पुन पूछती है कि दग तारग
पतभ म वमर व दूत व ममार तथा
दग तपन म जीगत म वमर व
गहग तुम बीन है? तुम्हें दगवर
मानग व। हलचन गाति पाती है।
मनु भी धागतुव का परिषय जानने
वा कामना स धातुन हा उठन है।

धागतुन कहने लगा कि मरा धूमन का
धायग है। मैं हृन्ग की लगा वा
मु दर गय दूढ़ने चली। मर मन म
ललित बना वा गान गीतन व निते
नव उत्साह था। इधर गधर्वों के दग
चला आई। अपने पिता की प्यारी
सतान है। एक दिन अपार सिनु छु-य
हाकर पवत से टकराने लगा और
यह जीवन निरुपाय हावर अपने धूम
रहा है। मही विगी प्राणा ने दान
स्वरूप वसि वा व व रत दिया था
प्रतएन मन म ऐसा अनुमान हुआ
कि अभी इधर कोई मजीव बचा है।

अच्छा पुन मनु से पूछने लगी कि तपस्वी तुम
इतने क्लान्त क्या हो? तुम धाता
दुख व डर स भविष्य से धाजान
हाकर भिन्न रह हा। मगलमडित
कामका तिरस्कार कर तुम भूल कर रहे
हा। इससे ससार असफल बन जाता
है। जिसे तुम धमिशाप और जगत्
ज्वालाओं का मूल गमने हो, यह

मन भूल जाया कि वह ईग का
रश्मिमय वरगा है। मगरगगा ने
गुग का प्रसि हाती है विपमना की
पादा म हा मही विषय धरगा धीरे
गति है। मही तुम गुग विभाग
गय है।

मनु विचारपूर्वक वरग तप कि जीवन विपना
विपय है मर मीन दग विप है।
उगम गुने मंद नही है। विषय म
गपना व तना है। काम का परिणाम
सग विगामय है।

पुन मही धरगा ने मनु का उद्गमिध वरग
हा वगा कि जिन जीवन का मर
कर बीर जीवन है तुम दगने मभिर
धधार हा गग हो कि जीवर भी उम
जीवा व दीव व। हार रह हो। तप
नही जीवा मय है। प्रसि परिवसन
मय है धीरे निय नूनन है। यह विसृष्ट
भूगद प्रसिधमय व पूण है जिनका
उपयोग करने व सिम प्रवत तुम हा।
वर्म स भाग धीरे भाग स वर्म हूत
है। यही जट अनन सन का धान
है। जो तपस्वी धारण स हीन
होता है वह धारमविस्तार नही कर
सतता। मैं तुम्हारी सहरा बनने के
लिय तयार हूँ। मैं ससुति का पतवार
तुम्हारे हाथ गीपती हूँ और धाज हा
यह जीवन उगम करता हूँ। दया
माया मयता माधुर्म और अगाध
विश्वानुभव मरा स्वच्छ हृदय तुम्हारे
निते खुला है। उठो। तुम ससुति के
मूल रहस्य बनो और तुम्हारा सौरभ
समस्त विश्व म भर जाय।

और क्या तुमने विधाता का यह मगल वरदान
नही मुना विश्व म यह जय गान
पूज रहा है कि शक्तिशाली होकर
विजयी बनो। उठो। विधाता की
वत्पाणी सृष्टि इस भूतल पर पूण
मफल हो और तुम्हारी शेतता का

नृन् इतिहासं प्रवित मानव भावा वा
सम्य सवर त्रिय विश्व व हृन्म पटन
पर त्रिय प्रवृत्ता स भवित हा। त्रिनि
व विद्युत्ताम ज्ञा तिराज्य व्यम्न विवन्
विमर है, उनका समन्वय करा तात्रि
मानवता विजायिता हा जाय। यहीं
प्रदा मय ममात् हाता है।

काम—मनु का जीवनरजनी व पिछले पटरा म
शुरूके स मपुष्य वमत चलने लगा।
जावन का छाया म लय भस्मष्ट
व्यातिमयी त्रिपि भरवर मनु प्रपन मन
में कुछ साचने लग। फिर भा प्रगति
की प्रभिलाषा म गता। मजाव उन्नाय
नावन गता। नुम्ता व उम परद म
व साचने लग त्रि वरा वाद अय था
नी घरा है। इस रहस्य गन म उट
प्रेरणा भिता और मनु बन् नगत ह
त्रि नलना मुम्ह क्या मात्रुम बि इस
ऊपा का ताला क्या है? क्या यह
गुणमा दुर्भेद्य वनेगा और मर इद्रिय
की वनता हा मरा हार वनेगा।

पुन मनु प्रपना स्वाहृति दन है त्रि हा पीना
है, मैं पाता है यह रूप रम मय भरा
प्रवृत्ति रम। मनु सट्टा म टरान स
मनु का ध्वनि म गुजार भर गया है।
पुन उनमें वामना जगता है और उनन
भातर यह अनादि वामना खेलता है।
उस यह मवृत्ति की निमात्रा पापित कर
माधुरी छाया म आवगणादुभूत भिन्न
की चितना वरत है। शला व गल पदा
मरिताम्र की भुजवता सनाम हल
दश, अय व छाया स पूछ होत है।

मनु निज वृत्ति व त्रिय श्रृंगशाव की बात
करने लगत है। उनर भातर वामना
व वारणा प्ररणा का और भाषव
विवास हुआ। निमण्ट का यह सोला
प्रमवना की मूल शक्ति उन विवमित
हुइ। उह आत्मज्ञान सहमा मुनाइ
पदी और व भाव सात कर पूछन

मय बि विग शरा म भिन्न मंदिर
जाना होता है तथा उम व्यातिमयी
दवा सब काई नर वम पहुँच पाता
है। पर वही काई उत्तर दनवाला नही
था। यह अनर का स्वर भंग हा गया।
मनु न दगा, प्रारा म प्रमृष्टादय का
रागरम चन रहा था। काम मय का
यही ममाति हाता है।

वामना—अप न अपविषिता का गिन पय पर
मपुर जावनगन उन रहा था। बहुत
घर इन नाता अपविषिता का निधान
मन कराता चाहता था। उपर मनु
व्यान लगाकर मनन करन रह इयट
काम व मदता उनर वान भर रह थ।
पशु गति और धनभाव गृह मकारत
हा रह थ। पशुमा का मरन शाभन
मपुर मृष्य विवाग दयकर उनर हृन्म
की वन्नामया बाट टिक्काभरी चाह
सने गता। इस बाट म मनु व मन म
यह भाव गुजा त्रि विरन म जा ना
गरन, मुदर, मटान् विभूतयो ह, व
मरी ह और व सय मुम्ह मगत प्रातज्ञान
करती रह।

अम ही समय कृपाशील, उन्गर प्रोतिधि वपल
शशर वा, भूव का मनाहर भार लकर
मनु व पाव भावर वृत्त लगी भाज
क्या हुआ है? यह क्या रम है?
यह उन्हें सहवान लगा। उसकी रूप-
मुपमा देखकर मनु कुछ शात हुए।
मनु इस प्रतिधि स पूछन है, तुम कीन
हा? तुम वहाँ रह? अनात रूप स
विधर थ? तुम भर इवी भूव हृदय
की चिर छाज हा। तुमम वामना का
विरण का भोज मला है।

प्रतिधि ने वासनादूषित भाज स उत्तर दिया,
मैं, मैं हूँ और परिचय व्यथ है। उस
प्रतिधि ने प्रवृत्ति का स्वप्नशामन
कीष्टा म दिखान का बात कही। मयम
सुषा म स्नात सभी उन्मय मना रहे थे।

उग राति जागरण मे परत मे माधवी
की भारी गंध छा रही थी । मध मधु
मे धधे हा रहे थे ।

मधु मायना के हा रहे । उनकी धमनियां मे
धमना के रंग का सवार छोड़ हृदय
मे धहरा का के हा हा लया गया
रमान इना माने गया ।

धीर धार मितन का गंगा नान लया । मधु
के हृदय का धम जा लया । उनका
यक्ष निवन्त लय सगीत न गया । मधु
के मन मे मधुर उवाला धधरने लगा ।

प्रणयमधु नभ ॥ तारनार निग मझा हा
गया और ये ज मगगिता कामगता
का जिंगका नाम भद्रा था जा विश्व
रानी तथा जगत् का महान मुग्ध था
कामना का मनना मे मधु हृदय का
ममपण कर बैठ । कामनाला भद्रा
हृदय पा मुकुमारता के भार से भुव
गर्दी । हृदय का आनंद बूजने कर
राम करने लगा । भद्रा का नागिका
का नाग भुवो र्दी था पलके गिर रहा
थी । जमा कपानों पर दीह गई और
वह कदम गी पुनक कर मग्ध बैठ स
धोलने लगी—

बिनु घाती क्या ममपण आज का हृदय ।
घनगा फिर वध नारी हृदय हेतु सख ।
आह मैं दुबन कहो क्या ल मङ्गली नान ।
वह, जिम उपभोग करने में विकल हों प्रान ।”

[कामायनी पृष्ठ ६४]

मनु चतना का ममपण नान देते हैं और भद्रा
प्रतिदान मे आ ममपण ही कर
दता है ।

यही काम सग समाप्त होता है ।

लज्जा—नारी के आत्मममपण यन की पूछाहति
उस ममय हाता है जब वह अपना
सवस्व—तन और मन भी—विकारहीन
होकर समर्पित कर देती है । भद्रा भा
उसा स्थिति मे था । प्रणयममपण

उस कपाना पर जमा की नारी
बाबर जोह मगा । पन्ना बाज जीवन
मे उम जमा का गाउरवार हवा । म
उमक निय गरा ये गर् । दग
स्थिति मे उमक ह य का मर मन्ना
छाती थी । य की जिंगा मन के संगत
मे योहक जगो मर धार मृति का
धनुभज करने लगा था दूसरी धार
मन का मराया मानावाना जमा
का दगहर लभगत भा न उठा और
पूछ बरा

कामन विमलप के धवन मे
नान निवन्ता यो छिपी भा
गाधुनि के भूमित पट म
नीव के मर मे स्थिता गा ।

० ० ०

बिन दृग्जात र कूना स
यार गुप्ताय कण राग भर
विर नाग कर हा मूष रहा
घाता जिंग मधुधार डर ।

[कामायनी पृष्ठ ६७]

० ० ०

पुननिन वम्ब की माना सी
पहना देती हा अतर मे,
भुव जाती है मन का झाला
अपनी पतभरता के डर में ।

[कामायनी पृष्ठ ६८]

० ० ०

बिरना का र कु ममेठ लिया
जिमका भवलम्बन ले चढ़ता,
रस के निभर मे धम कर मैं
आनंद शिखर के प्रति बड़ता ।

० ० ०

तुम बीन हृदय का परवशा
सारी स्वतन्त्रता छान रहा,

स्वच्छन्द मुमुन जा निर रह

आवन बन म हा बान रहा ।

[कामायनी, पृष्ठ ६६]

नारा जीवन में हृदय का यह बंधन एक बार मरने काग साता है । मरार में जो बंधा दूगरा द्वारा पड़ा जाता है, उम यही का मना न जाता है और जिसमें ध्वनि स्वयं चप जाता है व मनुष्य का हृदयविनाश होता है । कभी कभी अपने द्वारा मह्य संयाकरण किया हुआ बंधा भा परकाना का भुलना बन जाता है पर उमरा सात्मायना उम बंधन व भरार म मनमाह्व ममान का भाति पुनरुप नयमय हमा करता है । धनएउ मगा बयन जब पीछा का विधान करता है तब एक प्रकार का ममतामरा भुक्त ग्राहक का उम्य मन मे हाता है । व ममस्त सात्माय बंधन जीवन के भुंगार के विभिन्न उपादान होते हैं ।

भारतीय जीवनसाधना में नारी जिग बंधन म अपने का बोध लेता है उमके पाछ निरतर ममपणमया उन्मर्ग भागता का सात्माय साधार हाता है । जिनका प्रमापार मनुष्यमम नहीं हाता उनका मूल भा जन्म ही नष्ट होनेवाला हाता है । मुमनों का नदी उमर मूल का नीचा जाता है । बिश मे जही का प्रयेक मानव कायम्यापार अपने भातर स्वार्थ की प्रतिच्छाया ममाहित किण है वही भारताय नारा का त्रिकारहीन हा पुण्य की मवस्त ममपण करना पडता है, स्व धीर स्वार्थ व म्यामोन् का भा ।

उम ममय उमका इम साधना का धर्मपरीक्षा होती है जब उमय जीवन का सारा मासन सीदर्य एव गाथ हा योवन व द्वारा पर बसत का भाति खिल उठता है । सीदय का यह भावपण दशक

धीर पात्र नाता का म का मदिरा म स्वर व ज्ञान म रिगत वर नाता है । धीरर मद का यह धारा दूना प्रमय हाता है रि वृ ज्ञान का बून हा दुया ना ताता है । मगा परिमिति म जावन का धम, भाव का व धारणकर नारा व मनुष्य साता है जिगरा व । मान मद का धारा का उध का स्वरवरी म बोध हाता है । इम बंधन म मद का बाध पूरा वर उठता है और नारी हृदय का कुम्भन गता है । धारा जउ मनुष्यभा म गराता है तब एक प्रकार का ममय मगाय मुन पडता है । इम दृडा मव स्वि त म थडा था । धर धार म ना जवार दूगरी धार यह बंधन । नारा का गत का स्वर धीर नारा का सनय वहा निम्निति मय भुंगार भावना मूल लजा चमरतुन थडा का प्रपना परिषय स्वय दनी है —

इम मपण म कुछ धीर नही
रिय उमग छवता है,
मे द दू धीर न फिर कुछ हूँ
हाना हा मरन भनवता है ।

[कामायनी, पृष्ठ १०५]

थडा का जब नारा जावन का आममय दीप्त पडता है, उमग का प्रनत मभिनापा जब धर्म व रूप म उमय मानव का आभादात परती है ता उमो ममय प्रमादजी अपने नारा मवःप चित्र थडा का हृदयास्था निम्न निखित शब्दा म करत है—

नारा । तुम बबल थडा हा
विश्वाम रजत नग पद तल म,
पीछूष खान सा बहा करा
जीवन के मुदर समतल म ।
मायू ॥ भीम धचन पर
मन का सब कुछ रस्ता हागा,

गुप्त का अपनी स्मिति देना मे
यह गंधित नित्यना हागा।”
[कामायनी, पृष्ठ १०६]

यनी लज्जा मग ममात् हा जाता है। गुप्त
घोर प्रती का गंधि मे श्रुति का
निर्मल हृत्ता। पर घोर नारी ना
विजयवाता की कटाती मे विराट
सृष्टि मे मोक्ष का प्रतिष्ठापामय
प्रेरणा मे युग मतिमान वरणा है।
दाना मे योग मे मायवा न विजय
मन्त्र का बहाना प्रमाणा न कामा
या मे कटा है। प्रती प्रुता गुप्त
का प्रेरणा रहा है घोर नारा भारताय
परपरा मे गुप्त का गति मानी जाना
रही है। जीवन का गंधित नित्य
मम नारा अपनी गवस्थ मगति
करता है। यह मनन मोक्ष गरिया
मन्त्र त्राम नारी का गति है जा
गुप्त का अनन्यप्राप्ति करती रहता
है घोर इन सग मे बाध्यामय हग स
प्रसादजी न उगका बाध्यामय रिया है।
अन्ता का सफनता इही गुणा मे
भावार पर कामायनी मे व्यक्त की
गई है। मानवता और अष्टि दोना
को प्रानाव स जगमग कर दावाला
प्रेरणासक्ति अन्ता का साक्षात्कार
इसी मग मे हाता है।

कर्म—काम का कथन मनु मे जान मे भर गया।
उनके मन मे नव अभिलाषा जागृत
लगा तथा प्राणा उमठ पड़ी। उनका
जीवन का भाविराम साधना उल्लाह
भरकर खड़ी था। अन्ता मे उत्साह
वचन और काम का प्रेरणा भित्तर
भाग भाए। अगुर पुराहित किलात
और दाकुलि भा जलप्लावन न बच
कर भटक रहे थे। तृण खात खात
उनका जा अब ऊब चुका था। वे लहू
वे प्याम हो रहे थे। मनु का पशुधन
दखकर उनका रसना भामिपलापुव

हा चुका थी। गंधित मे ममात् घोर
मुन्ता का सावा अन्ता का मनु क माय
धमकार मे प्रानाव मा गेगहट्ट हिवरा
मे मे भी मनु मे मुन्ता पर धाण।
उपर मनु प्रानावर्षाव गाव रर मे
'जावन मे स्व ता का मग कर्म यम
मे मितगा घोर इन जगत मे मानन
का प्राणा का मुन्ता मितगा। मतिन
इन मग मे मुन्ता कीन बनेगा ?
मग अन्ता है कटा ता मरा गुग प्राय
है। अब पौराणिक मे नित्य इन जितन
मे मे विनवा जानू।’

हा अगुरा ने अन्ता गंधित मुगमुग मे कटा
निवा नित्य मुग मग करने जा रहे
मे उनका द्वारा हम भत्र गए हैं।
वरणा हमार पचप्रता है। कता
उता मनु प्राव मे विर ज्ञाना का
का पर यम भारभ ना।”

नूनना का तभी मनु का मन नाव उठा।
उन्ता सावा हगल अन्ता का भा
ए विर मुन्ता होगा। यम भारभ
हृत्ता। समात् भी हृत्ता। यहा पर अब
अम्बि मगिर मे छेदि और धवता
हुद ज्वाला थी। पशु का कातर पाणा
पर निमित्त बदी की निमम प्रसन्नता,
बातावरण की कुत्सित बना रहा थी।
अब वहा पर अन्ता न था। मनु क
धाय साम का भरा हृत्ता पान था
तथा पुराडाव था। मनु मे मुग भाव
जग। मनु मे मन का दात वासना
ठेठकर गरजने लगी और वह कहने
लगा, अन्ते ही अन्ता प्राज हठ गई ही,
उम मनाना मे होगा, वह स्वय मान
जाएगी और यम स प्रसन्न होगा।
इतने मे पुराडाव मे साथ मनु साम
का पान बरन लग। उनके मन का
खासी वाता मादरता स भरने लगा।

अधर हु सो अन्ता लोटकर विरक्ति का बाध
लिए अयन गुहा मे कामल चम बिछा

कर पड़ रही। यद्यपि मधुर बिरक्ति-
भरी श्रानुवृत्ता उसके हृदय में समा गई
थी तो भी उसके मन में स्नेह का
प्रतीक था। उसके स्नेह का पात्र मनु
साज कुटिल कटुता में फसा था।

वह साक्षता यह मानवता कभी, जिसमें प्राणी
के प्रति प्राणी की निमग्नता बसती है।
एक का दुःखव्यहार दूसरा प्राणी कसे
भूत पाएगा।” वह यह सब सोच रहा
रही थी कि मादकना स जगो मनु की
तरल शायना मनु का श्रद्धा तब खोव
लाई। मनु ने श्रद्धा का स्पर्श किया,
पर वह सकुचिन होकर भा गई। उसे
मनु के नए व्यवहार से दुःख था।

उपासक के स्वर में मनु उससे कहने लग,
“मरी श्रद्धा, जिस स्वर्ग का मैं
निर्माण किया है, उसे विफल मत
बना। यहा हमारे तुम्हारे प्रतिरिक्त
मुख भोग के लिए और कौन है?”
इस कथन के साथ ही मनु ने प्रसाद के
रूप में मोमपान का प्रस्ताव मनु ने
श्रद्धा से किया।

श्रद्धा जाग रही थी। मधुर सत्त्व भाव से वह
बोली कि यह कितना बड़ा धोखा है
कि किमी की बलि से हम अपना सुख
रचते हैं। क्या इस श्रद्धा जगती के
जा प्राणी घबे हुए है, उनके कुछ श्रद्धा
कार नहीं हैं? कल यदि फिर परिवर्तन
हो तो प्रलय के बाद कौन बचेगा?
मनु क्या यहा तुम्हारी वह नवमानवता
है जिसमें देवन अपने स्वायं के लिये
मदका सब कुछ ले लिया जायगा?

मनु उत्तर दंत है, इस दो दिन के जावन का
चरम अपना सुख ही है। अपना
अस्तित्व मुख के लिये है। इस हिम
गिरि के अवन म जिम में खोजता फिर
रहा है उस अभाव का पूति ही इस
बचल जावन का स्वर्ग है। हमारी
कामना पूरी हो। इस पर श्रद्धा बोली—

“अपने मे सब कुछ भर कसे
व्यक्ति विराम करेगा ?
यह एकांत स्वाय भाषण है
अपना नाश करेगा।
श्रीरा को हसन दया मनु
हंगा और सुग पाया,
अपने मुख को विस्तृत कर तो
मदका मुखा बनारो।

[कामायनी पृष्ठ १३२]

श्रद्धा अपनी शायें कहते कहते उत्तेजित हो गई।
यह देखकर मनु बोले, ‘श्रद्धे। मोम का
पान कर ना। इसमें बुद्धि का बचन
सुनेगा। और जो तुम कहती हो वही
करेगा।” मनु रक कर कहते हैं “तुम
श्रद्धे। मेरे इस जीवन की सीमा बन
जाओ। लज्जा के आवरण का दूर
हटाओ। वह परदा हमसे तुमको विलग
कर देता है।

उम निभृत गुफा में दा काठा की मधि बीच
अनिशित्या बुझ गई। यही कम सग
समाप्त होता है।

ईर्ष्या—मनु का अब कोई काम नहीं रह गया था।
वे केवल मृगया करते थे। उनके मुख
में हिमा का रक्त लग गया था। उ ह
अन श्रद्धा का सरल विनोद भी नहीं
रखना था। मनु श्रद्धा का शालिया
वीनत हुए, अन एका करत हुए और
तकनी चलात हुए देखकर साबन थे,
मेरा नारा अस्तित्व लेकर वह बठ
गइ। अब मनु की इच्छा मृगया से
लौटने के बाद गुफा में जाने की न
होती थी। इधर श्रद्धा माचता, अभी
तक वे नहीं आए क्या बात है? वह
मातृत्व के बोझ से भुज गई थी।
उसकी श्रीरा में अब आलस्य भर
सनेह था तथा उसका शरीर पाला पड़
गया था।

निज किरणें, इस आशा में मैं यहाँ पड़ी रही। मनु इटा में भव के भविष्य का द्वार खाने की जीवन का महज मान बताने का वाचना करन है। इडा और मनु का वहा सवाद होता है और बुद्धि की बात मानकर अस्तिन 'नान भयश' प्राप्ति के लिए जन्ता का बत य कर विनाम द्वारा महज मिद्धि का उपनधि का निषय मनु द्वारा होता है।

जीवन में कम का पुकार उठती है। उमक द्वारा मुखसाधन के द्वार खालकर नय सिर में नजरचना आरभ होती है।

यही यह सग समाप्त होता है।

स्वप्न—कामायनी धरती पर रेखा का भाति पड़ी है। उममें वह रग नहीं। वह धब गई थी, पर विरहिणी को नींद क्यों ? बिजली भी स्मृति चमक उठी। वह अतीत की स्मृतियाँ में उमभ गयीं तथा जीवन का पूव स्मृतियाँ के आधार पर विरह और ररणाभय जावन का चितन करने लगी। इनके हा में उमकी कृतियाँ भी 'गद में गूज उठा। वह पुत्र में मन बहाना नहीं। अडा अपने भविष्य और वतमान के मुख स्वप्न दखन लगा। विपन नगा में अग्निज्वाला ना मनु का पय अब दगा' आनोकिन करने लगी। वह मनु का कामनाया की बिजयिनी तारा था। मनु का नगर बस गया है। वेना आरभ हा गई है। अम ना वय क अनुमार वर्गीकरण हा गया है। उनके समितित प्रयन स सारस्वत प्रदश का आ निखरती दीरखती है।" अडा मपन में अपने प्रियतम का नगरी में पहुँचता है तथा वहा का नभव दख कर य' साचती है मैं कहा भा गई ? अडा स्वप्न में यह भी देखती है—इडा चयक में आसव भर मनु को पिता रही है। मनु ने इडा से पूछा—'क्या अमा यहाँ दुख करने का शप है ?'

इडा का उत्तर था 'अभी कहा सब माधन स्ववश दुः ? इतने में ही उस ?'

मनु ने पुन निवेदन किया मैंने देश ता वसाया पर मेरा मानम प्रदश सुना हो रह गया।'

इडा पूछती है 'प्रजा तुष्टारी है। तुम प्रजा पनि हो। मैं मयके भल की साचनी हूँ। फिर ऐसा म'हभरा प्रश्न आपने क्या किया ?'

मनु कहन हैं 'प्रजा नहीं। तुम मेरी रानी हा। मुझे और अधिक अम में न डालो। अब स्वीकृति दो। मैं प्रणय के माती चुगती हूँ।' नर की पशुता हुकार कर उठी और इडा का मनु ने आसिगन किया।

अब तक अविरह प्रजा इस दुष्कांड से इडा की पुकार पर मनु के विरह हा गई। अब स मनु छिपकर बठ गए। उनकी समझ में कुछ न आया और व शयनगृह में चले गए।

यह मय स्वप्न में दखकर अडा बाप उठी। वह सोचन लगी अब क्या होगा ?

यहा स्वप्न' मय समाप्त होता है। आगे 'मचप' आरभ होता है।

मचप—अडा का यह 'स्वप्न' वास्तव में मय था। प्रजा में बिद्रोह यात हा गया। मनु शयनगृह में प्रजा को वृत्तन्ता पर मोष रह थे। मैंने नियम बनाकर प्रजा को एक सूत्र में बाधा। फिर भी क्या मुझे स्वच्छ' रहने का जरा भी अधिकार नहीं ? अडा ने समपण का मैं प्रनिदान न द सका और इधर इडा मुझे भी नियम में जकटना चाहती है। वह मेरा एक भी अधिकार निर्वाधित नहीं मानना चाहता।' अत में व अपने हठ की बात मन में बाधत है कि मैं चिर बधनहान रहूँगा और मृयु की

उठती थी कि श्रद्धा को अपनी कल्पित
काया फसे दिखाऊँ ।

प्रभात में जब सब जागे, तब बड़ा मनु म
ये । अशांत होकर कुमार पिता को
खोजने लगा । इटा अपने को
अपराधिना समझन लगा । कामायना
अपने में सिमट कर मौन बठी रही ।

यही पर 'निर्वेद' सग का समाप्ति होता है ।

दृशन—मनु को अपने बीच न पाकर सब उड़
झुन नितल पड़न है ।

कुमार अपनी माँ श्रद्धा से पूछता है कि 'इस
निजत में तू क्यों जला आई ? अब
घर बला, इतना उदास क्या हो ?
श्रद्धा उत्तर देती है श्रुति का यह
निर्णय श्रुति मधुर है, मेरे नियम सुन्दर
शांत नींद है ।'

फिर श्रद्धा पीछे मुड़कर देखती है । इटा उस
दिखाई पड़ता है । श्रद्धा उससे पूछता
है कि 'तुम्हें मैं क्या द सकती हूँ ?'

इटा रहती है मरा माहम अब हट गया
है । मधुबल अब नई आहुति चाहती
है । मुझे ज्ञान करा ।

श्रद्धा कहता है तू बसल मर बड़ी रहो,
हृदय तो तुझे मिला नही । तूने मुझ
हुन रूप धूपछाई था मरल मधुबल
राह छोड़ दा । तूने समार में वग का
सजन किया ।'

इटा बाला, 'ब्रह्मा नही, अपितु और कुछ
भी मुझे चाहिए ताकि मरा यह प्रल
मुला हो सक ।

श्रद्धा कुमार का, इटा के हाथ सापता है ।
यदा पुत्र का सम्भोग है । पुत्र
। आशावाद मागता है कि 'तुम्हारा
मधुर वचन मेरे विश्वास का सुन बन
जाय । इटा और कुमार पूरन को और
को जोड़ पड़ ।

श्रद्धा मनु को हूँती भागे बड़ा । उनमें चलन ।
चलन सरस्वता पर उसीस ला, दशन

म देता, बिम्बी को दा आखें चमक
रही हैं । मनु न श्रद्धा व इन मानुष्य
का दर्शन उसका विभूति को विश्व-
मित्र के रूप में अपनाया । फिर
कामायना की प्रणसा मनु करत है ।
श्रद्धा उनमें बहती है, विपमता का
विष मुक्ति की समता तथा समय में
नष्ट हो जायगा । पदराने की आवश्यक-
कता नहीं ।' पुन मनु ने नटन का
नीला का चितन किया और श्रद्धा में
बहने लगा—'अपने सबल से नटन के
चरणों तक मुझे ले चल ताकि मेरे सारे
पाप जलकर पावन गङ्गा मिलल बन
जाय । ममरम अलङ्कार आनन्द का
आलाकानुभव सदा सदा व लिय
कर सऊँ ।'

यही 'दशन सग का समाप्ति होती है ।

रहस्य—हिम प्रदश में मनु और श्रद्धा बलत जाते
ह । प्रदान का नलगा समूत सदर्थ
उड़ दिवाइ पड़ता है । यवन मनु
का रावना चाहता है । पर उह श्रद्धा
बला लिय बला जा रहा है । श्रद्धा
मनु का दर्शन, शान और वन क
लारो का दशन कराता है । इच्छा
स जीवन का लालसा तो सबम दशन
कराता है जो ल द स्वयं और रूप रन
मय का पुतालय का नतन मान है ।
इच्छा हो पापपुण्य का द्वार लालसा
है तथा जावनयसत का भा ।

कम नियति को प्रेरणा से संचालित है, जो
विश्रासलान है । सभा कम के पाठ
दीवाने हैं ।

जान के क्षेत्र में बुद्धि और उपर मगजल में
अमता और भटरता है तथा टुल
मुख से उदात्तता का वान कराता
है । इच्छा, जान और लालसा का
मिलन लालसा की पूर्णा में पावन
होती है और श्रद्धा इन ताना बिडना
का मिलाकर मनु का ममरम भाव-

भूमि पर स्थापित करती है।

यही यज्ञ मय ममास होता है।

आनन्द—कामायनी का अन्तिम मय ध्यान है।

यात्रियों का एक लाल पहाड़ा रामन सन्या
वा तलहटी में बसा जा रहा था।
झटल धम का प्रतिनिधि कृष्ण माय
म था। इसा भी उमर में थी। यम
उमर दल का पथप्रदर्शक था। उमर
नामों का बनाव था कि हम जगती का
पाथल माथना प्रस्थ म चल रहे हैं
जहाँ अग्नि आनन आन लपोवन है।
मनुपुत्र द्वारा विस्तारपूर्वक तपायन
की रात उना का नामना पर इसा
बताना है।

जगता की ज्वाला में अग्नि व्याकुल हो एर
ग्नि विश्वपथिक रही आया। उसका
अद्वितीय भी नाम था जिनका बरणा
का सबसे जगमगल का मय म आया
हो गया। यही व नीला बछर मस्त
का मया करत ह और सचो मानसिक
मुल शांति दन है।

पुन इसा स कहा जाता है कि हम कृष्ण
पर क्या नहीं बठ जाती, क्या अपने
परो का धका रहा हो ?

उत्तर मिलता है यह कृष्ण धम का प्रति
निधि है। हम लोग रिक्त जीवनधट
को अमर स भरन जा रहे हैं और
इस धर्म के प्रतिनिधि को सगा मया
के लिये मुख देकर निर्भय और चिर
मुक्त करन जा रहे हैं।

मामने विराट धवल पवत दिखाई पडा।
तलहटी का स्वयं प्रवृत्ति-मुकुर के समान
यात्रियों को लगा। चलत चलते रात्रि
हो गई।

मनु ध्यानमग्न बहा मानसतट पर बडे थे
और अन्ध अज्ञति में मुग्न भरे वही
खडा थी। सबने उह पहचान लिया
और सब उनका समुख प्रणत हुए।
इसा का मस्तक अन्ध के चरणों पर

था। मनु ध्यान हो गाय म ध्यान
मग्न थे।

इसा बोला 'मैं मनु न था मया मुता
रहा था। धर ल म कुटुम जनार म
यही पाथप्रदर्शक न कि आण है।'

मनु पांडा मुक्कुराण और बजाग का भार
इसारा करत ल बाल दया। यही
बाई भी बराया मनी है। हम मत्र ल
दूगर व भवमय है। उना अपने मुल
मुल म पुनर्जन मारावर मून विधन
को गनत मय जिव और चिर मुक्त
बताना। मान का मय ममरसना
का हल म मय पर मारा ममार एक
परिवार बन जाता है।

मय ध्यानमग्न का रग धनक उठा।

प्रवृत्ति में मनु लाग का अन्ध सुष्टि का मरमता
का मय करन ह, जहाँ अमर आनद
था। प्रवृत्ति पुण का समिन उहान
आन का मूल म दिखाया तथा मार
ममार का आनमय समझने का
चनना उमय जगाई। मय का जड
चनन सब ममरम दाखन मय। चलन
का विलास मयको चारो तरफ दाख
पडने लगा। मय बहा अमर आनद
छा गया।

यही कामायनी का अन्तिम मय ममास
होता है।

कामायनी-कथा का आधार

कामायनी आधुनिक हिंदी साहित्य में अपना
मौलिक महत्व रखता है। उसकी कथा
और उसका कथ्य दोनों ही महत्वपूर्ण
हैं। प्रवादों का भारतीय सभ्यता
तथा इतिहासपुराण और वेद स प्रम
मय सभात है। कामायनी की कथा
में तो वह और भी प्रकीर्ण है। मूर्ति
हृषीकेश है। वस्वत मनु का ऐतिहासिक
पुरष मानने का उनका स्वयं आग्रह
है क्योंकि आर्यों का अनुश्रुति में मनु का
कथा इदवा स मानी गई है। तब

सम्राट्मिणी बुद्धि द्वारा प्रमादजी ने इसकी कथा रचा है और कथा को रूपकत्व से भा मंडित किया है। कामायनी का कथा का आधार वम प्रकार केवल बंद पुराण और इतिहासाश्रित ही नहीं है उसमें मामाजिक ज्ञान विज्ञान के विकास व इतिहास का भा योग है।

ऐतिहासिक तथा पौराणिक—कामायनी का कथा मनु के ज वन पर आधारित है। प्रमादजा ने उह वतमान मानवीय मरुति एव मभ्यता क आतिप्रतिष्ठापक व रूप म उपस्थित किया है। जनप्लावन की घटना स दवसृष्ट त्रिष्ट १११ है और उसमें अवगण मनु व द्वारा नवीन मानव मरुत्त का प्रतिष्ठा हाता है। मनु इस मरुत्त के आदिप्रवक्ता तथा प्रातिष्ठापक है।

जलप्लावन—अनक सम्म दश म इस घटना की कथा प्रचलित है। मानव इतिहास पुराण एव मायाया में उपनय मामयी के अन्त्ययन ममावनामा मनन एव चित्तन द्वारा प्रमादजा इस निष्पत्त पर पहुच है कि मनु आधुनिक मानवीय मभ्यता के आदिपुरुष है। जलप्लावन का घटना, इस मायता क मूलाधार व रूप में है।

जलप्रलय का वरान विश्व के अनेक प्राचीन दशों म मिलता है। ग्रीस में ड्यूकेनियन, अस्थिया में हामिसद, बाइबिल में नहु, बबालोन में जिमुब्राम और गिलाभिज में उपनपीक्षम आदि की जलप्लावन की कथाए प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार इस महत्वपूर्ण प्रभावशाली घटना का कथा का विस्तार और प्रसार चान स यूरोप तक स्वतः मिद्धा जाता है।

भारतीय साहित्य म शतपथ ब्राह्मण, पुराणा, महाभारत आदि म जलप्लावन का वखन मिलता है। प्रायः सबत्र वतमान

मन्तर के अतगत इस कथा का वगुन है। भारत म जलप्लावन का इस घटना व आधार पर मन्मावतार का भा बना है।

जनप्लावन की घटना अपने दश में अपना अप्रतिम महत्व रखता है। दशमे नाना उपनिषदा, ब्राह्मणा पुराणा आदि में मनु का स्थिति का उत्खन मिलता है ता भी प्रमादजी ने ववस्वन मनु का इतिहासिक पुरुष मानता है अधिक ममीवीन ममाका है। इन विविध दशा म बिस्तर हुए तथा अपने दश में विविध ग्रथा म बिस्तर हुए जलप्लावन की कथा म इस तथ्य का स्पष्टता चलता है कि जलप्लावन समार म हुआ था। शतपथ ब्राह्मण व आठवें अध्याय म इस घटना का वगुन है। इबालय यह निविवाद रूप म करा जा सकता है कि इस मन्तर व आदिप्रवक्ता मनु मान जा सकता है। यदि कालक्रम व विचार स भी देखा जाय ता यह घटना क्रमवद व वान का ठरती है वयोव ऋग्वेद म इसकी चचा नही है। अवय वद म इसका आभास मात्र है। शतपथ ब्राह्मण म इसका उत्तल मात्र है। यह घटना कहा घटत हुई इस मबध में प्रमादजा न अपनी याव्या दा है। उनकी दृष्टि म यह घटना वही घटित हुई जहा पहल सब नाग रहत थे। द्र और वरणा के मधप क कारण उस भारतभूम के निवासा वो टोलिया म बट गए। अमुरा की टालिया पाश्चिम का भार इस दश की छाडकर बढते गयो और यह कथा उ ही क द्वारा उस भार मचन फली। इस व्याप्ति का कारण भी मनोवैज्ञानिक है। इतना बडा प्रक्षय निश्चय ही लागे के लिय मुनने मुनने का मसाला लवी अवधि के लिये उपस्थित करता है। क्याकि इससे सबका जीवन प्रभावित हुआ।

इस मंत्रय म प्रमाज्जा ने धामुग म निम्नलिखित तथ्य लिखा है—

जलप्लावन भारताय इतिहास म एन एमी हा प्राचान घटना है जिसने मनु का दशो म विनक्ष्ण मानना की एक भिन्न मसूत प्रतिष्ठित करने का अवसर दिया। यह इतिहास हा है। दशमग व उच्छस्वन स्वभाव निबाध धान्य तुष्टि म अतिम अत्याय लगा और मानवाय भाव अर्थात् थड़ा और मनन का सम वष हाकर प्राग्गा का एक नग युग का सूचना दा। इस मन्तर व प्रवक्त मनु हुए। मनु भारताय इतिहास व प्राप्पुष्प है। राम दृग्ग और बुद्ध हरी व वषज ह।

मनु—मनु व मंत्रय म बन्धि माहिम म अनक वाने स्थान स्थान पर भगनी है किन्तु उनका कोई बारबाण्डि क्रम नहीं। जलप्लावन का वगन शतपथ व आठों अध्याय म प्रारभ होता है जिसमे जल प्लावन स मुक्त मनु व उत्तरगिरि क हिमवान प्रदश मे पहुचन का प्रसंग है। वहा आध व जल का अवतरण होने पर मनु जिम स्थान पर उतरे उस मनारवसपण कहते हैं। जलप्रलय व स्थान क सबध मे भी प्रसाधना न १६ अक्षरवर १६२८ म प्रकाशित डा० ई० टिकर क लक्ष के आधार अपनी बात सिद्ध की है और वह यह—उनका (टिकर) विचार है कि वालू मे दवे हुए प्राचान नगरा क चिह्न इस बात का प्रमाणित करत हैं कि हिमालय और उसर प्रात म जलप्रलय और धाय का हाना निश्चित सा है। कुत्तू का घाटा म गलाना म मनु का मादर है। सम्व है मनारवसपण यहाँ इसा व सपास रदा हागा।

शतपथ ब्राह्मण म इस प्रलय का चर्चा है और उसम मनु व वचन कायात भा है। अब मत्स्य व पौराणिक मा ब्राह्मण

स्व का धनग कर लिया जाय और बौद्धिक तब म दया जाय तो मनु एम एतिहासिक गुण व स्व म अवतरित हो हैं जा प्रत्य व पुन और प्रत्य व पश्चात् स्थित रहते हैं। प्रत्य व पूव व दश स्व म तथा मनुय व नेता स्व म विराजा हैं, और प्रत्य व पश्चात् जलप्लावन म वच हुए आनि माव व स्व म अर्थात् मानव का आनि मध्या और मसूति व आनि मध्यावक के स्व म।

१ मनु पुत्रपुत्रा का भोत थ। २ मनु प्रजा व पितृभूत ३। ३ मनु का गमन माग का उपाय बहुत पहल बताया गया था। ४ मनु गुर थ। ५ मनु दाययु महात् बदनीय महपि थ। ६ मनु साम व पान करतवाल थ। ७ मावाणि मनु नगी व समान दाना थ। ८ मनु मनुप्या व नेता थ।

इस आधार पर यदि मनु व गुणधम का विश्लेषण किया जाय तो उनके चरित्र निमाण म ऋषि व शक्ति मनुषा व सत्त्व का उपयोग 'प्रमाद' न कामा यना म लक्ष है यह मानने म अपात्त न हागा। इतना एतिहासिक आधार मनु की मानवाय ससृति का आदि प्रतष्ठपक के रूप म काय का नायक बनाने के लिय पयात है।

श्रीमद्भागवत म मनु सबधा क्या का और ध्यान दिया जाय तो निम्नलिखित तथ्य मनु के सबध म हमारे समान आते हैं—

१ दय सृष्टि व सत्यव्रत वतमान मन्तर म ववम्वन मनु हुए। २ जलप्लावन मे नोका द्वारा उनका रक्षा हुई। ३ मनु आददेव थे अर्थात् थड़ा व पात। ४ सत्यव्रत जानवना स समुत्त हाकर इस वल्प क प्रवक्त ववस्वत मनु हुए। ५ मनु जलप्लावन व पश्चात् इस मन्तर क आदि मानव है।

और मनु के चरित्र का निर्माण इन तत्वों पर आधारित है।

श्रद्धा—मनु आदिदेव थे और बराबर आदिदेव के रूप से उनका स्मरण शतपथ और ब्राह्मण में पुराणों में भी किया गया है। शतपथ ब्राह्मण में 'श्रद्धादेवा व मनु' के रूप में मिलते हैं। श्री यदुभागवत में निम्नलिखित तथ्य श्रद्धा के संबंध में मिलते हैं।

परम मनस्वा राजा आदिदेव ने अपना पत्नी के गर्भ से दस पुत्र उत्पन्न किए।

यज्ञ के प्रारम्भ में वेचन दूध पीकर रहनेवाली विलेपणा से श्रद्धा श्रीयदुभागवत में नवम स्कंध में बताया गई है। मायण में श्रद्धा का 'कामगोत्रजा श्रद्धाया मयिका' घोषित किया है। ऋग्वेद में श्रद्धा का ऋषिप्रमाणित होता है। इन आधारों पर श्रद्धा और मनु के संयोग से वर्तमान मानवता की सृष्टि का प्रारम्भ मानना भी ऐतिहासिक हो कहा जा सकता है। श्रद्धा ने चरित्र में जिन तत्वों का संनिवेश किया गया है, वह भा महत्वपूर्ण तथा ऐतिहासिक हैं। श्रद्धा के संबंध में ऋग्वेद के १५१वें सूक्त में जो तत्व दिए गए हैं उनके आधार पर श्रद्धा का कामायनी का सत्ता दी जा सकती है। वह मानव बदनामा है। श्रद्धा का शरण मन के संकटों को सत्पथ पर ले जाती है। श्रद्धा जीवन के हर क्षण को लिये बदनीय है।

इस सूक्त में कामगोत्रजा उल्लिखित होने के कारण श्रद्धा को कामायनी सत्ता से संबंधित किया जा सकता है।

इडा—श्रद्धा के अतिरिक्त कामायनी में महत्वपूर्ण पात्र इडा के संबंध में ऋग्वेद में निम्न लिखित बातें दी हुई हैं। यदि उन तथ्यों का संकलन किया जाय तो ऋग्वेदिक इडा का महत्ता के संबंध में निम्नलिखित तथ्य सामने आते हैं।

इडा मनु की धर्मोपदेशिका थी। इडा मरस्वती और भारती के समान देवी है। इडा का प्रतिष्ठा भी भारती और मरस्वती व समान ही है। इडा सोमयज्ञ में भी स्मरण की जाती थी। मनु व यज्ञ में इडा ने हवि का भेदन किया था। इन तथ्यों के आधार पर इडा का रूप ऋग्वेद में उसके गुणधर्म तक ही सीमित रह गया है। मनु में देव प्रवृत्ति के जागरण की बात प्रमादजी ने की है और ऋग्वेद से यह सिद्ध है कि मनु प्रमुख देव व। इडा की उत्पत्ति के संबंध में शतपथ ब्राह्मण व आधार पर निम्नलिखित तथ्य प्रमादजी की ह्रीं शब्दों में देखे जा सकते हैं—'इडा व' संबंध में शतपथ में कहा गया है कि उसकी उत्पत्ति तथा पुष्टि पाक यज्ञ से हुई और उस पूर्ण पोषिता का देखकर मनु ने पूछा कि 'तुम कौन हो?' इडा ने कहा 'तुम्हारा दुहिता हूँ।' मनु ने पूछा कि 'मरी दुहिता कस?' उसने कहा 'तुम्हारा बेटा, या इ यदि के हवियों में ही मेरा पोषण हुआ है।' 'ता ह मनुस्वाच—का धर्म' इति। तब दुहिता' इति। क्या भगवति ? मम दुहिता' इति। (शतपथ ६.२०.३ आ०।)

प्रमादजी ने कामायनी का भूमिका में लिखा है—'इ कामायनी की क्या श्रृंखला मिलाने व लिये छोड़ी बहुत कल्पना को लन का भी अधिकार मैं यही छोड़ सका हूँ।' इस दृष्टि से यदि देखा जाय तो इडा से मनु के संबंध स्थापन में उतारने कल्पना के अधिकार का अच्छा उपयोग किया है। इडा की उत्पत्ति के संबंध में पौराणिक कथाओं में यह तथ्य मिलता है कि मनु और श्रद्धा के तप के परिणामस्वरूप इडा का उत्पत्ति हुई। मनु पुत्र चाहत था श्रद्धा पुत्री। हाता के

परिगमन मे गुना उरग्न हुई। पर मनु ने तप त वाग्ग यह वर्ष मे छद्म माग भा घोर छद्म माग नर व रूप मे रहती था। इडा का शान्ति सुध मे दृढ़। इन सबध मे आमद्भागवत मे इडावृत्त नाम का एक अध्याय हा है। किन्तु इडा का यह पौराणिक रूप न सत्तर प्रमाणों ने उपनिषद् और ब्राह्मण व धाधार पर कल्पनायोग से इडा की रचना की है।

आहुति फिलत—वितात और आहुति का भी अस्तित्व मिलता है जिन्होंने अर्द्धा और मनु त सृष्टिनिमाण व आरभ के समय पशुधत्ति के लिय मनु का उत्प्रेरित किया और मनु ने उनकी मनणा व अनुसार काय भा किया। इन अनुर पुराहिता द्वारा प्रशित व्यामाह्ण माग व परिणामस्वरूप मनु का अर्द्धा का साथ छाड़ना पडा। इनका भी उत्पन्न प्रमादजा न इस रूप मे किया है—किन्तु प्रमुर पुराहित के मिल जान से इहाने पशु धत्ति का। किनाताकुल इति हामुर ब्रह्मायामनु तो हाचर—प्रदादवा व मनु—भाव गु बदावेति। ती हागत्सोचतु—मना। बाजयावत्वेति।^१

कल्पना—कथानक का यागे बनाने के लिय यह आवश्यक था कि मनु का पुन नया जीवन अर्द्धायाग के पश्चात् आरभ हा। एस ही स्थिति पर कल्पना का विशेष आवश्यकता पडती है। यहाँ पर अर्द्धा व स्वप्नविमल मे प्रसादजी न कल्पना का याग इस स्थान पर किया है। शतपथ ब्राह्मण का कथा क आधार पर जिसका उत्पन्न पत्र किया जा चुका है एकाका मनु का तपस्मा से पाव यन द्वारा (छूत दधि आदि का यन) एक मुन्दा का ज प दुषा। उसने तपन का मनु की दुहिते बताया। वरुण ने उसमे यह प्रस्ताव

किया कि तुम कहा कि मुम्हारा है। किन्तु यह मनु व माग बली गई। मनु का भा उसने अपना परिचय दुज्जिा व रूप मे दिया और यह वतताया कि मैं यराननर मे घाई हूँ और मे द्वारा धापकी गतान और मर्पति वृद्धि हागी। मैं धापका दन्धाया का पूति का साधन हूँ। इनकी सी कथा व आधार पर इडा और मनु के सबध स्थापन की बात प्रसादजा ने कल्पना जति से का है। शतपथ ब्राह्मण मे यह भा मिलता है कि मनु ने अपना दुहिते व साथ प्रनाधार किया। एतय ब्राह्मण मे भी इनका उत्पन्न मिलता है। इतने मे यह महज कल्पना का जा सक्ती है कि इडा एस शक्ति था जिसके द्वारा लोक-तप मे मुख्य-सपत्ति की वृद्धि हा सक्ती है। बुद्धि का दबी होने व हा कारण श्वावद मे इडा का भी बुद्धि का साधन करनेवाली धापत करा गया है। इडा पर मनु का अस्तिक का बात पहल हा कही जा चुका है और शतपथ मे भा इन बात का उत्पन्न मिलता है कि दवना मनु का इन बात से दुला हुए क्योकि प्रजापति मनु ने इडा के सहार हा अर्द्धाविहोने हाने पर प्रजा का विकास किया।

इडा का प्रतिष्ठा यन मे भा होता है। वह मनुष्यो की चतना प्रदान करनेवाली शक्ति मानी गई है। अतएव इस बुद्धि का नियामिका और अविद्याकी दवा क रूप मे ग्रहण किया जा सक्ता है। कथानक मे यह स्मरणाय है कि एक बार मनु के जीवन पर अर्द्धा का रग छा गया था। अर्द्धा का मय हृदयवासी भी होता है। इडा क प्रभाव मे धान पर मनु सबधा बुद्धिवादी जीव हा जात है और यूय परितोष न पानर

अपनी मानस दुर्हिता पर बलात्कार करत हैं। फिर व बुद्धि के रंग भर रंग जान ह। मनु का यदि मन मान लिया जाय तो मनु का यह दोलित रूप अपना अलग अस्तित्व रखता है, इमनिय प्रमादवा ने इस प्राचीन आख्यान में रूपक का अद्भुत मिश्रण भा कर दिया है। उन्होंने कामायनी के आधार में लिखा भी है—“मनु यद्धा और इडा इत्यादि अपना एति हासिक अस्तित्व रखत हुए, साकेतिर अथ वो भा अमियक्ति करें ता मुक्त नाई प्राप्ति नहीं। मनु अर्थात् मन के दोनों पक्ष हृदय और अस्तित्व का सबंध क्रमशः यद्धा और इडा से भी सरलता से लग जाता है। यद्धा हृदय यादूया यद्धया विदत वसु”—श्रुत्वद (१०-१५१-७)।

इन कथानकों को अपना रूपना के महार ही प्रमाण न नहीं छोड़ा है अपितु रूपन के निवाह के साथ ही साथ दम मन्तर के मस्यापक विश्वपुत्र मनु द्वारा बुद्धि और हृदय सत्य का योग कराने के लिये एतिहासिक आवरण में प्रस्तुत चेतना के समय रूपा का साविक दग से कामायना में सचयन भा किया है। इस दृष्टि से यदि दया आय तो इसमें वा रूप दिखाई पड़ेंगे। एक रूप तो कथानक का मयुग करता है, आज तक के बुद्धि द्वारा उद्भूत ज्ञान और विज्ञान के परिमाणों का एतिहासिक आधार पर मयाजन कर और दूसरा आज तक की हृदय द्वारा अनुभूत जीवन दर्शन के मन्तर के सचयन कर। इन दोनों तत्वा का दखन के नियमानव के सामाजिक एवं आर्थिक विकास के आधारमूलों का सकेत कामायना में देखना होगा।

दशन के क्षेत्र में उन्होंने (शिव आनंद) प्रत्यभिप्रादन का प्रतिष्ठापन किया और उसमें नित्य कथा में स्थान बनाया। यह आनंद ही जीवन का परम ध्येय है। उसकी उपनिषद् उन्होंने ममरमता के आधार पर वा, किंतु लौकिक जीवन के उन्नयन के लिये भी कामायनी में सक्तात्मक सूत्र उन्होंने दिए हैं जिन कामायना में रूपकत्व में देंगे।

आर्थिक तथा सामाजिक आधार—प्रसादजी का कामायनी द्वारा मानवता के विजयिनी हान का सदश भी देना था। यद्यपि उन हान आदि मानव का अपने कथानक का आधार बनाया, तो भा विज्ञान का विकासमया सम्मता के मूल अथर्वीन को उन्होंने कथानक में आरम्भमात्र करने का प्रयत्न किया है। अधविज्ञान के उन मूल तत्वों का निदर्शन जिनके आधार पर मानव मगनमात्रा की प्रेरणा से आज प्रबुद्ध है, कामायनी में है।

सहज प्राकृतिक अवस्था, आद्येयुग, द्विपुग मयोनयुग के सार तत्वों का दर्शन कामायना में मन्तेतात्मक दग से है। सघपसग में अमविभाजन, यमनिमाण-प्रवृत्तिसघप, समाजनियमन की बातें मनु ने खुबकर कही हैं।

पर वास्तविक से ताप, अधिकारनिष्ठा का आशय के कारण नियमों के घेर में नियामक मनु को भी जकड़े बठी है। यह सत्य इस बात का परिचायक है कि मुसलिष्ठा वाली यह यात्रिक प्रगति मनु को बैंगानिक विकास का चरम स्थिति पर भा तुष्टि नहीं द पाती। यही बात भौतिक सम्मता के सबंध में भा स्पष्ट द्रष्टव्य है। इस समस्या का समाधान भा कामायनी में है। इमनिय सहज हा देखा जा सकता है कि कवि ने मानविक दग से भौतिक सम्मता के

विशालबोध द्वारा कामायनी का क्या के आधार को गृह्य किया है।

कामायनी की कथा में रूपवत्त्व—प्रमाणों के रूप में 'ग्राम्य' म विज्ञा है कि यह आख्यान इतना प्रभाव है कि इतिहास में रूप का भी अद्भुत मिश्रण हो गया है। इसातिव मनु अष्टा और इष्टा इत्यादि अथवा ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए सांकेतिक अथवा भी अभिव्यक्ति करें ता कुछे कोई आपत्ति नहीं।' स्वाभाविक पात्रों और घटनाओं के मध्य से प्रतीकात्मक गूढ़ाचार्यजक का यक्षमा की रूपकथा कहते हैं और इसी कठिनाई में कामायनी की स्थिति है। ये गूढ़ार्थ अभिव्यक्त तत्त्व उपनिषद् और शौराष्ट्रिक कथाया में गहलता से मिलते हैं। प्रसादजा के भारतीय साहित्य की उसी मूल रूपक कथा काय की गारा का आधुनिक रूप में प्रस्तुत किया है। रूपक के अनेक प्रकार हैं जिनमें कामायनी मूलतः इतिहासादृत कथास्वरूप है वह अधिक कठिनाई पर आधारित काय हुआ हुए भा अथवा कथा में विशेष सांकेतिक अर्थ व्यक्त करता है।

कामायनी का पात्र ऐतिहासिक है। उनकी जानन यथाथ सहज तथा मनोव्यवस्था है तो भा कामायनी की कथा से सांकेतिक अर्थ तान प्रकार के लगाए जाते हैं। कुछ लोग इस मानना वृत्तियों के विरास का सांकेतिक कथा घोषित करते हैं कुछ लोग जीन का अनन्य कोश से आनन्दमय वाश तक पहुँचन का कथा का सर्वत इसमें पाते हैं। डॉ० सूर्यानाथ इसका योगिक अर्थ लगाते हैं।

मानववृत्ति के विकास की कथा के रूप में कामायनी का जो सांकेतिक अर्थ लगाया जा सकता है उसकी चर्चा कथा के आधारवाले अध्याय में कर दी गई है।

दूधरे धर्म के गमय में निम्नलिखित शब्दगठन 'कामायनी' में मान लिए जाय तो धर्म स्पष्ट हो जाता है।

- १—धृष्टा = हृदय । २—इष्टा = बुद्धि । ३—मनु = मानविक चेतना । ४—चितात आनुति = भाग विलासमय स्वाभाव आगुग वृत्तियों के प्रभाव । ५—हिगा मय = आसुरी कार्य व्यापार । ६—वृषभ = धर्म का प्रतिनिधि । ७—जल प्लावन = माया । ८—मानस = मान सरोवर । ९—कलास = आनन्दमय वाश । १०—सोमलता = भाग विलास । ११—सोमलता से आवृत वृषभ = योगयुक्त धर्म ।

इन प्रतीकों के आधार पर अनन्य कोश से आनन्दमय कोश का जीवमात्रा की कथा सांकेतिक रूप से कामायनी में है। इन संकेतों का ऊपर दी गई व्याख्या आधार है। वह इस प्रकार है।

अष्टा—धृष्टा में हृदय तत्त्व का प्रधानता है। पालनस भाष्य में उस धेतना का प्रसाद भा कहा गया है। हृदय के रूप में उस मान लना अप्रासंगिक न होगा। सप्रत्यय और स्पृहा भा उसके अर्थ होने हैं। वह काम गानजा है। काम की पुत्री है। काम सकल्य का प्रभाव है। इसातिव धृष्टा सत् सकल्पवृत्ति का योगिक भा माना जा सकती है।

इष्टा—मदिनी के रूप में इष्टा शब्द का प्रयोग महा भारत में हुआ है और वाणी के रूप में हरिवंश में। भूमि वाक्य, जल के पर्यायवाची के रूप में इष्टा का प्रयोग प्राचीन भारतीय शास्त्रों में है। वह शिवाविशारदा भा है। इष्टा बुद्धि से सबद्ध भाषा भा है। इसलिये उक्त बुद्धि का प्रतीक भी माना जा सकता है। बुद्धि संकल्प विकल्पमयी तथा स्वायत्त प्रेरित है। मनु का मानववृद्धि भा

है इगित्व उगक माध्यम म रगतन भी
धमभाष्य महा ।

मनु—मनु मनन क प्रवाह है । गीतमाय तय म र्जन
के धम मे हमका प्रयोग किया गया
है । बाजगनेजगहिता म मानप्रधान
विद्वान् का मनु माना गया है और
उगका भाष्य महापर न 'मान मान
प्रधाना विद्वान्' किया है । मानक
धत करण क त्व भी श्रीपर ने हमका
प्रयोग किया है । इगित्व मनु का मा
गित्व धेनना मानन म धारित न
हाना चाहिए ।

यज्ञ—मन्त्रपुराण में १ यज्ञ का यज्ञ है । मन्त्रपुराण
का श्रद्धाग, ताराग का श्रद्धाग नाम
द्वैतग, बलि दूतग और धर्मविद्वान
नियमग है । श्रद्धाग का भा यज्ञ
हमारा प्रधान मन्त्रिय म है ।
मन्त्रपुराण म श्रद्धाग का
धर्म का जनक माना गया है और
उसमे मनुमहारा धर्म का निरूपण
की गई है और उस समयमक नी
धारित किया गया है । यह धर्मधार
कम है । धर्मधारकता धनमात्र धूम
क त्व धर्मवद तथा का भाग करने
में माना हुआ है । इन प्रकार ज
हिमायत स्वाध क त्व का गया
आगुरा वादधाराह है मनु आगुरा
निर्माह धम और मारस्वत दाना प्रदना
क श्रद्धाग क पुराण में इन क कारण
भाग धनममय स्वाधध आगुरा
वृत्तधो व प्रताह है । इन प्रवाहों का
शास्त्राय मा यज्ञ प्राप्त है ।

गुपध—गुपध का एक धर्म मनुस्मृत में धम का
दिया गया है ।

(कामानुवर्षताति । गुप + व । धम्म ।
मया, मनु । ८।१६।) —

गुप हि भगवान् धम्मस्त्वस्य य वृत्तं ह्येतत् ।
गुपयत विदुर्वास्तस्माद्धर्मो न लापयेत् ॥
भगवान् गौरव का वृत्तवाहन व नाम म आ

गवाधिन किया जाता है । भगवान्
गौरव धर्ममय गवाधिन म वृत्त पर धारण
होता है । मनी वृत्त म धर्ममय गवाधिन
मुद्रित्व निरूपण प्रत्याम गुप मुद्रित्व करके
उत्तमता की जाता है । गवाधिन मुद्रित्व
का माद्वान्तर बराजी है और उगक
उपराह माध्या निरूपण गवाधिन द्वारा
धनमात्राधमग का ध्यति प्राप्त करने
क बाह्य वृत्त जव वृत्तव्य विनयक
प्रता बनानी है तब उस विनय का
ध्याति व नाम गु गवाधिन करने है ।
विनय ध्याति म मरनता मिद्रित्व उत्तम
होती है । विनय ध्याति का गुणता
उप ध्यति म पहुँचता है जब माध्या
मवृत्तता मिद्रित्व प्रति नी धर्मतिहान
हो जाता है । इन प्रकार का गवाधिन
का धर्ममय व न है । इन धर्ममया म
माध्या धनमात्र प्रत्येक व धर्मवद ध्यान का
धारिता हो जाता है । तथा गवाधिन
म भा गौरव का ध्यान वृत्त हो ।

प्रताया वन माद्वान्तराहित शब्दर ।
गवाधिन धर्ममया धनमात्र वृत्तवाहन ॥
इगित्व वृत्त तारता गवाधिन म तदन म
धम का प्रताह धारा गया है ।

जलप्लावन—जलप्लावन व सधम म क्या व
धारितता प्रयोग म क्या की जा
सुती है । प्लावन धूमन व धम म प्रयुक्त
किया जाता है और माया म धर्मवद
हो जाने पर हो प्लावन का विधान
है । इगित्व जलप्लावन का माया व
प्रताह व रूप म स्वाधार किया जा
गवता है ।

मानस—मानस का प्रयोग सारावर विनय व लिय
किया गया है । यह व नाम पर ध्यति
है और यज्ञ ने हमका निमाण किया
था । महाभारत व २२८वें अध्याय म
इसके सधम म निम्नांकित निवेदन है—
यत्तामश्चापि दुष्कर्म्या दानवद्रोहा वाम्पत ।
यत्तत्तत्तमग यवान य साधतवन्दर ॥
यामा मनहस्तवच नित्य पुणितपादप ।

हमपुष्करमय तन वै मानम सर ॥
कल्पित मानमञ्चव राजहमनिषेवितम् ।

मानमरावर और कलाम का भारतीय जावन
दर्शन म बड़ा घनिष्ठ भवय ह । कलास
की व्याख्या "वेत्तानां समूह" के रूप
म का जाता है अथवा व जन लामो
लमन नितिरम्य ।' इस प्रकार कलाम
मानद का लामभूमि ह और शिव का
निवासस्थान भी । इसलिय मान
मरावर की मनाप्य और कलाम की
मानमय काश के प्रतीक के रूप म
स्वाकार करने म आपत्ति नहीं होना
चाहिए ।

ममलता—मानमता का अर्थात् भारतीय म
अपमिह है । मानम एक राग भा है
त्रिमम किना प्रकार का भा छाटार
बिहार करने म मृति लाभ नही होना ।
मान म पान म भाग का बोध होना
है क्योंकि प्राचीन गार्ह्य म मान का
प्रयोग बराबर विनाम के निय विना
जाता रहा है । विनामा दबा का बह
अपम प्रिय पनाय रहा है और भाग
विनाम का प्रभाव भी । इसक निय
बराबर मुक्त भा हुआ है । इसनिय
मानमता की भाग विनाम का प्रभाव
मानमता का भाग विनाम का प्रभाव

नही, प्राणमय काश भा अवस्थित है
त्रिमम अमय काश मचालित है ।
प्राणमय काश व भातर मनोमय काश,
उसके भातर विनामय काश और
उसके भीतर मानमय काश का
अवस्थिति माना गई है । मानमय
काश म हा अगुड आत्मा का अनत
निवास है ।

अमय काश के अतगत अमनिमित्त त्वका म
लेकर बाय तब का अवस्थिति है ।
प्राणमय काश म प्राण अपान, उदान,
ममान अथवा इन पंच प्राणतत्वा की
अवस्थिति मानी गई है । कर्मेन्द्रियां
और मन तथा अहंकार मनामय काश
के अतगत है, बुद्धि और चान्दिका
विनामय काश म अवस्थित है ।
मानमय काश अगुड आत्मा का
निवासस्थान है ।

कामायनी म पञ्चकाश का स्थिति गवया
अपष्ट है । मनु प्रत्यक्षता दरमणि के
अपम के रूप म अवस्थित है । और
पाक मग द्वारा अज्ञा म मनन के मूढ
अवस्थित मग है । यह अवस्था
उनके अमय काश का स्थिति का
मनना है । अज्ञा और मन के

निर्देशिका इडा के निर्देशन म मनु
मारस्वत नगर का निर्माण आरम्भ करते
हैं और प्रजोन्नति के उपरांत इडा पर
अधिकार करने के प्रयत्नस्वरूप मर्ष
में पराजित और मृच्छिन् उपस्थित होत
हैं। यह स्थिति विमानमय कोश की
है। अंतिम स्थिति इसका उपरांत
आनन्दमय काश की है। जहाँ अर्द्धा
पान, क्रिया और दृष्टि का त्रिपुर भेदन
करती है और शिव का दर्शन होने है।
आनन्द की यह समस्त स्थिति आनन्दमय
कोश का प्रतीक है। इन प्रकार इन
प्रतीकों के माध्यम से अन्नमय काश से
आनन्दमय कोश की अवस्थिति का
कौमायना में दिखाई गई है, जिसमें
ऊपर दिए गए प्रतीकों का प्रयोग
स्थान स्थान पर यथावश्यक किया
गया है। इन प्रतीकों के माध्यम में
मनु अर्थात् मानसिक चेतना अर्द्धा
अर्द्धा हृन्मय, इडा (बुद्धि), निनात
आकुलि (स्वाभाविक आनन्द वृत्तियों),
हिमा यन् (आमुरी कायव्यापार)
वृषभ (धर्म का प्रतिनिधि) मोमनना
आवृत वृषभ (भाग्युक्त धर्म) का
माध्यम से कलाम (आनन्दमय काश)
तक पहुँचता है।

श० संपूर्णानन्द ने इसका योगिक व्याख्या का
संकेत भी दिया है—

‘मनु प्रथम मनुष्य नहीं था। प्रत्येक मनुष्य
के आरम्भ में एक मनु होता है। इस
प्रकार एक कल्प में १४ मनुष्य और
१४ मनु होता है। आरम्भ के
वाराह का कल्प चल रहा है। मनुष्य
का कथा भाव डेय पुराण में विस्तार
से मिलता है। इनमें सावर्णि मनु की
कथा का दुर्गमिष्ठ का रूप में नवरात्र
का दिना में घर घर पढ़ा जाता है।
पता नहीं कि कौन व्यक्ति इसका समर्थन
का यत्न करते हैं। जलप्राशन द्वारा।

जगत् का वन्दन मनु प्रथम नष्ट हो गया।
प्राणा नष्ट हो गए। मनुष्य
मनुष्य की वृष्टि में मनु एम स्थान
पर पहुँच जो मुरुज्जिन् था। वहाँ पर
उनका अर्द्धा में साक्षात्कार हुआ
और फिर मनु और अर्द्धा में मनुष्य
की मनुष्यता की नींव डाली।
वेद मनु की मीमांसा की अन्तर्गत
हैं। एतद्वा शनो व मनुष्य यह एतद्
हामिक घटना हो सकता है। जन
प्राक्ता का हाना तो एक प्राक्ता
घटना है। इसका बहुत प्रमाण मिलता
है। यह भी हो सकता है, जैसा कि
नक्त शनो मनुष्य करती है कि यह
विही प्राक्ता हामिक का वृष्टि
हो। बाद में, पानी मनु, अन्तर्गत का
हो रूप का गया हो, परन्तु तभी
प्रकार में व्याख्या हो सकता है। मनु
का अन्तर्गत भी होता है। मनु और
मनु शनो शब्द जिस आनु में निहित
है उसका अन्तर्गत है, मनु करना।
मनु शनो अन्तर्गत और पुष्ट व्याख्या करना
का यत्न करना नहीं चाहता। इससे लिये
पूरा पूरा अवकाश भी नहीं मिल सकता।
परन्तु कुछ मनुष्य मान जल्द सामान
रखता है। जन का लिय मनुष्य
हो वैदिक शब्द है अन्तर्गत, और अन्तर्गत
वद मनुष्य से स्थला पर कम का लिये
भी आता है। संधायक अन्तर्गत उन्नयन
चाहता है। मनु, करणा, मुद्रिता
और उपजा की भावनाओं का द्वारा
सावर्णि करका चित् का प्रमाण अन्तर्गत
करना का दृष्टिकोण है। परन्तु उनका
एक ही भाग का जान है, कर्म माग
का। कम करता है। कम उनकी स्वयं
तक तो जा सकता है, परन्तु ‘ज्ञाणे
पुण्य मनुष्यता विशति’। किन्तु कम,
कम का कम, कम का द्वारा एक लोक से
दूसरे लोक तक धूमन रहना यह एक
विचित्र पदा है। इससे धुटकारा

पानी का कोई मार्ग नहीं देग पड़ता ।
 बर्ष धर्मोत्तम धर्मोत्तम जन्म का श्रावण
 हो गया । मनु का भीति बर्ष ने
 पारा धोर धोर दिया है । जीव इगम
 दूधना मा जा रहा है । इच्छा
 विनाश धोर विनाश का विनाश हो
 रहा है । एसा धर्मना म उगकी
 भाव्य की महावना मिता है । जा
 उगका भाव का उग मनु व बाहर
 मुरझा शाश तव पट्टेवाग है । बाग
 व धर्म म बाग की प्रिया की मन्म
 का गति हो उगमा दा गई है ।

‘उ टा पवन बद्ध जग माना, है मरुदुध का
 मारण : माना’ । यह उगमा दम मये
 हो जाता है । एसा माना जाना है
 वि मरुदुध जग व प्रवाह व विच्छ
 धनार ऊच गतव्य स्थान तव पट्टेवना
 है । दम प्रवाह बाग का प्रिया मरुदुध
 का जगत् व प्रवाह व विच्छ ऊपर
 की ले जाता है । निश्चय हो । बाग म
 लगना छुट धोर ईश्वर का वृषा का
 ही पत्र है । ईश्वर व निय कहा भा
 है, ‘म एव पूर्वोपामपि गुह — वह
 गुह्या का भा गुह है । धुनि न भा
 कहा है कि माछ बाग पर वह । चल
 तवता है ‘ममवया वृणुत — जिनका
 यह परमात्मा स्वय वरण करता
 हा, जिनका वह आप अपनता हा ।
 साधक का यहां परमात्मशक्ति बर्ष
 समुद्र व ऊपर उठाकर स गई । बाग
 दशन म पतजलि न कहा है कि बाग
 म सिद्धि हाती है वा सबक पहल अद्वा
 उत्पन्न हाता है, तव बाय जागता है ।
 इमान्ति यह स्वामाजिक है कि साधक
 का अद्वा स भेट हो धोर तव अद्वा
 व प्रसाद से उसका जो वाम करना
 है उसक वरने का शक्ति प्राप्त हो,
 यह जगत् के सनियमन म समथ हा ।
 एक धोर बात है बाग का क्रिया क

द्वारा माधव ऊपर ता पट्टेव गया
 मरुदुध शक्ति होना का भी बट्टा बड़ा
 दर रहता है । बागमा न कहा है
 कि बाग म मरुदुध न समिमान का
 उग हो मरुदुध है । मरुदुध ने
 उगम दिया है वि बाग का स्वय
 म मरुदुध बाग, दम बाग पर
 मरुदुधना नही बाग वि एसा म
 कहा तव ऊपर उग गया । इगनिव
 बाग व धर्म म प्राणापाम व पात्र
 प्रवाहार का चषा है । प्राणापाम व
 द्वारा जब कुल गिद्ध हाता है ता
 विनाश व भाग का बट्टा बड़ा शक्ति
 बा जाता है धोर इच्छा मान म बट्टा
 म भाग उत्पन्न हो जात है । उम
 समथ म वि छित उपर का धोर मुखा
 हा मारा साधना नष्ट हो जायगा ।
 इगनिव प्रवाहार का धावश्यकता
 हाता है । प्रवाहार म सपना प्राप्त
 करने व निय मा अद्वा का धावश्यकता
 हाता है । अद्वा शक्त का उक्ति
 अद्वा स हुई है, अद्वा दिति सत्य नाम
 गुणात्मक । अद्वा का धर्म है गत्य ।
 गुह धोर शास्त्र का बावय पूछत
 मरथ हा, एसा निष्ठा का नाम है अद्वा ।
 इसक वन पर प्रवाहार करता जा
 मरता है । इमलिय जा मननघान
 माधव बमजाल स बाग का साधना
 द्वारा ऊपर पट्टेवता है वह एव धोर
 ता अद्वा का महायता स प्रवाहार
 करक धपने का बाग का ऊचा भूमि
 बागमा की धोर ले जाता है, दूसरा धोर
 अद्वा का महायता स उसकी बाय
 सपादन के लिये बाय प्राप्त होता है,
 विना मनु धोर अद्वा कमल व सीला
 वहीं की वही समाप्त हो जाती है,
 साधक जलप्लावन से निबलकर माह
 प्लावन मे दूब जाता है ।

श्रुतद दशम मंडल क १५१ वें सूक्त का नाम

प्रदा मूल है। इसकी कृपिका अर्थात् मन्त्रद्वारा वा नाम श्रद्धा है। वह काम योग में उत्पन्न होने से कामायनी भी कहलाता था। काम शब्द का अर्थ वाङ्मय में विशेष अर्थ है। नास्तिक मूल में कहा है, 'कामस्तदग्रे अभवत्' इससे सबसे पहले काम उत्पन्न हुआ। उसी प्रकार जगत् वं सग का वर्णन करते हुए श्रुति में कहा गया है 'मो'कामयत्।' कामना वह थी जहाँ हम कहें 'काम' में एक है, अनन्त हो जाऊँ। महाप्रलय वं समय जगत् क्षिप्त कर परमात्मा में विलीन हो गया था। काल पाकर जावा का कम फलामुल हुआ हमने परमात्मा में जा स्फुरण हुआ उसका नाम काम है। इस सत्त्वयुक्त परमात्मा का हिरण्यगर्भ कहते हैं। हमने समूचा भावी जगत् विचार रूप में विद्यमान रहता है। पीछे यह विचार विस्तार को प्राप्त होता है। परमात्मा के इस काम, इस सत्त्व स जहाँ जगत् का विवास हुआ, वही श्रद्धा उत्पन्न हुई। ममाभि का मतस्या मे मनु का परमात्मा का तादात्म्य प्राप्त हुआ। उनके अंत करण में श्रद्धा के द्वारा जगत् का वह चित्र, वह योजना उतरा जा यदि मे विचार रूप में परमात्मा में उदय हुई था। उसी चित्र के अनुसार उ होने अपने मतवत का कार्य मन्त्रानि क्रिया।

इसी दृष्टि से मैं मूल अदिक आख्यान को देखता हूँ। आप लोगों के सामने मैं कामायनी के अवतरण उपस्थित नहीं करता। मुझकी जगह प्रसन्न होना है कि प्रसादजी के सामने कुछ ऐसा ही व्याख्या था और उस व्याख्या का समुदाय भी किताब के पढ़ने से नहीं प्रत्युत उनकी निजी अनुभूति में हुआ।

या। इस अनुमति को इस व्याख्या को उठाने कामायनी के द्वारा व्यक्त करने का प्रयत्न किया है। और मेरी ऐसा धारणा है कि जहाँ तक कि जिन्ना बनि का उस प्रयत्न में सफलता हो सकती है उसी सफलता मिनी है। मुझकी जगह संगता है कि आधुनिक हिंदी के बहुत से प्रथम बाह्य विचार हो जाय परंतु कामायना हमारे वाङ्मय में सदैव ऊँचे स्थान पर रहगी।'

कामायनी के चरित्र—गुरु चरित्र मनु, आहुति, निरात और मनुपुत्र मानव हैं तथा नारी चरित्र श्रद्धा और इडा माता। मनु, श्रद्धा एवं इडा का चरित्रचित्रण तो कुछ विस्तार पा गया है पर अन्य चरित्र मन्त्रात्मक अस्तित्व रखते हैं।

मनु—कामायनी के नामक मनु हैं। मनु पूरा धीरो-दात नायक नहीं है। कामायनी की कथा मनु के ही चारा चार चक्कर काटती है। कामायना में प्रिया, पीडा, कल्या तथा मुक्तिविनाम वं ध्वस पर बैठे मनु जहाँ दक्षिण वं अवशेष के रूप में प्रकट हुए, वही मानवता के आदि प्रवक्तृ के रूप में भा कामायनी द्वारा हमारे समक्ष उपस्थित किए गए हैं। वे एक व्यक्ति के रूप में आते हैं, जिनका परिचय अतीत स भ्रष्ट गंभीर है और जिस भावी सृष्टि का निर्माण भी करना है। ध्वस वं बाद जीवन की सहज अभिलाषा मानव जीवनचक्रना का परिणाम है और मनु भी उससे विलग नहीं। ऐसी स्थिति में मनु को नया रास्ता बनाना था, नए साधन अपनाने थे। और उन साधनों का उपयोग और प्रयोग उह अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिये करना था, क्योंकि सामा यत मनुष्य आप

घोर भागे बचकर बटो है—

मे मागल में निर स्वतंत्र तुम पर भी मेरा—

तो अधिभार भगीम, गपन हो जाना भरा।

मागना ने मनु को त मानने दिया। अधिभार

का लिखा ने उ त मंजूर व निय उस

जिना बिना। मा ने उ मुक्त गुणभाग

ने विषे सारस्वत प्रण की प्रजा मे

गण किया। पुत्र हुआ, मनु परापूर्वा

हूए। पुत्र की अममया स्वयंसेवा

की उच्छरगता, अमृति धर्माणि तथा

परामन का जननी है। उनका संत

अतिवाद मे होता है जिगा परित्याग

पराजय होता है। मनु भी पराजित

हू। मनु जब अद्वय हूए ता उहू

अद्वय दासी। मनु का पुत्र भी अद्वय

के माय था। अह की भावना का

परित्याग मनु दम बुन थे। स्वाध

निष्ठा का जनना मे अनुप्राणित हो

घोरो के ऊपर अधिभार की भावना

ता हुमह दुख मनु उठा बुन थे। प्रकृति

घोर विमान का सम्मता क बोद्धि

नियमन का अन्तिम परित्याग उन

रोम राम पर अहित हो बुना था।

उनका हिमा का वृत्ति तथा प्रकृति पर

विजय का रसमनी कामना अन्तिम बरात

से रहा थी। एसा स्थिति मे जीवन की

केननाशक अद्वय की, जिसकी उपस्था

जीवन के आदि मनु ने की थी दसरे

मनु ने आम्नानि जाग उठी। अनुभूत

साय स पुन उनका साक्षात्कार हुआ।

जीवन की सध्या बैला मे मनु की

मगनमय। अद्वय का वास्तविक मूल्य

नात हुआ। मनु के जीवन में पुन नया

मांड जाता है और व पडे पडे सोचते

हैं कि जावन मे सुख नाम की कोई

वस्तु नहीं अपितु यह एए पहेली है।

अनुभूत हम जीवन से भाग चलना चाहिए।

अद्वय के उपकार से भी वे इतने दब

हूए हैं कि अपना काला मुख उसे अग्र

नहीं निनाला जाता। अब तब

का मनु का जीवन मर्त्य मे मुक्त

है। यह अथा स्वाध के निर मुक्त भाग

की कामना मे समाप्ति होता रहता

है। अथा अधिभार घोर अधिभार व

निम बर घोरा का बिन बहान मे

उत्तम का अनुभव करता है। स्वार्थ

माधन मे बर इनाम अधिभार निर हुआ

बागना है कि विवक, मनु प्रमद, हिमा,

अहिमा, पामन महार तथा बन्ध,

अधिभार निर्मी का प्यन उन नहीं रह

ता। बिना निर्मी प्रतिभन व माय

सम्पण करनेवाता अद्वय तथा निगन

मयी बुद्धि व हारा मय का प्रहण

करानेवाती विवरनिमित्तवा दृष्टा व

कृत्तिय स भी उन मतो नहीं। वह

उनपर पुण भागाधिपत्य जमाना

चाहता है। प्रकृति कोप स जिन

सम्पता का ध्वम उनत दगा या उन

प्रकृति पर भी वह पूर्ण अधिभार

स्वाधित करना चाहता है। अधिभार

निष्ठा वामना अधिभार ईध, हिमा,

अतिवाद एव अमगतिमा उनक जावन

के कण कण में समा गई थी और व

हा उनका सवालन करती थी। अब

पलायन का वृत्ति के साथ साथ जीवन

की सद्वृत्त का उद्यम भा इन स्वयं पर

उनके अंतर्जगद मे होता है। जिस पुत्र

ग्रम का गमावस्था मे शेषकर अद्वय स

उसने ईश्याचरा पूण विग्रह कर लिया

या उसी पुत्र का आज वह अपने जीवन

का उच्च प्रग मान बल्लाए बना के

रूप मे अगीकार करता है। साथ ही

उसे अपने जावन का सबसे बड़ा प्रलो

भन भा मानता है।

यह सत्य इस बात का साक्षी है कि भावी नोए
जीवन को मनु समाज से दूर भूय
विरक्त एकांत बराय का संदेश नहीं
देता अपितु अपनी भावी पीढ़ी को जग

मे रख कर अपने द्वारा संचालित मानव
सृष्टि को आगे बढ़ाने के कार्य में
विश्वास प्रकट करता है।

यद्यपि इस धर्म से यहाँ वह व्युत्पन्न नहीं होना
तो भी एकांत रागविराग का स्थानि
स सुहाग की भ्रज्य वर्षा करनेवाली
श्रद्धा को साजवश छोड़ पुन अज्ञात
दिशा की ओर प्रस्थान करना है। मनु
के इस पलायन और पहले के पलायन
में एक अंतर है। पहले का पलायन
स्वार्थ, झूठकार और उपभोग की
लालसा से किया गया इन्द्रियविलास
की प्रतारणा का परिणाम था और
दूसरा जीवनवृत्तना में प्रबुद्ध वास्तविक
जीवन के परम अभाव आनंद की
उपलब्धि के लिये, तपस्यामूलक साधना
के लिये, अलख चेतना से संबंधित।

श्रद्धा तथा इडा मनु को उसके भाग्य पर नहीं
छोड़त अपितु वह उह मनु के पुत्र के
साथ लोखने निरुल जाते हैं। भिलो
परात श्रद्धा अपने पुत्र की मानवता
के विकास के लिए इडा का सीप
देती है और स्वयं शक्ति रूप में मनु के
साथ रह नए जीवन में भी उनकी
महामिणी बनती है। उह नटश के
प्रवेश में आनंदलाला दिखाती है और
नटश के चरणों में ही उह अग्रज
आनंद की प्राप्ति होती है। श्रद्धा उनके
साथ है और उनके जीवन का चरम
समय उह अन्न उपनयन है।

मनु का स्वरूपमग्न कवि ने अत्यंत सुंदर ढंग
से किया है। शब्दों के द्वारा रूपमग्न
की विशेषता यह होती है कि विरहित
पात्र का स्पष्ट रूप अंकित हो जाय।
मनु दस सम्यता के अवशेष और आदि
मनुज है। कामायनी में हिमालय प्रदेश
में उनकी आदि उपस्थित दिखाई गया
है। वहाँ के लोग अत्यंत सुंदर सवे और
स्वस्थ होते हैं। प्रसादजी ने उनका

रूप निम्नांकित पंक्ति में उपस्थित
किया है—

तरुण तपस्वी सा वह बैठा,
साधन करता सुर भ्रमशान,
× × ×
उभो तपस्वी से लवे, ये
देवदार दो चार खड़े,
× × ×
अवयव की दृढ़ मांस पशिया
ऊजस्वित था वीर्य अपार,
स्फीत शिराए, स्वस्थ रक्त का
होता था जिनमें सचार।
× × ×
चिता कातर यदन हो रहा
वीर्य जिसमें श्रोतप्रोत।
× × ×
उठे स्वस्थ मनु ज्यो उठना है,
क्षितिज बीच भ्रष्टादय कात।

मनु के इस रूप का प्रसादजी ने शब्दों के द्वारा
जो मूर्त रूप दिया है उसमें वह लंबा,
दृढ़ भावपेशिया वाला, वीर्यमय,
कातिबाहू यन्त्रिक के रूप में सफलता
पूर्वक चित्रित किया गया है।

और कामायनी में भी ता मानव सम्यता के
आदि प्रवर्तक मनु की विज्ञान के इस
युग में उनकी समग्र शक्तियाँ का
साक्षात्कार कराने हुए उनका हीनता
का बाध प्रसादजी ने कामायनी द्वारा
उपस्थित किया है। उनका अतिम
ध्येय मनु के रूप में मानव को आनंद
के अग्रज धरातल पर ले जाना है।
समष्टि के कल्याण का मार्ग भी कामा
यनी में है केवल व्यक्तिपरक मनु का
भगवद्विधान मान ही नहीं। इसके
लिये बुद्धिवादी, विवेकमयी वस्तुनिष्ठ
सम्यता को सुखलिप्ता के परिणाम
का सभी दृष्टियों से साक्षात्कार कराना
आवश्यक था। अतएव मनु का चरित्र
कथानक के अनुरूप निर्मित किया गया

है, उन्हें तारकी स्टेज ने उस तारकी की नीति प्रस्तुत रूप में ही उपस्थित किया गया है जहाँ राज सम्पत्ति भी आप पर पड़ता जाता है और वस्तु न नियम भी रोज़ का ही अभिन्न विषय जाता है।

जाता है ।
मनु का चरित्र अपना भीतिव महाब रगता
है भन हो ये धारोनाल नाया न हा
भने ही व जोया न प्रयय वग पर
विजया न हो भन ही उनवा प्रयय
वरण मामा मोर बिजयान बी व्रमिप
सृष्टि न वरता हा, भन ही उनवा
प्रत्येक गति न जाना व जाना बी
विरला वा उदयम न हला हा ता
भी जीवन गपय के मत म भान
उही के हाय रहता है । हार वर भी
व जोयन वा दाव जातत है । और
यनमान भीतिव मानव सृष्टि व घादि
प्रवतन हान व नाय हा नाय आतर
सृष्टि के आदि प्रविधाना होत है जहाँ
पर मनुजन के द्वारा दाना चुना ने
अभ्युदय, निश्रेय्य और सिद्धि वा
उपनिधि वा माग खुलता है तथा
जिनका मूलोपाय आनन्द और लोक
मगत है । आनन्दवादी जीवनपरपरा
के व आदि पुण्य हैं और उनका चरित्र
प्रसादीन न कामायनी ने अच्छे रूप
से रखा है इसमे दो मत नही हो
सकते ।

सबसे ।
मनु का यह चरित्रचित्रण रूपकत्व के निवाह
तथा प्रत्यभिज्ञा दर्शन के तत्वा से भी
परिपूर्ण है, जिसकी चर्चा कामायनी
के दर्शन में है ।

श्रद्धा—नामायनी की मर्चा के आधारवर्तते अथा मे
 श्रद्धा का परिचय दिया जा चुका है।
 श्रद्धा का उल्लेख वैवस्वत मनु की पत्नी
 के रूप में हुआ है और भाषवत म
 श्रद्धा और वैवस्वत मनु स मानवीय
 सृष्टि का आरम्भ आ माना गया है।

"कर्म" व "मर्मों" मंदन व प्रज्ञा सुख
 म यह मन्त्र है कि प्रज्ञा का नाम
 कामायता भी था। मारण ने प्रज्ञा
 का कामायता माना है। प्रज्ञा
 कामायनी की ताम्रिा है। प्रज्ञा की
 प्रज्ञा ली घाग्न भारतीय जीवन
 मंत्रिा है। जा प्रज्ञा मनु व जान
 व मूर्त समान मं मूर्त मान गी
 वती का मारण व मान घाग्न
 उमिषा करती है।

उपस्थित करता है। उसका गीत्य वा मन
वह मनुष्य मुन्ना है। उसका गीत्य वा मन
प्रमाणों न अपना कारण प्रतीति
ने दिया है। उसका गीत्य वा मन
मनुष्य अपने ही अग्रिम दृष्टान्त
वा बाध होता है। वह मनुष्य को
बहु ब्रह्मत्वा का मत रण पुत्रात
माना गया था। ह्या हमारा
नियं योनि स्थिति न दास, मन्त्र
मन्त्ररी ना उगा और उसका श्रीर
परमाणु परावीं स रविन नाम हुआ।
उसके इस शारीरिक गीत्य में मनुष्य
आधार भा था। अर्थात् वह रूप
कवन बाध्य सौंदर्य की छवि सही
दास नहीं, अपितु वह स्वह, माया,
ममता और आत्ममर्पण की देवी
और पुत्र का शक्ति रूप में प्रथम
दर्शन में ही प्रकट हुई। उसका यह
रूप उसके हृदय का अनुगति का प्रतीक
वे रूप में कवि न उपस्थित किया है।
नारी का ऐसा मनुष्यपूर्ण रूप खड़ी
बाला में प्रसादजा न जिम भीलाल के
साथ चित्रित किया है वह अपनी
नाटकशायता, शब्दा द्वारा चित्रांकन एवं
कल्पना द्वारा भौतिक एवं जीवत
रूपांतरन के लिए स्मरणार्थ है।

नारी का सौन्दर्य केवल उसके रूप में नहीं है।
उसका अन्तर सौंदर्य अपनी व्यापारिता
शास्त्र छाया व कारण अधिच मुद्र
इस दर्श में माना गया है। अर्थात्

यह रूप अलग अलग स्थितियों और परिस्थितियों में दिनोत्तर निपटा है। मनु में उमका मिलन जिम स्थिति में होता है उस अमिश्रित स्थिति में अद्वा उनकी उद्बोधिका शक्ति के रूप में प्रकट होती है। वह उन्हें बेवस उद्बोधन ही नहीं देती है वह सत्त्व मसृति की पतवार भा उन्हें सन्ध्यालने की प्रेरणा देते हुए उनके लिए विकारहीन होकर जीवन उत्तम करने की उद्बोधना भी करती है। यद्यपि अद्वा मनु की उपहृता है क्योंकि सहानुभूतिवश वे शालि आदि दूर रक्त आत य ताकि सन सा ही कोई अथ जलप्लावन म अवशिष्ट जीव जीवित रह सक् ता भी पवित्र हृदय स दया, माया, ममता, प्रणय विश्वास और माधुय का जो दान अद्वा ने उन्हें किया और जिसके कारण वे ससृति के मूल रहस्य बने तथा जिससे मानवता का बेल फूली फली फली और शक्तिशाली हो मनु विजयी भी बने। यह भारत की एसी ही नारी कर सकती थी। इस भांति समपण-मयी अद्वा का यह रूप जहा एक भार निर्देशिका या गुरु के रूप में मनु के जीवन के लिए मन्त्र दे रहा है वही उपवृता नारी के रूप में वह अपनी समस्त शक्ति का दान भी उन्हें कर रही है। इस प्रकार उन्हें जीवन में गति देनेवाली भूल शक्ति के रूप में अद्वा की प्रतिष्ठा होती है।

महा काम गानोत्पन्न होने के कारण कामा-मनी नाम स भी संबोधित की गई है। उमकी गुणमा में स्पर्श, रूप, रस और गंध का व्याकुल कर देनेवाला आनंदपल था। जीवन में यह आनंदपल नारी का प्रकृत गुणधर्म है जिससे बाण में सृष्टि का विकास होता है। इस सौंदर्य रहस्य के ज्ञान के लिये उत्ताम

भरे मनु व्याकुल हो उठते हैं और देवताभा का परम उपागम काम स्वप्न में मनु को सूचित करता है कि यद्यपि द्रव नहीं रहता भी मरी स्त्री अनादि वागना रति और में अनग के रूप में अब भी है। पूर्व जीवन के विनाशमय कृत्या के शृणुशाय के लिय हमने अपनी मतान कामायनी की दिया है। उसे पाने के लिय यदि लालायित हा तो उमक अनुरूप बना।

यद्यपि मनु और अद्वा एक साथ ही रह रहे थे ता भी उनमें वासना का सबभ एकाएक स्थापित नहीं हुआ। सहज अद्वा की पशु स खेलन दस उमका प्रेम पान के लिय मनु के मन में ईश्या हुई और अद्वा जब मनु का हाथ पकड़ उम मधुमन्त्र बाँदनी में ले गई ता मनु अपने को रोक नहीं पाए और अघोर-प्राण हो विश्वरानी, मुदरी नारी, आदि मवाधना से अभिभूत करते हुए उन्होंने निबदन किया कि मेरी समस्त चेतना तुम्हें समर्पित है और अब मेरी धमनियों में रक्त का संचार बढ़ना की भांति हो रहा है। अद्वा लज्जानत रोमांचित हो बोल उठी कि वह दान जिसे सन के लिये मेरे प्राण पहले से ही व्याकुल थे, क्या मैं उम से सङ्गुगी, क्योंकि मैं निबल हूँ।

मनु की प्रणयिनी के रूप में अद्वा की यह रचना भी सहज जीवन सत्त्वा में रजित है। लज्जा नारी का धर्म है। यह लज्जा सौंदर्य का धारण, शालीनता की उप-दशिका, मुदरिया के मन की मरोड़ को जगानवाला रति की प्रतिवृत्ति है और भारतीय नारी का आनंदपल भी। इससे अद्वा महित है। किंतु नर के मधुर आनंदसमपण में दबी के रूप में प्रतिष्ठित है। प्रणयिनी के रूप में मा अद्वा उच्छल नहीं, यह समस्त ध

गमान बहानाता समुद्र का मरी व रूप
म उपस्थित है।

मनु का मस्तर दरार का था जिनका नाम
रिनाग भाग के कारण हुआ। मातृनि
जिना के पक्षर ॥ पक्षर पशुचर
मायगा घोर मग धनुषा की घोर व
उत्पन्न हुए। बागना का वग उनम
बड़ा घोर व धन ही भीति गुण
पागा के लिए सब कुछ करने का
पुन उतावत हा उगे। गया स्थिति म
भा अदा अपना गवम नहा मारी घोर
मनु का घटिगा, सख गुन, स्वार्थ
रमाग घोर मवाकम का माग बताना है।

पनधमाल अदा मातृन व भार म
जहाँ घोर भी वामागमया हावी जा
रहा था वहा मनु स्मार्थरत द्विज
घोर समुर पुराहिता व प्रभाव म अय
ईध्यानु भा। यहाँ तर वि मनु को
भावो पुन के प्रति भी अपनी पला
का प्रेम अतस्त सगा। महार घोर
ईध्या स भर मनु न अदा की बात
अनमुनी कर दा घोर अदा का छोड
चले गए।

समर्पण के बाद कृत्य के प्रति हृद का स्थिति
उपस्थित होने पर भी अदा यहाँ अपने
वक्तव्या के प्रति अडिग रहती है भन
हा उसे मातना मोल लेनी पड़ती है।
मातृन जीवन की पनधुति है। इस
फल स मौ मगत की दबी घोर कल्याण
का मूर्ति के रूप म मडित होना है।
इस महिमा की अनन्य अधिकांशिणी के
रूप मे कामायनी का चित्र प्रसादजा
ने इस स्थल पर मूर्तित किया है।
काम स शापित मनु का दवा से मिलन
होता है और अदा स्वप्न मे अपने
सुख दुख के साथो मनु की वर्तमान
स्थिति को देखती है। नारी का वह
रूप बड़ा ही प्रतिहिंसामय होता है
जब वह अपने ऐसे पति का जिसके

पगला में घाता गर्वम गमति कर
पुत्री रज्जा है जिनी धम्य नारी के
नाम म देगी है। यद्यपि तब तक
मनुष्युमाग म अदा मनु का बाप कर
रहा थी ता भी भीति गुणवत्र म
मान घोर विशति व माधम मे
मारम्यन प्रम की उत्पति व रिने
मनर्शन बाधक का धागव पीर दवा
म धारी रिगता धनति घोर बागना
का ध्यात बुझने के रिने स्वप्न म
दवा का अपनी बुझाया म अजकत
दगा। पन अदा न दगा वि ह
व नवन गुण मण है, धरती कीन रहा
है। प्रलय का स्थिति उगमिन है
घोर मनु भवात्राग है। स्वप्न म भी
पति पर वह धारित दग मनु क
अपराध का भूत अदा अपने पुन व
लाप वहाँ उपस्थित मिना है जहाँ
मनु बायल प्रविष्टा है। अदा को दग
अने कुहरप पर मनु में दाना ग्ताति
हई वि मनु अपने पुन घोर अदा का
नाना छोडकर वही वग गए क्वचित्
मंगलमूर्ति अदा के माप उहोने जो
अपराध किया था उस कारण वह
उस कीन सा मुँह स्थिताने। जिन
ली का बायल पति उन घोर अपने
पुन का छोडकर सोन म चला जाय
अनकी सहज कल्पना नहीं की जा
सकती। ऐसे समय हृदय पर इतना
बड़ा आघात पड़ता है कि भावुवता
की देवी नारी सब कुछ भूल पागल
हो उठती है। किंतु अदा ने यहाँ भी
अपना शक्तिशाली छोडस्वी घोर पार
कृत्यपारायण, उगत स्वरूप
उपस्थित किया है। जहाँ वह एक
घोर मनुष्युमार की सात्वना देती
है, वही दवा म नारीत्व की माया
घोर ममता का स्मरण कराते हुए
अपने पति के अपराधो के प्रति क्षमा
याचना करती है। जनपदकल्याणी

बही जातेवाली तर्कमया इडा को जिसने, उसके पति को पराजित किया था, उसे भी वह धपने पुत्र मनुज कुमार को विश्व के सत्ताप दूर करने के लिये दान कर देती है। तन्मयी इडा का श्रद्धामय मनुजकुमार का योग समार क मतापहरण का निमित्त बने। श्रद्धा की यह मंगलकामना निश्चय ही उसके मंगलमयी होने का अनन्य प्रमाण है। ससार की इस मंगल कामना के द्वारा ही वह धपने कृतव्य का इतिश्री नहीं समझ लेती है, अपितु मनु का भा वह सरस्वती व किनार चलकर एक उपत्यका में साज निवासती है। मनु का ही नहीं, जो भी श्रद्धा का यह चरित्र दस्ता है उसे यह भान होता है कि सबमंगला श्रद्धा धनत महता तथा उदार है। मनु म मिलने व बाद वह सदा उनके संग रहने का व्रत लेती है। इस मिलन से मनु के लिये आनन्द का द्वार खुल गया और उनका जीवन उज्ज्वल हो उठा। सच्चा जीवनमगिनी के रूप में तथा सहधर्मिणी के रूप में श्रद्धा की यह स्थिति इतनी आकर्षक है कि हृदय श्रद्धा के प्रति नत हो उठता है। यही पर श्रद्धा का कतूब समाप्त नहीं हो जाता, अपितु वह समस्त भस्वड आनन्द शिथ तब जाने का मनु की इच्छा का पूर्ति में भी यागदान करती है। मनु का माहम उत्तर दे गया और वे धक गए। श्रद्धा ने उन्हें समस्त भूमि पर सावर इच्छा, वष और तान के तीन झोलानविदुषा का दशन कराया और गुरुरूप में जीवन के सत्य का साक्षात्कार कराया। इही तीन विदुषा तान, क्रिया और इच्छा ने योग से समस्त भस्वड आनन्द की उपलब्ध हाती है, इसका भी तान श्रद्धा ने उन्हें कराया। इस प्रकार श्रद्धा ने मनु को वह भस्वड आनन्द भी उपलब्ध कराया

जिसके लिये मनु लालायित थे। इतना ही नहीं, श्रद्धा के कारण इडा को भी आलोक मिला, क्योंकि ससार की पीड़ा हरने के लिये धमपथ पर चलने के लिये श्रद्धा ने उसे उत्प्रेरित किया।

इस प्रकार श्रद्धा पुरुष की शक्ति, स्नेह, माया, ममता और आनन्द की अहिसामयी, नाशक-याणविविधिनी, मानवता के बिनास के लिये शुभाकांक्षिणी, उत्कट उत्सवमयी, प्रत्युपम सबमंगला सती नारी के रूप में कामायनी में मूर्तित है। वह मुहाग एवं मंगल की प्रजल वर्षा करने वाली साकविधायिनी ऐसी कल्याणदा है जो सह प्रतिस्वमय विकास का आस्थामय द्वार खोलकर जहाँ लोक के लिये धन, धर्म एवं काम का मार्ग उपस्थित करती है वही व्यक्ति के लिये परम आनन्द आनन्द व लिय सामरस्य का अनीकित विधान भी करती है। वह युगमंगल की ऐसी विधायिका है जो चिरतन अपनी सतान व लिय सही एवं सहज माग प्रस्तुत करती है।

प्रसाद की कामायना के चरित्रा में सर्वाधिक प्रणालिशद चरित्र श्रद्धा का है जो रचना कौशल की दृष्टि से इतना अधिक पूरा जीवत एवं सुंदर है जितना पूर्ण प्रसाद का क्या हिंदी का कोई नारी चरित्र नहीं। शिवस्व के माप इस शक्ति में सादय का प्रदुष्ट योग प्रसाद के काम्य का चरम सत्य है।

इडा—श्रद्धाविहीन मनु सारस्वत प्रदेश के पाम सारस्वता का मधुर नाद सुन रहे है और यह मान चुके है कि उनका प्रदृष्ट फिर उसी रूप में धा चुका है जिसकी वाली छाया उनके देव जीवन पर थी और अब उनका भविष्य पुन अवकारमय है। अब नियति की प्रवृत्ति यातना चलनी जिससे बचने का कोई उपाय

निय नहीं है। इस विधाना, विधाना
मयी विधि में इस म मनु का
साक्षात्कार होता है। पर अज्ञा का
प्रथम ज्ञान जिन साक्षात्कारों में
पुनरिग या यह बात नहीं होती। इस
में मितन व समय मनु व धर्म म भाव
का प्रथम विनाशकामना पूरा न होने
व कारण अज्ञान धृष्टा धीर जिन
हिमाज य विधान था। इस विधान का
पादा से व इसने व्याकुल हो चुके थे
कि उनका कोई उपाय ही नहीं पाया
रहा था।

इस का जो रूप मनु व नामने उपस्थित
हुआ यह इस व अंतर पर प्रकाश
झलता है तथा उनका जीवित विज्ञ
उपस्थित करता है। उसकी धनके तक
जाल भी बिखरी हुई थी। उनका भाल
शिराज सहज उज्ज्वलतम विज्ञ
मुकुट था। उनका नेत्र अनुराग
धीर निरागमूक थे। मनुष्य व सज
मान धीर विज्ञान उसका वलम्बल पर
धर हुए थे। उनका एक हाथ म कम
बलम था दूसरा हाथ विचारों व
आकाश का मधुर रूप म समय सहारा
लिए हुए था। उनका चरणा म गति
की तात्त था तथा यह त्रिगुणात्मक था।

इस का यह शिलनर उपविष्टता जहाँ प्रसाद
व मौनिक रसात्मक काव्यकीशल
का आत्मान करता है वहीं उनकी
अंतरस्पर्शनी भावविशेष की शक्ति का
बोध भा करता है। जिन तत्वा से इस
व चरित्र का निर्माण प्रसादजा ने
किया है, वे सबके सब इसमें सूत्रवत् हैं।

प्रथम परिचय में ही इस मनु सवाद इसा ने
चरित्र पर तात्त्विक प्रकाश झलता
है। यह मुन कर कि विश्वपथिक कलश
सह रहा है वह दयाद्र नहीं होता अपितु
भोषचारिक स्वागत मान करता हुई
अपने लाभ का प्रस्ताव तत्काल रख

दी है। इसमें प्रकाश है कि इसा
मुख्यतः लयी प्रणिभा है जो आत्मान
प्रदान पर विश्वास रखता है। यह तत्
ता मनु नवन ता आठ व ववन
भाग कर आठ व ववन उनका एक म
पाता बद्धा है जो दन व ववन सना
भी चाहता है। बुद्धि का मया मन्व
म आत्मान प्रदान व आठ घन स्वाध
का अधिपत्य पूरा करो व निय
उत्पत्ति रर्ता है। मया हा इस
आत्मान प्रदान में वह कम से कम स्वाध
कर अधिप म अधिप सना चाहता है।
यहां स्थिति इसा का भा है।

यह दना नहीं, पटन सना हा चाहता है। स्वाध
विनाशना बुद्धिमान इसा का जीवन
कामायनी म एक ही रूप से आरन
होता है। इसका परवाह मनु भा प्रपना
प्रस्ताव रखता है। वह प्रस्ताव यह है
कि ह दवि। जीवन का सहज मान
क्या है? भव व भविष्य का द्वार
खोल कर मुझे बता दो। साथ ही मनु
निर्वाणन से मुक्ति व उपाय व लिय
भी जिनामु है। एनी स्थिति में इसा
का उत्तर होता है—

‘कोई भी हा वह क्या बात, पागल बन नर निर्भर न कर
अपनी दुबलता बल सहाल गतम्य मार्ग पर पर धर,
मत कर प्रसार निज परो चल, चलने का जिसका रह भोज
उनको कच कोई सके रोक।

यह उत्तर बौद्धिक दृष्टि से इतना प्रभावशाली
है कि मनु निरपाय होने पर भी आशा
का तथा सत्कार बसाते हैं। इस उत्तर
में कुछ तत्व की बातें भी हैं। पहली
बात तो है गतम्य मार्ग की। दूसरा
बात है निज परो का चल। तीसरा
बात सिद्धि की है। बुद्धिवादी तत्व
सदव लक्ष्यप्राप्ति के लिये निज साधनों
का इस प्रकार आश्रय करते हैं कि
यदि उसपर निरंतर व्यक्त बढता रहे
ता सिद्धि का उपलब्धि होने से कोई
रोक नहीं सकता।

कामायनी जीवन में यह भौतिक मिद्धि धाकपण
। ता उत्पन्न करती ही है साथ ही
निराशावादी वृत्ति का आशामयी चेतना
भी देती है। इस चेतना का प्रसार
इडा मनु का इस रूप में दिखाती है कि
तुम बुद्धिनिर्देश पर कर्म में लान हो
जाओ इस प्रवृत्ति में ममस्त ऐश्वर्य
भरा हुआ है। तुम इसका शाय कर।
सबका नियमन करो। सबपर शासन
करते हुए अपनी क्षमता बनाओ। तुम
इस बात में निलगायक हो कि समता
और विषमता कहा है? तुम जहाभूत
चाओ का विनाश व संहार चेतन कर
अपने उपभोग में लाओ। ममस्त लोक
में मुम्हारा यश छाकर रहेगा।

यश की कामना बुद्धि की महज लिप्ता है।
इतने ही क्यापयन में इडा अपने चरित्र
के मूल तत्वों का उद्घाटित कर देती
है और मनु का इस प्रकार उत्प्रेरित
करती है कि वह जीवनपथ पर बुद्धि
व महार वृत्ति के लिये तत्पर हो जात
है। वह बुद्धिवाद का अपनात है और
एमा अनुभव करते हैं कि इडा का रूप
में उन्होंने स्वयं बुद्धि का हा पा लिया
हा। इडा जीवनकर्मों की पुकार लगा
विकल्प की मकल्प बनाकर सुखसाधन
का द्वार मनु के लिये खोलती है।
विज्ञानवादा तथा भौतिक सुमर्पनता
मुखमार्ग के लिये सदैव स प्रवृत्ति के
अक्षय भंडार पर आविर्भाव जमा उसका
दाहन करता आई है।

बुद्धिवादा सत्ता का इडा का उपदेश द्वारा
मनु के ऊपर एमा प्रभाव पड़ता है कि
व उसे अगोचर तो करने हो हैं उनक
चरित्र में बुद्धिवादा भौतिक जीवन
दर्शन में स्पष्ट झगड़ उठता है। इडा
के ऐसे चरित्र का आदि परिचय में ही
इस प्रकार समझित करना अत्यंत

कोशल का काम है, जिस प्रसादजी
में सफनतापूर्वक किया है।

इडा बुद्धिवादी सत्ता पर विश्वास करनेवाली
बुद्धि की अभिप्रायी दबी के रूप में
कामायनी में मस्थित है। बुद्धि चंचल
होना है तथा स्वाय के कारण सतत
परिवर्तनशील भी। विवेक इस चान्दल्य
में स्थायिरक लाने का यत्न करता है।
बुद्धि का दबी इडा का रूप भी
कामायनी में विवेक के कारण तथा
परिस्थितिया के परिणामस्वरूप परि-
वर्तित हुआ है। किंतु उस परिवर्तन
के मूल में अनुभव के आधार पर
सुदृढतर परिणामप्राप्ति की अभिलाषा
सदैव बाधती है।

इडा का दूसरा रूप कामायनी में सारस्वत
नगर की रानी के रूप में प्रकट हुआ
है। वहाँ वह मनु का निमित्त बनाकर
समाज के अम्युदय के लिये यत्नशील
है। वह अम्युदय विप्रेत भौतिक तथा
नियमाश्रित है। समाज का बग में बाँट
कर प्रवृत्ति से मथप कराती हुई मनु
का प्रजापति के रूप में वह प्रनिश्चित
करती है तथा लोकमवृद्धि के लिये
सामाजिक नियमन एवं निर्माण
कराती है।

इस रूप में वह समाज की सचालिका शक्ति
के रूप में प्रकट होती है। विवेक-
निमित्त नियमों की अभिप्रायी दबी के
रूप में उस परीक्षा देती पड़ती है।
उस अन्विषरीक्षा में उसका सधप ऐसे
यक्ति से होता है जिस उसने दुलार
दिया है तथा प्रजापति के रूप में
प्रतिष्ठित किया है। इस परीक्षा में
विवेकमयी किंतु हृदयहान इडा खरी
उतरती है।

शासक और नियामक द्वारा निमित्त नियमों

का रस्य गता उग तस्य अश्विन्य
प्रतीति होये समया है जब उगरी गुण
भाग तस्य विनाश का अभिशापाया
पर उगरे दारा विमिा विमम संतुल
वन जात है। जन्त गति के अर्
घोर अभिचार की विपत्ता ग य
मरिमिा नियमा का भी तादा ग
रिभूतन करने का य र करता है।
तमा स्थिति में विवकमया बुद्धि अपना
शुभावासा रूप प्रकट करती है। दृष्टा
न भा तेम अभयम आने पर अपना
शक्तिशाली रूप प्रकट बिचा है और
उगका यह रूप संभार एवं विवक
पूर्ण है।

घोर कह रही वितु नियामक नियम न मानें,
ता सब कुछ ना नष्ट हुआ यह निश्चय जानें।'

जय मनु इडा को भागाधिरूत करने का
प्रयत्न करने हैं तो अवाटम्य शुनके
तकों में वह उह द्य गलित पथ मे
विचलित करने का प्रयत्न करती है।
यही इडा का रूप तभी शक्तिशाली
नारी के रूप मे प्रकट हुआ है जो मत्व
का रक्षा के लिये आत्मबल द्वारा
पतन व पथ पर जानेवान जन का
सुभाग पर लाने का विवेकपूरा गभार
आस्थान है। व्यक्ति क पागलपन
घोर अभिलाषा का पूति की माहमया
विभ्रमता के कारण यह प्रयत्न नष्ट
हाने पर भा इडा हार नहीं मानती
अपितु बार बार गभार तकों द्वारा
मनु की सत्पथ पर लाने का सद्पल
करता ह। प्रयत्न व निष्फल होने पर
भा वह क्रोध से पागल नहीं होती
अपितु समझाने बुझाने का बौद्धिक
आयाम करता रहती है।

यहाँ इडा का रूप परम शुभावाक्षिणी के रूप
मे प्रकट हुआ जो अपना सामाजिक
सृष्टि को सत्तामय के दावानल मे

गत हो मे बचाने का अयन प्रयत्न
करती हुई स्थिति है। यही पर यह
बाभा प्रकट होती है कि दृष्टा में
जनना का अमीम आस्था है। मनु न
बचावकर करने पर जनता उनपर टूट
पड़ती है। फिर भी दृष्टा संघर्ष बचाना
चाहती है। दृष्टा का यह रूप बड़ा
वीर्यवताता एवं गरिमामय है। दृष्टा
प्रकार दृष्टा का रूप बुद्धिवादी ह।
दृष्टा भी कामायनी में गृहकार का न
हार विवकमयी पानिना का है।

भौतिक सुगमबुद्धि क विरोध तस्य मुड का
अयन स्थिति का दृष्टा व ऊपर
संभार प्रभाव पड़ता है। त्योंग दृष्टा
में अज्ञा घोर अज्ञान मानव व प्रति
गहापुत्रिनी दीप्त पड़ती है। अज्ञा घोर
मनु व संतुल वह अपने त्योंग स्वरूप
के कारण जिम रूप में अपना हार
स्वाचार करती है वह रूप उगव चरित्र
का घोर अघि निसार दना है।

पूरा रूप न यदि इडा का चरित्र दला जाय
तो वह बुद्धिवादिता होत दृष्टा भी
लाहशुभाकाक्षिणी नवनिर्माणमयी एक
समय समय पर अनुभव क परिणामों
का अपन चरित्र में समोजनकर जीवन
का विकासमय बनाने न लिय विवक
पूर्वक प्रयत्नशील दासती है। यही तक
कि उसके चरित्र पर अज्ञा व गुण
धम का भी प्रभाव अज्ञा का सफलता
दखकर आ जाता है। अज्ञा भी उसकी
सफलता के परिणामस्वरूप मानवता
के विकास व लिये मनुजकुमार को
उसकी छाया मे सोप दता है।

इडा व सभी चारित्रिक रूप अपन मे शक्ति
शाली तथा सुसंगठित है।

मानवकुमार—कामायनी का एक चरित्र मनु एव
अज्ञा का पुत्र मानवकुमार भी है।
भावा मानवता के सम्मुख घोर विकास

का वह प्रतीक है पर उसके चरित्र का खुलकर कामायनी में मूर्त बरने का अवकाश नहीं था। वह केवल इन बात का प्रतीक है कि प्रसादजी के मनु और श्रद्धा का चरित्र अखंड आनंद के लिये लोक से पलायन करने वाला नहीं है, अपितु वह मानवता का इडा श्रद्धा समन्वित विकास के प्रवर्द्धन की कामना का प्रतीक है। जहाँ भी जिस रूप में भी उसके चरित्र की छाया कामायनी में दीख पड़ती है वह उसके सहज बाल रूप का तथा मनु के उत्तराधिकारी के रूप का संकेत कर देती है। वास्तव में 'मानव' को लोक में प्रतिष्ठित कर कवि ने कानिदास और तुलसीदास की भारतीय वाक्यरचना का ही पालन नहीं किया है बल्कि साथ ही उस भारतीय जीवन उपपन्न का परंपरा का भी आदर्श स्थापित किया है जिसके द्वारा मानवता के विकास का प्रवर्द्धमान संदेश देना कवि का गुणगम माना गया है।

मनु, श्रद्धा एवं इडा के प्रथम में मनुजबुद्धि के चरित्र पर प्रकाश डाला जा चुका है। कामायनी में मनु, श्रद्धा एवं इडा के संपर्क में मानवबुद्धि का उपस्थिति जापक का भाति सबसे है इसलिये उसके निजी कृतत्व एवं चरित्र के विकास के लिये वहाँ अवकाश नहीं।

आकुलि, विलास—ये दो चरित्र एस स्वाभाविक स्वभाव के हैं जो स्वभाव के लिये माननीय गुणों का हननकर सन्नो में भी अमानवीय गुणों की वृद्धि कर अपना स्वार्थ सीधा करते हैं। हिंसा, विलास एवं स्वार्थ इनके चरित्र के मूल में हैं। इनका संसर्ग मनु जैसे व्यक्ति को भी भ्रष्ट कर देता है। इनके चरित्र का आकलन भी सांकेतिक है किंतु संकेत

अपने में पूर्ण है जो इनकी चरित्रिक रेखाओं को उभार कर रख देने हैं।

किराताकुलि की चर्चा जर्मनीय ब्राह्मण (३, १६७), पंचविंश ब्राह्मण (१३ १२, ५) ऋग्वेद (१०, ५७, १, ६०, ७) गृह्यसूत्र, राजेन्द्रलाल मिश्र (७, ६१, ६६) आदि ग्रंथों में है। इनकी कथा यह है कि रथ प्रायः कुल के इश्वार राजा का गोपायन नामक दा पुराहिता से संपर्क हुआ। किरात तथा आकुलि नामक दो धर्मुरा ने इश्वार राजा का गोपायन पुरोहिता की छोड़ दान के लिये सम आया और गोपायन मुचु का वध कराया। परंतु उनके अथ अधुना ने एक मृत के जापस उन्हें पुन जावित कर लिया। इनके सबसे में आमुल में प्रसादना ने स्वयं उदित किया है कि धनितताकुली—इति हामुर ब्रह्मा बान्तु। तौ हाचतु श्रद्धा दवा वै मनु आबनु वेदावति। तौ हागत्याचतु मना। वाजयावस्वेति।

श्रद्धापालिन पशुमा का दत्तकर अपनी वृत्ति के लिये मनु के पुरोहित बन इहोने पशुबलि कराई। हिंसा का रक्त इनके प्रभाववश मनु के मुख में एसा लगा कि उनका नाश के बगार पर ले जाकर ही सका। इहोने अपने स्वाध्याय के लिये मनु में ऐसी कुप्रवृत्तियाँ जगाई कि वे हिंसा की विनासलीला में डूब गए। एस स्वाध्यायक अपनी स्वाध्याय लिप्ता की वृत्ति में ही अपने जीवन का सबस्व समझते हैं। ऐसे जन केवल स्वार्थ के हस्ते हैं और किसी के नहीं। जब सारस्वत प्रदेश में मनु के विरुद्ध विद्रोह हुआ तो वे स्वार्थी उसका नेतृत्व करते दीपते हैं। ऐसे लोग का मत भी एसा ही होता है और

इसी मयम म मनु ने उनका बंध कर दिया ।

एस स्वाध्यायक तत्व प्रायः समाज में होत है जो समाज के सुदूर तत्वों को विचार प्रस्त कर अपना स्वाध्यायन करते हैं । व स्वाध्यायता के प्रतीक है । काम और इच्छा सग ये इनका रूप प्रसादजा न चिन्तित किया है ।

इन चरित्रों के अतिरिक्त कामायनी में नटराज, नटेश भूतनाथ, रुद्र, वृन्धनी काम तथा आशा, रति राजा वासना की आर्चिका है । य पात्र या तो आनन्द-माधना में मग्न है या इनके द्वारा भावों का भाववीकरण किया गया है । कामायनी नटराज, नटेश, भूतनाथ रुद्र एवं शिव उनके दशन में मग्न है आशा, रति राजा, वासना का सबध भाषलाक है । वृन्धनी की चर्चा ऐतरेय ब्राह्मण में है पर यहाँ कामायनी के चरित्र में कोई विशेष महत्व नहीं ।

कामायनी में अत्यंत अल्प चरित्र है और उन चरित्रों के उन अंशों का हा उद्घाटन किया गया है जो अधिक प्रभावशाली हैं । इन चरित्रों का प्रत्यक्षीकरण कवि पात्रों के कार्यों द्वारा करता है तथा कही कही सवत के द्वारा भी वह पात्रों के चरित्र पर समीत प्रकाश डालन कर स्वस्त प्रत्यक्ष करता है । शत्रु का चरित्रविशेष अत्यंत अनौपचारिक है । इतिहास के और पुराण के आतावरण में आधुनिकता चारित्रिक गठन का मरतमून उनकी इस चरित्र-कनवाली प्रणाली में स्पष्ट दिखाई पड़ता है । यह कवि का बहुत बड़ी विन्यास है । कामायनी का कथा का आधार और कामायनी दशन ।

कामायनी भाषाशिल्प—छायावाद न इतिवृत्तात्मक लक्ष्य वाला का काव्यात्मक भाषा दा ।

कामायनी इसका ज्वला प्रमाण है । वीमवी श्रमादा के प्रारंभ में राखी कोनी पक्ष का भाषा तो वन गर्न था पर वह मयमा इतिवृत्तात्मक था । ममीर एवं कामन भावों का रमा मय अभिव्यक्ति दी म वह प्रमम था । छायावाद के कविता न उस ध्वनि, लाक्ष्मिपत्नी चित्रमयता व्यञ्जता, एवं प्रतीत शक्तिया में महित किया । प्रमाद की कामायनी में छायावादी हिंसाकाय का भाषा का निवार अपनी समग्र प्रोजेक्टिवता के माथ प्रकट हुआ ।

कामायनी में प्रसाद का भाषाशक्ति का दशन मशक्त रूप में हुआ है । शब्दशक्ति के पाता प्रमादजी न शब्दचयन में सतकता करता है । उन्होंने शब्दचयन मूलतः सन्तुष्ट की शब्दमला किया है । भाषा की व्यञ्जता और समास शक्ति का ध्यान प्रत्यक्ष ममीर एवं श्रेष्ठ कवि रखता है और काव्यप्रसार तथा भाव की सहजाभिव्यक्ति में भाषा की अक्षिणता को बाधक होने देना सिद्ध कवि कभी स्वाकार नहीं करता । यद्यपि उन्होंने मशक्त में शब्द ग्रहण किए ता भी अप्रचलित शब्दों का प्रयोग मयामाध्य नहीं किया । साथ ही साथ मुहावरे और मोलचाल के सहज दशन शब्दों की भा उ हों उपेक्षा नहीं का है । भाषा भाषा को मूलित करने का माध्यम मात्र है । वह सिद्धि नहीं केवल साधन है । इसका ध्यान कामायनी में प्रमादजी न रखा है ।

कामायनी की भाषा लक्षणाप्रधान है । लाक्ष्मिपत्नी जहाँ भाषा में रमात्मकता उभर करता है वहीं मूलतम शब्दों द्वारा अधिकतम अर्थ में व्यक्त करता है । भाषा की इस समास शक्ति से

काव्य का प्रभा बढ़ जाती है और उसमें रसात्मकता की भी वृद्धि होती है ।

कामायनी में बड़े व्यापक पमान पर मुंदर, मार्मिक तथा आकर्षक लाक्षणिक प्रयोग हैं । कामायनी में लाक्षणिक प्रयोग प्रतीकात्मक तथा निर्जोष तत्त्वों के मानवीकरण द्वारा किष्ट गए हैं । इनके द्वारा प्रस्तुत की मूर्तित किया गया है । जहाँतक मानवीकरण का प्रश्न है प्रमादजी ने वस्तुषा तथा भावा का वगन सजीव प्राणों के रूप में किया है । इनके द्वारा कवि ने भावों को सज्जता के साथ ही साथ कलात्मक एवं जीवित रूप में चित्रित किया है । उन्होंने स्थान स्थान पर सत्त्विका की राजि सजा दी है । उदाहरण के रूप में कामायनी की निम्नांकित पंक्तियाँ दी जा रही हैं—

‘सध्या ग्रहण जलज केसर ले, अब तक मन धी बह्ताती,
मुरझा कर कंब गिरा तामरम, उसको खोज कहीं पाती,
क्षितिज भाल का कुटुन गिरता, मलिन कालिमा के कर स,
कोकिल की कान्की बुधा ही अब बलिया पर मडराती’ ।

× × ×

‘छूने में हिचक, देखने में
पलकें भाँखों पर झुकती हैं ।
कलरव परिहास भरी भूजें,
भधरा तक सहसा नकती हैं ।
सकत कर रहा रामानी,
झुपकाप बरजती खड़ी रही,
भाया बन भीहो की वाली,
मेवा-मी भ्रम में पड़ी रही ।
ग्राम कौन ? हृदय की परवशता,
गारी स्वतंत्रता छीन रही,
स्वच्छन्द गुमन जो खिने रह,
जीवन बन स हो बीन रही ।’

प्रथम उदाहरण में सध्या का मानवीकरण किया गया है और दूसरे में सज्जता की प्राणी रूप में मूर्तित किया गया है ।

इससे काव्य में रसमयता आ गई है और आर्जव भी ।

कामायनी में प्रताक के रूप में भी लाक्षणिक प्रयोग किए गए हैं । रूपक स अत्यंत मूर्च्छित होने हुए भी उसका गुण प्रतीक में मरझिन रहता है और इसमें प्रस्तुत के स्थान पर अप्रस्तुत का संकेत कर दिया जाता है । उदाहरणार्थ कामायनी से यह अंश प्रस्तुत है—

जीवन निराश के अवकार ।

तू घूम रहा अभिराधा के नय ज्वनन घूम मा बुनिवार ।
जिसमें धपूग लायमा, कमक चिनगारी सी उठती पुकार ।
यौवन मधुवन की कालिदी बर रहा जूनकर सब दिगत,
मन शिशु की लीला-नीकाए वम धौड लगाता है अगत ।
कुठंकिनि अपनक हय कं अजन । हसती दुष्कम मुंदर छनना,
धूपिल रखाओ स सजीव चंचल चिना का नय कनना ।
हम बिर प्रचाम श्यामल पय में छड़ी पिक प्रागा का पुकार,

बन गील प्रतिबनि नभ अपार ।

प्रमाद न अमृत भाववाचक मन्नाभा द्वारा लाक्षणिक प्रतीकविधान कामायनी में भूत व लिये किया है । उदाहरणार्थ—

ओ जीवन की मर मराचिका
कायरता कं अलन विपाद ।
अरे पुरातन अमल । अगतिमय
माह सुग्ध जर्जर सबसाद ।

प्रमाद के लाक्षणिक प्रयोगों में विशेषण विषय भी पर्याप्त मात्रा में मिलता है । अग्रजी माहित्य में इसका प्रयोग व्यापक रूप से होता है । इसमें ऐसा विशेषण प्रयुक्त किया जाता है जो सामान्य प्रयोग में सबद्ध विशेषण के साथ प्रयोग में नहीं लाया जाता है । यथा,

प्रिय की निठुर विजय हुई,
पर यह ता मेरी हार नहीं ।

× × ×

येही की निर्मम प्रगल्भता,
पशु का कातर बाण।

इस प्रकार साक्षिण प्रयोग प्रमाद्वी ने चार रूपा में कामायनी में बिष्ट है। निर्जीव सत्ता का मानवावस्था बनना, साक्षिण प्रयोगों के प्रतापारम्भ प्रयोग द्वारा, समुत्त भाववाचक मन्त्रों का मूल के नियंत्रित द्वारा और विपरीत विषयों द्वारा। इन साक्षिण प्रयोगों द्वारा प्रमाद्वी ने भावों की प्रवृत्ति का वस्तु गुरुता प्रदान नहीं की है, मन्त्रपूर्ण नय मणीत भी दिया है। इन प्रयोगों के कारण नाटकीय प्रभाव की निष्पत्ति भी हुई है और भाव का प्रवृत्ति प्रभावगता रूप में ही मणी है तथा काव्य का शिखीय समीचीनता भी मिली है।

साक्षिण प्रयोगों के साथ ही साथ परस्पर विरोधात्मक शब्दों का प्रयोग भी कामायनी में स्थान स्थान पर मिलता है। इन विरोधात्मक शब्दों में भाषा के यजनापूर्ण होने में सहायता मिलती है। यथा—

‘तिर नीचावर किमकी सत्ता
मन करते स्वीकार नहीं,
सदा मीन हो प्रवचन करते
जिसका, वह अस्तिव कहाँ ?

विराधा शब्दों के प्रयोगों की तुला पर भाव का सुपावन अपना सती रूप प्रकट करता है। इससे शब्द का दशा तथा भाषा का भाष लग जाता है। इस प्रकार भावों की तात्परता का गति और उनकी गहराता के तब का भाव होता है। इस रूप में भावनाचित्रण से उसका तब का सच्चा भाव महसूस के मानस की होता है। यथा,

मणिनीला के संयत्तमय
यह निराशापूर्ण प्रिय ?

मणिनीला के रहने हुए भावों में संयत्तमय प्रिय का शब्द नहीं है। फिर तब संयत्तमय का वहावन प्रिय है पर यही बात कुछ दूसरी है। मणी मणिनील वभावित्तों के वक्तव्य के लिए और संयत्तमय का ज्ञान के लिए है। विस्मयिता प्रयास बना है। और इतिहास भा उमरी वक्तव्य में मन्त्र का दान नहीं कर पाता। इस प्रकार परस्पर विरोधात्मक शब्दों के प्रयोग में और उनके वक्तव्य से भाव के महत्त्व में भाव का गति महत्त्व का वक्तव्य का वक्तव्य में मन्त्र का वक्तव्य है।

प्रमाद्वी का भाषा में प्रमाद्वी गुण है। भाव एवं प्रयोग का भाषा अनुमानित है। मन्त्र और वित्त की अभिव्यक्ति के लिए जहाँ कुछ वक्तव्य भाषा का प्रयोग कामायनीकार ने किया है वहाँ उनमें व्यवहार के वक्तव्यमय सहज शब्दों का प्रयोग भी वक्तव्यमय किया है। कामायनी का भाषा में मधुबारी प्रवाह है। यह प्रवाह सहज है इसलिए वित्त वक्तव्य भी है। कामायनी का भाषा में व्यवस्था का गुण भी है। व्यवस्था वक्तव्य भाषाचित्रों का स्वरलिपि है और राग का रस भी उसमें संसिक्त रहता है। भाव इसके कारण सस्वर ही अपना सत्ता प्रकट करते हैं। इतना ही नहीं, प्रमाद्वी का भाषा चित्रमय भी है। वह भावों का चित्र सदा करती है। इनका उदाहरण यहाँ दिया जा रहा है।

प्रमाद्वी भाषा का उदाहरण

यह नाच मनाहर इतिमों का
यह विश्व कर्म रासफल है

हैं परंपरा लग रही यहाँ,
ठहरा जिममे जितना बल है।
वे कितने ऐसे होते हैं,
जा कबल सावन बनते हैं,
धारभ और परिणामों के,
सबब मूक से बुनते हैं।

भापा का साधु प्रवाह यहाँ और प्राय
अधर भा कामायनी मे मिलगा।

अब जादानुराण का उदाहरण यहाँ प्रस्तुत
किया जा रहा है—

हाहाकार हुआ जदनमय
कठिन कुलिश हात पे चूर।
हृदय दिग्भ्रत बधिर भाषण रख
बार बार होना था क्रूर।
दिग्दाहो से धूम उठे, या
जलधर उठे क्षितिज तट पे।
सघन गगन मे भीम प्रकपन
भभा के चलते भटक।

शङ्खचित्र का उदाहरण

नील परिधान बीच सुकुमार,
खुल रहा मृदुन घणघुला अंग।
खिला हा ज्यो बिजली का फूल
मेघ बन बीच मुलावी रंग।
माह! वह मुख! पश्चिम के व्योम—
बीच जब घिरत हा घनश्याम,
अच्छा रवि मंडल उनको भेद
दिलाई दत्ता हो छविधाम।
या बि, नव हृद नील लघु शृंग,
फाट कर घटक गहरी हा कात,
एक लघु ज्वालाभुला अचत,
मायवी रजनी मे अत्रात।
घिर रह थे घुघराते बाल,
अंग अवलंबित मुख के पास,
नील मन शावक से सुकुमार,
मुष्ठा भरन का विधु के पाय।

ऐसे शङ्खचित्र स्थान स्थान पर कामायनी
मे सूचित हैं।

प्रतीकों के मय मे कामायनी मे प्रकृति शीर्षक
अध्याय म चचा का जा चुकी है।
छायावादा काव्यशिल्प की वाणी इन
प्रतीकों के माध्यम म निनादित हुई
है। उनका अपना मम है। कामायनी
में बहुत व्यापक परिधि मे उनका सफल
प्रयोग है। प्रतीक अल्प शब्दप्रयोग से
व्यापक अर्थनिष्पत्ति मे सहायक हात
हैं। कम म कम प्रयोग द्वारा अधिकतम
अर्थनिष्पत्ति कला और विज्ञान दोनों
तत्त्वा का दक्षता का जीवनशक्ति है।
कामायनी म यह कौशल है।

अलंकार—उपयुक्त अलंकरण शरीर की प्रभा का
और अधिक कमनीय बनाने म सहायक
सिद्ध होते हैं। अलंकार का अपना
शिल्प हाता है जो पात्र और वक्ता के
अनुसार अपनी उपादयता सिद्ध करता
है। अलंकरण सौंदर्य का साधन है,
यदि वह वांछित न हा। काव्य के
अंग का अलंकार चारता प्रदान करत
है किंतु उनका अनावश्यक अवनयन
प्रयोग कुशल का प्रदर्शन मान है।
सहज सौंदर्य से तुल्य अलंकरण का
योग जिस प्रकार सौंदर्य की कांति
म आवृद्धि करता है उसा प्रकार काव्य
शिल्प म भाषा की प्रभाववृद्धि के लिये
उचित अलंकरण का अपना है किंतु
उसका उपयोग भाषा की सौंदर्यवृद्धि
और अक्षरत्व के उद्घाटन के लिये
होना चाहिए न कि विलम्बप्रदर्शन
के लिये। प्रसादजा का कामायनी म
अलंकारों का विधान है, व सहज है
भावक अर्थ को उद्घाटित करने मे
सहायक होते हैं और भाषा का मणिमा
का उसी प्रकार आकषण और तज
प्रदान करत हैं जस काजल नयन और
अलवतक अघर का। उनके द्वारा प्रयुक्त
कुछ अलंकारों का उदाहरण यहाँ दिए
जा रहे हैं जो इस तथ्य के प्रमाण हैं।

अभेद रूपक—

भुज सना पटा गरिमाधो का
 जना न गले गनाय हृत्,
 जलनिधि का धनस व्यजन बना
 धरणा का, हा दा साथ हृत् ।
 —बाम, पृ० ७३ ।

यहाँ भुज सना' और धनस व्यजन' में अभेद
 रूपक स्पष्ट है ।

उपमा—ताच का दा वक्तियाँ

१ हिल्लान भरा हा श्रुतुपनि का
 गापूतो का मा ममना हा,
 जागरण प्रात मा हगता हा
 जिसम मध्याह्न नितरता हा ।
 —सजा पृ० १०१ ।

२ नीच असपर दोट रहे थ
 मुत्तर मुग्धनु माला पहने,
 कुजर कलम सहस्र हठनात
 चमकात खपना व गहने ।
 —रहस्य पृ० २१८ ।

रूपक से पुष्ट उपमा—

३ धूम रही है महाँ चतुर्दिक्
 चलचित्रो सा ससृति छाया ।
 —रहस्य पृ० २६४ ।

४ चेतन समुद्र में जीवन
 लहरी सा बिछर पड़ा है ।
 —आनन्द २८८ ।

यहाँ रूपक से (चेतन समुद्र) पुष्ट पूर्णोपमा है ।
 जीवन प्रस्तुत लहर अप्रस्तुत बिछर
 पटना साधारण धर्म और सा'
 वाचक है ।

पर्यायोक्त प्रथम—

१ खुल मखण भुज मूलो से
 वह आमखण या मिलता ।
 खुल भुजमूल अथवा आकषक थ इस बात
 का प्रकारांतर से कहा गया है ।

२ पखा पी रहा था शाना का ।
 —गिता, १६ ।

पखन प्रकार व अनिरित्त अनुचित शानि था,
 दगा मामास बात का पखन शानों
 का था रहा था'—दग प्रकार कहा
 गया है ।

विभाषना—

१ हृत् का रात्रम्य अपहन कर अथम अगगाथ,
 दम्पु मुक्तग बाहन है लुग मगा निर्वाध ।
 —वाग्गता पृ० ८५ ।

पथम विभाषना—यहाँ जगदी हानि की जा रही
 है, उगी म मुक्त पाना रूप विपरात
 कार्य लिया जाता है ।

२ मणिगया के रथधारमय भर निराशापूर्ण भविष्य
 दव दम व महामय म मय कुछ ही बन गया हविष्य ।
 —चिता, ७ ।

यहाँ मणिगय (जा प्रकाश विवाह करत हैं)
 अथवार उत्पन्न करनेवाले कह गए
 हैं । अतः यहाँ भी पथम विभाषना
 हुई । यह देव दम के महामय—
 अत रूपक से पुष्ट है ।

निदर्शना से पुष्ट रूपक—

१ इन चरणो में कर्म-कुसुम की प्रजलि
 वे दे सकत ।

—कम, पृ० १२३ ।

२ इसी विपिन में मानस का
 आशा का कुसुम खिलेगा ।
 —कम, ११३ ।

३ वह प्रभात का हानकला शशि,
 किरा कहीं चाँदना रहा,
 वह सध्या थी, रवि शशि तारा
 ये सब कोई नहीं जहाँ ।

इसमें निदर्शना से पुष्ट रूपक है ।

उपमा से पुष्ट रूपक—

१ मैं रति की प्रतिवृत्ति लज्जा है
 मैं शालीनता सिखाती हूँ,

मनवाती मुदरता घग मे
नूपुर भी लिपट मनाती हैं ।
—सज्जा, पृ० १०३ ।

नयनों की नीलम का घाटी
जिस रस घन से छा जाती हा ।
—सज्जा, १०३ ।

यहाँ तमगोलक को नीलम की घाटी और
मुदरता का मय कहा गया है ।
यह विराग विभूति का पवन स हा व्यस्त,
बिखरती थी और खुलने ज्वलन बण जो अस्त ।

यहा विराग का विभूति, ईर्ष्या का पवन
और उद्दाम मुस क्षाम को अग्निबण
कहा गया है । इस प्रकार परपरित
रूपक की स्थिति है ।

उत्प्रेक्षा, गम्योत्प्रेक्षा—

१ पुलकित पदव की माला-सी
पहना देता हा अंतर म,
भ्रुव जाती है मन का डाली
अपनी पतनमरता के डर में ।
—नज्जा, ६६ ।

सज्जा शरारियों न हान क कारण माना
नही पहना सकती, इसलिए यहा 'सी'
को उपमा का वाचक नहीं समझना
चाहिए । यह उत्प्रेक्षा का वाचक
संस्कृत क 'दव' पद की भांति है ।

२ भिक्वर हिम सजा पर पदवर
हिमवर बितने नए बनाता ।
—रहस्य, पृ० २५७ ।

वस्तुप्रेक्षा—

शांतसे भरनो की धाराएँ,
बिखराती जीवन अनुभूति ।
उम अमाम नील अक्षल मे
दल विभा की मृदु मुगकथान,
माना हम्रा हिमालय का है
फूट चला करती वन गान ।
—भाषा, २६ ।

भरनो की कल कल करती शीतल धाराएँ
देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो
किमी की मुस्मान देखकर हिमालय
की हमी ही कलमान करती फूट पड़ी
हो । एक वस्तु को देखकर दूसरी की
समावना की गई है ।

मध्या घनमाला की मुदर ओढ़े रग विरगी छीट,
गगन चुबिनी शल-अश्रिया पहने हुए तुपार किराट ।
विश्व मौन, गौरव, महत्व की प्रतिनिधियों सी भरी विभा,
इस अनंत प्राण में मानो जोड़ रही हैं मौन सभा ।
—भाषा, पृ० ३० ।

सध्या और शल अश्रिया मज धज कर इस
प्रवार शोभा दे रही है माना मौन,
गौरव और महत्व की प्रतिनिधि हो
और वे अनंत क प्राण में मौन सभा
का सायाजन कर रही हा ।

दृष्टात—

शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध का
पारदर्शनी सुषड पुतलियाँ,
चारा शार नृत्य करती ज्यो,
रूपवती रंगीन तितलिया ।

उपमा—

नीचे जलधर दीड रह घ,
मुदर सुर धनु माला पहने,
कुजर कलम सहश इठलात
अमकाल चपला के गहने ।

उत्प्रेक्षा—

तपन धूस मडल मे कमी
नाच रही यह ज्वाला ।
तिमिर ज्यो पहने हैं मानो
अपने मणि की माला ।

पूर्णोपमा—

जाग्रत या सादय यदपि वह
सोनी थी मुकुमारी,
रूप चद्रिका में उज्ज्वल थी
आज निशा सो नारी ।

दृष्टात—

१ सुख, केवल मुख का वह सग्रह
करीभूत हुआ इतना,

धामाय म नव गुहार का
मधन मिलन होय जिनका ।
—विता ६ ।

यही उपमेय और उगमान बान्वा म विव
प्रतिबिम्ब मात्र है ।

२ नील परिधान बाज मुकुमार
गुन रहा मृदुन धामगुना भग,
तिना हो ज्यो शिनी का पून
मेघ बन बाज गुनावा रग ।
—अड्डा पृ० ४६ ।

यहाँ भी दृष्टांत है, क्याय उपमेय और उगमान
बान्वा म विव प्रतिबिम्ब भाव स्पष्ट है ।

ललित—

दुख की पिछनी रजनी बीच
विक्रमता मुख का नवल प्रभात
एक परदा यह भीना नील
छिपाए हैं जिसम मुख गात ।
—अड्डा पृ० ३३ ।

यही वरय या प्रस्तुत में वरय वृत्तान्त के प्रति
विव का ही वर्णन है । भय यह है कि
भ्राज निराशा और दुख की स्थिति है
उमका भक्त शीघ्र हा होगा ।

उल्लास—

हे दवि । तुम्हारा स्नेह प्रवल
वन दिग्ग्रेय उदयम अविरल
आकण्ठ घन मा वितरे जल
निर्वासित हा मताप सकल
कह इडा प्रणत से वरण धूल
पकड़ा कुमार कर मुकुल फूल ।

यही कामायनी का पवित्रता, हादिक स्निग्धता
और सच्चरित्र आदि आदर्श गुणों का
पूरा पूरा प्रभाव इडा पर पड़ता
जिज्ञासा गया है ?

विशेष—

१ निराधार है किंतु ठहरना
उन दोनों को आज यही है ।
—रहस्य पृ० २६० ।
२ जिज्ञा विवर्षित फलप्रमाण है
यह भक्त सा कुछ ऊपर है,

धनुमज बरग हा, बाजो नवा
पगलत म गचमुच भूधर है ।
यही व्यास व्यास का वर्णन बिना व्यास का
है या शिवाय धर्मकार का गुणार्थानि
गरी है ।

विशेषोक्ति—

व्यास है मैं अब भी व्यास
गुरु भोष स मैं न हूँ ।
समुद्र म प्रलय का बाट भाई उम समुद्र बाट
म भी काम की व्यास नहीं बुझी ।
गुप्त कारण के हाथ हुए भा कार्य
नहीं हुआ । अतः व्यासोक्ति का मुँह
निश्चयन यही हुआ है ।

धामायता काव्य म मुहावरों का प्रयोग अत्यन्त
सीमित रूप म हुआ है । अतः और
दुरस्त भाषा के लिए मुहावरों के प्रतिवार्थ
माने जाय है पर धामायनी काव्य के
प्रतीकविधान ने उगने इत गौरव का
महिमा कम कर दी । प्रताप मुहावरों
से कम मशकत प्रपन्न समासशक्त और
नवान्तास के कारण नहीं । वही कही
तो व बहुत शक्तिशाली प्रमाणित हुए
हैं भले हा मुहावरों अधिक बाधायक
हा । प्रताप म मुहावरों की अपेक्षा
सावधानी अधिक हाता है पर मुहावरों
अनवरत हाते हैं भले ही रुढ़ हो ।
प्रसादजी का कामायनी मे भा कुछ
मुहावरों का प्रयोग हुआ है । वे मुहावरों
ऐसे हैं जो भाषा मे हिलमिल गए हैं ।
इसलिए प्रायः उनका चाहे अनचाहे
प्रयोग होता रहता है । प्रसादजी ने
मुहावरों के प्रयोग मे कोई विनियम
कीजल नहीं दिखाया है । व सहज हा
उपस्थित हो गए है यथा मर कर
जीतना, अपनी अपनी पड़ना, कात
खोल कर, कुट्टी करना, छुट्टी होना, सब
बात बनना, सीस उखटना, अघोर
मचना, आँस से टाँपा पड़ना आदि ।

कामायनी का संपूर्ण भाषा एकरस नहीं है,

कही कही उगम मोट तोड़ भी है।
कहीं कही उगम व्याकरण का दोष भी
है। कवि का निरकुशता की मामा का
उल्लेख भी कवि ने जान बूझ कर
नहीं, मनजाने ही इस चैन में कर दिया
है। कामायनी में व्याकरणबन्धी दोष
कई प्रकार में हैं। कही लिंगदोष हैं
तो कही विभक्तिविचार। शब्दों,
मुहावरों की प्रकृति भी कामायनी में
मिलेगी। तुक का चयन सबत्र इमक
मूल में नहीं है।

१ माल बद कर लिया लाम स

[भी] —लिंगदाप।

२ धाये हम कज्रड नगर प्रात

[मे] —विभक्तिविचार।

३ वितरण का भरद (विभक्तिविचार)।

४ एक सजीव तपस्या जम

पतझड में कर बास रहा (लिंगदाप)।

[रही]

स्थानीय एवं देशज प्रयोग भा कामायनी में
मिलने हैं। कुछ शब्दों का मोह भी
प्रसादजी को है, जैसे मधुप, मकरद,
व्यस्त आदि। कही कही अस्पष्ट प्रयोगों
के दशान भी कामायनी में होते हैं।
कही कही छद्मविचार के कारण भाषा
में शक्ति भी आ गया है।

इत समस्त स्फुट दोषों के रहत हुए भी उनकी
भाषा लक्ष्मिकता, व्यञ्जकता, सुंदर
प्रतीकविधान तथा उपचारवक्रता के
कारण अत्यंत गरिमाशाली है।

छडी बोली में जहाँतक भाषा और शली का
प्रश्न है छायावादी युग खड़ा बोला
की वक्तव्यता दूर करने के लिये तथा
उसको काव्य का सिद्ध भाषा बनाने
के लिये ऐतिहासिक महत्व प्राप्त कर
हुना है। कामायनी छायावादी युग

की ही नहीं, छडी बोली की चूड़त
रचना है। श्रीमैथिलीशरण गुप्त और
प० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
आदि महाकवियों के काव्य ही भाषा
अत्यंत दासपूर्ण है। गुप्तजी की भाषा
तो प्रमादगुणरहित भी कही जा सकती
है। छायावाद के जिन कवियों की
रचनाओं से काव्यभाषा विषयक विशेष
शक्ति हिंदी को प्राप्त हुई उनमें
निरालाजी की भाषा अपना पीरपेयता,
पतजी का भाषा कामल माधुप और
महादवी की भाषा एकरस मिठाई के
कारण गुणसंपन्न मानी गई। किंतु
प्रमाद की भाषा में इन सभी गुणों का
समुचित समन्वय होने का कारण भाषा
तथा शलाघत एवं विशेष सौंदर्य एवं
भोज उपस्थित होता है। इसका यह
घय नहीं कि कामायनी के सभी स्थल
ऐसे ही हैं जिनमें प्रसाद गुण ही है,
जिनमें सरसता ही सरसता है, जिनमें
सबत्र माधुप और भोज ही है। किंतु
ध्वनिबाध स्थल आवश्यकतानुसार
भाषा और शली के गुणों के समुचित
योग के कारण विशेष शक्तिमय बन
गए हैं। यह शक्तिमयता अपना निजी
महत्व रखती है।

छंदरचना—छंद कविता के शरार का आगिक गठन
है। काव्य में छंदों के उचित चुनाव एवं
गठन से भाषा की द्युति मिलता है।
भावानुकूल छंद काव्य का आभात्म्यता
को सारस्व्य प्रदान करने में अत्यंत
सहायक हस्त हैं और भाषा का श्रुतित
करने में सफल भी।

प्रसादजी ने कामायनी में यथावश्यक आरह
प्रकार के छंदों का प्रयोग किया है।
छंदचयन और उनका प्रयोग माधारण
काव्य नहीं है। यह काव्य समय और
अभ्यास पर आश्रित है। प्रसादजी ने

कामगारों में प्राप्त हुई है। वे
प्रधान विभाग हैं जिससे प्रयोग
समाप्त हुआ है व जहाँ काम में
नए हुए हैं। कामगारों में प्रयोग की
भाषा, प्रयोग (प्रयोग) का नाम
प्रयोग का ही है। प्रयोग विभाग है।

धीरे धीरे—यह ११ माताओं का मातृत्व है ।
 हमने प्रथम तीन व प्रथम ११ माता
 १६ धीरे धीरे ११ माताओं का
 है । हम मातृत्व माताओं का ११ है ।
 हमने माताओं का धीरे धीरे ११
 ११ है । हम ११ का प्रयोग माताओं
 का माताओं का धीरे धीरे ११ है ।
 यद्यपि यह ११ धीरे धीरे ११
 है ११ धीरे धीरे ११ प्रथम १६
 ११ १६ ११ धीरे धीरे ११
 धीरे धीरे ११ माताओं का ११
 ११ धीरे धीरे ११ का ११ का ११
 ११ धीरे ११ धीरे—

पञ्चमूत्र का भरण विधान	१६	मात्रा
५)		
गवाया व गजव निपात	१२	
उत्ता त्वर घमर कतिमी	१६	
५)		
माज रही ज्यो नाया प्रातः	१५	

यह वार छः बिता मार्ग म है। उनी न मध्य
सादक छः भी वही वही विराज रहे
हैं। ये वार छः न माघ हिस्मिन
गण है धीर रजना करत ममय बवि
मात्रा गिनकर छः का विधान ता
करता नही गुनगुनाता चसता है।
गुजन मे उन्वारण लघु वा दीर्घ हो
जाता सामारण बाल है। बामायनी
में तादक वा भी प्रयोग व्यापन पमाने
पर हुआ है। पर जहाँ सर्ग म प्राय
अधिकांश पद वीर म हो, वहाँ बीच
बीच म तादक छः का उपस्थिति
वाच्य के प्रवाह की रोकती है।

১৭৭৭ সালে ১৭ নভেম্বর ১৭৭৭ সালে
 ১৭৭৭ সালে ১৭ নভেম্বর ১৭৭৭ সালে
 ১৭৭৭ সালে ১৭ নভেম্বর ১৭৭৭ সালে
 ১৭৭৭ সালে ১৭ নভেম্বর ১৭৭৭ সালে

११४१२२ ॥ ११४१२२ ॥ ११४१२२ ॥

कक्षा विद्यार्थी संख्या १०० १०० १००
 कक्षा विद्यार्थी संख्या १०० १०० १००

Տղան ևս Գրգռեց և Դժ

+ + +

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ १५ भाग्यो

ବୃତ୍ତାନ୍ତ ୩୧ ୧୫୫୨୩୩ ୧୫
 ୩୩ ୩୩ ୩୩ ୩୩ ୩୩ ୩୩

१।३
गा गा व वा ग ग टा । १७ ,
गा गी गाँ । विवादा दुः ८० ॥
विवा गय म ९ ।

सादर नाम लायी—आज्ञा स्वयं धीर निर्दिष्ट गर्मी
 म सादर का प्रमाण क्या है। यह ही—
 १६ १४ मात्राओं का प्राम मगजुनी
 (३३३) मात्रा है। इसी व चीनमें
 लायी है जिसमें धन म गुण मनु मंत्रभा
 वान्ति गिद्ध निपम १, १ है। जिन का व
 चीन म ११ गुण (३३) मात्रा है, उन्हे
 उत्तम ही कहा है। कामावना म इस
 ही का प्रमाण एव १ व्यापक रूप म
 किया है। यद्यपि इस ही म भा वार
 का हाउ हैं ता भा वार का हा मनि
 प्रमाणों ने इस भा दाओ पतिया
 का १६ १४ मात्रा पर क्रम त बिभा
 जन कर वार पतिया म उपस्थित
 किया है। यथा—

मैं हूँ यह वरदान सहस्र वष। १६ मावार्
 ५ ५ ५
 लगा पूजने जानो म । १५ "

मैं भी, कहने लगा, मैं रहूँ १६ "

५ ५ ५

शाश्वत नम के याना म । १७ "

यह ताटक का उल्हास है किंतु लावनी का
प्रयोग इस छंद में अत्यंत बड़ व्यापक
माने पर प्रमादजी ने किया है ।
माय ही स्वप्न सग में बार बारणा
कर ही छविधान भी बनि न किया
है । यथा—

१६ मात्राएँ

१७ मात्राएँ

।।५

इहा डालती थी वह भामव जिमकी बुझनी प्यास नहीं,

।।५

तृपित कठ की, पी-पी कर भी, जिमम है विश्राम नहीं,

मह वशवानर का ज्वाला मी, मचवेदिता पर बठा,

।।५

सीमनस्य बिभराता सीतल, जडता का कुछ भाम नहीं ।

इमम अद्ध विश्राम १६ और पूरा १६+१७

मात्रा पर है । चरण का अत भगव

से नहीं है इसलिये यह लावनी का

दृष्टात भी है ।

निर्वेद सर्ग में ताटक छंद के अतगत बार

पत्तिमो की भाठ पत्तिमा म तोड़कर

लावनी ताटक की रचना का गई है ।

यहाँ निर्वेद सग स इमका उदाहरण

प्रस्तुत किया जा रहा है —

उम दिन तो हम जान मवे य—१६ मात्राएँ } लावनी का

।।५

सुंदर किमकी हैं कहते ।—१७ मात्राएँ } प्रथम चरण

सब पहचान सके, निमके हिव—१६ ,

।।५

प्राणी यह दुल मुग्न सडन ।—१७ " } दूसरा चरण

जीवन कहता योवन स 'कुछ—१६ " }

५ ५

देखा तून मतवाले ।—१७ , } तीसरा चरण

योवन कहता 'संस लिये बल—१६ " }

।५५

कुछ अपना सबन पा ले ।—१७ " } चौथा चरण

कुछ अपना सबन पा ले ।—१७ "

भाषा, स्वप्न और निर्वेद सग म क्रमश ७१,

४४, १०३, उद ताटक एव लावनी

के है ।

शृंगार—अद्ध सग म शृंगार छंद का प्रयोग

किया गया है । यह मात्रा मात्रा मा

छंद है । इसके आदि म प्राय ३+२ और

अत म गुरु लघु = ३ मात्राएँ रहती हैं ।

प्रमादजी का प्रिय छंद है । इन छंद म

१६ मात्राएँ उपयुक्त मानाक्रम स

होती हैं । पूरा छंद म बार पद हान

है यथा—

।।।५

प्रकृति क यौवन का शृंगार

—१६ मात्राएँ

५ ।

करों रभी न बानी फून,

।५५

मिर्चों व जाकर अनि शाघ

५ ।

घाह उलुक् है उनकी धून । — "

प्रमादजी ने इस छंद का अत्यंत सिद्धस्त

उत्तम प्रयोग किया है और उत्तम

उनरी सफलता भी खडा बाली व

कवियों म अन प है । शृंगार के छंद

विधान म प्रमादजी ने आदि ३+२

के स्थान पर पांच मात्रा का सीप

प्रयोग किया है । अद्ध सर्ग म कुल

६३ छंद ह ।

पदपाठाङ्गुलक—यह भी मात्रा मात्रा का छंद

हना है जिमम प्रय क पद म चौकल

होने हैं । ये चौकल पांच ढग व

होने हैं—

५५ ॥५, ५॥, १॥॥ और ५॥

इह मात्रिक गण भी बहन ह । दशन सग

मे पादाङ्गुल तथा पदरि का मन है ।

सजा तथा काम सर्ग म भी पादाङ्गुलक

है । लजा तथा काम सग के छंदा की

संख्या ४७ ७ ६७ है ।

सार छंद—यह २८ मात्राओं का योगिक छन्द है जिसमें प्रत्येक चरण १६ और १२ के क्रम से बनता है। अतः म कण्ड रहता है। दो चरण का प्रयोग श्रुति-माधुर्य के लिये किया जाता है। किन्तु एक में यदि गुरु हो या दो लघु हो तब भी सार ही छंद बनता है। इस छन्द का प्रयोग 'कर्म' सग (१२८ छन्द) में प्रसादजा न किया है। यथा—

भरा बान म कथन काम का १६ मात्राएँ
मन म नव अभिलाषा १२ "
लग साधने भनु अतिरजित १६ "
उमड रही थी भाषा १२ "
ललव रही थी सलित लालसा १६ "
मोम पान की प्यासी, १२ "
जीवन के उस दीन विभव में १६ "
जस बनी उदासा। १२ "

मत्त सत्रैया—पदपादाकुलक की चर्चा पहले की जा चुका है। 'रहस्य' में ३२ मात्राएँ हैं। पदपादाकुलक के दो चरणों की एक चरण मानकर मत्त सत्रैया की रचना होता है। किन्तु छ चरण न रख इसमें दो चरणों की चार पंक्ति रखी गयी है।

निराधार है किन्तु ठहरना १६ मात्राएँ

५ ५

हम दोनों का आज यही है १६ "

नियति सब देखू न सुनू अब १६ ,

५ ५

इसका अर्थ उपाय नहीं है। १६ ,

इसमें अतः म दोनों गुरु हैं। लघु गुरु का उदाहरण इस प्रकार है—

भालिगन सी मधुर प्रेरणा १६ ,

१ ५

छू लेती फिर सिहरन बनती १६ ,

नव अलक्षणा की ओझा सा १६ "

१ ५

शुल जाती है फिर जा मुदती। १६ "

अत्यन्त अल्प मात्रा में ऐसे भी छन्द मिलत हैं जिनके अतः में दोनों लघु हैं। यथा—

बह दलों रागाग्र है जो
१।

ऊँचा ने बहुत मा मुदर
छायामय कमनीय वनेवर
१।

भावमयी प्रतिमा का मंदिर।

इस कुछ लोग प्रसादजा का नया छंद भी मानते हैं और ऐसी कल्पना करते हैं कि वाटक के अतः में एक गुरु जोड़कर कवि ने एक नया निजी छन्द बनाया है। जो कुछ भी हो, यह छंद अत्यन्त प्रभावशाली रूप में कवि ने 'रहस्य' सर्ग में प्रयुक्त किया है। 'रहस्य' में कुल ७७ छंद हैं।

आनंद छंद—आनंद सग में २८ मात्राओं का असूत्राला छंद प्रयोग में लाया गया है। यह आनंद छन्द ही लिखा गया है। इसमें १४ १४ मात्राओं पर विश्राम होता है और एक पद २८ मात्राओं का होता है। इसमें गतमयता रहती है। इसने अतः में प्रायः दो लघु रहते हैं। कहीं कहीं दो गुरुवाले या लघु गुरुवाले पद भी आते हैं, यथा—

बलता था घोर वीर १४ मात्राएँ

१।

बहु एक वादिया का दल "

सरिता के रम्य पुलिन में "

१।

गिरि पथ से ले निज सबल। "

दो गुरु का उदाहरण इस प्रकार है—

कसा क्या शात तपोवन "

५

विस्तृत क्यों नहीं बताती "

बालक ने कहा इडा से "

५५

यह बानी मुख गकुचाती । १४ मात्राएँ
इस रीत व घत ॥ सधु गुन व भी प्रयाग इस
सग म है । जस—

यह अपनन लोचन अपने १४ मात्राएँ

। ५

पादाग्र विनारन करती

पथ प्रदर्शिका भी चलना ”

। ५

धीरे धीरे ढग भरती ।

जहाँ भी दा गुन का विधान है वहाँ छन्द मे
आज और प्रवाह है अथवा शयि य
आ गया है । प्रसादजा का यह छन्द
भी अत्यंत मंजा हुआ है । 'मानस'
सग म ८० छन्द हैं ।

सयाई छन्द—प्रसादजी ने कामायनी व इडा
सग म गीता का प्रयोग किया है । ये
गीत टेकवाली पद्धति के हैं । इनमे
अनेक गीत अथवा नाम एव भावपूर्ण
तथा मधुर बन गये हैं । इन गीता
की अपनी एक शैली है । आदि और
अंत के टेका को मिला इन से का य
का एक पक्ति बन जाता है । ये ५
६ पक्तियों के हैं किंतु दोनों टका का
एक चरण मान लिया जाय तो आठ
पक्तियाँ बनती हैं जिसमे टेक का प्रथम
अर्द्धाली और प्रथम दो पक्तियाँ और
टेक का अंतिम अर्द्धाली और अंतिम
पक्ति मे एक तुक रहता है । यहा तुक
पद की तासरी पक्ति म भी रहता है
और चौथी पक्ति का तुक पाँचवी मे
और पाचवी का छठा मे रहता है ।
इन प्रकार प्रथम, द्वितीय, तृतीय और
अष्टम तथा नवम पक्ति म एक तुक
और चौथा पाचवी म पृथक् तथा
छठा सातवी म एक पृथक् तुक रहता
है । अर्द्धाली सालह मात्राया का तथा

अथ पद ३० मात्राया व हान है ।
इस छन्द का, जिसमे यह गान लिखा
गया है समान गवया या गवाई
छन्द भी कहते हैं । इस गान म प्रथम,
द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, अष्टम
और नवम चरणों व घत म गुरु सधु
का विधान है और छन्द और सानर्व मे
सधु गुन का । वहाँ कहीं छठ सानर्व मे
गुन-गुन का भी विधान है । समान
सवया म ५० पादाग्रुन व दा चरण
का याग म तथा टेकविधान ता इडा
की इस गीतपद्धति का निर्माण बहि
न किया है । यथा—

५ ।

वह प्रथम न रह जाए पुनीत ।

१६ मात्राएँ

५।

अपने स्वार्थों से आवृत हा मगल रहस्य सधुने समीत ३२ ”

५।

नारी सस्रति हो बिरह भरा, गाते ही बीत करण गीत ” ”

५।

आकाशाजलनिधि की सीमा हो क्षितिज निराशा सत्ता रक्त ”

५।

तुम राग विराग करा सबसे अपने को कर शतश विभक्त ”

५।

मस्तिक हृदय के हो विरह दोनो मे हो सद्भाव नहीं ”

५।

वह चलने का जब कह कही तब हृदय निकल चल जाय कहीं ”

५।

रोकर बीते सब वर्तमान क्षण सुदूर सपना हा अतात ”

५।

पेंगो मे भून हार जात । १६ मात्राएँ

इडा म कुल गीत ३१ है । कामायनी मे इस
प्रकार विविध छन्द की संख्या १०६१ है ।

इस प्रकार प्रसादजी ने कामायनी मे बारह
प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है ।
इन छंदों का प्रयोग उन्होंने अपनी

कृतिप्राप्ति में पहले भी किया था। इन छदा पर बराबर अभ्यास कर इनका उन्होंने मम समझा था और फस भावों व लिये वीन से छद अधिक उपयुक्त और सरस हृदि हमने अनुसंधान में उनका पूरा वाक्यजीवन ही लीन था।

इन तपस्या का मित्रि से कामायनी के छद विभूतिमय है। इन छदों पर कामायनी उनका अधिकार मा दीखता है किन्तु भावाभिव्यक्ति की सत सहज सानना के कारण कदा वही छदभंग का दोष भी कामायनी में है। उस स्थान शिथिल संलग्न है। किन्तु इस शब्द का कारण कवि की सामर्थ्यहीनता नहीं, काव्य का आत्मा—भाव के रक्षण की श्रुति है। निश्चय ही प्रसादजी ने कामायनी में छदा पर उनके समस्त द्वारा सकल शिष्य प्रयास किया है और भावाभिव्यक्ति में लिये उपयुक्त छदा या चयन भी। हमने उन्हें सफलता मिली है। उनका सफलता इस बात से ही परखी जा सकती है कि अंतर के सूक्ष्म से सूक्ष्म और कोमल से कोमल तथा भयंकर से भयंकर भावतत्वा की अभिव्यक्ति देने में वे छद सकल सिद्ध हुए हैं।

कामायनी में प्रकृति—आधावाद के प्रतिष्ठापक महाकवि प्रमाण प्रकृति में विश्वात्मा का मोर्दर्थ देखा था। प्रकृति सीला की विश्वसनशाल जीवनकला से उनका परिचय था। प्रकृति और अंतर की अद्वैतता की उह सहजानुभूति था। कामायनी में प्रकृति का याग निम्नांकित रूपा में लिया गया है—

१—प्रकृति शक्ति और उसका महिमावदना।

२—उद्दीपन के रूप में।

३—संवेदनशील महत्वा के रूप में।

४—वातावरण को प्रकाशित करनेवाली पृष्ठभूमि के रूप में।

५—प्रतीक रूप में।

प्रकृति का धर्म जीवन को गति देनेवाला है।

प्रकृति व प्रतिकूल आचरण से विध्वंस का सृष्टि होनी है क्योंकि प्रकृति परममृत्युमूला है। प्रकृति के नियम जीवन का प्रभावित करनेवाले हैं। इन कामायनी के आधार पर प्रसादजी ने कामायनी में प्रकृति की अवधारणा की है। कामायनी के चिन्ता मग में प्रकृति की महिमा का आशयान है। यह आशयान प्रकृति की शक्ति के संबंध में मनु की अनुभूति की अभिव्यक्ति देता है। देवसृष्टि के विध्वंस के पश्चात् प्रकृति से संबंध में उनके अवशेष मनु के निम्नलिखित प्रकृति संबंधी अनुभूत भाव महत्त्व रखते हैं—

प्रकृति रही दुर्जय, पराजित,
हम सब थे भूले मद में।
भावे थे हूँ तिरते बवल,
सब विनाशिता क मद में॥

×

×

×

शक्ति रहा, हूँ शक्ति, प्रकृति थी
पदतल में विनम्र विभ्रात,
कपटी धरणा उन चरणा से
हाकर प्रतिदिन ही आक्रांत।

प्रकृति के संबंध में चिन्ता मग में प्रकट किया गया यह चिन्तन अपना सूत्र महत्त्व रखता है। प्रकृति के साथ देवसृष्टि के आयाप तथा उसे पदाक्रांत करने का क्या परिणाम हो सकता है, भुक्तमागी मनु का स्वयं स्वीकार करना पड़ता है। प्रकृति की दुर्जय जीवनी शक्ति का उल्लेख भी प्रसादजी ने कामायनी में किया है तथा प्रकृति को जीवन शक्ति के रूप में भी प्रकट किया है। मनु ने भी यह स्वीकार

कर लिया है वि प्रवृत्ति जिसे देवो का शक्ति ने घटदलित कर रखा था, अजेय शक्ति है और जब भी इस दुर्जेय शक्ति को घबस्त करने का जहाँ जहाँ भी बुद्धिमूलक शोषण स्वाध के कारण हुआ है वहाँ वहाँ कवि ने प्रवृत्ति शक्ति के प्रति होनेवाले अवाय को उद्घाटित किया है। यथा—

प्रवृत्ति शक्ति तुमन यनों से छीनी ।
शोषण कर जीवनी बना दी जर्जर भीनी ।

इस प्रकार देखा जाय तो प्रवृत्ति शक्ति ने परम पुजारी के रूप में कामायनी का कवि प्रकट होता है। साथ ही उसने कामायनी में जिस शक्ति का परिचय दिया है वह शक्ति भी प्रवृत्ति के नियमों से संचालित है। कामायनी में प्रवृत्ति का यह रूप अपने में सहज किंतु शक्तिशाली ढंग से प्रकट हुआ है।

प्रवृत्ति ब्रह्म या आत्मा की अभिव्यक्ति है। ऋग्वेदिक ऋषिया ने जब प्रवृत्ति में शक्ति की लाला का दशन दिया। उसका चिन्तन एवं परीक्षण करने पर वे इस धारणा पर पहुँचे कि प्रवृत्ति की शक्ति एवं ही परमपुरुष की प्रभा का प्राप्ति रूप है। प्रवृत्तिमोक्ष पर विमुक्त हो आध्यात्मिकता नाश उठनेवाली औपनिषदी प्रतिभा में समस्त प्रवृत्ति सजीव और शक्तिरूपी है। उसके द्वारा मोक्षप्रियता और मोक्षानुराग का सन्तानुभूति उमम होता था। परमपुरुष का प्रवृत्ति में व्याप्त इस मात्रा के विद्या का ज्ञान कामायनी का प्रवृत्तिमूलक का आधार है।

कामायनी में प्रवृत्ति का दूसरा रूप उद्घाटन का है। जहाँ प्रमाद्वान प्रवृत्ति का भावार्थ का रूप में चित्रित किया है यहाँ पात्रों का मनोभाव में प्रवृत्ति का सादृश्य स्थापित कराया गया है।

मनोभावा से सादृश्य उपस्थित करवाने वाले चित्रों की कामायनी में बहुलता है। कामायनी के पूर्व भा प्रमाद्वान ने यह कार्य बड़ी कुशलता के साथ किया था। कामायनी से उसके एक अपरूप को रूप भी यहाँ उपस्थित करना अप्रामाणिक न होगा—

सृष्टि हमने सभी आँखों में खिला अनुराग,
राग रजित चक्रिका थी, उठा मुमन पराग ।
और हमता था प्रतियोग मनु का पकड़ कर हाथ,
चले दोनों, स्वप्न पथ में स्नेह सबल साथ ।
द्वंद्व निबुझ सहृदय सद सुषु में स्तब्ध,
सब मनाते एक उत्सव जागरण की रात ।

ये उदाहरण वास्तव में सत्य हैं, यहाँ प्रवृत्ति द्वारा उद्घाटन का कार्य कवि ने अत्यंत सफलतापूर्वक किया है। स्थान स्थान पर कामायनी में ऐसे मंदिर और सुंदर स्थल हैं।

कामायनी में प्रवृत्ति का प्रयोग सवेदनशील महेश्वरी के रूप में भी किया गया है। कवि ने प्रवृत्ति के द्वारा मनोभावों का सौंदर्य तथा परिस्थितियों का सवेत प्रवृत्ति द्वारा स्थान स्थान पर दिया है। साथ ही प्रवृत्ति के प्रतापी द्वारा, उनके उद्गारों द्वारा उद्घाटन भावा को तथा वातावरण को सरस और सजीव बनाया है। कवि ने प्रवृत्ति के सहयोग से सौंदर्य का तथा मनोभावों का ऐसा रूप खड़ा किया है जो अत्यंत दुर्लभ सा है। इस प्रवृत्ति चित्र में प्रवृत्ति की भावना उसका रूप और वातावरण निमाण में असीम शक्ति के रूप में सत्त्वमय सा प्रकट हुई है। सज्जा का यह भग्न इस तथ्य का प्रमाण है—

नयना का नीनम की घाटा

जिम रस बन स छा जाती हा ।

वह कौय वि जिमन घतर की,

शोचता ठहक पाता हा ।

हिल्लोल भरा हो ऋतुपति का,
गोधूली की सी ममता हो ।
जागरण प्रातःस हसता हो,
जिसमें मध्याह्न निखरता हो ।
हो चरित निवन भाई सहसा,
जो अपने प्राची के घर से ।
उम नवल चद्रिका के पिछने,
जो मानस की सहरा पर स ।
फूना की कामल पल्लवियाँ,
बिखरें जिनके भ्रमिनदन म ।

आदि आदि

यहाँ पर प्रकृति के उपादानों से लज्जा जैसे
सलज्ज भाव का जीवन स्वहय रखा
करने में कवि ने प्रकृति का उपयोग
अत्यधिक मावधानी से किया है और
लज्जा का रूपाकन तथा अतमूचित्र
बड़ी बाराक तुलिका से सजाव और
सजाक किया है। यदि प्रकृति तत्त्वा
के साहचर्य को हटाकर यह रूप
विधान किया जाता तो सरसता की
निष्पत्ति इतनी श्रुतिमत्ता व साध
मभव न हो सकती। इस तरह का
प्रयोग कामायनी में स्थान-स्थान पर
मिलेगा।

भाव अंतरवासी होता है। अंतर महश्च होना
है, उसका साक्षात्कार अनुभूतिसापेक्ष
है। ऐम अतस तत्त्वों की श्रुति करने
के लिय आवां के द्वारा पडनेवाले बाह्य
प्रभावों का दशन प्रकृति के गभीर
एजाग्र निरीक्षण द्वारा ही नभव है।
ऐसा अनुभूति की अभिव्यक्ति का सहज
आधार भी प्रकृति ही हो सकती है
क्योंकि महृदय हमका दशन सरलता
से कर सकत हैं। प्रसादजी ने इस सत्य
का अनुभव, चतय प्रकृति में जिनकी
भूमिमा प्रत्यक भाव के मूर्त रूप का
प्रतीक है, किया। इसलिये भाव तत्त्वों
को जीवित एवं भावस्वी रूप में उप
स्थित करने में वे सफल रहे।

कामायनी में वातावरण का आभास देने
— वासी तथा कथा के भावी सकल को
प्रदर्शित करनेवाला काव्य शक्ति के
रूप में भी प्रकृति का चतय रूप में
प्रयोग हुआ है। यथा कामायनी
का यह अंश—

उषा सुनहल तार बरमाती,
जय लग्नी सी उदित हुई
उपर पराजित काल रात्रि भी,
जल में अतनिहिन हुई।

× × ×

निधु सेज पर घरा बधू भव,
तनिक सकृचित घटा भी
प्रलय निशा की हलचल स्मृति में
मान किए सी ऐंढी सा।

प्रसादजी ने प्रकृति के याग ॥ रूपक और
उपमा आदि अलंकारों का मुदर विधान
किया है तथा कोमल वातावरण से
लेकर ध्वन लीला तक के चित्र प्रकृति
योग द्वारा अत्यंत सफरतापूर्वक श्रुति
किए हैं। वन, पवत नदी निभर,
प्रवाल, सध्या, उषा, प्रभात, वसत,
शिथिर, प्राप्न, वषा, आकाश, धरा,
जावजु पुष्प पादप, प्राय प्रकृति के
सभी उपादान कामायनी में प्रस्तुत हैं।
य वणन अत्यंत जीवित है तथा उनका
मानवाकरण भी स्थान स्थान पर
मिलेगा। हिमानय का वणन अत्यंत
उदात्त रूप में हुआ है और उससे सबद
अय प्राकृतिक सपदाभा का भा।
'कामायनी' में प्रसादजी ने प्रकृति के
निम्नांकित तत्त्वा, स्थितिया एव उपा
दानों का वणन किया है।

ऋतुएँ—शीतनिदाघ (रहस्य) पतभङ्ग
(इडा, आशा, स्वप्न, निर्वेद, रहस्य),
पावस (चिता, इडा, स्वप्न, निर्वेद,
दशन), बरसात (निर्वेद); मधुऋतु
(स्वप्न) वषा (आशा, वासना,

स्वप्न, निर्वेद, रहस्य, आनन्द), वसत
(श्रद्धा, काम), ऋतुपति (काम
लज्जा), शरद (आशा, रहस्य,
निर्वेद) शिशिर (स्वप्न)।

पन्थार्थ—अगर (निर्वेद) अमरबलि (रहस्य),
इदीवर (काम, स्वप्न) कज (इडा)
बदब (वासना, लज्जा, आनन्द
निर्वेद), कमल (श्रद्धा, वासना इडा,
आनन्द) केनकी (ईर्ष्या) चदन
(लज्जा), छुई मुई (कर्म), जसज
(स्वप्न), ताड (कर्म), तामरस
(वासना, स्वप्न), देवदार (चिता
वासना, स्वप्न, आनन्द) नलिन
(चिता, इडा) नाग केसर (स्वप्न),
पारिजात (निर्वेद) मोघ (स्वप्न),
(चिता), वेणु (स्वप्न निर्वेद)
वेतसा (ईर्ष्या) शतदल (निर्वेद,
स्वप्न) शिरीष (स्वप्न) शेकाला
(निर्वेद), सरोज (आशा) साल
(श्रद्धा) सामलता (कर्म और आनन्द),
सरोरह (स्वप्न)।

जीवजतु—कच्छप (चिता और श्रद्धा)
कस्तूरी मृग (ईर्ष्या), कुजर बलभ
(रहस्य) केहरी (आनन्द), काक
(वासना, इडा) काकिल (श्रद्धा,
स्वप्न) कामल (काम), गज
(रहस्य), चक्रवाल (कर्म इडा
रहस्य) चातका (निर्वेद), जुगनू
(स्वप्न दर्शन) झिल्ली (स्वप्न),
लिमिगल (चिता) तुरग (आशा)
पपाहा (स्वप्न) पिक (लज्जा
इडा), पंगा (कर्म) मस्य (चिता)
मधुकर (काम) मधुकरी (आशा
श्रद्धा, वासना) मधुप (चिता,
स्वप्न निर्वेद आनन्द), मरान
(दान), मराना (स्वप्न) मान
(चिता इडा), मृग (कर्म इर्ष्या
स्वप्न) वृष (आनन्द) वृषभ
(आनन्द) व्यान, व्याना (चिता)

शलभ (स्वप्न), मीपी (निर्वेद)
हम (आनन्द)।

विप्रिध—विहरी (आनन्द) गधव (श्रद्धा), यायावर
(सर्घप)। अरणाचल (स्वप्न निर्वेद),
उत्तरगिरि (चिता, आनन्द), कालिंदी
(इर्ष्या, इडा), भूमा (श्रद्धा), मरत
(आनन्द) मित्र (आशा, कर्म), राहु
(दर्शन)।

अनक पन्थार्थ एव तत्त्वों के पयायी शब्दों का
उपयोग उपयुक्त सूची से स्पष्ट है पर
वे शब्द प्रायः अलग अलग अर्थवत्त्वों में
रखते हैं जो प्रसाद के गंभीर प्रवृत्ति
दर्शन के प्रतीक हैं।

प्रवृत्ति के तत्त्वों से प्रतीकविधान प्रसादजी
ने किया है। प्रतीकविधान का कामना
के मूल में रूपक कथा है। छायावाद
का यशस्विता प्रतीक के लिए प्रवृत्ति
का बरण किया। प्रवृत्ति के तत्त्व
अधिक ज्ञान पट्टान है और उनका
दर्शन सम्मुख है। साथ ही काय में
प्रवृत्ति का उपयोग इस धरता पर
सहना क्यों सह होता चला आया है
इसलिये प्रतीक सचयन के लिए प्रवृत्ति
की निधि सुपरिचित एक हृदयग्राही है।
प्रमाणान्न अपन प्रवृत्ति काय की
भक्ति कामायना में भा प्रवृत्ति तत्त्वों
प्रसारवाजना की है।

आकाश उपा, कामन विरए क्षितिज निदाध
जुगनू भक्ता, तम तार तुहिनकर
मच्छ, नलिना, पतभर प्रमात,
विजला, मधुकर मकरद मधु, मलया
निन, वपा, शलभ शिशिर मोरम
हिमानय आदि कामायना में व्यवहृत
प्रवृत्तिप्रतीक हैं।

कामायना में प्रमाणान्न ने प्रवृत्ति में जितना
महायना कथा का प्रभावित करने में
था है उसी जामनी के अनिरित और

हिंदी के किसी नवि ने प्रबंध काव्य में नहीं तो है। किंतु दोनों में प्रवृत्ति प्रयोग में अंतर है। जायसा की प्रवृत्ति, वातावरण के अनुसार काटछाट दी जाती है या उसका महज रूप उपस्थित न करके उसका आवश्यकतानुसार अतिरिक्त वर्णन किया जाता है। किंतु कामायनी का प्रवृत्ति अपने में सहज मिश्र है। उससे इस प्रकार तत्त्व चयन किया गया है कि प्रबंध के भीतर सहजता के साथ वह अपनी अग्रिम मौलिक शक्ति प्राणवान् हा प्रकट करती है। इस संबंध में निरालाजी की निम्नलिखित मान्यता सचचा उचित है—

‘कामायनी में प्रवृत्ति का यह रूप अपना मूल रखता है तथा अपने में अत्यंत गौरवशाली भी है। कामायनी का प्रवृत्ति वातावरण के अनुसार अपना शक्ति का सजाजन, प्रस्फुटन और अभिव्यक्ति करने में अपना शक्ति की स्थापना करता है।’

इस प्रकार प्रसादजी की कामायनी प्रवृत्तिमयी है और प्रवृत्ति ने कामायनी के मर्म उद्घाटन में ओजस्वी और सराहनीय योग किया है।

कामायनी में रस—कामायनी भावनाप्रधान काव्य है। उसमें शिव मन्त्रवाद की स्थापना है। वह हिंदी भाषा में उद्देश्यप्रधान छंदबद्ध भावानुभूतिवाली विशिष्ट रचना है। यद्यपि उसमें प्रायः सभी रस मिल जाते हैं तो भी मूलतः शृंगार और शान्त रस का उगम परिपाक है।

जहाँ तक रस का प्रश्न है प्रसादजी के इस ग्रंथ में रसनिरूपण का दृष्टि से परिपाक का विशेष व्यवस्था नहीं है। लेकिन प्रायः सभी प्रमुख रस इतस्ततः मिल

जायेंगे। उनमें कुछ रसों का परिपाक भी इसमें दीखेगा।

शृंगार रस—कामायनी में शृंगार रस का पूर्ण परिपाक हुआ है और कामायनी के द्वारा शृंगार की मनमोहक प्रतिष्ठा हुई है। शृंगार के स्थायी भाव रति से कामायनी का नायिका का गोत्र संबंध है तथा वह काम की पुत्री भी है। इस दृष्टि से कामायनी का नायिका यह कामवाला स्थायी रस के स्थायी निभर के रूप में यहाँ प्रकटी है। अर्थात् स्वीया है। यद्यपि वह रूप मयी है तो भी वह चिंतन और आज्ञा से युक्त ऐसी सद्गृहिणी भी है जिन शिव की शक्ति। रूप सौंदर्य के साथ अंतर के सौंदर्य का योग नायिका की और भी रसोद्भक्क बना देता है और ऐसी नायिका की छवि हृदयमोहिनी भी होती है जिस वरकर सहृदय रसमग्न हो उठे। मुग्धा के रूप में वह कामायनी में अवतरित हुई है। नवयौवन की प्रथम उदास छटा, काम के विलास की प्रसवोद्भास कामना रति में सकाचवसी, मुदु मानवती और समधिक लजावती के रूप में उसका शृंगार किया रूप प्रस्फुटित हुआ है। उसका मुग्धा का रूप अत्यंत आज्ञाविलसित है। उसके सौंदर्य में शोभा, कांति, दासि, माधुर्य, प्रगल्भता तथा गुप्ता है। य उसके सहज प्रवृत्त अंतरकरण हैं जो उस और सुंदर बनाने में महायुक्त सिद्ध हात हैं। अर्थात् का सौंदर्य कवल सौंदर्य का चित्र मात्र नहीं, वह जीवत भी है। उसकी जीवनी शक्ति का स्वभावसिद्ध वृत्ति साध्य तत्त्व—यथा लीला, विलास वगैररचना, मद, लालित्य, सुगन्ध, नुतुहल, आदि—अधिक तजस्वी बना दते हैं। अर्थात् के रूप में यौवन है, यौवन में लालित्य है और इस

पालित्य में उगव मोर्च्य वा गोभा है।
 दाम मन् वा गिगति हागि है। मन्
 धग वा घगङ्ग घाभूयण है जिगर्थ वाम
 वा वागि हागी है। स्मरविगत की
 गोभा माग ही अद्वा म नही उगर्थ
 वागि की प्रगति मधुर दीपतिगा
 भी है। अद्वा व र्ग व द्ग मायण्य
 म रमणीय मायुय है। उगर्थ र्ग
 मायुय में जहाँ पिय है वही निर्भयता
 है, दगति उगव मोर्च्य उगर् भी
 है। र्गवतापा म युग हाने पर भी
 यह घषवन मनावृत्ति वा रमणी है।
 अद्वा वा यह घोर बाधरूप मोर्च्य
 घग वग तथा यवन की माना स
 घोर भी वाम्य हा उठा है। उगव।
 द्ग घगनाम म द्दिव्यापारा वा
 विनङ्ग विलास है। उगवी वग
 रचना गहज हा हूए भा घमयुन
 घग व प्रगन द्वारा उगव। वागि वा
 विलासलगित बना दगा है। उगवा
 घद घगदशन मात्र हा नही उगवी
 घदप्रसूटित मुस्त्राहट द्ग की बोकी
 बाणी भी वम घावपव नही। उगवा
 मद उसकी मुग्धता उगवा घद
 लज्जाशीलता सभा उगर्थ लातिर्य व
 प्रसाधन है और विहार के लिये
 सदवाधार सौदर्य का प्रकृति एव दश
 काल उहीन करते है। वामायना की
 प्रकृति उमक घालवन रूप की सदा
 सहचरी एव शक्ति रहा है। शृगार व
 मनुभवों एव सचारी भावा का बलुन
 भा वामायनी में अत्यन्त सुन्दर दग स
 दृमा है जो अद्वा की मर्यादा व घनुरूप
 है। उमम स्मृति, यति आवग, घलमता,
 मोह, लज्जा, घृत चपलता आदि
 अत्यन्त मार्मिक रूप स चित्रित हैं।

शृगार के सयोग एव विप्रलभ दोनों रूप
 वामायना में विलसित हैं। उत्कट
 मनुराग के रहत हुए भी अद्वा का

उद्वा वर मनु लव मान प्रम दीर्घा व
 गतामिग हा जाता है और अद्वा को
 स्वाग र्ग है। मन् गिग न गिग म
 शृगार की है। मनु ता प्रमम गगन
 में हा गृधराग म गतिग हो उठा है
 और गिगार वामिगगागृति व निय
 अद्वा क मो र्ग मुग्धभाव वा घमिताम
 म चिगिग ही गरी हा। उगवा स्मृति
 उम उद्ग घोर उगा वा र्ग
 वग्गी है। मनु वा यह चिगिग ममग
 मुग वावर हा घमयाव गृति वा
 बाध वगा है किमु उनका भाग वामना
 मव गव बना रहना है अब तव
 गगगगन गगन में घावन हा म्गिन
 नही हा जा। वाम वा घनृति वा
 यह स्वाग हा घनागम्या अद्वागति
 व घषवनन म उनका घगा घान
 बाध वरला है किमु उनका वाम व
 प्रति वरारा घावपण उनका विप्रलभ
 भी घग्ग्या वा मुन्दर वरिषय दगा है।

अद्वा वर मयमित उगर् र्ग जहाँ नाराव
 वा दृष्टि स उगवा शात्मता वा
 सोतर है वही वद् प्रारभ म मनु व
 वियोग वा वारण भा वनता है, भल
 ही मनु की ईर्ष्याजय भाति इमव मून
 म हा। स्वीया वा शृगार घधिक
 मदीगित होता है। उसका प्रत्येक
 कार्य गरिमामडित रहता है वपाकि
 सोवताज वा भव घोर घधितार वा
 निश्चितता उसम रहता है। अद्वा व
 वियोग शृगार में घाभलापा, विला,
 स्मृति, स्वप्न, उद्ग घादि सभा बुध
 हैं जो विरह व गहज उपागन है।

कामायनी की बहुलाविका इडा है। जनपद
 कल्याणा की भाति मामा वा हाने हुए
 भा रति वा उसस सर्ववा सबध नही।
 रति के घावपण स हान नारा सोर्च्य
 का घावार नही वन सक्ती विवेक वा
 विलास भल बने। बुद्धि का घतिवादित

भावुकता की सतत विरोधिनी है। भावुकता के अभाव में सौंदर्य कम का प्रसाधन होता है। उमम लीन करने या होने का क्षमता नहीं रहती। इस नियम मनु का भस् हो उसने प्रति पुरुष मुनम एकाग्रता प्राप्त कर ली किन्तु इसका विषय मनु का मार्ग में बाधक होता है। इसलिये इसका शृंगार नहीं अपितु रसो का उद्भव का कारण बनता है।

कामायनी का नायक मनु है। वे धीरोन्मत्त और उद्धत रूप में कामायनी में उपस्थित हैं। उनका वृत्ति धारलनित नहीं। वे रूपशाना रति विज्ञान-श्रीष्टा का अत्यंत अभेद उपासक का रूप में प्रारम्भ में कामायनी में उपस्थित हैं। श्रद्धाहीन होने पर कामातुर अधिकार प्रवृत्त मनु इसका भी अधिष्ठित करने के यत्न में असफल होने पर सख्य करते हैं और वह भी एक अज्ञेय बोधा की भांति नहीं, कामपण्यमस कामातुर पुरुष की भांति। यद्यपि श्रद्धा के योग से उक्त अखण्ड भाव की प्राप्ति होता है ता भी उनका पीछा उन्मत्त नहीं अध्यात्मिक है।

शृंगार के दानो पक्षा का पूरा परिपाक कामायनी में हुआ है।

समोग शृंगार—जहाँ परस्पर अनुरक्त विलामी नायक और नायिका दान, स्पर्श आदि का मुक्तभोग करते हैं वहीं समोग शृंगार होता है। कामायनी के पूर्वभाग में प्रवृत्ता का साथ इसका आख्यान हुआ है। काव्य के नायक और नायिका ने इस प्रेमालाप में समोग शृंगार का परिपाक देखा जा सकता है—

छटि हमने सया आँखा में खिला मनुराग,
राग रजित चद्रिका थी उठा मुनम पराग।
और हसता था अतिथि मनु का पकड़ कर हाथ,
चले दोनों स्वयं पथ में स्नेह सबल साथ।

देवदास निजुज गह्वर सब सुधा में स्नात।
सब भनात एक उल्लास जागरण का राग।
आ रही थी मंदिर भीनी माधवी की गध,
पवन के धन धिरे पड़ते थे बने मधु मय।

× × ×

वह मनु ने 'तुम्हें देखा अतिथि। कितनी बार,
किन्तु इतने तो न थे तुम दर छवि के भार।
पूव जन्म कहीं वि या स्पृहणीय मधुर अतीत,
गूँजत जब मंदिर धन में वासना के गात।'।

इसके सुबन आसिगनादि बहुत स भेद होते हैं, और उनमें से अनेक का हृदयप्राप्ति निदर्शन प्रस्तुत काव्य में हुआ है। इसमें उदीपन विभाव के रूप में ऋतुप्रा, चंद्रोदय, प्रभात, यामिनी आदि का मनोमोहक चित्रण हुआ है।

विप्रलम्भ शृंगार—यह वहाँ होता है जहाँ मनुराग प्रगाढ़ हो किन्तु प्रिय समागम कारण विरोध से न हो सके। प्रकाशवार ने इसमें—अभिनायक, विरहहेतुक, ईर्ष्याहेतुक, प्रवासहेतुक, और आप-हेतुक—पांच प्रकार माने हैं। वपणकार ने इसके पूर्वराग, मान, प्रवास और वरण—चार भेद किए हैं। इन चारों में चतुर्थ की स्मिति इस मयार्थवादी युग के काव्य में सम्भव नहीं। रोष तीव्रता का प्रतिष्ठा कामायनी में सुचारु रूप से हुई है। उह हम सक्षप म क्रमश देरेंगे।

पूर्वराग—गुणध्वन्य अथवा साक्षात्कार द्वारा परस्पर आसक्त नायक और नायिका के सम्मिलन से पहले की स्थिति का नाम 'पूर्वराग' है। यथा—

आ सप्रणय म ग्रहण का
एक मुनिहित भाव,
थी प्रगति, पर भ्रष्टा रहता था
सतत अटकाव।
चल रहा था विजन पथ पर
मधुर जीवन खेल,

ना अपरिचित न निषि
अथ चाहो भी भन ।

मनु और अदा एक दूसरे का प्रति पूजाया
घाट्ट हा घुस रहे फिर भा अभा उना
और दूरा बना हुई है । अभिनाय
रिना, स्मृति, गुणरथा उदय आनि
वामनामा म स मुद्रा का मुद्र निमान
वाय म दृष्टा है ।

मान—श्रीध जो प्रणयमभय या ईशानमभय
हाना है मान कहता है । य तायव
और अपिका दाना म परिस्थितियम
उपम हाना है । यह कामायना
म भा है ।

मनु का ईश्यासमभय मान—अदा ने एक पशु पाल
रहा था । वह उससे अत्यंत स्नेह
रहाती था उस दुलराती था उसपर
प्रसन्न हा हाथ फेरती था । अपने का
अदा का प्रेम का एकाधिकारी समझी
बाले मनु से यह दया नहीं जा सकता
था । वह इच्छा से दग्ध हो गया था ।
बाद म अदा ने उस मनाया था ।
दलिए—

आह यह पशु और
इतना सरल मुद्र स्नेह ।
पल रहे मेरे दिय
जो अक्ष से इस गह ।
मैं ? कहा मैं ? ले लिया करते
सभी निज भाव
और देते कैंक मरा प्राप्य
तुच्छ विराग ।

अदा उनकी चुन्य मन स्थिति का आभास
पाकर उह प्रवृत्तिस्थ करती है—

कहा, 'क्या तुम अभी
बैठे ही रहे घर ध्यान,
देखना हैं आख कुछ
सुनते रहे कुछ कान
मन नहीं यह क्या हुआ है ?
आज क्या रंग ?'

तन दृष्टा नष्ट हत ईश्यां का
रिमान उर्मग ।

और सहजाने सदा कर कमर
कामर कान,
नर कर वह नय गुणमा
मनु हुए कुछ शान ।

अदा का भा मान का न्या म दया जाता है—

कामायनी अमा था कुछ कुछ
गारर गव शाना,
मनीभाय धारर न्यय हा
रहा विगन्ता बनना ।
जिमव हृदय मना ममाप है
यही दूर जाता है,
और श्रीध हाना उम पर हा
जिमम कुछ नाता है

× × ×

अनुनय बागी म आँखा म
उपालभ की छाया,
कहने नय अरे यह कभी
मानवता का माया ।'

प्रयास—शायविशेष स शापवश अथवा मन्त्रम स
नायक के अथ देश म बत जान की
प्रवास नामक विप्रलभ कहते हैं । मनु
जब अदा का भावा पुत्र ने प्रति प्रमा
विक्रय देखते हैं तब दृष्ट होकर
सारस्वत प्रदेश म चले जाते हैं । उनका
यह परदशनमन सन्नम (भय) वश
हुआ है कि अदा का प्रेम भव मुक्तपर
नहीं रहा । यह प्रवास विप्रलभ की
स्थिति है । इस विरह दशा मे अदा के
शरीर और वस्त्र मे मलिनता एक बेला
वाला मिर मि श्वास उच्छवास रोदन
भूमिपतन आदि प्रस्तुत काय मे यथा
स्थान मुदरता के साथ चित्रित हुए हैं—

'अरे बता दो मुझे दया कर
कहाँ प्रवासी है मेरा ?
उसी बावत से मिलने का
बल रही हैं मैं केरा ।

मूठ गया था अपनेपन में
अपना सकी न उमका मैं,
वह ता मरा अपना ही था
भना मनाती किसका मैं।
वहा भूत अब मूल सदृश हो
साल रही उर में मेर,
कम पाऊंगी उसका मैं
बोर्डे आकर वह दे र।

सताप— किंतु विरहिणी के जीवन में
एक घड़ी विश्राम नहीं,

निशाम—तृण गुंथो से रोमांचित नग
मुनत उस दुःख की गाथा,
श्रद्धा की मूखी सानों में मिलकर
जा स्वर भरत ये।

आँसू—किन चरणों को धायेंगे
जा अश्रु प्रलय के पार वह।

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रस्तुत काव्य में शृंगार
क दोहों पंक्तों का सुंदर और सुष्ठु
संयोजन हुआ है।

कहने का आवश्यकता नहीं कि इस काव्य का
अवधिक भाग शृंगार रस से आपूर्ण है
और वह उत्तराध में अवकाशाभास के
कारण अभी रस हान होते रह गया
है। इसमें संचारियों की याचना महज
ढग में काव्य में पा जाता है। जसा
कि पहले कहा जा चुका है, कानानुसार
कण्ठ विप्रतप्त के लिय काव्य में सवधा
अवकाश है। वह प्रवास तक ही
सीमित है और संस्कृत के भा अभिवाच
काव्या में (काश्वरा को छोड़कर)
उसकी स्थान नहीं मिला है।

अब हम प्रसंगप्राप्त अर्थ रसों का इस काव्य
में परिवेश में अव्ययन करेंगे।

इन शृंगार से कामायनी में अब रसों का
निष्पत्ति होती है—वात्सल्य वीर,
कर्म और शांत रस इत्यादि शृंगार से
कामायनी में उद्भूत हैं।

भावों के परस्पर ध्यान प्रतिघात की सफल
सहज अभिव्यक्ति से रस की रचना
होता है। मनु के प्रति श्रद्धा का संयोग
जहाँ उमकी कामतृप्ति का साधन बनता
है वहीं उसका उमके मनोग की धाती
मनुज व प्रति श्रद्धा का प्रेम उसमें ईर्ष्या
की सृष्टि करता है और संयोग
का वियोग में परिणत कर देता है।
वियोग का यह मूल कारण अपनी
वृत्ति के प्रति स्वार्थाधि भ्रमहिंस्युता
की यह स्थिति भी रसमयी है क्योंकि
नारी की फनदा प्रवृत्त शक्ति मातृत्व
की ममता का जो जीव सृष्टि का
साधारण धर्म है, अभि यत्न करती है।
इससे वात्सल्य की निष्पत्ति होती है।
कामायनी में वात्सल्य का दर्शन भी
कराया गया है।

यह साहित्य में ग्रहण किया गया दूसरा रस
है। इसका स्थायी भाव वात्सल्य स्नेह
होता है। श्रद्धा में मातृत्व और पुत्र के
प्रति स्वभावमिद स्नेह का सहज दर्शन
कराया गया है और मनुजकुमार
इस मातृ स्नेह का आनंदन है। उसकी
क्रीडा, चेष्टा परम और आलिंगन
आदि का स्नेहमय रूप उपस्थित किया
गया है।

प्रेम जब अपना सबंध रति में विच्छिन्न न कर
अलौकिक लीला रति में सबंध जाड़ता
है तो एसी महिमायुता स्थिति का
निर्दशन भा निरंतर भारतीय माहिल्य
में हुआ आया है। इस जीवन का
परम साव्य मुक्ति की स्थिति मानी
जाती है। जीव का ब्रह्म से महामिलन
अलौकिक हान हुए भी लोक में घटता
है इसलिय लोक की भावमपदा का
वह अन्तर्गत रत्न है। निर्वेद अर्थात्
परम तत्व का ज्ञान इसके मूल में होता
है और इसका आनंदन परम ब्रह्म
होता है। जीवन की निस्सारता अथवा

यासना एक कामना के बंधन का पाप इस निश्चिन्ता श्रम की ओर जीव का उन्मुख करता है। अज्ञात-निर्मातृ मनु बुद्धि से जेब आर्तित हो। परम ध्यान का उपासना के त्रिषु विषय तत्त्व में अत्यन्त सामरस्य ध्यान में जो धनादि ओर अनन्त है अपाहिता होना है तो शान्त रस का सृष्टि होता है। उस समय का रामाच ओर हृष स्मरणीय है। रमणीय एवांत प्रभापुज कलास का घट रूप भी चित्ताकर्षक रूप में उपस्थित है जिसमें शान्त रस का परिपाक होना है।

शांत और शृंगार तो कामायनी के मूल रस हैं ही क्योंकि शांत का आसवन गदेस का सृष्टि के विनाश का मूल है जिसकी कला प्रत्येक जीवन सीला में व्याप्त है।

जीवन का इतनी लंबी यात्रा में और भी रस गयास्थान यथा भावश्यकता कामायनी में प्राप्त हुए हैं सत्त्व में उनका उपाहरण भाग प्रस्तुत किया जा रहा है—

करुण रस—करुण रस का स्थायी भाव शोक है। यह इष्टनाश और अनिष्ट की प्राप्ति पर अभिभूत होता है। उसका अभिव्यक्ति सशक्त दम से अनन्त स्थानों पर हुई है। कुछ आवाय करुण रस का ही प्रधान रस मानते हैं। इस दृष्टि से यदि देखा जाय तो इस रस का उचित अवस्थिति यथास्थान शक्तिशाली रूप में मिलेगी। यथा—

भाह धिरेमा हृदय लहलहे
सो तो पर करका धन सो,

(छपी रहेगी अंतरतम में
सब के तु निगूढ धन सा,

× × ×

विस्मृति भा भवसाद घेर ल
नारवत। बस चुप कर दे,

भेतनना बस जा जहता म,
घाय गूँघ भरा भर द।

धीररस—यह उत्तम प्रति धीर गुण के प्राप्ति होता है। इसका स्थायी भाव उत्साह है। यह चार प्रकार का होता है (१) ज्ञानधार, (२) धर्मधार, (३) श्रद्धाधार धीर (४) मुद्राधार। कामायनाधार में अपन इन बाध्य में मुद्राधार का स्थान दिया है।

धीररस संपन्न सग म है। धाररस का एक उपाहरण यही दिया जा रहा है जो इस बात का साक्ष्य है कि कवि ने इस रस की भी गूढ़ निरूपित का है—

रत्नामद मनु का न हाथ धन भी दहता था,
प्रजा पक्ष का भी न विनु साहज कभुता था।

× × ×

धूमकेतु-सा बसा रत्न नाराच भयकर
लिय पूछ म अपनी ज्वाला क्षति प्रलयकर,
अंतरिक्ष में महाशक्ति हुकार कर उठी
सब शस्त्र की धारें भीषण बग भर उठी।

वात्सल्य रस—सख्यता के परवर्ती आभावों में बलम या वात्सल्य का भा दत्तवा रस स्वीकार किया है। हिंदी साहित्य में इसका प्राचुर्य है। इसका स्थायी भाव वात्सल्य स्नेह और पुन आदि इसका आलंबन होना है। बालक का चट्टाए आदि उदाहरण विभाव है। इसकी भी भल्प किंतु अत्यंत मुदर भी की कामायना में मिलेगा। यथा—

'मा' फिर एक बिलक दूरागत
गूँज उठी कुटिया स्त्री,
माँ उठ दोड़ी भर हृष्य में
लेकर उत्कठा हूनी।
लुटरी खुली धलन रज घुसर
बाहे आकर लिपट गई,
निशा-तापसी का जलने का
भयन उठी बुझी धूनी।

जो लोग जीवन का चरम ध्येय भुक्ति को स्वीकार करते हैं वे शांत रस को साहित्य की चरम परिणति मानते हैं। कामायनी का रस भी इसी से होता है, किन्तु शांति के बरख अानन्द की लौक व्यापक सनातन व्यवस्था भी है। इसलिए कहा जा सकता है कि कामायनी में शांत और श्रृंगार का ऐसा समयोग हुआ है कि दोनों दृष्टि के लोग उनसे परमवृत्ति का समचित्त मायन प्राप्त करते हैं।

कामायनी रस का आलोच्य दृष्टि की आधार मानकर लिखा गया काव्य नहीं है अपितु उसका आदर्श सत्त्वगुणमय होने के कारण स्वतः महज रसात्मक है। इसलिए उच्च कलाकृति होने का भी साधारणीकरण की श्रेष्ठता उभय वत्त मान है और महज ही भावानुकूल परिपुष्ट रचनियुक्ति उभय मिलेगी।

कामायनी का साध्य, चित्तन एव दर्शन—जय शंकर 'प्रसाद' कामायनी में एक महान् चित्तक तथा दार्शनिक के रूप में प्रकट हुए हैं। उनका दर्शन और चित्तन व्यक्ति के समष्टि तक का अपना परिधि में आवृद्ध करता है। इस आवृद्धन के मूल में व्यक्तिव परितोष, सामाजिक उत्थान, मानवता का दृढ विकास एवं प्रवृद्धन की मंगल कामना ता है ही; साथ ही प्रय, प्रम काम का परिवृत्ति का विधान तथा भारतीय दृष्टि में जीवन के चरम ध्येय अनन्त आनन्द की साधना और सिद्धि का दिव्य आयोजन भी है। यदि 'प्रसाद' के इस चित्तन का अध्ययन किया जाय तो व्यक्ति का अध्ययन दो रूपों में करना होगा।

उमका पहला रूप होगा, समाज का एकात्मिक मनुष्य और दूसरा रूप होगा व्यक्ति की व्यक्तिगत साधना का रूप। पहले हम व्यक्ति के सामाजिक स्वरूप की कामायनी में ग्रहण करेंगे।

सामाजिक चित्तन—उपभाग जीवन का अनादि गुण धर्म है तथा इसकी वाछा ही मानव की चेतना एवं गति का अग्रतम कारण भी है। प्रवृत्ति का कार्य व्यापार एवं धर्म ही पुरुष और प्रवृत्ति के महयोग से प्रगातमान होता है। प्रवृत्ति के विकास के मूल में यही नियम जड़ जगम में सत्त्व दृष्टिगत होता है। इन्द्रियनिप्ता की पारवृत्ति महज जनदायिनी हुआ करता है। काम नर-नारी को एक सुत्र में आवृद्ध करता है, दूसरा और वस्तुगत इन्द्रिय वृत्ति की भीतर आवश्यकताओं का विकास भी होता चलता है।

व्यक्ति के मूल में स्वरूप होता है इसलिए एक ही स्थिति में उस मध्य सताप नहीं होता। नह नह स्थिति और परिस्थिति उस अनुभव का द्वारा नित नया पाठ पढ़ता जाती है। इन्द्रिय स्वभावतः विलासी होता है इसलिये अनुभववृद्धि के साथ व मन व विविध मासध्य का उपयोग और प्रयोग और भी अधिक मुख या परितोष व मिले जाती जाती है। इस प्रकार नर-नारी व मिलन से आवश्यकता की व्यास और अधिक अनुसृष्टा वृत्ति की शोच में गतेमान हा उठती है। नर-नारी का यह मिलन फलप्रद होने पर नर-नारी व परिवार की सख्या में वृद्धि कर और अधिक आवश्यकताएं बढ़ती जाती है। इस प्रकार आवश्यकताओं व चर में मनुष्य व जीवन का क्षण क्षण बढ़ता जाता है। उसकी चित्ता उसे और भी आग बढ़ा ल जाती है। परिवार, पास पडास, जाति, पेशा, राष्ट्र ऐम लागे स एक एक कर बनता है क्योंकि अपनी समस्त आवश्यकताएँ व्यक्ति एकाद दूर नहीं कर पाता और न कर सकता है। एकाद उत्पन्न मनुष्य समाज का निमाण

इमलिये करता है कि व्यक्तिगत दुख, चिंता एवं आवश्यकता की कठोरता का अधिक मुगमतापूर्वक वह मुगकान दे मवेगा—अपनी को अपनी अधिक देकर और दूसरो से उनका अधिक लेकर ।

लेन देन की यह प्रथा भी स्वाथ पर ही आधारित है । आवश्यकताएँ घनत है । व्यक्ति अपने ही पीछे से अपनी आवश्यकता की सभी वस्तुएँ उत्पन्न नहीं कर सकता । इमलिये सब वे हा वस्तुएँ उत्पादित करते हैं जिनमें दक्ष होने है । अपनी इस प्रकार उत्पादित अधिक वस्तु को मोध मुद्रा से बदल कर या दूसरो द्वारा उत्पादित वस्तुओं में बदल कर अपनी आवश्यकता का वस्तु प्राप्त करते हैं । इस परिवर्तन के द्वारा नर उपभाग धर्म का पालन करता है । इसलिये उन ममस्त क्षेत्र से उसका संबंध जो जाता है जहाँ तक उसके प्रान्त प्रान्त की परिधि होती है । धान मारा समार इस परिधि में आ गया है । एक एक यति परोक्ष और अपरोक्ष रूप से एक दूसरे में जुट गए हैं । एक के लाभ का प्रभाव दूसरे पर और दूसरे के लाभ का प्रभाव पहले पर पड़े बिना नहीं रह सकता । इस लिये ममप्र मानव के अमुन्य का अपत्कर चितन ही प्रबुद्ध मानमशिलपी ज्ञान विज्ञान, कला और सस्त्रति के क्षेत्र में मजबूत होकर करने में दक्षचित्त है । प्रसाद कामायनी द्वारा इन क्षेत्र में ममप्र मानवता के अमुन्य के चितन के रूप में उपस्थित हात है । वे समवय वाणी दृष्टि दर्शन के पापक हैं । मान वता की विजय के लिये शक्ति के ममस्त बिस्तर करणों के समवय का वे माधन मानत हैं—

शक्ति के विद्युत्करण जा व्यन्त्र
बिजल बिखर है हा निरुपाय,

समवय उनका नर ममस्त
विजयिनी मानवता हो जाय ।
कवन इससे ही मानवता का विकास मभव
नही अपितु उ हान सामाजिक नियमन
की उन स्थितिमा और परिस्थितियों
का भा सक्त दिया है बिना यह विजय
अमभव है । वह स्थिति है ममाज में
परस्पर व्यक्तियों के संबंध की । जहाँ
इतनी का स्वाथ हागा वहा नियमन
अवस्था ता हागी हा । उन नियमन
अवस्था में नियामक शासक तथा
शामित हाग । नियामक का भा स्वर-
चिन नियम के बचन में आमूलत
आबद्ध होना होगा अथवा समस्त
ससार युद्ध स्थल बन जायगा । जिनका
परिणाम होगा नाश स्वयं और धार
अधिकार । विश्व परस्पर वर्गा में
बढकर संघर्ष करने लग जायगा । ऐसा
हाता भा है । लेकिन व्यक्ति एक
वय के परस्पर संबंध का जिन परि-
मूर्तों में जाडने का उ हान प्रयत्न
किया है यदि उहे स्व लिया जाय तो
यह मानना पडेगा कि कवि द्वारा किया
गया अनुभूत निदान इन समस्यामा
का अचूक समाधान प्रस्तुत करता है—
अपने में सब कुछ भर कस
व्यक्ति विकास करेगा ?
यह एकांत स्वाथ आपण है
अपना नाश करेगा ।

× × ×

धोरा का हमन स्वा मनु
हमो और मुख पाधो,
अपने मुख का विस्तृत कर लो
सबका मुखा बनाया ।

× × ×

वे श्राटन करने के स्थल हैं,
जा पाल जा मवन सहेनु
पशु म यदि हम कुछ ऊँचे हैं
ता भव जननिधि में बनें सनु ।

× × ×
 व प्राण जो बच हूँ ?
 हम सबका जगती क।
 उनका कुछ अधिहार नहीं
 क्या व सब ही है नीच।

स्वति का लक्षण स्वार्थ मानवता की विजय
 में बाधक है। हमारे सामाजिक प्राण
 व हम में प्रगाढ़ता स्वति का दुश्मन।
 व मुक्त में ध्यान मग्न व दान का भाव
 बना है हम सबका जगत् व समस्त
 हम प्राणों व अधिहार का ध्यान
 नित्य हम सब का भावना का
 उत्साह बनने का प्रयत्न कर। हम
 समस्त में ऊपर उठने व विजय मानक
 का संसार का मनु बनाने व विजय
 उत्प्रेरित कर रहे हैं। यह विजयप्राप्त
 प्राप्त समस्त मानवता का स्वाति
 प्राप्त कर चुकी है।

हमना ही नहीं प्रगाढ़ता हमका उत्प्रेरक स्वति
 व लक्ष्य सामाजिक मुक्त का मुक्ति व
 विजय भी हमका बना है—

त्रिभुज मुक्त समझे हो अधिहार
 जगत् का जगत्वादी का मुक्त,
 दैव का वह रहस्य कराने,
 कभी हमका मन बाधा भूत।

घोर भी—

कुल की पिछड़ी रखनी बीच,
 विजयता मुक्त का लक्ष्य प्रभाव,
 हम प्रवार पाका, मुक्त घोर निराशा से
 आकाश स्वति को व जीवन का,
 आगरण का मंदिर दंड हूँ दीखने है।
 यह आकाश घोर आगरण का मंदिर व
 सामाजिक मानव का दन है। समाज
 परिवारों का एक मण्डल मात्र है।

परिवार व धर्मन नर नारा व सबका का
 समन्वयमय मण्डल होता है जिसकी
 बाधा पर स्वति व जीवन का
 उपवन घोर साह धम्युदय आश्रित

है। नर नारा का मर्म प्रविष्ट है।
 विजय मुक्त की विजय प्राणों का है।
 न्याय उभर गया का विचार
 आकाश का दुश्मन घोर मुक्त का बना
 मरणा है। आकाश व नारी यही
 का समस्त मुक्त व का मति प्राण है,
 यह मतिमयता यही घोर अंध नारा व
 विजय उत्प्रेरित है। 'प्रगाढ़' जो है
 हमारा दुश्मन व समुचित रहस्य का
 कामागनी व उत्प्रेरित करके हमका
 व मुक्त का लक्ष्य समस्त बनने का
 है जो भी व व घोर घोर व नारी
 का का मर्ममय प्रगाढ़ है। व नारा
 घोर मुक्त का लक्ष्य हमका व विजय
 विजय बाण में पाते हैं उभय बाण में
 नारा लक्ष्य दान व मुक्त व प्रभाव,
 व्याख्याता हमका मर्ममय है।

उनकी धारण नारा अंधा व हम में कामागनी
 में घोरनी समस्त जगत्वादी व भाव
 प्रवृत्ति है। नारा व मर्ममय में
 प्रगाढ़ता का मर्ममय है विजय नर में
 बाण व समस्त धारण मर्ममय अधिहार
 दान है। अंधा व नारा म—

‘दा, माया, मर्ममय सा धारण,
 समुक्तिमा मा धारण विजय,
 हमारा हृदय हम लक्ष्य स्वच्छ
 मुक्त व विजय मुक्त है पाण।’

मर्ममय व मर्ममय भी वह घोर हमका
 मर्म व उत्प्रेरित करके हमका मर्ममय है—
 ‘हम धारण में मुक्त घोर नहीं
 वक्त उल्लास धारण है,
 मर्म व घोर न विजय मुक्त
 हमका ही मर्ममय प्रभाव है।’

धारणमर्ममय की मर्ममय धारण नारा की
 वह लक्ष्य है जो मुक्त का मर्ममय
 पर दृष्टिमान है। नारा धारण
 प्रगाढ़ का लक्ष्य हमका मर्ममय
 करता है विजय मर्ममय अधिहार
 का मर्ममय व प्रभाव करता है।

प्रत्येक परिस्थिति में सतत सम्पूर्ण
करनवाली नारी के प्रति सफल जीवन
व्यक्ति का तभी हो सकता है जब वह
इस मुक्ति को चरितार्थ करे—

‘नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रखत नग पद तल में
पायूप स्रोत से बहा करे
जावन के सुहर समतल में।’

पुरुष को हसलिये नारी का ऐसा मानना
चाहिए मयकि वह व्यक्ति को विश्व
का खेल हसकर खेलना मिलाती है और
अपना सब कुछ अर्पित करने के उपरांत
भा कुछ नेना नहीं चाहती। प्रातः
करनेवाले का चिर प्रानन्दमय मान
देतना चाहता है। उसके ही कारण
यक्ति निम्नलिखित सन्स्थिति में
पहुंचता है—

‘तुमने हस हस मुझे खिलाया,
विश्व खेल है खेल बलो,
तुमने मिलकर मुझे बताया
वरते सबसे मेल बना।’

खेल की तरह सरलतापूर्वक समस्त समार स
मेल करानेवाला अनादि चेतना शक्ति
व रूप में पारिवारिक जीवन का गठन
प्रसादजी ने श्रद्धा और मनु के संयोग
स करने का प्रयत्न कर कामायनी में
विश्वमंगल का विधान किया है।
इन मंगलविधान में उन्होंने केवल
अपने अनुभवों का सहारा लिया है
अपितु भारतीय वाङ्मय के अगाध
मानसमगर स अमृतमयन भा किया
है। यह मयन प्रसादजी का सामाजिक
चिन्ता का एक मयन्यवादी वरातल
पर उपस्थित करता है जिनम मानवता
व विजया हान का चिरतन पथ
प्रगल्भ है।

प्रसादजी ने जिन युग में प्रौढ़ राज्य माहिल्य
का रचना भारम का उग युग में समार
एक भाषण महापुद्गल व पारखामा स

समस्त होने पर भी दूसर के नगर
पर खड़ा था और जीवन का अभिलाषा
निए लड़कड़ा रहा था। इस समस्तता
ने मूल में भौतिक उत्पन्न का प्रति
हिमामय नियमनमयी कामना था।
जनजीवन इसके परिणाम स प्रत्यत
बुरी तरह कराह रहा था।

जिस समय कामायनी का रचना भारम हुई
उस समय समार ॥ केवल पिछड़ा युद्ध
का मार स मयस्त था अपितु वस्तुभा
का मदा का, भाषिक उत्तर के लिए
हाड खनवाना व छन प्रपन्न का
मिवार भी था। दूसरी ओर समार
के समस्त साम प्रानद का अभिलाषा
लिए वातर हाट से बबम दख रहे थे।
दश के मानर भा वधनमया सन्स्थिति
में मुक्ति की अनंत कामना एक समुद्रि
के लिये जन सामा य की अभिलाषा
विलस रहा थी। ऐसी स्थिति में युग
व महाकाव्य का कत य हा जाता है
कि वह व्यक्तिक एवं सामाजिक मभा
प्रकार की बुद्धिमान मिटान व तय
मवल स। यह मवल परम वत्साण
कारा होने के साथ हा साथ एक व्याक्त
व द्वारा नया जाना चाहिए था जो
स्वय सावर, मिद्ध और मुजान मागा
हो, अनमल हो किन्तु तामगल व
लिये उमका धामति वरम भीमा
पर हो।

प्रमाण्वा ऐम हा व्यक्ति व। व एम हा वित्तव
एक एम हा माधन य। नयमबद्ध
भौतिक मय्यता व विरात व मूल म
प्रवृत्ति पर विजय द्वारा व्यक्ति का
अधिन म अधिक आवश्यकतापूर्ति का
भावना चेतनागत है। उपभोगधर्म
पर साधुन यह भौतिक विकास वगवाद
का जनक तथा अतृप्तिमूलक है क्योंकि
आवश्यकताओं का गुणधर्म यह है कि
व अनंत है, एव पूरा ना नहीं हो पाता

वि दूसरा धावर बड़ी हो जाती है। जा धावश्यकताएँ पूरी भी वा जा सखती है, वे एक निश्चित ध्रुवधि के नियम, मर्यादा के सिधे नहीं। धावश्यकताओं के रक्तबीज की जीवन रण में अधिकधिक प्रतिस्पर्द्धित उत्पादन द्वारा मर्यादा करने का प्रयत्न भीतिबान की आधारगिता है। य धावश्यकताएँ ज्यों ज्यों उत्पादन बढ़ता जाता है त्यों त्यों बढ़ती जाती हैं। इन दृष्टि के यदि दस्ता जाय ता भीतिव पदार्थों द्वारा गुण समृद्धि का चल्पना विवेकमया ता है पर पूरा सुष्टिमूलक नहीं।

आज का समाज, आज के लोग इन धाव बढ गए हैं कि इस मर्यादा द्वारा प्रवृत्त मर्यादित व ध्यान में निमग्न होकर पीछे भा नहीं लौट सकते। युगनृणा म मालावित कुठित मृग की भीति लोचजीवन का मर म जल इन की माधना का दायित्व ऐसी स्थिति म माहि-यकार का उठाना पड़ता है।

प्रमाणों न यह भार सहे हों उठाया, उसे निबाहा तथा चतमान समस्या का समाधान किया। यह समाधान वगबाद नहीं, महप्रतिस्पर्द्धा की सम-व्यवसायी है। आज ससार की जनता का तीन-चौथाई भाग सप्रतिस्त्व के मित्रता का स्वाकार कर चुका है। मल ही बह प्रायोगिक न होकर वचारिक हो गया न हो। यह प्रसाद की व भविष्यदृष्टा होने का प्रमाण है। प्रमाणों के कामायना म विवेक और हृदय पक्ष का सप्रतिस्त्व कायम करने का प्रयत्न किया है। प्राकृतिक विकास और भौतिक विकास का सम-व्यवहार और भौतिक धर्ममुल्य तथा सिद्धि के लिये युग का द्वार खाना है। प्रकृतिवादी और बुद्धिवादी सम्प्रदाय व समलन का आयाजन कर उहाँन आवात्मक प्रगति का सोपान प्रस्तुत

किया है तथा धावध धोर धापित दोनों की मृति का भा उहने विधान किया है। इस दृष्टि म देगा त्राम नों प्रमाणों महान विवेक के रूप म दिनी जगत् व मनुष्य उपस्थित होत है। व तेम धितक के रूप म उपस्थित होता है जा वधतिव धोर भीतिव माधना का महारामा की तरह एवाकार कर माहि-यिक दग स मूल करने का प्रयत्न करता है।

आनन्द या प्रत्याभिज्ञा दर्शन या कश्मीरी शैवदर्शन—जहाँ तक धधतिव चिन्तन का प्रश्न है प्रमादजी धगद आनन्द का जीवन का परम ध्यय धापित करत है। वही व धाधुनिव मर्यादा के के मर्यापक मनु की प्रतिष्ठा ज्ञान, क्रिया और इच्छा के भेदों का मिटाकर करते हैं। इस लोग प्रत्यभिज्ञा दर्शन या कश्मीरी शैवदर्शन का सामरस्य सिद्धांत धापित करत है।

शव दर्शन म कश्मीरी शव दर्शन सर्वाधिक नवीन ज्ञान हुए भी धधधिव हृदयग्राही है। यधपि कश्मीर म इस दर्शन का उल्लयन धाठवीं शताब्दी में हुआ तो भी इस दर्शन का भक्त इस धलौकिव धोर साक्षात् शिववृत्त यतात है। इस धनादि दर्शन के कालप्रभाव म उच्छेद हो जत्ने पर श्रीकृष्ण म शिव न धधध-कर इस दर्शन का उपदेश कलाम धर दुर्वासि ऋषि की दिया। य मूत्र शिवयूज के नाम स ध्यात हैं जिनकी संख्या १६० है। बाद म दुर्वासि की शिष्यपरंपरा द्वारा यह धराधर धचारिक प्रसारित होना रहा। श्रीकृष्ण, वसुधुत, सोमानन्द, उत्पलाचार्य, रामेण तथा धधधन गुप्त इस दर्शन के धधधन धावाध है।

कश्मीरी शव दर्शन धधधत दर्शन है। इसका धधार व्यापक रूप से कश्मीर म था इसलिये इस कश्मीरीय शव दर्शन के

नाम से स्थापित मीनी । ईश्वराद्वयवाद,
त्रिक दशन माहेश्वर दशन एवं प्रत्य
भिना दशन के नाम से इसे सर्वोचित
किया जाता है ।

इस शब्द दशन का साहित्य अत्यन्त विस्तृत
तथा व्यापक है । इस दशन का स्पष्ट
करनेवाले आचार्यों का निम्नांकित
रूतियाँ इसका सूत्राधार हैं —

यसुगुप्त—स्पदाभृत, भगवद्गीता-वासवी टीका ।

नरलट्ट—स्पदकारिका स्पदवृत्ति, तत्त्वाथ
चिन्तामणि मधुसाहिना (प्रप्राप्त) ।

सोमानन्द—शिवदृष्टि शिवदृष्टि वृत्ति ।

उत्पल्लोपाचार्य—प्रत्यभिज्ञा कारिका, ईश्वर
मिद्धि स्तावावनी ।

राम—स्पद वृत्ति, भगवद्गीता टीका भक्त
तत्र गाता शब्द दशानुसार ।

उत्पल वैष्णव—स्पद प्रदीपिका ।

अभिनव गुप्त—मालिनी विजय शिवदृष्ट्या
साधन, पराभिज्ञा विवरण प्रथ
भिन्नाविमर्शना, प्रत्यभिज्ञा वृत्ति
विमर्शना तन्मात्राक तन्मात्र,
परमाधमार ।

भारद्वाज—शिवसूत्र वातिक ।

सैमरान—शिवसूत्र वृत्ति शिवसूत्र विमर्शनी
प्रथमभिज्ञा स्वप्नसहित स्थान
निगूढ ।

योगरान—परमाधमार टीका ।

जयरथ—तन्मात्राक ।

शिवोपाध्याय—विमर्शन भक्त टीका ।

मात्रर वान का माया के गूढ़ रहस्य का
ज्ञान मात्र नहीं । उसका चेतन और
धान स्वस्वरूप ब्रह्म 'ब्रह्मत्वज्ञान' है ।
गवन्तकिमान का ब्रह्मत्वज्ञान ज्ञान
और ज्ञाना म ब्रह्मत्व शक्ति का धाराप
गम्य व चेतन पुरुष और वान का
माया व प्रति ज्ञाना उपाध करता
है और इस ज्ञाना का महत्त्व ममा
धान माधव का उपनयन नहीं होता ।

प्रत्यभिज्ञा दशन इस शब्द म अधिक
महत्त्व है क्योंकि वहाँ भेदभाव के लिये
स्थान नहीं । यद्यपि माया इस दर्शन
में भी है ता भी इस भिन्नात शक्ति को
यहाँ स्वतन्त्र सत्ता नहीं । इसका मूल
परमत्व शिव के हाथ म है । उसका
लोला म ही इसका उपाध और लय है ।
परमशिव 'चित्' है, सभी चिन्मय
पदार्थ उससे ही उ मीनित होते हैं और
उसी में लय हो जाते हैं ।

शब्द दशन के अनुसार प्रत्येक जाति म ध्रुव-
स्थित आत्मतत्त्व ही शिव तत्त्व है । यह
आत्मतत्त्व भिन्नादि, भिन्नत और चेतन
है । इस प्रतिष्ठित शक्ति का परमेश्वर,
शिव, परमशिव और परासचित् सत्ता
भी प्रज्ञान की जाती है ।

मारा ससार परमशक्ति सपन्न इस आत्मा
का स्वरूप है । विश्व के सारे प्रपञ्च
उमा से भिन्न भिन्न रूप मे प्रकाशित
होते हैं । वह ससार और भक्तमार
दोनों है । ममार और परमशिव मे
मवधा भेद नहीं है । सब उमस हा
स्फुरित हैं । वह एमा भिन्नत शक्ति है
जा पलक मारत ही सृष्टिरचना एवं
सृष्टार कर सकता है । यह भिन्नत
शक्तिमया आत्मा जा सार सृष्टि क मूल
म है परम चेतन या बिनास्वल्प
है । शिव का भूतभिम ब्रह्मभाव उनका
विमर्शशक्ति है जा उनके ब्रह्मत्व का
कारण है ।

इस शिव का पंच मुख्य शक्तिमया है । इन
शक्तिमया के माध्यम से हा यह परम
भूतारकाधनना लोला करता है । यद्यपि
ये शक्तिमया भिन्नत हैं ता भा मुख्य पंच
शक्तिमया चित्, ध्यान इच्छा ज्ञान
और क्रिया है । इन शक्तिमया का रूप
हा विश्व है । कहा भा गया है,
'स्वशक्ति प्रथमा भस्य विश्वम्' ।
चित्शक्ति—यह शिव क प्रकाश शक्ति

का बाधिका है। इसका द्वारा उन्हें अपना अनन्त शक्ति की अनुभूति होती है। इसीलिए अहंकार या अभिमान शक्ति की भा मन्त्रा इन्हीं का जाता है। स्वप्रकाश का बोध भा इस शक्ति द्वारा शिव का होता है। आनन्द शक्ति—शिव आनन्दमय है और इस शक्ति के द्वारा आनन्द का मात्मा स्वरूप शिव अपने में वर्तित है। परम मन्त्रारण शिव मन्त्रा इसी शक्ति के कारण आनन्दमय रहते हैं। आनन्द पूर्ण स्वतन्त्र होता है तथा उसमें आत्मा का विधाति और महज प्रमत्तता रहती है। इच्छासुखार सब कुछ बन जान का शक्ति का नाम स्वतन्त्रता है। इच्छाशक्ति—आत्मा का इस आनन्द मयी स्वतन्त्रता से इस शक्ति का उद्भूत होता है। रचना का नियम इच्छा या कामना शक्ति का है। इसका द्वारा ही शिव सृजन, महार और जा कुछ चाहता है करता है। आनन्दशक्ति - इस शक्ति का कारण है शिव का आनन्द स्वरूप माना गया है और इसका द्वारा ही शिव ब्रह्माण्ड का कर्म कर्म का दखन है। क्रियाशक्ति—इस क्रिया शक्ति का कारण शिव मन्त्री स्वरूप धारण करने में मन्त्रमय है।

समस्त सृष्टि की अभिव्यक्ति करनेवाले शिव शक्तिमय है। शक्तिमान शिव जड़ है और शक्तिहीन शक्ति अस्तित्वहीन है इन दोनों का अभेद ही सदाशिव या परम शिव है। मन्त्राशिव या शक्तिमय शिव का 'उ मय' सृष्टि और निमय लय है। दोनों अनादि और अनन्त हैं।

इस दशन में कुल ३६ तत्त्व माने गए हैं। ये इस प्रकार हैं—

१-५ पञ्चभूत—१ पृथिवी (धारण करने वाली), २ जल (पिघलाने या घोलने या

अभिनेवाला), ३ तज या अग्नि (दाहक तथा पाचक), ४ वायु (मजबूत) और ५ आकाश (अवकाश प्रणाली)।

६-१० पञ्चमैत्रियाँ—६ उपमय, ७ पायु, ८ पाय, ९ हृन्म और १० वाक्।

११-१५ पञ्चानैत्रियाँ—११ जिह्वा, १२ नासिका, १३ नेत्र, १४ त्वक और १५ श्रोत्र।

१६-२० पञ्च मानाएँ—१६ रूप, १७ रस, १८ स्पर्श, १९ गन्ध और २० शब्द। इनमें अपने में प्रतिबिम्बित अन्य कुछ नहीं रहता। इन्हें पञ्चानैत्रियाँ ग्रहण करता है।

२१ मन—मन्त्र एव शक्ति का कारण।

२२ अहंकार—अभिमान का माधन।

२३ बुद्धि—चतुर्थ प्रतिबिम्ब ग्रहण करने तथा स्वरूप निश्चय करनेवाली। इन तीनों की अन्तरकरण रूप तब माना जाता है।

२४ प्रकृति—महत् तत्त्व से सत्त्व पृथ्वी तब तक का मूल कारण एव महत्, तमस् एवं रजस् की साम्यावस्था।

२५ पुण्य—वस्तु का आवृत्त चतुर्थ।

२६-३० पञ्च कर्तव्य—२६ काल, २७ नियति, २८ राग, २९ विद्या और ३० कला। ये पुण्य का आवृत्त कर लत है जिससे पुण्य का अपने मूल रूप का भाव नहीं होता और वह अपने का अनित्य, अप्रण एव सङ्कुचित समझत लगता है।

३१ माया—अहम् और इहम् का पुण्य एव प्रकृति रूप में भेदक तत्त्व।

३२ सद् विद्या—अहम् और इहम् का पुण्य एव प्रकृति में एकत्व की प्रतीति कराने वाला तत्त्व।

३३ ईश्वर—इहम् का प्रधानता और अहम् की योग्यता रहती है। इसमें आनन्द शक्ति का प्राधान्य रहता है जिससे

सृष्टि की क्रमिक अभिव्यक्ति का बोध होता है।

३६ सदाशिव—इसमें इच्छाशक्ति का प्राणाय रहता है। यद्वा जगत् का अव्यक्त रूप में बोध होता है। यह अतवर्ती निमेष है। उभय सदाशिव शक्ति की अभिव्यक्ति का कारण है।

३७ शक्तिनत्व—इसकी चर्चा पहले की जा चुकी है।

३८ शिवतत्त्व—इसके संबंध में भी पूर्व निबंदन किया जा चुका है।

प्रत्यभिज्ञा दर्शन में स्थूल से सूक्ष्म की ओर जीवयात्रा का निदर्शन इन तत्त्वों के परिचय के उपरांत करना अप्रामाणिक न होगा। प्रत्यभिज्ञा का अर्थ मनन भा होता है। नात वस्तु को पुन नात करना प्रत्यभिज्ञा है।

प्रत्यभिज्ञा दर्शन में शिव मूल तत्व है। प्रकाश उसका आंतर रूप है और विमल उसका बाह्य। विमल रूप में ही वह समार में सशक्त अभिव्यक्त है। बचुर के आवरण के कारण जीव जिन के मूल रूप की उन्नी प्रकार नहीं जान पाता जैसे रास में छिपी अग्नि का द्रष्टा। यह स्थिति जाव में पशुभाव की है। हमने उम वास्तविक स्वरूप का पट्टान जा चित्स्वरूप है अनुभूतिगम्य है। प्रत्यभिज्ञा बारिना वृत्ति में बड़ा गया है—

विनामव हि द्वात स्थितमिन्द्रावशादिति ।

भागार निरूपानमधजात प्राणान् ॥

मह बिनि परावाक भट्टारक गिर वा ह्यय है। इस परम सत्ता की पट्टान ॥ हा जाव में पशुभाव ममास होता है। इस परम पद का प्राप्ति में जीव परमात्मा बन जाना है और ३६ तत्त्वों में बना गापर कमा तमय होता है इसका अभिव्यक्त गुण में इस रूप में वगन किया है—

व्यापिनमभित्तमित्थ

सर्वात्मान विधूतनानात्वम् ।

निरपम परमानन्द

यो वेत्ति स तमयो भवति ॥

इस अवस्था में साधक अपने भीतर ही ब्रह्मांड का दर्शन प्राप्त करता है। यह सर्वोत्तम सन्नाहि की स्थिति है। मालिनी विजयोत्तर तत्र में कहा भी गया है—

अकिञ्चिद्वत्तत्त्वस्य गुरणा प्रतिबोधित ।

उत्पद्यत य आदेश शम्भोऽसाबुदारित ॥

प्रत्यभिज्ञा की साधनाप्रणाली शकाराधाय के भद्रतवाद से भिन्न है। उनके भद्रतवाद में केवल ज्ञान का अत्युद्धता साधना का चरम परिणति पर संस्थित होती है। भक्ति के लिये उनकी साधना प्रणाली में कोई स्थान नहीं, क्योंकि भक्ति में द्वयता होती है तथा भक्ति में अज्ञान का स्थान उनके मतानुसार होता है। भक्ति की भी एक प्रकार का आवरण ही मानन है इसलिये विद्वान्द के लिये वे इस आवरण की परिमर्माति से ही मोक्षप्राप्ति सम्भव समझते हैं।

प्रत्यभिज्ञा का दृष्टि श्वर के इस भद्रत से भिन्न है।

कग जा चुका है कि प्रत्यभिज्ञा का अर्थ है नात वस्तु का फिर स नात करना। यह ज्ञानावर्तचि गुरणात्मा से होती है। दीक्षा अज्ञाननाशकरा एक सत्य ज्ञानदायिका शक्ति है। अज्ञान की इस दर्शन में पशुवधन भा कहते हैं। एमा गुण जा तत्व का द्रष्टा होता है जबकि द्वारा लिए गए ज्ञान से उसी प्रकार साधक अज्ञान का लाभ करता है जिस प्रकार किमा दूनी व माध्यम ॥ वणिन प्रेमिका व वरान स प्रमी का अज्ञाननाम होता है। शिव का ठान ठान पट्टिचानन व लिय गुर की

महता इसम अनिवार्य बताई गई है।
यह प्रत्यभिज्ञा दर्शन है।

प्रमाद का ध्यानवाद प्रत्यभिज्ञा से निश्चय ही
प्रभावित है। किंतु उहान इस प्रभाव
मे मौलिक चिंतन द्वारा भौतिक विवास
क्रम और मानसिक विवासक्रम का
तेसा समन्वय किया है कि वह स्वयं म
मौलिक हो उठा है। उसमे जावन है,
एकतर दशन रा तरह पनायन नही।

यह प्रत्यभिज्ञा दर्शन अत्यंत व्यावहारिक तथा
हृदयग्राही है। सहज समाधि का यह
रागात्मक पद्धति है। शिव स्वरूप है।
इमलिय काव्य ज। रमय काव्य ह
उनसे इसरा परम मामीप्य या एरा
वयव है। भक्ति एव ज्ञानमार्ग का
इस दर्शनप्रणाली मे अद्भुत सामरस्य
है। निगुणता, मगुणता एव सुधियाना
पन ज। हिंदी साहित्य का त्रिवाराण है
उनका भी इसमे मल खाता है। यथाय
और मादश का भा दम मत मे एका
वय है। इमलिय कामाधनी मे दम
दर्शन की व्याप्ति हिंदी साहित्य की
मूल चिंतन धाराआ व सामरस्य का
मुदर और सपन प्रयन है।

भौतिक उत्पन्न व लिय, सामाजिक उत्कर्ष
के लिये उ होन भौतिक और प्राकृतिक
सम्पत्ता का समन करा यद्धा और
हटा के योग स मानवता के प्रवद्धन के
लिये सदश दिया है। इस प्रकार
लौकिक अलौकिक, वचारिक, सामा
जिक, माकृतिक सभा दृष्टिया का सह
अस्तित्व स्वाकार बरत हुए उहोने उन
मबका एसा सम वय कराया है जना
समन्वय तुलमादास व पश्चात् हिंसा
साहित्य मे बाद दूसरा वनि युगमगल
के लिय नही कर पाया।

कामाधनी सनस्त मानव को सत्रस्त समाज
की, विभिन्न प्रकार व आस्थावादिषा
का चिरवन मंगल और सामाजिक

अभ्युदय के लिये एक मंच पर उपस्थित
करती है। वह मंच सबका होन हुए
भो, कवल प्रसादजी द्वारा विनिमित्त
है, पर वह साक व लिये है और है
स्कृतिमय, चेतनामय, अखंड कृतिमय
और जीवन।

इस प्रकार प्रमादजी आधुनिक हिंसाहिंसा
व महानतम वनि, विचारक एव अनुपम
साहित्यस्रष्टा के रूप मे हमारे समुल
उपस्थित हैं जिनकी कृतियां अपन
गुणधर्म व कारण सवहपात्मक रम
सिद्धि का धारा स साक के शुष्क कूलों
का हरा भरा बरन का प्रयत्न करती
हुई दीवती हैं। ऐसे युगप्रवक्त कलाकार
मरुटा वर्ष मे एकाव दुआ करते हैं
जिनकी कृतियां के अक्षर मगलदीप
वनवर युग युग तक जन जन के मानस
का निमिर मे प्रभा की किरण का स्पर्श
स ज्योतिदान करन हैं। प्रसादजी ऐसे
हा मरुद् रजाकार, कलाशिल्पा एव
साहित्यचिंतक, साधक तथा स्रष्टा हैं।

कामिनि = का० १२। वि० १८।

[म० खी०] (स०) कामवती स्त्री, सुंदर स्त्री, मंदिर।

कामिनो = वि०, ४६, ५१।

[म० खी०] (हि०) (२० 'कामिनि')।

काम्य = का० कु०, १८, ११४।

[वि०] (स०) जिस वस्तु को इच्छा की जाय, इच्छित
यत्त अथवा काम।

कायकर्म = का०, २७०।

[म० पु०]
(स०) शरीर से होनेवाला काम, यह काम जो
शरीर के लिए किया जाय, जैसे स्नान।
कम रूपी शरीर।

कायर = वा० २०१। म०, १७।

[वि०] (हि०) डरपोक, भाद, कातर, घसाहमी।

कायरता = वा० १८।

[म० खी०] (हि०) भादता, डरपायन, कादरता।

काया = का०, ४६, ६७, १२३, १८४, १८३,
[म० खी०] २२६।

(नं०) शरीर, तन, बदन, दह ।

कारक = का० पु० ६४ ।

[वि०] करनेवाला, किमा के स्थान पर या प्रतिनिधि के रूप में काम करने वाला । साधन ।

कारण = का०, ५४, २३६ । ऋ० ५३ । प्र० ८ । म०, १६ ।

(स०) जिसके प्रभाव से या फलस्वरूप कोई काम हो । सबब, हेतु, निमित्त, प्रयो जन । वह जिसमें कुछ उपन या प्रकट हो । मूल साधन । तात्रिक उपचार या काम ।

कारा = श्री० ५६ । का०, ६५ ।

[म० स्त्री०] (स०) ब्रधन का, कारागार जेल । पीडा क्लेश ।

कारी तरवारे = चि० ६५ ।

[म० स्त्री०] (श० भा०) काला तलवारो । भयकर युद्ध विनाशकारा समर ।

कारण्य नीर प्रवाह = का० पु० ११५ ।

[स० पु०] वर्षणा से निकली हुई ग्रामुषा की धारा । अत्यंत कारुणिक रूप से नयन का नीर का प्रवाह ।

कात्तिन = प्र० सं० ३२ ।

[महा पु०] (स०) कालिका का महाना ।

[कात्तिन कृष्णा कुहू क्रोध से काली करका भरे हुए—विद्यालय में बदलेला का पुवार । प्रसाद मगान पृष्ठ ३२ पर मन्त्रित । जीवन की पीर भयानुर मकटापन ग्रमहाय भयकारमय विपत्ति का स्थिति में हाथ पकड़ कर खाने पर भा काद मायी नहीं मिला । पर ऐसा स्थिति में भी तुम्हारी ध्वनि मान हा हमारे लिय न्यायमानिका हुई और यही हमारा प्राण है, उत्त वनित का यहा भावार्थ है । २०—प्रमाण मगान ।]

काल = श्री० ४५ ७० । का० पु० ३०

[महा पु०] (म०) ११५ । का० १८ ३४ ६५ १६५ २६१ । प्र० ३० । ल० ४८ ।

ममय की वट सत्ता जिसके द्वारा मृत वतमान, भविष्य का बाध होता है समय । मृत्यु यमराज । उपयुक्त समय अवसर । अनाल, दुर्भिक्ष । शिव का एक नाम ।

कालजलधि = का० १८ ।

[स० पु०] (म०) काल रूपा सागर, मृत्यु सागर ।

कालपरिधि = का० १६३ ।

[म० स्त्री०] (म०) ममय चक्र समय का घेरा ।

कालरात्रि = रा० २३ । म० ८ ।

[स० स्त्री०] (स०) अंधेरा और भयावना रात । ब्रह्मा का रात जिसमें सारी सृष्टि का लय हो जाता है । प्रलय की रात मृत्यु की रात । निवाला की रात । कतल की रात ।

काला = का० १७ ।

[मि] (हि०) काजल या कोयल का रंग का स्याह कृष्ण । क्लृप्त कुरा । भारा प्रचंड ।

कालापानी = श्री० २२ ।

[स० पु०] (हि०) आजीवन कठार दण कारावास । अड मन निकाबार द्राप में भारतायो का न्या जानवाला आजीवन कारा दण ।

कालिंदी = श्री० ३१ । का०, १४२ १५६ ।

[स० स्त्री०] (म०) चि०, २१ । का० पु० ११२ ।

यमुना नदी जो कलिद पवत से निकलता है ।

कालिमा = का०, १४ ८२ ८७ १७५, १८६ ।

[स० स्त्री०] ऋ० ३५ ८० । ल०, २६ ५६ ७२ ८० ।

कानापन कालिग कलौछ अंधेरा, कंक लाछन ।

काली = श्री० १६ २१ ३७, ५७ । का०

[म स्त्री०] (स०) ६६ १४२ १४७ १६७ । ल०, ३७ । बडा कालिका पावती गिरजा ।

[म० पु०] (हि०) एक नाग का नाम जिस की कृष्ण न मारा था ।

[मि] (हि०) श्याम रंग वाला । कृष्ण रंग वाला ।

[काली आर्ति का अन्वय— लहर' म पृष्ठ ३७ पर

सकलित गीत । इस गीत का भावार्थ है काली आस्था का अवकार जब हृदय के आर पार हो जाता है तो मद में अचेतन (सबवासम) बनावार रग का बहार लेकर क्षितिज के पार एमा चित्र प्रकाशित करता है जिसमें केवल प्यार ही प्यार रहता है और केवल सुसुकरानी चांदनी रात एव सारी की किरणों में पुलकित गात पर मधुवी एव कनिया के घात चलते हैं और मलयज वात बुलके में घाता है जिससे बादल की भांति स्वप्नों का डुलार मित्रता है और जिसमें चार बूद आसू मिलने हैं । तब कलाकार लहरों का भांति अंधी होकर उठता है और उसका श्रुय मधुर व्यथा से चार उठता है और उसमें सुषे किमलय सी पार भर जाता है तब छाता पर आसू का तरल उगम का ममीन या पतझड़ सा गिर जाता है और फिर भा कलाकार की पागल रट प्यार प्यार हा रहती है । द०—लहर ।]

काली काली = १०, ४८ ।

[वि०] (हि०) एकदम स्वाह । धनधोर काल । भयकर कुप्याम ।

काले = भा०, ४५ । का० कु० ३८ । का०, [वि०] (हि०) १४२ । ल०, ३० । (३० 'काला' ।)

काले-काले = ल०, ७६ । [वि०] (हि०) अत्यंत काला । बहुत कालियापूर्ण ।

काल्पनिक = का०, १३५ ।

[वि०] कल्पित आरोपित, कल्पना करने का भाव । (बहु गाय) जो गम धारण करने के योग्य हो ।

काशी = का० कु० ।

[सं० लो०] (सं०) वाराणसी नाम से प्रसिद्ध नगरी ।

[काशी—गान—] गाननकुसुम म 'जननी जियकी म मूमि हो, वसुधरा हो बाणी हो ।' बाणी का इस रूप में उत्सव । व हो

महापुरुष अविनाशी होने है जो सारी वसुधरा की बाणी समझते हैं । यह राजा काश के नाम पर वसी ससार की प्राचीनतम नगरी है जो वर्तमान में वाराणसी नाम से विख्यात है और गंगा के बाएँ तट पर धनुषाकार बसी हुई है । प्राचीन समय में काशी प्रदेश के लिए प्रयुक्त होता था । नटराज विश्वनाथ का त्रिशूल पर बसी यह नगरी प्रकाश का मायमाभूमि और कवि प्रसाद का जन्मभूमि रही है । तुलनादासजी का कथन है—

'मुक्ति ज म महि जानि नान खानि अथ हानि कर ।
जह बम सभु भवनि सो कासी सद्म कम न ।]

काश्मीर = म० १० २१ २४ ।

[सं० पु०] भारत में हिमालय की तराई में स्थित मनोरम प्राकृतिक प्रदेश । (म०)

[काश्मीर—महाराणा का महत्त्व] में स्वास्त्वकर जलवायु के लिये काश्मीर का उल्लेख हुआ है ।]

काष्ठ = का०, ११८ ।

[सं० पु०] (म०) (द० 'काठ' ।)

कात्सा = का० ४५ ।

[वि०] (हि०) के सहस्र ममान या तरह ।

कासों = बि० ६१ ।

[सव०] (श० भा०) किमस ।

काहि = बि०, ६४ १५६ १६७ ।

[सव०] (श० भा०) किम की ।

काहसो = बि०, ७२ ।

[सव०] (श० भा०) किम से ।

किंकिनि = बि० ६१ ।

[सं० लो०] (हि०) चंद्र घटिका, करधनी ।

किंजल्क = भा०, २२ । भ०, २८ ।

[सं० पु०] (सं०) कमल का बेसर, पराग, वमल ।

किंजल्क पुत्र = का० कु०, ४८ ।

[सं० पु०] (सं०) कमल का समूह ।

किंसुक = बि० १७२ ।

[सं० पु०] (हि०) पलाय, दाक, टेसु ।

किंतु = का०, ७, ४४, ५६ ८४ ८६ ६२,
[मध्य०] (हि०) ६४ १११ ११३, ११८, १२३ १३१,
१४२, १४५ १४६, १४८, १५०,
१५४, १५५, १५६ १५६ १६०
१६१ १६२, १६४ १६५ १६७
१६८, २०० २०१ २१० २२६
२१८ २०६ २६१ २६५ २७०
२७१।

पर, लकिन परतु वरन वरनू जिन।

कितना = का० ७६। का० कु० १। का० /
[क्रि० वि०] ३७, ३८ ५१ ५२ ५४ ६३
(हि०) ६५ ६६ ६८ १११, १२०
[प्रश्नवाचक वि०] १२६ १५८ १५६ १७६ १७८
१८६ १६२ १६४ २०८ २०६
२२६ २२८ २३४ २३५ २४७
२४८ २६१। प्र० ७७ ७३। ल०
३०।

किस परिमाण मात्रा या मस्या का।
अधिक बहुत। किस परिमाण या
मात्रा मे ? अधिक बहुत, ज्यादा।

कितनी = का० ५ २७ ६४ ६६ ६७ ६६
[क्रि० वि०] ७७, ११५ १२२ १५०, १६०, १६४
(हि०) १७२ १७६, १८० १८४ १८६
[प्रश्नवाचक वि०] १६० १८२ १६३, २०६ २११,
२२३, २२८ २२८, २४६। ल० ११।
(८० कितना)।

कितने = का०, १७ २५ ५६, ७५ ८४ ८८
[क्रि० वि०] १६४ १७१, १७६ १७८ १८३,
(हि०) २५७ २७२। ल० २६।
[प्रश्नवाचक] (१० कितना)।

[कितन दिन जीवन जलनिधि मे— लहर मधु
२६ पर संचलित गात। इस गात का
भाव इस प्रकार है। अंतर की आग
स उदलित होकर जल धूमने के लिये
लहरा उठ उठकर गिरता रहती
चलती गतिविधि में नव छवि का सृजन
कितने दिन तक जावन मिथु मे करणी।
जावन के इस निरवधि पथ मे मधु
सगीत से पूर्ण प्रतीत की रागात्मक

विरगति गागात यह गागा गा
कमल हजर म कज तज गागा।
आगा व दम मधु आधि म दम
निमन हनमधु म मधु, नीं प्रीर
ताज कज ल मगा ताज निज
बनागा। १०—नर।]

किधर = का० १२ ७८ १७३।

[क्रि० वि०] (हि०) किम धार ? किम तरक ?

किधौ = ७७ ७६ १४० १६१।

[प्र०] (प्र० भा०) कथवा या।

किन = का० ८७ १७७। ल० ६०।

[गण०] (हि०) किन का बयवत।

किनारा = का० ४१। ल० ५१।

[सं० पु०] किना वस्तु का वह भाग जो उभर।
(पा०) नरार्द्र या रोका नमात हुआ।
अभिनिमि। नगा या जवान का
लट तार।

किनारी = कि० १००।

[सं० स्त्री०] गुनहल या रुपहल धाति रग का पतला
(पा०) गाता। (बाहर)

किनारियाँ = का० २८५।

[सं० स्त्री०] (हि०) किनार जाति का लिपि। गागा।

किमपि = कि० १३२।

[प्र० य०] (सं०) किंचित कुछ भी।

किया = का० १०, ७, १६, २२ २६। का०,
[क्रि०] ३३ २४ ४७ ५५, ६७ ७२ १४०,
(हि०) १६१, १६५ १८१, १६६ १६७,
१८६ २०० ११६ २२६, २३५,
२८६। प्र० २ १८ १६ २१। ल०,
१ ३ ६ १०, १२ २३।
करना का कृतवाचक रूप।

किरण = का० १८ ४१ ६०। का० कु०,
[सं० स्त्री०] १। का० ६ ३७, ४७ ५०, ८१,
(सं०) ८२ ८८ १८० १५६ १६७ २२७
२४६ १५२ २६०। ल० २८ ७६।
प्र० १, ७। कि० २१।
ज्याति का व अत मूम रेखाएँ जो
प्रवाह रूप मे प्रचलित पदार्थों से

निकल कर फलनों हुई दिखाई देती हैं।
मृग, चन्द्र, दीपक आदि के गेशनों की लकीर।

[किरण—भरणा' में पृष्ठ २८—२९ पर मकलित गहत्तपूण कविता। मुदर उपमाना से भूतिरत इस कविता में प्रमाणजी न भाषा का जीवत रूप में उपस्थित किया है। किरण का बिलग हुई दब कर कवि जिनामावण यह प्रकृता है कि आज तुम क्यों बिखरी हो? तुम किमकं अनुराग में रगा हो? स्वरा कमन व समान परमाणु का पराग उड़ाती है और पृथ्वा पर प्रापना व समान भूवा हुई हो। मद्यपि मधुर सुरला भी तुम ही तो आसीन हो। किमी भनात विश्व की वेदना झूना ना तुम बोन हो? तुम प्रकृति की मुदर मरस हिनार उठाकर परमानन्द देती हो। स्वर्ग व मृग के समान तुम उमन भूतक का मिनाती हो। तुम कमा मज्ज जाटती हो। क्या तुम किरण की विशाक बना दागी। तुम उपा मुदरी व कर का सकेत द किम प्रेमनिषेत्त दिखाती हो। ओ चचल। तुम अनन्त मृग पथ पर बहूत चल चुकी हो, ठहरा। कुछ विश्राम करा और मन मंदिर व द्वार खोला ताकि वहाँ सदा बसत जाग जाए।
२०—भरणा।]

किरणावलि = का० कु० ४३। चि०, १४६।

[स० ली०] (म०) किरणा का समूह या पंक्ति।

किरन = का०, ८८, १७० १७५, १८१। चि०,

[स० पु०] ३८। ल० ३८।

(हि०) (२० 'किरण')।

किरन रंगलियाँ = ल०, १०।

[म० ली०] (हि०) किरणरूपा जगलिया। प्रवाश किरणा का पुत्र।

किरन कली = का०, १७८।

[म० ली०] (म०) किरणरूपी कवी मान किरण।

किरने = चि० १, १४२।

[स० ली०] (ब्र० भा०) (२० 'किरण')।

किरनों = का०, ३८। का०, ६७, ६८, ६८, ६९,

[स० ली०] १५१, १७७, २३४। ल०, २१।

(हि०) 'किरण' का (बहुवचन)

किरणों की सी = का०, १७२।

[वि०] (हि०) किरण सा' (बहुवचन)।

किरातहि = चि० ६१।

[स० पु०] ((ब्र० भा०) एक प्राचीन जंगली जाति, किरात को।

किरीट = का० ७६।

[स० पु०] (म०) सिर बाँधने का एक आभूषण, मुकुट।

किलक = का०, १७६।

[म० ली०] (म०) किलकने या हृष्यकनि करने की क्रिया, हृष्यकनि। किलकारी।

किलकार = का० २८५।

[म० पु०] (हि०) स्पष्ट हृष्यकनि।

किलकारना = का०, २६।

[त्रि० श्र०] (हि०) आनन्द या उन्माह व समय जाद से अस्पष्ट और गंभीर ध्वनि करना। हृष्यकनि करना।

किलकारी = ल०, २३।

[म० ली०] (हि०) हृष्यकनि।

किलान = का०, १११, २०१।

[म० पु०] (म०) एक विशिष्ट जंगली जाति किरात, भील।

[किलात—२०—कामायना के चरित।]

किनाङ्क = का० कु०, ६०, ११६।

[म० पु०] (हि०) लकड़ी का पल्ला जो दरवाजा बंद करने के लिए चोपट में जडा रहता है, पट, कपाट।

किशोर = का० १०३, ११३।

[स० पु०] (स०) ग्यारह से सोनह वर्ष तक का प्रवय्या का अवध। पुत्र, बेटा।

[किशोर—प्रमथिव व नायक का नाम। २० प्रमथिव।]

किशोरवय = का०, १०।

[मं० पु०] (सं०) ग्यारह से सोनह वष तब का अवस्था ।
विशारावस्था ।

किशोरी = चि०, ७४ ।

[मं० मी०] (मं०) ग्यारह से शालह वष तब का अवस्था ।

किस = क०, १०, २६, ३१ । वा०, २४

[सब०] २५ २६, २८, ३०, ३०, ५२ ८६

(हि०) ११३ ११४, ११७, १२६ १४८

१५०, १५६ १५७, १५८ १६०

१७१ १८४ १६२ २१३, २१३

२२२ २६१ । प्र०, १२ २३ । म०

१० १५, १६ । ल० २० ४४ ।

कोन का विमलितमय रूप ।

किसलय = श्री १६ २३ २६ ७६ । क० १३

[लं० पु०] (सं०) १७ । का०, ४७ ६८, ६७ १०२ ।

चि० ५७ ७१ । म० २७ ७२ ।

प्र० १७ । ल० ३७ ५७ ७१ ।

नया निकला हुआ पण । बोलल पता

कला ।

किसलयमय = म०, २३ ।

[वि०] (हि०) किसलय रूपा या किसलय स युक्त,

कोमल पत्ते से ढका हुआ ।

किमी = क० २६ ३१ । का० २६ ३८

[सब०] १२८ १६० २८० २८४ । प्र०,

२ १४ १७, २०, २४ । म० २३ ।

बाई का वह रूप जो उसे विमलित

लगने पर प्राप्त होता है ।

किसे = का० ३७, ५६ । प्र० १३ ।

[सब०] (हि०) किसका ।

[किसे नहीं चुभ जाय, नेनों के तीर नुकीले—

कामना का पारसी रगमच पद्धति का

३ पक्ति का गीत । प्रसाद संगीत में

पृष्ठ ७८ पर सम्मिलित । पलका के प्याल

रसात है झलकी ने फटे ग्रसनेवाले

हैं । दसती हैं ननों के नुकीले तीर से

कोन बच जाता है ।]

कीट = भा०, ४५ । का०, ६० ।

[सं० पु०] (मं०) काठे मकाड़ा । जमा हुई मल ।

कीनिए = क० २१ २२, २६ । चि० १४७ ।

[क्रि० सं०] (हि०) क० ११, २१ ।

‘बचना’ का विधि क्रिया । (२०
‘बचना’ ।)

कीर = चि० २३, ६६, १५६ ।

[मं० पु०] (मं०) तोता गुप्ता, गुप्ता । ०पाथ ।

कीरन = चि०, २३ ।

[सं० पु०] (प्र० भा०) तान । बार का गढ़मन ।

कीरति = चि०, ५०, १२ १०६ ।

[सं० मी०] (प्र० भा०) (२० बाँटि ।)

कीरति = चि० ७० ।

[सं० पु०] (प्र० भा०) ताने की ।

कीर्ति = क० ६ । का० ६ ५८ । चि० ४८

[सं० मी०] १५४ । म०, ८ ।

(सं०) गुण्य क्वाति बड़ाई यग व० भन्ना

या बड़ा काम जिसका करने के बाद

नाम या मल हो ।

कीर्तिकलाप गद्य = चि० ४८ ।

[मं० पु०] (सं०) मल का समूह वा पुत्र । मल रूपी

पराग का सुगंध ।

की सी = का० १८ ।

[वि०] (हि०) व० भवान । (२० का मा ।)

कीन्हें = चि० ४२, ६४ १७२ ।

[क्रि० मं०] (प्र० भा०) किया ।

कीर्ति = चि० ५२, ६४ ७४ ।

[क्रि० सं०] (२० की हू ।)

कीन्हो = चि० ६० ६६ १७१ ।

[क्रि० सं०] (प्र० भा०) किसी काम का पूर्ण कर लिया ।

कीलाल = चि०, १३६ ।

[मं० पु०] (सं०) पानी । रक्त लहू । प्रभुत । शहद ।

[वि०] पशु । बघन का दूर करनेवाला ।

कुकुम = का० १००, १०२, १७५ । ल०,

[सं० पु०] (सं०) १० । का० कु० ११ ।

काश्मीर देशज गद्य द्रव्य ।

कुकुमचूर्ण = का० १५६ ।

[सं० पु०] (सं०) काश्मीर में उत्पन्न एक प्रकार के गद्य

द्रव्य का चूर्ण ।

कुकुमारण = का० कु० १० ।

[सं० पु०] (सं०) कुकुम का ललाई । कुकुम के समान

लाल वण ।

कुचित = का०, कु०, ४५। का०, १०३।
[वि०] (स०) टेना मडा, पुपुगारा।

कुज = आ० २७, ४८। व० २८। का०,
[म० पु०] (म०) १० ७८, ६०, ११३, १४६ १५८,
१७५ १८० २४३, २६६। वि० ५,
२३, ३८, ४५। प्र० १० म०, ६।
स०, १२ ३२, ४३।
लता और पोषा न घिरा मडप का
तरह का म्यान।

कुज मँह = का० कु०, ३४।
[वि०] (म० भा०) कुज के मध्यम

[कुज में घरी पजती है—विशाल नाटक का
नरत्व की समाप्त नतकी द्वारा
गाया जानवाला उत्तम टक का तीन
पक्तियों गीत, प्रसाद-मगात में पृष्ठ
१५ पर मन्त्रित। कुज में अशा का
स्वर मन का आकर्षित कर रहा है पर
बुद्धि जान में बरज रही है। सन्या
रागमयी ताना के भूषण से सजकर
ग्रामनिन कर रही है। लज्जा तजकर
बतु लौटकर उम दखू।]

कुजर = वि० १६१।
[म० पु०] हाया। वग। एक पवन। अजना क
(म०) पिता। एक नाम। उपपन्न छत्र का
एक भण। पापल। हस्त नक्षत्र। आठ
की मन्था।

कुजर फलभ = का० २५८।
[स० पु०] (म०) हाया के पचवर्षीय वृक्ष।
कुठित = वि० ६७।
[वि०] (स०) मग्न मृग जो तेज न हो, निवन्मा।
कुतल = का० ८३। वि० २२, २५। म०
[स० पु०] (स०) २०।

जो एक मध द्रव्य। शिरक वाल,
केम। बटुलपिया।

कुद = का० ८७। वि० ५५।
[स० पु०] (स०) एक फूल। कमल। कनर। एक पहाड़।
[वि०] कुवर का नौ निधिया में से एक। नौ
की मन्था। विग्यु। गिराद। मग्न
कुठित।

कुदवली = वि०, १८, ५५।
[स० ला०] (म०) कुद पून की बली।

कुदन = वि०, ४५।
[म० पु०] (म०) उत्तम साना।

कुभ = आ०, २७। वि०, २८।
[म० पु०] घडा। हाथी के मस्तन का उमडा हुआ
(म०) भाग। एक राशि का नाम। प्राणायाम
का एक विभाग। बुद्धदेव का जन्म
का नाम। एक द्रव्य। एक वानर। एक
पड। प्रति बारहवें वर्ष पडनेवाला
एक पर्व।

कुम्भकर्ण सा = का० कु० २५।
[वि०] (हि०) घडे का ममान वान वाले का तरह।
कुम्भकण नामक राज्ञ का तरह
विशार।

कुम्भ = वि०, ६७।
[म० पु०] (स०) घुरा काम।

कुचक्र = का० कु०, ६३। का०, १८६।
[म० पु०] पड्यत्र। किंसा का मार डालने या
(स०) उसको हानि पहुचाने का किए जाल
रचना।

कुचल = का०, १३६।
[पू० क्रि०] (हि०) कुचलकर।

कुचलते = का० २००। का, १३३।
[क्रि० म०] (हि०) बार बार गया बोट या पाव पहुचाना
कि घायल विहृत हो जाय।

कुचलना = आ०, ३०, ४५। का० कु०, ८३।
का०, १५ ५८। म०, २५।

[क्रि० म०] (हि०) किमी वस्तु के ऊपर बार बार गया
पाव या बोट पहुचाना कि उसका रूप
विहृत हो जाय। रौन्ना।

कुछ = आ० ६, २४, ४५, ४५ ५१, ६६,
[वि०] [हि०] ६७। व०, १३ १८, २३, ३०।
का० कु०, ११२। का०, ५, ६,
७, १६ २६ ३२, ४०, ५२,
६४, ६६ ६७ ६८ ८१, ८५, ८६,
८६ ९० ९२, १००, १०५, १०६,
१११, ११५, ११६, १२०, १२७,

१२६, १३०, १३२, १३६, १४०
 १४२, १४३, १४५, १४६, १४९,
 १६२, १६३, १६४, १६७, १७७
 १७८, १६५, १७६, १८२, १८४
 १८५, १८६, १८८, १८९, १९०
 १९५, १९६, १९८, २०५, २०६
 २०८, २१०, २१३, २१४, २१५
 २१६, २१८, २१९, २२, २२२
 २२५, २२६, २२८, २३०, २३३
 २३४, २३६, २३७, २४०, २४२,
 २४५, २४७, २४८, २४९, २६०
 २७०, २७१, २७२, २७८, २७९
 २८०, २८४, १८७, २८८, २९,
 २८२। ॥ ७। प्र० ८ १६ २०।
 म० ४ १६। ल० १८ २१।
 थोड़ी सरमा या नाम मात्र का जरा
 सा घाटा सा। (मव०) बाईं।

कुछ करके = का० २६६।

[पुव० क्रि०] (हि०) थोड़ा बहुत करके निश्चय करके।

कुछ कुछ = का० १४२ १४३ १५७ १८०

[पि०] (हि०) १८२ २६१ २६६ २८०।

थोड़ा थोड़ा।

[कुछ नहीं—मायुरा वष २ खंड २ म० ५ सन्
 १६२४ म मयप्रथम प्रकाशित और
 'अरना' म वृष्ट ७५-७६ पर मकनित
 कविता। जय नि यह बाईं कौी कहुता
 है कि उमक पाय समुद्र घन नगा है
 और व० सचमुच वगान है ना मुने
 लना हगा सा जाती है। एत व्यक्ति
 न नाम मक्ता निधिमा का आधार
 प्रस्तित शिश का मला प्रमाता न
 वग म्हा है बवावि उमरा प्रापय
 का हा नटी है और व्यक्त म फा ८०
 वगु मगर साम गव वरन है। जय
 मगा शिश की प्रमाता जय कमा घपना
 वगु म मला तर मुम्माग कुम्भ भा
 नो रट जायगा और मुस तर मल
 हा जायगा और तव भा म्हा कम्पन
 व गाय मग मिता। गान र नाकर

क नाविव और गुप्त निधियो के यज्ञ
 का देय वह मृदु हसी हम रहा है
 मुम्हारी एसा समझ पर, और तुम कहे
 हो कि बगाल के पास कुछ नहीं।

कुटिया = मा० १६ ७६। वा० १७६। १७६।
 प्र० ३ ४। ल० ४०।

(हि०) कोपटा कुटा साधुमा का वह निवास
 स्थान जहाँ दृष्टकर व साधना करते हैं।

कुटिल = का० १४ २८। वा० कु० ८ ६३,
 ८८ १०५ ११३। का० ११ म०,
 २२। प्र० ३।

(स०) वक्र टेगा घुमा या बल लाया हुआ,
 छलेवार दुष्टाला। कपटा छात्र।

कुटिलता = मा० २२। का० कु० ८८।
 [स० स्त्री०] (हि०) टेनापन छत्र कपट।

कुटिला = वा० कु० ४४। पि० ४६ ७।
 [पि० स्त्री०] (स०) (० कुटिल)।

कुटिलाई = पि० १८३।
 [स० स्त्री०] (प्र० भा०) (० कुटिलता)।

कुटी = वा० कु० ६०। प्र० ६। ल०
 [स० स्त्री०] १२ ३२।

(स०) (० कुटिया)।

कुटार = का० १४६। प्र०, ३।
 [म० पु०] (स०) (० कुटिया)।

कुमीर = पि० ५८।

[पु० पु०] (प्र० भा०) कुटीर से।

कुटुन = का० १८७।
 [म० पु०] (स०) परिवार पालनदान।

कुटुथी = का० १८७।
 [म० पु०] (स०) परिवार व नाम मानमान व लाग।

कुठार = पि० १७३।

[म० पु०] (स०) कु हाथी परशु परता।

कुटुमल = मा० ७५। ल० २५।

[म० पु०] (स०) कजा वाग्य।

कुतूल = का० ५४ ४५ ५१, ८३ ८८, ९७,
 [म० पु०] ११५ २०४ २७८। ल० १०, ७२।
 (स०) बाद रम्भु या बाल दमन या गुनन का

प्रबल इच्छा । विनापूर्ण उत्तरा, काटा । कोतुक, सेनवाड, आश्वय, अचमा ।

कुत्तिसत = का० कु०, ८८, ६४ १३२ । का०, [वि०] (स०) ११६ । म० २ १४ । कुष्ठ रोग । निम्नि ।

कुवोल = वि०, ११ । [म० पु०] (हि०) युरी, अनुचित या अशुभ बात ।

कुमति = वि० १७३ । [सं० ली०] (म०) मूलता, बुरे रास्ते पर चलनवाला बुद्धि । बुद्धिहीनता ।

कुमार = का० २१४ २५, २०८ २२६, [सं० पु०] २३०, २५४ । वि० ३० ४१, ४७, ७६ । म०, ७ ।

बेटा पुत्र । पाच वर का अवस्था का बालक । युवावस्था या उमर के कुछ पक्ष की अवस्था का पुरुष । युवराज । सनक, सनदन आदि ऋषि । मंगल ग्रह । अग्नि के एक पुत्र का नाम । भारत का एक नाम । एक वृक्ष विंग ।

[वि०] जिनका विवाह न हुआ हो कुमारा अविवाहित ।

कुमार समीप = का० २२६ । [वि०] (हि०) कुमार का पास ।

कुमार हेतु = वि० ७३ । [म० पु०] (म०) कुमार के लिये या कुमार का कारण ।

कुमारिकायें = ल० ६२ ७६ । [सं० ली०] (सं०) कुमारिया, अविवाहित लड़कियां । कुमारा का बहुवचन ।

कुमुद = का०, ७७ । का कु०, १६ । वि०, ५१, [सं० ली०] १४६, १४७ । म० ७० ।

(म०) नूतन, काका, लाल कमल । चादा । विष्णु । एक वस्त्र । एक द्वीप । आठ दिग्गजों में से एक । एक केतु । तारा । कनूर । सगात का एक ताल । कृपण, कज्ज, लोभा ।

[वि०] [कुमुद]—अयोध्यादेव । एक नाग राज का नाम । कुमुदना के पिता अद्भुत रागा यण में भाई हैं और कुश के स्वसुर हैं ।

कुमुदवयु = का० कु०, ४६ ।

[सं० पु०] (स०) चंद्रमा ।

कुमुदिनी = का० कु० ५४ । वि०, १५, १०७, [सं० ली०] (म०) म०, ८६ ।

कुई का पूत ।

कुमुदिनीनाथ = का० कु०, ६५ ।

[सं० पु०] (स०) कुमुदिनी के स्वामी चंद्रमा ।

कुमद्वती = वि०, ५० ।

[सं० ली०] (म०) नागराज कुमुद की बहिन । पड़ज स्वर म स बार । ऋतुना में से एक ।

[कुमुद्वती]—कुश की द्वितीय पत्नी । इसकी सौत चपका पुत्रहीन थी । मनिय इसी का पुत्र अघिति स मूषवश बला । जनकाडा वरत समय कुश का आभूषण हार सरयू में गिरने पर कुमुद नाग की बहन कुमद्वती उम नागलाक ले गई । ज्ञात में कुश ने सरयू को सोखने का लिय अनुव बाण उठाया । तब भयवश कुमुद नाग ने कुमुदता सहित आभूषण कुश को अर्पित कर दिया । यह कथा अद्भुत रामायण में है ।

कुम्हलाना = का कु० १३ ।

[क्रि० अ०] (हि०) पीने का हरापन समाप्त होता, मुरझाना । काति का मलिन पड़ना, प्रमाहीन, पीला हाना ।

कुम्हलात = वि० ५६ । प्रे०, २ ।

[क्रि० अ०] (अ० भा) मूखन के समाप होना, या मुरझाता ।

कुम्हलाय = वि० ४, १६४ ।

[क्रि० अ०] (अ० भा०) मुरझाकर । मुरझाय ।

कुरग = वि० १७६ ।

[म० वि०] (म०) वादामी या तामड रंग का हिरन, भृग । घुरा ढग या लक्ष्ण ।

[वि०] (हि०) घुर रंग का, घदरग ।

कुरबक = का० कु०, ८३ ।

[सं० पु०] (म०) एक फूल, कटगरया ।

कुरुक्षेत्र = का० कु० १११ ।

[सं० पु०] (सं०) एक ऐतिहासिक तीर्थ महाभारत युद्ध का स्थान ।

[कुरुक्षेत्र]—वाननकुसुम पृष्ठ १११ से ११७ तक सचलित सत्री बजिता । इस भूमि में

काँ लमा न था जा माहन की दगार
मोहित न हो। वे यमुना नून म थनु
चरान बुज म बंधावान बनत थ।
अपनी माता पिता के लिये दहाने
कम का बंध किया। मृग का मरुट
विजय बधार् एक राजसूय यग का
चर्चा करने के उपरान्त महाभारत क
मिय म्तिज न रूप म दूहे उपस्थित
किया गया है और शिशुपाल बंध का
बलान किया गया है। फिर वीरज
पाइवो का रथा मल्ल म बहा
गई है और कुत्तन म अजुन का
मोह दूर करने के लिय नर्म का उपदेश
कवि न गाता का आमार बनाकर
किया है यथा—

उठ लखे हा अग्रसर हा
कम पय स मत टरा।
क्षत्रियाचित धम जो है

युद्ध निभय हा करो।'
फिर अनुप्रति हा पाथ रणभूमि म विजयी
होन हैं। यह पञ्चात्मक साधारण
रचना है।]

कुहधि = का०, १६०।

[म० ली०] (म) बुरा दृष्टा। धृणा।

कुल = का०, २२। चि० ११ २८ ५७ ६२

[म० पु] (सं) ६७, १०२।

एक ही पूर्वपुरुष स उत्पन्न व्यक्तियों
का वंश या समूह, वंश धराना।
खानदान जाति। समूह समुदाय
झुंड। घर मकान। सामभाग,
कोन धम।

कुलकामिनी = चि० १४७।

[म० ली०] (म) प्रतिष्ठित महिला कुलवती वधू।

कुलगुरु = का०, २७।

[म० पु] (हि०) पुन परिवार खानदान आदि का
गुरु। खानदानी गुरु।

कुलपालक = चि० ५८।

[म० पु०] (हि०) वंश विनाशक खानदान का नाश
करनेवाला। नाशक।

कुलप्रथा = नि० ६४ ८६ ११, १०१, १६१।

[म० ली०] (हि०) परंपरागत रिवाज, वंशगत रिगिट
रिगि रिवाज।

कुलपाला = का० कु०, ३१।

[म० ली०] (हि०) कुलराजा। मयानि।

कुलमा = का० कु०, १११।

[म० पु०] (हि०) वंश का प्रतिष्ठा खानदान का इगता।

कुलमानी = म० १८।

[म० पु०] (हि०) वंश म खानमिमाना या अपने खानदान
की प्रतिष्ठा पर गर मिन्नखाना व्यक्ति।
वंश म गौरव का खाना रखनेवाला।

कुलपुत्र = म० ६३।

[म० ली०] (हि०) (द० कुलपतिना) (पुत्रवत)।

कुलधारन = चि० १०२।

[म० पु०] वंशगत मय दा खानदान। वंश की
(२० भा०) परंपरा का विनष्ट करनेवाला।

कुलकुल = म० १८।

[म०] (हि०) एक विशेष प्रकार की धनि का समूह
जा प्रातःकाल पक्षिया के द्वारा
होता है।

कुलाकुल = चि० १६६।

[म० पु०] समस्त वंशवालों का कुलला, व्यथा।
(हि०) घर परिवार की व्य कुलता।

कुलिश = का०, १३।

[म० पु०] बख इद्र का एक विशेष मल जो
(म०) दवापुर सधम व पल्ल महपि दधौचि
की हड्डियों स बना था। हारा।
विजली। कुठार।

कुलेज = म०, २३।

[म० ली०] (हि०) प्रम खलपूवक खिनदा धामो
प्रमोद। खीडा।

कुल्या = का० कु०, २६।

[म० ली०] (म०) नहर नाली। कुलीन वधू।

कुँर = का०, २२,

[म० पु] (हि०) वह पति जो वंश परंपरागत अधि
कारा हो कुमार। अधिवाहित।

कुविचार = का० कु०, ८।

[मं० पु०] (सं०) दुर विचार, कलत्रित करनेवाणी भाव
नाएँ दुष्टो व दुरे विचार ।

कुश = वि०, ४७ ।

[मं० पु०] (मं०) एक विशेष वृण जाति जो पवित्र कर्मों
मे काम मे आती है । राम के पुत्र ।
एक द्वीप का नाम ।

[कुश—श्रीरामचंद्र के छोटे पुत्र का नाम जो सब व
छाट भाई थे । १०—मयाभ्याहार ।]

कुशकुमुदनी = वि० ५४ ।

[मं० पु०] (मं०) कुश और कुमुदिनिया ।

कुशप्रमान = वि० ५३ ।

[मं० पु०] (मं०) कुश के समान प्रमानवाता ।

कुशारतकुमार = वि० ४६ ।

[मं० पु०] (मं०) राजा कुश का पुत्र या उत्तराधिकारी ।

कुशल = का० १४० १८० । वि० ६० ।

[वि० पु०] (मं०) तादृश बुद्धिमाना चतुर पटु कौशल
वाला व्यक्ति ।

कुशावती = वि० ४५, ४८ ।

[मं० पु०] (मं०) कुश का नगरी ।

[कुशावती—कुश की राजधानी । तारीर के निकट
कन्नूर नगरी जो अब पाकिस्तान मे
है । १०—मयाभ्याहार ।]

कुशासन = का० कु०, १०१ ।

[सं० पु०] (मं०) दुःख देनेवाली व्यवस्था, निम्नीय प्रबंध ।
कुशा का चटारा ।

कुसुम = भा०, १६ ६६ । का० कु० १०, ३८,
[मं० पु०] ४१, ५१ । का० १३ ३५, ४८, ६४,
(मं०) ६५ ११३ १४३, १६३, १७५, १८१,
२१६ । वि० ५, ११ २४ ३८ ४८
६१, १४८, १८४ । क०, १६, २०,
३७ ६६ । प्र०, ८ २४ । ल०, २५,
४५ ।

फूल पुष्प । नय का एक विशेष रंग ।
पीले फूल का रंग । बर । वह गल
जिसमे छोट छोट बाक्य हो ।

कुसुम अवचय = प्र०, ११ ।

[मं० पु०] (सं०) फूल का दृष्टकावना, फूलों की चुनना ।

कुसुमशतु = का०, २१७ ।

[मं० पु०] (सं०) वसत शतु ।

कुसुम कलियाँ = प्र०, २ ।

[सं० जी०] (हि०) फूला का कनिया ।

कुसुम कली = का० कु०, १८ । मं० १६ ।

[मं० जी०] (हि०) फूलों की कली ।

कुसुमकलिका = वि०, ५६ ६२ ।

[मं० जी०] सं०) फूलों की कली । प्रति कामना का
सूचक ।

कुसुममानन = का० १७ ।

[मं० पु०] मं०, फूलों का जगन वह जगन जिसमे
विशिष्ट विनिष्ट जाति व फूल व पद
रग है । फूलों की राशि ।

कुसुमरुज = प्र० ८ ।

[मं० पु०] (मं०) पणित कुज । लताका का फुरमुट
जिसमे पुष्प मिलता है ।

कुसुमरुतला = ल०, ६० ।

[वि० जी०] (मं०) फूलों से सज्जा हुआ कनका ।

कुसुमदल = प्र०, २५ ।

[मं० पु०] (मं०) फूल और पत्ते फूलों की पल्लविका ।

कुसुमधूलि = का० १४० ।

[मं० जी०] (सं०) पराग मकरंद । पुष्पा का बिगुल रस ।
पुष्पपराग कण ।

कुसुमपात्र = वि०, ४८ ।

[मं० पु०] (मं०) फूलरूपी पात्र । फूलों के बतन ।

कुसुम मकरंद = का० कु०, १६ । का०, ६१ ।

[सं० पु०] (मं०) (दे० कुसुमधूलि ।)

कुसुममणि = का० कु० १०४ ।

[मं० पु०] (मं०) मणिवा महज पुष्प । मणि
रूपी
कुसुम ।

कुसुम गज = क०, २३ । का० २६१ ।

[सं० पु०] (सं०) पराग, मकरंद ।

कुसुमरस = क०, ८४ । ल० २२ ।

[मं० पु०] (सं०) फूल का निचाइकर निकाला गया
पदार्थ ।

कुसुमवाहिनी = का० कु०, १३ ।

[वि० स्त्री०] (स०) पुष्पा पर चनी हुई, पुष्पा के कारण मनोरम ।

कुसुमविकसित = का०, २१७ ।

[स० पु०] (स०) फूले हुए फूल, पूर्ण विकसित पुष्प ।

कुसुमविलास = ल०, २२ ।

[स० पु०] (स०) फूला का आनन्द, पुष्पो के द्वारा मिलन वाला आनन्द ।

कुसुमवेभव = का० ४६ ।

[स० पु०] (स०) पुष्पा का पक्षय । पुष्प हा ऐश्वर्य है जिसके । प्रवृत्ति वसत ।

कुसुम समान = का० १५ ।

[वि०] (हि०) फूल के सदृश कामन अत्यन्त कामन ।

कुसुमहाम = का०, १२८ ।

[स० पु०] (स०) फूला मी हमा पुष्पा की हमा । मुहु मुसकान स्मित, हास्य ।

कुसुमाकर = का० ३१ । ना० कु० १३ । का०

[स० पु०] (स०) २६२ । वि० १७३ १७५ ।

वसत ऋतु । वाग उपवन ।

कुसुमित = का० १६ । का० कु० १४ ३४ । ७२

[वि० पु०] (स०) ८२ । वि०, ३६ ८८, १५ प्र० १४ ।

म० २० । अ० ४१ ।

पुष्पित फूल हुए ।

कुसुमित कानन = का० १० । अ० १७ ।

[वि० पु०] (स०) फूलों से भरा हुआ वन ।

कुसुमो = का० १८० २२० २४६ २६५ ।

[म० पु०] (स०) फूलों, पुष्पा सुमनो ।

कुसुमासव = का०, ७३ ।

[स० पु०] (स०) वसत ऋतु मे अनुरा के द्वारा होने वाली परागक्रीडा ।

कुसुमोद्गम = का० १४० ।

[वि० पु०] (स०) कुसुम का उद्गम । फूलों का खिलना ।

कुहक = का० कु० ३० । ना० १०८ । अ०

[स० पु०] (हि०) ७८ ।

पक्षिया या अति मधुर स्वर ।

कुहुक = का० ६० ।

[स० स्त्री०] (हि०) मामिन विरहाकुल ध्वनि ।

कुहक कामिनो = प्र० ५ ।

[स० स्त्री०] (हि०) कामात बाला का कामात विदग्ध

वाणा जो प्राय एकात में दृष्टा करता है । कामाकुल युग्मा के विरहाकुल अमयुत शब्द ।

कुहकिनि = का०, ३३ । का०, १/८ ।

[स० स्त्री०] (हि०) कुह कुह करनेवाला वाद्यन ।

कुहर = का० १७० २२५ ।

[स० पु०] (स०) छत्र मुगल । गल का छत्र ।

कुहासों = ना० २० ।

[स० पु०] (हि०) कुहरा आल के मूलम रंग जो बाला करणम भाप के रूप में जम जात है ।

कुह = का० कु० ८ का० १७६ १७८ ।

[स० स्त्री०] (स०) वि०, १६१ ।

अमावस्या की राति ।

कुहेलिका = प्र० १६ ।

[स० स्त्री०] (स०) कुहागा कुहागा ।

कुरु = का० ७६ । का० कु०, ४२ । अ०

[स० स्त्री०] (हि०) २७ । ल० ४२ ४४ ।

मयूर अथवा कोकिल की बोली । माठी आवाज । कलक से भरी ध्वनि ।

कृकि = वि० १८० ।

[प्र० क्रि०] (प्र० ना०) कृक कर (२० 'कृक' ।)

कूनत = वि० १ २३ ।

[क्रि०] (हि०) पक्षिया का आनन्दविभोर होकर बजना करना ।

कूनन = का० ६४ १७८ ।

[स० पु०] (हि०) पक्षिया का मधुर ध्वनि ।

कूजित = का० कु०, १७ ।

[वि०] (हि०) बलि जा चुके शब्द । गुजित ।

कूदना = म० १२ ।

[प्रि० अ०] (हि०) एक स्थान से दूसरे स्थान पर उछल कर जाना जाने का क्रिया ।

कूर = वि० १७८ ।

[म० पु०] (अ० ना०) दुष्ट निदय, दुराचारी क्रूर ।

कूल = का० ४१ ७१ ७६ । का० कु०, १७,

[स० पु०] (स०) ५७, ११२ । का० २४६ । वि०,

११ । अ० ६६ । प्र०, १३, १४,

२४ । ल०, २६, २७, ७२ ।

किनारा, सट, तीर । नहर, ताना ।

कुलतर श्रेणी = चि० १५० ।

[स० पु०] (ब्र भा०) किनार पर लगी हुई वृत्तों की पत्तियां ।

कुलन = चि०, ४८ ६३ १५०, १६६ ।

[स० पु०] (य० भा०) कूल का बहुवचन । (२० कूल ।)

कुलहि = चि०, १८२ ।

[स० पु०] (हि०) खानदान को, वंश से । खाना को ।

कुलों = का०, १२८, १६७ २६८ ।

[स० पु०] (हि०) कूल का बहु० (२० कूल ।)

कुलन = का० कु०, ६३ । का० २३० । म०,

[वि० पु०] (म०) ६, १६ ।

उपकार न माननेवाला । अहंता ।

कुलघने = का०, ८४ ।

[म० स्त्री०] (स०) उपकार की अपेक्षा करनेवाली वृत्ति ।
वृत्त का संबंधन ।

कुलव्रता = का०, २१८ ।

[स० स्त्री०] (म०) उपकार माननेवाली वृत्ति ।

कुति = का० कु०, ६१ । का० ७६ । स०, ४२

[म० स्त्री०] (स०) काय क्रिया नपादित कम ।

कुतियों = का०, ७५ ११५ ।

[म० स्त्री०] (हि०) 'कुति' का बहुवचन ।

कुतियों = का०, ७५, १३१ ।

[स० स्त्री०] (स०) कुति का बहुवचन (२० कुति ।)

कुतिमय = का०, ६५, ७१ ।

[वि० पु०] (म०) कृत्यय स युक्त, कृत य स पूरा ।

कृत्य = का० २७३ ।

[म० पु०] (म०) बर्ग, वन्य । अतिम सत्कार सवधो
कम ।

कुत्रिम = का० कु०, ५४ ८२ । का०, १६६,

[वि० पु०] (स०) १६८, २३६ । म०, १६, २० ।

नकली, बनावटा ।

कुत्रिमता = स० ६६ ।

[म० स्त्री०] (म०) बनावट ।

कुत्रिमते = स०, ७१ ।

[स० स्त्री०] (म०) मयोधन (२० 'कुत्रिमता' ।)

कृपा = चि०, ७८ ।

[स० स्त्री०] (स०) कृपा से, कृपापूर्वक, दया से ।

कृपा = का०, २५ । का० कु०, ३ । चि०, १४५,

[म० स्त्री०] (म०) १४७ । स०, ८१ । प्र० २२ ।

दया । किसी का दम देखकर तन जाने
वाला वृत्ति ।

कृपा कोर = चि०, १७८, स०, ७६ ।

[स० स्त्री०] (हि०) कृपा की तीव्रता या छोर, प्रत्यक्ष दया ।

कृपाण = चि० २२ ४० ।

[म० स्त्री०] (स०) तलवार, एक छल, प्रसि, कटार ।

कृपाणी = स०, ६६ ।

[म० स्त्री०] (म०) कटारी ।

कृपाने = चि०, ७४ ।

[म० स्त्री०] (२० भा०) तलवार का संग्रामन ।

कृपानाथ = प्र०, २० ।

[स० स्त्री०] (हि०) कृपास्वा नाथ । कृपा द्वारा उद्धार
होने का साधन ।

कृश = का० कु०, ६४ । म०, २० ।

[वि० पु०] (म०) दुःख, जोखकाय, कमजोर ।

कृषक = का०, १८१ ।

[म० पु०] (म०) किसान, हलवाहा ।

कृषक करो = का० कु०, ६१ ।

[स० पु०] (म०) किसान के हाथों ।

कृषकान = चि०, १५७ ।

[म० पु०] (४० भा०) किसान लोग । कृषक वर्ग ।

कृषक समूह = प्र० ७ ।

[म० पु०] (हि०) किसानों का सङ्गठन, कृषक वर्ग सेती
करनेवालों का कुट ।

कृषि = स०, ६३ ।

[स० स्त्री०] (म०) खेत ।

कृष्ण = चि०, ६८ । का० कु० ११३ ।

[वि० पु०] (स०) कालावर्ण । काला । कृष्ण, श्री कृष्ण,
मगधान कृष्ण ।

[कृष्ण—आनन्दवादी एक विवेकवादी षोडशकना-
सपन आठवें प्रवर्तार । वसुधैव कुटुम्बकम्
देवता के पुत्र । द्वारका में राज्य गाकुन
मुदावन सा गभूमि । मयुरा मे कम वध ।
महाभारत व युद्धस्थान कुक्षेत्र म

अशुन के मारथी । जरायध, शि पात केमा जस भयवर दानवी स लावा डारव । गोपियो के परम प्रेमी रमिया तथा हिंसी साहित्य के राति शृंगार व प्रालम्भ एव अनेक वप्यव सप्रदायो क मुख्य धाराध्य भगवान् ।]

कृष्णप्रभात्र = का० कु० १ ३ ।

[म० पु०] (म०) श्रीकृष्ण के प्रभु व स ।

कृष्णभारत = का० कु०, ११३ ।

[म० पु०] (स०) कुटिल वायु ।

कृष्णवर्ण = का० कु० १२३ १२४ ।

[स० पु०] (स०) श्याम वर्ण, पक्का रंग । काना रंग ।

कृष्णसिंह = म० १० ।

[स० पु०] (हि०) राणाप्रताप की सेना का एक प्रमुख मन्त्रिक ।

[कृष्ण सिंह—राणा प्रताप का सेना के विश्वस्त सरदारों में से एक । ये सालुजाबि पति थे । इन्होंने अमर सिंह द्वारा रहीम का पला के बड़ा बनाये जान का खबर महाराणा प्रताप तक पहुँचाई था ।]

कृष्णा = बि, ३१ ६३ । ल, ६८ ।

[म० खी०] (स०) काना श्यामा । यमुना नदी कृष्णा नाम की एक विशिष्ट नदी । द्रोणा । काला दबी ।

[कृष्णा—प्रमराग्य' (विश्वापार) के उत्पत्तिगत दक्षिण भारत का प्रमुख नदी जो महाबलेश्वर के पास से निजन्कर बगल सागर में गिरता है ।

[कृष्णा—२०—द्रोणा ।]

कृष्णा की नवतरलवोचि = बि० ६८ ।

[स० खी०] (ब्र० भा०) कृष्णा की नदी नदी प्रवृत्तमान चमकता लहरें ।

कृष्णागुरुपतिवा = ल० ७५ ।

[स० खी०] (स०) एक विशिष्ट मुख्यिद्रव्य का वना ।

केंद्र = का० ५८ १८७ २७२ ।

[म० पु०] (म०) निम्न वृत्त या परिधि व ठाट बाचा बीच का बिन्दु । नाभि । वह मूल स्थान

जहाँ से चारो ओर फैले हुए बायों का प्रबल होता है । बीच या मध्य ।

केंद्रमुत्त = का० कु० ६२, ११२ ।

[वि० पु०] (म०) स्थानभ्रष्ट । अपना जगह से हटा हुआ । घुरीहीन ।

केंद्रभूत = का० ८ ।

[वि० पु०] (म०) जो एतत्त हुआ है । एत स्थान पर स्थित या घनाभूत ।

केंद्रों = का० २३६ ।

[म० पु०] (हि०) केंद्र का बहुवचन । (२० केंद्र ।)

केतरी = का० १४२ । बि० ५५ ।

[म० खी०] (हि०) केवटा । एक रा गीत का नाम ।

केतन = का० कु० ६४ । ल, ७७ ।

[म० पु०] (म०) निमग्न । धजा । चिह्न । घर, भवन । स्थान जगह ।

केतिक = बि० ६ ।

[वि०] (ब्र० भा०) कितना । कितने । कितना ।

केतु आकार = म०, ७ ।

[वि० पु०] (म०) बलु क रूप का ।

कतो = ल० १८७ ।

[वि० पु०] (ब्र० भा०) कतना । प्रश्नवाचक ॥ २ ।

केरो = बि० १४४ ।

[स० पु०] (ब्र० भा०) कर्तो ।

केलि = बि० १४७ १५४ ।

[म० खी०] (म०) रति । मधुन काडी ।

केलिहि = बि० १४६ ।

[म० खी०] (ब्र० भा०) काडी का ।

केली = बि०, ४६ ५६ १४७ ।

[वि० खी०] (ब्र० भा०) २० कलि ।

केवल = का०, ६ २५ । का०, १६ २८ । का०

[म०] (हि०) कु० १३ ८३ । का० ७, ८ ५५

[वि०] ७५ १०५ १०६ १२७ १२८ १३८

१४८, १६३, १६७, १७० १७७

१६६ २०८, २३८ २४२ २४५

२५२ २६४ २७०, २८७ । बि०, ६,

१७३ । म० ४० ८१ । प्र०, १७

२ २३, २४ । म० १८ २४ ।

निर्ण एक मात्र । शकता ।

केश = चि० ६०, ६७।

[स० पु०] (म०) बाल। विष्णु। विरग।
विश्व। ब्रह्मशक्ति का एक भेद। एक
दय का नाम।

केश अचली = चि० ५५।

[स० पु०] (म०) मगरा हुई किंतु बिना बधी लटें।

केशभार = का०, १५६।

[स० पु०] (म०) अक्षरों का भार। वंश का बाण।

केशर = का० कु० ३७। चि०, १६१।

[स० पु०] (म०) एक मुगधित द्रव्य। एक प्रकार का
पुष्प। घाड़े या सिंह के गदन पर लट
कत हुए बाल (अक्षर)। नागकेशर।
बबूल। मौलसिरा। पुनाग। हींग का
बुझ। कमीम। स्वर्ग। एक विप।

केशरी = चि० १६१। म०, १३।

[स० पु०] (म०) सिंह। घाड़ा। पुनाग। एक प्रकार का
माछ। हनुमानजी के पिता। एक
प्रकार का कपड़ा।

केशज = का० कु० ११७।

[स० पु०] (म०) विष्णु। कृष्ण।

[नैशज—'न' ह्रास्व। विष्णु के केश म उ पत्र होने
के कारण केशज नामकरण।]

केशव सग = का० कु०, ११३।

[स० पु०] (हि०) भगवान् ह्रास्व व माय।

केशर = का०, ६२। का, १७४, २८१।

[स० पु०] (हि०) चि०, ११३।
(२० 'केशर')।

केशररज = का०, २८२।

[स० पु०] (म०) पाताम एवं मुगधित एक द्रव्य। केशर
का मकरद।

केहरिकिशोर = का०, २७७।

[स० पु०] (हि०) सिंह का तरण पुत्र।

केहरिशानक = चि०, ४०।

[स० पु०] (हि०) सिंह का बच्चा।

केहि = चि० ३० १/१, १५५।

[सव० पु०] (ब० भा०) किसका निम्नका।

के = चि०, ६ ४०।

[वि०] (ब० भा०) बितना। अथवा। बने।

केमो = चि०, ६, १८१।

[प्र०] (ब० भा०) या किया, मानो।

केलास = चि०, २८७।

[स० पु०] हिमाचल पर्वत की एक छोटी जग पर
(ब० भा०) भगवान् शंकर का निवास है।

[कैलास—मानसरोवर व उत्तर म म्यन हिमाचल
की जाती जा गिर का स्थान है।
२०—जामायना का कथा श्रीर बिलत।]

कैसा = का०, ३७। व० १० १३ २६।
[प्र०] (हि०) का०, १० ८५ १४६, १८४ १६६
२०४, २४८, २६६। प्र०, १८, १६
२५। म०, १, ६, १०। ल०, ४७,
६७, ६८।

किसी प्रकार का। किसी ढग का।
किसा प्रकार का नहीं।

कैमी = का०, ८। का०, १३, २५,
५१, ८० ६१ १००, १२४ १२७,
१८६, २११, २३७ २४३, २८०।
प्र०, ३, ४, १८। म० ७, १६।
२० कमा'। (ली लिंग)।

कैसे = का०, १२ २७। का० २६ ४०, ७७,
[वि० वि०] (हि०) ६०, ११७ १२० १२४, १३२,
१७७ १७८, १८६, १६२ १६४
२०१, २१२ २२६, २३८, २८५।
चि०, १८७। प्र०, २, ११, २०। न०,
१०, ११।

किस प्रकार से, किस ढग से। कयो
किस लिय।

कोई = का० ३५, ३६, ४०। व०, १६।
[सव० पु०] (हि०) का०, १७, २८, ३२ ५२, ६७, ८१,
१०५ ११५ १२६, १३३, १४५,
१८५, १६० १७५, १७७, १७८,
२०६ २११, २१२, २४७, २६१,
२६६, २८७, २८८। प्र० ३, ६, १३,
२०, २५। म०, १२, १६। ल०, ३१,
४४ ७७।

तेमा जो घशात हो । अविगेण वरसु
अयवा व्यक्ति ।

[कोई गोजो—हम, वर्ष १ ने घा २ अग्रत
३० म प्रकाशित कामायनी १ राम राम
का धंस । ०—वामायनी ।]

कोउ = बि०, १६ १७ ।

[मव० पु०] (श० भा०) ३० 'कोई' ।

कोक = वा०, ८२ ।

[स० पु०] (स०) चक्रवान् । चक्रवा पक्षा । रतिशाम्भ व
एन आचार्य । विष्णु । भट्टिया ।
जंगली खजूर । मेन्च ।

कोकनद = ऋ०, २६ ।

[स० पु०] (स०) अरण कमल, लाल कुसुमी ।

कोकिल = वा० कु० १७, ४८ ६६ । वा० १०

[स० पु०] (स०) १७५, १७७ । बि० ११ । ऋ०, २६
५६, ६६ । प्र०, ११ । ल०, ४४ ।
कोयल । नीलम की छाया । ए प्रवार
का चूहा । छप्पय का एक भेद ।

[कोकिल—'कु कला ३ विरण ४ माच १६१२ म
सवप्रथम प्रकाशित और काननकुसुम'
म पृष्ठ ४८ ४९ पर सजलित । नया
हृदय है नया समय है, नया कुज है
नव कमलाल खिल है तुम्हारा नया
राग मनोहर और मधुर है तुम्हारा
नया कठ कमनीय है । यद्यपि कोकिल
तुम्हारी ध्वनि अनात है पर मादमय है
और हम मुनकर मन शीतल शात और
बिनीतमय होता है । नए रसाल
विकसित हूँ और मधुर मंदमत्त हूँ । तब
मकरंद से भरे हैं डाल डाल में मलय
मनु हिलान पदा वर रहा है । बाजिल
तुम रसाले राग से क्या मधुमय गान
गा रह हो । चंद्रमा नभ म थावर इस
आशा म रत्न हुआ है कि तुम्हारा नव
भाषा से कुछ अर्थ निकल स । तुम नए
उत्साह से अविरल गाओ । गाओ
मलयज पवन में स्वर भरने के
लिय गाओ ।]

कोकिला = वा० कु०, १६ ४२, ४३ । बि०, २३

[म० स्त्री०] (ग०) १७१, १७२ । ऋ०, ६६ ।
माता वीर्यन । गिरा ।

कोकिलावलग्न समान = वा० कु०, १६ ।

[गि०] (हि०) वायन की ध्वनि व समान । माठी
धावाज ।

कोटग्रमुप = वा० कु० २५ ।

[म० पु०] (म०) कुलपुत्र का द्वार । पट के खोखल
भाग का रास्ता । घास का मुव ।

कोटि = बि० ४२ १७७ ।

[स० स्त्री०] (स०) धनुष का तिरा । सी लाल की सख्या ।
सलवार का धार । श्रंगा । पद । दर्जा ।

कोटि-कोटि = वा०, १६० ।

[वि०] (हि०) कराडो । अनेक । बहुत ।

कोटिहुँ = बि०, २२ ।

[स० स्त्री०] (श० भा०) करोडो ।

कोण = का०, १७६ ।

[स० पु०] (स०) काना । दो दिशाओं के बीच की
दिशा । बिदिशा । दा साधा रेखाओं
के परस्पर मिलने का स्थान ।

कोदड = बि० ६६ ।

[म० पु०] (म०) धनुष । कामान । मोह ।

कोना = वा० १२, ३६ ६३ ७०, ७६, ८६,

[स० पु०] (हि०) २०८ । प्र० १२ ।
कुवाला । छोर या निमारा । एक
बिंदु पर मिलता हुई ऐसी दो रेखाओं
का अंतर जा फिर एक नहीं होती ।
एरात स्थान ।

कोने कोने = ल० ६३ ।

[कि० वि] (हि०) प्रत्येक स्थान । प्रत्येक कोण में ।

कोर्ना = व० १५० २१५ ।

[म० पु] (ग० भा०) काने का बहुवचन ।

कोप = वा० कु० २० । बि० ७४ ।

[म० पु०] (स०) क्रोध गुस्ता रिस ।

कोपल = बि०, १७६ । ऋ०, २६ ७६ ।

[म० स्त्री०] (हि०) म०, ८६ ।

वृत्त की नवीन कामल पत्ती ।

कोपि = बि० ४१ ।

[पूव० त्रि०] (ब० भा०) क्रोध या गुस्ता करवे ।

कोपित = चि० ४२।

[चि०] (हि०) क्रापित।

कोपे = चि० १०३।

[चि०] (प्र० भा०) कोष करे।

कोमल = भा० २२ ३२, ३६ ६६। व०

[वि०] (सं०) १७। वा० कु०, ६, ३३, ५३। वा०, २३ ४६ ५०, ६३, ६८ ९८ ८३ ८५, ६७ १०२ १०४ ११८, १४२ १४५ १४८ १४९, १८०, १८२ १८४, २१३, २८८ २६३, २८४। चि० २ ४७, ७१। प्र०, १ ७ ७। ल०, ६ १०, १४, २१।

मृदुत। मुनायम। उ०—वामन विमलय व अचन म नहा रतिना ज्या छिदती मा।—वा० ६७। परिपक्व। मुदर, मनाहर। स्तर वा एन अद।

कोमलकूट = प्र०, १६।

[मं० पु०] (नं०) मृदुत गला। जिम गल स मधुर महान स्वर निषन।

कोमल फाय = चि०, १७०।

[सं० पु०] (सं०) मडुन तन।

कोमल किसलय = चि०, ५६।

[सं० पु०] (सं०) कोमल नया पत्ता। वन्गा।

[कोमल रसुमों की मधुर रात—'लहर' पृष्ठ २५

पर सबलिन गात। शशि और शतदल वा मुखविषय हो रहा है जिमम निगम हाम हो रहा है। यह मलय वात कोमल बिलयवाली मधुर रात का मार्ग है। लाजभरा अनत बलिया (तारा क) परिमल क वृषट म डककर छुप छुप, कप कप कर उसस बात कर रहा है। नक्षत्रकुमुमा का असम माला स शिथिल हास्य व सबल जाल से विरनो व पत्ते खुलत हैं और वे अधीर हा मिश्रित मुग्ध नार म गिरत हैं। ऐसी कोमल कुमुमा वा मधुर रात म विश्व पुलकित हो रहा है।]

कोमलगात = चि०, १४१।

[सं० पु०] (हि०) मडुन तन, मनोहर गरीर।

कोमल नाद = चि०, ५१।

[मं० पु०] (सं०) मडुन और मधुर स्वर।

कोमलता = भा०, ६६।

[मं० स्त्री०] (सं०) मडुनता, मुनायमपन, नरमता।

कोय = चि०, ४।

[मव०] (प्र० भा०) २० बोई।

कायल = वा०, कु०, ३८। वा० ६३।

[मं० स्त्री०] (हि०) एक बाल रम का पत्नी जिमका स्वर उछा माझ हाना है। कोकिल। पिब।

कोलाहल = वा० कु० १०१। वा०, ८ २४, ६४,

[मं० पु०] (सं०) १००, १४४, १८६ २३६, २५०, २६६ २६७। चि० ४२। म०, १०। प्र० १३। ल० १४, ६८ ७७। विहाय क मिथुन त बना एकराग। हला। शार।

कोलाहल कलह = का०, १६४, २१६।

[मं० पु०] (हि०) मधुर वा स्तर। दगा कमाद के नमय वा शार गुन।

कोर = वा० कु० ७७। म०, ४४। ल०,

[मं० पु०] (सं०) ७६।

बाना। बिनारा। धार। मल की धार या रोड। ताव, गव। द्वेप।

कोरर = वा० कु०, १०१। वा० ६३ ७३।

[सं० पु०] (नं०) बली। मुकुत। फून या कनी के घाहर वा हरा भाग। कमल की नाल। कागव नामक मय द्रव्य।

कोरदार = म०, ८१।

[चि०] (हि०) नुरीला, चाख, कुमनवाला। गाददार।

कोरी = भा०, ३२। वा० कु०, १६।

[मं० पु०] (हि०) मोटे बपट बुननेवाला एक जाति। हिंदू जुलाहा। काई। कोरदार।

[चि०] अछूता। मवान।

कोरा = वा० कु० ३६।

[मं० पु०] (सं०) अड। अडा। अडवात। दिव्या। फून की बनी। आवरण। गिलाफ। वगल के अनुसार पात्र सपुट जा शरीर म हान है।

कोय = का० १०१।

[सं० स्त्री०] (हि०) बिजला की चमक। उ०—वह काँय कि जिमम अतर का शीतलता छड पाती हो।

फौड़ी के मोल = स०, ७४।

[स० पु०] (हि०) बहुत ही निरुद्ध, गस्ता। कम दाम का। गयागुजरा। (मुहावरा)।

फौड़ी के तीन = चि० १५६।

[स० पु०] (हि०) बहुत सस्ता। तुच्छ होना। गयागुजरा। (मुहावरा)।

फौतुक = भा०, ३३। का० कु० १८ ६१।

[स० पु०] [वि०] का०, ७०, १६१। चि० १४२।

(स०) कुतूहल आशय। अचना। विनोद, तिल्ली प्रमत्ता। ज़ाह।

फौतुकवश = प्रे० १५।

[क्रि० वि०] (स०) फौतुक व कारण। तमाग व वारण।

फौतुहल = भा० १६। अ० ७४।

[स० पु०] (हि०) फौतुक तमाग। (२० 'कुतूहल')।

फौन = क० १२ १५, १६ ३१ ७५। का०

[सव०] (वि०) १३ १६ १७ २४ २६ ३७ ४५,

५०, ६७ ७७ ८४ ८६ ८७, ९०

९१, ९७ ९९ १०० ११३ १२०

१२३, १२४, १२५ १२७ १२९

१६६, १७७ १८३ १८६ २०१

२१० २१६, २३८ २४५ २६१

२६५। चि० ५। प्रे० १ ६ ८, १२

१३, १८, २२ २३। म० ८ ८

१४। ल० १० ११, ३४, ४७ ५७।

प्रश्नवाचक सवनाम जिसके द्वारा

अभिप्रेत वस्तु या व्यक्ति पूछा जाता

है। विभक्ति लगन पर फौन का रूप

किन्हीं हा जाता है। किसी प्रकार का।

[फौन—माधुरा, वष ८ खंड १ स० १ मन्

१६२६ ३० म सवप्रथम 'फौन' शीवक स

प्रकाशित कामायनी के वामना सग का

यह अथ फौन हा तुम सोचने यो मुझे

अपनी आर' से 'क्यों न वस हा खुना

यह हृदय रद मपाट' तक का अथ।

कामायनी पृष्ठ ८६-८७। २०—

कामायनी।]

[फौन प्रवृत्ति के कारण काल्य सा—२०—विषाद

भोर भरना। फौन प्रवृत्ति व वरुण

काय मा' जापर म सवप्रथम,

माधुरी, वष ३ पृष्ठ २, स० १, सन्

१६०७ म प्रकाशित धोर 'विषाद'

शीवक स भरना म पृष्ठ ३०-३१ पर

मन्त्रित।]

फौरसो = चि० १८१।

[वि०] (ब्र० भा०) निम प्रकार का। क्या।

फौमुन्नी = का० ८८। चि० २३। अ० ८५।

[स० ली०] (स०) उवात्मा। शीवना। कानिना पूर्णिमा।

कुमुन्नी। कूई।

फौरवनाथ = का० कु० ११०।

[स० पु०] (स०) फौरवराज। दुर्योधन।

[फौरवनाथ (फौरवाधिप)—दुर्योधन। धृतराष्ट्र तथा

गांधारा व एन शत पुत्रा म ज्यष्ठ।

महाभारत का युद्धचानक तथा स्व

नायक। भाग द्वारा गन्धुद म वष।

शूर अनाचारा तथा द्रौपदी का चार

हरण करनेवाला। भाग अश्वत्थामा

वण आदि महारथा महाभारत म

इसका धोर थ।]

फौरवाधिप = चि० ६६।

[स० पु०] (स०) फौरवा का राजा दुर्योधन। (२०

फौरवनाथ)।

फौशल = का० ६६ १२२। चि० ४३।

[स० पु०] (स०) कुशलता। निपुणता। बनुराई। गुण।

किया काय का अच्छी तरह करने का

क्षमता। कायन देश का निवासी।

फौशिक = क० ३०।

[स० पु०] (स०) विश्वामित्र।

[फौशिक—२० गालव।]

फौशेय = का० २६३। प्रम ४।

[स० पु०] (स०) रेशमी वस्त्र।

फौस्तुम = चि० १६२।

[म पु०] (म) सागरमयन स निरला एक रत्न जिस

विष्णु अपने हृदयस्थल पर धारण

करत थ।

क्या = भा० ४०। क० १४ २२, २६ २७

[मर्व०] (हि०) २८। का० ५८ ४०, ५१ ५२ ५६,

[स० विम] ५७, ६३, ६६, ६७, ६८, ७५, ८४,

८५, ६२, ६४, १०४ १०५, १०६
 १२८, १३० १३१ १३४ १४०
 १४४ १४६ १५८ १६२ १७०
 १८३, १८० १८२ १८४, १८५
 १८६ २०५, २१६ २१८ २२०,
 २३० २३४ २३७, २४० २४७
 २४८ २५० २५४, २६०। प्र० २
 ४ ५ १० २०, २०। म०, २ ६,
 ११, २३। न० १०।

अभिप्रेत वस्तु का जिनाना का सूचक
 शब्द। कौन सी वस्तु या बात ?

[क्या कहूँ क्या नहीं मैं भ्रमपुत्र रामायणी का
 यह मधु मधुप्रथम प्रथा म जनवरा
 १६६१ म प्रवागित दया था। १० -
 कामायनी।]

क्यारी = प्रा० १८। रा० कु० १६। वा०
 [म० भी०] (हि०) १८०। चि० ३८। म०, २६ ५२।
 म० २०।

लन रा एक विभाग, बियारा।

[क्या सुना नहीं कुछ अभी पडे सोते हो—जन
 मेजय का नागयन म मनमा और
 उसकी मन्त्रिदा द्वारा उद्घोषण गान।
 प्रमाद मगत म पृष्ठ ७० पर मन्त्रित।
 यह गान नाग मन्त्रिदा व लिय गाया
 गया है। अभा साण हा शत्रु चढा बना
 घाता है तब भी तुमम आवस नही
 जाताय मान व भव पर रो रह हा।
 भिक्वार और अवहना वा बलिहारा है।
 तुम पुत्र्य हा नि नारा। कहे दासता
 दलन ल और तुम्हारे देखत दलत कुन
 लननाए नाछिन न हा जाय। अयण
 का बीज बा रह हा। और—

मान स्वत्वा स स्वय दास घान हा।

क्या निज स्वतन्त्रता का लज्जा खोने हा।]

क्यों = प्रा० ८। वा० २६। वा ६ ३८
 [क्रि० वि०] (हि०) ३६ ४० ५२, ६५ ६७ ८५ ८६
 १०४, १४६, १५० १६१, १८६
 १८६ २०१, २०५ २१० २१४
 २१५ २१६ २३४, २३६ २४६
 २५७, २७२, २८०, २८२, २८५।

प्र०, ६। म०, १, २१। न० १०।

जिमा निय, निम हनु निम बात की
 जिनामा के कारण का सूचक।

म्योनि = वा०, ३१। वा० १६८, २०७। प्रि०
 [क्रि० वि०] (हि०) ६। म० १०१।

दम कारण यह कि हमलिय नि

मन्त्र = प्रा०, १४। वा०, कु० २५। वा०
 [न० पु०] (सं०) १५, १२१ १७१, १८५, १६१
 १८८। ल० ६। ७०।

रोना, बिनाप करना।

क्रदनध्वनि = ल०, ४६।

[म० भी०] (म०) विलाप का स्वर।

क्रदनमय = वा०, १३।

[वि०] (म०) विलाप व साथ।

क्रुमय पुत्र्य = वा०, १८०।

[म०] (म०) यन पुत्र्य। बिगु।

क्रम = वा० कु०, १८ ८८।

[म० पु०] (म०) ढग भरन का क्रिया। तरतीत। मिल
 मिला। उच्चिन् रूप म कार्य करने की
 प्रणाली।

क्रमशः = वा०, १४।

[क्रि० वि०] (म०) क्रम म। धारे धार। मित्रमिलेवार।

क्रय विक्रय = प्रि० ७।

[म० पु०] (म०) व्यापार राजगार। गरीदन उच्चन का
 क्रिया।

क्राति = गति। बाल। उत्पत्केर परिवर्तन।

[म० भी०] (सं०) वह कल्पित वृत्त जिसपर सूर्य पृथ्वी
 क चारो ओर घूमता नजर आता है।

क्रिया = वा०, ३१। वा०, २६२ २७२।

[म० स्वा०] (म०) क्रम। प्रयत्न। काशिय। किनी कार्य
 का किया जाना।

क्रियातत्र = वा० २६६।

[म० पु०] (म०) काम मे लगा हुआ व्यक्ति। क्रियाज्ञान।

क्रीडत = चि०, ६३ ६६, ७३।

[पूर्व० क्रि०] (प्र० मा०) खेलत हुए।

क्रीडा = प्रा०, १२, ५१, ७३। का०, कु०,

[म० भी०] (सं०) २२ ४६। का०, २३, १११, १२२
 १७८, १८५। चि०, १५७। म०,

४४, ४६, ६० । प्री०, ८, १०, १६ ।
ल० २०, २२, ३०, ५४, ६० ।
खेलकूट । आमीप्रमो । ताल का
एर भे ।

श्रीहनुज = प्र० २५ ।

[सं पु०] (मं) श्रीडा विनो करने का कुज ।

श्रीडाकूट = व०, ६ ।

[सं पु०] (मं) गल का पनावाजी । दिनगा ।

श्रीडागार = वा ७० ।

[सं पु०] (मं) आमी प्रमा प्रमो करने का स्थान ।

श्रीडा नौकाय = वा० १५६ ।

[सं ली०] (हि०) तज चनेवाला नौगाए ।

श्रीडापूर्ण = वा० कु०, ८६ ।

[वि०] (सं) आमी प्रमो स भरा हुआ । बचन ।

श्रीडामय = वा० २६ ।

[वि०] (मं) पल की भावना से भरा हुआ । आमाद
का साथ ।

श्रीडावश = प्र० ५ ।

[क्रि० वि०] (सं) खेलकूट के कारण ।

श्रीडाशील = वा० कु० ५४ ।

[वि०] (मं) खेलाडी । आमीदशील ।

श्रीडासर धीच = वा कु० ५४ ।

[सं पु०] (हि०) उस मरोवर का भाव जिसमें आमा
प्रमोद होता है ।

श्रीदित = वा० ४६ ।

[वि०] (मं) खेलते हुए ।

श्रीराता = वा० १४२ ।

[सं ली०] (सं) पातावन क्षीणता ।

श्रीदु = वा० कु० १०६ । वा०, १५ १७ ।

[वि०] (सं) क्रोध से पूर्ण । क्रोध का साल ।

श्रीदु = व०, १३, ३१ । वा०, कु०, ८ ६३

[वि०] (मं) ६८ । वा०, १३ २०० । मं २ १५ ।
दूसरे को कष्ट पहुचानेवाला परपीडक
निर्णय निष्ठुर नाच बुरा चरित्र ।

श्रीदुता = वा० कु०, २०६ ल० ६८, ७१ ७६ ।

[सं ली०] (सं) दुष्टता निन्द्यता, निष्ठुरता, बढारता ।

क्रोध = वा०, २४३ ।

[सं पु०] (मं) गान, अक्ष, गान । आनिमन का न म
नोना भुजाया का बाव का मय । वृद्ध
का काटर ।

क्रोध = वा० कु०, १७ १०५ । वा०, १२६

[सं पु०] (मं) १८५ १८६ १८८ । वि०, १३ ५३,
१७६ । मं ४३ । मं, २ ६ । ल०,
६५ ७७ ।

कोय रात्र गुम्मा ।

क्रोध मोह = वा० २२० ।

[सं पु०] (मं) गुम्मा शीर प्रम ।

क्रोधानल = वि० १०० ।

[सं पु०] (मं) क्रोध का अग्नि ।

क्रोधित = वा० ११ । वि०, ४२ ।

[वि०] (मं) क्रुपित क्रुद्ध नाराज ।

क्लास = वा० कु० १२ । वा० ५२ १६१

[वि०] (मं) १६६ । मं २५ ५२ ६२ ।
शाल धरा हुआ, मुखाया हुआ ।

क्लासि = मं, ६२ ।

[सं ली०] (मं) परिश्रम । धवावट ।

क्लेश = वा० कु०, ७ ।

[सं पु०] (सं) दुःख कष्ट, विपत्ति । लडाई मारपीट ।
अथवा वेदना ।

क्ष

क्षय = वा० ५८ । वा० कु० ६८, ६९, १०३ ।

[सं पु०] (सं) वा० १८ १२८ १६२ १६२, १६५,
१६१ १६६ १६७ २०१, २२०
२६६ । मं, २६, ७८ । ल० २१,
४३ ४६, ७४, ७७ ।

कास या समय का सबसे छोटा मान
पल का चौथाई भाग । बाल अवसर
मोका ।

क्षय क्षय = वा० १५ १२३ २१२ । ल०, ६७
[सं पु०] (सं) ६८ ७० ।

हर एक मगय प्रत्येक समय ।

प्र०, २३ । ल० ४८ ।

क्षयभगुर [वि०] (सं) पोडे समय में नष्ट होनेवाला, नष्टवर ।
अनित्य । क्षय भर म विनष्टि की प्राप्त
करनेवाला ।

संज्ञाभर = का० कु० ७६, २१६। का० १८६,
[सं पु०] (हि०) २५३। भ० ४४। म० ३।

थोड़े समय का सूचक शब्द, पलभर।

संज्ञिक = का०, ५५, १२४; २६८। प्र० २५।

[वि०] (म०) = संज्ञाभर, अनित्य, संज्ञा भर ठहरने वाला।

संज्ञि = म० ४।

[म० स्त्री०] (म०) ज्ञानि नुक्सान, अपकार, अनिष्ट संज्ञा।

संज्ञ = का० १६२।

[सं पु०] (सं०) जल। राष्ट। घन। शरीर। जन।

संज्ञिय। छत्रा।

संज्ञिय = म० ७, १०, १२।

[म० पु०] (सं०) 'संज्ञा'।

संज्ञिय जाति = का० कु० ११२।

[सं स्त्री०] (सं०) संज्ञिय वग या विरादरी। संज्ञिय समूह।

संज्ञियोचित = का० कु० ११६।

[वि०] (सं०) संज्ञिया क लिये उचित। वारोचित।

संज्ञी = वि० ६५ ६७।

[म० पु०] (म०) भारत क चार वंशा म स एक। एक भारतीय जाति जिसपर दश का रक्षा और शासन का भार सोपा गया था।

संज्ञीन = वि० ६५।

[सं पु०] (म० भा०) संज्ञा शब्द का बहुवचन।

संज्ञता = का०, ४०। का० कु०, ११३। का०

[सं स्त्री०] (म०) १५७ १७१, २६१।

सामर्थ्य। योग्यता। किसी काम का करने की शक्ति।

संज्ञह = वि० ७४, ६१।

[क्रि०] (म० भा०) संज्ञा करो। सुवाक करा।

संज्ञा = का०, २१। का० कु०, ६६। का०
[म० स्त्री०] (म०) २०७ २३८, २४०, २४२। वि०,
६८, ७६, ६६। म० २१।

चित्त का वह वृत्ति जिससे मनुष्य दूसरों के द्वारा पहुँचाया हुआ वस्तु सह लेता है और उसके प्रतिवार या दंड की इच्छा नहीं करता। सहिष्णुता। पृथ्वी। दुग्धा।

संज्ञा करना = का० कु०, ११३।

[क्रि०] (हि०) प्रतिवार की भावना न रखना। किसी के अपराध का सुवाक करना। भाग करना।

संज्ञानिलय = का० २४६।

[म० पु०] (म०) संज्ञा का घर। संज्ञा का निवास-स्थल। संज्ञा मंदिर।

संज्ञ = का० १८३।

[सं पु०] (म०) धीर धीर घटना। नष्ट होना। ह्रास। भ्रत, समाप्ति।

संज्ञा = वि० ४१।

[वि०] (सं०) संज्ञिय का। संज्ञिय मयवी।

संज्ञार्थ = वि० ४१।

[सं पु०] (म०) संज्ञिय जाति का धर्म जस—अध्ययन, दान, प्रजापालन और शासन।

संज्ञि = का०, १५७।

[सं स्त्री०] (म०) पृथ्वी। घर वामस्यान। संज्ञ।

संज्ञिज = का०, ८। का०, १३, १५, ३१ ६७,

[सं पु०] (म०) ७०, ८१ ८२ ६६५, १७१, १७१,

२४५। भ०, ३३, ८४। ल० १०, २७।

वह स्थान जहाँ पृथ्वी और आकाश

मिला हुआ दिखाई देता है। पृथ्वी से

उत्पन्न, पेड़, वृक्षादि। मग्न ग्रह।

संज्ञिजपटी = का० २२। का०, १६१।

[सं स्त्री०] (म०) संज्ञिज रूपा पटिया। नितिज रूपी परदा या वस्त्र।

संज्ञितभाल = का० १७५।

[म० पु०] (म०) संज्ञिज का सलाह या संज्ञिजरूपी सलाह।

संज्ञितवेला = ल०, १४।

[सं स्त्री०] (म०) संज्ञिज का तट या किनारा, वह स्थान जहाँ आकाश और पृथ्वी मिले हुए दिखाई देते हैं।

सौण्य = का० कु०, १२५। का०, १४, १५६, १७५।

दुबला पतला, दुर्ग। संज्ञिभ्यन्त। संज्ञ-शील घटा हुआ।

सौण्यगंध = ल०, ७५।

[सं स्त्री०] (सं०) हल्की महक। मद सुरभि।

श्रीगणेशोत्तम = १।० व०, ५७।
[म० पु०] (म०) वरुणा धारा वह प्रवाह जा पतन
न महता हा।

श्रीर = ५० ५।
[म० पु०] (म०) दूध। द्रव या तरल पदार्थ, जन। गण
का रम।

सुद = १०, २७। १।० १६ १६३ १६५
[वि०] (म०) १६५। म० १। म०, १२।
वृषण। अथम नाव। छाया या छाडा।
हरिद्र।

सुद्रसा = १० ६६।
[म० स्त्री०] (म०) कृपणता, अथमना नाशपन, छायापन
हरिद्रता।

सुधित = ५०, १२।
[वि०] (स०) भूषा सुधा स युक्त।

सुध = १।० ५२, १८१, १८६ १८६ १८५।
[वि०] (म०) चि०, ६७। म०, ३७। म० ११।
जिम क्षाम हुआ हो। वचन। व्याकुल।

सुन = १।० २६६।
[म० पु०] (म०) सेत। भूमि का बडा या लडा चीन्हा
टुकडा भूल। प्रदक्ष स्थान। रक्षाप्री
या सामा आदि से घिरा स्थान। वह
भूभाग जो अपने भौगोलिक प्राकृतिक
या राजनीतिक कारणों से कोई विश
पता रखना हो धार्मिक या पुराना
स्थान लाय। वह स्थान जहाँ नद्यायिका
का मुपन भाजन मिलता हा।

सुन = ५० ६१।
[म० पु०] (म०) मरुट हानि या नाश आदि स किसी
वरतु का बचाना रक्षा, सुरक्षा। कुशल
मंगल मुख, आनंद। मुक्ति।

सुभ = १।० कु० ६२। का०, १८६ २१८।
[म० स्त्री०] (स०) म०, ३८। म० २०। ल० ७१ ७२।
सुय होने की अवस्था या भाव।
व्याकुलता। अथ रज शक्त क्राय।

सु = १।० कु०, ६७।
[म० पु०] (म०) सडरिज ममाल शरत् और शतकाल
मे दिसाई देनेवाला एक पक्षी।

[म० पु०]—सुत्तना १ म० १, विरग २, पत्रपत्र
१६१४। म० प्रथम प्रवाहित तथा
कामनकुमुम' म० पु० ६६-६७ पर
मबधित। शरत् का वसन चार चार
पक्षियों के चार पक्षी म० रमात्मक तग
म० विद्या गया ३ श्रीर घत म० मजन
तगन का यति पावनें पक्ष म० है।
यथा—

श्रीर नावात्तल युपन य हा यही पर मजन
है म० मवत्त का धरति म० ये म० मजन
यथा समय या यतिगाई पक्ष गत कुछ ता कहा
म० य क्या जीवन शरत् क० य प्रथम मजन म० है।

सुट = १।० १६, ८७ १०७ १६६ २५७।
[म० पु०] (म०) चि०, १६०। म० २२। ल०, ५६।
प्रथ टुकडा विभाग।

सुडहर = १।० १६०। प्रे०, २०।
[म० पु०] (हि०) टूट या गिर हुए मकान भवन या
प्रमाण का अवशिष्ट भाग।

सुग = १।० कु० ६६। १।० २०६ २८८।
[म० पु०] (म०) चि० १। म० ३५। ल० ३३।
पक्षा चिडिया। प्रह, तार। वाग,
तीर।

सुगकुल = १।० कु० १५। १।०, २८५। म०
[म० पु०] (म०) १६। ल० १६।
पत्निया का दन। पत्नियों का कुंड।

सुगमृग = १।० २८५। प्रे० २२ २४।
[म० पु०] (म०) पक्षी और हरि। पशु पक्षा। जगल
के जानवर और पक्षी।

सुगवृद्ध = १।० कु० ६६।
[म० पु०] (म०) पक्षियों का मपूह।

सुगरव = १।० २०६।
[म० पु०] (म०) पक्षियों की आवाज।

सुटकना = १।० कु० ११३।
[वि०] (हि०) खलना। मगडा हाना। घुरा मातूम
हाना। सुट सुट शब्द हाना।

सुटका = १।०, २५।
[म० पु०] (हि०) आपत्ति अनिष्ट। अथ, डर। आशंका,
चिन्ता, पित्र।

सटाई = म० ४० ।

[म० श्री०] (हि०) खट्टापन ।

सड्ग = का०, २०० चि०, ६४ ।

[स० पु०] (स०) एक प्रकार की तनवार ।

सड्गलीला = स०, ६६ ।

[स० श्री०] (स०) तनवार की सटाई ।

सड सड = का० कु० २५ । म० १ ।

[म० पु०] (हि०) गडगडाहट की आवाज ।

सडा = भा०, ७२ । का०, १६ । का०, ४८ ।

[वि० पु०] (हि०) १११ १८२, १६२ १६७, २७६ २०७ २८८ । प्र० १३ म० ६ ।

ऊपर की ओर सीधा उठा हुआ । टाँगें सीधे करके उनका सहार शरीर साथी किए हुए ।

सडी = श्री०, ६८ । का०, १६, ४८, ५६, ६६ ।

[वि० श्री०] (हि०) १०६, ६१, १६५, २०१, २००, २३३ २८५ । वि०, ५७ । प्र०, १८ । न० ५१ ६० ६६ ७४ ।

लडा का स्वीकृत ।

सडी होना = का० ७२ ।

[क्रि० घ०] (हि०) सडा होना । उठना । उत्थित होना ।

सडे = श्री० १८ । का० १४ । का० कु०,

[क्रि०] (हि०) ६१ । का, १८२ २१५, २०५ । वि०, ४३ ७१ । म०, ८, २० । न० ४६ । लडा का बटवचन ।

सड्ड = का०, २५७ ।

[म० पु०] (स०) गड्डा । गड ।

सरसान = चि० ३ ।

[स० श्री०] (हि०) रथियार नज करने की एक प्रकार की साज । तज मान ।

सराद = म०, ७३ ।

[स० श्री०] (का०) लकड़ी या धातु की सतह का सम एवं चित्रित करने का औजार । खरादने का काम । खरादने का भाव ।

सरी = का० कु० ११ । वि० १३६, १५१ ।

[वि०] (हि०) म० ८१ ।

अच्छी, बढ़िया, विशुद्ध । हि० खरा का स्त्रीलिंग ।

[सडा पु०] तन निकाने के बाद बचा हुई तलहन की सिट्टी ।

सरीदना = प्र० १६ ।

[क्रि०] (का०) कस करना । मांस लेना ।

सरे = चि०, १७३ ।

[वि०] (म०) खरा का बटवचन । अच्छा, बढ़िया । शानो । स्पष्टवादी ।

सल = का०, कु०, १२६ । वि०, ६६ ।

[वि०] (स०) प्र०, ४ । बूर, नीच, अधम, दुष्ट ।

ससि = चि०, २३ ।

[सडा पु०] (हि०) बबरा । भ्रज ।

सबा = क०, १८ । वि०, १४ ।

[क्रि०] (हि०) मीजन करने । मीग कर ।

साई = का० १८६ २५७ । प्र०, ४ ।

[स० श्री०] (स०) गदक, चिन्ने आदि के चारा आर रक्षाथ बनाई गई नहर ।

साऊर = का, ३६ ।

[पुर्व० क्रि०] (हि०) भाजन करक । भाग कर ।

साट = का० कु० ४५ ।

[स० श्री०] (स०) चारपाई ।

खाते खाते = का०, १११ ।

[क्रि० वि०] (हि०) भाजन करते करते ।

सान = चि०, २२ ६६, १८७ ।

[स० श्री०] (हि०) आकर । घर । वह स्थान जहाँ म धातु या मूल्यवान पत्थर खाद कर निकाल जाते हैं । उपजति का मूल स्थान । उद्भवस्थान ।

खानखाना = म०, १८, २१, २३ २४ ।

[वि०] (का०) प्रतिष्ठित । एक समानित उपाधि ।

[खानखाना अन्दुरहमि—जम—मनु १५५६ ई०—अबबर कं नवरस्ता म म एक तथा उमका प्रधान मनापति । जरम खाँ का पुत्र, महाराणा प्रताप के शीव और चरित्र का प्रशंसक (दे० अबबर) । विद्वान्

खिलेगी = ल०, ४० ।
 [क्रि०] (हि०) खिलाना का भविष्यत्कालिक क्रिया ।
 खिले रहे = चि०, १८० ।
 [क्रि०] (हि०) खिले थे ।
 खिलौगे = चि०, १७५ ।
 (श० भा०) (२० 'खिलगा' ।)
 खिसक कर = म०, १७ ।
 [पूव० क्रि०] (हि०) मरक कर ।
 खिसक गई = म०, १३ ।
 [क्रि०] (भनु०) सरक गई ।
 खिसकना = भा०, ७७ । का० कु०, ६४ ।
 [क्रि०] (भनु०) मरकना ।
 खींच = म०, ६ ।
 [सं० ली०] (हि०) आकर्षण, खिंचाव ।
 खींचती = का० २२८ ।
 [क्रि०] (२० 'खिंचना' ।)
 खींचते = का० ८६ ।
 [क्रि०] (हि०) (२० 'खिंचना' ।)
 खींचना = का०, ६६ १२० । ल०, २७ ।
 [क्रि०] (हि०) (२० 'खिंचना' ।)
 खींच रहा = का०, २२७ ।
 [क्रि०] (हि०) आकर्षण कर रहा ।
 खींच रही = का० २०४ ।
 [क्रि०] (हि०) (२० 'खींच रहा' ।)
 खींचा = का०, १०६ ।
 [क्रि०] (हि०) 'खिंचना' का भूतकाल ।
 खींचि = चि०, ६४, १५७ ।
 [पूव० क्रि०] (श० भा०) खांच कर ।
 खींकना = चि०, १५५ ।
 [क्रि० भ०] (हि०) साजना, झुकाना ।
 खींक रहा = का०, २२७ ।
 [क्रि०] (हि०) झुकाना रहा ।
 खींकलाना = का०, ८३ ।
 [क्रि० भ०] (हि०) (२० 'खिंचलाना' ।)
 खील = का० ६१ । ल०, १५ ।
 [सं० ली०] (हि०) बाल । बाँटा ।
 खुदी = का०, १६६ ।

[सं० ली०] (हि०) कुट्टी । खूटी ।
 खुदवाना = का० कु०, १०८ । प्र०, २० ।
 [क्रि०] (हि०) खोनाई बनाना ।
 खुल = का०, १३३, १८१, १८४ ।
 [क्रि०] (हि०) (२० 'खुलना' ।)
 खुलता था = का०, २३३ ।
 [क्रि०] (हि०) 'खुलना' का भूतकालिक रूप ।
 खुलते = का० ८४, ११६ ।
 [क्रि०] (हि०) 'खुलना' का वरादान काल का क्रिया ।
 खुलना = भा०, ३७, ६८ । का०, ७६, ५७, ५८ ।
 [क्रि० भ०] (हि०) १८४, २६३ । ल०, २४, ३२ ।
 गुप्त बात का प्रकट होना, आवरण हटना ।
 खुलनेवाली = का०, १८० ।
 [क्रि०] (हि०) जो खुल सके ।
 खुला = का०, ८७, १७२ १७८ २२१ ।
 [क्रि०] (हि०) खुलना की भूतकालिक क्रिया ।
 खुली = का० ३५ ८७, १८६ । चि०, १८१ ।
 [क्रि०] (हि०) भ०, १८, ५२ । प्र०, १० । म०, १० । ल० ४५, ६१ ।
 खुलन की भूतकालिक क्रिया (खुना का स्त्रीनिमित्त) ।
 खुले = का०, १२५, २१८, २४७ । का० कु०, ६२ । प्र० ६ ।
 [क्रि०] (हि०) 'खुलना' का वटुवचन ।
 खुले किवाड़ सदृश = का० कु०, ८० ।
 [वि०] (हि०) = खुले हुए दरवाज के समान । बिना अवरोध के । बिना आवरण के ।
 खुसरू = ल० ७८ ।
 [म० पु०] (का०) दिल्ली का एक शासक ।
 [खुसरू—शाह मुनवान नामिखदीन खुसरू (स्वामी गुलाम काबू), जो गुजरात विजय के समय मोगल के साथ ही अलाउद्दीन के दरबार में दिल्ली भेजा गया था मारवाड़ या परमार जाति का था । मुगलमान बनने पर उसका नाम हुसैन रखा गया । खुसरू खाँ के नाम से

सैवा = ल०, ५७ ।
 [म० पु०] (हि०) उतराई । बोक लदी नाव की सप ।
 खेयैया = चि० १८२ ।
 [म० पु०] (हि०) नौका को पार लगानेवाला ।
 खोंट = ऋ० ७४ ।
 [स० स्त्री०] (हि०) दोष, बुराई ।
 खोखली = का० १५८ ।
 [वि० स्त्री०] (हि०) पाला । जिसके आतर कुछ भी न हो ।
 खोखलपन = का०, २४१ ।
 [त्रि०] (हि०) पालापन । निम्मारता ।
 खो गया = का०, २४१ ।
 [क्रि०] (हि०) नष्ट किया । गवाया । भूल गया ।
 खोज = का० कु०, १० । का०, १४ ८७ ।
 [म० स्त्री०] (हि०) १११, ११४, १३६, १७५ २४३,
 चि० ३१, ४६, ६० । ऋ०, ३१,
 ३३ । प्र० १४ ।
 अनुसन्धान, तन्नाश ।
 खोजती = का० २८१ ।
 [क्रि०] (हि०) ढूँढती ।
 खोजता = का०, १३१ १५३ १८३, २२७
 [क्रि०] (हि०) २३० ।
 ढूँढता ।
 खोजते = का०, १६१ ।
 [क्रि०] (हि०) ढूँढन ।
 खोजने ते = चि०, ६४ ।
 [क्रि० वि०] (प्र० भा०) खोजने से ।
 खोजना = का०, १८, २६ । का०, ४०, ५१,
 [क्रि०] (हि०) ५६ । चि० १६७, १६८, १८३,
 १८६ ऋ०, २५ ३८ ।
 तलाश करना, ढूँढना ।
 खोज रहा = का०, ५८ २३० ।
 [त्रि०] (हि०) ढूँढ रहा ।
 खोज रहे थे = का० २१३ ।
 [क्रि०] (हि०) ढूँढ रहे थे ।
 खोजूँ = का०, ६१ ।
 [त्रि०] (हि०) ढूँढ ।
 खोदना = का०, कु०, १०८ ।

[क्रि०] (हि०) उत्तेजित करना । उकमाना, उभाड़ना ।
 खनन करना ।
 खो दूँ = का०, २१८ ।
 [क्रि०] (हि०) गवाँ दूँ ।
 खोती हूँ = का० २३७ ।
 [क्रि०] (हि०) गवाँ देता हूँ ।
 खोना = का० कु० ६, ६१ । का , ८६ ।
 [क्रि०] (हि०) गवाना नष्ट करना । भूनना । छाड़ देना ।
 खोया = का०, १४ ।
 [क्रि०] (हि०) गवाया ।
 खोए = का०, २१४ ।
 [क्रि०] (हि०) गवाए ।
 खोल = का०, कु०, ६२ १०५ । का०, ६६,
 [प्रथ क्रि०] (हि०) ११७, १६६ २५२ २५३ ।
 उधार कर । अवगुठन मुक्त करके ।
 खोलकर = का० कु०, ५१, ८४ । का०, २६१,
 [प्रथ क्रि०] ऋ०, ५७ । प्र० ६, १० । ल०
 ११, ६८ ।
 उधारकर । अवगुठन हटाकर ।
 [खोल तू अपनी आँखें खोल ।—'एक घूट' का
 नेपथ्य गीत जो 'प्रमाद सर्गोत्त' में पृष्ठ
 १०२ पर प्रकृत है । जीवनमागर
 में चल लहरें उठ रहा है । छवि की
 किरणों से तू खिल जा श्रीर मुख का
 अमृत ऋषी में स्नान कर ल । महा-
 सौंदर्य का इस अनन स्वर से मिलकर
 तू अपनी वाणी में मद घोल । जिससे
 सब प्रकाशवान है उस जानने का प्रयत्न
 कर । इस महासौंदर्य को जानकर
 अपने को भून से जकड़ मत । बचन
 खोलो श्रीर जीवनसौंदर्य का
 दर्शन करो ।]
 खोलना =
 [क्रि०] (हि०) भा० ६५ । का० ३७१, ६३, ७०,
 १७१, ४० । चि०, ५७, ७०, १५३,
 १६७ १८१ । ऋ०, २१ । ल० १७ ।
 उखाड़ना अवरोध हटाना, अनावरण
 करना । प्रारम्भ करना ।
 खोली = का०, १३२ ।
 [क्रि०] (हि०) उपारी ।

गधमय = चि०, ४६। ऋ०, ६४।

[वि०] (हि०) गध म यरो हूँ।

गधर्वा = वा०, ५१, ५६।

[स० पु०] (हि०) देवताओं में एक विशेष क्रांति के साग जो गाने में निपुण होने हैं। गानेवाला का जाति क लोग।

गधयाह = वा०, २६१। चि०, १३२।

[स० पु०] (म०) धायु। हवा।

गध विसरण = वा० कु०, ६७।

[म० पु०] (स०) गध का बटवारा।

गभीर = वा० कु०, २१, ७५। वा०, २६, ३४,

[वि०] (म०) ५६, ८६, ११४, २४५, २७७, २८०।

चि०, ११, २३, १५७, १६, १६६।

प्रे० १२, २५। म० २, १८।

गहरी। घना। गूँ। जटिल। जिसका अर्थ लगाना कठिन है। शांत। धीर।

गभीरता = म०, ६।

[स० ली०] (हि०) शांति। धय। जटिलता। गहनता। प्रथम गगन की गठिनाई।

गभीराशय = चि०, १४८।

[स० पु०] (स०) गहन अतिशय। गठित तात्पर्य। गूँ विवेचन।

गई = वा०, ६। का०, ६, ४, ११७, १३२,

[क्रि०] (हि०) १४३, १७०, १७८, १७९, २३३।

प्रे०, ४, २१। म०, २०।

‘जाना’ क्रिया का भूतकालिक लीलिय रूप।

गगन = आ० ३२ ४४, ६०, ६८। वा० कु०,

[म० पु०] (स०) ३६, ७४, ९५। का०, १३, ३६, ६३,

१७१ १७५, १८०, १८५, २३५,

२४५, २८४, २८०। चि० ७१,

१०७ १५०, १६०। ऋ०, ३८ ७१।

प्रे० १५। ल०, २१ ४८, ६३।

आकाश। नभ।

गगनधुमिनी = का०, ३०।

[वि०] (हि०) बहुत ऊँची। आकाश का धूमनेवाला।

गगन बीच = वा० कु०, ४६। प्रे०, ६।

[वि०] (हि०) आकाश के बीच।

गगन शोक = वा०, १७०।

[म० पु०] (म०) वह भाव जो पूरे सृष्टि में व्याप्त है।

गगन सा = वा० कु० १५।

[वि०] (हि०) आकाश के समान। विस्मृत।

गगन हृदय = चि०, १६२।

[स० पु०] (म०) नभ के बीच, आकाश का विमान हृदय।

गज = वा० कु०, ५२, ६४।

[म० पु०] (स०) हाथी। आठ की संख्या सूचक शब्द।

(हि०) ३६ हज का एक नाप जिसे ‘गज’ कहते हैं।

गजराज = वा०, २५८।

[स० पु०] (स०) श्रेष्ठ हाथी। बड़ा हाथी।

गजरे सो = म०, २०।

[वि०] (हि०) पूर्वों का बड़ा मालाओं के समान।

गजवन = चि०, २५।

[म० ली०] (स० भा०) गजन। धार शब्द।

गठन = चि० ७०।

[म० ली०] (हि०) बनावट।

गठना = वा०, १७। वा०, २६८। ऋ०, ५४।

[क्रि०] (हि०) चुमना। दब करना। दुलना। दफन करना। खुरखुरा लगना।

गठन = चि०, ५६।

[स० ली०] (हि०) बनावट। गठन, गठने की क्रिया या भाव।

गण = वा०, २७८। ऋ० ५६। म० ७।

[स० पु०] (म०) समूह। शिव के पारिपद। दूत। मन्त्र। अनुचर। लघु और गुप्त क विचार स तान तान वणी का समूह।

गणना = वा०, ३८।

[स० ली०] (म०) गिनना। आकड़ा। लेखा। हिसाब लगाना।

गणहि = चि०, २६।

[स० पु०] (स० भा०) गण का।

गणेश = चि० ७२।

[स० पु०] (म०) गणों के ईश। हिंदुओं के प्रधान देवता जिनका शिर हाथी का और नेत्र शरीर मनुष्य का है।

गत = वा०, कु०, ६६। वा०, १५७, १६।

[वि०] (म०) रहित । हीन । बीना हुआ । सर्वधी जसे जातिगत, भावगत ।

[म० पु०] नाचने का एक मुद्रा । संगीत का एक बला ।

गन्प्रत्यागत = ल० ६६ ।

[वि०] (म०) गया और वापस हुआ । घाना और जाना । तलवार की एक सड़ाई जिसमें भागे पीछे बढ़ा हटा जाता है । उ०— गत प्रत्यागत में भाए फिर चले गए ।

गति = का०, कु० ७, ५५ । का०, ११, १७
[सं० श्री०] (म०) ८१, ११५, १५७, १६०, १६८, १६३, २०६, २२४, २६७ । चि०, १७६ ।
झ०, २७, ५५, म० १६ । ल० ७१ ।
चाल । गमन । कपन । हुरकत ।
धवत्था । दशा । प्रवेश । लीला ।
साया । मोक्ष ।

गतिमय = का०, १५७ १६१ ।

[वि०] (म०) चलती हुई । हिलती हुई । गतिशील ।

गतिविधि = का०, २७७ । ल० २६ ।

[म० श्री०] (स०) हाल चाल । दशा । हालत ।

गतिविधि निर्धारक = का०, कु०, ६४ ।

[वि०] (हि०) दशा या हालत को ठीक करनेवाला ।
स्थिति निर्धारक ।

गतिशाली = का० १४४ ।

[वि०] (हि०) ('ग० गतिशाल' ।)

गतिशील = का० २५१ ।

[वि०] (स०) जिसमें गति हो । उ गतिशील । चलन
करनेवाला ।

गतिहीन = का १४४ ।

[वि०] (स०) स्थिर, अटल, जिसमें गति न हो ।

गद्गद् = का०, कु० ६३ । का० ६४ २१८,

[वि०] २८६ । चि० ५० ५६ । झ० ४४ ।
प्र०, ४ ७ ।
हृत्पूण । प्रममम् । घानद भरा ।

गन्गन् हृदय = का, कु० ३ ।

[म० पु०] (म०) हृत्पूण मन । प्रसन्न चित्त ।

गन्गद् हृदय नि म्लत = का० कु० ३ ।

[वि०] (म०) प्रेममग्न या हृत्पूणम्लत से निक्कल
हुआ ।

गद्गद् = का०, कु० १०६ ।
[म० श्री०] (स०) एक प्राचीन मन्त्र जिसमें धातु ने एक
ठठे में बड़ा लट्टू लगा रहता है ।

गन = चि० ५१ ।

[म० पु०] (म० भा०) गमूढ कुट्ट ।

गमन = चि०, ४० ५८ ।

[वि०] (स०) जाना । खाना हाना । प्रस्थान करना ।

गया = श्री०, ३२ । का० = ६ ११ १३६,

[वि०] (हि०) १४४ १५०, १६२ १७८ १७६,
२१२, २५२ २८१, २८३ । प्र० ४,
६ १८, २१ । म० ५, ८ १०
२१ २४ ।
जाना' क्रिया का भूतकालिक एक
वचन, पुलिग रूप ।

गर = चि०, १५१ १०१ ।

[सं० पु०] (हि०) रोग, बीमारी । गला, गरदन । (का०)
कारीगर, बनानेवाले ।

[प्रत्य०] (का०) निमाता । बनानेवाला । जम, कारीगर,
बाजीगर ।

गरज = चि० १५७ २५८ ।

[म० पु०] (स०) बादल या सिंह की आवाज । (का०)
मतलब, प्रयोजन, इच्छा स्वाभ ।

गरजन = चि० १५८ ।

[म० पु०] (म० भा०) बादल सिंह या वार पुराणों का
आवाज ।

गरजना = श्री० ७ । का० कु० १०५ । का०

[वि०] (हि०) १४ ११६ । चि० १५८ । प्र०, २५ ।
सिंह या बादल का तरह आवाज
करना ।

गरल = श्री०, ४२ । का० ५ १६ १२२

[सं० पु०] (म०) १२४ १६३ । चि०, ७२ । झ० ८४ ।
ल० ४३ ।
विष । जहर ।

गरलपात्र = का०, १६३ ।

[म० पु०] (स०) जहर का बतन । विष भरा प्याना ।

गरिमा = झ० ४२ । ल० ३३ ६६, ७६ ।

[सं० श्री०] (स०) गुण्य, महत्व, गौरव । आठ मिट्टियों
में से एक । घमट ।

गण्ड = बि०, ८५।

[सं पु०] (म०) विष्णु का बाहन। एक प्रकार का पक्षी।

गरे = बि०, १।

[म० पु०] (ब्र० भा०) गदन म गन म, नटई म।

गर्जन = आ० १५। वा० कु०, ५७ १०७।

[सं पु०] (स०) बि०, १५३।
दहाड (० 'गरजन')।

गर्त = ब० २। वा० कु० ६४ १००।

[सं पु०] (म०) गडगा दरार, नरक।

गर्दन = का० कु०, ७३।

[म० स्त्री०] (का०) गला।

गर्म = का० ४८ १४७ १४३।

[म० पु०] (स०) पट। गभाणय। पट व अन्तर का वस्त्र।

गर्म = का० कु०, ८५। अ०, ८४।

[वि०] (हि०) तापयुक्त। गरम।

गर्ज = का० १०। वा० कु०, ४४, ८५,

[सं पु०] (स०) १०४। वा०, १४। अ० ७५। म० १६। न० ७३।
अहकार। घमड। अपन गौरव का अनुभव करना।

गर्जरथ = का० २५।

[सं पु०] (म०) गज रथा रथ। अभिमान रथा यान।

गर्जस्तीत = का० कु० ८१।

[म० पु०] (म०) ब्र० दुमा गव। अधिक घमड।

गविता = बि०, ७१।

[वि०] (स०) गव करनेवाली। वह नायिका जिस अपन रूप, गुण आदि पर अहकार है।

गर्वाल = का०, २०१।

[वि०] (हि०) गव करनेवाला।

गर्वाग्रत = का० २६६।

[वि०] (स०) अहकार म चूर। गज म घपन का ऊचा समझनेवाला।

गर्ज्यो = प्र० २५।

[वि०] (स०) अभिमानी। अहकारी।

गर्ज्यो मान्य = प्र० २५।

[सं पु०] (म०) अहकारा मनुष्य।

गल = वा०, ४८ १८० १६०, २४७,

[म० पु०] (म०) २५४। बि० ५६, ७०।

गला कठ।

(हि०) गला क्रिया का धातु रूप।

गलते = का० १८१।

[क्रि०] (हि०) पिघलता।

गल बाँधी = आ० २६। अ० ३२।

[म० स्त्री०] (हि०) एक दूसरे व गल म बाह चालना। परस्पर याराना का परिचय चिह्न।

गल नीच = का० कु०, १०३ बि०, ५५।

[म० पु०] (हि०) गदन गल र नीच म।

गला = का० कु०, ३६। अ०, ३४, ५१।

[म० पु०] (हि०) कठ। गरदन।

गली = का०, २४३।

[सं स्त्री०] (हि०) मकरा माग।

[क्रि०] पिघनी।

गले = आ० १८। का० ११ ७३, १३०।

(हि०) बि० १ १६२। अ०, ३७, ५१, ७४। प्र० २, २०, २६।
गला का बहुवचन।

गल्प वथा = का० कु० ४७।

[म० स्त्री०] (म०) झूठी कहानी। वथा। आख्यान।

गर्जई = बि० १८३।

[पूव० क्रि०] (ब० भा०) खानक। नष्ट करके।

गहत = बि०, ६१, १५४ १६०।

[क्रि०] (ब० भा०) प्राप्त करता है। लेना है।

गहन = आ०, ६०। वा० २, ६६, १११,

[वि०] (हि०) १५७। अ०, ५७।

वठि। घना, दुगम। अघात। गूढ।

वठि। आमाजी से समझ म न आन-

वाला।

गहना = बि० १६१।

[क्रि०] (हि०) ग्रहण करना। लेना। पकटना।

गहन = का०, २५८।

[सं पु०] (हि०) अलवार। आभूषण। गहना का बहुवचन

गहराई = का०, ३२, १५०। अ०, ४३।

[सं स्त्री०] (हि०) गहनता। गभीरता।

गहरी = का० कु०, ३६। का०, ५, ७०, १०६
 [वि०] (हि०) २०६। अ०, १४। प्र०, ११, १३।
 स०, १३, १४।
 गभार। अर्थात्। बहुत नीचे तक।
 गहरा का स्त्री विभ।

गहरे गहरे = का०, २८६।
 [क्रि० वि०] (हि०) बहुत नीचे। गहराई में।

गहहु = वि०, ८६।
 [क्रि०] (अ० भा०) प्राप्त करो। पकड़ो।

गह्वे = वि०, ४३, १०३।
 [क्रि०] (अ० भा०) प्राप्त करें।

गह्वो = वि० १७२।
 [क्रि०] (अ० भा०) प्राप्त करो।

गह्वी = वि०, १५२।
 [क्रि०] (अ० भा०) दे० गह्वो।

गह्वर = का०, ८८।
 [सं० पु०] (सं०) गत, गुरा, सोह, श्रुत स्थान। पालङ्ग।
 रीता। जल।

गौछि = वि० ७१।
 [पूर० क्रि०] (अ० भा०) जोड़कर गूँथकर।

गौठ = का०, ७७।
 [सं० पु०] (हि०) बंधन, गिरह।

गाघार = का० ४६। म० ११, १५।
 [सं० पु०] (सं०) गाघार दह। गध रंग नामक सुगंधित द्रव्य।

[गाघार—इसकी चर्चा कामामना में 'अद्वा' के प्रसंग में तथा महारत्ना के महत्व में आई है। धृतराष्ट्र का पना यूर्ति की राज कथा थी। अश्वमेधनिम्नान और पाकिस्तान का पश्चिमाञ्चल गीमाग्रत १२ शताब्दी तक गाघार के नाम से प्रसिद्ध था।]

गाइ गाइ = वि० ६७।
 [पूर० क्रि०] (अ० भा०) गा-गाकर।
 गागा = म० ११।
 [सं० अ०] (हि०) गरी। गाने भरन का पात्र। पटा।
 गागारि = म० १६।
 [सं० अ०] (हि०) दाग पटा। गहरा।

गात = का० कु०, ११२। का०, ५३, १५१।
 [म० पु०] (हि०) चि० ३ १७६। अ०, ५८। स०,
 २४ ३७ ४५।
 अथ शरीर।

गाता = का० ३४ ४५, ६८, १५० १६५,
 [क्रि०] २२५, २६२। अ०, ७०। म० १७।
 (हि०) 'गाना' क्रिया का सामान्य वतमान
 काल का रूप।

गाथा = पा० कु०, ६३। का० ३७, १७६।
 [सं० स्त्री०] (सं०) प्र०, ५, ६। स०, ११ १५, २६,
 ३२, ४६।
 कथा। कृतात। पाठ्य का एक छन्द।

गान = का० कु०, १६। का० २६ २६,
 (सं० पु०) (हि०) १२७ १५०, १६७ १६८। वि०,
 १४६। अ०, १७ ३५, ६८।
 गाने का क्रिया। गीत।

गाना = स० १५ ४६।
 [क्रि०] (हि०) गाने का क्रिया करना। गाय गाना।

[गाने से—भवप्रथम इन्द्र, कना व निराम ३ मार्च १६२७ में प्रकाशित 'स्कन्दपुराण' का गान प्रसाद मगीन' में पृष्ठ ६१ पर वर्णित। कविता का आशय है कि धूप छीट के गेन के सहस्र गाने जावन बीतता चला जा रहा है। भविष्य के रण में हम जगाकर नव प्रताप के तुलारकण में प्रति क्षण समय बहकता है और पता नहीं कहीं जानर छिप जाता है। रिना में माहम नहीं है कि उस वक्त राज मक। इसीसे जीवन में जो मधुरता है उस सुगन्धित हाने दी। और जो कुछ हम माना है और मूल कर माने दो।]

गानो = का० २३ १४५ १७८।
 [सं० पु०] (हि०) गाना।

गाय = का० १८ १६, २५। प्र० ७।
 [सं० अ०] मोक्षदा गाय पशु जो दूध दता
 हा। गाय ददा।

गात्र = का० कु० ४६, ११५।
 [सं० पु०] (हि०) गान।

गालव = चि०, ५८।

[म० पु०] (म०) एक ऋषि। एक वयावरण। एक स्मृतिवार। एक प्रकार का वृद्ध।

[गालव—विश्वामित्र य पुत्र तथा शिष्य रूप म पुराणा म वर्णित। इनका आश्रम जयपुर व पास तथा चित्रकूट म था। विश्वामित्र न इनस आठ सौ श्यामवर्ण घोड़े गुप्तस्त्रिणा रूप म माँग। इन्हन तन्त्र विष्णु का पारतपस्या की। विष्णु के आदेश म मण्ड व साथ ययाति व पास गया। ययानि ने अपनी ब्या मायका का (उमर पुत्रा पर स्वाधिकार व लिये) उस दिया, जिनर माध्यम स इनने गुप्त का माँग पूरा की। गालव का चचा 'वन मिलन' म है।]

गालियाँ = चि०, १८०।

[स० श्री०] (हि०) ऐसा यतों जा दूसरा का बुरा लगे।

गायल = चि०, २६ १६७।

[पू० क्रि०] (ग० भा०) गति हुए।

गायन = चि०, ६२, १५३। १२६।

[त्रि० वि०] (ग० भा०) गान व लिये।

गिद्धनी = चि०, ५१।

[स० श्री०] (ग० भा०) गीष् का मादा।

गिनती = वा०, २६८। म०, ३।

[म० श्री०] (हि०) गणना।

गिनता = भा०, ३६। वा०, १७६ २७१।

[त्रि०] (हि०) चि०, २९, ६२, प्रि०, ११। म०, २४। ल०, ३, ६। गणना करना।

गिरजा = वा० कु०, ६। चि०, १८६।

[म० पु०] (हि०) इनाइया का प्रायनामदिर। पावता।

गिरना = वा० कु०, ५२। प्रि०, १२, ४६, ७७।

[क्रि०] क०, २६। वा०, १५, १६ १७,

८२ ६४ १६४। १७१ १७५ २०२,

२५१, २५७, २६६, २८१, २८४,

२६२। चि०, १ ८२, ५०, ६४,

१६६। म०, १५, ३५ ३८। प्रि०,

३, १४, १७। म०, ७। ल०, ६, ११, २५, ३४, ३७, ८०।

ऊपर से नाचे की ओर गाना।

पतन होना।

गिरवाती = वा० २६७।

[क्रि०] (हि०) पतन का भार ले जाती।

गिरा = वा० कु०, ५२।

[स० श्री०] (म०) बागा। जीम। मरस्वती।

गिरि = वा०, २, १७, २५७, २८१ २८४।

[स० पु०] (म०) चि०, १, ४२, ६४, १६६। म०, १५,

३५। प्रि०, १४, १७।

पर्वत, पहाड़। परिव्राजकों की उपाधि।

गिरि अचल = वा०, २८१।

[म० पु०] (स०) पहाड़ व मध्य या तराई में।

गिरिकन्दर = म०, १६।

[स० श्री०] (स०) पहाड़ का गुफा।

गिरिकानन = चि०, १५६, प्रि०, ११।

[म० पु०] (म०) पर्वत और जंगल या उपवन।

गिरितटी = प्रि० १५।

[स० श्री०] (हि०) पहाड़ का तराई।

गिरिपथ = वा०, १७६ २७७।

[स० पु०] (स०) पहाड़ी मार्ग। पहाड़ पर का रास्ता।

गिरि भार = ल०, ४७।

(स० पु०) (हि०) पहाड़ का बोझ। अत्यधिक भारस्वरूप।

गिरिशृंग = चि०, १।

[स० पु०] (स०) पर्वत की चोटा, शृंग, शिखर।

गिरिश्रेणी = वा० कु०, ४२।

[म० श्री०] (स०) पर्वतमाला, पहाड़ की चाटिया की शाखाएँ।

गिरी = वा०, २०२।

[त्रि० प्र०] (हि०) किसी वस्तु से दूसरी वस्तु का पात हो जाना या स्वयं अपने स्थान से चेतना शून्य होकर दूसरे स्थान पर आ जाना। लड़क न रहकर अमान पर या नाचे डाल देना, बल, महत्त्व आदि कम करना, प्रवाह को डाल की ओर ले जाना, युद्ध में मार डालना।

गूँजती = का० पु०, १०। रि० १६५, १६७।
[वि०] (हि०) स०, १२, २३ ५८।

(२० 'गूँजा' १) गूँजा या स्त्री निग।

गूँजते = का०, ८६, २६०।
(क्रि० घ०) (हि०) गुजार करत भाभना।

गूँजी = का०, १६२।
[क्रि० घ०] (म०) रिमो बं स्थान म पूछा या सावाज
वा गूँज उठना या भर जाना।

गूँजें = का०, ६६।

[क्रि० घ०] गुजार करें।

गूँय = का० ६७।

[क्रि० म०] (हि०) ताग घालि म एर हा तरह की वस्तु
सा चीजी वा पिराना गूँयना। उ०—
गिर नाचा कर हो गूँय रही भावा
जिसस मधुमार डर।

गूँद = का० २३।

[पूव० क्रि०] (हि०) छूटकर हटकर।

गूँधत = वि० ७०।

[क्रि० स०] (हि०) गूँधना, पिराना, मोठना।

गूँड = का०, ८१। त० ७७।

[वि०] (म०) छिपा हुआ, जिसम कुछ विशेष अभि
प्राय छिपा हा गहर या गभार घाशय
वाता जिसका आशय सपकना
काठन हो।

गूँह = का०, १६ ८२, ११८ १८२ २३४।

[सं० पु०] (स०) वि०, ६७ ८२। का०, ७१ ५२।
प्र० ६, १३।

हट आदि से बनाया हुआ मकान गेह
भवन निवृत्त आगार। कुटुंब वश।

गूँहपत = का०, ८१।

[सं० पु०] (सं०) घर का स्वामी। अग्नि। कुत्ता।

गूँहपति सदृश = का० पु०, ६३।

[वि०] (म०) गूँहपति या घर के मालिक व समान।

गूँहलक्ष्मी = का०, १५०।

[सं० स्त्री०] (म०) घर की लक्ष्मी, सन्धरिना स्त्री।

गूँहविधान = का०, १५०।

[म० पु०] (सं०) घर का कार्य तथा व्यवहार, सुचारु
रूप से चलावाला नियम, ढंग।
तरावा।

गूँस्थ = प्र० ७, ८।

[म० पु०] (सं०) घरदार वाता। कुटुंब वाता।

गूँहिया = वि० ६२।

[म० म०] (म०) गूँह स्थान। भावा पना रसा।

गूँद = त० १४।

[म० पु०] (हि०) रबर वगैरे या गमक वा बत्ता हुआ
वस्तु याता जिसस पट्टा मयन है।
कट्टा।

गेरे = वि० १५७ १८८।

[पूव० क्रि०] (हि०) गिराकर या डालकर।

गेह = का० पु०, ६८। का० ८४।

[सं० पु०] (म०) घर, भवन, गृह।

गेरिय = का०, २७७। स०, ३२।

[सं० पु०] (म०) गूँद। साता।

[वि०] गूँद म रसा हुआ। गरपा।

गेह = का०, २८।

[सं० स्त्री०] (हि०) छाग माय। दास्ता।

गोईये = वि० १७८।

[क्रि० स०] (व० भा०) छिपाइय।

गोचर = का० २३५।

[म० पु०] (सं०) चरागाह, चरी।

गोधरभूमि = का० २३५।

[सं० स्त्री०] (सं०) वह भूमि जो केवल गोमो की चरन ने
जिये छोड़ दी जाती है, पशुचर भूमि।

गोता = का० पु०, ६०।

[सं० पु०] (हि०) पाना म निमज्ज हान हुवन की क्रिया
या भाव। हुक्का। दुन्नी।

गोद = का० ३०। का० पु०, ६४ १०५।

[म० स्त्री०] का०, ३०, ७७। वि०, १४१।

(हि०) = १८५। का०, ३४, ६०। प्र०, २१।
न०, ५४।

कोड भावल, अरु।

गोधन = का०, पु०, १२५।

[सं० पु०] (सं०) गोयें, गाल्पा सपत्त। एक प्रकार
का तीर।

गोधूली = का०, १६। का०, ६७, १०१। का०

[सं० स्त्री०] (म०) ३०, ३४।

साधवाल का वह बना जब गोयें
चरकर घर लौटकर आती है और

उनके सुर से धूल उड़कर आकाश में छा जाती है।

[गोधूली के रागपटल में स्नेहाचल फहराते हैं- 'अजातशत्रु' का गात, जिमम भगवान् बुद्ध विवस्मर से कल्याण का महिमा का आभ्यास करते हैं। प्रगाढ़ संगीत' में पृष्ठ ४२ पर सक्तित। कल्याण गोधूली के रागपटल में स्नेह के अक्षरों से उपा के गुण गगन में हामबिलाम बालक के सुर पर चद्रकाति, ताराभा में ग्राम का भाति प्रगट है। पशुपति की प्रादि सृष्टि इन कल्याण से विजित हुई और मानव का महल कल्याण के कारण जगती में पना।]

गोप = बि०, १६१।

[सं पु०] (म०) गोरक्ष, आला, अहार। गोशाला का अध्यक्ष। राजा। गाव का मुखिया। गल में पहनने का हार।

गोपकुल = का० कु० १११।

[सं पु०] (म०) गोरक्ष की या आला का परिवार।

गोपनालक वेश = का०, कु०, १११।

[सं पु०] (म०) गोपनाल की तरह पहनावा।

गोपशाला = का०, कु०, ११।

[सं ली०] (सं०) गोपनाल की लड़का, गोपी, गोपिन।

गोपाल = का०, कु०, १२५।

[सं पु०] (म०) दायक। राजा। गो का पालन करनेवाला व्यक्ति।

गोय = बि०, १६६।

[सं पु०] (प०) गेह।

[पूर्व० क्र०] (अ० भा०) छिपाकर।

गोरक्षण = बि०, ३१।

[सं पु०] (सं०) गोवा की रक्षा का भाव।

गोरे गोरे = का०, कु०, ४६।

[वि०] (हि०) साफ और सफेद रंगवाने, गोर रंग के। मुदर-मुदर।

गोरोचन = बि०, १८।

[सं पु०] (म०) एक पीता सुगन्धित द्रव्य जो गो के पिताशय से निकलता है।

गोल = का०, कु०, १० का०, २५३।

[वि० म०] (सं०) बि०, ३, ६८। क, २२। ल०, ५४। वृत्ताकार, वृत्त। समूह। अस्पष्ट।

गौर = का० कु० ३४।

[सं पु०] (अ०) ध्यान, चिंतन।

[वि०] (हि०) साफ तथा स्वच्छ रंगवाला।

गौरव = का०, १७। का०, ३०, १०२, १५४।

[सं पु०] (सं०) ल०, ५१, ५८। समान, पूज्य बुद्धि, अमृत्युधान, उत्कृष्ट, गुप्ता का भाव।

गौरवमण्डित = का० कु०, ११८।

[वि०] (सं०) समान या आदर से मुशामिल। समाहत। प्रतिष्ठित।

गौरी = का०, २६४।

[सं ली०] (म०) पावता। चारे रंग की स्त्री। घाट उर्ध्व की कथा। तुलसी। गौरीचन। सफेद माया। प्रियपुत्र बुद्ध। शुद्धि। बुद्धि की एक शक्ति। एक प्राचीन नदी।

ग्लानि = का०, ६०, २०७।

[सं ली०] (म०) परित्याग, अवधि, वेद, मानसिक या शारीरिक शिथिलता। साहित्य में वाक्मय रस का स्थायी भाव।

ग्रथ = का० कु०, १६।

[सं पु०] (म०) पुस्तक, किताब। गाठ लगाने का भाव।

ग्रथि = का०, १४५ २५२।

[सं ली०] (म०) गाठ। मायाजाल, बंधन। राग। आलू। कुटिलता। भद्रमोघ।

ग्रथिहि = बि०, १४२।

[सं ली०] (अ० भा०) गाठ या मायाजाल का।

ग्रस्त = का० कु०, ६४। का० २३६।

[वि०] (म०) पकड़ा हुआ। लाया हुआ। पण्डित।

ग्रह = का०, ५ १७ २५, १७०, २०५, २६१।

ग्रह आदि नव ग्रह। नी की मय्या। अनुग्रह। निबंध। प्रायः, हठ। अघ्य

मगग। राग। म्मद। गहुनि घाणि
घाणी मर पचनेराता। घाणि, १।
रगति। कण्ठापक रति।

ग्रहगण = वा० पु० ६०।

[ग० पु०] (ग०) गृह घाणि नर ग्रा वा मधुनाय वा
मधु। गणायता वा जमात।

ग्रहण = वा० पु० २८ ६। ११६। वा०

[ग० पु०] (ग) १६० ०३६ ४। वि०, १७७।
स० ५१ ७८।

गृह ग्रहण रद वा वन्तु या राट्टु द्वारा
ग्रहा जाना। स्थारार रना उपरि प
प्राप्ति। ग्रह गणय धारण।

ग्रहपद = घा ७०। वा० ३७।

[ग० पु०] (ग) ग्रहो क घूमने या ग्रहण करने का
माग।

ग्रहपुज = वा १८।

[ग० पु०] (ग०) ग्रहा वा समूह या समुदाय।

ग्रहरिमि रज्जु = वा० १६६।

[ग० लो०] (ग०) गृह तथा चद्र व किरणों की रश्मा।
ग्रहा व किर्णों की शोरी।

ग्राम = वा० ५६ ३०।

[ग० पु०] (ग०) गाँव। समूह। मात स्वरों या समूह
समर। गिर।

ग्राम्य = प्रे० ७।

[गि] (ग०) ग्रामीण। मूढ़। ग्राम्यात। गवाह।

[ग० पु०] (ग) ठेठ प्रजत। मृज। एक वा य दण।

ग्रीवा = वा कु ३०। अ २२।

[ग० लो०] (ग) ग्रीवा गदन।

ग्रीष्म = वि० १५६।

[ग० पु०] (ग० भा०) गर्मी का ऋतु, गरम।

ग्रीष्म = वा० १५। ग० ७।

[ग० लो०] (ग०) गर्मी की ऋतु उत्पत्ति। गरमी जठ
ग्रहाड क दिन।

[ग्रीष्म का मध्याह्न—उडु कता ३ किरण ५ अग्रत
१६१२ मे मध्यमय प्रवाणित तथा
कान्त कुमुभ मे पृष्ठ २४-२५ पर
सकलित। ग्रीष्म क प्रचद दिवावर का
चका वधि न इसमे का है। वणन वट्ट

मज्जा है किनु मज्जागत है।

मथा—

मूत्र भाँव मगने म जत्र का मगिन म मगिन है।

कमरग मा काट मगन मगगिनी मीर उगिन है।

ग्रामताप = वा० पु० १७।

[ग० पु०] (ग०) ग्राम ताप मगमा ग्राम मगनु का ताप
वा जत्र।

ग्रामताप मापित = वा० पु० ११।

[गि] (ग०) ग्राम मगनु का ताप वा जत्र म
जत्राया मथा।

ग्राम निदान = वि० १७८।

[ग० पु०] (ग०) ग्राम मगनु का मगम—गृह।

ग्रामासन = वा० पु० १३।

[ग० पु०] (ग०) ग्राम मगनु रूपा ग्रामन। गरमी की
मगनु।

घ

घटा = वा० ०७७। वि० १६१।

[ग० पु०] (ग०) एक बाजा। दिन रात व बोरीम विभाग
का मगनेशला मगनु का गीन पट्ट
जिम मगम मगान है। गडियान।

घटाघरति = वा २८। स० ६३।

[ग० मग] (ग०) घटे का स्वर।

घटना = वा० १८६। अ० १५। प्रे०, ३।

[स० लो०] (हि०) हाता। ठोका। उत्तरना। कम
हाता। अघानक किसी बात का हाता
वाकिया।

घटा = ग्रा०, १६। का० कु २७, ७४

[ग० लो०] (ग०) ११६।
मघमाला। धरमाता बाजो का समूह।

घटाटोप = स० ७७।

[स० पु०] (स०) घनधार घटा। गदला का माति
समूहबद्ध होकर चारा ओर से घेर लन
वाला दल।

घडियाँ = ग्रा० ४५ ७०। का० ११५, १६२,

[स० लो०] (हि०) १७७। स० ३६।

घडी का बहुवचन।

घडी = वा०, १७५ २२४। म० ७७।

[सं० श्री०] (हि०) २४ मिनट का समय । अथ समय समयनिर्देशक यंत्रिका ।

घडी घडी = का०, १६५ ।

[अ०] (हि०) बार बार ।

घन = आ०, ५० । का० कु०, ७५, १२३ ।

[म० पु०] (स०) का०, ६, ३३, ८८, १०१, १७५, १८१, १८४, २००, २०४, २३७, २४४, २७८ । चि० ११, २१, ६१, १६०, १६० । भ०, ६२ । न०, २१, ७२ ।

मघ, बादल । 'कु' समूह । कपूर ।

घना, गन्धित । मजदूर, इ० ।

[वि०]

घनकुज = का० कु० १०० ।

[म० पु०] (स०) गन्धित कुज ।

घनतिमिर = का०, ५० । म० ३२ ।

[म० पु०] (म०) गहन अंधकार ।

घननाद = का०, १८३, २६८ ।

[म० पु०] (स०) बादल का गजन ।

घनपटल = का० ८२ ।

[म० पु०] (म०) बादलों की तह ।

घनमाला = का०, १६ ३० ।

[म० पु०] (म०) बादलों का समूह ।

घनमील = चि०, १४६ ।

[म० पु०] (हि०) बादल का मिश्र ।

घनश्याम = का० ४६, ८१ १०४ । चि०, १८६ ।

[सं० पु०] (म०) भ० ६ ।

काला बादल । मृच्छा । प्रियतम ।

घनहिं = चि०, १६३ ।

[सं० पु०] (अ० भा०) वायु का ।

घना = आ० २४ । का०, १७६, १८७, १८६, १८६ ।

[वि०] (हि०) २६४ ।

सघन । बहुत घन । अतिरिक्त ।

घनी = का० कु०, ३२, १२७ । का०, १४, १२१ १८३, १८८ । चि०, १६४ ।

[वि०] (हि०) म० ५१ । म०, ७, १६ । ल०, ११, १४, ५६ ।

घना का स्त्रीत्व ।

घनीभूत = आ०, १४ । का०, १७ ।

२५

[वि०] (हि०)

घनत घनी । पूज्यभूत । उ०—जा घनीभूत पीडा थी, मस्तक मे स्मृति मी छाई ।—आमु ।

घन =

[वि०] (हि०)

का०, कु०, ३१ । का०, १७, १७६

१८१, १८२ ।

घना का बहुवचन ।

[घने घन बीच कुछ आकाश मे यह चद्रलेगा
सी—'विशाल' नाटक मे चद्रलेखा की प्रणसा मे लिखी हुई दा पक्ति की कविता । चद्रलेखा उना प्रकार की है जैसे निकप पर स्वरा की ग्ला और घन घन के बीच मे चद्रलेखा । प्रसाद सगात' मे पृष्ठ ११ पर मकलित ।]

[घने प्रेम तर तले—'स्व' गुत' का गात जिसमे देवनेना विजया का शिखा देती है । 'प्रसाद सगात' मे पृष्ठ ८८ मे पृष्ठ मकलित । कविता का भाव यह है कि छाया विश्राम ह । अर्द्धा नगा का जिनारा है और परागमय धूल मुदुल आमुष्मा स मीची गई है । घने प्रेम तर के तले भव धातव के ताप स मुक्त होने के निय बठकर छाया सो और जल पा ला । यहा का छननवाला नहीं । यहा हवा क भाव से धून धूपटन है जिसमे हृदय का भाव भर जाता है । मन की यथा भरी क्या यहा बठकर पुनत जाया । ठहरा, कहा चल जा रहे हा ? घन प्रेम के तर क नीचे बठकर छवि का रसमाधुरी पा ला और जावननना का सीखा । आयु भर मुख स जी ना क्याकि यह जीवन माया का खन है । स्नह से गल मिला ।]

घनेरे = चि०, ७४, १०८, १५५ ।

[वि०] (अ० भा०) अत्यधिक । अगणित । बहुत ।

घनी = चि०, १०६ ।

[सं० पु०] (अ० भा०) बादल ।

चधराना = का०, १४, १७ । का० कु०, ६३ । का०,

[वि० अ०] (हि०) १, ८, २, २६१ । प्र० ५ । म० ५ ।

अधार होना, यादगुन होना ।

[घबराना मत इस विचित्र ससार से—प्रेमानंद द्वारा विशाल को दिया गया उपदेश। 'विशाल' का यह मान 'प्रमाद संगीत' में पृष्ठ २१ पर संकलित है। कविता का आशय है कि इस विचित्र ससार में पबराना मत। अपने अविचार से शरीर का आतंकित मत करो और तुम्हारे जीवनकोप में आनंद की कमी न हो। तुम पूर्ण बनो और छल से दूसरा को झूठा न करो। सीधे रास्ते पर चलो और सीधे चलो। न तो खुद छोड़ो जाओ और न शरीर को छोड़ो। चाहें भले ही सत्य का पक्ष निवृत्त हो उसे मत छोड़ना और पवित्रता से जीवन के अंधकार को दूर करो।]

घमंड = म०, १४।

[सं० पु०] (हि०) गरुड, अग्निमान, गव।

घमंडी = का० कु० ८३।

[वि०] (हि०) अग्निमानो अह्वारी।

घर = श्री०, ५१। का०, ७३ १०१, १४४

[सं० पु०] (हि०) १७८, २१६ २३३। अ० ८८ ८३ प्रे० ६, १० १३।

पृष्ठ, आवास, निवास, भवन।

घपिता = का० २०१।

[वि०] (म०) रगड़ खाई हुई रगड़ी हुई।

घाटी = श्री०, १६। का० १०१ १५२ १६७,

[सं० श्री०] (हि०) २८३। म० ४।

दो पक्षों के बीच का सकारा भूमि दर्रा।

घात = वि० १८ ३८। सं० ३७।

[सं० पु०] (सं०) प्रहार चोट। अहित, बुराई।

घात प्रतिघात = म० ११।

[सं० पु०] (सं०) चोट और चोट का कारण चोट खाए हुए द्वारा प्रहार।

घातें = श्री० ८। का०, १७८।

[सं० पु०] (सं०) घात का बहुवचन।

घायल = श्री०, ७२। का०, ७०६ ७०७ ७१०,

[वि०] (हि०) २१४, २६८।

जिसे घाव लगा हो, जखमी, क्षत शरीर।

घान = का० कु०, ६३।

[सं० पु०] (हि०) जलम। चाट।

घास = म०, २२।

[म० श्री०] (सं०) चौपायों के चरने का उद्भिज्ज।

घिर = का०, १६६, १८६, २०६।

[पूव० त्रि०] (हि०) आवृत्त होकर।

घिरती = का०, १२।

[क्रि० अ०] (हि०) आवृत्त होता। घा जाता।

घिरना = श्री०, १२, १६। का० कु०, ४३।

[त्रि० अ०] (हि०) का०, ६, ३३, ४६, १७५। अ० २४, ३६ ४७।

आवृत्त होता। घाना।

घिरि = वि०, ६५, ७१।

[क्रि०] [अ० भा०] घिर कर।

घिरी = का० कु० ४३। अ०, ४६। प्रे०,

[क्रि०] (हि०) ३, ४।

छाई।

[घिरे सघन घन नींद न आए—'कामना' का

यह गीत 'प्रमाद संगीत' में पृष्ठ ७५ पर संकलित है। सघन घन घेरे हुए हैं। नींद नहीं आती है, क्योंकि निद्रा प्राण अभी नहीं आया है। इस अंधकार में अपना नेत्र प्रकाश नहीं दिखाया है यद्यपि रस का बूँद मरत है। बरस चुकी है फिर भी यत्न मरुभावा हुआ है। छाया में छाँव का भरन वह रहे कि फिर भी हृदय भीतल नहीं हो पाया है।]

घी = का० कु०, ११४।

[म० पु०] (हि०) घृत।

घुघगली = का० १०३, २२१। अ०, २८।

[वि०] (हि०) टट्टा कुचित, लज्जित।

घुँघराले = का० ७४। प्र० १८।

[वि०] (हि०) घुघराता का बहुवचन पुलित।

घुटनी = म०, ६६।

[म० व०] (हि०) टाँग और जाँघ के मध्य की गाँठ।

- धुलना = आ०, ५८। वा० ७५, २७६, २८८।
 [क्रि० प्र०] (हि०) झं०, ११, परिचय।
 भला भाँति मिन जाना। धीरे धीरे
 चिता या रोमग्रस्त हा झींछ होना।
- धुलनें = का०, ८७।
 [क्रि० प्र०] (हि०) धुलना का बहुवचन।
- धुला = का०, २१४।
 [क्रि०] (हि०) धुलना की भूतकालिक क्रिया।
- धुली = का०, २१६। ल० ६०।
 [क्रि०] (हि०) धुला का स्त्रीलिंग।
- धुसना = म०, २।
 [क्रि० प्र०] (हि०) लहलहा पट्टवना, प्रवेश करना भीतर
 चला जाना।
- धूँघट = आ०, १६। वा०, ३६, ६४, ६७।
 [म० पु०] (हि०) बि० १८२। झं० २५, ६४। वा०
 कु०, ५३।
 मुह धिमान ब लिये किया गया परदा।
- धूँट = का०, ८४, १११, २३८, २८८।
 [म० पु०] (हि०) गले से द्रव पदार्थ उतरने की एक बार
 की सामा।
- धूस = आ०, २६। वा० कु०, ८३। का०,
 [म० स्त्री०] (हि०) २५ ८६ १४२, १४४, १५०, १५२,
 १५६, २३३, २६४, २६६। म०, २,
 ६। ल०, २०।
 घुमाव, माड़, चक्कर।
- धूसला = बि०, ३८, १०१, १६१। प्रे०, ११८।
 [क्रि०] (प्र० भा०) ल०, ५८।
 चलता, चक्कर काटता।
- धूसती = म०, ३०। वा० कु०, ८। वा०,
 [क्रि०] (हि०) २६४।
 चलता, टहलता, चक्कर लगाती।
- धूसा = म०, १३। वा० कु०, १३। वा०
 [प्र० भा०] (हि०) ५१, ५२। ल०, ६५।
 चक्कर काटकर। चलकर।
- धूसी = प्र०, १६।
 [क्रि०] (हि०) धूसना का भूतकालिक क्रिया।
- धूषा = वा० कु०, ८३। का०, २०७, २१८।

[म० स्त्री०] (स०) झं०, २१।

नफरत। वीमत्स रस का स्थायी भाव।

घेर = प्रे०, ७, १०। म०, ७।

[पूर्व० क्रि०] (हि०) घेरकर, चारा घार से आवृत कर।

घेरा = वा० कु० ५४। वा०, २५८। झं०,

[म० पु०] (हि०) ८१। प्रे०, १२।

परिधि, कंठाव। ग्रहाता। सेना द्वारा
 चारा घोर से घिर जानवाला स्थान
 या किला दुर्ग आदि।

घेरि = बि०, ४०, ६५।

[प्र० भा०] (हि०) घेरकर।

घेरे = वा० कु० २६। वा०, ७०, ७१,
 २२५, २६४। म० ३।

(हि०) घेरें हुए। घेरा का बहुवचन।

घोंट = का०, ३६।

[म० पु०] (हि०) घाटने का काम। टोपने का काम।
 मसलने का काम।

[प्र० भा०] रगटकर, घाटकर।

घोर = का०, २५। वा०, ८, ४३ १०७,
 [वि०] (स०) १२३। बि०, १८२। प्रे० ५, २१।
 म० ६, १२।

भयकर, भयावना, विनरान।

घोराधकार = बि०, १०१।

[म० पु०] (स०) घार झगरार। गहन तिमिर।

घोरि = बि० १७०।

[प्र० भा०] घातकर।

घोरी = बि०, १८२।

[प्र० भा०] घातकर।

घोल = का० ३८, ६७, १५२, २३७।

[म० पु०] (हि०) मिश्रण।

घोलता = का०, २४।

[क्रि०] (हि०) मिलाता।

घोषणा = का० कु० ११६। का०, २६७।

[म० स्त्री०] (स०) उच्च स्वर से मावजनिक रूप में दी
 गई सूचना। विनापन।

घोषित = म०, ५, ७।

[वि०] (स०) घोषणा की हुई।

घ्राण

= का०, ८६।

[सं० स्त्री०] (सं०) नाक। सुघने की शक्ति। गंध, सुगंध।

च

चक्रमण = ल०, २३।

[सं० पु०] (सं०) टहलना। घूमना।

चगेर = प्रे०, २।

[सं० स्त्री०] (हिं०) बाँम की बनी छोटी टोकरा। झूला, पालना।

चचल = ग्रा०, ३४ ६०, ६६। का० कु०, ३६, ४२ ५३ ६१। का०, २५, ४० ४५ ६६ ६७ ७० १०३, १११, १३१, १४०, १५८, १६६ १७१ १७६, १८२ २१३ २१६ का०, २२६। वि०, ४, २४ ६२ ६६ १७६, १८३ ५०, १७ २२, ३८। ल० १० २०, २६, ३०, ४३ ४८।
अस्थिर। खलायमान। अवीर। उद्धिन। अयवस्थिन।

[चचल चद्र सूर्य हैं चचल—'अजातशत्रु' का गान, प्रमाद समाप्त' म पृष्ठ ४८ पर मंकलित। भगवान् गीतम बुद्ध का गान। इस सृष्टि में सभी चचल हैं। चद्रमा सूर्य, ग्रह नक्षत्र, अग्नि, वायु जन भूमि—मम उमी प्रकार चचन है जैसे पारा। जगत् अपनी प्रगति से और मन अपना लाना हा चचल है। प्रवृत्ति प्रतिक्षण परिवर्तन शीघ्रता में चचन है। शत्रु परमाशु दुःख मुख और मन्त्रा मुखमायन चचन और क्षणिक हैं। मन्त्रा दृश्य नश्वर है। दुःख और मृत्त आ नश्वर हैं। क्षणिक मन्त्रा का स्थाया कटना दुःख का भूत है और महा भूत है। ह चचन मनुष्य। तू इस अमार ममार में क्या भूना हुआ है।]

चचलता = का० ८४ १३६। वि० १८८।
[वि० स्त्री०] (सं०) चपलता। शरारत। नटम्यपन।

चचला = ग्रा० ७४। का कु० ५० १०४।
[सं० स्त्री०] (सं०) का०, ११८, २३७। वि०, १००।

अ०, ४६।

स्थिर न रहनेवाली—लक्ष्मा। बिजली। विप्लवी।

चचले = अ०, ७६।

[सं० स्त्री०] (सं०) चचला का मवावन, हे लक्ष्मी। हे चचन स्वभाववाली।

चट = का कु०, ४० ४२। अ० ४१।

[वि०] (हिं०) चतुर। धूर्त।

चड = का० कु० ५४ १०८। वि० ६४।

[वि०] (सं०) उग्र। तार। प्रखर। बलवान। विरक्त। क्षाया। उद्धत।

[सं० पु०] (सं०) ताप। इमता का वृद्ध। एक भरव। दुगा द्वारा मारा गया दत्य।

चटकर = वि० ३६।

[म० पु०] (सं०) आदिप सूय।

[वि०] तेज किरणाला तिमर रहिमाला।

चडशासन = प्रे० ५।

[सं० पु०] (सं०) तेज या कठोर शासन। अत्यचारा का शासन।

चद = का० कु० ४० ४२। वि० २ ३१
[म० पु०] (हिं०) १०८ १४६। अ० ४१।
चद्रमा। हिवा का एक कवि, चन्द्रदाई।

[अर्थ०] (का०) कुञ्ज, थोडा।

चदवदनि = वि० १६२।

[वि०] (सं० भा०) चद्रपुत्री। चद्रमा क ममान मुलाली।

चदन = का० कु० ६। का० १०२। ल०

[सं० पु०] (सं०) २८।

एक मुमुक्षिन लक्ष्मा। एर मुमुक्षित लप।

चद्र = ग्रा० ४१, ४३। का० ६। का० कु०,

[म० पु०] (सं०) ३८। का० ६५, १२०। वि०, २८

७२ ७३, १०७ १८६। अ० २५।

प्र० १० १७। म० ६। न०, १३।

चद्रमा। मार का पूछ का चद्रि।

जन्म। कपूर। माना।

चद्रकर = अ० १७।

[म० स्त्री०] (सं०) चद्रमा का किरण।

चद्रमला = का० कु० २६। वि०, ६ १४१।

[म० स्त्री०] (सं०) चद्रमल का मानहवी घन। मन्त्र पर धारण करने का साधुपण। चद्रमा का किरण या चद्रि।

चंद्रकांत = का० कु०, १०५। ल०, ६२।

[सं० पु०] (सं०) चंद्रन। कुमुद। एक कपिल रत्न जो चंद्रमा के समान रखन पर पिघलता है और उमम मयूत निकलता है।

चंद्रनिरण = अ०, ५३।

[सं० ली०] (सं०) चंद्रमा की निरण।

चंद्रनिरोट = का० २६४।

[सं० पु०] (सं०) चंद्रमयी मुकुट।

चंद्रमूल चण = चि०, ३२।

[सं० पु०] (श० भा०) चंद्रवर्णिमा में चंद्रमा महंग।

चंद्ररेतु = चि०, ७०, ७६।

[सं० पु०] (सं०) चण्ड के पुत्र का नाम।

[चंद्ररेतु—दक्षिण प्रेमराय'। प्रेमराय' में चंद्ररेतु का वसुध नवयौवनशाली रत्नमयल दयावार, मनोहर बिहार व रूप में किया गया है। जिसका मोक्ष दक्षर काम भी मोहित हो जाना है।]

चंद्रप्रभा = का० कु०, १५। म० ८।

[सं० ली०] (सं०) चांदनी। नयूर।

चंद्रमंडल = का० कु० ४२।

[सं० पु०] (सं०) चंद्रमा का चैरा।

चंद्रमणि = चि० ८२।

[सं० ली०] (सं०) चंद्रमणि मणि।

चंद्रमा = का० कु० २६, ७३। चि०, ७६। अ०, ७१।

[सं० पु०] (सं०) दे० 'चंद्र'।

चंद्रमा सा = का० कु० २६।

[वि०] (हि०) चंद्रमा के समान पीतल वा आनंद दायक।

चंद्रमुख = का० कु०, ६७। म० १८।

[वि०] (सं०) चंद्रमा के समान मुखवाली। चंद्रमुख।

चंद्रमुखी = अ०, ६।

[वि०] (हि०) चंद्रमा के समान मुखवाली।

चंद्रविष = का० ३४। अ०, १६।

[म० पु०] (सं०) चंद्रमंडल। चंद्रमा का चैरा।

चंद्रनिरोध = अ० ६६।

[म० पु०] (सं०) चंद्रमा में निरोध।

चंद्रशालिनी = का० १३६। अ० ६।

[म० ली०] (सं०) चांदनी। चंद्रिका।

चंद्रहीन = का०, २३३।

[वि०] (सं०) बिना चंद्रमा के।

चंद्रातप = का० कु०, ६६।

[सं० पु०] (सं०) चंद्रमा का प्रकाश। चांदनी। चण्डा।

चंद्राभमय = का० कु० १००।

[वि०, (सं०) चंद्रमा की आभा में युक्त।

चंद्रालोक = अ० ५४।

[सं० पु०] (सं०) चंद्रमा का आलोक। चांदनी।

चंद्रावली = चि० १६४।

[सं० ली०] (सं०) एक गोरी का नाम।

चाटका = अ० २४ ४८। का० कु०, २ ६,

[सं० ली०] (सं०) ४१। का०, ४६, ८८ १०१। चि०, ७१, १६४ १७०। अ० ४८, ५५, ५६, ६६, ७१।

चाँदनी कीपुत्री। मार की पूँछ पर का गाल चिह्न। माँ के पर पहनने का एक गहरा। बेंदी।

चंद्रिकानिधि = का० ३५।

[सं० ली०] (सं०) चंद्रमा।

चंद्रोज्ज्वल = चि० ६३।

[वि०] (सं०) चंद्रमा की तरह उज्ज्वल।

[चंद्रोज्ज्वल—दुध बला २, निरंग ५ फाल्गुन स ज्येष्ठ के मधुक्ताव म० १८६७-६८ व 'होली रात' में प्रकाशित तथा 'चिनामार' के पराग में पृष्ठ १६३ पर सन्निहित ब्रजभाषा की रचना। एक परपरागत कविता।]

चपक = चि०, ५६।

[सं० ली०] (सं०) एक मुप, धत फूल। चण।

चपककलिका हार = चि०, ५५।

[सं० ली०] (सं०) चण का कलियों का हार।

चपकलता = चि० ५६।

[म० ली०] (सं०) चण की लता।

चपकलतिका = चि०, ५६।

[सं० ली०] (सं०) चण की लता।

चरई = चि०, २४। अ० ८।

[सं० ली०] (हि०) चक्रवाक नाम के पक्षी की मादा। घिरना की तरह का एक गाना।

चकई चकवा = प्र०, ८।

[म०] (हि०) चक्रवात का जोड़ा।

चकचूर = चि०, १६८।

[वि०] (हि०) चकनाचूर।

चकनाचोथ = म०, १३।

[सं० स्त्री०] (हि०) तीव्र प्रवाश से होनेवाली आखा का तिलमिलाहट।

चकित = प्रा०, १३। का० कु०, २५। १०२।

[वि०] (स०) का०, ८६। १०१। १५०, २१५, २६४।

चि०, ४२, ६६। ल० १८।

भीचभमा। चौकना। हक्काचक्का। विस्मृत।

चकित हूँ = चि०, ६१।

[पूर्व० क्रि०] (१० भा०) चकित होकर।

चकोर = प्रा०, ४३। का० कु० ५०। चि० १५।

[सं० पु०] (हि०) १६४, १८६।

चद्रमा का प्रमा एक प्रकार का पहाड़ी तीतर, जिसके सवध में कविमा गता है कि वह शगर लाता है।

चकोरी = चि० १७१।

[सं० स्त्री०] (हि०) चकोर का मादा।

चक्कर = का० कु०, ८। का०, २५७। भ०,

[म० पु०] ३३। म०, ४।

(हि०) घेरा। परिभ्रमण। पहिए व समान गोल वस्तु।

चक्र = का० कु० १०। का०, १७। २०,

[सं० पु०] ६२, १२२। १८६, २६४। ल० ३३,

(सं०) ६५।

चक्का। पहिया। बवडर। समूह। मना। घेरा। दिशा।

चक्रयर्ति = चि० ६८।

[वि०] (१० भा०) वह राजा जिसका सामन दूर दूर तक फैला हुआ। नरेश का नरेश। साव भीम राजा।

चक्रनाल = का० १२१, १७०। २६४।

[सं० पु०] (सं०) मदन। घेरा। एक घेराणिक पवत।

चक्राकार = का० ८६।

[वि०] (सं०) पहिए के समान आकारवाला। घात।

चस = चि०, २२। १८६।

[सं० स्त्री०] (१० भा०) घोल। चबु।

चसि के = चि०, १८३।

[पूर्व० क्रि०] (१० भा०) दलकर। स्वाद लेकर।

चचेत = चि०, २४।

[क्रि० वि०] (१० भा०) चतुर्वक्, आराम स।

चट = का० कु०, ११३।

[क्रि० वि०] (हि०) फट। फोरन। शीघ्र।

चटकीला = ल०, ४६।

[वि०] (हि०) भटकीला। चटपटा। चमकदार।

चटचटा = भ० ४८।

[क्रि० वि०] (हि०) कसी के खिन्ने का चट चट ध्वनि क साथ।

चट्टानों = का० ५६।

[म० स्त्री०] (हि०) चट्टान का बहुवचन।

चटना = प्रा० ५१। का०, ७। का०, ६४,

[क्रि० सं०] (हि०) ६६, १०६, १२१। २०६। २५७।

२५८। २८४। चि०, १८४। प्र०,

१२। म०, ५।

नाचे से ऊपर जाना। उठना। उठना।

आक्रमण करना। देवता का भेंट

खाना। पकान के लिये चूहे पर

रखना। बडाना।

चटाइयाँ = का० कु०, ११२।

[सं० स्त्री०] (हि०) आक्रमण। धावा। (बहुवचन)।

चटाना = प्रा०, १७। का० कु०, ९।

[क्रि० सं०] (हि०) उठाना। आक्रमण करना।

चटि = चि० ६४।

[पूर्व० क्रि०] (१० भा०) चटकर।

चटो = का०, २५५, २४१। चि०, ३। प्र०

[क्रि०] (हि०) ३। म०, ५।

चटना का भूतवातिक स्त्रीलिंग रूप।

चट = म०, २।

[क्रि०] (हि०) ऊपर उठ।

चटै = चि०, १०८।

[१० भा०] धाग बढ़। उन्नत कर।

चतुरंग = का० कु० ६६।

[सं० पु०] (सं०) शतरंज का धन। हाथा, धारा, रथ

और वन बार प्रयाता मना।

चतुरगिनी = वि० ६७।

[म० वि०] [म० चतुरगिनी] चार भगावाली। हाथी,
(प्र० भा०) घोडा, रथ और पदल चार भगावाली
(सेना)।

चतुर = श्री० २२। वा० कु०, ६६। वा०
[वि०] (हि०) ३८। वि० ६६। म० २०।

निपुण। टेढ़ी चान चलनेवाला। बर
गामा। दल।

चतुर्दिक् = वा०, २०६, २५७, २६४।

[म० पु०] (म०) चारों दिशाएँ।

[त्रि० वि०] (म०) चारों ओर से।

चपल = श्री० १६। वा०, ५ ८३ ८५, १०२,

[वि०] (स०) १४२। वि० १५०। ऋ०, २२
२४, २६ ८६। ल०, ७६ ७६।
तज चपल। जन्मवाज। निपुण।
चालाक। छिपेर।

चपलता = वा०, १७५।

[स० स्त्री०] (म०) चपलता। तेज।

चपला = श्री०, ३४। वा० कु०, ५२, ६८।

[वि०] (म०) वा०, १६, ५०, १७७, २५८। वि०
१२६, १६४ १६०। ऋ०, २२, ३१।
चपला। तेज।

[म० स्त्री०] प्र० १६। ल०, २१, २७।

आकाश म चमकनवाली बिजला।
जाम। लम्बी। धन। भाग। दुःखिनी
छा। पावन। एक छ' का भेज।
मदिरा। जहाज म लकड़ी या लह
का लगा पट्टा। बिजया।

चपलाएँ = वा० १६।

[म० स्त्री०] (हि०) चपला शब्द का बहुवचन।

चपलासीम = ऋ २२।

[वि०] (हि०) चपला से समान।

चपेटा = वा०, १७।

[स० स्त्री०] (हि०) धक्का। गोका। भटका।

चवाता = म० १५।

[त्रि०] (हि०) दातो का अन्वयी तरह दबा दवाकर
चवाना।

चमक = वा०, १७५, २४६। वि० १६४
[म० स्त्री०] (हि०) १७०। ऋ०, ७३, ६२। म०, १०।
ल० ६१।

प्रकाश। ज्योतिः। राशना। आभा।
दमक। बमर या पीठ म ध्वनि
उठा हुआ दद।

चमक कर = प्र० १६।

[पु०] (त्रि०) (हि०) एक भजन दिमाकर।

चमकती = श्री०, ३३। वा०, २००, २५८।

[त्रि०] (हि०) भिनमिलाना, प्रकाश देती।

चमकने = श्री०, ५०। प्र०, १०।

[त्रि० म०] (हि०) भिनमिलान। प्रकाश देने। दीप्त
हाने। प्रतिष्ठित हाने।

चमकावत = वि० ६१।

[त्रि० वि०] (म० वा०) चमकात हुए।

चमकि = वि०, ६५, ७५, १६०।

(म० भा०) चमक कर।

चमकीला = वा० कु०, ३६। वा० ७, २७०।

[वि०] (हि०) ऋ० २२। प्र०, २४।

मङ्गीला। चमकदार।

चमकूँगा = श्री० ४२।

[त्रि०] (हि०) प्रकाशित हाऊगा।

चमडे = वर०, १४७।

[म० पु०] (हि०) चम। चक्का। खाल। चमडा का
बहुवचन।

चमदरार = ल०, ६६।

[म० पु०] (स०) आश्चर्य। विस्मय। विचित्रता।

चमत्कृत = वा० १६ ८३ १००। ऋ०, १८।

[वि०] (स०) शक्ति, आश्चर्ययुक्त।

चमरौ = वा० २७८।

[स० स्त्री०] (हि०) स० चमरा का हि० बहुवचन,
चुरा गायो।

चमू = वि०, ६५।

[म० स्त्री०] (स०) सेना फौज।

चमपति = म०, ३।

[म० पु०] (स०) सेनापति। राजा।

चमेके = वि० १००।

[क्रि०] (हि०) (द० 'चमकना')।

चमेली = प्र०, १, २ ४ ६, १३, १६, १८,
[सं० स्त्री०] (हि०) १६, २४ २६, २७।

एक सुगन्धित फूल की लता। एक
सुगन्धित फूल।

[चमेली—सबप्रथम इन्द्र वला ५ खंड २, किरण ६
दिमवर १६१४ म प्रकाशित 'प्रेमपथिक'
का दूसरा खंड। >० प्रेमपथिक। प्रेम
पथिक की श्रिया का नाम भा चमेली था।]

चरण = श्री, ११ ४५। व०, १० १७ ३०।
[सं० पु०] (सं०) का० ३६, २७, २६ १२०, १०३,
१६८, ६, ६१, ६६ २४४। न०,
३१। न० १०, ४२ ६। का०
कु० ६३ ६० १०० १०३। व०
६०, १७४।

पर, पग। किसी वस्तु का चौथाई
भाग या चौथा हिस्सा।

चरण अरविंद का० कु०, ६३।
[सं० पु०] (सं०) चरण स्त्री कमल।

चरण अलङ्कार = ल०, ६०।
[सं० पु०] (सं०) पर का आना।

चरण कमल = का० ६ ६८। वि० १७४।
[सं० पु०] (सं०) कमल व समान चरण।

चरण चिह्न सी = ल०, १०।
[वि०] (हि०) पग के चिह्न व समान।

चरण घूमि = वि०, ६०।
[पु० क्रि०] (श० भा०) चरण घूमकर।

चरणधूल = का० ६१ २४४।
[ग० ग०] (सं०) चरणों की धूल।

चरण रेगु = का० कु०, ६०।
[सं० स्त्री०] (सं०) चरण का घूमि।

चरण सरसिन् = का० कु०, १००।
[सं० पु०] (हि०) चरण स्त्री कमल।

चरण सरी = का० कु० १३।
[सं० पु०] पर छूना। अर्थात् पुर्वक भुवकर धमि
(सं०) चरण करना।

चरणन = वि०, ६४ १५७ १६०।
[सं० पु०] (श० भा०) हि० चरण (चरण) का चूने।

चरण = का०, १३०।
[वि०] (सं०) परा काष्ठा। शक्ति।

चराचर = का० कु०, ८६।
[सं० पु०] (सं०) चर और अचर। जगत्। सृष्टि जग,
ससार। विषय।

चरित = का० कु०, १०, वि० १४६।
[सं० पु०] (सं०) स्वभाव, प्रकृति। आचरण। जीवन
कथा, जीवनी। २० चरित्र।

चर्म = का०, ४६ ११८, १४५, १८३।
[सं० पु०] (सं०) चि० ६५।
त्वचा। ताल। चमड़ा।

चल = श्री १ ७६। न० का० कु०
[वि०, सं० पु०] ५३। का०, ५ ६, ३४ ३५ ३६,
(सं०) ८६, ६३, ११८, १४६, १५० १६५
१६७, १७० १६२, २०६, २२२
२२३, २४१, २५३ २५४। वि०,
१८३। प्र० १४, १८। म०, १ २।
ल०, १४, २३, ४६।

चलन। पारा। विद्युत्। शिव। दाप।
कपा। घन। अस्थिर। चलायमान।

चलचक्र = का०, ६५।
[सं० पु०] (सं०) चलन चक्र। चलनवाता चक्र। घायन।
भर।

चलचित्र = का०, २६४।
[सं० पु०] (हि०) ग्राहकान् चित्र। वह चित्र जो गट
पर चलाने के लिये बना है।

चलत = वि० १ २६ ६५, ११०।
[वि० वि०] (श० भा०) चलत हुए।

चलता किरता = का० १६६।
[पु०] (हि०) गिरा उड़्य या गत्य का काम करना
[क्रि० वि०] काम करता। दूसरे उभर घूमना। काम
चलाना। आनाम या निनाम स्थान
में हान।

चलने-चलने = का०, ६६।
[वि० घ०] (हि०) चलने का काम करने-करना।

चलदल = का० १४८।
[वि०] (सं०) पापन व पुनः न गमान। चक्र,
अस्थिर। विमृश्य।

चलना = श्री०, ८, ३३। १०, ८६, १० १४,
 [क्रि० म०] (हि०) १८, ७। १०, ८, ११ १३, १४,
 १७ २६, ३४, ३६, ३६, ४३, ४६,
 ५१ ५६ ७० ७१, ७३, ७६ ८१,
 ८३, ८६, ८७, ८८, ८९, १०३,
 १४१, १४२, १४८, १४८, १४९,
 १५४ १६०, १६३ १६४, १६५,
 १६६, १६७, १७१, १७७ १७८,
 १७८ १८५ १८६ १८६, १८८
 २००, २०१ २०८ २०७, २१०,
 २११, २२३ २१४ २०६, २४१,
 २४३ २५०, २५६ २६४ २६६
 २७१, २७२। २७७ २७८, २८१,
 २८२ २८६, २८२। बि० १५, ५८
 ६५। प्रि० ४, ६ ७, १७ २४।
 १०, १० २१ २३ ३६, ११ ६७।
 पर उठान हूँ एक जगह स दूसरा
 जगह जाना। गमन करना। हिन्ना-
 नुलना।

[चल घसत घाला अबल से अजातशत्रु का
 गीत। प्रभाव समान' म पृष्ठ ६० पर
 मबनित। यह नपथ्य गान त्रिमर
 का स्थिति पर प्रकाश डालता है।
 घमस का मन्त्रा का दृश्य चित्रित
 करत हुए यह मन्त्र बलिना प्रस्तुत
 का गीत। जय मृग अन्त होता है
 ता अबल उमस वाला क अचने म
 मीरभ म मस्त मलयानिल की धातक
 सट्टें आती हैं। ठप्या नडा न तट के
 उम पार मधुकर म मयिकर पत्ता पत्ता
 स धूल बनन का प्रलाभन द रम चुनती
 है। य फूट नी बनराला क शृंगार
 थे। उह भाषा बयाकर मल लवाया
 और द्यर उधर बहनाया। व फिर
 कुम्हनाकर मूल मए। मर्महत, निराह
 वृत्ता से कुसुमाकर के केश की भाति
 के पुष्प भर गए। और अत मे कवि
 बहता है—

नग्न न रा सजन ! नुच्छ है,
 दिया बात स बय जय दूर।
 तीन फूट मा ह्मता दम ?
 व अनात म भा जब दूर।
 लिना दृष्टा उनरा नस नस म
 हम निदयता का इतिहास,
 नू अय घाट' बना धूमगी
 उनके अवरोपा व पाम।]

चल प्रकाश = गा० ३१।

[प० पु०] (५०) अभिर ज्ञानि।

चलाना = बा०, १८१।

[त्रि० म०] (हि०) चलन म प्रवृत्ति कराना, एसा काम
 करना कि चलता रहे।

चलाउत = बि०, १६३, १८२।

[क्रि० स०] (प्र० भा०) (१० 'चलाना'।)

[चला है मथर गति से पवन—'अजातशत्रु' का
 गीत जो 'प्रभाव मगीत' म पृष्ठ ५२ पर
 सङ्कलित है। श्यामा हम गीत को
 रिझाने क लिये गाती है और माइ-
 कना का अभिनय करता है। नन्म
 कानन का रसीना पवन मथर गति से
 चल रहा है। फूना पर मधुकर आनंद
 का भरवा गा रह है। जिनी के जीवन
 की तरंगों बिगड़कर आनन अरविद
 की खिला रही है, एसी स्थिति म किम
 मुसड का ध्यान कर रहा हो ? क्या
 स्वर्णिम मन्त्रि पिता रहा है, और
 प्रदति फूट करता रही है। मन्मन
 हा जाया और प्रपन मन का घाज कर
 ला। क्योंकि मानकता म विधि और
 नियम नही रहता।]

चलि जात = बि०, १७१।

[क्रि० म०] (प्र० भा०) चला जाता है।

चलि जाहु = बि०, ५३, ५८, ६४।

[त्रि० म०] (प्र० भा०) चने जाने का आज्ञा देना।
 चल जाया।

चली चलो = म०, ४।

[क्रि० म०] (हि०) चलने के लिय प्रवृत्त करना।

चल्ल = का०, १४८, १६१, १६५, २२० ।

[क्रि० प्र०] (हि०) चलने क लिय आज्ञा मागना ।

चल्यो = चि०, ५४ ।

[क्रि० प्र०] (प्र० भा०) चल दिया ।

चपक = का० २४ १६३ १६८ । क्र० २५ ।

[स० पु०] (ग०) शराव पीने का प्याला । मधु एवं विशेष प्रकार की मदिरा ।

चसना = का० कु० ७८ ।

[स० स्त्री०] (हि०) शीश, आदत लत ।

चहत = चि०, २७ ।

[क्रि० स०] (प्र० भा०) चाहता है, इच्छा रखता है ।

चहति = चि०, १७० ।

[क्रि० स०] (प्र० भा०) चाहती है, इच्छा रखती है ।

चहल फलमी = क्र०, ५१ ।

[स० स्त्री०] (हि० फा०) घीरे बार टहलना या घूमना ।

चहल पहल = का०, १७७ ।

[स० स्त्री०] (हि०) आनंद, भीट । घूम घाम, रीतक ।

चहुँ = १५४ १७७ ।

[वि०] (प्र० भा०) चारा ।

चहुँओर = चि० २५४, १७७ ।

[प्र०] (प्र० भा०) चारो ओर सब तरफ ।

चहुँ = चि० ४६ १७० ।

[वि०] (प्र० भा०) चारा ।

चहूँ = चि० १५ २६, १५८, १६६ ।

[क्रि० स०] (प्र० भा०) चाहता है, इच्छा रखता है ।

चहौँ = चि०, १६६, १७२ ।

[क्रि० स०] (प्र० भा०) चाहता है, इच्छा रखता है ।

चहो = चि०, १०७ ।

[क्रि० स०] (प्र० भा०) चाह या इच्छा रखना का सम्भावित क्रिया चाह चाहता है ।

चाटाल = क० २८ ।

[स० पु०] (स०) एक छाटा जाति म, श्वपच, पतित मनुष्य । गन् गाली ।

चाँ = क० १४ । का० कु० ५१ ६५ ।

[स० पु०] (हि०) का० ५५ ७१ ८६, ७८६ चि० १६८ १७१ ।

चन्मा, निन्मावर मुयावर ।

चाँनि = चि०, २४ ।

[स० पु०] (प्र० भा०) चाँनी का । चाँनी भा ।

चाँनी = चाँ०, २७ । क०, ७८ । का०, १७४,

[स० स्त्री०] (हि०) १८० । प्र०, ८, २५ । म०, म०, १६ । ल०, ११, ३७ ६१ ।

चद्रमा का प्रकाश, चाँ का उजाला चद्रिमा ।

चाँदी सन्श = का० ६८ ।

[वि०] (हि०) चाँदी के समाग उज्ज्वल तथा स्वच्छ । निमल मनोहारी, मुहावना ।

चाँदी = प्रे०, १२ ।

[स० स्त्री०] (हि०) एक गफेन चमकाली धातु जिससे सिक्के, गहने बतन आदि बनते हैं रजत ।

चाँप चाँप = स० १० ।

[पूव० क्रि०] दाँ दाँ कर, बस बस कर, हूँ हूँ कर ।

चाचा = प्रे० १२ ।

[स० पु०] (हि०) पिता का छोटा भाई, काका पितृय ।

चाटती = का० २७० ।

[क्रि० स०] (हि०) जीभ से रगड़ कर या उठाकर खाने की क्रिया करता । पाछरर ला लनी । प्यार न बिमा पर जीभ करता ।

चातर = चाँ०, १३ । का० कु० ५० १२४ ।

[स० पु०] (म०) चि० १५८ १७२ १६० । क्र० ४६ । प्रे० १४ ।

पपाहा नामर पत्नी ।

चातकी = का० २१७ ।

[स० स्त्री०] (म०) माता चातर ।

चादर = घा० ३७ ।

[स० स्त्री०] (म०) निछाने या आसन का लता चौड़ा कपड़ा, हल्का आड़ना टुपट्टा । बिगा पहाड या चट्टान का गिरानेवाला चौड़ा धार । पवित्र स्थान पर चढ़ाए जानेवाले पूर ।

चाप = क० १४ । चि० २२ १६५ ।

[स० पु०] (म०) धनुष बमान । वृत्त की परिधि का बाँध भाग । मन्त्राय ।

[स० स्त्री०] (हि०) चापन का क्रिया या भाव स्वाव, गव । घाट्ट ।

चार = ब० ३, ८६, २१५। ल०, २७।

[वि०] (हि०) दा का दूना।

चारण = बा०, २६। म०, २०।

[सं० पु०] (सं०) राजाओं और बड़े बड़े आदमियों का यशायन करनेवाला भाट। अंगजन राजपूताने की एक जाति।

चारणभूमि = प्रे०, १४।

[सं० ली०] (सं०) चारणा व निवास करने की जगह। चरागाह, गोबर भूमि।

चार घण्टा = बा०, १८६।

[सं० पु०] (सं०) भारतीय जाति का चार प्रमुख विभाजन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र।

चार = बि० ३, २३ ४७, ७० ७५ १०८,

[वि०] (सं०) १४३, १५४।

मुन्दर, मनाहर।

चान्तारावलित = बा० पु० ४२।

[वि०] (सं०) मुन्दर एवं मनोहर द्वारा स चित्रा दुष्टा।

चारो = ब०, ६। प्र०, २२। ल०, ७०, ७८।

[वि०] (हि०) मय मभी, चार सरयव सभा।

चारो और = बा०, १६०, २१८ २६२।

[प्र०] (हि०) ('० चहुँ चार')।

चाल = ब०, ८६। बा० पु०, ६६। म०

[सं० ली०] (हि०) ५३, ८६।

चलने की क्रिया, गति। चलने का एक, आचरण। बस्ताव, व्यवहार। रीति रिवाज, प्रथा, परिपाटी। युक्ति, तरकीब। छल धूर्तता। प्रकार, तरह। शतरंज, ताश, चौमर आदि के खेल में माहिरा पता या दाव पर रखने या भाग बँटाने का काम। चलन का शब्द, माहट।

चासक = प्रे० ७।

[वि०] (सं०) चलानेवाला जैसे वायुयान या भाट चालक।

चालन = बि०, ६४।

[सं० पु०] (म०) कोई चीज चलाने का क्रिया या भाव।

[सं० पु०] (हि०) भूमि चौहर या कुछ छानने से या चालने से निकलता है।

चाब = बा०, ८४, ८४, १४०।

[सं० पु०] (हि०) अभिजाता। वामना। प्रेम, अनुराग। शीघ्र चाह। उमम, उत्साह।

चाब भरी = बा०, १४०।

[वि०] (हि०) प्रेम, अनुराग, चाह या वामना में भरी हुई या पूर्ण।

चाब ते = बि०, १०६।

[सं० पु०] (प्र० भा०) चाब ॥।

चाहना = ब०, १८। बा० पु०, १०, २५।

[क्रि० म०] (हि०) का०, २५ ८१ ८४ ८८ १०५

१३४, १४७, १६३, १७७ १६२

१६० १८६, २०६ २३६, २४२

२६६। बि० ५० ६६, ६७ १०४,

१६३ १५६, १७०, १७१। म०,

४८। प्र०, १२। म० १७। ल०, १०,

३८, ४४, ६४ ६८ ७६।

इच्छा या अभिप्राय करना। प्रेम

करना। माँगना। इंगित, इशारा।

चाहिये = ब०, १७, २७। बा०, १६६।

[प्र०] (हि०) उचित है आवश्यक है।

चाहूँ = बा०, १००, १६४।

[क्रि० म०] (हि०) जिनका इच्छा रखे या जिसे करने का

अभिप्राय रहे।

चाहो = बा० पु०, ६१।

[प्र०] (हि०) जहाँ इच्छा हो, जहाँ उचित है।

चाहो = बि, १, ८, ६।

[प्र०] (प्र० भा०) (दे० बाह्य)।

चिन्ता = अ०, ५५। बा० पु०, २६, ६४।

[म० ली०] (सं०) का०, १४८। बि० ४७ १४३।

ध्यान, भावना, साध। किसी कार्य-

निष्ठे या परिस्थिति के बार में बार

बार उठनेवाला अस्थिर सोचमय व्यवहार।

चिन्तामत्तर = बा० ४।

[सं० पु०] (सं०) चिन्ता के कारण उत्पन्न वह भाव

जिसमें मय एवं सहायता का याचना

होता है।

चिन्तामणि = बा०, पु०, ८६।

[म० पु०] (म०) चिन्तामणि रत्न। भगवच्चिन्तन रूप

मणि या रत्न।

चित्र = का० कु०, ५१, ८५ ११४। का०,
[म० पु०] (म०) ६४, १२० १४७ १५० १६८ १७५,
१७६, १७८ १८० १८३ २४५
२४७ २५८। चि०, ४६ १४१।
म० ८। न० १४ २६, २८ ३७
६४ ७२। व० ८। म० ३४।

निलर तरंगीर। अन्वार। एक प्रकार
का वगवुल। आकाश। एक प्रकार का
बोड। एक वग का नाम। चित्रगुप्त।
रेंड रा पड। अगार का पड। चाल
का पड। धुराष्ट व मी पुत्रा म स
एक। काव्य मे एक अन्वार।

[वि०] (म०) विचित्र विस्मयकारी। चित्रकला व
रगा का।

[चित्र—इंद्र कला २ रिरण २ भाद्रप १६६८ म
प्रकाशित। प्रसाज्जा की गडा बोनी
का पटना कविता। य एक भाषा य
कविता है जिससे आभाषा प्रवट
होता है। यथा—

मा को अवाह गभीर ममुद्र ववासा।
बबल तरंग न। चिन स वग ह्नामो।]

चित्रनार - का०, ६४।

[म० पु०] (म०) चित्र बनानेवाला, चित्रकार।

चित्रकूट = का० कु० ६५।

[म० पु०] (म०) एक स्थान का नाम जहाँ वनगमन व
समय भगवान् रामचंद्र ने निवास
किया था।

[चित्रकूट—सबप्रथम इंद्र कला ४, विरण १,
जनवरी १९१३ मे 'सत्यवत' शीर्षक स
प्रकाशित तथा 'ज्ञानन क्रमुम' म चित्र
कूट' शीर्षक स पृष्ठ ६५ स १०३ तक
मकागत। यह एक प्रबंध है। इसके ४
भाग है। दूसरे भाग मे अग्रुकाल कविता
है। शेष तुकात ह। प्रथम चित्रकूट' म
राममरस क मिलन का है। चित्रकूट
म स्फटिक ज्ञाना पर साता और राम
बठे है। राम ने माता से पूछा कि तुम्ह
इस भयावन जगत् म हर नहीं लगता।
सीता का उत्तर था—जिसके पास इन्द्रा

बटा धनुषर हो, उस विम वात का डर ?
पति के साथ ही पत्नी व सब मुख
रहने ह। सीता राम की गोप मे मो
गइ। इतने म ही लक्ष्मण आए और
उन्होंने राम की मूचना की कि निपाद
राज व दूत ने अभी मूचना दी है कि
भरत बसुन्धरी सचिन वर इधर चम
भा रहे है। इसा समय प्रभात हो
गया। सीता ने स्नानादिक राम का
जगाया। राम नियम म मुक्त हो
आजन क निय बठे। जानका न ल मग
का भा आमतन किया पर फल लेने
व निय व वृद्ध पर बठ गए और
आवाज देा तग कि भरत साथ म
सना लखर बुसित कर्म करन क निय
आ रहा ह। राम ने कहा। क भ्रम से
भर हुए उस वपत्रुत्त स लक्ष्मण तुम्ह
हट जाओ। और लक्ष्मण ने कहा कि
आप अपने ही कारण वनवासा हुए।
उमा समय भरत आ गए और जैसे
ही भरत ने राम व चरण स्पर्श के
लिये हाव बनाया कि राम ने उह
गल लगा लिया और मुक्त न प्रीति हो
गए। उस समय भ्रातृ व का स्वर्गिय
भाव छा गया। चित्रकूट उत्तर प्रदेश
के बान्ना जिल म है, जहा वनवासा के
समय कुछ दिना तक राम लक्ष्मण और
सीता क साथ रह। वही पर भरत-
सभा हुई थी।]

चित्रपट = ल०, १४। व०, ८।

[म० पु०] (स०) चित्रावार, छोट। सितमा का परदा।

चित्रपटी = का० २५८। म०, ३४। ल० ७२।

[म० खी०] (म०) (२० 'चित्रपट')।

चित्रलिखा सा = का० कु०, ८५। चि० ५६।

[वि०] (हि०) लिख हुए चित्र व समान मूक, अक्ष-
चन स्थिर।

चित्र सा = का०, १८३।

[वि०] (हि०) चित्र व समान, मूक, स्तब्ध, अचंचल,
स्थिर।

विनयः परं रत्नम् ॥—धर्मप्रति,
 कर्मागुण, मानस, शारीर्य भावा,
 रमात्मरत्नः रमान् वर्णा मन्त्रा नून,
 उद्यान तन्त्र, प्रजात-मुमुक्षु, विनय,
 तादृशय मन्त्रावृत्त विनय, विनय
 तादृश शब्द वृत्तिमा मन्त्रा-नारा
 धर्मात्त द्रव्यगुण, भावार्थ प्रकाश
 नारायण प्रम विनय प्रम, विनय ॥

प्रमाणों ने जब वाय्वरचना धारण की तो
उस समय भारतेन्दुनाथीन वाय्वरारा
एक रहा था । तत्कालीन गरीबी
में ही जानबूझकर रचनाएँ बनाए
गईं; तथा जायबिहान होना भी ।
जिम वातावरण में स्थिति प्रमाण रह
थे उस वातावरण में ब्रजभाषा का
कविता का स्वयं गुजरित रहना था ।
अतएव 'सादर' का सहज ही ब्रज
भाषा का धार भुजना पडा होगा ।
चित्राधार में मङ्गलित उनका रचनाएँ
ब्रजभाषा में ही हैं । अब उन रचनाओं
पर मङ्गल में उनका यह अनुसार
विचार करना समग्रमणिक न होगा ।
प्रसाद ने प्रारम्भ में भारतेन्दु व रासि
का अपनाना । वितु प्रसाद की भाषा
भूमिमा स्थलज मत्ता का सावितर
सत्य रहती है ।

इस पुस्तक में 'प्रिया या वा उद्यार, 'वन मिलन' और 'प्रेमराग' में श्रद्धाभावा की प्ररधामक रचनाएँ हैं।

‘अधोष्ठा का उद्धार’ म कुश द्वारा अधोष्ठा के उद्धार की कथा वर्णित है। कुश पुतावता नगर म श्रीर लज श्रावस्ती म शासन करत थे। महाराजा राम व पश्चात् अधोष्ठा म बार्ह शासक न था। कुशावसा म कुश एक दिन निद्रा मग्न भए। ४। किसी का बलक वाणा वजाते हुए मुन पड़ा। उनसे वश की प्रशस्तिवाचा गाने हुए बलक ने उद्वाधिन करत हुए जागरण का

मन निया घोर कहा कि सुहारा
जागरण हो प्रजा की मुनिद्रा है ।
उगने बुझा प्रजा का क्या दुग है घोर
तुम क्यों हो ? मुद्रा जितने घपने
का घषाघ्वा का राज्यश्री बतलाया
धात्री—तागत बिभूतन घषाघ्वा का
नागबना कुमु १ घपने घषिहार म त
निया है । घषाघ्वा उद्गा की उगने
मावना भी की । यह क्या रघुजन पर
भादधुन है । यह रचना घषाघ्वादार
नाम स ह्दुम प्रकाशित ह्दुं थी । इसमें
विविध छन का प्रयोग किया गया है ।
यद्यपि इन नाग बहूने घच्छी रचना नही
मानन घोर यह घच्छी रचना है भी
नही, किमु प्रगाद का प्रथम प्रषधामक
रचना होने पर भी इसमें जिनामा
घोर घषधयन का घषाधाम दीत पड़ता
है तथा रचना का घषतान घषध नगर
म मुगमाक तथा महामुग व छा जाने
म जाता है । कुमु कुग म भयभीत
हजार छिन जाता है घोर भाद म
घषपी वहिन कुमुबती तथा घषना
राय कुग का घषग कर्नाहा है । कुग
मुन्द्री के हगवाण म घषना राय गवां
वन हैं घोर उग स्वाहार करत है ।
यहा इसकी क्या है ।

प्रगढजी माहित्य धोर महर्गति व भवपण
म तन्वीन रहनवाल धम्यता थ।
मह बात इन रचना म भी दास पढती
है। यह बात उन टिप्पणा न जानी
जा सरना है जो उहान इस रचना
व पूव सिरी है—महाराज रामचद्र
के बाद कुश को कुशावता धोर लव
की आवस्ती इत्याद राज्य मिल तथा
भयोध्या उजड गई। वामीकि
रामायण मे बिना रूपम नामक राजा
द्वारा उमक फिर से बनाए जान का
पता मिलता है। परंतु महाकश
वालिदाम ने भयोध्या का उद्धार कुश
द्वारा राना लिखा है। उत्तरकांड

क निरा मं माया वा अमुमा है वि
म अ न पा दे यता । हा मका है
वि ना । हा म व मम म व मम अम
अपाया वा उपा हो म म प्रमि
रग । । अमु दम म ममि म वा
। अमु म वि म म ।

दूगरी प्रथमा मय रचना का मित्रा है। यह रचना भी 'रुद्र' में प्रकाशित हो चुकी है। उमा रूप में निवाधार में प्रकाशित हो कर जो गीत है। इसकी कथा प्रयाग का प्रतिभा की जा विराग व लिय पाय पाया रहा थी, मूलक है कानिनाग यही भा प्रयाग का व निय गहायक हुए हैं। गीतों जय हस्तिना पुर से गीत गा जकुतना व दुपयन द्वारा परियत निप जान का बात उमन वनना व यवहर र भय म सिद्धा सा था। वरणाग्रम की जकुतना का प्रिय गनिषी प्रियउगा और मनुयुगा जकुतना र हुतन और लाम का नय मातुन थी। पर ममागार न मित्रन में व गोचना थी कि राजगना व वर न जकुतना से हम भुवन दिया। वृद्ध निना र यो वष्यपनिष्य मानव कथक के आश्रम में आए और मूचन का कि जकुतना, दुपयन भरत और मराचि प्राश्रम में यों पधार रहे हैं। वन में राजगन्धार के आगमन न आनन्द का धारा रहा था। मेनका भा वही श्रपना पुता जकुतना की दलन प्रा पहुँची। बहुत दिन से बिछड़े हुए सबके सब जावन से परिपूर्ण प्रेम के सारे लाम प्राप्त कर आनन्दित हुए और मगलगाण का लहरें तरंगित होने लगी। मरूण कहाली राना छुटा म लिखा गई है। काय का दृष्टि से इसका विवेचन महत्व नहीं।

तीसरी रचना प्रेमराग्य है। इसके पत्र प्रसादजा ने आ प्रबंध लिखे थे दोनों मूलतः पौराणिक थे। ये दो रचनाएँ—

[illegible]

धह विशार नयचद्र वतु ललिताहु विशारी ।
 त मय ललित परस्पर इकट्ठ भदभुत जोरी ।

नमकि उत्था नय चात्र चद्र तारागन वन्ति ॥

हा रचनामा का मूल बड़ा साहित्यिक महत्त्व नहीं, किन्तु प्रमाण व साहित्यिक प्रेम विकास के चरण इन रचनामा में मिलते हैं। अतएव उनसे साहित्यिक व विद्याधिया व लिय इन रचनामा का महत्व है। उक्त तथा बहुवाहन में प्राण पक्ष भी अधि साहित्यिक महत्त्व नहीं बसल पक्ष व विवाह मात्र है। मन्त्रन का नारा तथा उममें प्राण पक्ष माताय कोटि व हैं। बुध्दिष्ट व धर्मराज की कल्पना भावना का दृष्टि में परंपरा का निराह मात्र है। इन पुस्तक में विद्यारण्य म्भन ह पराग व मुक्त तथा मरुत्तविदु। पराग व अतगत जितनी रचनाए हैं, उनमें बारह प्रवृत्ति में सम्बंधित रचनाए हैं। एतत्ता में रचनाए दलन मात्र में ही काव्य का दृष्टि में मिश्र का बाणी लगता है किन्तु परिणाम का विज्ञाना, प्रवृत्ति प्रम का धामा, जिसमें महत्त्व का जिनामा है विकास की धामा का मरन करता है। यन्त्रि प्रवृत्ति में प्रमादना धन का सा नहीं मके साधारण्य उममें स्थापित नहा कर पाग है ता भी बीजूलप्रण प्रवृत्ति व प्रति प्राप्पण तथा उमक मधुर पन का स्वर्ण निश्चय ही मह व रक्ता है। अन्तकार का प्राम्कितन अधिकतर रचनामा में नहीं मिलता, महत्त्व स्निग्धता भावा का दृष्टि से इतस्तत निम्नाड पडती है।

इसमें तीन रचनाएं वदना और प्राथना का भा है। कल्पनामृग में कल्पना का महत्व दिखाया गया है जो का विकास का प्यान में स्मृत हुए अपना महत्व रक्ता है। प्रमाद न उस मनुष्य जीवन का प्राण माना है। उम हृदय का मानद

गान करनेवाला मतनामा है। मानुष के मन्थन में भी उन्हीने रचना की है। नारद प्रेम के मन्थन में भी उत्पन्न किया है। भास्तेन्दु के प्रकाश का भी नरका करना व नहीं भूल है। उह हिंसी की चरित्रा धिक्कानेवाला तथा मानद का विमोचक बतनामा है। विदार्थ भी उहने का है तथा विस्तृत प्रम भी नहीं भूल है। भूतन जसे, वह उनका नम जो है।

विषय की विविधता इन प्रारम्भिक रचनामा में है। इन कवितामा के शीर्षक तालीन कविया का कवितामा के शीर्षक में नवीनता लिए हुए हैं तथा बीच बीच में छायावादी ढंग व प्रताक विधान भी मिलते हैं।

चित्रित = भा०, ३०। का०, ६४। चि०, ६८।
[वि०] (स०) ल०, ५६।

चित्र द्वारा दिखाया हुआ, जिसपर चित्र बन हा।

चित्रा = का०, १५६।
[स० पु०] (हि०) 'चित्र' का बहुवचन।

चिनगारी = का० ५८।
[स० ली०] (हि०) माग का छोटा कण या टुकड़ा।

चिनगारियों = का०, ६२।
[स० ली०] (हि०) चिनगारा का बहुवचन, माग के छोटे कण या टुकड़ा।

चिनगारी सी = अग्नि कण व समान। चिनगारी के समान जलान की क्षमता रखनेवाला।
[वि०] (हि०) क्षणभर में बुझ जानेवाला।

चिरजीव = चि० ७४।
[वि०] (स०) चिरजीवी तन।

चिरजीवी = का० कु० ६१। चि०, ४।
[वि०] (हि०) बहुत दिना तक जीनेवाला, मृत्यु।

चिरत्तन = का०, १६, ८६, १५५।
[वि०] (स०) पुरातन, पुराना।

चिर = भा०, ३० ५१, ५८। का०, १०,

[वि०] (स०) ३५, ८७, १४०, १४८, १५१, १६५,
[क्रि० वि०] (स०) १६६ १७७, १६८ २१७, २२६,
२३६, २३७। चि०, ६०। प्रे० ५०
२३। ल०, ६ १०, ३४ ४०, ४३।
बहुत दिनों का दीघ कालवर्ती। बहुत
दिन। अधिक समय तक।

चिरकिशोरवय = का० १०।

[वि०] (स०) सदा म्यारह से पंद्रह वष की अवस्था
वाला सदा किशोर रहनेवाला।

चिर चंचल = का०, १४०।

[वि०] (स०) सदा चंचल रहनेवाला, अव्यस्थित,
अधीर।

चिर चिंतन = का०, १६६।

[सं० पु०] (स०) बार बार स्मरण या ध्यान।

चिर जीवनसगिनी = प्रा०, ७५।

[वि०] (स०) सर्वदा जीवन के साथ रहनेवाली पत्नी।

चिर सापित = चि०, ५६।

[वि०] (स०) बहुत दिनों से तपाया हुआ या पीछित
किया हुआ या मत्तया हुआ।

[चिर नृपित षष्ठ से छत्रि विधुर—लहर पृष्ठ ३४
३५ पर मंचलित रहस्यवाणी गात।
चिर नृपित षष्ठ स तृप्त विधुर अत्यंत
तिरस्कुत अविषम आतुर सा धार स
पुकार उठता है कि मुझको न मिला र
कभी प्यार। मागर स लहरा वा
आलिगन निष्पन्न प्रतिनिधि हाता रहता
है क्योंकि अतन प्रेम मागर म जीवन
एक जलरुण मान्न वा दखने व बारण
पुकार उठता है कि मुझका कभी प्यार
नहीं मिला। निमम धरता म मुक्कान
वा एक कलत्र वा नलत्र व निय जाव
पिरता है जब कि षष्ठ व प्रकाश म
मगल कम कामन उज्ज्वल और
उत्तर बनत है। जाव वा यह वामना
धचकता पाटा घुमा मान व माध्यम
म अंगार वा प्रगार करता है और
अपन हा विपन्न व विष म जाव
उगी प्रचार मृष्टि हा जाता है जम

मुकुल भरी ठालें अतत सौरभ रस लिए
झुगती है और बार बार उह काटे
वेध देते हैं। जीवनरूपा निशा म न
तो आनंद का चद्रमा मिल पाता है न
तो प्रेम की स्वाती का ऐसा बूद हा
मिल पाता है जो हृदयरूपा सापा को
मोता बना सके और जीवन वा परम
लक्ष प्राप्त हो सक। क्योंकि प्रेम
मिलता नहीं है दिया जाता है।
और प्रेम के आसू अपन मोती स सारे
मसार को ऋणी बना लेत है।

चिर दुस्ती = प्रे०, २२, २३।

[वि०] (हि०) बहुत दिनों स दुख भोगनेवाला।

चिर निद्रे = का० १८।

[सं० खी०] (स०) सबोधन है मृत्यु।

चिर निराशा = का०, २१७।

[म० खी०] (स०) कभी पूछ न होनेवाला आशा या
अभिलाषा।

चिर निवास = का०, १५६।

[सं० पु०] (स०) जहाँ हमेशा निवास होता हो जस
अपान जहाँ माह का हमसा निवास
रहता है।

चिर प्रवास = का० १५६, १७८।

[सं० पु०] (स०) बहुत दिन तक या हमसा अवन दिय
जन स दूर रहन का भावगूचक शब्द।
चिरकाल स प्रिय स विलग निवास।

चिर उन्नहीन = का०, १६१।

[वि०] (स०) मग्न अवन मन न रहनेवाला या हमसा
उपन म रहित। माया म पर या
मुक्त।

चिर उधु = का० कु०, ६८। का० ६४।

[वि०] (स०) मग्न अवृत्त की भावना रमनवाना या
अंधु की तरह आचरण करनेवाला।

चिर वसत = का०, २६५।

[सं० पु०] (स०) अनन्यकालिक वसन, जहाँ मग्न मधुमाग
रहता हा या गरमता नय गरमता
रहता हा।

चिरमगल = का०, २३६।

चुंगना = श्री०, २३, ४३।

[क्रि० सं०](हिं०) चिडिया का गाना आदि चुनना, उठा लेना।

चुनक = चि० १५।

[सं० पु०] (सं०) लोहे को अपनी ओर खींचनेवाला धातु या पत्थर। चुम्बन करनेवाला। प्रथी को हथर उधर उलटनेवाला।

चुयन = श्री० २६, ३२ ४६। का०, १२, २८

[सं० पु०] (सं०) ११ १३६ १८० चि०, ६७। क० ४६। ल०, ३०, ४०, ४३। का० कु० ५४।

चुन्मा बोमा। ३० चुवव'।

चुवन उल्लास भरी = का०, कु० ५४।

[सं० पु०] (सं०) चुवन के उल्लास से युक्त। चुवन की आकांक्षा से युक्त।

चुनित = का० १६४। न० १०।

[वि०] (सं०) जिसका चुवन लिया जाय। चुवन ली गई। प्यार किया हुआ। प्रेमा हुआ।

चुषी = का० १००।

[वि०] (सं०) चूमनेवाला।

[सं० ली०] (सं०) चुम्मा, बोमा।

चुम्मा = का० कु० ६७।

[क्रि० प्र०] (हिं०) चुना' क्रिया का भूतवाचक रूप।

चुन्ना = का० ११, २०। प्र०, ११। ल०,

[क्रि० प्र०] (हिं०) ४४ ५०।
खेवा होना निबटना। चुकना होना।

चुफाना = श्री० ६२। का० २६। का० १०६

[क्रि० प्र०] (हिं०) ११६, १७८। म० १८।

बसाव करना निबटाना।

चुटकी = का० कु० १६। का० १८४।

[सं० ली०] (हिं०) धंशूरा और बीच का उगता की बड़ स्थिति जा दाना को मिलाने या एक का अग्र पर गगन से हार्ती है। उँग लिया मे पटनन का चींग का एक गहना पैकवा दरी क ताने का मून बनवा धावन का रीति।

चुत = का० १८१।

[क्रि० प्र०] (हिं०) २० चुनना'।

चुनना = का० ३२ १२१।

[क्रि० सं०] (हिं०) जानना, समझ म म एक एक चाज अलग करके निकालना, म म स यथावधि एक एक वा डाटना। मजाना। जोडाई करना। शिकन डालना।

चुन चुन = श्री०, ५८।

[क्रि० वि०] (हिं०) चीन चीनकर, एक एक करके चयन कर।

चुनि = चि० ६१। चि० ७०।

[प्रव० क्रि०] (प्र० भा०) चुनकर।

चुनि राखे = चि० ७०।

[क्रि० प्र०] (प्र० भा०) चुनकर रखना या चुन लेना।

चुप = श्री०, २१ ५७। का० १६। का०

[वि०] (हिं०) कु०, २१। का० ६ ३६ ७७ १०४ १५० १७७ १६६ २२३ २२६ २३४ २७७। चि० १६५।

मीन गामास। पक्क लाह वा यह तलवार जिमम न टूटने के लिये बसा लाहा गमा हाता है। गभार।

चुपके = श्री० १७। का० ६३ ६७ १२४

[क्रि० वि०] (हिं०) ११० २४६।

चार म चुपचाप गिना किसी प्रकार क शर क।

चुपचाप = श्री० ४५। का० ५५ ७७ १४३

[वि०] (हिं०) २०६ २३०, २३५ २४०। चि०, १६५। प्र० ६। न० १०।

शान मौन निश्चय।

चुपचाप = चि० १६५।

[वि०] (हिं०) गान और धारतायुक्त गभार और धववान।

चू = श्री० ४१। का० २०१।

[क्रि० प्र०] (हिं०) गिरना, टकरना। गभारा हाता।

चूक = का० २७०। चि० २१ १८३।

[सं० ली०] (हिं०) न० ४२।

भूनना या भूतना का क्रिया या भाव। भूत म पुत्र म्द बान या पुत्र हुआ काम।

[चुट हमारी— कु काग ४ क्रिग ६ पुन १६१३ म मवप्रवम विनार्नादु गायक क

अन्यतः प्ररागित मयया धीर चित्राधार
म पृष्ठ १८३ पर मकर विदु व
अन्यतः मकरित । तत्र बहावने
विमर्ग कर जा तुम म नह विद्या ता
उमया यहा परिणाम हृषा कि गवाह
मिना धीर

'नाम गवो' व पावन है
यः सोवा बहावन भाग उतारी,
प्रापनी लोच बहाद महा,
अत्र भाग करा यत्र चूक हमारा ।

चूडामणि = वि० २१ ।

[सं पु०] (म०) निर वा अत्र गहना मय का फूल ।
सम अष्टव्यक्ति या यस्तु ।

चूनिधो = वि० ४७ ।

[वि० सं०] (प्र० भा०) ३० चुनना ।

चूमना = भा०, ६ । क०, १७ । वा० कु०,
[वि० म०] (हि०) १३ । वा०, १६, ३६, १४७ १६६,
१५०, १५२, १५७ १५८, २३८ ।
वि० ३८, ६३ ६८ । भू, ७८ ७३,
७० ७७ ६० ।

होना स तमी का बार्द भग स्पश
करना । चुम्मा लेना । बिदाह व समय
या पूव मन्वा वम हो जान पर मुग
गिना का घर या कुटुम्ब व निष्
अद्वत सहर मयगि स्वर्ण करन हू
मगल कामना करन की क्रिया ।

चूमि = वि०, ६० ६२ ।

[पुन वि०] (प्र० भा०) चूम कर ।

चूर = का० १३ । वि० १४ । भू० ३२ ।
[सं पु०] (हि०) ल० ६६, ४७ ।

विमा वस्तु क टूट या पिम हू बासीर
टुकडे चूग चूरा, चुकना । पाचन की
न्वा चूग ।

चूर्ण = का० ५८ ७३, १७६, १८१ ल०
[सं पु०] (म०) ७७ ।

८० 'चूर' ।

चेत = वि० ३४ ।

[सं पु०] (सं०) चाना, हात, तान, राध गावधानी,
औरमी, स्मरण, गुण, स्मृत ।

चेतन = वि०, १६८ ।

[वि० म०] (प्र० भा०) चेतन करना ।

चेतन = वा० कु०, ६४ । वा० ० ७५, १६,
[वि०] (म०) १६३, २४१ २७२, २६४
२८६ २८८ २८९, २६४ । ल०
४८ ५८ । भा०, ८७ ।

चतना युक्त ।

[सं पु०] भा० भा० प्राणा । स्मरण ।

चेतनता = का० ६ १७६ १७८ १८३ १८८

[सं स्त्री०] (म०) १८१, २४० २४७ २८८ २८९ ।
ल० ३० ।

चतना का धर्म चतय मता, राज ।

चेतनत = वा० १८४ ।

[सं पु०] (सं०) चेतनता का मयावन ।

चेतन ससार = भा० ६२ ।

[सं पु०] (सं०) वह ससार जिसम चेतनता हा प्राण
हा या सात्मा हा ।

चेतना = भा० ८ १६, ५६ । वा० १७,
[सं स्त्री०] (म०) २५ ५१ ५८, ६६ ६०, ८१
८८ ८० ८३, १०७, १०२ ११६,
१८२, २१६ २८० । ल०, २६ । ७०
७४ । कु० ११७ ।

युद्धि या बाध का वृत्ति या शक्ति,
चेतनता ।

चेतना-सूत्र = कु०, ११६ ।

[सं पु०] (सं०) चेतनता का सूत्र, चेतनता स परिकूल
ज्ञान का मुख्य वस्तु ।

चेतनातरगिनी भा० ८ ।

[सं स्त्री०] (म०) चेतना या ता मन्वा मन्वा या धारा,
चत यना ।

चेति = वि० १७० १७१ ।

[वि० म०] (प्र० भा०) चेतकर ।

चेतिहै = वि० १७० ।

[वि० सं०] (प्र० भा०) चेत करेग चेतन ।

चेतिहो = वि० १७० ।

[वि० म०] (प्र० भा०) चेतु गा या चेत कह गा ।

[सं ली०] लकड़ी जिसे हाथ में लेकर लोग चलेते हैं।

छत्रो = चि०, ६४।

[वि०] (हि०) छत्र धारण करनेवाला।

[सं पु०] क्षत्रिय। नाई।

छद्म = भा०, ४०।

[सं पु०] (हि०) घोड़ा। छिपाव। गायन।

छन्नना = का०, ६४, १७६। ल० ३१।

[क्रि० प्र०] (हि०) किसी चूर्ण प्रथमा तरल पदार्थ का कपट आदि में से इस प्रकार गिरना कि मूल या सीधी ऊपर रह जाय। पात्र जिससे छाना जाय।

छपछप = का०, २४६।

[प्रनु०] (हि०) पानी में तरल या किसी वस्तु में गिरने का शब्द।

छपिके = चि०, ६६।

छिपकर। छिप गया।

छषि = चि० ७२।

[सं ली०] (हि०) शाभा। वाति। बुति।

छमकि = चि० १८८।

[पुव० क्रि०] (त्र० भा०) बाड़ा उछन्न कर।

छमहु = चि०, ४०।

[क्रि०] क्षमा करा।

छयो = चि०, १८४।

[क्रि०] (त्र० भा०) छाया है।

छरि लीने = चि०, १७१।

[क्रि०] (त्र० भा०) छल लिया।

छरी = चि० ७३।

[सं ली०] (त्र० भा०) छड़ी।

छल = भा०, ४०, ४८। का० कु० १२, ५९,

[सं पु०] (सं) ६३, ११३। का०, १२, ८२, १३५,

१७८, १६८ २०८, २४८। चि०

१०३ १०७ १६६। ऋ० ३८, ८०।

ल० २०, ४८, ५३, ७७।

कपट, घोषा। घुतता।

छलक = का०, १६१।

[सं पु०] (हि०) छत्रने की क्रिया। छत्रने का भाव।

[सं पु०] (सं) छत्र करनेवाला।

छलकना = भा०, ४७। का० १०२। चि० ६६।

[क्रि० प्र०] (हि०) किसी तरल पदार्थ का उछलकर बाहर निकलना।

छलनाना = ऋ०, ५३।

[क्रि० सं] (हि०) किसी तरल पदार्थ को उछानना।

छलकी = भा० ६८। स०, १३।

[क्रि०] (हि०) छत्रकना नामक क्रिया का भूतकालिक स्त्रीलिंग रूप।

छलक्रे = का०, २६१।

[क्रि०] (हि०) छत्रकना नामक क्रिया का भूतकालिक रूप।

छलछद् = का० कु०, ५६। का०, ८२।

[सं पु०] (हि०) कपट। घुतता।

छलछद् सो = चि०, १६६।

[क्रि० वि०] (त्र० भा०) कपट से। घुतता का कारण।

छलछल्ल = ल०, २०, ४८।

[सं पु०] (प्रनु०) पाना के छत्रकन, बहन, गिरन या हिलन का शब्द।

छलछाव = का० कु० ६३।

[सं पु०] (हि०) घोषा। कपट। छल छप।

छलछालो = का० कु० १२।

[सं पु०] (हि०) छलरूपी छाता, छलरूपी फकारों।

छलछाया = का०, २०८।

[सं ली०] (हि०) छत्र रूपी छाया।

छललो = का०, ११८, १८२।

[क्रि० हि०] घोषा धनी।

छलना = भा०, २४ ५७। का० ८, १५६।

[क्रि०] (हि०) चि०, १८१। ऋ० ६४। ल०, ५२, ६८, ७८, ७९।

घांघ या भुलाव में डालना।

[सं ली०] (हि०) घोषा। छत्र।

छल बलिबेदो = ल० ५४।

[सं ली०] (हि०) छत्ररूपी वन की बंदी।

छल सो = चि० १०७।

[सं पु०] (त्र० भा०) छल से।

छला = ऋ० ६४।

[क्रि०] (हि०) छत्रा हुआ।

[म० पु०] चिह्न। मुद्रा।
 छाया = आ०, १८, २४, ४२, ६२, ७५। क०,
 [स० पु०] (म०) १५। १७। का० कु०, २२, ८२।
 का०, १०, ३१, ३३, ३७, ३८, ६६,
 ६७, ७०, ७३, ७६, ८७, ८८, ९०,
 ९१, ९७, १००, १०४, ११२, ११४,
 ११७, ११९, १२३, १२७, १५७, १५९,
 १६५, १६७, १६९, १७०, १८१, १८२,
 १८४, १८६, १९३, २०६, २१२,
 ३१६, २१९, २२०, २२१, २२७,
 २२९, २३३, २३८, २४०, २४५,
 २४६, २६२, २६४। प्र० ४, १४,
 १५, १८, ४६। म०, ३। स०, ११,
 १४, २७, ३६, ५३, ७६, ८०।
 बि०, ७१।
 छाँह। बसा हो। अनुहार।

छायानट = आ०, ३३।

[म० पु०] (हि०) छायारूपी नट। एक राग का नाम।

[छायानट—संगीत का यह राग छाया और नट के
 योग से बन है। हमसे सा बादा और
 ग मवान्ति हं और अवराहण म तीक्ष्ण
 मध्यम लगता है। संगीतसार के मत से
 यह सपूर्ण जाति का राग है और साथ
 काल १ स ५ दंड तन गये हैं।]

छायापथ = आ०, ४८। का० ८। अ०, २३।

[म० पु०] (म०) प्र०, १०। म०, ३६।

आकाश गया।

छायापथ समीप = का० कु०, ११४।

[म०] (स०) आकाश गया के निकट।

छायापथ सा = का० २२१।

[बि०] (हि०) आकाश गया के समान।

छायामय = का०, २६२, २६३।

[बि०] (स०) काला। अदृश्य। छाया से युक्त।

[छायावाद—द्वितीय युग में स्थूल रूप में सामाजिक
 वैज्ञानिक, पौराणिक, धार्मिक एवं
 मान्यतागत विषयों पर दृष्टि रचनाएँ का
 जाती थीं। यद्यपि प्रमादजी न भी
 उन विषयों पर रचनाएँ कीं, तो भी
 उन होने भ्रमेक नए विषयों को, जिनका

मनष्य प्रकृति एवं अन्तर जगत् से है,
 काव्य का विषय बनाया। यथा रूप
 विरह, विषाद, बालू की बला, धून
 का भ्रम, दर्शन स्वभाव, स्वप्नलोक,
 आदेश, व्यास, दीप, चित्त, अव्यवस्थित
 भ्रमना, वसत, प्रत्याशा, पाइवाग,
 शिथिल, प्रियमम, कलश, हृदय वेदना,
 निशोष नदी, रमणार्ह्य, विरह,
 रजनीगंधा, शिल्पमादय, कल्पना, हारी
 का रात आदि।

दूसरी एक बहुत बड़ी बात प्रमादजी न काव्य
 के क्षेत्र में की। हिंदी कविता का नई
 भाव झेली में उद्धान उपस्थित किया।
 'छायावाद' जिस काव्य का नाम है,
 उसका आदि प्रवर्तन उन्होंने किया।
 इसके पूर्व तब हिंदी में विशेषकर पद्य
 के क्षेत्र में परंपरागत दृष्टि का प्राधान्य
 था। हिंदी कविता एक घोर रीति-
 प्रणाली के पथ पर थी, दूसरी ओर
 बड़ी या ता तुलसीदास के गद्य सी रचना
 काव्य के नाम पर होती थी या कुछ
 बय बयाव आदेशों और मा मताम्रा
 के भीतर, जिनमें स्वदेशप्रेम, राष्ट्र-
 यत्ना, शिक्षा आदि थे, कवि को
 मग्न करना पड़ता था। हिंदी
 साहित्य में कवि के रूप में जितने
 लोग वर्तमान थे उनमें कुछ एक
 ही ऐसे लोग थे, जिनकी अधिकांश
 रचनाएँ सरस वन पक्षी अथवा सभी
 द्विवेदीजी के आदेशवादी आचरण के
 भीतर उनकी मा मताम्रा से सामंजस्य
 स्थापित कर कविता का निर्माण करते
 थे। यह दृष्टिवादिता तथा मशीन के
 उत्पादन की नारमता तत्कालीन
 काव्य में है। इस समय कुछ ऐसे कवि
 हिंदी में आए जो वर्तमान कविता से
 अपना सामंजस्य स्थापित न कर सके।
 उन्हें अपनी आँखें मिला थी, उनसे वे
 देखना जानते थे। उनका दृष्टि दृष्टनी

पी पी बि बह् छावरण् पी नहीं,
धतरतन तब पहुँचा जानी था।
धपो मय धौर धौता स दगोवान,
धपनी धतरभावताधा म गानावरण्
का गार्मजग्य स्थापित कराना ये
कवि छायावादी कवि वं नाम म तथा
इनकी कविता 'छायावाद' वं नाम
मे सवोषा की जाने गयी।

प्रसाद के पूर्व जो कवितानि लिखे जा रही
थी उनमें आत्मीयता वं विश्वास का
अभाव था क्योंकि उनका मर्म मूलन
दृष्टि से था। इसे या भी कह
सकते हैं कि काव्यरचना पचबद्ध रूप
में युद्धि के सहारे धौरो का आधार
मानकर की जाता थी। धौता का
परिचय स्थाया एव रसारमय सभी हुआ
है, जब हृदय का सवध हृदयवस्तु से
स्थापित हो। उसके लिये सवेनमचारण
की आवश्यकता पड़ती है।

द्विवेदीवालीन कविता जितासा धौर धामी
यता के अभाव मे व्यापक सवेनना का
प्रसार नहीं कर पा रही थी। यह
उपयोगितावादी दृष्टिधन असतोप का
सृजन करता है। असतोप का सतोप
मे परिणत करने का प्रयत्न धक्कर
रुनिप्रस्त हो जाता है धौर जीवन मे
विश्वास की परिसमाप्ति हो जाता
है। उस परिसमाप्ति की सीमा पर
कुछ लोभ आदश बनाकर ठहर जाते
हैं धौर जो नये धात है वे पुन उसा
चक्रजाल मे फन जाते है। किन्तु
हृदय की दृष्टि सवेदन धौर सतोप
का जिस सीमा का निर्माण करती है,
वह सदा स्थायी रहती है। इस
स्थायित्व के मूल मे आतरयोग का
सयोग हाता है। इस धारों नही
हृदय बनाता है।

आत्मीयता का सवध हृदय से होता है। हृदय
सवध के द्वारा रस का प्रणयन धौर
नियमन हाता है। छायावाद रस की

ग्राह ही नहीं उमक गध का प्रगारित
नगरी का प्रयग था। उमम धनुमूनि का
गग था।

गुण म हिता कायम म ध्यक्ति का धनुमूनि
दवा रती। गध बीच म कुत्र गमय
कवि दृग जिदनि धपन गट्ट उद्गार
प्रबट विग। पर रुद्रि न गमा पर
विजय पार्। भारतें गुग म कट्ट।
कटी कवि उभटा पर उभार की लहर
तरान हा गुग की कायधारा म
विजल गे गई। कवि के पाम धपना
दुग गुल धाता धौर निराशा भी
हता है। वह उमक ज्ञान का धाना
लित करता है। उमका प्रभाव उमक
जावन धौर मन पर पडता है। पर
सामन समाज म रुद्र आदश रास्ता
राह दता है। उस समय ऐसा हा
स्थिति म प्रमान का कवि था। उनका
धौ अधिक् बलशाली प्रमाणात हुआ।
वह दवाए न दवा धौर का य की नव
भावधारा फूट पडी। द्विवेदीवालीन
आदशवाद वं समुद्र यह 'यक्ति का
नव भावोच्छवास तत्कालान परिस्थिति
के धनुष्य हुआ। द्विवाजा वं प्रभाव
धन का कविता मे केवल बनी बनाई
बात थी, रूप रम था ही नही। मनुष्य
केवल बातों से नहीं धमाता; उसे रूप,
रस, गध धौर नाद सभी कुछ चाहिए।

छायावाद का रूपविध आकषण की जिस
शक्ति पर रहा हुआ उसम धौवनोचित
भावना का धार सस्कार मिलता है।
उस सस्कार के कारण उनकी रस
सृष्टि विराट धित्र की रेखाभा के रूप
म सवरकर सामने धाने का उपक्रम
करता है धौर काव्य स्वत प्रस्पुट
होता है।

जिस प्रकार लोभ इशारे से या साकेतिक शब्दों
से आत्मीया के भीतर रससृष्टि कर लेते
हैं, उसी प्रकार नवीन प्रतीकविधानों
का नियमन छायावाद में हुआ। उनके

प्रतीक जन और मन परित्तित थे। प्रकृति से बदतर परिचित आत्मीय मकेत और वहाँ से मिल सकता है। इन्तिय उ हाने प्रकृति से प्रतीकवचान किया। प्रकृति का हृदयवत् कव मसार से दूर हट गया था। उस समय प्रकृति अपने में स्वयं इनना सकलमया थी। सबनाम का काम कर सक्ता था तथा इस काय द्वारा सबनशालता का छुट्टरचना भी। इनलिये इनोतर प्रतीकवचान में नईतर नमुन होता गई और अतन्तागतता का काम छायावाद के अतन्तागत नमुन होता है, वह प्रकृतिमय बन गया।

प्रसादजी अपने पत्र पर आँखा रूढ़ आर काव्य के जून में नव पत्र लामाग के लिये सतत प्रयत्नशाल भी। इन प्रयत्न पर व्यर्थ इस सामाजिक पहुँचा। एक लाग प्रसाद के चिन्ता पर ही नही, उनका हितत्व और भी आश्रय का भूत उत्तारने लग। 'छाया' (प्रसाद का कहानी संग्रह) का विवाद इतना बढ़ा कि उन्ही प्रसाद द्वारा प्रवर्तित काय को 'मध्यम' 'छायावाद' कहानी प्रारम्भ किया। (१० प्रसाद की जीवितान्)।

अभी तक हिन्दी जगत् में प्रामाणिक रूप से यह प्रकट नहीं कि 'छायावाद' नामकरण का कारण का काल सवमा में यह है। नव काव्य के अवरोधका न व्यर्थ में नई कायता का छायावाद के नाम से सन्नायित करना प्रारम्भ किया और छायावादियों ने इस व्यर्थ का स्वाकार कर लिया।

मवार में किमा भी भाषा के साहित्य में यह बात नहीं है। 'छाया' का लहर नाट्यसभा का तब का नवत आदि।

ऐसी स्थिति में 'छायावाद' शब्द को 'छाया' के कला के कृतित्व पर आधारित व्यर्थ मानना ही समाधान लगता है। यह शब्द १९१३ से २० तक के बीच ही उत्पन्न हो गया था क्योंकि श्रीगुरुद्वार पांडेय ने आशरदा में 'छायावाद' के ऊपर १९२० में लेख लिखे। इनके पूर्व ही छायावाद शब्द का छाप हा चुका रही होगी।

छायावाद का प्रारम्भ—आचार्य शुक्ल जा के अतिरिक्त और किमा भी हिन्दी के तत्कालीन आलाचक ने छायावादी काव्य के क्रमावकास पर विशेष गम्भीरतापूर्वक विचार नहीं किया। अभी तक जो लया जाया हिन्दी में उपलब्ध है उसका अनुसार अवकाश सापेक्ष केवल इसा मायता के है कि छायावाद के प्रवर्तक प्रसाद जा नहीं है। इस छाप से ही शुक्लजा ने सवप्रथम अपना मायता स्वर की है। अतएव इस भ्रम का निराकरण शुक्लजी का ही काम है। पर करना आवश्यक होगा।

छायावाद का नावता के प्रारम्भकात्मा में आचार्यलक्षण गुप्त, श्रीगुरुद्वार पांडेय, बदरनाथ भट्ट, गुरुमाल पुनिलाल बल्लाह की नई काव्य के प्रारम्भकात्मा के रूप में ही हान स्मरणा किया। साथ ही १९१६ से लेकर १९१७ तक का रचनाका उदाहरण देकर अपने बात काव्य प्रमाणात किया है। आचार्य शुक्ल के शब्दों में वह इस प्रकार है—

'आचार्यनाथ सिंह के लिये हुए बगला काव्य के हिन्दी अनुवाद तत्काल आदि परिवर्तना में सवत् १९६७ (सन् १९१०) से ही मिलने लग प। प्र, वङ्गवर्ध आदि अनेका नावका का रचनाका कुछ अनुवाद भी (यह द्वारा अनुवाद वङ्गवर्ध का 'काव्य')

निकल । मन खड़ा बाला की कविता
जिम रूप में चन रहा थी, उसमें मनुष्य
न रहकर जिनमें उद्यान के समाप्त
होने के कुछ पहले ही कई कवि खड़ा
बाली काव्य का बन्धना का नया रूप
रम दन और उस अधिक मनभाव
व्यजक बनान में प्रवृत्त हुए जिनमें
प्रधान थे मध्या मयिलीशरल गुप्त,
मुकुटधर पांड्य और बदरोनाथ भट्ट ।
कुछ मध्याजी ठर्रा लिए हुए जिम प्रकार
की फुटकर कविताएँ और प्रगाढ़
मुक्तक (लिरिक) वगैरह में निकल
रहें उनमें प्रभाव से कुछ विभूषण
वस्तुविषय और मनुष्य शापका के
साथ चिनमयी कामल और व्यजक
भाषा में इनकी नए टग का रचनाएँ
मार्च १९७०-७१ ही में निकलने लगीं
थी जिनमें कुछ के भातर रहस्यभावना
ना रहनी थी ।

गुप्तजी का नक्षत्रनिपात' (मार्च १९१४)
मनुरोध' (मार्च १९१५) गुप्ताजलि'
(१९१७) स्वयं भागत (१९१८)
इत्यादि कविताएँ ध्यान दन योग्य हैं ।
गुप्ताजलि' और स्वयं भागत' की कुछ
पंक्तियाँ नीचे दक्षिण—

(क) मेर भोगन का एक फूल ।
मीमांसा भाव में मिना हुआ
इमामोक्षवाम से हिता हुआ ।
मसार विटप में खिना हुआ
ऊँट पड़ा ध्यानन भूत भूत ।

(ख) उर घर में द्वार बन्द है,
जिममें हाथर धाऊँ मैं
मन द्वारा पर भीड़ बढ़ा है
कन भीतर जाऊँ मैं ।

इम प्रकार गुप्तजी का और ना बहुत सा
गतिमय रचनाएँ हैं जैसे—

(ग) निज नहीं है उर ॥ भाट
ताक रह सब तरा रह ।

चातक खड़ा चाब मान है,
मण्डल खाल साप खड़ा,
मैं अपना घट लिए खड़ा हूँ
अपनी अपना हम पड़ो ।

(घ) प्यार । तर कहने में जा
यही मवानन में धामा
दीप्ति बढ़ी दीपा का महमा,
मैंन भी ला मौन कहाँ ।
मा जान के निय जगत् का
यह प्रकाश है जाग रहा ।
किन्तु उमी दुम्भत प्रकाश में
हूँ उठा मैं और बहा ।
निम्नोद्य नख रसाभा में
दला तरी मूर्ति बहा ।

गुप्तजी तो जमा पहले कहा जा चुका है, किमी
विशेष पद्धति या बाद में न बचकर
कई पद्धतिमा पर धब तक चल आ
रहें हैं पर मुकुटधरजी बराबर नूनन
पद्धति ही पर चल । उनकी इस ढंग
का प्रारम्भिक रचनामा में धाम्नु,
उत्पार' इत्यादि ध्यान दन योग्य हैं ।
कुछ नमून दक्षिण—

(क) हमा प्रकाश तमामय भग में
मिना मुझे तू तल्लण जग में
दपति के मधुमय विलास में
बय कुसुम के शुचि सुवाम में
था तब ब्रौडा स्थान ।
(१९१७)

(ख) मर जावन का लघु तरली
धाम्ना के पाना में तर जा ।
मर उर का छिपा खाना
महकार का भाव पुराना
बना भाज तू मुझे दिवाना
तत श्वन वदा में ढर जा ।
(१९१७)

(ग) जब मध्या की हट जावगी भाड महान्
तब जावर मैं मुह्म सुनाज्या निज गाल ।
भूय कल्ल के मथवा कान में हा एक
बठ मुह्मा वर वही नीरव धमियेक ।
(१९२०)

प० बदरीनाथ भट्ट भा सन् १९१३ व पहले
म ही भावव्यञ्जन और अनूठ गात
रचते आ रहे थे। दो पंक्तियाँ दबिए—

द रहा दीपक जल कर फूज

रोपी उज्ज्वल प्रभा पताका अथवार हिय हूँ।

श्रीपदुमलाल पुनालाल बख्शी के भी इन
ढंग के कुछ गीत सन् १९१५-१६ के
आसपास मिलेंगे।

(देखिए हिंदीसाहित्य का इतिहास, पृष्ठ-
संख्या ७२२, ७२३, ७२४।)

यह तो साहित्य का सर्वमाय मिश्रात है कि
लक्षणप्रयोगों की रचना जादू में होगी
है। इन मिश्रात के बाद यह दखा
जाय ना अभी तक उपलब्ध सामग्री में
छायावाद का विवचन सन् १९१८ से
माना जायगा। इसलिए शुक्लजी ने
सन् १९१४ में १९१७ तक की रचनाएँ
सबसे अपनी बाता का मजबूती का जट
जमाने का बर्णनिक प्रयत्न किया।
शुक्लजी का 'भरना' में ही कुछ
रचनाएँ छायावादी नजर आईं।
'भरना' का प्रथम प्रकाशन सन्
१९१८ ई० में हुआ। जिन रचनाओं
को शुक्लजी ने छायावाद स्वाकार
किया है, यदि उन रचनाओं का हम
१९१४ के पहले का सिद्ध कर दें, तो
शुक्लजी का मा यता अपने आप विनाश
हो जाती है। इन संबंध में 'भरना' के
प्रकाशक का राय से हम अवगत हैं,
वह छायावाद का आरंभ प्रस्तुत समूह
द्वारा मानता है। प्रकाशक के इन
वक्तव्य को प्रमाणों में दखा होगा।
पहले संस्करण में न सहा दूसरे
संस्करण में ही। यदि उह यह मा यता
स्वाकार न हाता तो मभवत हमने
संस्करण का प्रकाशक कुछ और
हा हाता।

चित्रापाय के प्रथम संस्करण (१९१८) से
बाह्य रचनाएँ 'भरना' के द्वितीय
संस्करण (१९२७) में ली गई हैं।
पश्चिम कविताएँ पहले संस्करण में
थी लेकिन उनमें में केवल बाइस
रचनाएँ ही 'भरना' के दूसरे संस्करण
में ली गई हैं। ये ३४ रचनाएँ अपने
आप सन् १९१८ में पहले की
ठहरता हैं -

१ ममपण, २ परिचय ३ भरना, ४
अचना, ५ पी बहो, ६ दणन, ७
परदशा का प्राप्ति, ८ स्वप्नलोक, ९
मुषा में सरल, १० आशासता,
११ रत्न, १२ स्वभाव १३ प्यास,
१४ प्रत्याशा, १५ धूल का खेल,
१६ अतिथि १७ कमीन १८ बदने
ठहरो १९ उपजा करना २० भोल
में २१ मिलन और २२ मुषा
विचन। (इनमें से पत्र, वसंत, राका
और एक तारा 'भरना' के द्वितीय
संस्करण में सफल नहीं है)। २५
प्रथम प्रभाव, २६ खाली द्वार २७
अनुभव २८ प्रियतम २९ बहो,
३० निवेदन, ३१ पाइबाग, ३२
आज इन घन की अधियारी में, ३३
हृदय में छिपे रह इस घर से, ३४
मुमन, तुम बना बन रह जाओ,
३५ अमा को करिये मुदर राका और
३६ आधा देखो दिमल बसत।

यद्यपि 'भरना' में सशुद्ध 'बसत' और
'तुम' का श्रीकियारीलान गुप्त १९१८
के पहले की रचना मानत है, तो भा
वगत और 'तुम' १९२४ की रचना
है। दीप, काव्य अव्यस्थित सन्
१९२२ से १९२४ के भातर प्रकाशित
हुई है। बाबू की बला, कुछ नहीं,
दो बूँदें १९२५ की रचनाएँ हैं।
'विपाद' भी १९२५ की रचना है।
इनका प्रकाशन 'माधुरी' में हुआ था।

इस प्रकार उपर्युक्त रचनाएँ जिनपर हिंदी जगत् और शुक्लजी भी मुग्ध हैं, निश्चय ही १९१८ के बाद की ही हैं। परंतु अब देखना यह है कि जिन कविताओं का शुक्लजी १९१८ के पहले की नहीं ठहराते हैं और जो उनके अनुसार ध्यावादी काय माना जा चुका है, उनमें क्या कुछ रचनाएँ गयी हैं जिनका प्रकाशन सन् १८१८ के पूर्व हुआ।

भाचार्य रामचंद्र शुक्ल का यह मायता है कि मध्या मधिलोचरणा गुप्त बदरीनाथ भट्ट और मुकुटधर पांडेय स्वच्छंद नूतन पद्धति के प्रवर्तक हैं और उन्होंने यह स्पष्ट लिखा है कि प्रसादजी ने पीछे उस नूतन पद्धति पर क्या रचनाएँ लिखी हैं और वे बहुत भी हैं कि रहस्यवादी अभिव्यक्तियों का पूरा अनुकरण एक व्यक्त चित्रविधान प्रसाद की जिन रचनाओं में मिलता है उनसे पहले ही आधुनिकता के पत का पल्लव' यही धूमधाम में निरल हुआ था। अर्थात् आधुनिकता के पत उनसे पहले ही से इस नूतन पद्धति पर चल रहे थे।

शुक्लजी ने निर्विवाद रूप से जा कुछ नई धारा के गवेष में लिखा है, उनमें पञ्च-पन्निकाओं में अतिशय अधिक उल्लेख सरस्वती का सहारा लिया है, जब कि 'सरस्वती' एकाक्षर्य था। एकपक्षीय इमलिय कि सन् १९२७ तक एक भाग लक्ष प्रसाद काव्य के नवमीय के समर्थन का आश्रय नहीं लेती कर सका। तबिन आश्रय तो ऐसा धामिमा पर होता है जो ध्यावादी के आश्रय के समर्थ पर लिया गई है। उनमें भा शुक्लजी से भाग बनने का प्रयत्न नहीं किया गया है। उदाहरण के रूप में हिंदी साहित्य

का विकास (१९००—१९२५ ई०) [प्रयाग विश्वविद्यालय के डा० फिल० के लिये स्वीटन थॉमस का हिंदी रूपांतर] को लिया जा सकता है। यथा, 'स्वच्छंदता का दूसरा चरण केवल साहित्यिक आंदोलन मान न था, बल्कि वह कलात्मक और दार्शनिक आन्दोलन भी था। उसमें विश्व का बदला, सृष्टि का रहस्य, उन्नत भावना तथा प्रेम और वारता को व्यक्त करने का लाभ आकांक्षा, अलस्य भ्रम से उद्भूत गति बनना और अनंत निराशा आदि आकांक्षा दार्शनिक बुद्धि का प्रदर्शन था। यह द्वितीय आन्दोलन १९१४ के आस पास मैथिली शरण गुप्त, मुकुटधर पांडेय, राम दुष्मन्त, बदरीनाथ भट्ट और बहुतों ने प्रारंभ किया था। स्फुट भावना का प्रारंभ १९१८ के आस पास आकांक्षा के 'प्रसाद' आधुनिकता के पत और 'निराला' के मथान गता का कविताओं का प्रकाशन हुआ है।

भाचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार 'ध्यावादी' यादू का यश, शान्ता द्वार, विमला हृषीकेश, विरग, बर्ना का प्रसाद आदि पाँच जाति हुई रचनाओं में स्फुट रूप से ध्यावादी के जानेवाला रचनाओं का आश्रय मिलता है। का विरग मिलता है। पर शान्ता द्वार' आश्रय जगत् स्वाहन रचना इष्ट कता पाष, गङ्गा एव, जनकरी सन् १९१४ ई० में प्रकाशन हुआ था। 'निराला' का नहीं १९१४ ई० में ही निराला और विरग जगत् रचनाओं में ध्यावादी और निराला के बहुत प्रकाशन हुआ था। शुक्लजी ने इन संबंध में निम्न उल्लेख किया है वे संबंध सन् १९१४ से १९२० ई० तक के हैं।

इस प्रकार शुकनजी की बात अपनी भाष बट जाती है।

यहां नहीं, जिस बिंदु का आरोप शुकनजी श्रायुटधर झाँसी पर करते हैं, वह बीजबिंदु प्रसादजी की रचनाओं में सन् १९१० ई० से ही मिनना प्रारंभ हो जाता है। उदाहरण के रूप में बालमंत्र में अनुसार उक्त प्रस्तुत करना चाहते हैं। इसमें पहले ही उन ३१ रचनाओं के बार में, जिनमें शुकनजी का यह सब मिन जाता है, निवेदन कर देना चाहता हूँ। उनमें से सबसे पहला रचनाएँ १९१४ ई० के पहले का है। सन् १९११ ई० के बहुत से प्रकाशित खंडों वाली रचनाएँ जो 'मानस कुसुम' में संप्रदीत हैं, उनका एक सामान्य उदाहरण के रूप में हम प्रस्तुत करते हैं—

विशाल मंदिर का धामिनी में
जिग देखना हाँ दापमाना,
ता तारका गगन की ज्याति उसका
पता भनूठा बता रही है।
य सध्य हम बात में समर्थन है कि प्रमाण न
इस नदी कविता का गुंभारम ह्रिदी
त दिया।

छायावाद की परिभाषा—छायावाद का परिभाषा बराबर परिवर्तित रूप में आती रही है। ऐसा स्थिति में छायावाद की विभिन्न विशिष्ट परिभाषाओं का हम यहां द रहे हैं—

अग्नेजा या किसी पाश्चात्य साहित्य ग्रंथवा, नम साहित्य की वर्तमान स्थिति की कुछ आ जानकारी रखनेवाला तो सुनते ही समझ जायगा कि यह शब्द 'मिस्टिसिज्म' के लिये आया है।

× × ×

छायावाद एक ऐसी साधनात्मक मूल वस्तु है कि शब्दा द्वारा उसका ठीक ठीक वर्णन करना असंभव है, क्योंकि ऐसा रचनाओं में शब्द अपने स्वाभाविक मूल्य को साकर सावितव्य विह्वलमान दृष्टा करते हैं।

छायावाद के कवि वस्तुओं को प्रमाणात् दृष्टि में देखते हैं। उनकी रचना का मूल्य विषयताएँ उनका इन दृष्टि पर ही अवलंबित रहता है। × × × वह सत्य भर में बिजली की तरह वस्तु का स्पर्श करती हुई विद्यमान होता है। × × × अस्थिरता और क्षाणता के साथ उसमें एक तरह की विचित्र उमादवस्था और अंतरंगता होती है जिससे कारण वस्तु उसके प्रकृत रूप में दीप्त पड़ती है। उसका इस भाव रूप का संबंध कवि के अंतर्जगत् से रहता है। × × × यह अंतरंग दृष्टि ही छायावाद की विभिन्न प्रमाण-रीति का मूल है। × × × उनकी कविता शब्दों की आँखों से सदा ऊपर की हाँ धार उठी रहती है, मृत्युलाव से उनका बहुत कम संबंध रहता है। वह युद्ध और नात की सामर्थ्यहीनता का अतिरमण करके मन प्राण के असात मोह में ही विचरण करती रहती है।

यही छायावादिता से आध्यात्मिकता तथा धर्म, भावुकता का मेल होता है। यथायत्न उससे जीवन के दो मुख्य अवलंब है।

—मुकुटधर पांडेय
(सन् १९२० ई.)

छायावाद से उम्मीद कविता का अभिप्राय समझना चाहिये जिसे अर्थ में अग्नेजी शब्द 'रेफ्लेक्टिव पाएट्री' बोधक हान है और उसकी अभिव्यक्ति विशेष रूप में

साध्यात्मिक क्षेत्र है, परन्तु उगका मुख्य प्रेरणा भाविका १ हार मानवीय और सांस्कृतिक है। उस हम जीतवी भता-नी का बर्णन प्रगति की प्रति प्रिया भी वह सना है। भारतीय परंपरागत आध्यात्मिक दर्शन की नवप्रतिष्ठा का ससमाग अनिश्चित परिस्थितियां में यह एक सन्निय प्रयत्न है। इसकी एक नवीन और स्वतंत्र काव्य शली बन चुकी है। आधुनिक परिवर्तनशील समाजव्यवस्था और विचारजगत् में छायावाद भारतीय आध्यात्मिकता की नवीन परिस्थितियों के अनुरूप स्थापना करता है। जिस प्रकार मध्ययुग का जीवन अस्तित्व में व्यक्त हुआ, उसी प्रकार आधुनिक जीवन की अभिव्यक्ति इस काव्य में हो रहा है। अंतर है तो इतना ही कि जहाँ पूर्ववर्ती अस्तिकाम में जीवन के प्रतीक और व्यावहारिक पहलुओं को गोप्य स्थान देकर उनका उपेक्षा की गई थी, वहाँ छायावादी काव्य प्राकृतिक सौंदर्य और सामयिक जीवन की परिस्थितियों से ही मुख्यतः अनुप्राणित है। इस दृष्टि से वह पूर्ववर्ती अस्तिकाम की प्रवृत्तिनिर्पेक्षा और समारमिया की सैद्धांतिक प्रियाओं का विरोध भी है। छायावाद मानव जीवन, सौंदर्य और प्रवृत्ति की आत्मा का अभिन स्वरूप मानता है। उसे व्यक्त की देवी पर बलिदान नहीं कर देता। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मध्य कालीन काव्य की सीमा में मानवचरित्र और दृश्य जगत् अपने प्रवृत्ति रूप में उपेक्षित हो रहे, जब कि नवीन काव्य में समस्त मानव अनुभवों की यापना पुरा स्थान पा सकी।

छायावाद काव्य मध्ययुग काव्यधारा से प्रमुखतः इस अर्थ में विभिन्न है कि वह किसी क्रमागत सांप्रदायिकता या

साधना परिपाटी का अनुगमन नहीं करता। अध्यात्मवादी काव्य का प्रतिष्ठान देशकालातीत परम पवित्र सत्ता हुआ करता है। व्ययनाल सासा रिक आत्माओं और स्थितियों आदि से उनका मुख्य संबंध नहीं होता। वह विनाश जो समय का आश्रित है, वह विनाश जो व्यक्त त्रय तथा उमका परिणाम। पर प्रविष्टि है, मध्य कालीन आध्यात्मिक काव्य का विषय नहीं है। प्रयत्न वस्तु का मानव जीवन के मुख दुःख, विनाश, ह्रास आदि की अवस्थायों से जो संबंध है वह काव्य उसका उपेक्षा कर गया है। किंतु आधुनिक छायावाद काव्य उसकी उपेक्षा नहीं करता। अध्यात्मवादा परंपरा दृश्य मात्र को विलासो कहकर चुप हो रहती है मधका उस व्यावहारिक बतावर मुह मोड़ लेती है। छायावाद काव्य में यह परंपरा स्थापित नहीं है। दय से पीड़ित और प्रताडित तथा भागश्चय से दासक और परिवेष्टित व्यक्ति सङ्गम्य देश, राष्ट्र या सृष्टिचक्र के विभेदा ॥ अध्यात्मवाद नहीं जा सका। समय और समाज की आदीोलन करनेवाला शक्तियों का आकलन उसमें कम ही है। वह तो उस शाश्वत सत्ता से हा सबका संपृक्त है जिसमें परिवर्तन का ही नाम नहीं। उस सत्ता का स्वरूप सगुण है या निर्गुण विश्वमय है या विश्वातात य प्रश्न भी उस अध्यात्म में आते हैं। छायावाद की कायसारणी इन अध्यात्मवादी सीमानिर्देशों से आबद्ध नहीं है। वह भावना के क्षेत्र में किसी प्रकार का प्रतिबंध स्थापित नहीं करती।

आधुनिक छायावाद काव्य किसी क्रमागत अध्यात्मपद्धति को स्वीकार नहीं करता। नवीन जीवन शक्ति में ही उसने आत्म

मोक्ष की भलक देखी है, परपरित
धर्मात्म प्राय गुरुप से प्रकृति की
ओर प्रवृत्ति होता है। एक चेतन
केंद्र से नाना चेतना केंद्रों का छिष्ट
करता है। किन्तु छायावाद का य
प्रकृति की चेतना सत्ता में अनुप्राणित
होकर गुरुप दृश्य से भाव की ओर
होती है या आत्मा के अविद्यमान में
परिणत होती है। उसकी गति प्रकृति
से गुरुप की ओर होती है और इस
बाह्यनिष्ठ अनुभूति के अनुप्राण का य
वस्तु का चयन करने में छायावादी
कवियों ने प्रकृति के अपार क्षेत्र से
यथेच्छ सामग्री ग्रहण की है।

—नददुलार वाजपेयी
कविता के क्षेत्र में पौराणिक युग का किसी
घटना अथवा दश विदेश की सुदरी
के बाह्य वृत्त से भिन्न जब वेदना के
प्राभावर पर स्वानुभूतियों की अभि
व्यक्ति होने लगी तब हिंदी में उसे
छायावाद का नाम से अभिहित किया
गया। रीतिवासीन प्रचलित परंपरा
से जिसमें बाह्य यण की प्रधानता थी,
इस ढंग की कविताओं में भिन्न प्रकार
के भावों की अथ ढंग से अभिव्यक्ति
हुई। य नवमान भाव आंतरिक स्पर्श
से पुलकित थे।

× × ×
बाह्य उपाधि से हटकर आंतर हेतु की ओर
कवि-धर्म प्रवृत्त हुआ। इस नए प्रकार
की अभिव्यक्ति के लिये जिन शब्दों
का योजना हुई हिन्दी में पहले क
कम सम्भवे जाते थे, किन्तु शब्दों
में भिन्न प्रयोग से एक स्वतंत्र अर्थ
उत्पन्न करने का शक्ति है। समाप
के शब्दों में उस शब्दविशेष का
नवान अर्थ स्थापित करने में सहायक
होते हैं। भाषा के निभाए में शब्दों
के इस व्यवहार का बहुत बड़ा हाथ
होता है।

अभिव्यक्ति का यह निराता ढंग अपना स्वतंत्र
अस्तित्व रखता है। इसके लिये
प्राचीनों ने कहा—

मुक्ताङ्गुलेषु छायायास्तरलत्वमिवातरा ।
प्रतिभाति यदगुणं तन्नावयमयमिहोच्यते ।
मोती ने भीतर छाया जैसी तरलता हाती है,
वसी हा बात तरलता भ्रम में लावण्य
कही जाता है। इस लावण्य का सस्तर
साहस्य में छाया और विचञ्चलित
के द्वारा कुछ लोगो ने निरूपित किया
था। कुतक ने वक्रातिजावत में
कहा है—

प्रातःप्राथम्यमनुभूतसमय स्तत्र वक्रता
शब्दाः भवयथावत स्फुरताम् विभाटयत ।
शब्द और अर्थ का यह स्वाभाविक वक्रता
विचञ्चलित, छाया और काल का सृजन
करता है। इस वाच्य का सृजन
करना विदग्ध कवि का ही काम है।
'वदन्ध भगी भाणत' में शब्द का
वक्रता और अर्थ का वक्रता लाता
ताण रूप से अवास्थित होता है।
॥ शब्दस्वाह वक्रता आभयवश्य
च वक्रता लातातुर्गेन स्पेशा
वस्वानम् (—वाचन २०८) । कुतक के
यत्न में एता भाणत शब्दस्वाहवक्रता
शब्दवाचनवद व्यातर्की होता है।
यह रम्यछायावातरस्पर्शी वक्रता कण से
लकर प्रवृत्त तब में होता है। कुतक
के शब्दों में यह उज्ज्वलाछायावातराशय
रमणायता (१३३) वक्रता का
उद्भासित है—

परस्परस्य शोभाय बहव पतिता ववचित् ।
प्रकारा जायत्येता चित्रञ्चयायामनोहराम् ।
—वक्राति जावित
(२ उभेय, २४)

कभी कभी स्वानुभवसंदर्भों वस्तु का
अभिव्यक्ति के लिये सवनामादिका का
सुंदर प्रयोग इस छायावादी वक्रता
का कारण होता है।

छायावादीय जीवन है। परन्तु उन्मत्त। मुख्य प्रेरणा भावित है। जोर मातृमाय और साधुति है। उम हय वीनया माता । का वयाविक प्रयति की प्रति त्रिया भी कह गवा है। भारीय परपरागत छायावादीय का गयप्रतिभा का वामाया प्रतिरित परिस्थितिया म यह एक गतिप्रय प्रयति है। इसकी एक नवीन और स्वगत वाच्य गती का कुती है। छायावादी परिवर्तनशील गमजल्यवस्था और विचारजगत् म छायावादी भारतीय छायावादीय का जीनी परिस्थितिया के अनुगत स्थापना करता है। जिस प्रकार मध्ययुग का जीवन अतिवाचन म व्यक्त हुआ, उगी प्रकार छायावादी जीवन का अभिप्राय इस वाच्य म हो रही है। अंतर है ता। इसका हा कि जहाँ पूर्ववर्ती अतिवाच्य म जीवन व अतीति और व्यावहारिक पहलुमा को गीत स्थान दवर उनका उपेक्षा की गई थी, वहाँ छायावादी वाच्य प्राकृतिक सौंदर्य और गामयिक जीवन की परिस्थितिया स ही मुख्यतः अनुप्राणित है। इस दृष्टि स वह पूर्ववर्ती अतिवाच्य की प्रकृतिनिरेक्षता और सत्ता मिथ्या की सद्धातिव त्रियाओ का विरोध भी है। छायावादी मानव जीवन, सौंदर्य और प्रकृति की आत्मा का अभिन स्वरूप मानता है। उम अव्यक्त की वेदी पर वलिमान नहीं कर देता। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मध्य कालीन वाच्य की सीमा मे मानवचरित्र और दृश्य जगत् अपने प्रकृति रूप मे उपक्षित हो रहे, जब कि नवीन का य मे समस्त मानव अनुभूतियों की व्याप पता पूरा स्थान पा सची।

छायावाद काच्य मध्ययुग वाच्यपारा स प्रमुखत इस अर्थ मे विभिन्न है कि वह किसी क्रमागत सांप्रदायिकता या

मायावा परिपाटी का अनुगमन नहा करता। छायावादी काच्य का प्रतिष्ठान दारानाताम परम पवित्र माता हुआ करता है। व्ययगत मांमा रिष्ट पांनों और स्थितिया मादि स उन्मा मुख्य मर्थ नहीं होता। वह विनाय का मम का माप्रित है, वह विनाय का व्यक्त द्रव्य तथा उन्मा पंगिमाया पर अविष्टित है, मध्य का मम छायावादी काच्य का विषय नहीं है। प्रत्यक्ष वस्तु का मानव जावन व गुण गुण, निराम, हाम मांमा की अवस्थामा स जा मर्थ है वह काच्य उन्मा उपेक्षा कर गया है। निनु छायावादी छायावादी काच्य उन्मा उपेक्षा नहीं करता। छायावादी परवरा दृश्य मांमा का विलासा कहकर पुष्ट रहता है अवयव उन व्यावहारिक बतावर मुट माड सता है। छायावादी काच्य म यह परवरा स्वावृत्त नहीं है। दय स पीडित और प्रताडित तथा भागवय स प्राप्त और परिवर्द्धित व्यक्ति समुत्तम देश राष्ट्र या सृष्टिजन्म के विभेदा म छायावादी तमवाद नहीं जा सका। समय और समाज की मादासित करनेवाला शक्तिवा का मांमलन उत्तम कम ही है। वह ता उस शाश्वत सत्ता स हा सवया सपूत है जिसम परिवर्तन का ही नाम नहीं। उस सत्ता का स्वरूप सगुण है या निर्गुण विश्वमय है या विरवातात ये प्रश्न भी उस छायावादी मे पाते हैं। छायावाद की कायसारणी इन छायावादी सीमानिर्देशा स मावद्ध नहीं है। वह भावना के क्षत्र मे किसी प्रकार का प्रतिबन्ध स्वाकार नही करता।

छायावादी छायावाद काच्य किसी क्रमागत छायावादीय की लवर नहीं चलता। न चीन जावन उगति मे ही उसने आम

सौंदर्य का भवन देवी है, परंपरित
अध्यात्म प्रायः पुरुष सः प्रवृत्ति की
ओर प्रवर्तित होता है। एक चेतन
केंद्र से नाना चेतना केंद्रों की सृष्टि
करता है। किंतु छायावादी का यह
प्रवृत्ति की चेतना सत्ता में अनुप्राणित
होकर पुरुष दृश्य से भाव की ओर
होती है या आत्मा के अभिष्टान में
परिणत होती है। उसकी गति प्रवृत्ति
सः पुरुष की ओर होती है और इस
वाशानिक अनुभूति व अनुकूल काव्य
वस्तु का चयन करने में छायावादी
कविता ने प्रवृत्ति के अपार चैन से
यथच्छ सामग्री ग्रहण की है।

—नन्ददुलारे वाजपेयी
कविता के क्षेत्र में पौराणिक युग की किसी
घटना अथवा देश विदेश की सुदरी
के बाह्य वर्णन से भिन्न जब वेदना के
आधार पर स्वानुभूतियाँ की अभिव्यक्ति
होने लगी तब हिंदी में उस
छायावाद का नाम सः अभिहित किया
गया। रीतिवासान प्रचलित परंपरा
सः जिसमें बाह्य वर्णन की प्रधानता थी,
इन युग की कविताओं में भिन्न प्रकार
के भाषा का अर्थ ढग से अभिव्यक्ति
हुई। यः नवान भाव आंतरिक स्पर्श
से पुलकित थे।

× × ×
बाह्य उपार्थ से दृष्टकर आंतर हस्तु का आर
कवि क्रम प्रवर्तित हुआ। इस नए प्रकार
की अभिव्यक्ति के लिये जिन शब्दों
की योजना हुई, हिंदी में पहले व
कम संभव आते थे किंतु शब्दों
में भिन्न प्रयोग में एक स्वतंत्र अर्थ
उत्पन्न करने की शक्ति है। समीप
के शब्द भी उस शब्दविशेष का
नवान अर्थ छांटने करने में सहायक
होते हैं। भाषा का निमास में शब्दों
का इस व्यवहार का बहुत बड़ा हाथ
होता है।

अभिव्यक्ति का यह निराशा ढग अपना स्वतंत्र
अस्तित्व रखता है। इसके लिये
प्राचीन ने कहा—

मुक्ताफलेषु छायायास्त्वरत्नत्वमिवातरा।
प्रतिभाति यदगणु तल्लावण्यमिहोच्यते।
मोती के भीतर छाया जमी तरलता होती है,
वसी ही कात तरलता अग में लावण्य
कही जाता है। इस लावण्य का सस्त्रुत
साहस्य में छाया ओर विचक्षिति
क द्वारा कुछ लोगों ने निरूपित किया
था। कुछ के वक्राक्तजावत में
कहा है—

प्रातभाप्रथमाद्भूतममय स्तत्र वक्रा
शब्दाभययोरस्त स्फुरतां वभाटयत।
शब्द ओर अर्थ का यह स्वाभाविक वक्रता
विचक्षित, छाया ओर कात का सृजन
करता है। इस वाच्य का सृजन
करना विदग्ध कवि का ही काम है।
वदग्ध भगी भाणुत' में शब्द का
वक्रता ओर अर्थ का वक्रता लाका
लाण्य रूप में अवस्थित होता है।
॥ शब्दाह वक्रता अभयवस्थ
च वक्रता लाकातोर्णन रूपेणा
वस्थानम् (—शिवन २०८)। कुछ के
मत में ऐसी भाणुत शास्त्रावप्रसद्ध
शब्दाभापनवद्ध व्यापकरी होता है।
यह रम्यछायावतस्पर्शी वक्रता वण स
लवर प्रवर्त तक में होता है। कुछ के
का शब्दों में यह उज्ज्वलछायावतशय
रमणीयता (१३३) वक्रता का
उद्भासिनी है—

परस्परस्य शोभाय बहुव पातेता ववचिद।
प्रकारा जायत्येता चित्रचक्षायामनहोराह।

—वक्राक्ति जावित
(२ उम्प, २४)

कभी कभी स्वानुभवसदनीय वस्तु का
अभिव्यक्ति का लिय सवनामादिका का
मुन्द प्रयोग इस छायामयी वक्रता
का कारण होता है।

कवि की वाणी में यह प्रतीयमान छाया युवता के लज्जाभूषण का तरह होती है। ध्यान रहे कि यह साधारण भलवार जो पहन लिया जाता है वह नहीं, किंतु यौवन के भीतर रमणा गुलम श्री का बहिन ही है घूँघर वाली लज्जा नहीं। सस्वृत साहित्य में यह प्रतीयमान छाया अपने लिये अभिव्यक्ति के अनन्त साधन उत्पन्न कर चुकी है, अभिनवगुप्त ने साधन में एक स्थान पर लिखा है—

परा दुलभा छाया आत्मरूपता याति ।

इस दुलभा छाया की सस्वृति का का योक्त्य काल में अधिव महत्व था। आवश्यकता इसमें शाब्दिक प्रयोग का भावी किंतु भातर अथवा, चरित्र को प्रकट करना भी इनका प्रधान लक्ष्य था। इस तरह की अभिव्यक्ति व उदाहरण सस्वृत में प्रचुर है। उद्दान उपाभा में भी भातर सारूप्य खोजन का प्रयत्न किया था।

प्राचीनो न भी प्रवृत्ति की चिरनि शब्दता का अनुभव किया था—

शुचिशीतनाभा द्रकाप्सुताशिवरनि शब्द मनोहरा विष ।

प्रशमस्य मनोभवस्य वा हृदि तस्याप्यथ ह्युता ययु ॥

इन अभिव्यक्तियों में जा छाया की स्निग्धता है, तरलता है, वह विविध है। अलंकार के भातर भाते पर भा य उनमें कुछ अधिक है। कदाचिद् ऐसे प्रयोगों के आधार पर जिन अलंकारों का निमाण होता है उन्ही के लिये आनन्दवर्धन ने कहा है—

तेजनारा परा छाया यान्ति ध्वन्यगता गता ।

(२—२६)

प्राचीन साहित्य में यह छायावाद अपना स्थान बना चुका है। हिन्दी में जब इस तरह के प्रयोग आरम्भ हुए तो कुछ

साधन चाहे सदा, परंतु निरोध करने पर भी अभिव्यक्ति के इस रूप को ग्रहण करना पड़ा। कदा न हागा किय अनुभूतिमय आत्मस्पर्शा काव्य जगत् क नित्य अत्यंत आवश्यक थे। पांडु या शत्रु का तरह यह सोचा समीक्षित भी न थी। शास्त्र में हटकर काव्य का पटुति अंतर की आरंभ की।

× × ×

छायावादी भारतीय दृष्टि अनुभूति और अभिव्यक्ति की भूमिका पर अधिक विचार करती हैं। ध्वन्यात्मकता लक्ष्य गिनता, सौन्दर्यमय प्रतीकविधान तथा उपचारवक्रता व माय स्वातन्त्र्य का विवृति छायावाद की विशेषता है। अपने भीतर के पाता न तरह भातर स्थिति करके भाव समर्पण करनेवाला अभिव्यक्ति छाया काव्यमय होती है।

—जयशंकर प्रसाद

× × ×

‘बहुत कुछ अक्षरवर्णा कर चुकने पर उ होने एक विशेष प्रकार का कविता का सृष्टि का है। अक्षरेण न एक शब्द है मिष्टिक या मिष्टिकल। पंडित मधुराप्रसाद मिश्र ने अपने प्रामाणिक बोध में उनका अर्थ लिखा है मूढार्थ, गुह्य, गोप्य और रहस्य। रवीन्द्रनाथ का इस नए ढंग का कविता भा उमा मिष्टिक शब्द व अर्थ का अंतर है। फिर आप लिखते हैं छायावाद से लोगों का क्या मतलब है, कुछ समझ में नहीं आता। शायद उनका मतलब था कि किसी कविता में भावा की छाया यदि कहीं प्रयत्न जाकर पड़े, तो उसे छायावादी कविता कहना चाहिए।’

मुख्य विचार जा कहते हैं ‘पर रवि गात्र की साधनशास्त्र कविता न हिन्दी के कुछ

मुक्क कविया ने दिमाग म कुछ ऐसी हरकत पंदा कर दी है कि वे भसमव को मभव कर दिखाने का चेष्टा म अपने भ्रम, ममय और शक्ति का 'यथ ही' प्रपञ्च कर रहे हैं। जो काम रवींद्र नाथ ने चालाम पंचाम वषों क खलत ग्रन्थान और ग्रन्थयन की वृषा स कर न्छिाया है उसम व स्कूल या बालजा म रहते हा रहते छायावादी कवि बनन लग गए है।'

छायावाद' और ममस्यापूर्ति म टिा कविता का बडी हाति पहुच रही रे। छायावाद की भार नवमुक्का का मुकाब है, और ये जहा कुछ मुनमुनान लग कि बट दो चार पद जोड़कर कवि जनन का साहस कर वठन है। इनका कविता का ग्रंथ समझना कुछ सरल नहीं है। पूज्य रवींद्रनाथ का अनुमरण करके हा यह प्रत्याकार हिंदी मे हा रहा है।

—मुक्ति विकर

(भाचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी)
मनुष्य का जीवन चक्र की तरह घूमता रहता है। स्वच्छंद घूमत घूमत थककर वह अपने लिए महल बघना का आशय्यार कर बालता है और फिर बघनो म ठबकर उनका ठाडन म अपनी सारी शक्ति लगा देता है। छायावाद् क ज म का मूल कारण भा मनुष्य क दूनी स्थभाव मे छिपा हुआ है। उनक ज म स प्रथम कविता के बघन सामा तक पहुच चुके थे और सृष्टि क बाह्यकार पर इतना आधक लिखा जा चुका था कि मनुष्य का हृदय अपना अभि यक्ति क लिये रो उठा। स्वच्छन् काव्य म चित्रित उन मानव अनुभूतिा की छाया उपयुक्त ही थी और मुझे तो आज भी उपयुक्त लगती है।

उन छायाचित्रा को बनाने क लिये और भी मुशन जितेरा की आरक्षयता हाता है, कारण, उन चित्रा का आधार छूत

या चर्मचर्दु मे देखन की वस्तु नहीं। यदि व मानवहृदय म द्विपी हुई एकता के आधार पर उनको मवेदना का रग चढाकर न बनाए जाय ता वे प्रेतछाया के समान लगन लगे इसम कुछ भा सदह नही है।

प्रवाण रखाभा के माय म बिखरी हुई बदलिया के कारण जम एर ही वस्तु मे आकाश के नीचे हितोरे सनवाली जलराशि म कही छाया और कही आलाव का आभास मिलन लगता है, उमा प्रनार हमारी एक् ही काव्यधारा अभि यक्ति का भिन्न शलिया क अनुसार भन वर्गी हा उठी है।

आज ता कवि यम के अक्षयवट और ररवारा क क पवृद्ध की छाया बहुत पाछे छोट आया है। परिचितना क कोलाहल म काय जब म मुकुट और तिलक स उतरकर मयवग क हृत्प का आतयि हुआ तब म आजतक बडी है और सत्य रहे तो क्ना होगा कि उस हृदय का माधारणता न काव क नना म बभव का चराचौब दूर कर दा है और विपान न कवि का धमगत सफाणताभा क प्रति सहिष्णु बना दिया।

छायावाद का कवि धर्म क भव्यात्म म अधिक् दशन स बाह्य का श्रुणा है जा मूल और अमूल विश्व की। मलाकर पूराता पाता है। बुद्धि क सूत्र भरवल पर कवि ने जावन का प्रपड्डा का भावन किया। हृदय की भावभूमि पर उनन प्रवृत्ति म बिखरा सौम्य सत्ता का रहस्यमय अनुभूति की और दोनो क साथ स्वानुभूत दुःखा का। मलाकर एक एसी काव्य सृष्टि उपस्थित कर दी जा प्रवृत्तिवाद, हृत्पवाद, भव्यात्मवाद्, रहस्यवाद, छायावाद आदि भनक् नामा का भार मभाज सक।

छायावाद ने मनुष्य क हृदय और प्रवृत्ति क

उस मगध में प्राण डाल दिए जो प्राचीन काल के विष प्रतिनिधि के रूप में चला आ रहा था और जिसके कारण मनुष्य को अपने दुःख में प्रवृत्ति उदास और मुक्त में पुलकित जान पड़ती थी। छायावाद की प्रवृत्ति घट रूप आदि में भरे जल की एकरूपता के समान अनवरत रूपों में प्रवृत्त एवं महा प्राण बन गई अतः अब मनुष्य के अश्रु, मध के जलकण और पृथ्वी के अश्व बिंदुमा का एक ही कारण एक ही मूल्य है।

—महादेवा वर्मा

(महादेवा का विवेचनात्मक गद्य)

मनुष्य में जब जब स्थूल का प्रभुता असह्य होती गई है, तभी सूक्ष्म में उससे विरुद्ध क्रांति की है। इस क्रांति और इस विद्रोह के अभिव्यक्ति रूप से जो गान मसार का आत्मा में उमड़ उठकर गाए, वे ही छायावाद का ज्विता के प्राण हैं। सारांश यह है कि स्थूल व प्रति सूक्ष्म का विद्रोह ही छायावाद का आधार है। स्थूल शब्द का अर्थ बड़ा व्यापक है, इसकी परिधि में सभी प्रकार के भाष्य रूप रस, रुचि आदि सम्मिलित हैं। और इसके प्रति विद्रोह का अर्थ है उपयोगितावाद के प्रति भावुकता का विद्रोह, नैतिक दृष्टि का प्रति मानसिक स्वातंत्र्य का विद्रोह और वाच्य व बर्णन के प्रति स्वच्छन्द रूपना और टेक्निक का विद्रोह।

—डा० नगेंद्र

मगध में परिभाषा तथा भी हिंदी में स्थावर नहीं की गई। उस वर्ग की बात तो मगध विचारगण्य है हा नहीं जिनमें छायावाद का विरोध किया। छायावाद के समर्थकों का दलीलें आ विरोध के आधार पर एक माया तक समय का आस्नान करता है। छायावाद के सब

में दो हिंदी आलाचकों की बातों पर विशेष रूप से ध्याना आकृष्ट होता है। एक है प० नन्दलाल वाजपेयी दूसरे डा० नगेंद्र।

प० नन्दलाल वाजपेयी छायावाद को नवीन और स्वतंत्र काव्यशैली मानते हैं। साथ ही उस भारतीय माध्यमिकता का नवीन परिस्थिति के अनुसंधान प्रतिष्ठित भी मानते हैं। जीवन का सामयिक परिस्थितियों से तथा प्राकृतिक सौन्दर्य से उसे अनुप्राणित ठहराते हैं एवं भावना के क्षेत्र में उसे स्वच्छन्द भा मानते हैं। छायावाद का गति प्रवृत्ति से गुप्त की आर दृश्य भाव से होता है, यह भा उनका मान्यता है।

डा० नगेंद्र स्थूल के प्रति सूक्ष्म के विद्रोह का छायावाद का आधार मानते हैं साथ ही उन उपयोगितावाद के प्रति भावुकता का नैतिक दृष्टि के प्रति मानसिक स्वतंत्रता का और वाच्य स्वच्छन्दता तथा रूपना टेक्निक का विद्रोह भी मानते हैं। इस परिभाषा का यदि हम ध्यान से देखें तो हम यह कहें पड़ता है कि वाजपेयीजी ने अनेक मायता काव्यविवेचन में रचना या अभिव्यक्ति का ही, सब कुछ मानकर स्थापित की है और डा० नगेंद्र ने परिचया आलाचना के दृष्ट साहित्यिक काल सिद्धांत के आधार पर बड़ा व्यापक रचना के बीच छायावाद का फिर कर लिया है। इन तर्कों का प्रस्तावों का बगीचा पर कसना ही अधिक उपयुक्त मुझे लगता है क्योंकि छायावाद का मय स्वरूप उसमें प्रकट है।

प्रस्तावों में व्यापारता, साक्ष्यता, मौखिकता प्रस्तावित तथा उपचार वक्रता के साथ स्वातंत्र्य की विवृता छाया का छायावाद का विवृता के

रूप में स्थावर किया है तथा इस पूर्ण रूप में भारतीय ठहराया है और यही तब कहा है कि प्राचीन साहित्य में छायावाद अपना स्थान बना चुका था।

‘रोमांटिक रिवाइवल’ की स्थिति में छायावाद की मानने तथा तदनुसार उसकी व्याख्या से उनका नाता नहीं है। वे उन अपने देश की वस्तु मानते हैं।

छायावाद के प्रवर्तक इस प्रगतिशायिनी न मानकर इस वाक्य की मूल्य और शाश्वत धारा व रूप में उपस्थित करते हैं, किन्तु प्रगाढ़नी भारत का मध्यकालीन कविता को विपथगामा धारित करते हैं। यह उस परंपरा का विरोध नहीं, संशय का जाग्रोद्वार के रूप में अभिन्न प्रयत्न मानते हैं। और यदि गभीरतापूर्वक देखा जाय तो स्पष्ट करना पड़ता है कि वाक्य का यह भाव नहीं, बल्कि पुराना है। अतः कहल इतना ही है कि भगवत् के स्थान पर या उत्तराय के स्थान पर अपने युग के अनुरूप उ होने काय की वक्त पढ़ना दिया है। इसलिये छायावाद को वाक्य का शही मानने में हिचक नहीं होना चाहिए। शुक्लनी ने इस शला माना है किन्तु इस रूप में नहीं। कहे वस्तु तक ही शही का सीमा नहीं है उसकी सीमा हृदय तक समझनी चाहिए।

छायावाद न तो नवज का प्राचीन के प्रति विद्रोह है न वह भारत की नई कविता प्रणाली है। वह नवीन और गुरातन का संगम है, व्यक्ति और आदर्श का समन्वय है, तथा है युग के अनुरूप भारतीय वाक्यप्रणाली का विकसित रूप। न तो उन भ्रमों की शका दी जा सकता न ही उबा देनेवाला प्रत्यक्ष मन गति से बहनेवाला वायु की। वह तो सहज, निमल और स्वाभाविक

रूप में प्रवाहित होनेवाला जेतना की स्वरछाया है।

छायावादी कवियों का अपने सामने समाज में महान् आदर्श दास पड़ा। कवि अपने और समाज व आदर्शों के बीच हो गया। उनका ‘मैं’ अधिर बल शाली प्रमाणित हुआ। वह दबाए न दबा और काव्य की यह भावधारा फूट पड़ी।

कवि का सारा गुण दुःख, उमकी आशा- निराशा इस कमजोर न प्रकृति का आधार बनकर प्रकट हुई। कवि ने हृदय के भावोन्मुखता का मन की आँखा से देखा और प्रकृति का प्रतीक बनाकर उस व्यक्त करने लगा। कवि और प्रकृति एकारण हो गए। दुःख से प्लावित कवि फूल पर पड़ी आस की बूद का अपना आँसु समझने लगा। प्रेमी मन कलिका की मुस्कान का अपनी मुस्कान मान बैठ। अतः प्रकृति का साक्षात्कृत्य उसने स्थापित किया और भारतीय प्रकृति का आसबन लेकर भाव व्यक्त करना आरम्भ किया। ‘मैं’ प्रधान होने हुए भी ‘मैं’ की छाया वाक्य में प्रधान हुई। इस छायावादी में प्रकृति तो चित्र की भाँति सामने आई पर कलाकार का मन भूक रहा, किन्तु शत शत भावसूचना में प्रचलन रूप से अभिव्यक्त भा हा उठा और ऐसी ही रचना छायावाद के नाम से सब धित की जाने लगी।

छायावाद की जितनी परिभाषा दी गई है, यदि उनका दर्शन किया जाय तो वे तथ्य छायावादी रचनाओं की विशेषता के रूप में दोष पड़ें—लाक्षणिकता, ध्वन्यात्मकता, स्तंभकविधान, लौकिक का श्लोचिक बनने का प्रयास, काल्पनिकता, प्रकृति प्रतीकों का चयन, यौवन शृंगार के दोनों रूपों का वृणन, प्रकृति पर आरोपित मलाभावों का

उस मगध में प्राण डाल दिए जो प्राचीन काल के विषय प्रतिष्ठित के रूप में चला आ रहा था और जिसके कारण मनुष्य को अपने दुःख में प्रवृत्ति उदास और सुख में पुलकित जान पड़ती थी। छायावाद की प्रवृत्ति घट कूप घादि में भरे जल की एकरूपता के समान धनक रूपों में प्रकट एक महा प्राण बन गई, अतः अब मनुष्य के अशु, मध व जलकण और पृथ्वा के आस विदुषा का एक ही कारण एक ही मूल्य है।

—महादेवा बना

(महादेवी का विधेयनात्मक गद्य)

मनुष्य में जब जब स्थूल का प्रभुता असह्य होती गई है तभी मूल्य में उसके विरुद्ध जाति की है। इस जाति और इस विद्रोह के अभिव्यक्ति रूप से जो गान सत्कार की आत्मा में उमड़ती होकर गाए, वही छायावाद की गतिता व प्राण है। सारांश यह है कि स्थूल व प्रति मूल्य का विद्रोह ही छायावाद का आधार है। स्थूल शब्द का अर्थ बड़ा व्यापक है, इसकी परिधि में सभी प्रकार के बाह्य रूप रंग रसि आदि सम्मिलित हैं। और इसका प्रति विद्रोह का अर्थ है उपयोगितावाद व प्रति भावुकता का विद्रोह, नैतिक रुढ़ियों व प्रति मानसिक स्वातंत्र्य का विद्रोह और वाक्य व अधना व प्रति स्वच्छन्दता और टक्कीर का विद्रोह।

—डॉ० नर्मद

गवमाय परिभाषा व भाषा में हिंदी में स्वाभाविक नहीं की गई। उस वक का बात तो गवमा विचारणाय है ही नहीं किमन छायावाद का विरोध किया। छायावाद व समय का दलील भा विरोध का आधार पर एक माना वह समय का आस्नान करता है। छायावाद के सर्व

में दो हिंदी आलावका की बातें पर विशेष रूप से ध्यानाकर्षक होता है। एक है प० नन्दलाले वाजपेयी दूसरे डा० नर्मद।

प० नन्दलाले वाजपेयी छायावाद को नवीन और स्वतन्त्र काव्यशैली मानते हैं। साथ ही उसे भारतीय भाष्यात्मिकता की नवीन परिस्थिति के अनुसंधान प्रतिष्ठित भी मानते हैं। जीवन की सामयिक परिस्थितियों से तथा प्राकृतिक सौन्दर्य से उस अनुप्राणित ठहराते हैं एक भावना के क्षेत्र में उसे स्वच्छन्द भी मानते हैं। छायावाद की गति प्रवृत्ति से पुरुष की ओर दृश्य भाव से होती है, वह भाव जनक मायता है।

डा० नर्मद स्थूल के प्रति मूल्य के विद्रोह को छायावाद का आधार मानते हैं साथ ही उस उपयोगितावाद के प्रति भावुकता का नैतिक रुढ़ियों व प्रति मानसिक स्वतन्त्रता का और वाक्य स्वच्छन्दता तथा कल्पना टक्कीर का विद्रोह भी मानते हैं। इन परिभाषाओं का यदि हम ध्यान से देखें तो हम यह कह सकते हैं कि वाजपेयी ने अन्तर्मायता, काव्यविवचन में रचना या अभिव्यक्ति का हा, सब कुछ मानकर स्थापित की है और डा० नर्मद ने पश्चिम की आलोचना व दृष्टि साहित्यिक बातें सिद्धों व आधार पर बड़ा व्यापक रमाया व वाक्य छायावाद की किताब लिखी है। इन तथ्यों का प्रमाणों की कमी पर हमने ही अधिक उपयुक्त बुझे लगता है क्योंकि छायावाद का गद्य स्वल्प उमम प्रकट है।

अन्तर्मायता न व्यापकता, साक्ष्यगता, मौन्यमय प्रतीतिवचन तथा उद्धार-वक्त्रा व साथ ध्यानुमति व निवृत्त छाया का छायावाद की विन्यास के

मानवीकरण, मधुर, कोमल, कात एवं बली ससृज तथा श्रजभाषा के मधुर तत्सम शब्दों का बाहुल्य, भात्म भावना का विश्व भावना के रूप में प्रकट करना तथा दर्शना ।

ये सत्र के सत्र तत्त्व प्रीति रूप में न सही श्रुत रूप में ये विद्यमान अवश्य थे । बहुत बड़ा दोषाराप प्रसादजी के विन्द यह हुआ और है कि उनके काव्य की सीमा बड़ी संकुचित है । यह धारणा भ्रात है । उनका समस्त काव्य छायावाद के अंतर्गत सीमित नहीं है । सत्ता उसा प्रकार उहाने कसल भात्मपरक भावनाओं की प्रकट करने के लिये यह शली नहीं अपनाई थी क्योंकि उहोन पुराण इतिहास एवं मानववृत्ति का चितना को तिलाजलि नहीं दी थी और न जीवन में कभी दा ।

प्रत्येक व्यक्ति और साहित्यकार का जीवन का दो पक्ष हुआ करता है—व्यय कनक और सामाजिक । जीवन के रूप में जहाँ व्यक्तिगत सुख दुःख राग द्वेष आशा अभिलाषा के लिये अमृत सृष्टि रचना का वह प्रयत्न करता है, वही सामाजिक प्रणाली के रूप में उन व्यक्ति का महत्त्व विशाल होता है और उसका कल्पना सन्निय रूप से सामाजिक सृष्टि के लिये होती है । सामाजिक दृष्टि से व्यक्ति की मर्यादा सीमा से आगे प्रसादजी का व्यक्ति नहीं बढ़ा है और जिनका अपना व्यक्तित्व नहीं होता, वे समाज का सेवा भा नहीं कर पाते ?

इस दृष्टि से यदि देखा जाय तो अपने दश का मन्ना बड़ी प्रणिमाल व्यक्तित्ववाद भा रहा है और समष्टि का चिन्तना । प्रसादजी अपने भा बुद्धि से और पराधीन भा व थे । जहाँन

साक चिन्तन का वात है, 'विश्व शृङ्खला' 'आदर्श युवक' आदि का चिन्ता अपने सृष्टि में प्रसादजी ने का ।

अतः ही बार्द यह मान कि प्रसादजी में नवोन्मेष समय कम है फिर भी छायावाद का पूरा प्रतिनिधित्व प्रसादजी ही, ऐसा की दृष्टि में भा करते हैं ।

छायावाद का बार्द वाद नहीं था क्योंकि उसमें बुद्धिविभ्रम या विलास नहीं अनुभूति का सत्य या जीवन का सत्य था । जीवन का सत्य और हृदय का सत्य बुद्धि में अधिक आश्रयजनक होता है ।

जहाँ तक छायावाद काव्य का प्रश्न है वहाँ छायावाद का केवल इस बात तक सीमित रखना चाहिए कि कविताओं में अनुभूति की प्रवृत्ति प्रताकमयी 'यक्ति-परवभाव' छाया की और जिनका कारण रुढ़िग्रस्त कविता से वर्तमान हिंदीकाव्य मुक्त हुआ, वहाँ व्यक्ति परक रचनाएँ छायावाद का नाम से पुकारा गये और प्रसादजी ही उसका प्रवर्तक हैं । छायावाद का सभा सन्नियुक्त गुण प्रसाद की यक्तिपरक एवं भाव प्रवण रचनाओं में जीवनपथ से स्थित मिलते हैं ।

छाया सा = ४०, १५ । १०० कु०, ८२ । १०० १०
[वि०] (हि०) १६५ १७० । प्र०, ४८ ।
छाया के समान ।

छाया सो = वि० ७१ ।
[वि०] (ब० भा०) छाया का समान ।

छाये = १०० २१५ ।
[वि०] (हि०) छाया हुआ आच्छादित ।

छाले = भा०, ११ । १००, ६० १८० २६८ ।
[स० १०] (हि०) फफोल ।

छालों = १०० कु० १२ ।
[म० १०] (हि०) कन्वल । छाल । वृक्ष त्वक ।

छायावत = वि०, ४२ ६१, ७२ ।
[क्रि०] (ब० भा०) छाया जाता है ।

छिछला = ऋ० ४२।

[वि०] (हि०) पतना, बम गहरा।

छिटक रहे = प्रे०, १२। ल०, ६।

[क्रि०] (हि०) बिखर रहे, छा रहे।

छिटकाय = ग्रा०, ६०।

[क्रि०] (हि०) बिखराय।

छिटका कर = ग्रा०, ८।

[पूर्व० क्रि०] (हि०) बिखर कर, छिनरा कर।

छिटकी = चि०, १६४।

[क्रि०] (हि०) बिखरा। छिनराई।

छिडक = वा० कु० १२४। भ० ७०।

[क्रि०] (हि०) पानी की सूँ त्रिखर कर।

छिडकना = वा० कु०, ६३। ल०, २३ ४१।

[क्रि०] (हि०) हथ उभर फटना। बिखरना।

छिटकेगा = का०, १५२।

[क्रि०] (हि०) छिटकना क्रिया का भविष्यत् रूप।

छिडना = ग्रा० २६।

[क्रि०] (हि०) आरभ होना, शुरू होना।

छितित = चि० १६३।

[म० पु०] [प्र० भा०] '० क्षितिज'।

छिद्र = वा० २२६।

[म० पु०] (म०) छद्म बिल। दाप।

छियो = चि०, १८८।

[क्रि०] (प्र० भा०) डेना हुआ।

छिन = म० २२। ल०, ६६।

[म० पु०] (हि०) क्षण।

छिना हुआ = ऋ०, ३१।

[क्रि०] (हि०) बलात् लिया हुआ। छाना हुआ।

छिन = वा०, १८५, ११२। भ० ३०।

[वि०] (म०) चि०, ६०।

नटा हुआ। सञ्चित।

छिन्न पत्र = वा० कु० ५१।

[म० पु०] (म०) पत्रा से हान। फटा हुआ।

छिन्न पात्र = ल० १७।

[वि० पु०] (म०) टूटा बतन।

छिन्नभिन्न = वा०, १६८।

[वि० पु०] (म०) कटा हुआ। टूटा फूटा। तिनर बितर।

छिप के = ग्रा० २६, ४२। वा० कु०, १०।

[पूर्व० क्रि०] (हि०) ल०, २६, १४६ १५६ १६६ १७८, १८६, २८४, २६३। म०, १४। ल०, ३८, ४६।

छाँवा का छाट म हाकर। न दिगाई देकर। चुक कर।

छिपकर = ल० ७६।

[पूर्व० क्रि०] (हि०) '० छिप के'।

छिपत ही = चि० ७०।

[क्रि०] (प्र० भा०) छिपते ही।

छिपती = वा०, ६७।

[वि० ग्रा०] (हि०) छपने या छाट म करती हुई।

छिपना = वा० कु०, २४। चि०, २८, १६६।

[क्रि०] (हि०) ऋ० ६४। ल०, १ १६ ल०, १८, ७४।

छोट म छाना। छाँवा की छाट म होना।

छिपा = वा०, ८१, ८६ १७७ १८६।

[क्रि०] (हि०) छिप गया।

छिपाना = ग्रा० १६, ६०। वा०, ५३। चि०

[क्रि० म०] (हि०) १५८, १६३ १७७, १८६। भ० ६। ल० ७०।

छाँवा से आभर करना। प्रबट न करना। गुप्त रखना।

छिपावत = चि०, ७०।

[क्रि०] (प्र० भा०) छिपाता है।

छिपि = चि० १८६।

[पूर्व० क्रि०] (प्र० भा०) छिपकर।

छिपे = ल० ६१।

[क्रि०] (हि०) अदृश्य हुए।

छिपो = वा० कु०, ६ १२४। का०, ६, १६,

[क्रि०] (हि०) १८०। चि० २६।

छिप गई। लुप्त गई।

[छिपोगी कैसे—कामना म शिवायिका का समवत मान। प्रसाद सपान' म पृष्ठ ७६ पर

सकलित । मिथुरी धलनें पण्ड लेनी हैं,
प्रेम का श्राव रीध छियायोमी ? भाग्ये
रहस्य प्रबट कर देगा । कपान राग
स रक्त के समान माल है । यह
विनास लोला भाग्ये प्रबट कर देगा ।]

छिप्यो = चि० १३ ।

[चि०] (प्र० भा०) छिप गए ।

छिरफि = चि०, २३ ।

[पुन० क्रि०] (प्र० भा०) छिड़ककर ।

छिल छिलनर = भा०, ११ ।

[पुन० क्रि०] (हि०) रगड़ खा खा कर ।

छिले = का० पु०, १२ ।

[क्रि०] (हि०) छिन गए ।

छोट = का०, ३० ।

[स० खी०] (हि०) महीन बूद । जल बरस । रगीन बल
बूदेदार कपडा ।

छोनकर = ल०, ५३ ।

[पुन० क्रि०] (हि०) जयदस्ती ले कर । काटकर । अप
हरण कर ।

छीन = का०, ६६ २२० । चि०, १५ ।

[चि० पु०] (हि०) दुपला पतला, सूक्ष्म । लघुशील, घटा
हुआ । जिसमे छोणता का भाव हो ।

छीनना = भा०, ७६ । चि० १५६ ।

[क्रि०] (हि०) हरण कर लेना ।

छीना = का० १६२, १७० ।

[क्रि०] (हि०) हरण कर लिया ।

छीनी = का०, १६६ । प्रे० ६६ ।

[चि०] (हि०) अपहरण कर ली गई ।

छीर = चि०, १७६ ।

[स० पु०] (हि०) दूध । द्रव या तरल पदार्थ । जल, पानी ।
पडा का रस या दूध । खीर ।

छुआ = का० २२७ ।

[क्रि०] (हि०) स्पर्श किया ।

छुई मुई = का० १११ ।

[स० खी०] (हि०) एक छोटा पीप । लजापुर । अनबुया ।
लाजवती ।

छुट = भा०, १५ । का०, २४८ । २८७ ।
[प्रत्यय] (हि०) श्रुतिरिक्त सिगम ।

छुटारा = म० २३ ।

[म० पु०] (हि०) श्रुति रिक्तार्थ, निस्तार । किसी काय
यं मुक्ति ।

छुटि जात = चि०, १३ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) छूट जाता है ।

छुटि है = चि०, ६० ।

[क्रि०] (प्र० भा०) छूट जाएगा ।

छुटी = म० ८ ।

[क्रि०] (हि०) छूट गई ।

छुटे = का०, ३२ । का०, १६३ । ल०, ७८ ।

[क्रि०] (हि०) छूट गए ।

छुटो = का० १६६ । म० १७ ।

[स० खी०] (हि०) छुटने या छड़े जाने की क्रिया ।
छुटकारा कार्योंपरांत मिलनेवाला
भवकाश । फुमठ, नियमित रूप में
काय बंद रहने का काम ।

छुगो = चि० ६ ५८ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) छुट गए ।

छुडावन = चि०, ६५, १५८ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) छुड़ाने क लिये ।

छुड़ाये = भा०, ३७ ।

[क्रि० स०] (हि०) छुड़ा दिए ।

छू = भा० ७२ । म०, २१ । प्रे० ३ ११ ।

[पुन० क्रि०] (हि०) फूक कर । स्पश करक ।

छुओ मत = का० २७१ ।

[क्रि०] (हि०) स्पश मत करो ।

छूकर = भा० २६ ७१ । ल०, ५६ ।

[पु० क्रि०] (हि०) सूना क्रिया का पूर्वकालिक रूप । स्पश
करके ।

छूछा = भा०, ३२ ।

[चि० पु०] (हि०) रिक्त खाली ।

छूट = का० ७० १७७ २०० २३६, २५६,

[स० खी०] (हि०) छुटने की क्रिया या भाव । असात्वधानी
के कारण कार्य के किसी धम पर
ध्यान न जाने की अवस्था । वह
अनुमति जो किसी को निज या कोई

काय करने अथवा न करने के लिये मिल ।

छूटस = बि०, ३ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) छूट जाता है ।

छूटता = आ०, ३७ ।

[क्रि०] (हि०) मुक्त हो जाता ।

छूटती = का०, ६२ ।

[क्रि०] (हि०) मुक्त होती या छूटती है ।

छूते = का०, १२६ ।

[क्रि०] (हि०) स्पष्ट करते ।

छूती है = प्रे० १ ।

[क्रि०] (हि०) आनिमन करती है । स्पष्ट करती है ।

छूने में = का० ६८ २५७ ।

[स० पु०] (हि०) स्पष्ट करने में ।

छेड़ना = म० २१ ।

[क्रि० स०] (हि०) तग करना, बिराया का चिन्नाना, मजाक करना, चुन्का लेना । काड़ काम या बात आरम्भ करना ।

छेड़ो = का०, १६३ ।

[क्रि०] (हि०) परागमन करो । तग करा ।

छू लेती = का०, २६३ ।

[क्रि०] (हि०) स्पष्ट कर लेती ।

छुरा = ल०, ७३ ।

[स० पु०] (हि०) बड़ी छुरा, उस्तरा ।

छेड़छाड़ = का०, कु०, १०० ।

[स० पु०] (हि०) अनायाम छेड़ना ।

छेम = बि०, १७३ ।

[स० पु०] (हि०) कुशल ।

छोटा = म०, ५ ।

[स० पु०] (हि०) निमन छाटापन हा । नाटे कड़वाला ।

छोटा सा = का०, २१६, २८४ । म०, ३ ४ ।

[वि० पु०] (हि०) छाटन या नुत्ता का भाव का सूचक ।

छोटी छोटी = का०, २६० । ल०, १६ ।

[वि०] (हि०) नहा न ही ।

छोटी सी = आ०, ७२ । का०, १७८, १७५ । बि०

[वि० मी०] (हि०) ७१ । म०, ५५ । ल०, ४० । म० ४ ।

साधारणता या लघुता का सूचक ।

छोटे छोटे = प्रे० ११, २४ ।

[वि०] (हि०) नहें नह, तुच्छ, हीन ।

छोटे बड़े = का० कु०, ६ ।

[वि० पु०] (हि०) साधारण और बड़े ।

छोड़ = आ० ३१ । का० १४ २८ । का०

[वि० पु०] (हि०) कु०, ६३, ८३ । प्रे० ६ १२, १५ ।

ल० १० १० ४४ ६६ ७३ ।

छाटन का भाव । विलग होना ।

छोड़ = का० १५४, १५८ २४८ ।

[अ०] (हि०) अतिरिक्त । सिवाय ।

छोड़ि = बि०, ५३ १५६, १७८ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) = छाडकर । त्याग कर ।

छोड़ी = का० २४१ । म० १३ ।

[क्रि०] (हि०) त्याग दिया ।

छोड़ें = का०, २३८ ।

[क्रि०] (हि०) छाड़ दू ।

छाड़े = का०, २१० ।

[क्रि०] (हि०) छाड़ दिए ।

छोड़ो = का०, १३३ २२८ । प्र० २१ ।

[क्रि०] (हि०) मुक्त करा । छाड़ दा ।

छोर = आ०, ८ । का० कु०, ८, १२ । बि०,

[स० पु०] (हि०) १६३ म० ८४ ।

किनारा कार ।

छोह = बि०, १७१ ।

[स० मी०] (हि०) माह, अनुराग । ममता । प्रेम ।

ज

जग = का १७७ बि० ५४ ।

[स० मी०] (का०) मुद । घुरा आ लहे के पाया म लग जाता है ।

जगल = म० ३२ ।

[स० पु०] (हि०) वह स्थान जहाँ बहुत दूर तक अपने आप उगनेवाले पद हा, वन वानन ।

जजीरों = आ २१ ।

[स० मी०] (का०) कटिया का लडा । बडा । सिक्की । निवाट भी कुडा ।

जतु = का, ६ । का०, १४२, १८५ । बि०,

[स० पु०] (स०) जम लेनेवाला जाव, प्राणा । पशु,

जानवर ।

जय द्वीप = चि०, ६६।

[सं० पु०] (मं०) पुराणापुराण सात द्वीपों में म एक द्वीप जिनमें भारतवर्ष है।

जऊ = चि०, १८४।

[प्र०] (प्र० भा०) जा भी, यदि, अगर।

जकडना = का०, १३ १४। ल०, १०, ७३।

[त्रि० म०] (हि०) २१३।

आलिंगन में आबद्ध करना। गीतों में भुजपास में बंधना।

जग = घा० १६ २४। का०, १५७ २३५

[सं० पु०] (मं०) २४२ २८९ २९० चि० ३१ ४८ १०६। प्र० २५। ल० २६, ३५ ४५।

ससार, विश्व चर, चलनेवाला।

[जग की सजल कालिमा रजनी में—'जागरण २२ अगस्त, १९३२ में सवप्रथम प्रकाशित और लहर में पृष्ठ २६ पर सजलित यह पत्तियां का गीत। समार की सजल वाली रात में तुम अपना मुखचंद्र दिखा दो और हृदय की अंधरा भोला में प्रकाश का भील देने तुम आओ। प्राणी की मानुल पुराण पर तुम एक मीड ठहराओ और प्रेमबधु का स्वरलहर में जावन का सगात सुना आओ। आलिंगन की स्नहलताओं से एक भुरमुट बन जान दो ताकि यह जला जगत् वृद्धावन की भाति सरस बन जाए। यह थात प्रसाद के मगीतज्ञान का भा आख्याता है।]

जगजनक = प्रे० २३।

[सं० पु०] (सं०) ससार का पिता। प्रक सवालक।

जगत = घा०, ६१। व०, ३२। का० कु०

[सं० पु०] (मं०) ६५। का०, ३४, ३७, ४० ४५ ५३ ६२, ६३ ११८। १२२ २४६, २४२ २८४ २८०। चि० १०२। ऋ ६३। प्रे० १४ १४ १७ २३ ल० १२, १३, २६। २० जग'।

जगतगति = म०, २।

[सं० खी०] (मं०) समार का गीत, समार का गति, चाल।

जगतनीरवता = का० कु०, ७४।

[सं० खी०] (मं०) समार की शांति। जान यातावरण।

जगत माहि = चि०, ७७।

[सं० पु०] (हि०) समार में।

जग भगल = का० २२५ २८१।

[सं० पु०] (मं०) ससार का शुभ। ससार में शुभ वाय।

जगत रगशाला = का० कु०, १२५।

[सं० पु०] (मं०) जगतहृदय नाट्यगृह समारहृदय नाट्य मल्ल का स्थान।

जगत सुप्र = का० कु०, ३१।

[सं० पु०] (मं०) सामारिक मुग्ध सामारिक विलास।

जगता = का०, २३५।

[कि० प्र०] (हि०) जाग उठना, प्रबुद्ध होना मचल होना क्रियाशाल होना।

जगती = घा० ४३ ६३ ७४। का० कु०,

[सं० खी०] (सं०) ६६। का० ३० ३६ ६५ १७३ १०४, ११४ १२०, १२६ १२८ १२६ १५७ १७५ १७६ १७६, २६२ २८० २८१। ल० ३० ३२ ३८।

पृथ्वा, वसुधा तल धरातल। जगना क्रिया का वर्तमानकालिक रूप।

[जगती की मंगलमयी उपा धन—मूलगम कुटा विहार, सारनाथ के समाराह में गाय गया मंगलावरण गमा' में वप २, तरंग २ सं० ५, १४ फरवरी १९३२ में सवप्रथम प्रकाशित और लहर' में पृष्ठ ३२-३३ में सजलित। ऋषि पत्तन, सारनाथ से बुद्ध ने अपना धर्म प्रचार प्रारंभ किया और उनकी वाणी में समार का भयसकुल रजनी बीत गई और विश्व का व्याकुलता समाप्त हो गई। सवत्र शांति छा गई, निष्ठुरता समाप्त हो गई। उ होन दया और बख्खा का सृष्टि बसाई था। गीतम तप का तरण प्रतिमा में और

प्रता का सोपा भा उनम मोहित था। व
इम व्ययित विश्व का मजीव चेना
ये। जब उहान इम भूमि पर धमचक्र
प्रवतन बिया ता उय लन का पुण्य
स्मृति सजोए बरा धव धारण कि
हूए है। मघ री यह मयन ज मभूमि
युग युग का नव भानवता और वमुग
का विभुता का मदग दता बाइ है और
उस धामप्रण भा। धाज वह मदग
हम भूल गए ह जिनस धर्म प्रवर्तित
हूया था। ४० 'लटर'।

जगतीतल = का० कु०, २८।

[स० पु०] (स०) पृथ्वी का घरातन।

जगत्ते = का०, १७ १००, १७८ २७०।

[वि० पु०] (हि०) सवायन, जगना क्रिया का एक रूप
व्यक्ति को पुकारने व लिय उद्वाचन।

जगत्पिता = का०, २६।

[म० पु०] (हि०) समार व पिता विश्व व रक्षयिता या
उत्पन्न करनेवाले। भगवान् ईश्वर।

जगद्ध्र = का०, ६२।

[स० पु०] (म०) सामारिक दुविधा, अनिश्चिन, भ्रात
सिद्धात।

जगदूषधु = का० २६।

[म० पु०] (स०) विश्व का भाद। समार का मरुत्त
या सहायक ईश्वर।

जगन्नीश = का० ३०।

[म० पु०] (स०) समार का स्वामी—विष्णु शबर
भगवान्।

जगना = का०, ११। का०, ३७। का०, २६।

[त्रि०] (हि०) काय करने योग्य चेतना प्राप्त करना।
तमार होना, कटिबद्ध होना।

जगन्नाथ = का० कु० ६१।

[म० पु०] (स०) समार का स्वामी भगवान्।

जगन्तियता = का० २०।

[स० पु०] (स०) समार का नियंत्रण करनेवाला, विश्व
का संचालक।

जगवधु = चि०, १५४।

[स० पु०] (म०) २० 'जगद्वधु'।

जगभर = प्रे०, १७।

[म० पु०] (म०) समार का भरण करनेवाला विश्व का
पायक। विष्णु।

जगमगात = चि० ६१।

[क्रि०] (हि०) प्रसारित होता है, दमकता है।

जगह = का० कु०, ७१, म० ४।

[म० श्री०] (का०) स्थान, स्थल। मौका, अवसर। पद,
घाहण।

जगाना = का०, २०, ३६।

[त्रि०] (हि०) संचन करना। काय करने के योग्य
शक्ति प्रदान करना।

जगि = चि० ४३।

[प्रब० त्रि०] (हि०) जगवर, मान व वाद उठकर, मचेत
होकर।

जगो = का०, २। ३५, १२५।

[त्रि०] (हि०) जग गई, मचेत हो गई।

जगे = का०, २३०। चि० ४५।

[त्रि०] (हि०) मचेत हुए, साकर उठ बैठत हुए।

जटा = का० कु०, २७, १०५।

[म० श्री०] (स०) सट व रूप में गुंन हुए मिर के बड़े बड़े
बाल। बुद्धा का जड़ के पतले पतले
मुंन। जूट, पटमन।

जटा सी = का०, १४।

[वि०] (हि०) जटा के समान। उनझी हुई, झटपट,
दुल्ह।

जटित = चि०, २४ ७४।

[वि०] (स०) जटा हुआ।

जटिल = का० १४।

[वि०] (म०) कठन दुल्ह। असाधारण, उलभनपूर्ण।

जटिलताश्री = का०, ५०।

[म० श्री०] (हि०) कठिनाइया, उलभनें, दुल्हता।

जड = का० कु०, ५३। का०, ३, ५६, १४५,

[म० श्री०] (म०) १५७, १६३, १६७, २६४। ल०,
४६।

अचतन, अछाहीन। मूर्ख। बुद्ध की
जमान व नीचवाला भाग, सार। नीच,
बुनियाद।

जड़ चेतनता = का०, ७७।

[सं० स्त्री०] (सं०) निष्क्रिय चेतनता, शांति, अगति वा गुरुत्व।

जड़ता = धा०, २५। का०, ४६, १५१, १६४, १७१, १८३, २४१।

[सं० स्त्री०] (सं०) जड़ का भाव, मूर्खता। अचेतनता। साहित्य के एक सवारी भाव। स्वयंता की छाप। अगति।

जड़ाग्र = बि० ४६।

[महा पु०] (हि०) जड़ने की क्रिया का भाव। जड़ाक का काम।

जतन ते = बि०, १।

[सं० पु०] (श्र० भा०) उपाय करने से। प्रयत्नपूर्वक। यत्न से।

जतन सों = बि० ७०।

[सं० पु०] (श्र० भा०) 'जतन म'।

जन = बि०, २२ ६६ १०६।

[सं० पु०] (सं०) लोक। लोग। प्रजा। अनुयायी। अनुचर। समूह। सात ऊँचगोको के पाचवीं लोक।

जनक = प्रे०, ८।

[मं० पु०] (मं०) ज मदाता। पिता। सीता जा क पिता।

[जनक—विदेह राजा। मिथिला के संस्थापक। पटरानी सुमति द्वारा सतान न उत्पन्न होने पर पुत्रकामेष्टियज्ञ द्वारा दो पुत्र तथा सीता की प्राप्ति। इन्होंने सीता को पुत्री रूप में पाला था और स्वयंवर कर राम से उह-याहा। राजपि के रूप में प्रतिष्ठित।]

जनकलसी = का० कु०, ६६।

[मं० स्त्री०] (हि०) सीता। जानकी।

जनरसुता = का० कु०, ६६ ६७।

[सं० स्त्री०] (सं०) जानरा।

जनता = का० १८१ १८५, १८८।

[सं० स्त्री०] (मं०) जन का भाव। जनसमूह। विमा दश या स्थान के बहुत से निवासी।

जननी = का० कु०, ६०। का०, २८ १४३,

[मं० स्त्री०] (मं०) २४३, २६४। बि०, १५४। प्रे०, १४। मं०, ६।

माँ, माता। पदा करनेवाला।

जननी भूमि = मं० १५।

[मं० स्त्री०] (मं०) जन्मभूमि, पदा होने का स्थान। मातृभूमि।

जनपद = का० ६। प्रे० १४।

[सं० पु०] (सं०) बसा हुआ स्थान, वस्ती भावादी। नगर।

जनपदकल्याणी = का० २३६।

[मं० स्त्री०] (सं०) सबका मंगल करनेवाली।

जनपद परस तिरस्कृत = धा० ७८।

[मं० पु०] (हि०) जनपद के निवासियों द्वारा दूषित उनके द्वारा उपलक्षणीय। जनपद से निर्वासित।

जनप्राण = का० २००।

[सं० पु०] (मं०) मनुष्यों के प्राण, जनताविशेष के मानमिक भाव।

जनमन = बि०, १६१।

[मं० पु०] (मं०) जनता का मन। लोक की आन्तरिक भावना।

जनरजनकरी = धा०, ५८।

[बि० स्त्री०] (हि०) जनो का प्रसन्न करनेवाला।

जनरथ = प्रे० ७।

[मं० पु०] (सं०) जनता की यात्राज। कोलाहल।

जनसंहार = का० २०१।

[मं० पु०] (सं०) नरहत्या जनसमूह का हत्या करना।

जनस्रोत = प्रे०, ४ ७।

[सं० पु०] (सं०) उमड़ी भाड़ जन का उद्गम स्थल।

जनस्रोत सा = प्रे०, ७।

[बि०] (हि०) जन के प्राप्ति उद्गम स्थल के समान।

जनहीन = बि०, ५१।

[बि०] (हि०) एरात जहा नाई न रहता हो।

जनाकीर्ण = का० १६०।

[मि० पु०] (सं०) मनुष्य सब भरा हुआ। अधिक भावादा वाला स्थल।

जनात है = बि० २६।

[बि०] (श्र० भा०) जात होता है, मातृम परता है।

जनि = बि०, १७४, १८४।

[स० पु०] (म) उत्पत्ति, जन्म। नारी। माता। पत्नी।
(घ०) नही, न, मत।

जनिस्त = का० २६७।

[वि०] (स०) जनमा दृष्टा, उत्पन्न। किसी के कारण उत्पन्न।

जनु = बि०, ४०, ४७।

[क्रि० वि०] (हि०) मानो, उत्प्रेक्षावाचक।

जन्म = का०, कु०, ६४ का० ७३, ८६।

[स० पु०] (घ०) बि० ६६। अ० ६८।
गम से निवृत्तकर जीवन धारण करना, उत्पत्ति, पदावस्था, अस्तित्व में आना। आदिभाव। जीवन भर। जिदगी, आयु।

जन्म जन्म = आ०, ७४।

[घ०] (म०) अनेक जन्मों में, प्रत्येक जन्म में। बार बार जन्म लेना या उत्पन्न होने का भाव।

जन्मदाता = का०, ११।

[स० पु०] (स०) जनक, पिता। कारण। स्वल्प।

जन्मभू = प्रे०, ७।

[स० स्त्री०] (स०) जन्मभूमि। मातृभूमि। पदा होने का स्थान।

जन्मभूमि = का०, ६। का० कु०, ६०। प्रे०, ७।

[स० स्त्री०] (स०) १४। ल०, ३३।

दे० 'जन्मभू'।

जन्म सगिति = का०, ६२।

[स० स्त्री०] (स०) जावनसहचरी। आजावन साथ देने वाली। सहपत्नी। पत्नी।

जन्मातर = का० ६८। का० कु०, ७३।

[स० पु०] (स०) जनक जन्मा में। दूसरे जन्मों में।

जन्मातरस्मृति = का० कु०, ७३।

[स० स्त्री०] (स०) पूर्व जन्मों की घटनाओं का याद या स्मृति।

जपत = बि०, १७६।

[क्रि०] किसी व्यक्ति या किसी नाम ध्येया (ध० भा०) किसी वाक्य का निरंतर स्मरण करता हुआ।

जपना = का० ११४। का०, ६४।

[क्रि० स०] (हि०) जप करना, कुछ देर तक किसी का निरंतर स्मरण करना। अनुचित रीति से किसी का कुछ ले लेना।

जव = आ०, ३०, ३१, ३७। का०, ८, १०,

[क्रि० वि०] (हि०) ११, १३, १८, २८, २८। का०, ३८, ४४, ४६, ४१, ६३, ७, ८६, ६८, १४१, १४३, १४४ १४०, १४१, १४२, १४७, १४८, १६१, १६२, १६५, १७८, १८६, २१६, २२०, २२३, २३०, २४५, २७६। प्रे०, ६, १५, १७, २४। म०, ३, ११, २०, २४। ल०, १७, २७, ३७।

जिस समय। अपेक्षणीय काल का सूचक।

[जब नील निशा अचल मे—६० 'ज्वाला' और 'आतु'।]

[जन्म प्रीति नहीं मन में कुछ भी—'प्रसाद मगीन' में पृष्ठ चार पर संकलित मुरमा का 'राज्यधी' में विकटपाद के समुच्च उपात्म गान। जब तुम्हारे मन में रज को भी प्रेम नहीं तो बात क्या बना रहे हो। जब विश्राम की पुरानी रीति ही जाती रही तो फिर नाटक क्या इस मुक्तका रहें हैं। तुम्हारा मुख देखकर जा मुख हुआ था उमरे लिये सभा दुख मात ले लिया था। हमने तो तुम्हें सबसब दान कर लिया था और अब तुम दान देने की भी तरफा रहें हैं।]

जवहि = बि०, ६५ ७२ १५६।

[क्रि० वि०] (ब० भा०) जिस समय।

जवे = बि०, ४४, १४६।

[क्रि० वि०] (ब० भा०) जब। जिस समय।

जभी = का० कु०, ३१ ६८, १०५।

[क्रि० वि०] (हि०) जब हा। जिस समय हो।

जयनाद = का०, ७।

[म० पु०] (स०) दे० 'जयघोष'।

जयमाला = आ० ६२। ल०, ४७।

[म० स्त्री०] (म०) विजय के उपसद्वय में दी गई माला या

जम जाए = का०, १७५।
[क्रि०] (हि०) जड जमा स। उग। प्रीत हो जाय।

जमती = का०, १४।
[क्रि०] (हि०) निश्चल होती है। सपन्न हाती है।
पूण होती है।

जम रहे = का० २६०।
[क्रि०] (हि०) प्रीत हो रहे। समान प्राप्त कर रहे।
स्थिर हो रहे।

जमायो = बि० १७७।
[क्रि०] (ब्र०भा०) सपन्न किया। स्थिर किया। जड
जमाया।

जमींदारी = प्र०, २१।
[स० पु०] (फा०) जमींदार की जमीन। जमींदार का पद।
जय = क० ३१। बि० ७४ ६१। म० ७।
[स० पु०] (स०) जात शत्रुओं की हार या पराभव।
विष्णु के एक पारिपद का नाम।

जयगान = का० ५७।
[स० पु०] (म०) जय के रूप में गाए गए गान या गाए
जानेवाले विजय गीत।

जयघोष = का० १०२। ल० १३।
[पु० पु०] (स०) जय जयकार का शब्द। विजय होने का
पश्चात् विजय की सूचना देनेवाली
ध्वनि।

[जय जयति कण्ठासिन्धु—जयया' का प्रायना
गात। वह चिता में कूटने के पटल
जगत्पति स प्रायना करता है और
करणासिन्धु दानवधु ताकल्लाम
भुवन अभिराम पतित पावन प्रणत
जन सुखधाम, धर्मस्वरूप के रूप में
उन्हें स्मरण कर जय जय करती है।
प्रसाद सनात पृष्ठ ५ प० मकलिन।]

जयति = का० पु० १। बि०, ६१।
[क्रि०] (स०) जय हो। जयघोष का घोषक शब्द।
जयति जय = बि० ६१ १५४।
[क्रि०] (स०) जय जयकार करने का प्राचान गीत।
जय हो जय।

जयतु = बि० ६५।
[क्रि०] (स०) विजयी होने का लिय आशीर्वादनक
शब्द।

स्वयम् के समय वर को पहनाई जाने
वाली माता।

जयलक्ष्मी सी = का०, २३।
[वि० श्री०] (हि०) विजयश्री का तरह प्रकृत जयलक्ष्मी
लक्ष्मी के सदृश हों पुन। उ०—उपा
मुनहले तार बरमता जय लक्ष्मी सो
उत्तिन हृष्ट।

[जयशरर प्रसाद'—'प्रमाण'।]

[जय हो उसकी—'तनमजय का नागयन का
गात। प्रमाण संगीत में पृष्ठ ७३ पर
मकलिन। प्रमाण के आधार की जय
हो जिसका आधार कवि ने निम्ना
कित न पालना है—यत् किया है—
पूणाभुभव करता है जो
'महामति' स निज सत्ता का,
तू मैं ही हूँ' इस चेतन का
प्रणव मन्त्र गुजार किया।]

जरठ = ल० ७०।
[वि० पु०] (म०) कठार। बुढ़ा। जीर्ण। पुराना।
जरतारी ओढनी = म० १३।
[म० श्री०] (हि०) मान घाँस के तारों के बल बनबूटो
द्वारा बनी चादर या कामदार बुढ़ा।
उ०—सितक गई मिर स जरतारी
ओढना।

जरा = क० ६। का० ५। प्र० ६। म०,
[म० श्री०] (म०) ४ १३।
बुढ़ाप। बृद्धावस्था।

जरादूनी = बि०, १६।
[क्रि०] (ब्र०भा०) जलाना सतप्त करना। जलन उत्पन्न
करना।

जराभरण = का १६६।
[म० पु०] (स०) बुढ़ाप और मृदु।
जराव = बि० १८२।
[क्रि०] (ब्र०भा०) जलाघो सतप्त करा।
[वि०] जटाक।

जरापत = बि० १६।
[क्रि०] (ब्र०भा०) जला रहा है।

जरि = बि० १६ १४६, १८२।
[प्रव० क्रि०] (ब्र०भा०) जलकर दुष्सा हासर।

जरियो = बि० १५।

[क्रि०] (ब्र०भा०) जलना, विरह जलन या सतप्त हुना।

जर्जर = का०, १७ १६६।

[वि० पु०] (म०) पुराना निबल, तुट्टा क्षीण, बिडबिडा।

जर्जरता = ल०, ३३।

[म० स्त्री०] (स०) पुरानापन, जीमना, बिडबिडापन।

जल = भा०, १०, २७, ३। का०, ८, १४।

[स० पु०] (म०) बा०, ३, ११, १५ २४, ५८ ११८, १६० १६२, १७६, १८०, २०७, २१६ २१६, २४४ २६८ २६०, २६२। बि० २ का० ५५, ५८। प्रे०, ४, १५ २४। म०, ४। ल० १३, ३० ६३।

पाना। जीवन।

[क्रि०] (हि०) जलना दिया या आतु।

जलकण = का० कु० ६६। बि० ११५।

[स० पु०] (म०) झरना में भर हुए जल क मूलमय कण।

जलकणभूषित = बि०, १४४।

[वि०] (स०) जलकणों से मुक्ताभिन।

जलकन = बा० २४२। ल०, २७।

[म० पु०] (हि०) १० 'जलकण'।

जलकर = बा० कु०, ७८। बा० १६ २०७।

[प्र० क्रि०] (हि०) कष्ट पाकर, मरना कुछ कष्ट पाकर।

जलजल = बा०, २४४।

[प्र० क्रि०] (हि०) कष्ट पाकर, मरना हाकर।

जलज = बा०, १७५ १७६।

[म० पु०] (स०) जो जल में उपज हो। कमल। शम्भू। मछली। जलजलु। माता।

जलजल = बि०, १४२ १८१। बा० २१७।

[स० पु०] (म०) कमल। जल में उत्पन्न होनेवाले पदार्थ।

जलजल पात = बि०, १८१।

[म० पु०] (हि०) कमल के पत्ते।

जल थल = भा० ४९।

[स० पु०] (हि०) पृथ्वी एवं जल।

जल = भा० ५१, ५५। बा० कु०, २६।

[वि०] (स०) बा०, १६ ८७, १५३, २२१, २६१।

बि०, २३, १६६। का०, ४०। ल०, ५६।

जल देवता।

[म० पु०] (ग०) बादल मेघ। वरुण, जो पितरों का जल देता है।

[जल आह्वान—'सम्भवी' वष १३ अक्ष ६, जून १६१२ में मयप्रथम प्रकाशित। काननकुसुम व पृष्ठ २६-२७ पर मकलिन। इस कविता का ऐतिहासिक महत्व इसलिय है कि प्रमादजा की केवल यही एक कविता आचार्य प० महावीरप्रसाद द्विवेदी के मपादनकाल में सरस्वती में प्रकाशित हुई। इतिवृत्तात्मक रूप से सारे कुछ दूर करने के लिये कवि ने बादल को आमन्त्रित किया है।]

जलदगभीर कठ = प्रे०, २३।

[वि०] (म०) बादल की भाँति गभीर घाप करने वाला कठ।

जल जल = का० कु०, १०१।

[म० पु०] (म०) मघ माना। बादलों का समूह।

(हि०) एक म घुन या घुन हुए जल से ढाढ़ा का समूह। किसी को पमास क लिए हानेवाला पदार्थ समूह। एक प्रकार की लाप।

जलद जल सा = बा० कु०, १२६। म०, ६।

[वि०] (म०) घनघोर बादल के समान भयावह। अस्पष्ट।

जलद पटल = बि० ४२।

[वि० पु०] (स०) बादल रूपी पर्दा।

जलद स्वर मद्र = ल०, १३।

[स० पु०] (स०) बादलों का गभीर घाप। गभीर गजन, बादल के समान गभीर ध्वनि।

जलदागम = बा० १२७।

[स० पु०] (स०) कपा ऋतु का आगमन या आरम्भ, आकाश में बादलों का घिरना।

जलधर = बा० कु०, ६६। बा०, १३, १६४,

[स० पु०] (म०) १७५, २२५, २५८।

बादल। मयूद।

[जलधर की माला—बवि 'रसात' का गीत जिसे 'एक घूंट' में प्रमत्तता ने गाया था। प्रसाद संगीत' में पृष्ठ १०४ पर सन्निहित। जीवन घाटों पर मेघ माला घुमड़ रही है। आशा लता घर घर बाँध रही है और हँहर कर कामना कुंज गिर रहे हैं और यह करुणा माला अचल में उपलभ्य रह रही है। जीवन किरण का आलीन से मन का अधि लापा द्वेष रही है। निष्ठुर मृत्यु सामने लड़ी है। धारतम अथवार है, अद्वय मन्त्रा हुआ है असफलता ही असफलता है और क्षणिक मुखा ने झुलसाने के लिये शाक मम ज्वाला प्रज्वलित है।

जलधर सम = का०, २३६।

[वि०] (सं०) बादल के समान।

जलधारा = का० कु० ६८। वि०, १५०।

[सं० ली०] (सं०) जल की धारा। जलप्रवाह।

जलधि = भा०, २२। का० कु०, ७५। का० ८,

[सं० पु०] (सं०) १६, २३, ४४ ५६ ८२ १६०।

वि०, ६५। अ०, १ १५, ४१ ५६।

समुद्र। सागर।

जलधि वेला = ल०, ५६।

[सं० पु०] (सं०) समुद्र का विनारा। समुद्र तट।

जलन = भा०, ६ ६०। का० कु०, २६। का०

[सं० ली०] (हि०) १८३, १६३। अ०, ७०, ८६।

ल०, ५१।

आंतरिक वेना। कष्ट। जलने या सपने का भाव।

जलना = भा०, १०, ३०, ४२, ४४ ६० ६१

[क्रि०] (हि०) ७६। का० १३ ३१ १७६, १७७

१७६, १८१, १८२, १८० २१२,

२४७, २६८। अ० ७० ८७। प्र०

३। ल० ४६, ५०।

कष्ट सहना। विषमजय ताप से पीड़ित होना। बलना, दण्ड होना।

आकुलता।

जल निधि = भा०, १८, ७३, ७७। का०, १३,

[सं० पु०] (सं०) १६, ४५, ४८, ७३, १५६, १६३,

१६०, १६४, २५७, २८८।

समुद्र। सागर। जनधि।

जल परिवर्तन = म०, १७।

[सं० पु०] (सं०) आश्चर्य का तबदीली।

जल भूमि = का० कु०, ५१।

[सं० पु०] (म०) जल और स्थल।

जल मटल = ल०, ५८।

[सं० पु०] (सं०) जल का घेरा।

जलमह = वि०, ५८।

[सं० पु०] (ब्र० भा०) जल में।

जलमयी = अ० ५०।

[वि०] (सं०) जलरूप। जल में निमग्न।

जलमाया = का० ५।

[सं० ली०] (सं०) जलरूपी माया। जल जाल।

जल राशि = म०, ११।

[सं० ली०] (सं०) जल समूह। अत्यधिक जल।

जल लहरी = वि०, १४४। अ०, ५५।

[सं० ली०] (हि०) जल में उठनेवाला छोटी छोटी लहरें।

जलवायु = म०, २, २१।

[सं० ली०] (म०) भावहवा किंसा स्थान की वर्षा, गर्मी

एव वायु का माध्यमिक मात।

जलवास = का० कु०, ४२।

[सं० पु०] (म०) जल स्था युक्त। जल निवास।

जलविदु = का० कु० १००। अ० ४०।

[सं० पु०] (सं०) जल की बूँदें।

जलविदु पूरित = का० कु०, २६।

[वि०] (सं०) जल कला से भरा हुआ।

जल विहार = का० कु० ४२।

[सं० पु०] (सं०) जल प्रोधा के द्वारा प्राप्त आनन्द।

जल पर निवास।

[जलविहारिणी—सब प्रथम इष्ट, कला २, किरण

५ अमृत १६६७ में प्रकाशित और

कालन कुमुद' में पृष्ठ ४१-४३ तक

सन्निहित। चन्द्रिका चर्चित है कलिपा

सं सुरभि का कटा मँडरा रही है।

जहाँ तक दृष्टि जाती है सबन मुखा का

अजोत सरोवर दासता है। चन्द्रमा

रम्य बानन की छटा को उज्ज्वल शान
मुलपुत्र सवन्न से भवकार हटा कर
बना रहा है। प्रकृति का मनमुग्धकारी
गान सवन्न गूँज रहा है। शाल भी
हरिण के समान शिर उठाकर खड़े
हैं। अचल तरंगों में एक मनमाहिनी
छोटी सी नौका चली आ रही है।
विद्यापार बालाएँ जलविहार व लिये
उसपर धाई मुँह हैं। काव्यत्वमय
वर्णन उस दृश्य का ब्रवी करता है
श्रीर इन बालायाँ श्रीर चद्रमा व सौंदर्य
का वगान तुलनात्मक रूप में उपस्थित
करते हुए उनका रसात्मक रूप मूर्तित
करता है। श्रीर घनानंद घन का घटा
घिर रहा है। काव्य में मुदर विष
विधान है।]

जलसंधात = का०, २०।

[स० पु०] (सं०) जल-समूह। जलराशि। जन का
आधात

जलस्रोत सी = म०, ८।

[वि०] (हि०) जल प्रवाह के समान, चलनवाला
चंचल।

जलाकर = का०, १७६।

[क्रि०] (हि०) सतत करक।

जलाना = प्रा० १७, ५१, ६१। का०, १७६,

[क्रि०] (हि०) १७६, २६२। प्र० १५। ल०, ३८,
६४।

भाग में मग्न करना। सतत करना,
बटु देना। झुनमाना।

जले = प्रा०, ६१।

[क्रि०] (हि०) जला करे। 'जनना' का भूतशक्ति
यद्वचन रूप। जलत रह।

जल्दी = क०, ६, १०, ११। म० १४।

[क्रि० वि०] (हि०) शीघ्र गुरुत।

जल्पना = वि० ७२।

[प्रि०] (सं०) चपक-चपक करना। डींग मारना।

जवा = ल० ४०।

[सं० स्त्री०] (हि०) मटहल। जवा। जी।

जगहिर = वि०, ६१।

[क० पु०] (प्र०) रत्न। मणि।

जहाँ = क०, १४, १७। का०, ११, १२, ८८,

[प्रि० वि०] (हि०) १३०, १३१, १५५, २०७, २१४,
२१७, २२८, २३० २८०, २८८।

म०, ६०। प्र० ४ ५, १५, २२,

४६। ल०, १४।

जिम स्थान पर, जिस जगह।

जहाँ जहाँ = प्र०, ६।

[प्रि० वि०] (हि०) हर जगह। जिम जिम स्थान पर।

जहान = वि० ६६, १३६।

[म० पु०] (का०) सगर, जगह।

जौंच = का० ६६।

[म० स्त्री०] (हि०) जावने का क्रिया या भाव।

जायें = का०, २४४।

[क्रि०] (हि०) जाएँ, यदि जायें।

जायें बाल = का०, १६४।

[क्रि०] (हि०) व्यतीत हो जाएँ।

[जाओ सखी—बाधना और उपका सखिया का
सवाद गीत। प्रसाद सगात में पृष्ठ ८०
पर सखित। कामना बहती है कि
सखी जाओ, हमारा जो मत जलाओ,
हम मत सताओ।

एक सखी—तुम व्यर्थ बकती रहों।

कामना—मन की कथा कहने की नहीं तुम
नहीं जान सकती।

दूसरी सखी—बात मत बनाओ।

एक सखी—तुम नहीं समझाओ सजनी।

दूसरी सखी—ममार की प्रेम रात्रि न नेत्र में
सुधा छवि भर कर सब कुछ बता दिया
है। अब क्या ममझाओ।]

जाइ = वि०, १५६, १७२।

[पू० त्रि०] (प्र० भा०) जाकर।

जाऊंगा = प्रा०, ४०, ४३। का०, ३६, ५३,

[क्रि०] (हि०) २३०। प्र०, ५, २१। म० १७,
२। ल०, ३९।

जाना क्रिया का प्रथम पुरुष में भविष्यत्
कालिक रूप।

जागर = घा०, ३४। ग०, ११। वा०, १५,
[पू० क्रि०] (हि०) १८०, २८३। प्रे०, १२, २१। म०,
१३। न० ३६।
पट्टकर।

जारी = बि०, २५।

[गव०] (प्र० भा०) जिरगी।

जाके = बि०, १४६, १५३।

[गर्व०] (प्र० भा०) जिरग।

[पूव० क्रि०] (हि०) जाकर।

जायो = बि० ५२ १०१ १४३।

[गर्व० पु०] (प्र० भा०) जिरगी।

जाग = वा० कु०, ८७। वा० १७ ४० ७४,

[क्रि०] (हि०) १२५ १२६ १२६ १४८, १६८
१७२ २०६ २३६ २४१, २४२
२७३। ल०, १९, ६३।

मचन हो निद्रा छाडा।

[३व० क्रि०] मचन हाकर।

जागरण = घा०, ७२। का० ३१ ७० ८८

[म० पु०] (म०) १०१ १०५, १०६, १७८ २०५,
२७३। म०, ५४।

जागना, सचेन रहना। उस भा पव
पर रात भर जागना।

[जागरण]—प्रसाद मंदिर, मानमंदिर वाराणसी स
श्रीशिवपूजन महात्म क सपादन म
प्रकाशित पाक्षिक। बाद म प्रमचदजा
के सपादन म उनक द्वारा ही प्रकाशित
साप्ताहिक जिसमे प्रसादजी का रचनाए
और टिप्पणियाँ प्रकाशित हाती थी।

जागरण सी = का०, २७।

[वि०] (हि०) जागने मे सज्ज।

जागहु = बि० ४६।

[क्रि०] (प्र० भा०) जाग जाग्रो। सचेत होवो।

जागिके = बि० १५६।

[पूव० क्रि०] (प्र० भा०) जागकर।

जागे = आ० ४६। का०, १६५। बि०, ४६।

[क्रि०] (हि०) जाग गए। तयार हुए। सचेत हुए।

जागे = बि० १४।

[क्रि०] (प्र० भा०) जाग गए। हाथ मे आए।

जागो = घा०, ६४ ६/ ७४। ल० २४।

[क्रि०] (हि०) चेतना म आया। तयार हा जाया।

जाग्रत = वा० २५।

[वि०] (म०) जागा हुआ सत।

जाग्रति = वा० कु०, ६१।

[म० श्री०] (म०) जागरण तनना।

जाड़ा = प्र० ११।

[म० पु०] (हि०) बट श्रुतु जिनम बटुन मर्गे पन्ती
है। मातगल। ठग, मर्गे।

जात = बि० ३५ ६६ १४३ १५६।

[क्रि०] (प्र० भा०) जान है जानन है।

जाता = घा० ३३। वा० ८ २८। का०, २०

[क्रि०] (हि०) ४८ ६८ १०४ १२६ १५६ १६७
१८०, २२८, २५७ २८२ २८६।
प्र० ६, २१। म० ८ २२।

जाना क्रिया का एक रूप।

जाति = र० १०। वा० ८। म०, ८।

[स० श्री०] (म०) जम पनादग। हिन्दुओं का सामाजिक
विभाग, काटि भ्रष्टा वर्ग।

जाती = घा० २७ ५६। वा०, २३ ३४,

[क्रि०] (हि०) ३६, ५१, १२३ १४४ १५० १६०
वा० १७६ १७८ १८५ १८८,
२१ २४६ २७८।

जाना क्रिया का एक रूप। समन
करता। व्यनत हाता। प्रस्था करता।

१८० २३४ २६७। बि०, ४०।

प्र० ३ ११ १५।

जाते जाते = ल० ३६।

[क्रि०] (हि०) चलते चलते।

जादू = का०, ८७। बि० ४७।

[म० पु०] (पा०) एसा माश्वधानक काम जिसे लोग
अतौकिक समझे, इन्जाल। तिनस्म।
टाना टोटका दूसरे को मोहित करने
का शक्ति। मोहिना।

जान = वा० १३२ १४३।

[स० श्री०] (पा०) प्राण। पान जानकारी, परिचय।

[पूव० क्रि०] (हि०) जानकर।

जानकी = का० कु०, ६६, ६७, १०१।

[सं० स्त्री०] (सं०) जनक की पुत्री सीता ।

[जानकी—सीता, जनकवती, जनकमुनी, बदही
आदि नामों से उल्लिखित राम की
मनी साध्वी पत्नी । उत्तराफाल्गुनी
नक्षत्र में मीरध्वज जनक की हल
चलाते समय मिली । माता का अर्थ
हल में खोची हुई रेखा भी है । यह
अत्यंत सती थी । तुलसीदास इनका
जगज्जननी और बाल्मीकि ने इह
अत्यंत मुदरा एक आदर्श पतिव्रता
चित्रित किया है । रावण ने स्वयं
माता के भौंदय के विषय में बाल्मीकि
रामायण में कहा है—
नव स्त्री न यथर्वी न यक्षा न च किन्नरी ।
न वरूणा मया नारा दृष्टपूर्वा महतिन ।
रावण इह छल मे हर ल गया था । राम ने
उसका बध्वर इह युक्त कराया और
अन्य लका व विजयी हुए । लव कुश
की मा । २० सीता ।]

जानकी अग्र = का० कु० ६८ ।

[सं० पु०] (सं०) जानकी के शरीर के अग्र ।

जानकी वदन = का० कु० ८८ ।

[सं० पु०] (सं०) जानका का मुख ।

जानति = चि०, ३२ ५७, ६६ १५१, १५८ ।

[क्रि०] (२० भा०) जानती है ।

जानता = प्र० ३ ।

[क्रि०] (हि०) जाना क्रिया का एक रूप ।

जानना = का० ११, १३ । का० २२२ । चि०

[क्रि०] (हि०) १८७ । प्र० १ ।

ज्ञान प्राप्त करना । भिन्न या परिचित
होना ।

जानहु = चि० ५० ।

[क्रि०] (२० भा०) जात कर ला, जानो ।

जाना = का० २०, २६ । का० ११७, १६७

[क्रि०] (हि०) १६१ । म० २४ । ल१ ३६ ।

एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचने
के लिय चलना । गमन करना, प्रस्थान
करना ।

जानि = चि० १४२, १५१, १७२, २८३ ।

[पूर्व० क्रि०] (२० भा०) जानना क्रिया का पूर्वकालिक
रूप । जान कर, जात करके ।

जानिही = चि०, ३२, ४६ ।

[क्रि०] (२० भा०) जात करोग । जान लोग ।

जानी = चि० ६८ १५५ । प्र० ३ ।

[क्रि०] (२० भा०) जात कर लिया ।

जातु = का० १५३ ।

[३० पु०] (सं०) जात और पिंडली के बीच का भाग ।

[क्रि०] (हि०) जानिए ।

जाने = का० ५८ । का० १२८ १६६ १६२

[क्रि०] (हि०) १८६ २०१ । चि० ५८ । म० २८ ।

ज्ञान कर लिया । जान लिया ।

जानो = का० १७ । प्र० ६ ।

[क्रि०] (हि०) जात कर ना । मानो ।

जानी = चि० १५२ १७६ ।

[क्रि०] (२० भा०) ज्ञात कर ला ।

जान्यो = चि० १८१, १८५ ।

[क्रि०] (२० भा०) जात कर लिये । अवगत हो गया ।

जामहें = चि० १४३ ।

[अव०] (२० भा०) जन्म ।

जामे = चि० ५७ ।

[अव०] (२० भा०) जन्म ।

जाया = प्र०, २१ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) पत्नी जाऊ, छा ।

जायेगा = का०, ११७, २५१ । म० ८ ।

[क्रि०] (हि०) जाना क्रिया का भविष्यकालिक रूप ।

जारत = चि० १६ ।

[क्रि०] (२० भा०) जताता है ।

जारन = का० ८३ । चि० १०७ ।

[क्रि०] (२० भा०) जवानवाना, दाहक ।

जा रहा = का, ८१, १६१ ।

[क्रि०] (हि०) जाना क्रिया का एक रूप ।

जार ही = का०, ३६ १०५ २०५ ।

[क्रि०] (हि०) 'जाना' क्रिया का एक रूप ।

जाल = का०, ३७ । का०, ८ । का० कु० ८६,

[सं० पु०] (सं०) का०, ३४, ६८, ८१, ८३, १६८,

२५२ । बि०, २२, १४३ । भ०, ७० ।
ल०, २४ ।

एष म मुनं हृष्य बहूत म डोरा वा समूह ।
विगी यो कमाने या वष म करने वा
पश्यत । एष प्रवार की ताप ।

जाल डोरी = बि०, १८२ ।

[म० लो०] (हि०) जाल के चलन चलन मून । चड
तिरणें ।

जालन = बि०, ४ ।

[म० लो०] (ग्र० भा०) जाल वा बहु वचन । '० जाल' ।

जाली = बा० ६३ । ६६ ।

[म० लो०] (हि०) जगमे बहुत म छि हो ।

जालों = बा० १४ ।

[म० पु०] (म०) जाल वा बहुवचन ।

जावेगा = बा० १२४ । प्रे० २ ३ ४ ।

[क्रि०] (हि०) म० १० ।
जाना त्रिया का भविष्यत् कालिक् रूप ।

जावें = बा०, ५४ ७४ । बि० १८७ ।

[क्रि०] (हि०) जावें । जाय ।

जाये = बि० १६४ ।

[क्रि०] (ग्र० भा०) जाय जाओ ।

जा सन = बि०, १०६ ।

[सव०] (ग्र० भा०) जिससे ।

जासु = बि०, ५६ १३६ १५३ ।

[सव०] (ग्र० भा०) जिसका । जिसका ।

जासु अति ही = बि० १६१ ।

[सव०] (ग्र० भा०) जिसका ज्यादा हो ।

जासो = बि०, ५५, ६६ १५६ १७३ ।

[सव०] (ग्र० भा०) जिससे ।

जाहि = बि० ३४, ४०, १० ५६, ६३ १५४

[सव०] (ग्र० भा०) १८४ ।

जिसकी ।

जाहिर = बि० ३२ ।

[वि०] (ग्र०) प्रकट, स्पष्ट, खुला हुआ । विदित, जाना
हुआ ।

जाहिरहि = बि० ६१ ।

[क्रि०] (ग्र० भा०) प्रगट है ।

आहिलरि = बि०, १६ ।

[सर्व०] (ग्र० भा०) जिस दयाकर ।

जाहु = बि०, ५३, १७७ ।

[क्रि०] (ग्र० भा०) जाओ ।

जाहुगे = बि०, १४६ ।

[स०] (ग्र० भा०) जाओगे ।

जाहुवो सी = भ० ३५ ।

[वि०] (हि०) गया के समान पवित्र, निर्मल ।

जिऊँ = बा०, २४३ ।

[नि०] (ग्र० भा०) जाऊँ ।

[चिन्तासा—वाणी] वष २ मक २० मितवर
१६३२ म मवप्रथम प्रकाशित श्रीर
'सन्द' मे पृष्ठ ३८ पर सकीर्तन 'प्रदे
कही दया है तुमने । द० लहर ।]

जितना = बा०, ८, २५ ६५ ७५ १७८, १६६,

[वि०] (हि०) ल० ७४ ७६ ।

परिमाणुवच शब्द ।

जितनी = बा०, १३० ।

[सव०] (हि०) परिमाणुवच शब्द ।

जितने = बा०, ७३ । बा०, १७१ । म० १०,

[वि०] (हि०) परिमाणुवच शब्द ।

जिबर = बा० १८१ ।

[ग्र०] (हि०) जिस प्रार ।

जिन = बा० १२, १३, १४ १५, २५, ५६,

[सर्व०] (हि०) ७७ ११४, ११६ १२०, १६२, १८२

१६५, २०१, २३६, २४८ २५८,

२६३ । बि०, ६७ । प्रे०, १४ २५ ।

म०, ७ ।

जिहाने । जिनम ।

जिनकी = बा०, ११४, २५८ ।

[सव०] (हि०) सवधनाचर 'जो' का रूप, बहुवचन ।

जिनहि = बि० १०२ ।

[सव०] (ग्र० भा०) जिनको ।

जिन्हें = बा०, २३६ ।

[सव०] (ग्र० भा०) जिनको ।

जिन्हें = बि०, ६ १७ ।

[सव०] (हि०) जिनको ।

जिमि = चि० १००, १०७, १६१, १६५।

[ग्र०] (ग्र०भा०) जिस प्रवार।

जिया = वा, १६६।

[क्रि०] (ग्र०भा०) प्राण रक्षा किया।

जिये = वा०, २२ १४६, १८३। चि०, ३३।

[क्रि०] (ग्र०भा०) जिया' बहुवचन।

जिस = क०, १३ ३१। वा०, १०, ११, ७५,

[म०] (हि०) ७६ २६ ३४, ४२, ४४, ६२ ७३, ७६, ६०, ६४, १००, १०१, १२, १०६, १०७, ११५ ११६, १२०, १२१, १२२, १२६, १३०, १३१, १४०, १४२, १४३ १४४, १४८ १५१, १५७, १६०, १६३ १६६, १६७, १६८, १७०, १७५, १८३, १८३, १८७, १८८, २०५, २०६, २२४ २३३, २३४, २३६, २४०, २४८, २५०, २५१, २५४ २६३, २६८, ७६६। चि०, ८८। ऋ०, १३ ३६। प्रे०, १, २, ६ १०, ३४। म० १३, १६ १८। ल०, ६२ ७६। 'जा' एव का रूप।

जिमसे = वा०, १७६, १३६ १४५।

[सव०] (हि०) जिसने द्वारा, जिसकी सहायता से, जिसका कारण।

जीके = वा०, २८, १११।

[क्रि०] (हि०) जीना' क्रिया का रूप।

जीकर = का० २८, १४६।

[पू० क्रि०] (हि०) जीवित रह कर।

जी को = वा०, २१५।

[स०] (हि०) मन की।

जी जीकर = का० १२३।

[पू० क्रि०] (हि०) जीवित सा अनुभव करके।

जीतना = भा०, ५८। वा० कु०, ६३। वा०,

[क्रि०] (हि०) ५५ १६५, १७०, १६७। ऋ०, ६३।

ल० ५३।

विजय प्राप्त करना, विपक्षी को हराना।

जीते ही बनता = वा०, २६८।

[क्रि०] (हि०) किसी प्रकार जीवित रहना।

जीना = वा०, २०१। ऋ०, ६८। ल०, ५३।

[क्रि०] (हि०) जीवित रहना।

[जीने का अधिकार तुम्हे क्या - जनमजय का नागयज्ञ' का नेपथ्यगीत जो उम सचेत करने के लिये गाया गया है। प्रसाद संगीत में गूँठ ६५ पर मवलित। हे मनुष्य तुमने क्या यह मोखा है कि आवागमन क्या होना है। यह कर्म भूमि है। यहाँ तू खेल खेलने भाया है। कर्म में ही सुख है। जिसे तुम दुख समझते हो उमम भा सुख है। जो कुछ हा, जा करना है करता चल। न ता कोई कही भाता है न जाता है। यह जावन खेल है, लौला है। तू सब कुछ ध्यानद स करता जा।]

जीने दो = वा०, २०१।

[क्रि०] (हि०) जावित रहने दो।

जीभ = क०, १७५। ल०, ५१।

[म०] (हि०) जिह्वा बाणी, जवान।

जी भरकर = भा० ३६। का०, कु०, ५१।

[पू० क्रि०] (हि०) प्रे० २०।

पूरा, मनुष्टि मिलने तक धीरे-धीरे।

जी रहा है = वा०, २१७।

[क्रि०] (हि०) प्राण रक्षा कर रहा है।

जीएँ = वा०, १६०।

[क्रि०] (स०) पुराना, जजर जिमने जीएना प्रा गई है।

जीएँ नाड = ऋ०, ३३।

[सं० पु०] (स०) जजर तना, जजर पार, जजर डाली।

जीय = व०, १३, का०, कु०, ६८। चि०, ३०,

[सं० पु०] (स०) १३६। म०, ६५। म०, =।

चेतन तत्व, प्राण, आत्मा जीवात्मा। जीवधारी।

जीवन = भा०, १४, ७६। वा०, १८। का०

[सं० पु०] (स०) कु० ६५ ७७। वा० ५ २६३।

जीवित रहने का भाव, प्राणधारण, जय से मृग्य पर्वत का समय।

जिदगी। जीवित रहनेवाली वस्तु।

जीवनकन = ल०, २१ ।

[स० पु०] (हि०) चेतनता अथ, आशिक चेतनता का गूढ भाग ।

जीवनगीत = ल० २८, २६ ।

[स० पु०] (म०) जीवन प्रगट करनवाला गीत ।

जीवन घट = का० २८३ । अ०, ७७ ।

[वि] (स०) जीवनरूपी घटा ।

जीवन घाटी = का० २१७ ।

[वि०] (हि०) जीवन रूपा घाटी । जीवन का दुःखमय पथ जीवन का दुःखमय रास्ता ।

जीवन जलनिधि = का० २२१ ।

[म० पु०] (म०) जीवनरूपी समुद्र । जीवन की अथा अथा की सूचक शब्द ।

जीवनद्रव = का०, ७१ ।

[वि] (स०) जीवनरूपी द्रव पदार्थ । जीवन की तरलता, जीवन का स्नेह स्वरूप ।

जीवन धारो = का० १६२ ।

[वि०] (हि०) जीवनरूपी धारा । जीवन का क्षणिकता का सूचक शब्द ।

जीवनधन = का० ५० ७६ । का० ६८ । अ०

[वि] (म०) ३७ ४४ ४५ ४८ ५२ ८० ६१ ८६ । न० २६ ।

जीवनरूपा धन । सर्वश्रेष्ठ धन । वह धन जिसके द्वारा प्राणा मय कुछ करने में समर्थ होता है । प्रियतम ।

जीवनधारा = का० २४१ ।

[म० ग्वा०] (म०) जीवनरूपी धारा । जीवन का प्रवाह ।

जीवननद = का० १६४ ।

[म० पु०] (म०) जीवनरूपी नदी । जीवन का गहराई तथा प्रवाह का सूचक ।

जीवन नार = अ० ५५ ।

[म० ग्वा०] (हि०) जीवनरूपी नारा । जीवन में तारक की अनिवार्यता का वास्तविक चिह्निका का सूचक ।

जीवननिर्भरिणी = प्रे०, १० २४ ।

[म० ग्वा०] (स०) जीवनरूपी नदी ।

जीवननिशीथ = का० १५६, १७२ ।

[म० पु०] (म०) जीवनरूपी अद्भुत राशि जीवन के तम मय पद का वाचक । उ०—जीवन निशाथ के अर्थकार ।

[जीवन नैया—इंद्र, कन ३, किरण ११, अकूवर १६१२ म विनोदविंदु के अतगत प्रकाशित श्री विद्याधार मे सकलित सवया ।]

जीवन पत्तग = ल० ४६, ५० ।

[स० पु०] जीवनरूपा शलभ । जानिप्या में प्राण विसर्जन करने का द्वार सकेत ।

जीवन पथ = प्र०, २६ ।

[पु० पु०] (म०) जीवनरूपी पथ । जीवन का रास्ता ।

जीवन भर = प्रे० २१ ।

[वि०] (हि०) आजीवन, ज म म लेकर मरने के पहले तक का समय ।

[जीवन भर आनंद भनाये—विशाल म बौद्ध मह्य का गान जो 'प्रसाद सगात' में पृष्ठ १२ पर संकलित है । साग वृष्णा की वाली संपिणी बहू है लेकिन ससार का उममे मुख है इसलिये इसम उमका सुखकारा कहा ? माँ वचन का ताड़ना करता है फिर भा दच्छा रातर उमी का माँ बहूकर पुकारता है । इसलिये मानव रातर या गानर समार म मुख पाकर उसा का सवस्व मानता है । इसलिये जो कुछ भा हा जीवन भर सासा, पासा प्रीर मस्त रहा ।]

जीवनमधु = का० २७१ ।

[म० पु०] (म०) जीवन का मधु । जीवन में माधुर्य का बोधक ।

जीवनमरण = म० ८ ।

[महा पु०] (म०) जीवन और मृत्तु ।

जीवनमरण शाक = का० १७१ ।

[महा पु०] (म०) आवागमन में मवधिन शाक ।

जीवनमरण समस्या = का० २५० । अ० ४० ।

[म० ग्वा०] (म०) ज म लन और मरने से मवधिन समस्या ।

जीवनमार्ग = का० ५०, ७३ ।

[म० पु०] (म०) जीवन की राह, जावनरूपी पथ ।

जीवनमुक्त = का० कु०, ३० ।

[वि० पु०] (हि०) जीवन काल में ही मुक्तता का अनुभव करनेवाला ।

जीवनमुक्ति = का० ६८ ।

[म० श्री०] (हि०) जावन के बंधना में छुटकारा ।

जीवनमूल = का० कु० १४ ।

[स० पु०] (म०) जीवन का आदि सात । जीवन की वास्तविकता ।

जीवनरण = का० २०० ।

[म० पु०] (म०) जीवनरूपी युद्ध । जीवन व मरण पर का सूचक ।

जीवनरस = का०, १६८, २७०, २७१ । ल ७२ ।

[म० पु०] (म०) जीवन का रस । जीवन का आनंद तत्व ।

जीवनधनु = का० ६१ ।

[म० पु०] (स०) जीवनरूपा धनु । जावन की वधना का बोधक ।

जीवननिष्ठुब्ध महासमीर = का० १४७ ।

[म० पु०] (स०) जीवनरूपा क्षुब्ध प्रबल पवन । जीवन का दुःख प्रतिशालता का बोधक ।

जीवनराशि = का०, ४६ ।

[स० पु०] (हि०) जीवनरूपी राशि । शृङ्खलाबद्धता का परिचायक । बध्यममूलक घटनाओं के केंद्र का बोधक ।

जीवनरहस्य = का०, ४८ ।

[स० डू] (म०) जीवन का तत्व । जीवन की वास्तविकता ।

जीवनलीला = का० ३२ ।

[स० श्री०] (म०) जीवनरूपा लीला । जावन का अग्नि पर्व का सूचक ।

[जीवन धन में उतियाली है— एक घूट में प्रमदता का गीत । प्रमाद मगल में पृथ १०३ पर स्वतंत्र । किरणों की कायल धारा हमारा अनुराग नवर प्रवृत्तमान है फिर भी हमारा हृदय प्यासा है और मतवाला व्यथा व्याप्त है । हरित दत्ता के अतस्थल से यह

मयोर कुम्भ बाल से प्रमदधु री प्याली दम सघन जाल से बचकर भाँग रहा है । यह जीवन केवल एक घूट का त्रिध प्यासा है और सजका आलस में पानी भर कर देख रहा है कि उसका प्रम किमने चुरा रखा है और हमारी वह हरियाली कहा है ?]

जीवनशरद = का० कु०, ६७ ।

[म० पु०] (स०) जावनरूपा शरद । जावन की शीतलता का सूचक ।

जीवनसगी = का०, १६ ।

[म० पु०] (हि०) जीवनसाथी जीवन में सहायक प्राणा ।

जीवनसमाधि = का० १६० ।

[स० पु०] (म०) जीवनरूपा समाधि । जीवन की परम शांति का सूचक ।

जीवनसर = का०, ६६ ।

[म० पु०] (स०) जीवनरूपी तालाब । तालाब में पल पन उठने मिरनेवाला लहरिया के समान जीवन की लुप्तताप्रा या आश्रयन का बोधक ।

जीवनसिंधु = का०, ८१ ।

[म० पु०] (म०) जीवनरूपी समुद्र । दुःखता का बाधक ।

जीवनसुर = का०, ३८ ।

[म० पु०] (म०) जीवन का मुख ।

जीवनसोता = का०, ३५ ।

[म० श्री०] (हि०) जीवनरूपी माला । कठिन जीवनप्रवाह । मदगति जीवन ।

जीवनसुधा = का० कु०, २७ ।

[म० श्री०] (स०) जावनरूपा सुधा । जीवन का अमृत, जावन के अमरत्व का बाधक ।

जीवनस्मृति = का० २७ ।

[स० श्री०] (स०) जावन की स्मृति । जीवनमयवी याग्यार ।

जावनस्रोत = का० कु० ५७ । प्र०, २० ।

[स० पु०] (स०) जावनरूपी स्रोत । जावन का उद्गम स्थान । जावन माला ।

जीवनस्रोत सा = का० कु०, ५३ ।

[वि०] (हि०) जीवन रूपा स्रोत या प्रवाह व सहज । जीवनरूपी प्रवृत्तमान प्रवाह के समान ।

जीवनी = ५०, १८६ ।
[मं १००] जीवनी-रहित । बिग्री व्यक्ति के जीवन
(धं) की गणना पटनाया वा सञ्चिता रूप ।

जीवमटली = ५० कु०, २४ ।

[मं ५०] (धं) प्राणी वर्ग, प्राणियों का समुदाय ।

जीवित = ५०, १८ ६० १०६ १४७ १६ ।

[मि०] (धं) २४७ २६६ । प्र० १६ । त ५१

२७ ७५ ७६ ।

विषय जीवन है । गतिशाल प्राणी ।

जु = वि० ७० ।

[मय०] (प्र० भा०) जो ।

जुग = वि०, १४२ ।

[सं ५०] (हि०) युग, दो जोड़ा । चीनर के खेल में दो
गोठियाँ का एक हाथ पर म मानकर
बैठना ।

जुगाली = १०, ३३ ।

[सं ५०] (हि०) पापुद, चीनाया की यह क्रिया जिसके
द्वारा वे झुड़ जाता चलाने खाए हुए
चारे की निगमा करते हैं ।

जुगनूँ = का, १७६, २३४ ।

[सं ५०] (हि०) सानबिरवा सघोष पटवोजना । पान
का मानार वा एत माधुगण ।

जुटना = ५०, २५, ५८, ८२, १८१, १८१

[क्रि०] (हि०) १८६ ।

दो वस्तुओं का जुटना । सख्त या
सखिष्ठ होना ।

जुड़ने = ५०, १८६, १८६ ।

[क्रि०] (हि०) जुड़ना' क्रिया का एक रूप ।

जुन्दाइति = वि० १४६ ।

[सं ५०] (प्र० भा०) चदिनी ।

जुरि = वि० १ १०८ ।

[प्र० क्रि०] (प्र० भा०) जुड़कर समुक्त होकर ।

जुरी = वि०, ५६ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) जु गढ़ें, जुट गढ़ें मिल गइ ।

जुरे = वि०, ४१, १८६ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) जुड गए मित्रे ।

जुहा = वि० १०१ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) झकड़ा करो ।

जुहे = वि०, ५३, ६८ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) झट्टे हुए ।

जुभा = वि०, १०७ ।

[मं ५०] (प्र०) ज्ञा प्रार का भाव जो धन की मात्रा
समान्य गना जाता है । धन के कचे
पर रखा जनेवाली लकड़ी । चक्का
का बट ताटा जिस समान्य बट
चलाई जाती है ।

जूटै = वि०, ७२ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) जुड़ जाना । इस प्रकार जुटना कि जुटन
का स्थान तब न गत हो ।

जूठ = वि०, ८७ ।

[मि०] (हि०) उच्छिष्ट भोजन, जूठा खाद्य पदार्थ । एव
बार बार म साईं गई वस्तु ।

जूही = धा०, ४४ । का० कु०, १२६ ।

[सं ५०] (हि०) पुष्प विशेष का नाम ।

जेहि = वि०, ३, २२, ३४, ४८ ४८, ५६, ४७,

[सर्व०] (प्र० भा०) ७३ १६३ ।

जिसको ।

जैमा, जैसे, जैसी = ५०, २, ६, २३ २४, २६, ३२

[मं ५०] (हि०) ६७ ७७ ८१, ६४, १०५, १२३,

१३६, १४५, १५६ १६२, १६७

१६६ २१३ २२७, २२८, २३३

२३४ २५८, २६१, २६६, २७०,

२६०, २६१ २६२ २६४, वि० १०,

४८ । प्र० २, ४, ६ १३, १५, १८ ।

मं १ २ ४ ८ १०, १६ १६, २१ ।

'हृष्टा' प्रलम्ब का योग्य शब्द ।

समान्यता का बोधक शब्द ।

जो = ५०, ७ २५, ३२ । का० २५, ३०

[सर्व०] (हि०) ३३, ३६ ४८ ६६ ६६, ७१ ७२

७४ ७५ ८१ ८४, ११२ १५७

१७० १७१ १८२, १८२ १८६,

१८०, १८१ १८२, ३०७ २८६,

२१९, २२५ २२८ २४० २४२,

२४३, २५१ २५८ । मं १ २ १० ।

सबव्यापक सञ्चाम जिसका प्रयोग

पहले कहीं हुई किसी सजा विशेष का

लिय हो । उ०—जो घनीभूत पीछा की

मस्तक मे स्मृति सी छाई ।—ग्राम ।

जोगी = चि०, १७२।

[स० पु०] (हि०) साधुओं का नग विनाश जो सारंगी पर गाना गा गाकर भिक्षा मागा करती है।

जोड़ना = का०, २०, १७७। ऋ०, २६, ६४।

[क्रि०] (हि०) दो वस्तुओं का किसी भा प्रकार मिलाना, सबंध स्थापित करना। सामग्री या वस्तुओं को क्रम से रखना। सचित करना, एकर करना। जोड़ लगाना।

जोड़ी = का० कु०, ३८, ४२। चि०, ३३ ७४।

[स० स्त्री०] (हि०) एक ही प्रकार का दो वस्तुएँ। दो बला का युग्म। मजीरा।

जोड़े = का० कु० १०।

[क्रि०] (हि०) जोड़ना क्रिया का भूतकालिख रूप।

जोति = चि०, १६४।

[स० स्त्री०] (ग० भा०) प्रकाश, उजाला। लपट, लौ। धामि। मूय। दृष्टि। परमात्मा।

जोषम = चि०, १८०।

[प्र०] (ग० भा०) यदि, अगर।

जोय = चि०, ५३।

[क्रि०] (ग० भा०) दलकर।

[स० स्त्री०] (ग० भा०) लौ।

जोर = चि०, १७८। म०, ५।

[स० पु०] (पा०) बल, शक्ति ताकत। बल।

[जोरावर सिंह—गुरु गान्धिवि सिंह के छोटे पुत्र जिन्हें उजीर खा मराहद के सरदार ने जीत जी दावार में खुनवा दिया। वे अपने धर्म पर शहादत हुए और उनकी श्रमयना उसी रूप में तब से की जाती है। सन् १७०५ ई० में यह दुल्हाद हुआ था।]

जोरि = चि० ५४।

[प्र० क्रि०] (हि०) जुगार जाड़ नर झट्टा कर।

जोरी = चि० ७५।

[स० स्त्री०] (ग० भा०) 'जोड़ा'।

जोरे = चि०, ७४।

[क्रि०] (ग० भा०) जाड़, मिलाए।

जोइत = चि०, ७०।

[क्रि०] (ग० भा०) जोड़ना है। वाट देखना, प्रतीक्षा करना, इंतजार करना।

जोन = चि०, १६ ४१, ६६, ६१, १५३,

[सव०] (ग० भा०) १७०, १७३, १८४।

जा।

जौनों = चि० १०४।

[प्र०] (ग० भा०) जब तक।

जोहरी = चि०, १०७।

[वि०] (पा०) रत्ना का व्यापारी। रत्ना का परीक्षा करनेवाला। रत्नपारखा।

झात = का ३१०। ऋ० ५४।

[वि०] (म०) श्रवण, जाना हुआ, वाच्यगम्य।

झान = का० कु० ८४। का० ५१, १६२,

[स० पु०] (म०) १६५, १६७ १८२ १६४ २५३ २६२ २६८, २७२ २७३।

बस्तुआ और विषया का वह जानकारी जो मन या विषय में होता है। जान बारी बाध। यथाय जात या सत्य की पूर्ण जानकारी। तत्त्वज्ञान।

झानी = चि० ५६।

[वि०] (हि०) जिस पान हो पानवान्। आत्मपानी।

ज्येष्ठ = चि० २८।

[पु०] (स०) गरमी का एक महीना।

[वि०] बड़ा, जठा।

ज्याँ = का० कु०, ८०। का०, १६, २७, ३१,

[प्र०] (ग० भा०) ३४ ५५, ४६ ४७, ८६, ८७, ६३, ६४, ६७, १०६, १४३, २१२, २३६, २४७, २८४।

जिम प्रकार।

ज्याँ कि ल्यो = प्रे० प०, १।

[य०] (ग० भा०) वसा या एसा। उस तरह या इस तरह।

ज्या ज्यों = ग्रा० २५।

[प्र०] (स० भा०) किसी न किसी प्रकार।

ज्योति = ग्रा० ४३। का० ३२। का० कु०

[स० स्त्री०] (स०) २, १२६। का०, ४८, ६५, १८६, २७३, २९४।

प्रकाश। पान। दृष्टि।

ज्योतिकला = का०, १५६।

[म० मी०] (सं०) प्रकाश का शब्द । समानाश्रित शब्दों का म० मधुर प्रकाश ।

ज्योतिमय = का०, २५२ ।

[वि०] (हि०) प्रकाश में युक्त । पान म पूष्ण ।

ज्योतिमयी = का०, ७७ । स० ६१ ।

[वि०] (हि०) '०' 'ज्योतिमय' । (स्त्रीलिंग) ।

ज्योतिमान = का० १६३ ।

[वि०] (हि०) प्रकाशमान, प्रकाश में परियुक्त । ज्योतिमान । ज्ञानवान् ।

ज्योतिरिङ्गणो = का०, १७ ।

[सं० पु०] (सं०) रेंगन में ज्योति उत्पन्न करनेवाला । जूगनू लक्ष्मण ।

ज्योतिरेखा = का०, १७ । का०, २१७ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) प्रकाश की रेखा । विरेण ।

ज्योतिरेखाहीन = का०, ५७ ।

[वि०] (सं०) प्रकाश का रेखा से हान या प्रकाश विहीन ।

ज्योतिमय = का०, २७२ ।

[वि०] (सं०) प्रकाशमय लक्ष्मण हृमा ।

ज्योतिर्मान = का०, २६ ।

[वि०] (सं०) प्रकाशमान (० 'ज्योतिमान' ।)

ज्योतिष्पथ स्वामी = का०, २५ ।

[सं० पु०] (सं०) प्रकाश के मार्ग का स्वामी—गुरु, चंद्र । ब्रह्म, ईश्वर ।

ज्योतिष्मती = का० २६० ।

[सं० स्त्री०] (सं०) चौदनी रात । एक नदी । एक बरिद छद् । एक बाजा । मालवनी ।

ज्योत्स्ना = का०, १२७ १३० २५२ २७१

[सं० स्त्री०] (सं०) २८८ ।

चौदनी । सौक । सफेद फूल का तोरई ।

ज्योत्स्ना स्त्री = का०, ६२ ।

[वि०] (सं०) ज्योत्स्ना के समान । प्रकाशवाली । कातिवाला, अत्यंत सुंदर ।

ज्योत्स्नाशालो = का०, ११६ ।

[वि०] (सं०) ज्योत्स्ना से पूष्ण या भरा हुआ । प्रकाशयुक्त ।

ज्वलन = का० ८४, १५६, २०७ ।

[म० पु०] (म०) शक्ति । ज्वाला, लपट । जाला या विप्रेत नामा वृत्त । जलन ।

ज्वलन पिष्ट = का० १६१ ।

[म० पु०] (म०) जलना हुआ भाग का भाग । मृत्तिमया ज्वाला ।

ज्वलनशाल = का०, १५४, १५७ ।

[वि०] (सं०) जलनशाला या जलन की क्षमता रखनेवाला ।

ज्वलित = का० कु० १०८ । का०, ३३ ८५

[वि०] (सं०) म०, १० । वि० १० ।

जलना हुआ या जला हुआ ।

ज्वाल = का० १७३ ।

[म० पु०] (म०) अग्निशिरा लपट, ज्वाला ।

ज्वाल = का०, १७५ ।

[म० स्त्री०] (सं०) एक वीणा जिसका दाना खाने का नाम जाता है । एक प्रकार का घन । मधुर व जल का लहराते हुए ऊपर उठना या भाग बढ़ना ।

ज्वाला = का० १०, ६० ६१, ६२, ७७ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) का० कु०, १३ ७१ । का०, ११५ । अग्निशिरा लपट । विप्रेत भादि की जलन या गर्मी । ताप ।

ज्वाला—भापू के कुछ नए छद्

जब नील निशा अचल म
नक्षत्र ख जान हैं ।

'जागरण', २२ मार्च १९३२ में प्रकाशित
हुए । ० 'भापू' ।

ज्वालाताप = का० कु० २४ ।

[सं० पु०] (सं०) ज्वाला के समान ताप । जलने का भाति कष्ट होता ।

ज्वालायें = का०, १६ ।

[सं० स्त्री०] (हि०) अग्निशिरा, लपट । विप्रेत भादि की जलन । बहुत अधिक गर्मी ।

ज्वालाशाय = का० ५०, १५ ।

[वि०] (सं०) ज्वाला से युक्त । जलानेवाला । ताप, दायक ।

ज्वालाशायी = का०, ६ ।

[वि०] (सं०) 'ज्वाला से भरी हुई । तापदायिनी ।

[म० ग०] गीतों का भरना। गीत। मधुर।
 (ग०) लगातार गृष्टि कडा।
 भरना = गी०, ६०। गी०, ७१, २३५।
 [गि०] (गि०) भरना है।
 भरत = गी० १७८, २३१, २३३।
 [गि०] (गि०) भरना है।
 भरना = गी० १०० २१। गी० २६। गी० ११
 [म० ग०] (गि०) १६।

ऊँ। स्थान में गिरनवाला जलप्रवाह।
 गीतों का भरना।

[गि० ग०] गी० भरना।

ऊँ। जगह से पाना या घोर विना
 धाज का लगातार गिरना।

[भरना— भरना] प्रमाणों द्वारा रचित यह काव्य
 ग्रंथ है जिसमें प्रत्येक विद्वान् प्राप्नु न
 हिमीयता में छायावादी का भारभ
 माना है। (६० छायावादी)।

भरना में निम्नलिखित छंद प्रयुक्त हैं—

भरना अथवा प्रथम प्रभात,
 सोनी द्वार, रंग, दा यूँ, पावन प्रभात,
 बसत का प्रताप उतत गिरना
 विपाद धातु का बला बिल्ल
 प्रचना बिचरा हुआ प्रम कन ?
 स्वभाव प्रसताप, अनुभव प्रियतम
 कहा !, निवदन, प्रसता पा वही, पाइ
 बाग प्रयाशा, स्वप्नलोक, दशन,
 मिलन आशासिता सुधासिक्क तुम
 हृष्य का सौंदर्य, प्राथवा, होली की
 रात भाल म, रत्न, बुद्ध नहीं, आदश
 देनाला बसोटा, अलिखि, सुधा म
 गरन उपेक्षा करना बन्ने ठहरो धूल
 का धूल, और विदु।

समयों और परिचय भी कविता में ही है।

'परिचय में कवि ने स्पष्ट लिखा है—

राग में अरुण धुला मकरद।

मिला परिचय से जो सानद।

वही परिचय था, वह सबध।

प्रम का मेरा तेरा छन्द।

अतएव प्रेम के परिचय के परित्याग ये गीत
 हैं। कवि के जीवन के प्रेम की प्रति

व्यक्ति इन गीतों के राग की ध्वनियों
 है जिसमें जीवन का मकरद परिमल
 बनकर तस्थित है और यह परिमल
 राज मिलनवाला है। इस रोज मिलन
 वात परिमल का मधुर मधुमय मादन
 रूप मकरद है और इस मकरद का
 जानन में मगनमगन पर ध्वनित नाम
 है। यह सहेज हा इन कविता का
 अध्ययन द्वारा जाना गया है। इस
 परिचय के आधारों का साधना में
 समर्थन में कवि ने हृष्य हा जान करवा
 दिया, हृष्य का यह धातु खोलेनिधि
 में समा गया। कवि का प्रथम प्रव
 रवा रहा और कविता का सब
 हा रटा याता बात 'समर्थन' में है।
 यह बात उस आधारों की स्तन
 सपुच्छित बाधा था जो परमन का
 मकरद बनकर पुनने में प्रसृष्टित हानी
 है और वही 'भरना' की भरना में
 गूजी भी है।

भरना के सबध में प्रमाणों का निवदन है—

जिम शली की कविता का हिमी साहित्य में
 आज दिन छायावादी का नाम मिल
 रहा है, उसका प्रारंभ प्रसृत सप्रह
 द्वारा हुआ था। इस दृष्टि से यह सप्रह
 अत्यंत महत्वपूर्ण है। हमारा विश्वास
 है कि प्राप्नु के कविता का प्रारंभिक
 परिचय प्राप्त करने में पाठकों को इस
 सप्रह से सहायता मिलेगी।' (भरना,
 छंद सस्वरग)।

यह प्रमाणों के निवेदन एक अध्ययन महत्व
 पूर्ण विषय का आरंभ ध्यान सादृष्ट करता
 है और वह यह कि छायावादी का
 आरंभ हिमी में इस रचना द्वारा हा
 हुआ है। इस सप्रह का सप्रह भा इसी
 दृष्टि से प्रकाशक में माना है।

भरना का प्रथम सस्वरग दृष्टाष्टमी, मकर
 १९७५ विषम में हुआ था जो वर्तमान
 सकलन से अनेक वर्षों में मिल गया।

उन सस्वरण में २५ रचनाएँ निश्चित रूप से १९१८ ई० के पहले की हैं। उन २५ कविताओं में से 'भरना' के दूसरे सस्वरण में तीन रचनाएँ निकाली गई हैं। 'चित्राधार' के प्रथम सस्वरण के अनन्तत 'भरना' में प्रकाशित १२ रचनाएँ हैं। इस प्रकार 'भरना' में ३८ रचनाएँ कम से कम आती हैं जिनका प्रकाशन विक्रमी सन् १९७५ के (सन् १९१८ ई०) के पूर्व का है। गेय रचनाएँ १९१८ व पश्चात् का मानी जा सकती हैं। इस प्रकार कालक्रम की दृष्टि से १९१७ ई० से १९२८ ई० तक की रचनाएँ भरना के वर्तमान सस्वरण में सम्मिलित हैं।

प्रमाण के जीवनकाल के १४ वर्षों की स्पष्ट रचनाओं का यह संकलन उनके १४ वर्षों के स्वानुभूत भावों का प्रकाशन है जिनमें उनके जीवन के आसन्न स्वर मुखरित हुए हैं।

प्रत्येक व्यक्ति का जीवन शृङ्खलाबद्ध नहीं हुआ करता। शृङ्खलाबद्ध प्रवृत्त यत्र वा स्वभाव है। अतएव १४ वर्ष की अवधि में लिखा गई इन स्वानुभूतिमयी रचनाओं में एक शृङ्खला टूटना कवि के माथ घाया करना है। विचारों की शृङ्खला उस समय नाना रूप में भ्रंश के साक्ष्य बनती-बिगड़ती रहती है जब जीवन के आसन्न के पथ पर जीवन व चरण बढते हैं। इन रचनाओं में उन भावनाओं का आवरण हुआ है, जिन भावनाओं को प्रेम का साग ली जातो है। मामल सौंदर्य से जब भी प्रेम का योग होता है तब नाना प्रकार के मनोभाव ज्ञान ज्ञान परिवर्तित हो मानस में जीवन पाते हैं। कि तु हृदय से उनका लगाव इतना अधिक तीव्र होता है कि कवि की वाणी उससे मुखरित हो उठती है।

यद्यपि सभी कवी ये भावनाएँ सर्वथा निराधार हुआ करती हैं तो भी उनकी प्रेममयी वाणी मानस को भरपरा से इतना अधिक आनोदित कर देता है कि व्यक्ति उह हृदय की बात की भांति सत्य मान लेता है।

'भरना' में सम्मिलित रचनाएँ उस समय की हैं जब प्रमाद मानस सौंदर्य की ओर आकृष्ट हुए। पृथ्वि के धर्म से जो अपने मानस की दाक्षिण्य नहीं कर पाते व इस सौंदर्य रस का स्वाद नहीं ले पाते। यह रस बरबस एक बार जीवन में मक्का अपने ओर आकर्षित करता है। उस समय जो जितना अधिक रस मानसपात्र में भर पाता है, उसकी अभिव्यक्तियाँ उतनी ही अधिक रसमय हो पाती हैं। प्रेम में केवल योग नहीं होता। ज्ञान-ज्ञान पर उपेक्षा मिलती है, वेदना गले पड़ती है, प्यास लगती है, विवेक करना पड़ता है, अनुभव और विनय करना पड़ता है, समझना और गिड़गिड़ाता पड़ता है, विषाद और कष्टों से आसन्न पथ पर प्रतीक्षा करनी पड़ती है और मुखमाला पड़ता है, यहाँ तक कि प्रयत्नस्थित हो जाना पड़ता है और ध्वनना करने पर या असंतोष ही मिसता है। स्वप्ननाक प्रयास पड़ना है फिर भी प्रिय का दर्शन नहीं मिलता। इस सब का परिणाम कभी कभी कुछ नहीं मालूम पड़ता। आत्म समर्पण करने पर भी प्रियतम न ता आदेश देता है और न प्रमा का सकारता है। य सब धूल के खेल, आशा, जिज्ञासा, वेदना, कष्टता, आनन्द सबका प्रतिष्ठापक होता है। और इसा समय व्यक्ति का हृदय कमीठा पर कसा जाता है। यदि वह रस निवृत्तता है ता विमल वस्तु आता हुआ दीख पड़ता है और मनुष्य जीवन का मम समझ उसे उद्घाटित कर

प्रान फिर उमे कभी मिलेगा कि नही
घोर अपने मन से वह अनुभव विनय
भी करता है उसे समझाना भी है और
या उठना है—

या फिर,

जिस चाह तू उम न कर धाँया से कुछ भी दूर ।
मिला रहे मन मन से, छाती छाती में भरपूर ॥

लेकिन

परदेशा का प्राणि उपजना प्रनायाम हा धाय ।
नाहर नप से हृदय लहाना और कहूँ क्या हाय ?

ये पत्तियाँ इस प्रनायाम उपजनवाला परदेशी
का प्रीति व प्रति जहाँ मन से मन
घोर छाती में छाना भरपूर मिल रहने
का छोड़ प्रकट करता हूँ वहाँ प्रेमा
व मन का स्वयं समझाता भी है कि
एस परदेशी स निष्ठुर रहना ही अच्छा
है । उमी में उपकार है । उसके
पश्चात् धन की बन्दी में तमाल व
भूमन पर मजी हुई प्याली में जब
बिजनी मा बाई चमकना है तो उस
हरियाला में कवि व दोनो दृग बरस
पड़न है और एमा बिजनी गिरती है
कि उम अपरूप छग में कवि का
विद्राही हृदय प्रेम व अभिश्रुत हा
अपना हार स्वाकार कर लता है ।
उम आकाश भी बिजला व चमकने
पर होता हूँ तथा वह परदेशी को
समझाने का भी प्रयत्न करता है और
कहता है कि रस व लाम्बी भवरा का
वास मन दुतामा । वह सूखी पलडिया
को खिलाकर इस मर्म का अपने अनुभव
का वान बताकर कहना है । इतना ही
नही जस लोग सामान्य प्रम चर्चा
में प्राय वट निया करत हैं, वम ही
वह भा कहता है कि तुम्हारे जग
जितना को दखा है, पहले देखते है
और फिर रोत हूँ । कभी कभी सम

झाने से वाम नही बनना तो वह
स्वयं भुक्त जाता है और कट उठना
है कि दखो, तिमन वमत धा गया है ।
इम गुहावन में तुम मत भुका हम
स्वागत के चिये माला लेकर स्वयं
खड़े है । किंतु इस भा निराश होने
पर कवि कह उठता है कि तुम अत्यंत
मुग्ध और मरन थे, एमा मुना था,
किंतु वास्तव में अमृत में मिल हुए तुम
गरत हा । यह धनमुना कर देने पर
वट पुन कहता है कि विरह अग्नि
में जलाकर तुमने मेरा हृदय स्वयं की
अग्नि शुद्ध कर दिया है, हमपर शका
मत करो और जावन धन, मेरी बात
मानकर सोन कर तो । भले हा बाद
में पछाना पड़ । मेरी इस बात में
रचमात्र भी नदेह नही है कि मेरा
हृदय बिन्दुन खरा है । फिर वह
तरह तरह की व पवाण करता है और
कभा कभी आदेशोन्माद में अपने
पौष की वान भी कह बिना नही
रह पाता—

तुम्हारा पीतन सुख परिरम्भ,
मिलेगा और न मुझे कही ।
विश्व भर का भी हा व्यवधान
आज वह बाल बराबर नही ॥

कभा कभा स्वप्न रखकर वह जाग पड़ता
है, साथ ही माह में समस्त सुप्त उद्वग
मधुरतम होकर जग पड़ते है । प्रम में
वह धिलडुल एमा बातें कह जाता है
जो एक अवाध मन क स्नेहाद्वार
का भाति है । कभा कभा वह उलाहना
भा द उठना है, यथा—

किमी पर मरना, यही तो दुख है ।
उपद्रा करना, मुझे भी सुख है ।

महा है प्रायना हमारा ।

यह प्रायना नही वास्तव में उपासक है

प्रसाद की ये रचनाएँ जहाँ प्रणय सबकी समस्त मनाभावों, यथा भ्रान्त, वरणा, स्नेह वामना, जिज्ञासा, शका, दया, ममता, उपासना, आश्रय, शत्रुदोष, भाषा, निराशा आदि का अभिव्यक्ति सफरनापूर्वक करता है वही छायावाद और रहस्यवाद के बीच भी इनमें दिये हैं। विरुद्ध रचनाओं का मूल मीथ्य उमके विशुद्ध मानवीय होने में है, और वह यह है। इनकी अभिव्यक्ति रचनाएँ प्रीति हैं। कुछ अप्रति रचनाएँ भी इसमें हैं।

विषाद, बाधु का यत्ना खोला द्वार, शिखरा हुआ प्रेम, किरण, वसत की प्रतीक्षा इत्यादि इस सकलन का अभिव्यक्ति रचनाएँ हैं।

जहाँ तक रचनाओं में प्रतीतिविशेष का प्रश्न है चित्र वस्त्र सजाव और मन्त्रों हैं। 'होला की रात' उमका सर्वोत्तम उदाहरण है।

जहाँ तक भाषा का प्रश्न है अनेक स्थानों पर एक शब्द भी मिले जो खोले भाषा के नहीं हैं, विरुद्ध शुद्धपद्धति भाषा में अधिक प्रीति है, तथा भाषा की अभिव्यक्ति करने की क्षमता भी। कुछ रचनाओं की भाषा निश्चय ही लचर है। एही रचनाएँ अधिकांशतः सन् १९१४ एव १५ की लक्ष्यी हुई हैं। कुछ रचनाओं की भाषा इतनी निखरी हुई है जितना निखर आधु और कामायना का भाषा में है। गले हा इनमें वह भाषा नहीं है जो उनमें है।

यथा—

विरण ! तुम क्या निखर हा आज
रणी हा तुम विसके अनुप्रास,
स्वण सरसिग किञ्चक समान,
उबता हो परमाणु परण ।

धरा पर भुकी प्रायना सदृश,
मधुर मुरली सा फिर भी मौन,
किगा भ्रान्त विषय की विफल,
वेदना दूती सा तुम कौन ?

मुद्रावरा का भी प्रयोग इतस्तन रचनाओं में मिलता है, यथा बाल बराबर न मम भ्रान्त भरपूर दूर होना दोड़ लगाना, दूध और पाना सा मिलना, रटाई देकर पाठना बराना का कोर लगाना, गला बना चहलरदमी करना, बिछल पठना, अनस्यकर कहना, हाथ मलना, तमाशा दखना, आदि।

भरना में अरिख ताटक भ्रान्त तथा दाढ़ा का प्रयोग विशेष दुर्गा है। प्रसादजी के प्रिय छन्द में आमुवाला छंद और ताटक छंद है। उमका निखर रूप यहाँ कुछ रचनाओं में मिलता है।

इस प्रकार भरना प्रसाद का रचनाओं में विकास का नई दिशा का सकल वता है, जिसमें प्रणय, प्रतीति स्नेह और छायावाद रचनाओं का सकलन है। प्रसाद का रचनाओं में इस रचना का एक विशेष ऐतिहासिक महत्व है जिसका यहाँ व्याख्या की गई है।

भरने = का० कु०, ६६। का० २०५। प्र० ७।
[स० पु०] (अ०) 'भरना' का बहुवचन। २० 'भरना'।

भरने = चि०, १४५।
[कि०] (प्र०भा०) भडना।

भरने = का०, ६३।
[स० पु०] (अ०) 'भरना' का बहुवचन। २० 'भरना'।

भरने = चि०, ५१।
[कि०] (प्र०भा०) भरता है।

भरने = आ० १६, ६७। का०, १४३, ४५६।
[स० ली०] (दि०) प्र० १८। स० ४८।

चमक, दमक, भाभा। भाट्टि का भाभास या प्रतिबिम्ब, छण्ड दशन। वह प्रवाल भाभा जो समस्त चिथ में व्याप्त हो।

भलकना = का० ७३, १०५, २६२। चि०, १५७
[क्रि०] (हि०) १६०। अ० ७२।

चमकना। कुछ कुछ प्रबट होना। भाभास होना।

भलकावत = चि०, २२।

[क्रि०] (ब०भा०) भलका रहा है, भाभास द रहा है।

भलके = का०, १८०, २४५।

[स० पु०] (अ०) फफोले।

[क्रि०] णिलामी दिए।

भलते = प्रे०, ७।

[क्रि०] (हि०) पछे स हवा करत हैं।

भलना = का० कु० ६८।

[क्रि०] (हि०) पछ से हवा करना। हिलाना।

भलमल = का०, २३३, २३४, २३५।

[स० पु०] (हि०) मधेर में होनेवाला हलका प्रकाश, चमक दमक।

भला = चि०, १५६।

[स० पु०] (हि०) हलकी वर्षा। भालर। पग्ला समूह।

भलर सा = चि० २६।

[वि०] (हि०) भटकी का भर भर के समान।

भौंई = का०, २६०। अ०, १६, ७१ ७२।

[स० जी०] (हि०) छाया, परछाई। मधकार मधेरा। भोला। रक्तबिहार के कारण शरीर पर पड़े हुए काल धब्बे।

भौंकना = अ०, २५। स० ६२।

[क्रि०] (हि०) लुक छिपकर देखना।

भौंक भौंकर = का कु० १२४।

[क्रि०] (हि०) छिपे रूप से देख देखकर।

माड = अ०, १६।

[स० पु०] (हि०) छोटे छोटे एस वृक्ष जिनकी पत्तियाँ जमीन के निकट हैं। छत में टाँग जानेवाला शीश के फानूस।

माडखड = ल०, ४०।

[स० पु०] (हि०) ऐसा स्थल जहाँ बहुत कटाल छाटे छोटे वृक्ष लग हो।

भालर = का० कु० ६२। का०, २६३। अ०

[स० जी०] (हि०) ५६।

विनी वस्तु की शाभा लगाने के लिये उसमें किनारे किनार नाचे लटका हुआ किनारा।

भिमक = का० ५२।

[स० जी०] (हि०) एर प्रकार का अनात भय।

भिटका सा = का०, ४१।

[वि०] (हि०) भटका सा। कपन ना पदा हाना। धक्के सा लगना।

भिटके = ल० ६५।

[स० पु०] (हि०) भटका धक्का। (बहुवचन)।

भिर भिर = अ०, १८।

[अ०] (हि०) बिसा द्रव पदार्थ का कूहियों, धीर धीर भडना।

भिलकर = का०, २६२।

[क्रि०] (हि०) जबरदस्ती भिन्नकर।

भिलना = ल०, ४६।

[क्रि०] (अ०) बिचलतापूर्वक कोई वस्तु या वापति भेजना।

भिलमिल = अ० ७३। का०, १७, ६७ ७८,

[वि०] (हि०) १०४ १३६ १६७, १२६। अ०, ५। ल० ४३।

हिलता हुआ प्रकाश।

[स० पु०] एक प्रकार का मुतायम कपड़ा।

भिल्ली = का० कु० १२४। का० १७५।

[स० जी०] (स०) अ ३१।

भीपुर।

भिल्लोरव = चि० ५१।

[स० पु०] (हि०) भीमुर का ध्वनि भनकार।

भोना = का० ५३।

[वि०] (हि०) बहुत महीन, भिन्न व बहुत स छत्र वाला। भभरा दुबल।

भीनी = का० कु०, ७२। का० १६६, २६३।

[वि०] (हि०) भाना का आतिथ। ६० 'भाना'।

भीम रहे = वा, ६५।

[क्रि०] (हि०) किमी भाव म मस्ती म भूष रहे हैं।
हिल रहे है।

भील = ऋ, ७१ ७२, ८८। ल०, १६।

[म० पु०] हि) खूब लबा चौड़ा प्राकृतिक जवाभय
जिमके चारो ओर भीम हा।

[भील मे—'करना' मे पृष्ठ ७१ ७२ पर मकलिन
रवना। भील म श्याम वन क कालि
की छाया पड रहा थी। नभच खिना
था और बाणा निरंतर बज रहा
थी। प्रकृति मुग्य मन्च जान था।
उम एकांत मे व्याकुल हा जब उमन
बहा कि एसा एवान बहो मिलेगा ता
मैने उमका हाथ धरने हाथ में ल
लिया और वह एकाएक नितांत शिथिल
हा गए। ऋन परछाई, नभ शक्ति,
तारा, वृक्ष हम दृश्य का ओर सरत
वर श्रमात हा गए क्या क दवान स
उमा प्रकार उनकी उगली हिन उठी
जम मलयज क ऋके म कामल
किमलय हिलकर मधमस्त हो जाता
है। ऋल मे तारे श्रष्टमा क चांद का
भाँति सहरो म ऋकते ग।]

भुड = म० ३, ५, ७।

[वि०] (हि०) समूह, गिरोह समुदाय।

भुमलाता = वा० २००, २२७।

[वि०] (हि०) किमकता।

भुन = का०, ६४ ६८, १८५। बि०, ६६।

[पु० क्रि०] (हि०) ऋ०, २३। म०, २०, २१।

ऊपर म नीचे की ओर दुन कर।

भुनका = ऋ० ६६। ल०, १०, ३५ ६०।

[क्रि०] (हि०) = ऊपरी भाग का नाचे का ओर कुद
लटकना। निहुरना, नवना नम्र होना।
मन का किगा ओर प्रवृत्त होना।
हार मानना।

भुनकाना = वा० कु०, ७३। बि०, ५८। ल०,

[क्रि० स०] (हि०) ६६।

नवाना, नाच का ओर लटकाना।

भुसाय = वा०, १८५।

[म० पु०] (हि०) मन की प्रवृत्ति का किमी दिशा की
ओर प्रवृत्त होना।

भुकी सी = वा०, १८६, ६४। बि०, २२। ऋ०,

[वि०] (हि०) २८।

कुद मुदा हुई सा। नमित मी।

भुके = वा० १४२।

[क्रि०] (हि०) प्रवृत्त हुए।

भुठलाना = वा०, २७२।

[क्रि०] (हि०) झुका बनाना, बहकाना।

भूठे = वा०, २८। बि०, १७६।

[म० पु०] (हि०) झूठ बाननाल। किगा वास्तविकता
का विपरीत चित्रण।

भुरमुट = वा० ८८। प्र०, २। ल० २६।

[म० पु०] (हि०) पाम पाम उम हुए कई ऋच। द्रुत
स लागी का समूह गिराह। कुज।

भुरमुट सा = म० ४।

[वि०] (हि०) भुरमुट क समान। कुज क समान।

भुलाङ्गी = का०, १५२।

[क्रि०] (हि०) परशान बन्गा। विवण कर दूगी।

भुलसते = वा०, २१७।

[क्रि०] (हि०) श्वेक गया या जलने के कारण
किमी वस्तु क ऊपरा भाग का भुलना
या जलकर वाला पत्र जाना। भ्रामत।

भुलसना = म०, ५।

[क्रि०] (हि०) ६० भुलमत।

भुलसाता = का०, १५८।

[क्रि०] (हि०) भुलसा जाता। जलाता दुभा।

भुलसाना = वा०, कु०, १३।

[क्रि०] (हि०) दार्गे भुलसाना।

भुलसानेवाली = ल०, ६६।

[वि०] (हि०) जलानवाली।

भुलसाया = वा० १८१।

[क्रि०] (हि०) भुलम गया।

भुलसी = १२१।

[वि०] (हि०) भुलस गई।

मूम उठा = का०, २२३।

[क्रि० पु०] (हि०) मस्त हा उठा।

मूम मूमकर = क०, =।

[पु० क्रि०] (हि०) हिन हिल कर।

मूमते = क०, १८ चि०, ३८। म०, ८, १६।

[पि०] (हि०) मस्ती म हिलते।

मूमना = क० ८। चि० ६६। म० ६२।

[क्रि०] (हि०) ल ७४।

बार बार भाग पीछे किसी वस्तु का हिनना। भागे खाना।

मूम पड़ी = का०, २२४।

[क्रि०] (हि०) प्रमत्त हा उठा।

मूमे = का० १४५।

[क्रि०] (हि०) प्रमत्त हुए।

मूल = का० ७३ १६२ २४६। म० ७०।

[क्रि०] (हि०) चौपाया का पीठ पर डाला जानेवाला बगडा। साधुआ का विशेष पोशाक।

मूलता = का०, २५३।

[क्रि०] (क्रि०) हिलता। मूल पर मूलने का दशा।

मूलना = ल० ४०।

[क्रि०] (हि०) नाच नचकर बार बार भाग पीछे इधर उधर भाग स हिलना। मूल पर बैठकर पेंग लेना। बिना यात या काम की आशा में बराबर किसी एक स्थान पर भाते जात रहना। लटवना।

मूला = का० १४६, २६४।

[म० पु०] (हि०) पेठ या छत आदि में लटवाई हुई रस्सियाँ या रस्स जिसपर बठकर मूला है। हिंडावा।

मूले सी = का० १०५ १५१।

[पि०] (हि०) हिंडाव न ममान।

मूनी = का० १२८।

[क्रि०] (हि०) 'मूना' का विधिवृत्त रूप।

मेन = म०, ७०।

[पु० क्रि०] (हि०) फेवर। सहवर।

मेलता = का० २१६।

[क्रि० म०] (हि०) महता हुआ।

मेलती = का०, १४३।

[क्रि०] (हि०) सहता हुई।

मेलना = का०, ७७। का० कु०, १०, ६७।

[क्रि०] (हि०) म० ३२।

सहना।

मेलती है = २२६।

[क्रि०] (हि०) सहती है।

मोकर = का०, २७। का० कु० १८ २५।

[म० पु०] (हि०) का०, १७०, २६०। म० ७३।

मुकाव, प्रवृत्ति। बाक। भार। प्रवत या तीव्र गति। वेग, तेजी।

मोके = का० १०५ ११८।

[म० पु०] (हि०) मोक' का व्यवचन।

मोपडे = ल० ५६।

[म० पु०] (हि०) घात क्लम का बना हुई कुटा।

मोरी = म० ५४।

[म० ली०] (हि०) भाया।

मोली = ल० १७।

[म० ली०] (हि०) 'मो' काया। घना।

ट

टकार = का०, २००।

[म० ली०] (म०) म्कार। विस्मय। काति। ठन ठन शब्द। धनुष सीचने का शब्द।

टक = चि०, १५१ १७१। प्र० ३।

[म० ली०] (म०) स्थिर दृष्टि। तराजू का पलटा।

टकराना = का०, ८ ४३। का० कु० ५७।

[क्रि० म०] (हि०) का०, ० १२, १७, १६, २६, ५२ ६८ १६७, २४६ २६३।

जार स भिन्ना टकारें खाना मार भागे फिरना व्यर्थ घूमना।

[क्रि० म०] एवं चात्र पर दूसरा चात्र का जार म मारना टकर दना।

टने मोल = प्र० २।

[पु०] (हि०) मन्त भाव।

टटोलता = का० ५१।

[क्रि० म०] (हि०) मातृम करने का विध उगतिवा ल घृना या दबाव। डूबने का विध इधर उधर

हाथ पताना या दोढाना । बातचीत के द्वारा किसी के भाव को जानना ।
याद लेना ।

टट्टी = प्र०, ४ ।

[स० स्त्री०] (हि०) बाँग या गम आदि का बना हुआ हल्का और छोटा टट्टर ।

टपपाना = घा०, ५७ ।

[क्रि० घ०] (हि०) बूद बूद करके गिराना, चुपाना ।
भभके से सब खींचना या चुपाना ।

टरो = का० कु०, ११६ ।

[क्रि० प्र०] (हि०) घाना दबकर किसी को हटाने की सूचना देनेवाली क्रिया ।

टलती विचलती = ल०, ६६ ।

[क्रि० प्र०] (हि०) हट जाती और आन = मुह मोड़ लेती । अपना विचारों से भ्रमण हो जाती और दूर हो जाती ।

टलना = का० कु०, ४१ ।

[क्रि० घ०] (हि०) सामने से हटना, भिगवना, अपनी जगह से हटना ।

टहनिर्घो = का० कु०, ६६ ।

[स० स्त्री०] (हि०) कुत्त की पतली या छाटी शालाग, पतली दानियाँ ।

टहलना = का० कु०, १८, ६८, १०१ । का०, [क्रि० घ०] (हि०) २०५ ७६६ । १० २५ ।

मनःहलाय के लिये धीरे चलना । घूमना फिरना ।

टालीकोट = वि०, ६३ ।

[घ० पु०] (हि०) एक स्थान जिसका नाम जहाँ प्राचीन काल में भुगला के साथ महाराज भूयैयु का युद्ध हुआ था ।

[टालीकोट—टंगगा नदी के किनारे स्थित का स्थान जहाँ १५६५ ई० में भुगला के साथ महाराज भूयैयु का युद्ध हुआ था ।]

टिफना = का०, १८० २०० । प्र०, १६ ।

[क्रि० घ०] (हि०) कुछ समय के लिये रचना या ठहरना कुछ जगह पर काम करना या काम में आना स्थिर रहना बना रहना या बस रहना ।

टीको = वि० ६ ।

[म० पु०] (प्र० गा०) टीका या सिलक ।

टुम्डा = का० कु० १०२ ।

[म० पु०] (हि०) लड, चिल्ल के द्वारा किसी वस्तु का विभक्त अंग । राख का तोड़ा हुआ अंग या गुड ।

टुम्डी = घा० १३ ।

[स० स्त्री०] (हि०) १० टुकड़ा । १७, जया । किसी विशेष प्रकार के काम करनेवाला का दल ।

टुकड़े टुकड़े = १०, ३८ ।

[स० पु०] (हि०) गड गड ।

टूट = का० ३६ । १०, ४५ ।

[पूर्व० क्रि०, घ०] (हि०) टूटकर । टूटकर निकला हुआ खंड । टूटन । भूत । टाटा घाटा, चूना । बर्फी ।

टूटना = का० कु०, १०८ । का० १६३ । ल०,

[क्रि० घ०] (हि०) २१ ।

खंड खंड होना । भग्न होना, अंग का जोड़ जाँ उखल जाना । लघानार चलनेवाली क्रिया का क्रम रचना । किसी पर एकाग्र आक्रमण करना । एकाग्र वस्तु में लोच का टूटने के लिये या मारने के लिये आ जाना । घन वस्तु में बर्फी का आना । युद्ध में विजय का शत्रु के हाथ में आ जाना । शरीर में छेदन या तनाव के साथ पीड़ा होना ।

टूटी = घा०, १० । प्र० १८ । १, ४२ ।

[क्रि० घ०] (हि०) टूट गई गड गड हा गई ।

[वि०] (हि०) टूटी हुई । गड गड हलवाली ।

[घ० स्त्री०] (हि०) घाटा चूना । बर्फी ।

टूट = का०, १८५ । प्र०, १३ । म०, ११ ।

[क्रि० घ०] (हि०) टूट गए ।

(वि०) टूट गए ।

टेक = का० ५५, ११२ । वि०, २० ।

[स० स्त्री०] (हि०) नारा वस्तु का जिससे रंगन के लिये उभर नाच लगाई दूर लक्ष्य । चाँद, चूना । दौमना, महारा । प्राथम,

अवनव। ऊँसा टाला। मन म ठानी
हुइ वात, हठ।

देदी = चि० १८५, १६०। अ० ३२।
[वि० स्त्री०] (हि०) जो गाथा न हो, कुटिल, विरुद्ध, वठिन
मुश्किल।

टेरो = चि १७२।
[क्रि० स०] (प्र० भा०) टेरना या पुकारना। पुकारा।

टोक = का० २२५।
[म० स्त्री०] (हि०) टोकने का क्रिया या भाव। किसी वस्तु
का आर या छोर।

टोकना = का० कु ४५।
[क्रि० स०] (हि०) किसी को काम करने के लिये उद्यन या
तमार दलकर बुद्ध कटकर या पूछताछ
करने रोचना।

टोने से = का० ३६।
[वि०] (हि०) टडोलते हुए के समान हूडन हुए स।
टाँस।

टेरि = चि० ४१।
[पूव० क्रि०] (हि०) पुकार कर।

टोलियाँ = अ० ७०।
[म० स्त्री०] (हि०) एक साथ एक काम करनेवाले सतियों
को छोटी छाटा मडलियों छाट मुझ।

ठ

ठठक = का० १०१।
[म० स्त्री०] (हि०) शात मरना जाडा। तरी सताय
हूमि।

ठगे से = चि० १५७।
[पुहा०] (प्र० भा०) ठग म वठिन स भववतके स।

ठहरठहर = का० २०१ २४१। न० ६ २० ३६।
[पूव० क्रि०] (हि०) रह रहकर गन रहकर।

ठहरती = का० २५ ८६, १०, २६०।
[क्रि० प्र०] (हि०) 'ठराना'। मरना।

ठहरना = का० २३, ५ १५। का० कु० ८।
[क्रि० प्र०] (हि०) अ० २४ २६ २१, ८० ८८। ल०
१० ७१।

रचना। बनना। ठरा रानना, ठिना।

एक स्थान पर बना रहना। जगो
सराव या नष्ट न होना। घम रचना,
नि बचत या पका होना।

ठहरात = चि० ६७।
[क्रि० स०] (प्र० भा०) 'ठहराना'।

ठहगती = का० ६।
[क्रि० स०] (हि०) 'ठहराना'।

ठहराना = का० २६।
[क्रि० स०] (हि०) चलन स रानना। ठिना। मराना।
पका करना। करना।

ठहरागो = चि० ३६।
[क्रि० स०] (प्र० भा०) किसी को ठहराने के लिये दूसर
का प्रेरित करना।

ठहरे = का० १६२।
[क्रि० स०] (हि०) रने मडे।

ठहरो = का०, कु०, ८४। का०, १०० १०६
[क्रि० स०] (हि०) २००। म० ४
ठहरने का आना देना।

[ठहरो—पहले पहन हनु बना ३ किरण २,
कार्तिक १९६५ वि मे प्रकाशित मोर
कावन कुसुम म पृष्ठ ४४४ पर
सकनित। मित्र पथ पर वग व
माय घाट पर तुम वहाँ जा रहे हो
मुझारा मोर धातुर जाल स को।
दल रहा है, उमपर म्या हनि म काई
नरो दलना। 'हट जाओ की कडा
आवाज म वह डर जाना है यदि उग
मावना गग ता वह प्रम मुनि
हया। वह मुझारा धावित है यह
मन भूना। मोर वह मुझारा धावित
है इमनि घमड मन करो। मुनि
हटि म वह भववतिन हा जाना है
कि भा बरा रहन पर भा वह काम
म सवना रहना है। उमका मुह
अपमान ननों बना धावित धावित
मधुर मवायन म उम नुनाना धावित।
निनका मन जरा उग अमहाय की भा
मुन सा जा साट पर बराह रहा है।

उमसे भी बकश न बोता सीछी बोता
गाना । उमका भाषा म भाँगू है । वह
दुल बा मरामगर है । जिन भूमिमान
रूपी नोका पर तुम चले हा वह भति
छु है । वह प्रगाम करना है और तुम
उमका उमर तक नहीं देन । क्या वह
जाव नहीं है जो उमका भार टपि नहीं
करन । यह क्या भूमिमान और क्या
कठोरता यदि उमने कोई भून की है
हा भून जाओ । यदि उमका कपडा
मल होत वे बारख उम पाम नहीं
बठा सकन ता उस पर नया कपडा
नहीं पहना सकन । तुम्हारा भुटुनियाँ
टनी हैं चेहरा भी लाल है, तुम्हारा
म्यान म नलवार भी नहीं है, वह तुम्ह
दल कर डर रहा है, अपने हाथा का
रोका और यदि उसपर कोई बार कर
हा उम भी राका । ममार स जा डर
हुए है उनका निय तलवार नहीं है
उनका निय तो तुम्हारी सात्वना
बाहिए उमस हा वे नम्र हाग ।]

ठाँव = बा० १८ ।

[सं० पु०] (हि०) स्थान, जगह, ठिठाना ।

ठाढो = बि० ७०, १८१ ।

[म० पु०] (श० भा०) लडा ।

ठानो = बि०, ६१ ।

[क्रि० सं०] (श० भा०) ठानना, ■ परता के साथ काम
प्रारंभ करना, हुन सक्नप करना ।

ठान्यो = बि०, ३२ ।

[क्रि० सं०] (श० भा०) ठान लिया, टढ़ कर लिया, पक्का
कर लिया ।

ठिठन्सी सी = का०, ३६ ।

[वि०] (हि०) रुकता हुई वे समान या रुक रुक कर
चलता हुई की तरह ।

ठिठकी = बि० १६४ ।

[क्रि० सं०] (हि०) रुक गई, थम गई, ठिठक गई ।

ठिठुरे = का०, ३ ।

३४

[वि०] (हि०) मरनी के कारण छेँटा हुआ या मिथुने हुआ ।

ठिठोलो = बि०, ५८ । ल०, १७ ।

[म० स्त्री०] (हि०) दिम्नगी, मज्जा हसा ।

ठीक = का०, १३, २२, २३, २६ । बा०, ११०

[वि०] (हि०) २५१ । अ० ३२ । प्र० ५ । म०,
५ १०, ११, २१ ।

यथाय प्रामाणिक । उपयुक्त उचित,
मुनागिर । शुद्ध दुस्मत् । मोने रास्त पर
घाया हुआ । निश्चिन किया हुआ, पका ।

ठुकराना = बा०, १२६ । अ०, ३१ । ल०, ४२ ।

[क्रि० सं०] (हि०) ठापर लगाना, तुण्ड ममक कर दूर
करना ।

ठोर = बा० ६०, १४ । बा०, १०२ १६३ ।

[म० स्त्री०] (हि०) प्र० १६ । ल०, ५७ ।

वह घाघात जा रास्त में चलन हुए
कण्ड पत्थर आदि के धक्के से पर म
लगता है ।

ठोस = ल०, ७६ ।

[वि०] (हि०) जा पोरा या खापला न हो । दृढ,
मजबूत ।

ठोर = बि०, १७५ १८६, १६० ।

[सं० पु०] (हि०) जगह, स्थान ।

ठोरहि ठोर = बि० १८३ ।

[म० पु०] (श० भा०) जगह जगह, प्रत्येक स्थान ।

ढ

ढङ = बा०, २४६ । ल०, ७८ ।

[म० पु०] (हि०) धार, बिपल कांडो का वह अंग जिसके
माध्यम से डमते हैं । कलम की जीभ ।

ढग = बा०, २१४, २८० ।

[सं० पु०] (हि०) काल, कदम । कदम के बीच का वह
दूरी जो एक स्थान से दूसरे स्थान
पर चलते हुए पर रखन में आती है ।

ढग भरता = का० २८६ ।

[श्रुता०] (हि०) कदम रखन हुए चलन जाना ।

ढगमग = का०, १६५ । ल०, ५० ।

[म० पु०] (हि०) झर झर हिलना डुलना । विचलित

होना किसी बात पर जमा न रहना ।

डर = का०, ६८ । का०, १२, १६६ नि०,
[सं० पु०] (हि०) ६७, म०, १२, १३ ।

घनिष्ट की आशका से उत्पन्न होनेवाला भाव । भय, भीति । घनिष्ट की सभा पना से मन में होने वाला चिन्ता । आशका ।

डरती = का० १७६ ।

[त्रि० घ०] (हि०) डरना' क्रिया का सामान्य वर्तमान रूप । > डरना' ।

डरना = का० कु० ४४, ८५ । चि० ७२ ।
[क्रि० घ०] (हि०) ऋ०, २१ ७८ । ल० ३८ ।

घनिष्ट भयवा हानि की आशका से व्याकुल होना । भयभीत होना । आशका करना ।

डरहू = चि०, ५२ ।

[त्रि० घ०] (प्र० भा०) डरो, भय करो ।

डरा = का०, १८२ १८६ ।

[क्रि० स०] (हि०) डर गया भयभीत हो गया ।

डराहि = चि० २२ ।

[क्रि० घ०] (प्र० भा०) डरते हैं भय करते हैं ।

डरे डरे = का० १७६ ।

[वि०] (हि०) भयभीत आशक्ति । घनिष्ट की सभा बना से किसी के सामने आने में हिचकिचाहट, सकोच तथा भय भाव से भरे हुए ।

डरो मत = का०, ५८ ।

[क्रि०] भयभीत न होओ ।

[डरो मत श्री अमृत सतान—हस में कामायनी के अर्द्धा' मग का यह अन्तिम अंश मई १९३० के अंक में प्रकाशित हुआ था जो कामायनी के पृष्ठ ५८ ५९ पर है । इसका शीर्षक था 'भानवता का विकास'—दे० कामायनी ।]

डाँडे = का० १६ ।

[सं० पु०] (हि०) नाव की छेने का ढाँडा ।

डाग = चि०, १५, १४७, १७२ ।

[म० स्त्री०] (हि०) ढाल, धारा । ए प्रकार का लूंग जो फागम जलाने के लिये दावार में लगाई जाती है । ढालिया ।

डारि = चि० २६ १६३ ।

[पु० त्रि०] (ग० भा०) ढालकर, छोड़कर ।

डारिके = चि०, १७२ ।

[पु० त्रि०] > डारि' ।

डारगो = चि० ६७ ।

[त्रि० स०] (हि०) ढाल दिया छोड़ दिया ।

ढाल = का० १६ । का०, ५६, १४१ १५१,

[सं० स्त्री०] (हि०) २११ । चि०, १४६ । ऋ०, ४६ ।

प्र० ८, १६ । म०, ७ । ल०, ६७ ।

पेहवा वाला डार । तलवार का फल ।

ढाल ढाल = का०, ६८, २६३ । ऋ० २७ ।

[सं० स्त्री०] (हि०) प्रत्येक डात सब जगह ।

ढालना = का०, ४२ । का०, ५, ३१ का० कु०,

[क्रि० स०] (हि०) ३६ । ल० ४१ ।

नीचे गिराना छाड़ना । किसी पात्र में कोई वस्तु गिराना छोड़ना । घुमाना । फलाना ।

ढालने = का० १४४ ।

[क्रि० स०] (हि०) छोड़ने, फेंकने रखने ।

ढाल पात = का० कु० १०१ ।

[सं० पु०] (हि०) शाखा और पत्त ।

ढाल सहित = का० कु० २५ ।

[वि०] (हि०) शाखा के साथ या सहित सवाल ।

ढाला = का० १६२, १६६ ।

[क्रि० स०] (हि०) छोड़ दिया, फेंक दिया रख दिया ।

ढालियों = का , ३२, १७७ ।

[सं० स्त्री०] (हि०) शाखाएँ ढालियाँ ।

ढाली = का०, १८, २६ । का०, ७७ ६८,

[म० स्त्री०] (हि०) १६३ १६७ १७७ २८४ । का० कु०,

३८ । चि० ४६ । प्र० २, ६, १४ ।

म०, २ । ल० ३१, ३५, ४२ ।

> 'ढाल' ।

ढाले = का०, १६ । का०, १४८ ।

[क्रि० स०] (हि०) छोड़े, रखे, पँचे ।

हालों = का०, १५८ ।

[सं० स्त्री०] (हि०) द० 'हालिषी' ।

हालो = का०, १८४ ।

[क्रि० म०] (हि०) हालना वा आनायक क्रिया ।

हाह = का०, ८४ ।

[सं० स्त्री०] (हि०) जलन, ईर्ष्या ।

होह = का० १४५ ।

[सं० पुं०] (हि०) छोटा गाव । उजड़ हुए गाँव का टाला ।
ग्राम दबता ।

हुवाना = बि०, १७८ । ल०, १८ ।

[क्रि० म०] (हि०) पाना या किसी तरल पदार्थ में समूचा
हालना । गोता देना । चौपट या नष्ट
करना ।

हुवी = भ०, ५१ ।

[सं० स्त्री०] (हि०) जल में डूबने का क्रिया या भाव गाना ।

हुयती सो = का०, २६ ।

[वि०] (हि०) डूबता हुई के समान, वह जो डूबता
प्रतीत होती है ।

हुना = भा० १ का० कु०, २८ । वा०, ८२,
[क्रि० म०] (हि०) १८८ । बि०, ३ । प्रे० २ ।

पानी या किसी तरल पदार्थ में पुरा
समाना, गाना खाना । सुख चद्र आदि
ग्रहा का अस्त होना । चौपट होना नष्ट
होना । शूण । दण्ड हुए धन का न
मिलना । व्यापार से लगे हुए धन का
घटना ।

हुया = का०, ८, १५, ७० । १५६, १६८ ।

[क्रि० म०] (हि०) हूब गया । नष्ट हो गया । सूख, चद्र
आदि ग्रह नष्ट हो गए ।

हुये = का०, ८, ५६, १८४ ।

[क्रि० म०] (हि०) २० 'हुवा' ।

डेरा = का० कु० ६३ ।

[सं० पुं०] (हि०) टिकान, ठहराव । शंभा, तबू । ठहरने
का स्थान, छावनी ।

डेरा डालना = भा० १५ ।

[पुद्ग०] (हि०) ठहरने के लिये आयोजन करना या
टिकाना, ठहरना । उ०—पाकर इस शूय
हृदय का सवन आ डेरा डाला ।

डोर = का०, २६५ । ल०, ४६ ।

[सं० स्त्री०] (हि०) पतला तागा, डोरा, धागा । पानी
तीव्रनेवाली रस्सी ।

डोरी = का०, १२५ । वा० कु०, ११४ ।

[सं० स्त्री०] (हि०) रस्सी, रज्जु । पाण, धमन ।

डोरी सी = ल०, ६६ ।

[वि०] (हि०) डोरी के समान । पतली ।

डोल = का० ६८, १४८, १६६, २३७, २५२,

[सं० पुं०] (हि०) लहने का मोल बरतन । टिडाला,
झूला । पालकी ।

डोलत = बि०, १, १५८, १६१ ।

[क्रि० म०] (हि०) डोल रहा, हिलतुल रहा, चल रहा ।

डोलना = ल०, १६ ।

[क्रि० म०] (हि०) हिलना चलायमान होना । चलना,
फिरना, टहलना । हटना । चला
जाना । चित्त विचलित होना ।

डोल = बि०, १४ ६६ ।

[क्रि० म०] (श० भा०) हिल, चल, हट । '० डालना' ।

ड

डँक रहे थे = का० ४६, १५१ । ल०, २१, २५ ।

[क्रि० म०] (हि०) किसी वस्तु के ऊपर । किसी दूसरी वस्तु
(जैसे चादर आदि) को आनाकर छिपाने
की क्रिया कर रहे थे ।

डँकना = भा०, ७६ । प्रे०, १२ । ल०, ७६ ।

[सं० पुं०] (हि०) ढाकने का वस्तु, ढक्कन ।

[क्रि० म०] (हि०) छिपाना ।

[क्रि० स०] (हि०) किसी वस्तु का घाट में करना, किसी
वस्तु का किसी से ढाककर छिपाना ।

दग = वा० कु०, ६६ । म०, १४ ।

[सं० पुं०] (हि०) रात, जला, प्रणाला, पड़ाव । प्रकार,
भात, तरह । रचना, बनावट । युक्त,
उपाय । आचरण, व्यवहार, चालढाल ।
संज्ञा, स्थिति, दशा ।

दक ले = म०, २२ ।

[क्रि० म०] (हि०) दकना क्रिया का प्रयोगात्मक वतमान
रूप ।

दकी = का० कु०, ७१ ।

[वि०] (हि०) दकी हुई, छिपी हुई, धाँक्यादित ।

ढके हुए = ल० ६४।

[वि०] (हि०) धिगे हुए। मोट म रहनेवाले।

ढयो = वि०, १८४।

[क्रि० स०] (ब्र० भा०) नष्ट कर दिया, बरबाद कर दिया।

ढरना = भ०, १६, ४४। ल० ३८।

[क्रि० भ०] (हि०) ढरकना, ढल जाना, गिरकर बह जाना। गुजरना, बीतना। उडैला या लुटकाया जाना। सचि में ढाला जाना।

ढरी = का० १८१।

[क्रि० भ०] (हि०) 'ढरना' क्रिया का सामान्य भूत रूप।

ढरे = का०, ६७।

[क्रि० भ०] (हि०) ३० 'ढरी'।

ढरो = का० कु०, ७७।

[क्रि० भ०] (हि०) 'ढरना' क्रिया का आनामूचक रूप।

ढल गया = का० १४४, २३५। ल० ३५।

[क्रि० भ०] (हि०) समाप्त हो गया, भस्त हो गया।

ढलकना = ल० ६।

[क्रि० भ०] (हि०) किसी तरल या द्रव पदार्थ का आकार से नीचे की ओर जाना ढलना, लुढ़कना।

ढलता सा = का०, १०१।

[वि०] (हि०) ढलत हुए के समान, भस्त होता हुआ सा या समाप्त हुआ सा।

ढलती = का० १७६।

[क्रि० भ०] (हि०) पक्ष में हो जाती। उतरता, समा जाता या विलीन हो जाता। अनु रूप हो जाता।

ढलते = का०, २६४ २७२।

[क्रि० भ०] (हि०) २० 'ढलता'।

ढलना = प्रि० ४। म०, २०।

[क्रि० भ०] (हि०) ढरकना, गिरकर बहना। बीतना लुटकना। किमा व पक्ष में होना। किसी पर प्रसन्न होना। सचि में ढाना जाना। लहराना।

ढलमल = ल०, ३०।

[वि०] (हि०) लहराता हुई, घाभा से युक्त।

ढला = का०, १६५, २२८।

[क्रि० भ०] (हि०) 'ढलना' क्रिया का सामान्य भूत रूप।

ढली = का०, २४७।

[क्रि० भ०] (हि०) २० 'ढला' (स्त्रालिंग)।

ढलें = ल०, ४२।

[क्रि० भ०] (हि०) ढलना क्रिया का प्रेरणाप्रव रूप।

ढढकर = का०, १४५।

[पूव० क्रि] (हि०) गिरकर या ध्वस्त हाकर, मष्ट होकर, मिटकर।

ढार = का० ८३। का० कु०, ७७। भ०,

[स० पु०] (हि०) २१, ४४।

ढाल उतार। ढाँचा, रचना, बनावट।

[सं० श्रौ०] (हि०) बान का एक गहना।

[क्रि० स०] (हि०) 'ढारना' क्रिया का सामान्य रूप।

ढारत = वि०, १८२।

[क्रि० स०] (ब्र० भा०) ढार रहा या ढार देना।

ढारि = वि० १५०।

[पूव० क्रि०] (ब्र० भा०) ढारकर।

ढारि के = वि० ४७।

[पूव० क्रि०] (ब्र० भा०) २० 'ढारि'।

ढाल = का० ७२ १६८ २२८। म० ११।

[सं० श्रौ०] (सं) एक प्रकार का वह भस्त्र जिससे तल वार आदि की चाट रोका जाती है।

(हि०) वह जगह जो बराबर नाचा होता चली गई है। ढालन का क्रिया या भाव।

ढालकर = का०, १६३।

[पूव० क्रि०] (हि०) उडेलकर, गिराकर।

ढालवी = का०, १८३, २६८।

[क्रि० स०] (हि०) 'ढालना' क्रिया का सामान्य भूत रूप।

ढालना = का० कु० ६७।

[क्रि० स०] (हि०) किसी तरल पदार्थ को गिराना या उडेलना।

ढालें = का० २७६।

[वि०] (हि०) वह जमीन जो बराबर नीचा टानी गई हो। ढालू।

ढिग = वि० ३६ ६६।

[क्रि० भि] (हि०) ममाय, निवट।

[सं० श्रौ०] (हि०) ल' विनाय। छार, हाथिया।

ढीठ = चि०, १८३, १८५।
[चि०] (हि०) बड़ा का आदर या सत्कार न करने-
वाला, अनुचित साहम करनेवाला,
माहसी।

ढिठाई = चि०, ६६।
[म० श्री०] (हि०) ढाठ हान की श्रिया या भाव अनुचित
साहस, निलज्जता, घुटता।

ढील = स०, १५।
[स० श्री०] (हि०) शिथिलता मुस्ती, अनुचित विनय।
बचन का ढीला करने का भाव।

ढीला = का० १०४। ल०, १४।
[वि०] (हि०) जो बर्मा या तना न हो। जो बन्त
गात्ता न हो। जो अपने कत य अथवा
संबन्ध पर स्थिर न हो। मुस्त,
भालसी।

ढीली = का०, २७१। चि०, १८१।
[चि०] (हि०) 'ढीला'।

ढीली सी = का० २३४।
[चि०] (हि०) मुस्त रहनेवाली की तरह, भालसी
मदण। वह जिसका बचन 'तुम तुम'
माझूम होता है।

ढुलकना = प्रे० १८ २२। ल०, ७८।
[क्रि० घ०] (हि०) निरंतर ऊपर से नीचे की ओर खुद
कत हुए गिरना, झुंकना।

ढुलकनर = का०, २६८।
[प्रव० क्रि०] (हि०) तुडकनर।

ढुलकाना = १४।
[क्रि० स०] (हि०) झुंकाना, ढगलाना।

ढेर = प्रे० २०। म० २।
[सभा पु०] (हि०) समूह घटाला, राशि।
[चि०] अधिक बहुत।

ढेरी = भा०, ३५। का० कु० ४६।
[सभा श्री०] (हि०) समूह राशि।

ढेरी = का० १६०।
[वि०] ढेर का बहुवचन।

ढोकर = का०, ८६।
[क्रि०] (हि०) लादकर लाना, वहन करना।

ढोती = का०, ११८।
[क्रि०] (हि०) ढोती है।

ढोना = भा० १२।
[त्रि०] (हि०) वहन करना लादकर लाना।

त
तनु (तन्नु) = का०, १५१, १८५। चि० १४३।
[म० पु०] (म०) मृत, तागा। मतान। विस्तार,
फलाव। तात।

तनु सन्ना = का० १४५।
[म० पु०] (म०) धाम का तरह मृत की तरह।
सन्न = का० कु०, ११४। का० १६३।
[म० पु०] (म०) मृत। छुनाहा। तांत। कपडा। मिटात।
प्रमाण। कारण उपाय। अधिकार।
समूह। घन। शरी। उद्घय। हिंदुमा
का उपासना मबयी एक शास्त्र जो
शिव का बनाया हुआ माना जाता है।

तद्रा = भा० ५४। का० ३४ ६८ १००,
[सं० श्री०] (सं०) १६६, २२६। ऋ० ८८।
यह अवस्था जो नीच आन के पहले
होता है। उचाह।

तद्रालम = का० १६७।
[वि०] (हि०) तद्रा से भालस्य युक्त।
तद्रा सी = प्रे० १६।
[म० श्री०] (हि०) भलमाई हुई, तद्रा से समान भलमाई
हुई।

तउ = चि० ५१, १६५।
[अव्यय] (हि०) तो भी, तिमपर भी तथापि।

तऊ = चि०, १७६ १८४।
[म०] (श्र० भा०) 'तउ'।

तऊ = भा०, ४०। का० कु०, ४१। का०,
[अव्यय] (हि०) २८, ४२, ६४, ६६, १४० १४२,
१६६, १६६ १७०, १७५ १७६,
१८५ २१५, २२०, २४४। प्रे०,
१८, १६, २२, २५ २६। म०, ११,
१५ २२। ल०, १५, १६।

विनी वस्तु या व्यापार की सीमा या
अवधि सूचित करनेवाली एक विभक्ति।
पयत।

तखली = का०, १४१, १४२ १४५ १५०।
[सं० श्री०] (हि०) वह यत्र जिससे मृत जाता जाता है।

तज = ल०, १४, १५, १७ ।
 [पूर्व० क्रि०] (हि०) छोड़ना परित्याग करना, त्यागना ।
 तजत = चि०, ३२ ।
 [स० पु०] (प्र० भा०) त्यागने की किया या भाव ।
 तजि = चि०, ७७, १०६, १४८, १८८ ।
 [पूर्व० क्रि०] (प्र० भा०) त्यागकर, छोड़कर, तजकर ।
 तजै = चि०, १०३ १६८ ।
 [क्रि०] (प्र० भा०) तजता है ।
 तजौ = चि० १०३ ।
 [कि०] (प्र० भा०) छोड़ा त्यागो ।
 तजयो = चि०, ७७ ।
 [क्रि०] (प्र० भा०) त्याग दिया, छोड़ दिया ।
 तट = मा०, ४, ८ ७२ । क०, ६०, १० ।
 [स० पु०] (स०) का०, १३, १६, ३८ ८१ २४५, २४६ २५०, २६३ २६६ २७० ।
 चि०, १५ । क० ३५ । प्र० ८ । म० ८०, ल० ५३, ५६ ।
 क्षत्र प्रदेश । किनारा, तीर । महात्मा ।
 तटन = चि०, १५० ।
 [स० पु०] (प्र० भा०) तटा किनारो ।
 तटिनी = प्रे०, ८, ११, २१ ।
 [स० ली०] (स०) नदी, सरिता ।
 तटिनी तरंग = का० कु० ७२ ।
 [स० पु०] (हि०) नदी का लहर ।
 तडित्त = का० कु०, ४३ । ल० ३२ ६३ ।
 [स० ली०] (म०) विद्युत् विजला ।
 तत्व = क० २८ । का०, ३ १५३ २६८ ।
 [स० पु०] (स०) प्रे० २० ।
 मयायता जगत् का भूत कारण ।
 सात्त्व शास्त्र मे तत्व २५ माने गए है ।
 (गुण प्रकृति बुद्धि, अहंकार चक्षु
 कर्ण नासिका जिह्वा त्वक् नाक
 पाणि पाशु पात्र उपस्थ मन ज्ञान
 स्पर्श, रूप रस, गंध पृथ्वी जल तज
 वायु आकाश) । परमात्मा ब्रह्म । सार
 वस्तु मारग ।
 तत्पर = क०, ११ ।

[वि०] (स०) उद्यत, सनद्ध । दत्त, निपुण ।
 तथा = प्र०, ११ ।
 [प्र०] (स०) और ।
 तथागत = ल०, १२ ।
 [स० पु०] (म०) गौतम बुद्ध ।
 तथापि = का० कु० ३६ । चि० १५५ ।
 [प्रत्य०] (स०) तो भी, तब भी, तिसपर भी ।
 तद्यपि = चि०, ३०, ३६ ४१, १०१, १६६,
 [प्र०] (स०) १६८, १७० ।
 तो भी, तिसपर भी, तथापि ।
 तद्यापि = चि०, ७०
 [प्र०] (स०) तो भी ।
 तन = मा० २४, क० १२२ २६३, चि०
 [म० पु०] (स०) ३४, १४८ क०, १६ ।
 तनु शरीर, देह काया, बदन ।
 तनक = का० कु०, ४५ ८४ ।
 [वि०] (हि०) ०० तनिक ।
 [म०] एत रायिनी का नाम ।
 तनवा = का० कु० ११७ । का० ३४ ।
 [क्र० प्र०] (हि०) तनना क्रिया का रूप । लिखाव के
 कारण अपने पूरे विस्तार तक पहुँचना ।
 झकड़ कर साधा खड़ा होना । अभि
 माग्युक्त छह होना ।
 तन मन = का० १२८ । चि०, ६५ । प्रे० प०, २ ।
 [स० पु०] (हि०) पूछ लपकता, पूछ सहयोग सब कुछ ।
 तनरक्षा = का० कु० ३५, का० १६१ प्रे० प०,
 [स० ली०] (स०) १५, २५ ।
 बचाव, रक्षण । राल, भस्म । शरीर
 का रक्षा ।
 तना = का० कु० ६ । का० ७१ १२६,
 [म० पु०] (पा०) (हि०) २०५ । चि०, १५१ ।
 बूझ व नाच का हिस्सा जहाँ डाली
 नहीं रहता । पेट का घट ।
 तनिक = का० कु० ४५ का०, २४ ७१
 [वि०] (हि०) १४१ १६० १६४, १६७ क० ३६ ।
 थाना, कम, छोटा ।
 (क्रि० वि०) (हि०) जरा भी, दुक ।

तनिको = श्री० ४६ । क०, १४ । चि, १८६ ।
[क्रि० वि०] (ब्र० भा०) जरा भी ।

तनी = चि० १६४ ।
[क्रि०] (हि०) तनना का भूतकालिक स्त्रीलिंग रूप ।

तन्मय = का०, २७३, ८५, २८६ ।
[वि०] (स०) किसी काम में मग्न, दत्तचित्त लव लीन ।

तन्मयता = घ्रा०, ६६ ।
[स० पु०] (हि०) किसी काम में मग्न दत्तचित्त, लवलान ।

तप = क०, २८, २९ का० ३१, ३३, ३६
[स० पु०] (म०) ५५ २४२, २४७ । ल० ३३ ।
तपस्या । नियम । अग्नि । एक बला का नाम । एक लोक का नाम । शरीर और हृदयों को वश में रखने का धर्म । ग्रीष्म ऋतु ।

तपसी = क०, ३२ ।
[क्रि०] (हि०) जलनी, गरम होता ।

तपते = का०, ५० ।
[क्रि०] (हि०) जलत, गरम होने । पूछ ताप पर होता ।

तपन = का०, ५० । चि० १५६ । प्र० १,
[स० पु०] (स०) ४, १५ २६ ।

जलन । भूय । एक प्रकार की अग्नि । एक नरक । अरुणी का पेड़ । वह त्रिया, या हावभाव जो नायक के वियोग में नायिका कर या दिखावे । ताप गरमी ।

तप घन = चि०, ५६, ७६ ।
[स० पु०] (हि०) तपस्या का स्थान, ऋषियों का आश्रम तपस्या करने का जगल (वन) । अरुण्य की तपस्या भूमि ।

तपस = का०, २७० ।
[स० पु०] (हि०) चद्रमा । सूर्य । पक्षी । वतचर्चा । फागुन मास ।

तपसी = चि० १८३ ।
[स० पु०] (हि०) तपस्या करनेवाला । तपस्वी ।

तपस्या = का, ३३ । क०, ७८ ।
[स० स्त्री०] (स०) तप, वतचर्चा । फागुन मास ।

तपस्वी = का०, ५२, ५६ ।
[स० पु०] (स०) तपस्या करनेवाला, तपसी ।

तपस्वी सा = का० ३ । प्रे० ३ ।
[वि०] (हि०) तपस्वी की गांठ ।

तपाता = प्रे० प० १५ ।
[क्रि०] (हि०) तपस्या करता । जलाता ।

तपावत = चि०, १४ ।
[स० पु०] (हि०) तपस्वी ।

तपोवन = का०, २७६, २८०, २८७ । चि०
[स० पु०] (स०) ५५ ५६ । ल०, ३२ ।
तपस्या करने का स्थान, ऋषियों का आश्रम ।

तप हृन्म्य = का कु०, ६२ ।
[स० पु०] (म०) टु टा हृदय । शांतातुल मन ।

तथ = श्री० २०, से ७० पृष्ठ म ६ बार । व०,
[म०] (हि०) १६, १८, २२, ३१ । का० कु०, १८,
१६ । का० १६ से २५० पृष्ठ तक २४ बार । चि०, १५ स १६ पृष्ठ तक २१ बार । म०, ६ ८, ११, १४, २२ । ल० ११ स ७१ तक ६ बार ।
उस समय उस वक्त । इस कारण, इन वजह से ।

तब तक = का० कु०, ८१ ।
[य०] (हि०) उस समय तक ।

तबहि = चि०, ५३, ५४, ५६, ६४ ६५ ६८,
[म०] (ब्र०भा०) ७२ ।

ठीक उसी समय ।

तबहुँ = चि०, ६६, १६६ ।
[म०] (ब्र०भा०) फिर भी, तब पर भी ।

तबहुँ = चि०, ३० १४३ ।
[म०] (ब्र०भा०) तबपर भा, तब भी, फिर भी ।

तबे = चि, ५३, ५४ ६८, ७३, १६७ ।
[म०] (ब्र०भा०) तब भी उसी समय ।

तबो = चि०, १८३ ।
[म०] (ब्र०भा०) तब पर भी, तब भी, फिर भी ।

तभी = का०, १३, २२ । का० कु०, १५ ३१ ।
[म०] (हि०) का०, २२१ ।
तब पर भी । तब भी ।

तम = घा०, ४०, ६७। का० कु०, ५६।
 [स० पु०] (म०) का० कु० ५६। का०, १६ २७६।
 चि० १५६ १६१, १६६ १७०।
 ऋ०, ३८। प्रे, १। ल०, ३६, ७६,
 ७०, ७६।
 अघकार, अघेरा। राहु। पाप। क्रौर।
 अज्ञान। कालिख। नरक। मोह।
 साय्य आलानुमार अविद्या प्रवृत्ति वा
 तीसरा गुण। वैर वा अमला भाग।

तमकना = म० ११।
 [त्रि० प्र] (हि) क्रोध या आवेण दिसलाना। तम
 तमाना।

तम चूर्ण = घा०, १६।
 [स० पु०] (म०) अघकार रूपी चूर्ण।

तम नयन = ल, २४।
 [स० ली०] (स०) अघकार रूपी नेत्र।

तममय = आ०, ३१। चि०, ७२। ऋ० ३०।
 [वि०] (हि०) प्रे०, ५।
 अघकार से युक्त। अघकारमय।

तमठयोम = ऋ०, ४२।
 [स० पु०] (म०) अघकार रूपी आकाश।

तमस् = का०, १६७ २५२ २५७।
 [स० पु०] (स०) अघकार, अज्ञानाघकार। पाप। तमसा
 नदा। प्रवृत्ति के तीन गुणा मे स
 अंतिम गुण।

तमसान्छन्न = का० कु० ११२।
 [वि०] (स०) अघकार स ढका हुआ या घिरा हुआ।
 तमाल = घा०, ५४। वा० कु०, ११४ १२४।
 [म० पु०] (स०) वि०, १५५। ऋ २०। प्रे०, १०।
 एक बहुव ऊचा मुँह स गगनहार वृक्ष।
 तजपता। एक प्रकार का तलवार।
 काल पर का वृक्ष। बीस की छाल,
 तिलक का पत्र। पान।

तमालकुन = क०, २८। चि० ६६।
 [स० पु०] (म०) तमाल का फुरमुट।

तमावृत = चि०, ६६।
 [वि] (म०) तम स ढका हुआ या घिरा हुआ।
 तमासा = म०, ८७। प्रे०, ८।

[स० पु०] (पा०) वह मेल या काय जिसे देखने से मन
 प्रसन्न हो। अत्युन्न व्यापार। अनाली
 बात। पुरानी बाल की एक प्रकार की
 तलवार।

नमिस्रा = क०, १३। का०, ६३।
 [वि०] (स०) तम से भरी हुई। पार काल। अत्यंत
 कृष्ण।

तरग = घा०, ४८, ७७। का० कु० ३७, ४२
 [स० ली०] (स०) ४३, ६४ ७५। वा २७३। चि०,
 ४८ १८१। ऋ, ५६ ६२। प्रे०,
 २० २३। ल० ४४, ४८ ५०।
 पाना का सहर्ष। चित्त का उमग।
 मल का मौख पाडे भादि की उड़ान।
 ध्वनि, शीत, ताप या ध्वनि की लहर।

तरगमयी = का० १६८।
 [स० ली०] (हि०) तरगसयुक्त। उमग से युक्त।

तरगमालायें = का० कु० १।
 [स० ली०] (हि०) लहरी का लडा जा एक पर एक उठा
 करती है।

तरगशाली = चि० १५२।
 [वि] (हि०) भावो मे हुआ हुआ। मस्त।

तरग सा = का० ६१, १७०।
 [स० ली०] (स०) लहर के सदृश।

तरगाघातो = का, १५।
 [स० ली०] (हि०) लहरी की चोटें।

तरगायित = क०, ८। वा०, २८६।
 [वि०] (स०) जिसमे तरगें उठती हैं, तरंगित।
 तरगा का तरह का लहरदार।

तरंगित = चि, १६६।
 [वि०] (स० भा०) उमंगित, ऊमिल।
 तरंगिनी = घा० ८, ३१। चि० १६७।
 [म० ली०] (हि०) तरगवाला सरिता जा तरगा स युक्त
 हो। नदा।

तरंगिनी कूल = चि० १५०।
 [स० पु०] (म०) नदा या सरिता या बिनारा।

तर = का०, २६२।
 [वि०] (फा०) भाला, ठंडा, शान्त। हरा। माल

‘मरिता सुभूता म तपनी बने मे
 ता’—पर मरिता उ ६ मरिता म म
 ए है जा बगत बे मरिता म उमी
 प्रम म प्रममिता एए। बने उतर
 हयवा गरा मभा। तदतर मरिता
 म मुंदर बिहारे तपस्वी म गङ्ग है।
 तज मूम म तपनी पमिता का य
 छाया दी है। उ १ धप। धार स मुन्द
 मुग्गा वन से उतर हय मे उ
 धान करते है ता भी ह्यारष रत
 मूत्र नर धने तन्त्रर का भी मुर्मा म
 वष म पट कर माता है।]

तन्त्रचरण = वि० ११।

[सं पु०] (सं) धेय वृत्ता वा तन्त्र।

तन्त्राला = वि०, ७४ ग० ७।

[सं श्री०] (सं) उपया वानन।

तन्त्र समीप = वा०, कु०, १७१।

[म०] (हि०) वृत्त वे समीप।

तर्क = वा० कु० ८६। वा० १७१ १६१,

[सं पु०] (मं) १६५ २०८।

दत्ताल चमत्कारपूर्ण उति नयन
 वा मुनि।

[सं पु०] (पा०) त्याग छोड़ना।

तर्कमयी = वा० २७१ २७४

[वि०] (सं) तर्क स भरी हुई।

तर्कयुक्ति = वा० २७०।

[सं श्री०] (सं) हनु पूर्ण विवेचन वा उपाय। दत्ताल।

तर्कशास्त्र = का०, ११०।

[सं पु०] (सं) माय शाल वा सिद्धात। उदहन मदन
 द्वारा निश्चय वा उपाय।

तल - गा०, १०, ७२। ५४। वा०, १६,

[सं पु०] (सं) ५२ ११०, १८२, ४०, २७६२ ल०
 १६ ७३, ७८।

नाचे वा भाग। जलबारा क नीचे
 की भूमि। पर वा तलवा। बायें हाथ
 स बाया बजाने की क्रिया। आघार।
 सात पाताला मे सं पहला। वानन।
 धनुष की डोरा को रगट से बजाने

वाता बायें हाथ में पन्निने वा चमत्
 वा चमत्।

तलघाट = वा०, १ १०, १६, ल०, १६, ११,
 [मं श्री०] (हि०) एा प्रगित रीत धारतर हयधार।
 गा०, वृत्ता।

तलानी = वा० २८४ प्र० ११।

[मं श्री०] (हि०) पता म नी। वा भूमि। तराई।

तल्लीत = वा०, २४२ ल०, १०।

(हि०) (मं) विधि विषय वा चार्म म सात।
 तिमन।

तल = वा० कु०, ३०, ६२, ७६, ८१, ८८।

[मं श्री०] (मं) वा०, १७८, १६३ १८०, १८४
 १६४ २०६ २७३, २७७, २४८,
 २५०। ति०, ३०, ४१, ४८, १७१,
 १७२, १७३, १७७ १७६, १८७,
 १८८, १९०। ४०, ७ ८, १६।
 गुहारा।

तल रक्ष = वि०, ६७।

[मं पु०] (मं) तुहारा गुन।

तल्ले = वि०, ७५, ४६, ४७ ५१ ५३ ५४,

[मं श्री०] ५६ ६० ६४, ६५ ७१ ७२, ७३,
 १७२ १५१।

तहाँ बहाँ, उस स्थान पर।

तहाँ = वा० १८३। वि०, ४ ३१, ४६ ५१,

[मं] (हि०) ५३ ५८, ७३।

उस स्थान पर।

तहाँ = वि०, ८।

[मं] (मं श्री०) वही।

ताडव = वा०, १६६ १५३।

[सं पु०] (सं) शिव का नृत्य। नृत्य नृत्य। उदत
 नृत्य। बिनाश वा क्रिया।

[ताडव—वामायनी के ‘दशन’ सग का एक अश
 जो सबप्रथम हत, वष ७ नवंबर २,
 सन १६३६ मे ताडव शायक स प्रकाशित
 हुआ था। वन गया उमस था अलक
 जाल’—(वामायनी ७४ २५२ से सग
 ने अत तक) अश इसम था। दे०
 वामायना।]

ताडव नृत्य = का० कु०, ८६। का०, २०।

[सं० पु०] (सं०) शिव का नृत्य।

ताडवमय = का०, १५।

[वि०] (सं०) = शिव के नृत्य से युक्त या विनाश की भावना से युक्त।

ताडव लीला = का० १८६।

[सं० स्त्री०] (सं०) शिव नृत्यक्रीडा। पुरुष नृत्यक्रीडा। उद्भूत नृत्यक्रीडा।

ताड्री = चि०, १५३, १६१, १८४, १८५।

[सं०] (प्र० भा०) उमकी।

ता कुल = चि० ३०।

[म० पु०] (प्र० भा०) उम कुल का। उम कुल म।

ता के = चि० १७३।

[सं०] (प्र० भा०) 'ताका'।

ताग = चि० १८०।

[पु० क्रि०] (प्र० भा०) जोड़कर।

ताड = का०, ११०।

[म० पु०] (सं०) एक ऐसा वृद्ध जिसमें शाखा नही होता। हाथ का एक भाग।

ताडित = चि०, ७२।

[वि०] (हि०) मताया हुआ। ताडना गया हुआ।

तात = का०, २४। चि०, ४८।

[सं० पु०] (सं०) पिता। गुरु। पूज्य व्यक्ति। पुत्र। भाई।

[वि०] (हि०) तपा हुआ गरम।

ता तर = चि०, १८४।

[प्र०] (प्र० भा०) उसके नीचे।

तातारी = का०, ७३।

[वि०] (हि०) तातार देश की, तातार निवासिनी।

ता तौ = चि०, १६।

[म०] (प्र० भा०) तिसरा या उत्तर।

तान = का०, ५२। चि०, ११३। चि०,

[म० पु०] (हि०) ५७। ल०, २६।

फातय, विस्तार। घाला।

तानना = का० कु०, १०६।

[वि०] (हि०) फलाना, विस्तार करना। खींचना।

तानि = चि०, १६३।

[पु० क्रि०] (प्र० भा०) तानकर। फलकर।

तान = का०, १०, २८५।

[सं० पु०, क्रि०] (हि०) 'तान' का बहुवचन।

तानौ = का०, २६४।

[सं० पु०] (हि०) तान का बहुवचन।

ताप = का०, ५१, ७६। का० कु०, १३,

[सं० पु०] (सं०) १०४। का०, १२१ १६२, १६१,

२८१, २८३। चि०, ३६, १७४।

चि० ७६।

गर्मी। लपट। ज्वर। जट। दहिक,

दहिक भौतिक ताप तप।

ताप आति = का०, २३६।

[सं० स्त्री०] (सं०) ताप का समाप्ति ताप का भूज जाना।

तापर = चि० १४५।

[प्र०] (प्र० भा०) तिसरा भी।

तापस = चि०, ७३, ७४।

[म० पु०] (प्र० भा०) माधु तपस्वा, तपस्वा करनेवाला।

तापसवेप = चि०, ७२।

[म० पु०] (हि०) वह जो कि तपस्वा का पहनावा पहने हुए हो।

तापित = का० २५, ३८, २८५। का० कु०,

[वि०] (सं०) ५५।

तप्त किया गया। जट पाया हुआ,

सताया हुआ। दुःख में पादित।

तापै = चि०, १७७।

[सं० स्त्री०] (प्र० भा०) जगाना।

तामरस = का०, १७५। चि०, १७३।

[सं० पु०] (सं०) साना। तावा। धतूरा। कमल।

तामस = का०, ११८।

[वि०] (सं०) तमोगुणवाला, तमोगुण से संयुक्त।

[सं० पु०] सर्प, खल। चोरे मनु का नाम।

क्रोध। अंधकार।

ताये = चि०, ७१ १६०, १६२।

[वि०] (प्र० भा०) दया हुआ।

तायौ = चि०, १८३।

[क्रि०] (प्र०) डाका।

तार = का०, १५।

[सं० पु०] (सं०) मूत। चादी। बाहु। तनु। ग्राह का

पुतली। गच्छ। भस्मी होता। ताल।

मजीरा। तल।

तारक = का० ४७, १०४, २३३। वा० कु०,
[सं० पु०] (सं०) १७। ल०, ४४।

तारा, नक्षत्र। आँख की पुतली। उद्धार
परमेवाला। बगधार।

तारकागण = का०, कु०, २। हि०, १५५। ऋ०, ७५।
[सं० पु०] (सं०) तारा का समूह।

तारकागन = चि० १७०।
[सं० पु०] (ब्र० भा०) 'तारकागण'।

तारक दल = का०, २३४।
[सं० पु०] (सं०) तारा का समूह।

तारक द्वार = का० ६२।
[सं० ली०] (सं०) तारो का द्वार।

तारका = का० कु०, ०८ ३०, ३५, ७४ ८७।
[सं० ली०] (सं०) का०, ४७, १०४ २३३। ऋ० ७२।
ल ४४।

नक्षत्र। तारा। आँख का पुतला।
ताडना नाम की राक्षसिन।

तारका अघली = का०, कु०, १०।
[सं० ली०] (सं०) तारो की पत्नियाँ।

तारकायें = ल०, ६२।
[सं० ली०] (हि०) 'तारक'। (बहुवचन)।

तारकावरन = का० कु०, ६६।
[सं० पु०] (सं०) तारकरूपा वट्टू या रतन या धातु।

तारकावलि = चि०, २३।
[सं० ली०] (सं०) तारो की पत्नी।

तारकाँ = चि०, १६२।
[सं० पु०] (सं०) 'तारक' का बहुवचन।

तारन = चि० १६।
[सं० ली०] (ब्र० भा०) 'तारो'।

तारा = आ०, ५४, ६७, ६६। व० १३
[सं० पु०] (सं०) २५। का०, १७ ३७, ६७, ७०,
१४७ १७० १७६, १७८, १८१
२०५, २४१। चि० १६०, १६१।
ऋ०, ३८। ल० ३७ ४३, ७४।

नक्षत्र। सितारा। भाग्य। आँख का
पुतली।

ताराओं = आ०, ७६। का० १२२ २२४।
[सं० ली०] (हि०) तारा' का बहुवचन।

तारागण = व०, =। का० कु०, ३६, वा० १६७।
[सं० पु०] (सं०) ग्रं० ६।

तारकागण, तारा का समूह या 'न'।

तारागन = हि०, ७१, ७५ १६१।
[सं० पु०] (ब्र० भा०) 'तारकागण'।

ताराघट = ल० १६।
[सं० पु०] (सं०) तारागणा पड़ा। उ०—घबर घनघर
म हुआ रहा ताराघट ऊप्रा नागरी।

तारादल = का०, १७१।
[सं० पु०] (सं०) तारा का समूह।

तारा दीप = का०, ३८।
[सं० पु०] (सं०) तारागणा दापक।

तारा निरुद्ध = चि० ३६ १४५।
[सं० पु०] (सं०) तारो का समूह।

तारापुज = का० कु० ५६।
[सं० पु०] (सं०) तारा का समूह।

तारा मंडित = का० २४६।
[वि०] (हि०) तारा स मुक्तीभिन या सजा हुआ।

तारायें = ल० २४, ७६।
[सं० ली०] (हि०) 'तारा' (बहुवचन)।

ताराली = का० कु०, ५।
[सं० ली०] (सं०) तारो का आँख, तारो का समूह।

तारा शरीर = का० कु०, ५।
[सं० पु०] (सं०) तारा शरीर चक्रमा।

तारा सा = प्र० ३ ५।
[वि०] (सं०) तारा व समान।

तारा हीरक द्वार = म०, १८।
[सं० ली०] (सं०) तारारूपी हीरे का माधुर्य या
माता।

तारिकायें = ऋ० ७६।
[सं० ली०] (सं०) सितारो का समूह।

[तारिका के प्रति]—सबप्रथम 'मतोरमा', अक्तूबर
२६ में प्रकाशित 'चंद्रगुप्त' नाटक का
गीत जो प्रसाद सगात में पृष्ठ १११ पर
सकलित है। 'बिसर' किरन भलक
'याकुल हाथ—लका ने इन गीत में
अपनी स्थिति तारिका के रूप में प्रवट
का है जो सघर्षमया है। प्रियतम क

आन की शेष अवधि व्यापी आँखों ले गिन रहा है। पथ पर प्रिय के आने का कोई संकेत नहीं दाख पठ रहा है। इस निराशा की कालिमा में तुम मुदर तरल आशातारिके कुछ बोला, मीन मत बठा नही तो रूपनिशा का ऊया में घघात् प्रियतम के आने पर तुम्हारा गान कौन सुनेगा।]

[तारिणी—कवि ने कल्याणल म अजागत का पानी के लिये तारिणी सगा दी है जो कल्पित है।]

तारुण्यमयी = १०, ३३।

[वि०] (स०) यौवन में भरी हृद, तस्मिन्।

तारे = आ० ३६ ४४। का० कु० ४। का०, [म० पु०] (हि०) ११८, १२३। ऋ०, ५२। प्र० ११ १२, २४।

‘तारा’ का बहुवचन।

तारों = आ०, १६। का० ६५ २८५। प्र० ११।

[स० पु०] (हि०) तार’ का बहुवचन।

ताल = का० कु० ६३। का०, १६८, २४२। [म० पु०] (स०) हथेला। कर्तल ‘वनि। एन नरक। महाद्वज। पातरा। नृत्य या मंगल म समय और गति का परिमाण। तालाव।

ताल ताल = का०, १६३।

[म० पु०] (हि०) संगीत का प्रत्येक तान।

ताली = बि०, ७०।

[वि० ली०] (हि०) कुञ्जी। माल देनेवाला।

तालों = का० २७७।

[स० पु०] (हि०) ताल का बहुवचन।

तामु = बि०, २३, ४६, ५२ ७२ ६५, १०२ [मव०] (प्र० भा०) १६१, १६२ १७१।

उमकी तिमका।

ता सुत = बि०, २३।

[स० पु०] (प्र० भा०) उमका पुत्र।

तासा = बि०, १८, ६६, १८४।

[मव०] (प्र० भा०) उमसे।

ताहि = बि०, ६, १४, २५ ५१ ६३ ६५, [मव०] (प्र० भा०) ६८, ७३ १६४ १७६ १७८ १८६ १९०।

उमकी।

ताहो = बि०, १०६।

[मव०] (प्र० भा०) ७० ताहि’।

ताहु = बि०, १९०।

[मव०] (प्र० भा०) ७० ताहि’।

तिसलो = प्रा० २६२। म० ६६।

[स० लो०] (हि०) एक मदनवाता नुस्तर कनिषा जो कृपा पर सडराता है। एक प्रकार का धाग।

तितै = बि०, १।

[क्रि० रि०] (प्र० भा०) उतना। उसी स्थान पर। उमा का। वही। वही भी। वहा। उधर।

तिन = बि०, १८ ६०, ७१ ७२ १००, [मव०] (प्र० भा०) १०१, १५७ १५६ १६३, १७१ १८५, १८६। प्र० ४। ल ४०। उन।

तिनका = म०, १२। ल०, ४७।

[म० पु०] (हि०) नृण। नृण का दुक्ता।

[मव०] उनका।

तिन्हें = बि०, ४८, ६६, १०१, १६६ १०९ [मव०] (प्र० भा०) १८५।

उमका।

तिमि = बि० १६५, १६६, १६७।

[अ०] (प्र० भा०) उमी प्रकार।

तिमिगलों = का, १२।

[म० पु०] (स०) मधुद्री स्तनपाई एक विशद बड़ा जंतु जो कुछ मधुनी के घाघार का हाता है। प्राय इसकी हड्डिया व लिये शिकार किया जाता है। बहुत बडी मछलियाँ जो छाटा मछलया को निगन जाता है।

तिमिर = बि०, ४१। का०, १५ ४८, २१७।

[स० पु०] (स०) बि० १०७, १६०। ल०, १३। अंधकार। तम।

तिमिरफणि = का०, १०१ ।

[म० पु०] (म०) काला साप, अन्धकाररूपा साप ।

तियाण = चि० ४८ ।

[म० आ०] (२० भा०) औरतें । तिया का बहुवचन ।

तिरता = का० ल०, २३ ।

[क्रि० प्र०] (हि०) पाना पर तरता हुआ ।

तिरती सी = ल० ६ ६६ ।

[क्रि० प्र०] (हि०) पानी पर उतरती सी ।

तिरते = ल०, ६२ ।

[क्रि० प्र०] (हि०) पाना पर उतरते ।

तिरना = का० ७ ८८, १०५ । आ० २०

[क्रि० प्र०] (हि०) ४१ ।

पाना पर तरना या उतराना पर करना । उधार हाना ।

तिरस्कार = का० १२१ क्र० ८० ।

[म० पु०] (म०) फटकार । घनाकार ।

तिरस्कृत = का० ५५ ।

[वि०] (घ०) जिगका तिरस्कार हुआ है । घनात्न ।

तिरोहित = का० ४६ । आ० १० १६६ २६१ ।

[वि०] (घ०) छिपा हुआ । आच्छादित । घनहित । गुप्त । अदृष्ट ।

तिल = का० ११० । चि० १६२ ।

[म० पु०] (म०) एक प्रकार का बीज जिससे तेल निकाला जाता है । शरीर पर काल दाग । एक प्रकार का घाना जो ओरतें गान और दुन्डा पर सौम्य क लिए गाना है ।

तिलक = चि० ३८ ।

[म० पु०] (म०) चन्द या अगर का टाका । माथ पर का एक चिह्न । यमन श्चनु म यमन वाता एक पोसा ।

[वि०] उत्तम । आराधना अथवा वाति बानबाना ।

तिलोद्ग = का० २२ ।

[म० पु०] (म०) निच छोड़ जन । मनातन घम क मनुवार निच मना घा ना रा नृप ५ निच घमनि म भावा ओर निच सरर वृत्त पर जा नडा या ताताब

के किनारे गाढा गया होता है, छोड़ते हैं । पिडा पानी ।

तिस = का० कु०, ६०, १४६, २४०, म०, [सव०] (हि०) ६, २२ ।

ता का एक रूप या विभक्ति लगने से तिस हाना है ।

तिहारी = चि०, १४०, १७०, १७१ १७४, [म०] (प्र० भा०) तुम्हारी ।

तिहारे = चि०, १७४ १८२ १८५ ।

[सव०] (२० भा०) तुम्हारे ।

तिहुँ = चि० १७८ ।

[वि०] (प्र० भा०) तान ।

तीदण = का० १६६ । म० ६ ।

[वि०] (प्र० भा०) तज । कटु । उताप युक्त । विपला ।

तीरया = का० ४२ । का०, १६२ २५० । चि०

[वि०] (हि०) ४२ ।

तज । प्रसर । उप स्वभाववाला, जिना स्वाद वरपरा है । गुता म अग्रिय, रटु । अन्त्रा यन्त्रा ।

तीअन = चि०, ३६, ४२ १८३ ।

[वि०] (प्र० भा०) तात्पर्य तज ।

ताछनवा = चि० १०५ ।

[म० स्त्री०] (२० भा०) ताछन का भावराचन तापा । ती गता । तज एकवर्ष ।

तीन = का० १६ । का० १६ । वि०, ४३,

[म० स्त्री०] (हि०) १४६ २४५ २६१ ।

दा और एक । एक मन्था ।

तीर = का० कु० ८६ । का० २३ ३१ ४५

[म० पु०] (म०) १०८ १८१ १८७ २४८ १८० ।

चि०, ६ ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ७१ १६४ ।

ता का चिन्ता, कूट । निक्ष, ममाप ।

तीरथ = चि०, ३० ।

[म० पु०] (प्र० भा०) दसववा प्रयागो का म्वात । गन्ध या पुष्पाया म्वात ।

तीरन = चि० ६० ।

[म० पु०] (प्र० भा०) तीर का बहुवचन ।

तीरे = श्री०, ३१। का०, ३४।

[म० पु०] (हि०) ३० 'तार'।

तीर्थ = का०, २७८ २६६।

[म० पु०] (स०) २० तीर्थ'।

तीव्र = आ०, ३६, ४०। का० तु ११६,

[वि०] (म०) १८१, १६६, २६७। अ० ५७। स०

७१, ७६।

अधिक तेज। कटु। प्रचंड।

तीसरी = वि० ७२।

[वि०] (हि०) तृतीय। पहली दो को छोड़कर अगली।

तुल्य (तुल्य) = का० ३० १५७। वि० १ १६०।

[वि०] (म०) अ० २, ५६।

उन्नत, ऊँचा। मुख्य।

तुल्य = का०, ५६ ६४, १२६। ल०, ६४।

[स० पु०] (स०) सारहीन वस्तु। छिन्ना या भूमी।

तुल्य = आ०, १७। अ०, २६ २७। का० कु०

[म०] (हि०) ३६। का०, १८ २१८। प्र०, २४।

तुल्य का मध्यम पुरुष, वर्गकारक।

तुल्य = श्री०, १५ ७८ पृष्ठ तक २१ बार।

[स०] (हि०) का०, ६ ३१ पृष्ठ तक १७ बार। का०

कु० १ स ६८ पृष्ठ तक २६ बार।

का०, १ स २८७ पृष्ठ तक ३ बार।

वि०, ५ १६४ पृष्ठ तक ३५ बार। अ०

५ ६४ पृष्ठ तक ६ बार। प्र०, ४ २६

पृष्ठ तक १४ बार। म०, ४ ३६ पृष्ठ

तक ४ बार। स०, १० ६१ पृष्ठ तक

८ बार।

तुल्य का वृद्धवचन।

[तुल्य—माधुरी, वष २, गद २, स० ॥ सन् १६२४

म प्रकाशित और भरना' म पृष्ठ ६८—

६५ पर मकलित। तुल्य जीवन जगत

तथा विश्वमान के परम प्रकाश पूछ

काम दुख मयहित अभेद परम सुंदर

विधि व विराज और निषेध की

व्यवस्था व वारण और वम तथा धम

मुहूर्ती ही। परमानन्द, सौन्दर्यमान राम

राम म रमनेवाल तुल्य परम ब्रह्म

राम हो। बुधि, विवेक, पान और

अनुमान मे तुल्य अतात हो। तुल्य अनत
सादय धाम हा। मुमना के हास मुकुला
के मररद, उषा म मलयानिल की
माधुरी हिमकाल म धूप तुम्ही हा।
तुल्य नित्य नवीन हो। तुल्य बधनहीन
हो तुम्ह दान दुखिया मे करुणा द्वारा
यव श्रमिना म स्नेह द्वारा तथा मवकी
मवा म तुल्य प्रसन होन हा।]

[तुल्य कनक किरण के अतराल मे—चंद्रगुप्त
नाटक' मे मुवासिनी द्वारा गाया हुआ
गीत। 'प्रसाद मगीत' म पृष्ठ १०६ पर
मकलित। ह लाजभरे सौंदर्य तुल्य
मादन जीवन के अतरंग म तुल्य द्विप
वर मीन क्या बन रहत हो। जीवन
के वन रस वरमा रहे है और तुल्य
उनके गर्वसे भार को नतमस्तक
बहन करत हा। अथवा म अतर
म निनादित ध्वनि जीवन की मधु
सरिता की तरल हमी की भाति तुल्य
पीन रहत हा। अम रजनागधा रूपी
तुम्हारा जीवन की कनी खिन चुरी
है और अनातयोवना बना बीत
चना है। अम मुकलित जीवन र दुकूल
का मुखर हो, माहक ही इस तरह धिप
रह हो।

तुल्य = का० ६१, २१६। म०, ११।

[स० पु०] (स०) युद्ध का कालाहल या घूम।

[तुम्हारा स्मरण—ददु, कला ६ ग० १ किरण
१, जनवरी १६१५ म मधुप्रथम
प्रकाशित और कानन कुमुम म पृष्ठ
६—६१ पर मकलित। तुम्हारे स्मरण
से सारी पीडा भूत जाती और ससार
का पान हाता है। जिनमे कारण
मनुष्य कभी राता नही। ध्यान लगा,
निरजन म योग या मुटा म समाधि
प्राप्त कर तुम्ह वीर दयता है किन्तु
प्रियवर मे ता मउ हाजर तुम्ह विश्व
की जनना व भीतर मवन्न एमा
मुनम पाता हूँ जिसे पाकर काद खा

परी मरणा । मुक्तारी प्रग पा म
हमा ने प्रग-मना है और दूषित प्राण्या
न नित्य घृणत न तुम्ह निमित्त मान्य हैं ।
एक वीरुज दिवार तुम्ह घरात स
जितना हम दूर करना चाहते हो
उतना ही उग्र तथावर पवन हृदय
मुष्टर निबट होता जाता है ।

[सिंहांगे आंगों का चपन—सहर' म वृष्ट २३
पर मरतिन । बीता जाया म जय
मह्य योयन हृय म बागना त सन
मुल्ल करके गुनता था ता हैम हगर
मन हार जाना था । तय गाय बगत
चमुं'क छा आता था निशर 'वज
बारी गूज उठना थी श्रीर पुलर छा
जाता था । मुकुमार स्नेह सवता म
विछन मिछन कर चलत चलत धन कर
हार जाता था श्रीर तब मुम्हार मधुरस
थ छिउगाव म जाउन तिरन लगता
था । क्या आज भा मुम्हार। मोसा व
उपवन की ब्रीडा म भाव विगार 'निय
विशार सरलता वा मपनापन है
श्रीर क्या आज भा वह मरा धन है ।]

तुम्हारी मोहन छवि पर—घियटरी घुन पर
 मजात शत्रु' म क्यामा का शल्लेख क
 प्रति उद्गार । प्रसाद मगीत' म पृष्ठ
 ५३ पर सजलित दा पत्तियो का गात ।
 तुम्हारा मनाहार छवि पर मर प्राण
 निछावर है । तुम्हारा मधुर सरम हाम
 पर मारा सत्तार बलिहारी है ।]

तुम्हारी सबहि निराली यात—इदु कला ५
 निराला ५, मई, १९१४ म मकरद विदु
 के अतर्गत प्रकाशित । ३० चित्राधार
 एव मकरद विदु ।]

तुरग = का० कु०, ३७, ३६, ४३, का०, ३०
[स० पु.] (म०) ४७।

धोडा । चित्त । मात का सख्या । जल्दी
चलनेवाला ।

तुरग सा = वा०, २५।
[वि०] (स०) घोड़े की भाँति।

तुगत = का०, २४६।

[अथ] (६०) २० 'तुम्हा' ।

तुस्त = ५० १७, २२। वा पुं १८, २२,
[प्रत्यय] (हिं) ३१ ४७, ५१, ६६ १०१। वा०,
२२०। वि० ५३ ६४ १६७।

शात्र सद्गुण वरपट ।

तुल्यम् = चि०, ४८ ५६ ६५ ।

[प०] (न० भा०) तबान ही ।

सुरते = वि० ३१।

[सं०] (हि०) सुगत हा ।

सुरत = चि०, १६७।

[म०] (६०) सुरत ही ।

[तुम्हें यह पता है—*० 'महाउद्धार' ।]

तर्क = म०, १५, १६।

[सं० पु०] (हि०) मुमनमान । तुर्क दण का वाग ।

[तुर्क देश—२० 'गाथार' ।]

तर्को = स० ६६।

[स० पु०] (हि०) मुक्तिस्तान का वासा ।

તલ જાના = ૧૧૦, ૧૦૫ ।

[१] (१०) शिमा बाम क सिय उताह हो जाना ।
तीन जाना ।

तलना = त० ६४ ।

[सं०श्री०] (हि०) तीव्र । समता । वराबरा ।

तलसीदास = का० कु० ६७ ।

[म० ५०] (हि०) रामचरित मानस क रचयिता हि० क
महाकव ।

। तुलसीदास—*० महाकवि तुलसीदास ।]

तला = का० २७१ ।

[मन. शी] (म०) तील । तराजू ।

તલ્ય = ૪૦ ૧૪ ।

[वि०] (स०) सट्ठ सप्तान बराबर ।

तब = चि०, १७, १८८, १९० ।

[सर्व०] (ब्र०भा०) २० 'तव' ।

तुषार = का०, ८, ३०, १७६ वि०, १८८।

[સં. પુ.] (નં) ૪૬, ૩૧।

पाला। एक प्रकार का कपूर। हिमालय व उत्तर का एक प्रदेश जहाँ के घोड़े प्रसिद्ध हैं।

तुष्ट = का० कु०, १५। म०, १३।

[वि०] (म०) प्रसन्न, खुश, राजी।

तुष्टि = का०, १८८, १९१।

[म० स्त्री०] (म०) तृप्ति। मत्तप्र। प्रमत्तता।

तुहिन = का० ४५। का० ३९, १५९। न०,

[म० पु०] (म०) ३८ ४१।

पाला, हिम। चान्ना। शीतलता।

तुहिनरिंदु = का० १७८।

[स० पु०] (स०) हिमवत, शीतवत।

तुही = बि०, १८२।

[सब०] (प्र० भा०) तुम ही।

तू = का०, ५७। व० २१—५७ पृ० तक

[सब०] ७ बार। १९—२५४ पृष्ठ तक १७

बार। का० कु०, ३। का० न०,

९—७२ पृ० तक ११ बार।

तुम का एकवचन। एकवचन मवनाम।

[तू आता है फिर जाता है—मवप्रथम 'बसत'
शापक से माधुरा वष २, गड २, सख्या
३ मव १७२४ म प्रकाशित। भरना
म पृष्ठ ५७ पर मवलित। २० वगन।

[तू खोजता बिसे—'विशाल' मे प्रमानद का
गीत। प्रमाद मगीत म पृष्ठ १७ पर
मवलित। प्रम व प्रभाव न मव
ममत्व माह वा भासव पिता कर पागल
बना दिया। अवन पर स्वय मर रहे
है यह अनुपम भूल है। जिस तुम साज
रह ही, वह आनंद स्वरूप है। वह
सत्य यही मवग यही पुण्य स्वर यही
है सत्यम हा कर्मयोग ह जा यही ता
मवना है। विश्व का सजाना भी यही
है। सेवा परोपकार प्रम सय
बन्पना व नियम अमाष है। जहा
शाति का सत्ता हा वही शक्ति है
और वह इनम हा है। अयामन्ति न
अय ना है और न दूगर के लिए है
परम ब्रह्म का ममत्व अवन चेतना म
मवग प्रवाशित है। वह परमसत्ता ह

वि नहीं यह विविध प्रश्न न करो, इस
मसा म दयामिधु के बाव मतरण
करो। वह और कुछ नहीं विशाल
विश्व स्वरूप है, उमा म आनंद है,
अ यत्र उस कहां बूढ़ रहा है।]

तूर्य = न०, ५६।

[म० पु०] (म०) मय प्रकार का वाजा। तुरही।

तूर्यनाद = का० कु०, १२४। म०, ३६।

मुह स बजाए जानेवाल एक प्रकार के
वाज का स्वर। सिहा की ध्वनि या
आवाज।

तूल = का० १६२।

[म० पु०] (म०) कपास तया समन का धूआ लई।

[वि०] तुय, ममान।

तूलिका = का०, २२। ल०, ६४।

चित्र अक्लि करने की कलम या कूची।

तृण = का०, २५। का० २६, १११ २९४।

[म० पु०] (म०) म० ३। ल० ६९।

तिनका। घाम कूम का छाना दुन्हा।

तृण गुल्मी = का १७६।

[स० पु०] (हि) तिनक और छोटे पीने।

तृण तृण = का० १११।

[स० पु०] (स०) प्रत्येक तृण।

तृप्त = का०, ३२, ८९ बि०, १५, १८९,

[पि] (म०) म० ३७।

त्रिमकी इच्छा या वासना पूरा हो चुकी
हो। अयाया हुआ। सतुष्ट।

तृप्तविधुर = ल० ३४।

[म० पु०] (स०) वह दुखी वा कुछ क्षणा के निते प्रसन्न
हो गया हो। प्रमन्न रडुआ।

तृप्तदय = का० ७६।

[म० पु०] (स०) शांत हृदय। मनुष्ट मन।

तृप्ति = का०, ७४, १३०, १३६ १९६, २२३,

[म० स्त्री०] (म०) २७०। म०, ८१ ७१।

इच्छा या वासना पूरा होने पर मिलने
वाला शांति।

वृषा = वा० १३६, २७१।

[सं० स्त्री०] (सं०) जन आदि पौने की इच्छा, प्यास।
इच्छा अभिलाषा। लाभ, सालस।

वृषित = वा० कु० २४। वा० ३६, १८३।
[वि०] (सं०) प्यासा। अभिलाषी।

वृषणा = ग्रा०, ४२। वा० कु० २४। वा०
[सं० स्त्री०] (सं०) ७१ ७४, २६७। वि० ६६।

किसी वस्तु को पाने के लिये 'यात्रा' करना
करनेवाली इच्छा। लाभ, सालस।

वृषा। प्यास।

वृषणाज्वाला = वा०, १६४ स० ४६।

[सं० स्त्री०] (सं०) वृषणा से उत्पन्न होनेवाली ज्वाला।
वृषणा वृषा ज्वाला।

ते = वि० १३६, १४६।

[अ०] (अ० भा०) ते, द्वारा।

[सम०] वे, वे सब।

तेज = वा० ३२। वा० २७७। वि०, ४०,
[सं० पुं०] (सं०) ५३, ५६। म० ५। स० ५।

दीप्ति, वाप्ति। पराक्रम, बल। तत्व।
तीक्ष्ण धारवाला। प्रखर या तान्न।
पुरतीला।

तेजमय = वा० कु०, १२६।

[वि०] (सं०) दीप्तियुक्त। कांतमय।

तेजमयी = प्रे० ६।

[वि०] (हि०) प्रकाश से भरा हुई या युक्त।

तेज सा = म० ६।

[वि०] (हि०) प्रकाश के समान।

तेजयल = का० कु०, १४४।

[सं० पुं०] (सं०) तपस्या या बल। वीर्य वा बल।

तेरा = का० कु०, ११३।

[सम०] (हि०) मध्यम पुरुष एकवचन सवनाम। 'तू'
का संबन्ध कारक रूप।

[तेरा प्रेम—इदु वत्स ५, किरण ४ अक्तूबर
१९१४ में प्रकाशित और भरना में
निवेदन शीर्षक से पृष्ठ ४६ पर सक्त
नित। > भरना और निवेदन।]

तेरी = ग्रा०, २२ ३५ ६८, ४३ ६२ ७३
[सम०] (हि०) ७४। क०, २५। वा० कु०, १, १३,

३०, ४२, ४८। वा०, ६, २४४।
वि०, ४१ ६० ६६, १०७, १५५,
१७७, १७८, १८५, १८७। म० १८
४४। स०, १२, ३०, ४२, ४३, ४५,
५१ ६८, ७६।
तेरा' का स्त्रीलिङ्ग।

तेल = प्रे० ३।

[अ० सं०] (हि०) विषेय चिन्ता या तरल पदार्थ जो
विषेय वीजों को घेर कर निवाला जाता
है। स्नेह।

तेहि = वि०, ३२, ४८, ५१, ५२, ५५, ६६
[सम०] (हि०) ७३, ६६, १५६, १७५, १८४।
उमकी। उसे।

तेरना = म०, ४२। स०, ५१।

[क्रि० म०] (हि०) पानी पर उतराना। हाथ तथा पैर
हिलाकर पानी पर रेंगना।

तैसी = वा० कु०, ८। वि०, १८० १८१।
[वि०] (हि०) उस प्रकार की, उस तरह की।

तैसों = वि०, ३६ १८७।

[वि०] (अ० भा०) वसा ही।

तो = ग्रा०, ४३। क०, १८, २२। का०
[अ०] (हि०) कु०, १६। वा० १७६। म०, ३६।
प्र०, १३ २२। म० २१ २२,
२३। स० १०, ४५ ५१ ६४, ६८।
तब का छोटा रूप।

तोको = वि०, १८६।

[सम०] (अ० भा०) आपकी। तुमकी।

तोस = वि० ५७, ५८, ६८।

[सं० पुं०] (अ० भा०) सतोष। तोप।

तोड़ = वा०, १४५ १५८ २४३। प्रे० २।

[सं० पुं०] (हि०) ल० १३।

तोड़ने की क्रिया या भाव। नदी आदि
के जल का प्रवाह या तरखा।

तोड़ना = ग्रा० ४४। वा० कु०, ११०। प्रे०,
[क्रि० सं०] (हि०) आघात या भट्टे से किसी वस्तु के
टुकड़े करना। किसी वस्तु का भग्न
भग करना। खेत में पहले पहल हल
चलाना। सँघ लगाना। बल, प्रताप

आदि का महत्व कम करना या हटाना ।

तोप = का० कु०, १०७ ।

[स० स्त्री०] (तु०) एक प्रकार का अग्नयज्ञ का दो पहिए पर टिका हुआ है । इसमें एक माटा नला हुआ है जिसमें गोला भरकर मनुष्या पर छाड़ा जाता है ।

तोपें = ल० ५१ ।

[स० स्त्री०] (हि०) तु० 'तोप' का बहुवचन ।

तोपण = प्र०, ४, १३ ।

[स० पु०] (स०) किसी घर या नगर का बाहरा फाटक बदनवार । शीर्षा, गला । शिव ।

तोपन बदनवार = म०, १६ ।

[म० पु०] (हि०) किसी नगर या घर के बाहरा फाटक पर उत्सव आदि शुभ अवसर पर लटवाई जानेवाला पत्तियों एवं फूलों की मालाएँ ।

तोरि = चि०, २३ ।

[प्र० क्रि०] (ब्र० भा०) ताड़कर ।

तोल् = का० १०५, २५३ । ऋ० ७४ ।

[स० स्त्री०] (हि०) वजन । भार का मान ।

तोप = चि०, ५४ ।

[स० पु०] (स०) तृप्ति, सन्तोष । प्रमत्तता ।

[वि०] श्रुत । याद ।

तोहि = चि० १४, ५७, १७० ।

[स०] (ब्र० भा०) पुत्रका ।

तो = चि०, १५५ ।

[क्रि० वि०] (ब्र० भा०) तो ।

[क्रि० प्र०] या ।

तोत = चि०, १८४ ।

[स०] (ब्र० भा०) वही ।

त्यहि = चि०, १०७ ।

[स०] (ब्र० भा०) उस ।

त्याग = का० कु०, ३१ । का०, ५२, ७२,

[स० पु०] (स०) २३६ २५३ ।

विभीषण का छाड़ देना या उस पर स भ्रमना प्रवृत्तिार हटा लेना । उत्सर्ग । विरक्ति क कारण सासारिक पदार्थों

की छाड़ना या चित्तवृत्ति हटा लेना । दान ।

त्यागे = चि०, १४, ५६, ६२ ।

[क्रि० स०] (हि०) छोड़ दिया ।

त्या = भा०, ७२ ।

[क्रि० वि०] (ब्र० भा०) उम प्रवार, उम तरह । उसी समय । उसी वक्त ।

त्योहो = का० कु०, ८० । का०, २०० ।

[स०] (ब्र० भा०) तमी । उसी समय ।

त्योहार = प्र०, ८ ।

[स० पु०] (हि०) वह दिन जब कोई धार्मिक या जातीय उत्सव मनाया जाता है । पर्व दिन ।

त्यौं = म०, २२ ।

[क्रि० वि०] (हि०) उम प्रकार । उसी समय ।

त्रस्त = क०, १८ । का० कु० ६४ । का०,

[वि०] (स०) १३ १८५ १८६ । म० ७ । ल०

५२ । का० कु०, १४ ।

डरा हुआ । भयभीत । पाण्डित । व्याकुल ।

त्राण = का० १४०, १८८, २६१ । चि० ६४ ।

[म० पु०] (स०) रक्षा, बचाव । बचव ।

त्रता = का० कु० २७ ।

[वि०] (स०) रक्षक ।

त्रास = का०, २०० । ल० ५१ ५२ ।

[स० पु०] (स०) डर, भय । बह, तकलाफ ।

त्रासिनी = ल०, ५१ ।

[वि० स्त्री०] (स०) कष्ट देनेवाली । भयमात करनेवाली ।

त्राहि त्राहि = क०, २६ ।

[प्र०] (स०) रक्षा करो रक्षा करो ।

त्रिकोण = का०, २६२, २७३ ।

[स० पु०] (स०) ऐसा क्षेत्र जिसके तीन कोने हों ।

इच्छा, नान और क्रिया का त्रिभुज क्षेत्र ।

[वि०] निवन्ता ।

त्रिगुण = का० १६८ ।

[स० पु०] (स०) तीनों गुण—सत्, रज, तम ।

त्रिदिक् = का०, २६१ ।

[वि०] (स०) तमना दिशाएँ ।

त्रिपुर = का०, २७२ ।

[स० पु०] (मं०) वाणापुर वा एक नाम । तीन लोक—
आकाश, पाताल, मत्स्य । आनाश स्थित
तारकाक्ष कमलान्त और विष्णु माला
द्वारा निर्मित तीन नगर ।

[त्रिपुर—नामायनी मे रहस्य सग मे त्रिपुर का चर्चा
है । इच्छा, नान क्रिया और स्वप्न,
स्वाप जागरण ये त्रिपुर है । इन तीनों
का एकाद्वयन जो शक्ति करती है उस
त्रिपुरा कहते हैं ।]

त्रिपुरारि = वि०, ६७ ।

[मं० पु०] (सं०) शकर । २० शिव ।

[त्रिपुरारि—(शिव)—तीह, रोष्य एव स्वस्वमय तीन
पुरो का निर्माण मयामुर न ब्रह्मा के
प्रसाद से किया जिसका शासन तारकाक्ष
के पुत्र तारकाक्ष या ताराक्ष कमलाक्ष
विष्णुमाली करत थे । विष्णु के मत्स्य
स उनमे धमजुद्ध का लोप हुआ ।
दवा से मुक्त मे शकर न त्रिपुर का
दहन किया जिससे इन तीनों असुरो
का भव हुआ । इसलिये शिव त्रिपुरारि
नाम से नवाधित किए जाते हैं ।]

त्रिपत्नी = का० १६८ ।

[सं० स्त्री०] (मं०) पट के ऊपर पड़नेवाली तीन रखाए—
जो नारी मोदर्य का सूत्रियाए हैं ।

त्रिभुवन = का० २६१ ।

[सं० पु०] (सं०) तीन लोक—स्वर्ग, मत्स्य पाताल ।

त्रिशूल = का०, २७७ ।

[सं० पु०] (सं०) एक भस्त्र जिसका मिर पर तीन का
हान है । शिवत्रा का भस्त्र ।

त्वर सी = का०, ११५ ।

[वि०] (हि०) शास्त्रता का तरह । अत्यंत क्षिप्रता का ।

य

यक = का०, २७ ५८ । का० १५८ २५७

[क्रि० रि] (हि०) २५६ । वि० १६० । प्रे० ८ १८ ।

विश्रान्ति या परन व भाव स पूछ ।

यकना = का०, ६३, १२३, २१३, २१६ । ल०,

[क्रि० प्र०] (हि०) ११, २३, ३१ ।

परिश्रम करत करत शय होना जब
और काम करने का इच्छा न करे,
बलात होना ।

यका = म० ८ ।

[क्रि०] (हि०) श्रात । घन गया ।

यकी सी = का० ६६, १७५ २१३ २२६ ।

[वि०] (हि०) श्रात के समान ।

यपेडे = का० १६ ।

[सं० पु०] (हि०) थपड़ । धापात । धका । धक्कर ।
टक्कर ।

थर थर = का०, १८५ २४६ ।

[मं० पु०] (हि०) थपकथा । हिलने का भाव ।

थल = वि०, २ । प्र०, ६ ।

[सं० पु०] (हि०) स्थान जगह । जल सहित भूमि । स्थल
का मार्ग । जगला पशुधा का मोद ।

थला = वि० ६६ ।

[मं० स्त्री०] (२० भा०) भूमि स्थल ।

थारके = वि० १६३ ।

[क्रि० प्र०] (२० भा०) यथान का अनुभव करने लग ।

थाप = वि० ७४ ।

[क्रि० प्र०] (२० भा०) स्थापितकर जमाकर ।

थापि के = वि० ४४ ।

[एक० क्रि०] (२० भा०) स्थापित कर, प्रतिष्ठित कर ।

थाल = प्र० १२ ।

[मं०] (हि०) बड़ा थाली परात ।

थाले = ल० ६२ ।

[मं० पु०] (हि०) पत्र पोथा व चारा भार धनवाया
हुआ गधा । धानपाल ।

थिर = का० ५६ । का० १०६ । वि०,

[वि०] (२० भा०) ३३, ६६ ।

थिर । धक्कल । जान ।

थिरता = वि० १८३ ।

[मं० भा०] (हि०) स्थिरता । प्राप्ति । गामाय ।

थोथा = म० १४ ।

[वि०] (एक०) निमग्न कुछ दन्त न हो । सासला ।

द

दृढ = का० १। का० २०६ २११। चि०

[म० पु०] (म०) ४८, ६६। ल० ७३ ७८।

लाठी। जुमाना। मजा। मामा।
माठ पल।

दत्त = चि० ७०, १३३। ल० २५ ५१।

[म० पु०] (म०) दत्त। वत्सल की मर्यादा।

दत्त अश्वत्थी = का०, कु०, ११५।

[म० ली०] (हि०) दाती की पत्ति, कपार।

दभ = का० कु०, ६०। का० १७, २७१।

[म० पु०] (म०) अभिमान। घमड़।

दभ स्तूप = का०, १९६।

[म० पु०] (स०) भ्रूहकार का घोरहंग।

दपति = का० १८२। चि० १६४।

[म० पु०] (म०) पति पति का जोड़ा।

दशन = का० १२०।

[म० पु०] (म०) दान से काटना। टक मारना, नटना।

दक्षिण = का०, ६० २१७। प्र० १४।

[म० पु०] (स०) दाहिना चतुर। उत्तर व मामन का
दिशा।

दग्ध = का०, ५५ ७१। का० कु०, ८६।

[मि०] (म०) ७० ६५।

जला या जलाया हुआ। कुलित।

दग्धश्वास = का० १७६।

[म० पु०] (स०) गरम श्वास।

दग्धहृदय = ल०, ५६।

[म० पु०] (स०) जला हुआ हृदय। कुलित हृदय।

[सूचीचि—एक ऋषि जि होने इन्द्र का समुरा के
माशक लिये मय्य बनाने हेतु अपनी
प्रसिद्धी अर्पित कर ती। मरुस्वता नन्
के तट पर इनका आश्रम था।]

दयता = का० २६। का०, ५६ ६७ १६०।

[प्र० म०] (हि०) चि०, ५७। म० १२ ८६। ल०
१०, ७३, ७६।

नीच वा धार फुटना। नम्र होना।

विभी वस्तु के द्वारा दयाया जाना। न

वस्तुधा व नीच म चप जाना।

दम = का० ६६।

[म० पु०] (म०) इन्द्रियो को वश म रखना। शक्ति।
दवान की या नम्र करने का शक्ति।
साम।

दमकीली = का० कु०, ३६।

[मि०] (हि०) चमकनेवाली। चमकती हुई।

दमनीय = ल०, ७०।

[मि०] (म०) दमन करने योग्य।

दया = का०, ७१। का० कु०, १, २७।

[म० ली०] (म०) का०, ५७, २११। चि०, १४ ७०,
१५४ १७४। म० ३७ ४३, ५६।

प्र० ७। ७० ३३।

सहानुभूति का भाव, कम्पा, कृपा।

न्यानिधि = का० कु०, २। चि०, ३०। प्र० १८।

[म० पु०] (स०) करणा व निधि। दया मागर।

न्यानिधे = का० ३०।

[मवा०] (म०) कम्पानधन।

दयामय = म०, २४।

[म०] (म०) दया से पूर्ण। न्यायु। इश्वर।

दयाला = चि०, ८१।

[मि०] (म० भा०) २० 'दयालु'

न्यालु = चि० १/३।

[मि०] (स०) दया करनेवाला। दयावान।

दरपन = चि०, ६८।

[म० पु०] (म० भा०) दरपण। मुटू दबने का शीशा।

दरवारह = चि० १८७।

[म० पु०] (म० भा०) दरवार भा।

दरशन = चि०, १६४।

[म० पु०] (म० भा०) साक्षात्कार। देखादखी। भेंट।

दरस = चि०, १८१।

[म० पु०] (म० भा०) २० 'दशन'।

दरसात = चि० १८, ८८ १६६।

[मि० म०] (म० भा०) दिखाई देता है। दृष्टिमाचर
होता है।

दरसाति = चि० १६८।

[मि० म०] (म० भा०) न्याना है।

दरसान = चि० ६।

[मि० म०] (म० भा०) दिखाई देना।

दरसावे = वि०, १६१, ४७४।

[क्रि० सं०] (श० भा०) निराव।

दरसावो = वि०, ३६।

[त्रि० सं०] (श० भा०) निरावा।

दरस्यो = वि० ६०।

[त्रि० सं०] (श० भा०) निगाई निवा।

दरिद्र = वा० ८२ प्र० २० २३।

[वि०] (म०) दुस्त गराव पिपन, नगान।

दरिद्रता दलित = वा०, १६४

[वि०] (म०) दरिद्रता से कुचता हुआ गरायी ग गताया हुआ।

दर्प = भा० ३८। वा० कु० २०।

[सं० पु०] (म०) वि० ४१।

घमड, उद्धता अभयडपन।

दर्पोद्धत = म० ५।

[सं० पु०] (म०) घमड र तारण उजड्ड।

दर्शकहि = वा० ११४।

[सं०] (श० भा०) दर्शन से। दलनेवाले से।

दर्शन = वा० १२। वि०, २४, १७०। भ०

[सं०] (सं०) ५५। सं०, २१।

दलिये 'दरशन'। एव शास्त्र का नाम।

[दर्शन— २८ कला ६, किरण २ भगन्त सन् १९१५

में सवप्रथम प्रकाशित और भरना'

में पृष्ठ ५५ पर सक्लित अनुकात

कविता। जीवन नीचा अपवार और

अपड में चला पर अदृष्ट परितन

हो गया। निर्मल जल पर अमृतभरा

बादनी और मेरा छोटी सी नीचा

बिछल रही है। जल लहरा के सग मे

परिमल सना पवन खेल रहा है और

और नीरव आवाश में वशा का स्वर

लहरी गूज रहा है। प्रहात व्याम

प्याल में अमृत भरा हुआ दिखाकर

बट्वाली है और नदी भी उसी प्रकार

बह रही है। दूर उस ऊँचे मटल का

खिडका दिखाई दिखाई पड रही है

और मरी नीचा दूनी गत से उपर

हा पल पडा। मरिन यहीं निगा क

मुग का छविबिरागी रजत रज्जु क

ममान तोडा म लिपट गइ घोर बाव

नगा का नीरा निनार लग गई घोर

उम गादो मूर्ति का दगा हान लगा।

दरानों = सं०, १२। २२।

[सं० पु०] (हि०) दशन का वटुपन।

दुल = वा०, १३। वा० कु० ३४। वा,

[सं० पु०] (म०) पृष्ठ २ मे ७८४ तर। वि० ४७

५३। म०, ४। ल०, २६ ३०, ४४

५०, ६६।

निगा बस्तु क उन का सम गडा म

स तब जा परस्पर जु हा, पर जरा

गा दगाव पडने पर भलग हो जाय।

पता पत्र। समू. गिरोह। मना।

कून का पछुडा। ध्यान।

दल सा = वा० २००।

[वि०] (हि०) दन व गदग।

दल अचल = २० ७०।

[सं० पु०] (म०) पत्रका अपन।

दलारविन्द = वि० ३२

[सं० पु०] (श० भा०) कर्मन का दन। दन में युक्त कर्मन।

दलित = वा० २६७। वि० ५८। भ० ४५।

[वि०] (म०) सं० ५२।

मसला हुआ, रोना या कुचला हुआ।

[दलित कुमुदिनी— २८ कला ४ सड १ किरण

५, मई १९१३ में सवप्रथम प्रकाशित

और कानन कुमुम' में पृष्ठ ५४ ५५ पर

सक्लित कविता। द्वििम क्राडासर

के बाव कुमुदिनी खिला हुई थी।

प्रवृत्ति के सभा त व जिसका सक्दन

करते थे जिस राजहम, मणाल आदि

कभा किला न स्पश सक तदी विवा।

स्वण मखलिया जिसके रक्षण के लिये

पहरा दती थी चा, सूप, पवन सभा

जिसको दयकर प्रस न व। उस मधुर

मरवाली कुमुदना का स्वाधवश

मवाव हाभा न कुचल दिया और

गर्मी की जलता धूल में मिल गई।
उसकी सारी शोभा नष्ट हो गई।
कालचक्र की गति सचमुच ही
-यारी है।

दलित सी = का०, १०३।

[वि०] (हि०) दलित महेश।

द्वय = का०, १३६।

[स०] (म०) वन, जंगल। जंगल में सगेनेवाकी
आग। दावाग्नि। अग्नि।

दशकहिं = चि०, १६१।

[वि०] (म०) दसवीं।

दशान = ल० ५८।

[म० पु०] (म०) दान। दक्ष।

दशरथ = चि० ५२।

[स० पु०] (स०) अयोध्या के प्रसिद्ध राजा। आरामचद्र
जी के पिता।

[दशरथ—ये अयोध्यानरेश राम के पिता और धज
के पुत्र थे। इनकी तीन रानियाँ थी,
कौशल्या, ककयी और सुमित्रा। कौशल्या
से राम हुए जिन्हें भरत की माता
ककयी का दशरथ द्वारा बिता दिए गए वचन
के कारण वन जाना पड़ा और
राम के वियोग में इनकी मृत्यु हुई।]

दशा = का०, ४४ ७८। का० कु०, ८०।

[स०] (म०) ६७। का०, २५, २८१।

स्थिति, अवस्था। मानव ज्ञान की
अवस्थाएँ, अभिलाषा, चिन्ता, स्मरण
उद्वेग, प्रलाप, उमा, व्याधि आदि।

दशु = का०, ८४ ७०, ५१।

[स० पु०] (स०) डाकू, चोर, अमुर, अनाथ। दास।

दशुदल = का० १०।

[स० पु०] (स०) डाकूओं का गिराह।

दह = का० २३४।

[स० पु०] (हि०) कुड़। नदी से वह स्थान जहाँ गहरा
गड्ढा हो, गल।

दहकता = म०, १६।

[वि०] (हि०) जलता हुआ, सत, जम।

दात = का० २४०।

[वि०] (स०) जिम्मा दमन किया गया हो। जिसने

को वश में कर लिया हो। डत निमित्त
दान का बना हुआ। दाँत सबकी।

[स० पु०] (स०) मीनफल।

दाँत = का०, ५७। का०, ५६।

[स० पु०] (हि०) दाढ़। दाढ़। उपयुक्त अवसर। दाजी।
मीठा। जुए में बदा गया चाल।

दाग = का० ४०।

[म० पु०] (हि०) मुर्दा जलाने का क्रिया। जलाने का
काम। दाह। जलन। दाह। जलने
का चिह्न। चिह्न।

[दाता सुमति दीजिए—'प्रजातशत्रु' में वासवी
की प्रायना। 'प्रसा' सगीत' में पृष्ठ
५४ पर संक्षिप्त। इन तीन पंक्तियों की
प्रार्थना का भाव है कि भगवान् सद्-
बुद्धि दो। मानव हृदय को कल्याण से
सींच कर मानमूलक विदक का रोज
अकुरित करो।]

दादा = चि०, ४ ७३।

[स० पु०] (हि०) पिता का पिता।

दान = का०, १८ २३। का०, १८। का० कु०,

[स० पु०] (म०) ६२। का०, ५२ ५४ ६३, ६४, १०६,
१६३, २२६। चि०, ५२, १४२। का०,
५, १७। ल०, ४५।

दने का कार्य। उदारतावश दिया जान-
वाला धन या सामान। दान में दी
जानवाली वस्तु। महामुल, कर, जुगा।
राजनीति का उपाय। हाथी का मद।
एक प्रकार का मधु। छैन। शुद्धि।

दानव = का०, १०६। ल०, ४७।

[स० पु०] (म०) असुर, राक्षस मतति।

दानशीलता = का० १५३।

[म०] (स०) दान करने का प्रवृत्ति। उदारता।

दाबहुँ = चि० ४२।

[क्रि०] (क्र० भा०) दबाओ।

दायि = चि० ४१ ६५, १६३।

[पू०] (क्र० भा०) दाबकर।

दाव्यो = चि०, ४२।

[क्रि०] (क्र० भा०) दबाया।

[सं० शी०] (सं०) प्राचीन काल में राजाग्रा का सभी दिशाग्रा में विजय प्राप्त करना ।

दिन = का० कु०, ३१ । का०, ७५, ८२, ८६, [सं० पु०] (सं०) ६३ ११२, १२६, १६४, १६६, १७८, २०६, २१७, २२३, २२६, २६४, २८१ । बि०, ८, ३५, ५६, ६१, १८५, १८६ । अ०, ४७ । प्र०, ६, १७, १६, २० । म०, १७, २२ । ल०, ७७, ७८, ७९ ।

सूय निकलने में उसके अस्त होने तक का समय । ८ पहर या चौबीस घंटे का समय । दिनम् ।

दिनकर = आ०, ५६ । का० कु०, ८ । का०, [सं० पु०] (सं०) २१३, २८४ । बि०, १६०, १६३ । प्र०, ५ । म०, ७ । ल०, २६ । मूय । प्राग । मंदिर ।

दिनकर कर = का० कु०, ३३ ।

[सं० शी०] (म०) मूय की किरणें ।

दिन निन = का०, ३३ ।

[अ०] (हि०) नित्यप्रति । सदा । हर राज ।

दिननाथ = का० कु०, २८ । बि०, ८८, १०१ ।

[सं० पु०] (सं०) सूर्य ।

दिनभर = का०, १४४ । बि०, ३८ । म०, ७ ।

[सं० पु०] (हि०) पूरा दिन ।

दिनरात = का०, १५ । का० कु०, २६ ७५ ।

[सं० शी०] (हि०) का०, ४६ । बि०, ३८ । प्र०, १७, १६ ।

गत और दिन । सदा हमेशा ।

दिन रैन = बि०, ६ ।

[म० पु०] (हि०) २० दिनरात ।

दिनात निवास = का० ८६ ।

[सं० पु०] (सं०) सध्या का निवास ।

दिनेश = का० कु० ११३ । बि०, १४० ।

[सं० पु०] (म०) मूय ।

दिप्यो = बि० ५३ ।

[क्रि०] (ब्र०भा०) प्रकाशित हुआ ।

दिया = आ०, ५३ । का०, २२ । का० कु०, ६,

[म० पु०] (हि०) पृष्ठ से २८१ तक अनेक बार । बि० ३१, ५८, ६०, ६२, ७१, १०६, १५८, १६४, १७३, २८१ ।

दीप दीपक ।

[क्रि० म०] दे दना ।

दियो = बि०, ६७ ।

[क्रि०] (ब्र०भा०) दिया' क्रिया का एक रूप ।

[नियो भक्त उत्तर है कै मौन—इतु बला ध किरण ३, सितंबर १९१२ में सब-प्रथम प्रकाशित । ६० उत्तर]

दिलासी = का० १४ । का० कु० १४ ।

[क्रि०] (हि०) दिलाना ।

दिलीप = बि० ४८, ५२ ।

[म० पु०] (सं०) इक्ष्वाकुवंशी एक राजा का नाम जो रघु के पिता थे ।

[दिलीप—कालिदास के रघुवंश में इनकी क्या सविस्तर वर्णित है । इस के यहाँ से नीचे के समय कामधेनु के शाप का वशिष्ठ द्वारा बोध होने पर इन्होंने पुत्रप्राप्ति के लिए उनके आश्रम की कामधेनु पुत्री नदिनी की सेवा आरंभ की । नदिनी ने मायावी मित्र द्वारा इनकी परीक्षा ली । जंगल में इन्होंने उनकी रक्षा के लिए सिंह का स्वयं को अर्पित कर दिया । धेनु प्रमत्त हुई और पुत्रप्राप्ति का वरदान मिला और मुदक्षिणा से रघु उत्पन्न हुए । पुराणा में इह रघु का पितामह बताया गया है ।]

दिल्ली = का० कु० १०८ । ल० ६६ ।

[म०] (हि०) भारतवर्ष की राजधानी ।

[दिल्ली—प्रलय का छाया और महाराणा का महत्व में चर्चित । सह्या वर्षों से भारत की राजधानी । कौरव पांडवा के समय से लेकर यह या इनके आसपास भारत का राजधानी रहो है । दिलीप के नाम से दिल्ली नामकरण हुआ । कौरवों का राजधानी हस्तिनापुर यही थी और

पृथ्वीराज चौहान यहाँ अंतिम टिंरा राजा था। अलाउद्दीन ने यहाँ नगर बसाया, और ब्रह्मण इसी प्रकार तुगलक शाह, मुहम्मद तुगलक और अग्रजों ने तुगलका बाग, आदिलशाह और यही दिल्ली बसायी और अब स्वतंत्र भारत में भारत की इस राजधानी का 'यापन' प्रसार प्राधुनिक ढंग पर हो रहा है।]

दिल्लीपति = म० ११।

[स० पु०] (पि०) दिल्ली के राजा।

दिवस = का० कु० २२। १७, २४, १४४,
[म० पु०] (सं०) १७८। चि० १२ १७। प्रे० ११,
१५ १६ २१। म० २१।
दिन, वासर, रोज।

दिवसन = चि० ६०।

[स० पु०] (ब्र भा०) दिवस का बहुवचन।

दिया = का० २६१।

[म० पु०] (सं०) २० 'दिवस'।

दियाकर = का० कु०, २४ २८, ५४। का० ६३।
[म० पु०] (सं०) चि० १, १४३, १४५, १५२।
म० ३।

सूर्य, भास्वर। कीवा। मदार का फूल।

दिव्य = का०, ५०, ५८, ६०। चि०, १०१।
[वि०] (सं०) ल० ६४।

अलौकिक। बलिया, मुंदर।

दिव्यज्योति = का० कु० ६ १२ ५१, ११२ ११३,
[सं० पु०] (सं०) १२४ १२६। का० २२२, २४०,
२४४ २४३, २८७। ल० १३।

तत्त्ववेत्ता। आकाश में होनवाला उरपात। स्वर्गीय अलौकिक। चमकीला।

दिव्य रथ = का० कु०, ११४।

[सं० पु०] (सं०) अलौकिक रथ।

दिवाकर किरणालो = का० कु०, ३४।

[सं० पु०] (सं०) सूर्य की किरणों की पंक्ति।

दिवासात्रि = का० ७, ३६।

[सं० स्त्री०] (सं०) २० 'दिन रात'।

दिवाश्राव = का० १८०।

[वि०] (सं०) दिन का बचा हुआ।

निशा = का० कु० ५६। का० १३५, १८४,

[सं० स्त्री०] (सं०) २४५, २६०, २६३। चि० १०१।

घोर, तरफ। क्षितिज के चार बल्बित विभागा में से किसी घोर का विस्तार। दिव। दस की संख्या।

निशि = का०, २३४। चि०, ५३, १६३।

[सं० स्त्री०] (सं० भा०) २० 'दिशा'।

दिशि दिशि = का०, १२०। चि०, १३२।

[सं०] (सं०) सभी दिशाओं में। प्रत्येक धार।

दीक्षित = का० कु०, ११४।

[वि०] (सं०) जिसने संन्यास करके यज्ञ किया हो। जिसने गुरु से मंत्र लिया हो।

दीक्षित ह्वे कै = चि०, ४१।

[पूर्व० क्रि०] (ब० भा०) गुरु से मंत्र लेकर।

दीप्तता = का०, ६३, ५१। का० कु०, १६,

[क्रि० अ०] (हि०) २६, ४१। म०, ४, ५।

दिखाई देता।

दीप्त = का०, २६८। का० कु०, ५१।

[क्रि०] (हि०) २० देवता। दिखाई पड़ना।

दीजिये = का०, २१, २८, ४५। का०, १५,

[क्रि० सं०] (हि०) २५ २२ २५, २७, ६, ३०। चि०,

५४, १७५। ल० ७३।

देना क्रिया का आन्तरमुख्य वतमान काल का रूप।

दीजे = का० कु० ६। चि०, ७३, १४८।

[क्रि०] (ब० भा०) दना क्रिया का रूप।

दीठि = चि० ४६, १७२।

[सं० स्त्री०] (ब्र भा०) दृष्टि, नजर, निगाह।

दीन = का०, ४४। का०, ११, २५। का०,

[वि०] (मं०) ७४ ८६। का० ७ १७, ३३, ४६,

४५, ८२, १३६, १४५ १५७ १६१,

६४, १६७, २३६, २४५। चि०, ४६,

५१, १०० १७०, १७२ १७८। म०,

४६ ६५।

गरीब, धनहीन। दुःखित, कातर।

[सं० पु०] (सं०) मत्त मजहब।

दीनता = का०, ३८, ७१। चि०, ३०। म०,

[स० जी०] (म०) ५८, ५९ । ज० ६५ ।

गराबी, धनहीनता । उदासी । नम्रता ।

दीनदुःख = चि०, १७९ ।

[स० पु०] (स०) गराबी का दुःख । गरीबों का वृष्ट ।

दीनदुःखहारी = प्रे०, २१ ।

[वि०] (स०) गरीबों का दुःख दूर करनेवाला ।

— [दीन दुःखी न रहे कोई—विशाल म हरावती की प्रायना । नागक'या की यह प्रायना 'प्रसाद संगीत' में पृष्ठ ३९ पर संकलित है । सब लोग मुखा हो, काई दीन दुःखी न रहे । दश पूर्ण समृद्ध हो, लोग निरोग रहे, सब में सहयोग और कूट नीति का नाश हो । राजा प्रजा सारे ढोंग छोड़कर समर्थ हो ।

दीनवधुता = चि०, १७८ ।

[स० पु०] (स०) गरीबों का दुःख दूर करने का भावना ।

दीन वाणी = चि०, ५० ।

[म० जी०] (स०) विनम्र वचन । बातरता से भरी हुई बोली ।

दीन सम = का०, ११, १५ । म० २ ।

[वि०] (म०) गरीबों का समान ।

दीने = चि०, ७४ । १७१ ।

[क्रि० स०] (प्र० भा०) दिया ।

दीन्ह = चि०, ४२, ८८, ५७, ६०, ६४, ६६, १७९, २०६, २६३ । चि०, ४६, १६१

[प्र० म०] (प्र० भा०) १०१, १५८ ।

दिया ।

दीन्हों = चि०, ५२ ।

[प्र०] (प्र० भा०) दिया ।

दीप = का०, १७, १९, ७३ । व०, ९ । का०

[स० पु०] (स०) कु०, ४, ८, ९, १०३ । का०, १७६, १७९, २०६, २६३ । चि०, ४६, १६१, २००, ३४, ३५ ।

दिया । चिराग । एक मात्रिक छ ।

दीप ।

[दीप—'माधुरा' षप १, राड १, सं० ३, सन् १९२२ में मन्त्रप्रथम प्रकाशित और 'भरना' म पृष्ठ ३५ पर संकलित आया-

बादी शिल्प की चतुदशपदी । घूसर सच्चा कालिमा का अधिकार बढ़ाती चली जा रही थी । श्वसादरूपी घोर श्वकार में पवत के समब का प्रतीक सोना घुसचाप मन मारे वह रहा था उस गंगा की भाँति पूज्य मानकर अचर में छिपाकर एक छोटा सा दीप किसी न जलाया था । मन का यह दीप सार ससार पर घोर धीरे प्रकाश बिखेरने लगा । और प्रकाश का 'जला करंगा दीप, चलेगा, यह सोता वह जाने का ।'

द०—प्रसाद की चतुदशपदिया ।

दीपक = का०, ३०, ४४, ७९ । का०, ९,

[स० पु०] (स०) १६० । चि०, १९ ।

दिशा । चिराग । एक श्रयात्कार । एक राग का नाम । शहर । मयूर शिखा ।

दीपती सी = का०, ९७ ।

[वि०] (हि०) प्रकाशित होती सा ।

दीपमाला = का० कु०, २ ।

[म० जी०] (स०) जलते हुए दीपों की पाल । दापशिला । भारत का नए जलाई हुई बत्तिया का समूह ।

दीपारात्रा — का०, १७६ ।

[स० जी०] (स०) चिराग का ली । दिने की टेम ।

दापाकुराली = चि०, ४६ ।

[स० स्त्री०] (स०) दापरूपी मकुरा की पाल ।

दीपाधार = म०, १९ ।

[स० पु०] (स०) दीप का आधार, दीपट ।

दीप्त = का०, ४७ ।

[वि०] (स०) प्रकाशित । चमकता हुआ ।

दीप्ति = का०, ९, २४६ ।

[स० जी०] (स०) प्रकाश । आभा । गोमा ।

दीरघ = चि०, ३ ।

[वि०] (हि०) विस्तृत, बड़ा, विशाल ।

दीर्घ = का० कु०, ८९ ।

[वि०] (स०) 'दीरघ' ।

दुद्रुभी मृदग तूर्य = ल०, ५६ ।

[सं पुं] (सं) नगादा, मृदम और ढाला। तुम्ही या सिहा।

दुग्ध = मां०, ३६, ७५। क०, १७, ३१।

[सं पुं] (मं) का० कु०, १४, २७, ३०, ६३, ७६, ११३। का०, ६, २६३। वि०, १८। १८८। प्र० २०, २२, २३। म०, १०, १२, १५। ल०, ३१, ४५।
कृष्ण वनस्य प्राप्तः।

दुग्ध बाला = का० २८२।

[सं स्त्री] (मं) विपत्ति दुग्ध की लपट।

दुग्धजलधि = का०, ८।

[सं पुं] (सं) दुग्ध का सागर। घट्टन उठा दुग्ध।

दुग्धरस्यन्त = का० १६०।

[सं पुं] (मं) बुरा स्वप्न।

दुग्ध = क० २, १४ २२३। वि०, १८१

[सं पुं] (मं) १८४ १७८ १८५।

०० दुग्ध'।

दुग्धद = का०, १६४।

[वि०] (मं) दुग्ध देनेवाला दुग्धदायक।

दुग्धदायक = क० १३। प्र० २३।

[वि०] (सं) दुग्ध या कृष्ण पशुचानेवाला।

दुग्धदह = का० २६६।

[सं पुं] (मं) दुग्ध रूपी कृष्ण। दुग्ध का दह।

दुग्धतटिनी = का०, १७६।

[सं स्त्री] (हिं) दुग्धरूपी नदी।

दुग्धदीनता = का० २६६।

[सं स्त्री] (सं) गरीबी का दुग्ध।

दुग्धद्रुम दल = का० कु०, ७ वि० १४०।

[सं पुं] (सं) दुग्धरूपा वृक्ष के पत्ते।

दुग्धपिपासा = का० कु० ५७।

[सं स्त्री] (सं) दुग्ध की व्यास।

दुग्धभरी = का० २१३।

[वि०] (सं) = दुग्ध से युक्त।

दुग्धसुप्त = मा० ४६। का० १०२ १६०

[सं पुं] (मं) २२२ २७२।

कृष्ण और आनंद।

दुग्धसागर = का० कु०, ६३। प्र०, २१।

[सं पुं] (सं) ०० दुग्धजलधि'।

दुग्धशामी = वि०, ६८।

[वि०] (हिं) दुग्ध में तान या दुग्ध की कामना करनेवाला।

दुग्धभाग = मां०, ४८।

[सं पुं] (हिं) दुग्ध का बोझ।

दुग्धिया = का० कु०, ६१। का० ० १३। वि०,

[मं स्त्री] (हिं) ६०। अ० ४। प्र०, १८। ल०, ४०, ७२।

दुग्धी कृष्ण म पहा दुग्धा।

दुग्धियान = वि०, १७८।

[सं पुं] (प्र० भा०) ०० 'दुग्धिया'।

दुग्धी = मां० ४४। का० कु० ५६ ८६।

[वि०] (हिं) का० ११८, २१३। वि०, १०३, १४०

१८५। प्र०, ५, ६, १८, २३।

लिप्त 'दुग्ध से पहा दुग्धा। कृष्ण भजन

वाला।

दुग्धधाम = का० १४७।

[मं पुं] (मं) दूध व धर प्रपाति दूध देनेवाले पशु।

दुग्धसी = का० ६४।

[वि०] (सं) दूध के समान स्वच्छ मफे'।

दुग्ध = वि०, १८४।

[मं] (हिं) घृणापूर्वक दूर हटाने के लिये कहा जानेवाला शब्द। भिड़की।

दुग्धही = ल० ६६।

[सं स्त्री] (हिं) दोपहर। मध्याह्न।

दुग्धत = का० २४६। ल० ५१ ५२।

[वि०] (सं) दुग्ध। दुग्धतः धीर। जिसका घत बुरा हो।

दुग्धई = वि० ५८।

[मं स्त्री] (प्र० भा०) धिपाई।

दुग्धशामयी = ल० ५२।

[वि०] (मं) बुरा आशा से युक्त।

दुग्धी = का० कु०, ८ १०, ११८। प्र० १,

[सं पुं] (मं) ३, ४।

गड, किला एक अमुर का नाम।

[वि०] (सं) जहाँ जाना वा गमन करना महज न

हो। दुग्ध।

दुग्धद्वार = म०, १०।

[सं पुं] (सं) किल का दरवाजा।

दुर्गुन = वि०, १८५।

[म० पु०] (म० भा०) बुरा गुण। दोष।

दुर्जन = प्रे० ५।

[वि०] (स०) दुष्ट या लोटा आदमी। खल।

दुर्जनकृत = म०, १४।

[वि०] (स०) बुरे व्यक्ति के द्वारा किया हुआ।

दुर्जेय = वा०, ७।

[वि०] (स०) जिसका जलना अत्यंत कठिन हो।

दुर्दम्य = का० कु०, ११२।

[वि०] (स०) जिसका दमन करना दबाया या जला जाता बहुत कठिन हो। प्रबल, प्रचंड।

[स० पु०] (स०) गाय का बछड़ा।

दुर्दिन = प्रा०, १, १४। का० कु० १०८।

[स० पु०] (म०) बुरा दिन मयाच्छन्न दिन। दुष्ट और बुरे दिन।

दुर्दिन जलधारा = वा० कु०, १०८।

[म० स्त्री०] (स०) वह दिन जिसमें घनघोर बादल छाए हों, घुमघोर पानी बरसता हो, इस प्रकार के दिन का जल का प्रवाह।

दुर्द्वैव = का० २८।

[म० पु०] (स०) दुर्मय्य अभाग्य।

दुर्द्वैवश = का० कु० १०६।

[क्रि० वि०] (म०) दुर्मय्य म।

दुर्धर्ष = वा०, १६४।

[वि०] (म०) कठिन, प्रचंड, दुश्मन।

दुर्निवार = वा० १७६, १६१।

[वि०] (स०) जो शीघ्र रोका या हटाया न जा सके।

दुर्धक्षा = वा० १८। वा०, १८१, २५६। प्रे०

[वि०] (स०) २१।

दुश्मजोर। दुश्मना पल्ला। निबल।

दुर्धलता = का० कु०, ८६। वा० ५६, ८४

[स० स्त्री०] (म०) १२२ १७०।

बल का क्षम, क्षमशोरा, दुश्मता, दुश्मगण।

दुर्भर = वा० १४३।

[वि०] (स०) जो उठाना न जा सके।

दुर्भाग्य = प्रे० १६।

[स० पु०] (म०) बुरा भाग्य बुरी किस्मत, बुरा ग्रहण।

दुर्भाग = का० कु०, ११३।

[म० पु०] (म०) बुरा भाव, दोष।

दुर्भय = वा०, २६ ३८, ६३।

[वि०] (म०) जो सहज भेदा या छेदा न जा सके। जिसे पार करना अत्यंत कठिन हो।

दुर्भद = ल०, ४१।

[वि०] (म०) जो मर्म म चूर हो, घमडा, मदमस्त।

[दुर्बोधन—द० मुयावन।]

दुर्लभ = वा०, १२२। ल०, १२।

[३] (स०) जा कठिनाता से मिल सकें, अनोखा, बहुत बढ़िया और विलक्षण।

[स० पु०] विष्णु।

दुर्लक्ष्मी = वा०, २००।

[म० स्त्री०] (म०) अनिष्टकारक वन। बुरी भागा, कुतारा स्त्री।

दुर्लभ = वा०, १३८। ल० ६।

[वि०] (स०) बुरा, खराब, जिसका रगड़ग ठीक न हो।

दुर्भाव = वा०, ६१।

[वि०] (म०) जो जल्दा समझ में न आ सके। कठिन।

दुर्ध्वजहार = वा० १२४।

[म० पु०] (म०) बुरा बलाव या मल्लूक। बुरा आचरण।

दुर्लार = वा०, १६८, १६०, १६६, १८८,

[स० पु०] (हि०) २४३।

बच्चा का प्रसन्न करने की पूण चेष्टा, साट प्यार।

दुर्लारकर = वा०, १५२।

[पूर्वक्रि०] (हि०) बच्चा को प्यार कर।

दुर्निधा = का०, १३३।

[म० स्त्री०] (हि०) दा नाला म म किरी का निश्चित न कर सका का भाव। मन की अस्थिरता सङ्ग।

दुश्चित्त सा = वा० कु०, १२३।

[वि०] (म०) विषट चित्तित व्यक्ति की तरह। कठिनता से समझ में आनेवाले की तरह।

दुष्कर सा = का०, १७।

[वि०] (स०) अत्यंत कठिनीता के साथ । दुसाध्य
सदृश ।

[स० पु०] (स०) आकाश की तरह ।

दुष्कर्म = का०, ७। म० १२ ।

[स० पु०] (स०) बुरा काम, कुकर्म । पाप ।

दुष्काव्य = म०, १४ ।

[स० पु०] (स०) बुरा काव्य । जिन काव्य से समाज में
बुराई आता हो ।

दुष्ट = वि०, ६६ । का० कु०, १०२ ११२ ।

[वि०] (स०) क० २८ २८ ।
दोषग्रस्त । बुरे स्वभाववाला । दुर्जन
पात्री, छल ।

दुष्टन = वि०, ४२ ।

[वि०] (म० भा०) देखिए 'दुष्ट' । (बह्वचन) ।

दुष्प्राप्य = का० कु०, ३० ।

[वि०] (म०) जिसका मिलना कठिन हो, दुर्लभ ।

दुष्यत = वि० ५८, ६०, ६६ । का० कु०,
[स० पु०] (म०) १०६ ।

महाभारत में वर्णित एक पुण्ड्रिकी राजा
का नाम जिसने कश्यप ऋषि की पालिता
पुत्री 'गन्धुतना' से गांधव विनाह
किया था । प्रेम राज्य भरत, वन
मिलन में वर्णित । ६० शत्रुता ।

दुष्यत सहित = वि०, ५६ ।

[स० पु०] (स०) दुष्यत के साथ ।

दुसह = का०, २३४ । का० कु०, २२ ।

[वि०] (स०) जो सह्य न जाय । असह्य । कठिन ।

दुस्तर = क०, ३१ ।

[वि०] (स०) जिसको कठिनीता से पार किया जा
सके । विकट । कठिन ।

दुहराना = म०, १ ।

[क्रि०स०] (हिं०) किसी काम का दो बार किया जाना ।
दो बार यादृत्त करना ।

दुहरी = भा०, २४ ।

[वि०] (हिं०) दो परना का हाना ।

दुहाई = स०, ३३ ।

[स० स्त्री०] (हिं०) घोषणा । पुकार । अपनी रक्षा के

लिये जित्लाकर लोभा को बुलाना । दूध
बुझने की मजदूरी । गुहार ।

दुहें = वि० ४१ ४२, ५३, ६४, ६५ ।

[वि०] (३० भा०) दोनों ।

दुहुँन = वि०, १६ २३ ।

[वि०] (३० भा०) देखिए 'दुहु' ।

दुहें = का०, १४७ ।

[क्रि०स०] (हिं०) दुहना ।

दूजे = वि०, ३१ ।

[वि०] (३० भा०) दूसरे ।

दूत = क०, ५० । वि० १८४ ।

[म० पु०] (स०) किसी समाचार का पहुंचानेवाला
मनुष्य, वर, धावन । प्रमी का सवरा
प्रमिका तक पहुंचानेवाला ।

दूध और पानी सा = म० ४०१ ।

[वि०] (हिं०) दूध और पानी के समान एक हो
जानेवाला ।

दूनों = वि०, १८१, १८४ ।

[वि०] (३० भा०) दोनों ।

दूना = का०, १६० ।

[वि०] (हिं०) दुगुना ।

दूनी = का०, १७६ । वि० १०६ ।

[वि०] (हिं०) दूना का श्वास्त्रिण ।

दूर = प्र० १०, २, १५, २१ । क०, १५,

[क्रि०वि०] (हिं०) ३० । का० कु०, २८ । का० ३२, ६८,
७०, ८१, १२६ १३६ १४२ १५०,
१६४ १८०, २३३ २६०, २७२ ।
वि०, १५ । म० ३३ ५५ म०, १,
३ ४ । स० ६७, ६६ ३१ ।

विस्तार तथा काल समय के विचार
स अंतर पर ।

[दूरजन हो गया वही मन से—'विशास' में
नरद्वय के प्रति महारानी की मिला ।
प्रसाद समीप में पृष्ठ ३६ पर संक्षिप्त ।
चार पंक्ति इस कविता में महारानी
कहती है कि यदि कोई मन से दूर हो
गया तो मन ही मन तन तन में लगा रह
कुछ नहीं है, जस सबका यात्रन स्वप्न

मे मन सेर का आता है पर तन से
उसका कतई लगाव नहीं रहता।]

दूर दूर = का०, ३ २८, ३०, ३५, २१८।
[क्रि० वि०] (हि०) बहुत दूर तक। निवृत्त नहीं।

दूर से = चि०, ४।

[क्रि० वि०] (हि०) दूर से।

दूरागत = का०, १७, २११, २२५, ६६।

[वि०] (स०) दूर से आया हुआ।

दूरीवल = चि०, ३६।

[स० पु०] (स०) दूर नामक घास की घाती।

दूसरा = का०, ८१ ६२ १६१, १६८, १७१
[वि०] (हि०) २१०, २६०, २७२, २७७। चि०
१८७। का० कु०, ८, २० ७२।
प्रे० १३।

कोई और। द्वितीय।

दृगवल = चि०, २४। स०, ४८।

[स० पु०] (स०) आँख की पलक।

दृग = भा०, ६६। का०, ७७ १५६, २८१
[स० पु०] (स०) २८६ २८६। चि०, ७७ ५६, ७०,
७७ १५१, १८६। अ०, ७४। प्र०,
७, २२। म० १८। ल०, १०, ७६
७६।

आँख। देखने की शक्ति या दृष्टि।

दो का सख्या।

दृगकज = का० कु० १००।

[स० पु०] (हि०) कमलवत् आँखें।

दृगकुभ = चि०, १७७।

[म० पु०] (हि०) आँख रूपी घड़े।

दृगजल = भा० १० अ० १६, २६।

[स० पु०] (हि०) आँख।

दृगभरना = का० कु० ७१।

[स० पु०] (हि०) भरना के समान आँखों। आँखों से
आँसू बरसना।

दृगसारा = का० कु०, ५६ प्र० २६।

[स० पु०] (हि०) आँख का पुतली, अत्यंत व्यास।

दृगद्वार = का० कु०, ६२।

[स० पु०] (हि०) आँख के दरवाजे, पलकें।

दृगनि लोल = चि०, ७०।

[स० पु०] (ब्र० भा०) चंचल आँखा मे।

दृगवान = चि०, ५४।

[स० पु०] (हि०) आँख का तीर, बटाक्ष।

दृगभीचि = चि०, ७०।

[क्रि०] (ब्र० भा०) आँख मीचकर या मलकर।

दृढ = का, ३, ६३, १८१, १८२, १८३,

[वि०] (स०) चि०, ७१, ४६, ६७, ६६, १०३,
१८७, म० २६।

प्रमाण। ठोस। हृष्ट पुष्ट। ध्रुव, पक्का।
निष्ठर, दीठ।

[स० पु०] (स०) विष्णु। घुतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।
सगीत के मात रूपना म से एक।
गणित में वह धक जा दूसरे से
विभाजित न हो।

दृढ करे = चि०, २४।

[क्रि०] (हि०) पक्का करके, मजबूत बनाय।

दृढता = का० २६।

[स० स्त्री०] (स०) पक्कापन। अटलता।

दृढ प्रतिज्ञा = म० ११।

[वि०] (स०) अपने प्रतिज्ञा या बात पर अटल रहने
वाला।

दृढमूर्ति = का० ५६।

[म० स्त्री०] (स०) मजबूत प्रतिमा।

दृढ हृदय = म० ११।

[स० पु०] (स०) पक्का हृदय या विचार।

दृष्ट = का० ८६ ११६। प्र० २४। ल० ५२,

[वि०] (स०) ५७ ६३, ६७, ६६, ७१, ७६।

उप। प्रचंड। प्रज्वलित। तेजयुक्त।
अभिमानी।

दृश्य = का० कु०, १३, ४७ ६८। का० ३५,
७६, ११६, २०६, २८४, २८६, २८६।

[वि०] (स०) चि०, ७२, ६३। अ०, १६ ६६।

जो दृश्य में आ सके। जिसे देख सकें।
जा दिखाई देना या साफ नमकन में
आता हो। स्पष्ट देखने योग्य। दर्श
नीय। मुद्गर।

[स० पु०] (स०) दर्शने का वस्तु।

दृष्टि = का० कु० १२१। का० १७, २०, ५१,

[सं० स्त्री०] (मं०) ६३, १६४, १८१। चि०, २१, १४७, १५७। अ० ६०।

देखन की शक्ति। आख की ज्योति।
निगाह। नजर। परख। भाषा।
ध्यान। विचार। उद्देश्य। अभिप्राय।

दृष्टि ते = चि०, ७४।

[सं० स्त्री०] (ब्र० भा०) आख से।

दृष्टिपथ = का० कु० ४१ का० ८३। अ०, ५७।

[म० पु०] (मं०) दृष्टि का फलाव। नजर की पहुँच।

[नेत्रा नयनों ने एक झलक—'विशाल' में चद्रलेखा का वही भवस्था या चार पंक्ति का गीत जो विशाल की उसकी प्रेम स्मृति को मूर्तित करता है। प्रसाद मगीत में पृष्ठ २२ पर सङ्कलित। उम छवि की निराली छटा की एक झलक आखों ने देखी। नेत्र रूपी भीर रस पा भद्रमत्त हा सी गए कमल में ऐसा लाली पी। पनरें सुरभि का हाता पी लिये। रूप का वह मादकता ऐसा मतवाली थी। आलं मुख पर खुले बाल और उम कपोल पर गजब की मादक लालिमा था।

देना = आ० ८ १८। क० ११, १७, १८
[क्रि०] (हि०) २५। का० कु० ११, २१। का०, ४१, ८४, ६३ १८२, २१६, २३७, २५२, २५४ २६३, २८२। चि० ५७, ६२ १७६, १८० १८५। अ०, ६१। प्र०, ११। ल०, ३५ ३७।
प्रदान करना।

देवकल्पना = का०, १६३।

[सं० पु०] (सं०) ईश्वरीय कल्पना।

देवदभ = का० ७।

[सं० पु०] (सं०) देवतामा का अहंकार।

देवद्वार = का० ८८ २०८। चि० ५५।

[सं० पु०] (मं०) हिमालय पहाड़ पर पाया जानगला एक वृक्ष विरोध।

देव निनकर = का० कु० २०।

[सं० पु०] (मं०) ग्यत्र। दिन करनेवाला देव।

देवदूत सा = प्र० १६।

[वि०] (हि०) यन्त्रि के समान। देवदूत के समान।

देव द्वंद्व = का०, २८५।

[सं०] (मं०) देवताओं पर परस्पर युद्ध।

देव प्रतिज्ञा = चि०, ६७।

[सं० स्त्री०] (सं०) दृष्ट प्रतिज्ञा। कठोर प्रतिज्ञा।

देव प्रवृत्ति = का०, १५८।

[सं० पु०] (सं०) स्वताप्रा का स्वभाव, सतीगुणी स्वभाव। अहंकारा स्वभाव।

[देववाला—'भरना' में पृष्ठ ७८ पर सङ्कलित कविता। वृत्तिमाने यहाँ मत आगे।
माँरी सरलता यहाँ देववाला में एकत्र है। वृत्तिमाना वचन और लक्षणभंगुर है चाहे वह हिमाला हो, चाहे इन्द्रधनुष है। सबका रंग प्रस्थापी है सरलता प्रवचन चद्रमा का सीला के समान है। सुवासित जल सङ्क जाता है इध उठ जाता है, हिमकणों में वमक ता रहता है पर मूर्ध (ताप) के स्पर्श मात्र से उठ जाता है पर सहज सादय गंगा का घारा का मोति पवित्र और स्नेह के आकाश के नव तार की भाँति है। यह शीलसागर के मोती का भाँति सुन्दर है और हलना माधुर्य और कही नहीं हाना।]

देववालागन = चि० १५४।

[सं० पु०] (ब्र० भा०) देव कथाया का समूह।

देवव्रत = चि० ४१।

[सं० पु०] (सं०) आत्म पितामह जो गया के पुत्र थे। इनके पिता कुम्भशा राजा शातनु थे। एवं सामान।

देवमन्दिर = का० कु० ६६। ल० ६३।

[सं० स्त्री०] (हि०) हिंदू धर्म के शास्त्रमतानुसार देवपूजा का स्थान जहाँ निमा देवता की प्रतिमा या प्रताक रहता है।

[देवमन्दिर—शुद्ध कथा ३, विरग १ आश्विन शुक्ल मवत १६६८ वि० में मवप्रथम प्रकाशित और 'वानन कुमुम' में पृष्ठ ५६ पर सङ्कलित और 'मन्दिर' भाषक में प्रकाशित। जब यह मानन है कि पृथ्वा, जन, पावक आकाश, वायु इन पंचभूता में ईश्वर व्याप्त है ता यह

उनको हठधर्मी है जा कहने हैं कि मंदिर' म नहीं है। जहाँ श्रद्धापूर्वक हजारों सीस नवाते हैं और उसको सट्टो मुल से बताते हैं फिर भी उसको वहाँ न मानना मूढ़ता है। जा आत्मा और परमात्मा का भेद नहीं मानते उह जानना चाहिए कि जिस पंचभूत से ये बने ह उमा से मंदिर भा बना ह। भगवान् का लाला सबत्र ध्यात है। इस कविता का उपसंहार इस प्रकार है—

मस्जिद, पगाडा, गिरजा किमको बनाया तूने।
सब भक्त भावना क छाटे बडे नमूने।
मुदर वितान कसा, आकाश भी तना है।
उसका अनंत मंदिर, यह विश्व भी बना है।]

देवयजन = का०, १३, २१।

[स० पु०] (स०) दवतामा का यज्ञ। यज्ञ की वेदी।
यह स्थान जहा यज्ञ किया जाता है।

देवलोक = सहर १५।

[स० पु०] (म०) स्वर्ग।

देव शक्तियाँ = का०, १८५।

[स० ली०] (स०) देवतामा की शक्ति या बल।

देवि = का० १६१ २११, २४४, २४६ २८६

[म० ली०] (स०) चि०, ४६, १६१।

देवी। दुर्गा। कुल लक्ष्मी। देवता मा
स्त्रालिंग।

देवी = का० कु० १२१।

[म० ली०] (हि०) = 'दवि'।

देवेंद्र = का०, १६७।

[स० पु०] (स०) देवराज। इन्द्र।

देवेश = का० कु० २०।

[स० पु०] (स०) परममहेश। शिव। विष्णु। इन्द्र।

देवों = का० ७१, ७८, १०६, १२८, १६६,

[स० पु०] (हि०) १६७, २५७, २५८, २६५ २६६।

'देव' का बहुवचन।

देश = का०, ३८, १८३। प्रे०, १८, म०, ८१०।
[म० पु०] (स०) १८, ४६, ५०, १६६, १८३।

यह भूभाग जो एक प्राकृतिक सीमाओं से ग्राही हो और उसमें अनेक प्रात, नगर आदि हा। अनपद। एक शामन के अतगन रहनेवाला भूभाग। राह। स्थान। जगह।

देशकाल = का० १८२।

[म० ली०] (स०) दश की स्थिति।

[देश की दुर्गशा निहारोगे—'स्वर्ग' में दवमना का देशप्रभ पूरित गीत जो दश की दुदशा देरकर ध्याया क रूप में फूट पड़ना है। प्रसाद संगीत' म पृष्ठ ६७ पर सकलित। दश की दुदशा दली, क्या कभी हूवते देश का बचाओगे। सब कुछ हारते हारते हार गए क्या अब अपने को ही दौब पर हार आशान। क्या कुछ करोगे या दीन बनकर भगवान् भगवान् ही पुकारते रहोगे। तुम भले सोये हुए हो, पर तुम्हारा आत्म नहीं साया है और अपनी जिम्मी की तुम्ही का सवारना है। तुम अब तक दीन का जीवन बिता रहे हो। सोचो तुमको क्या हो गया है। देश की दुदशा देखो, जागा और कुछ करा, आत्म भरणे न बैठो। यह इस कविता मूल तत्व है।]

देशभक्त = म० ६।

[म० पु०] (स०) जो अपने दश की सच्चा निष्ठा के साथ उक्ति म लगा हो या प्रयत्न शाल हो।

देशनिकाला = का० ३०।

[म० पु०] (हि०) देश म निकात जाने का दड। निवामन।

देश देश = का०, १३।

[म० पु०] (हि०) विभिन्न दश। अनेक दश। प्रत्येक देश।

देह = वा०, १४२, १६१। प्रे०, ११।
[सं० स्त्री०] (मं०) शरीर। बान। तन। जीवन। निपद।

देह मोह = पा० १४४।
[सं० पुं०] (मं०) ग़रार तथा घर।

देहमाय = वा० १६३।
[सं० पुं०] (मं०) केवल शरीर प्रर्षात् बानात्।

देहु = बि०, १२६, १८०/१६०।
[क्रि०] (प्र० भा०) >० देना।

[देहु चरण मे प्रीति—दुष्ट बना छ, ११२ तिरग
३ तितबर १६१३ मे मयप्रथम >नु
चरण मे प्रीति' शापक न प्रभावित
घोर 'तिनापार' मे मारदेविदु के
प्रनर्गत चार पद। (१) डीठ न करत
सबही पाप। (२) पुन्य श्री पाप न
जायो जात। (३) छिपि के मगढा
मयो फलायो। (४) ऐसी ग्रह लेइ का
करिहैं।] म पृष्ठ १८५, १८६ पर
सकलित। पहले पद मे प्रार्थना है कि
हमारे समस्त दुगुण भून कर चरण
मे प्रीति दें। पाप पुन्य सभी भुंकी
कराते हो इसलिए इतनी झुंकी टेढ़ी
मत करा क्योंकि वह जाना नही जा
सकता इसलिए चरण मे प्रीति दो।
यह दूसरा पद है। तसारा पद है 'यथ
का भगवा नया फलाने हो। गिरजा
मस्जिद मदिर मे हूँ हूँ कर सज
भ्रम मे है। पर लालामय तुम सभी
जगह हो ऐंसा मेरा विश्वास है। इस
लिण हमारे प्राणवन मोत चरण मे
प्रीति दो। चौथे पद मे निगुण त्रय के
सबब म कवि रहता है कि वह हमे
नही चाहिए। मेरा विश्वास ऐसे म है
जो करता मुनता, फलदाता है और
सदा हमारे हृदय म रहता है—ऐसे
ईश्वर के चरण मे प्रीति दो।]

देहु = बि०, ६४ १४८, १४९, १७१।
[क्रि०] (प्र० भा०) >० देहु।

देहे = बि०, १७०।
[त्रि०] (प्र० भा०) >० देह।

देहे = बि० १५७।
[धर्म०] (प्र० भा०) म।

देहे = बि०, ३८।
[त्रि० पुं०] (प्र० भा०) दार।

देह = व० १२।
[मं० पुं०] (मं०) राक्षस, नाथ, भगुर।

देह = बि० ५३, १४२।
[मं० पुं०] (मं०) दीनता।
[त्रि०] दीन सारथी। दामक, देवेवाला।

[मं० स्त्री०] (हिं०) देने का क्रिया।
देह्य = वा० पु०, ११४।
[मं० पुं०] (सं०) दानता। दुष्ट आदि के चरण प्रत्यन
वित्त होता।

देह्यल = वा० ११०।
[सं० पुं०] (सं०) देवताप्रा की शक्ति।
देहो = बि०, १५५।
[त्रि०] (प्र० भा०) >० देहु।

देहो = वा० ५५, ५१ ५५, ५५, ६२ ७६।
[वि०] (हिं०) व० १८। वा० ३ ७२ ८१, १२८,
१३०। अ० ११। म० ६, ११। ल०
१०, ३६, ४०, ४१, ७५।
एक और एक का योग।
[क्रि०] 'देहा' क्रिया का रूप।

देहु = बि०, ६६।
[वि०] (प्र० भा०) दोना।

देहो = वा० ७३, २३७ २४०, २४५, २४६।
[क्रि०] (हिं०) द दे। >० देता।

देहो = बि० ५७।
[सं० पुं०] (प्र० भा०) दाप को।

देहो = व० १८, २६। वा० पु०, ४४। ल०
[क्रि०] (हिं०) १० ७१।
>० 'देना'।

दोना = वा०, ७१।
[सं० पुं०] (हिं०) पत्ते का बना हुआ कटोरे के आकार
का पात्र।

दोनों = आ०, ८, ४६, ४२, ५०, ६६, ७१ ।
 [वि०] (हि०) का० कु०, २३, ३८, ७०, ७३, ७६, ७७, ८४, ८८, १२८, १६१, १६५, १७६, २०१, २०६, २१०, २१३, २४३, २५७, २६० । वि० ४८, ७४ ।
 प्र०, ६, १०, ११, १२, १६, २२, २३, २५, २६ । म०, ६, ८, ९ ।
 ल०, ४१, ६६, ७१, ७३ ।
 वे विशिष्ट दो जिसमें स कोई छाडा न जा सके । उभय ।

दोपहर = प्र० १४ ।
 [स० पु०] (हि०) म-याह्न ।

[दो बूँदें—सप्तप्रथम माधुरा वष ३, खड १, स० १, सप्त १६१४ २४ म प्रकाशित, 'झरना' १४ २३ पर सञ्चित दो भाव चन । शरद के मुदर नील आवाज न निशा निजरा थी, गाय का निमल हास मुधा की घड़ी बूद नी मान प्रकृत भार धरा का पुलकित कर रहा थी और सब पर बडा पसी, न-ह नादान फूल म मुधा की ऐसी एक ही बूद स मकरद भर गया जिसपर बठकर भतवाला मधुकर गुजार कर रहा है । दे० 'झरना' ।]

दोल = का०, ३४३ ।
 [म० पु०] (स०) झूना । हिंडोला ।
 दोला = का० १२८ ।
 [स० खी०] (म०) दे० 'दान' ।
 दोप = वा०, १६ । का०, २१०, २७१ ।
 [स० पु०] (स०) वि०, ७२ । म० ४२ ।
 दुगुण, बुराई ।

दोड़ = वा० कु०, ४१, ६४ । वा० १४४
 [स० खी०] (हि०) २५८, २६७, २७३, २७८, २६८, २६२ । म०, ३३ ।
 दोड़ने की क्रिया का भाव ।

दोड़ दोड़ = का० कु०, ६१ ।
 [स० खी०] (हि०) म० ४६ ।

बार बार दोड़न का क्रिया याव ।

दोड़ धूप = वा०, ५, २६ ।

[स० खी०] (हि०) वह प्रयत्न जिसम बार बार इधर उधर दीडना पडे ।

दोड़ना = का०, ४१, ४६, ७२, १७६, २०८, २१० । प्र०, १२ । ल०, ६० ।
 [वि०] (हि०) बहुत जल्दी से चलना । जल्दा पर उठा-कर चलना । साधारण स अधिक गति म चलना ।

दौरि = वि०, १, १५, ४१, १०६ ।
 [म० पु०] (म०) चक्कर । भ्रमण । केरा । उनति या बमब के दिन । बारी ।

दौवृत्त्य = वा० कु० ११२ ।
 [स० पु०] (म०) बुरा आचरण । बुरा व्यवहार । बुरा-चरण । दुश्चारावृत्ता ।

द्युति = का०, ३१ ४७ ।
 [म० खी०] (स०) काल, शामा । छाँव ।
 द्युति सी = का० १०४ ।
 [वि०] (हि०) दासि चमर, शोभा या तरह ।

द्युत्तमय = वा २८५ ।
 [स० वि०] (म०) बर्तित स युक्त । शोभा से युक्त । लावण्यमय । किरणमय । प्रभामय, दीप्तमय ।

द्युत्तरचना = वा० कु०, ११३ ।
 [स० खी०] (स०) द्यूमा खलन का चक्रम करना ।
 द्रव = स०, २१, ४३ ।
 [वि०] (स०) तरल, गला हुआ, पिघला ।
 द्रवचंद्रकांत = वा० कु०, १०० ।
 [म० पु०] (स०) पिघलनेवाला चंद्रकांत मणि ।
 द्रवमय = म०, २२ ।
 [वि०] (म०) पिघलनेवाला चीज से युक्त । सरस । सरसता से भरा हुआ ।

द्रवत = वि०, १४ ।
 [म०] (म०) पिघलता है ।
 द्रवित = वा० कु०, ६६ । वा०, २१३ । वि०, १७३ ।
 [वि०] (स०) पिघना हुआ, तरल, गला हुआ ।

द्वुत्त = स०, ७१ ।
 [वि०] (स०) आध्यात्मो, ताय ।
 द्वुत्तगति = म० ३३ ।

[सं० जी०] (सं०) शीघ्र गति, तीव्र चाल ।

दुस्तर = ल०, ७२ ।

[वि०] (सं०) शीघ्रतर । अत्यंत शास्त्रना से ।

दुत्पद = ल०, ७२ ।

[सं० पु०] (सं०) एक छंद का नाम ।

हुम = चि०, १५९ ।

[सं० पु०] (सं०) वृद्ध । पेडा ।

हुम दल = श्री०, २६ । का०, ९ । प्रे०, ३ ।

[सं० पु०] (सं०) म० २ ।

पेडा के पसे ।

हुमन = चि०, १७१ ।

[सं० पु०] (प्र० भा०) पेडा ।

हुमपत्र = म० १६ ।

[सं० पु०] (सं०) 'हुम दल' ।

हुमयुद्ध = ऋ०, ३१ ।

[सं० पु०] (सं०) वृद्धा का समूह ।

द्रोह = का०, १४७ ।

[सं० जी०] (सं०) दूसरे का अहित चाहना । बर । हर्ष्या, द्वेष ।

द्रौपदी = का० कु०, ६४ ।

[मं० श्री०] (सं०) राजा द्रुपद की लड़की । पांडवा का पत्नी ।

[द्रौपदी—द्रुपद राजा पांचाल नरेश यज्ञसन की कन्या । स्वयंवर द्वारा अर्जुन का प्रातः, पांडवा की भी पत्नी । शास्त्रा म पूज्य प्रतिभता नारी । पांडवा द्वारा जुए म हारने पर दुःशामन न इनका चौरहरण करना चाहा और कौरवा न बड़ी यातना दा पर असक्त रहे और इसी का प्ररणा म पांडवा न युद्ध का चेतना ग्रहण की और महाभारत न युद्ध मे उनकी विजय हुई ।]

द्वंद्व = का० १६१, २५१ । म० ६ ।

[सं० पु०] (सं०) युग्म । जाडा । प्रतिद्वन्द्वा । द्वंद्व युद्ध । मगहा । कम्प । दा परस्पर विरुद्ध नस्तुभा का जाडा । उन्मत्त । मग्न । बसहा । कष्ट । उपद्रव । रहस्य । भय । घासका । दुविधा ।

[सं० जी०] (हि०) नगाडा, दुहुभा ।

द्वयता = का०, १६४, १६२, १६३ ।

[सं० जी०] (सं०) दो हान का भाव । मत । अपनेपन और परापेपन का भाव । भेद भाव ।

द्वार = का० कु० ४ । का०, ११२, १४४,

[सं० पु०] (मं०) १६६, १७२, १८६ १८६, १६३ २३४ । चि०, ६७ । प्रे० १३ । ल० १२ ।

दरवाजा । मुख । उपाय । साधन ।

द्वारका = का० कु०, ११२ ।

[सं० जी०] (सं०) काठियावाड़ का एक प्राचीन नगरी । गुज्य का ज मभूमि ।

द्विगुणित = ऋ० ५५ ।

[वि०] (सं०) दूना । दुगुना ।

द्विज = चि०, २६ १०३ ।

[सं० पु०] (सं०) पक्षी । ब्राह्मण । दो बार ज मा हुआ ।

द्विजकुल = चि०, ४५ ।

[सं० पु०] (मं०) ब्राह्मण परिवार । द्विजाताय वम । पक्षागम्य ।

द्वितीय = का० ८१ ।

[वि०] (मं०) दूसरा ।

द्वितीया = म०, १६ ।

[वि०] (मं०) दूसरी । 'द्वितीय' ।

द्विधा रहित = का० १२ ।

[वि०] (सं०) पूर्ण । मिना रजः क । मग्नयरहित ।

द्वीप = का० ५६ ।

[सं० पु०] (मं०) स्थल का वह भाग जो चारो घार जल से घिरा हो । पुराणानुसार वृष्ठा के मात बडे भाग । माधार । टापू ।

द्वेष = प्र० १७ । म० १२ ।

[सं० पु०] (सं०) मनुष्य बर । हर्ष्या चि० ।

द्वेष पर = का० १६३ ।

[सं० पु०] (सं०) मनुष्य और हर्ष्याच्चा का चर ।

द्वैत = का०, १५३ ।

[सं० पु०] (सं०) दो भाव । अंतर । भ्रम । द्वैतवाद ।

ध

धंधलापट = प्र०, ३।

[सं० पु०] (हि०) धन धन हवी वस्त्र। तान का झूठा वस्त्र। वपट वस्त्र।

धंसता = का०, १४, ६६, २८६।

[क्रि०] (हि०) दबाव के कारण किमा वस्तु का तोमल वस्तु में घुसना, गडना।

धक्के = का० २६०।

[सं० पु०] (हि०) धक्का वस्तु का दूसरे के साथ बेगपूर्वक स्पर्श। टक्कर। झोका। दुस् शोर, हानि आदि का आघात। विपत्ति, मकट।

धवयो = चि० १५०।

[क्रि०] (ब० भा०) शोभित है।

धडकन = का०, ३३, ८६।

[सं० ली०] (हि०) हृदय का स्पंदन। धक्का करना।

धधक = १३६, १७६, २०६, १७३।

[सं० ली०] (हि०) धाग की लपट। ली।

धधकना = का०, १४, ३१, ४७, ६२, ११६,

[क्रि० प्र०] (हि०) २०१, २१४, २१५, २७३।

धाग का उम प्रकार जलना कि लपट ऊपर की उठे। दहना। भड़कना।

धनजय = का० कु०, ११४, ११७।

[सं० पु०] (सं०) भजुन का एक नाम। अग्नि। विष्णु का एक नाम। जितक वृत्त।

(वि०) धन की जीतना।

[धनजय—भ० भजुन।]

धनजयादि = चि० १४०।

[सं० पु०] (सं०) भर्तृन् आदि।

धन = का०, १६, ४७। का०, ६६, २४६।

[सं०] (सं०) चि०, ३४, ४५। सं०, १७, १८, २३।

रूपया पसा, सोना चाँदी आदि द्रव्य।

दीनत। संपत्ति। स्नेह का पात्र। जाह

का चिह्न (+)। मूल। पूजो। जम

कृत्वा म जम सम म दूसरा स्थान।

बच्ची धातु।

[सं० ली०] (हि०) मुक्ती वधू।

[वि०] धन।

धनान्न = चि०, ७४।

[अव्य०] (ब० भा०) धन धन।

धनमद = प्र०, २०।

[सं० पु०] (सं०) धन का घमड़।

धनरत्नादि = चि० ५४।

[सं० पु०] (सं०) आर्थिक संपत्ति के उपकरण। धन संपत्ति, रत्न आदि।

धनु = अ०, २३। का० १४१, १५७,

[सं० पु०] (सं०) २००। चि० ३, ४१, २३।

धनुष बाण कमान। उद्योतिष म बारह राशियों में म नवी राशि। हठ-योग का एक आसन।

धनु निज = चि० २४।

[सं० पु०] (सं०) अपना धनुष।

धनुषर = का० कु०, ६७।

[सं० पु०] (सं०) धनुष धारण करनेवाला। धनुन।

धनुर्वैज्ञिक = का० कु०, ११४।

[सं० पु०] (सं०) धनुर्वेद शास्त्र का शास्त्र।

धनुष = का० कु०, १०२, ११४, ११७। का०

[सं० पु०] (सं०) २००। चि० ३०, १६३। अ०, ३६।

म० ५।

बाण। कमान।

धनुषाकृति = चि० १६३।

[वि०] (सं०) धनुष की आकार वाला। अक्षध्वजाकार।

धनुषाकार।

धन्य = का०, ३०। का० कु० १२१। का०,

[वि०] (सं०) १४७, १४७, २२४, २३८, २८६।

चि०, २६, ६६, ६७। अ०, ५०।

प्रसन्ना या सहाइ के योग्य। श्लाघ्य।

सुजति। पुण्यवान्।

[सं० पु०] वि० गु। नास्तिक। धनिया।

धन्य धन्य = का० कु० ७१।

[प्र०] (सं०) अहा अहो।

धन्यवाद = प्र०, ५।

[सं० पु०] (सं०) साधुवाद, प्रसन्ना। वृत्तज्ञतामूचक शब्द।

शुक्रिया।

धमनी = अ०, ७३। का० कु०, १२०। का०,

[म० श्री०] (स०) ८६। स०, २१।

शरीर के भीतर रक्त संचार करनेवाला
छाटी नली। नस। नाडी।

धर = क०, ८५। स० ७२।

[म० ग०] (हि०) धरने या पकड़ने का भाव।

धरणी = आ० १० ३२, ४१ ४८। वा०, ६

[सं० स्त्री०] (म०) १५, ४८ ६३, ७३; १२२, १८२।

प्रे०, ३, १७, २०, २४ २५।

७७।

पृथ्वी। नाडी। शास्मली वृक्ष।

धरत = चि०, १६५ १६६।

[वि०] (ब्र० भा०) दे० धरता'।

धरति = चि०, २३।

[क्रि०] (ब्र० भा०) धारण करती है।

धरती = १४ २५४। चि० १५८।

[सं० स्त्री०] (हि०) पृथ्वी। जमीन। समार।

[क्रि०] ग्रहण करती, पकड़ती।

धरना = वा० कु० ६। वा० ५२, ११६,

[क्रि०] (हि०) १६७।

पकड़ना। ग्रहण करना। स्थापित

करना। रखना। धारण करना।

स्थापित करना। अगमन करना।

आधिकार या रक्षा में लना। पला

पकड़ना। गिरवा रखना। रेंहन

रखना।

धरति = चि० १५ २४।

[सं०] (हि०) 'धरणी'।

धरती = चि०, १४३।

[म० श्री०] (ब्र० भा०) 'धरणी'।

धरा = वा० कु०, २, ३ १३ २४, २७।

[सं० स्त्री०] (म०) वा०, १८ १५, २४ ५१ ६६ १६५

२०६। चि० २८ ३८ १०१ १५०,

१५४। क० २३, ३१ ५०, ५६।

पृथ्वी। धरती। समार। समान्य।

चार भर वा एक तीन। एक वस्तु वृत्त

का नाम। नाडी।

धरातल = वा० २३ १४८।

[सं० पुं०] (सं०) गतह। पृथ्वी। रक्षा। दृक्छत।

धराशायी = का० कु०, ११३। वा०, २०१।

[वि०] (हि०) पृथ्वी पर गिरा, पड़ा या लटा हुआ।
युद्धस्थल में युद्ध करते हुए प्राण
त्याग करनेवाला।

धरि = चि०, २, ६, २५, ३६ ४१ ४२, ५८,

[क्रि०] (ब्र० भा०) ६१, ६६ ७०, १४७, १५१, १५५,

१५६ १६० १६१, १६४ १६७,

१७।

पकड़ कर ग्रहण कर।

धरित्री = वा०, कु०, २६।

[सं० स्त्री०] (सं०) पृथ्वी। धरता। जमान।

धरे = क०, ६। वा० ६७ १६८, १७०

[क्रि०] (हि०) १८६। चि० ३ ३५, ५२, १०१,

१५१, १५६। प्रे०, २। म०, २०।

पकड़ें। ग्रहण कर। रखे।

धरे = चि० १५ १६६।

[क्रि०] (ब्र० भा०) 'धर'।

धम = क० १२ २२, २६ २७, २८। वा०

[म० पुं०] (म०) कु० ८८, ९० ९४ ११६, १२०।

वा० २७०, २७७ २८३। चि०, ३२,

४१ ५६, ६५, ७२ १०१ १०६,

१४०। वा० ३६, ५१।

शुभ। कम। पुण्य। श्रेय। मुक्त।

आचार। उपमा। यश। महिमा।

उपायपत्र। स्वभाव। पथ। मत।

वतव्य। व्यवस्था। माय। बुद्धि।

विवर। धमराज धमरा। धनुष,

कमान। सामपाया।

धर्मघोषणा = वा० कु० ११८।

[सं० स्त्री०] (सं०) धर्म का पुनार।

[धर्मचक्र प्रवर्तन—जगता का मंगलमयी उपा

यन कर्मणा उग न्दि आया था।

सूर रा यह करिना गया म करवरा

१८३२ म मयप्रथम प्रवर्तित हुई

था। — जगता का मंगलमयी

उपायन।]

धर्मच्युत = वा० कु० ११५।

[वि०] (सं०) धर्म धम ॥ गिरा हुआ।

धर्मजय = का० कु० १०६ ।

[१०] (स०) धर्म से उत्पन्न । धार्मिक प्रवृत्तिवाला ।

[धर्मनीति— वाचन कुमुद' म वृष्ट ८८-८९ पर सकलित वविता । धर्म की नाति विनय और वरुणा पर आधारित है और वह प्रणम्य है । वह पंचभूतों की आदर देनेवाली, दुबलता दूर करनेवाली, प्रवचना के लिये बाल और ब्रह्मा के ताप की जलानेवाला है । जिस नीति में साधना निषिद्ध हो धर्म नाति का साधन धर्म कृटिलता बढ़े, धर्मनाप याप, विधिप्राप्त समय धर्मयान्ति हो, वह नाति नहीं मानाविकार है । धर्म भय का नाशक होता है । मानव दुखी है, दबता अधीर है । शांत जीवनसागर भयकर हो गया है । उससे तीर पर नव दुखी बैठे हैं और क्या यह सारा का सारा विप पीर के बाद ही 'रत' ताडक करेगा । अर दुबल तर्कों का नाम केतो]]

धर्मान्धते = का० कु०, १२१ ।

[६० छी०] (म०) धर्म की आदर में होनेवाले दुष्कर्मों का सन्निधन । धर्म विषयमनायन ।

धर्मराज = का० कु०, ११३, वि० ३१ ।

[६० पु०] (स०) धर्म पालन करनेवाला राजा । युधिष्ठिर । धर्मराज । यायावीश ।

[धर्मराज—३० युधिष्ठिर ।]

धर्मराज्य = का० कु० ११३ ।

[म० पु०] (म०) धार्मिक सिद्धांतों द्वारा परिचालित राज्य । धर्मप्रधान राज्य ।

धर्मयो = वि०, १७७, १७३ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) पकड़े प्रहसन किए ।

धर्म = वि ५५ ।

[६० पु०] (म०) एक जंगली पत जा औपनि के नाम में आता है । पति, पुत्र । धूर्त आदमी ।

धर्मल = का० ३४, ११६, २४४, २७१, २७७, २८३ । वि०, २१, ६८ । क्रि०, २२ ।

स्वच्छ, श्वेत, निम्बल । मुदर ।

[सं० पु०] (स०) धर्म का पेठ । चिनिवा कूर । सिद्ध । सफेद मित्र । धर्म पत्नी । श्वेत बल । छण्य छद का एक भेद । अजुन वृद्ध । एक रोग का नाम ।

धर्म = वि०, ७३ ।

[धर्म क्रि०] (ब्र० भा०) दीव्य ।

धर्मो = का० १४ । का०, ६६ ।

[६० पु०] (हि०) बटे हुए मून या तागे ।

धर्मता = वि० १३४ ।

[६० पु०] (म०) ब्रह्मा ।

[क्रि०] दीव्यता ।

धर्म = का १८१, २६८ ।

[म० पु०] (स०) अपार शक्ति धर्मवाता धर्मिज पदार्थ । शरीर को बनाये रखनेवाले रक्त, मज्जादि पदार्थ । शुक्र, वीर्य ।

धर्महि = वि० १६६ ।

[म० पु०] (ब्र० भा०) ३० धर्म ।

धर्म = का० ८२ । वि०, १५४ ।

[६० पु०] (म०) एक तीर । धर्मि । एक प्रकार का नागर मोथा । धर्म । धर्म मात्र । प्राचीन काल का एक धर्म ।

धर्म = का० कु० १८, का० ८७ वि० ४६,

[म० पु०] (स०) क्रि० ६३ ।

एक प्रकार का देवता । विष्णु । धर्म ।

दह शरीर । दवस्थान या पुण्य स्थान । शाभा । प्रभाव । ज म ।

ध्याति । ब्रह्म । चहारदिवारी ।

धर्म । तज । परलोक । स्वर्ग ।

धर्मस्था, गति ।

धर्म = वि० ३६ ३८, ४२ ।

[म० छी०] (ब्र० भा०) धर्म, दाह ।

[क्रि०] दीव्य ।

धर्मो = का० कु०, ३८ । वि०, ४१, ६७ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) दीव्य ।

धर्मो = वि० ७३ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) दीव्य ।

धर्म = का०, ४२ । का० कु० १७ २८ ।

[म० पु०] (स०) का०, ६७ । वि० १४४ १४७ १६४, १६६ ।

घोष ने नाम व निगे दृष्टा दिया
दुपार जल । उधार । ऋण । प्राँन,
प्रदेग ।

[सं श्री०] धारा, प्रवाह । पानी बरगा या गिरने
वा प्रग । लहर ।

धारण = का० कु० ११४, स० ६७ ।

[सं पु०] (सं०) ग्रहण करने का भाव । पकड़न का
भाव ।

धारत = वि० १४ ३६ ६३, १/८ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) रचना । रचावित करना । ग्रहण
करना । धारण करना ।

धारति = वि० १६ ५७ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) धा ला करता है ।

धारन = वि० १७४ ।

[सं स्त्री०] (प्र० भा०) धार का ग्रहण ।

धारनि = वि० ४८ ।

[सं स्त्री०] (प्र० भा०) धाराएँ । '० धारन' ।

धारा = श्री०, १७, ५६, ६६ । का० २६,

[सं स्त्री०] (हि०) ४५, ६५ ६७ १२८, १६७ २६३ ।

वि०, १२, ७३, १५० १५६ । ऋ०

१६ । प्र०, १२ २४ । स० ७२ ।

धार (पाना, हृमियार आदि का) ।

विधान आदि का वह विशेष या स्वतंत्र
भाग जिसमें किसी एक विषय की सब
बातें या आदेश होते हैं ।

धारा सा = स०, ८० ।

[वि०] (हि०) गतिशीलता का द्योतक । प्रवाह का
समान ।

धारा सी = का० १८, २२८, २३३ २४१,

[वि०] (हि०) २४७ । ऋ०, २६ ।

धारा के समान ।

धारहि = वि० ३६ ।

[सं स्त्री०] (प्र० भा०) धारा को ।

धाते = वि० ४६ १८०, १७७ १६२, १०३ ।

[वि०] (हि०) धारण करनेवाला । धारवाली ।

घारे = का० २०२ । वि०, ६४ १०६, १५३,

[क्रि०] (हि०) १५८ ।

ग्रहण किए ।

धारो = वि०, '८७ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) उधार मूल करो स्वीकार करो ।

धारी = वि०, ६४ ।

[क्रि०] (हि०) ग्रहण करने । स्वीकार करने ।

धारते = वि०, १७६ ।

[क्रि०] (हि०) दोहन ।

धाना = वि०, ६५ ।

[वि० पु०] (हि०) धानाण । बडाई ।

[क्रि०] गोप्रना म जाना ।

घाँ = वि० १६० ।

[क्रि०] (प्र० भा०) पीने भाव ।

घारो = वि० १७४ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) दोड़ो भागो ।

घिस्कार = का० २८, वि० ४१ ।

[सं पु०] (सं०) तिरस्कार या घृणास्पदक शब्द ।
वानत । फटकार ।

घिक्कृत = का० कु० ६४ ।

[वि०] (सं०) जिस 'घिक' कहा जाय । जिसका
तिरस्कार हो ।

धाम = का० १२५ ।

[वि०] (हि०) धार चलनवाले । मद । जो अधिक
उग्र या प्रचंड न हो । जिसका जोर या
तबी घट गई हो ।

धीर = का० कु०, २० २१, ११४, ११८ ।

[वि०] (सं०) का० २६ ३१ ३६ ८६, २४८ ।

वि० ४३ १४७, १५० १५४ १५६,

१६५ १६७ १७२ ।

जिसमें धर्म हो । शांत चित्तवाला ।

बलवान । विनाश । नम । गम्भार ।

मनोहर । सुंदर । मद ।

[सं पु०] केसर । ऋषभ श्रीपथ । मय । राजा
बलि ।

(हि०) धीरज । सतोष ।

घोरे = वि०, १४७ ।

[प्र०] (हि०) शन । अहिस्ता । मुस्ती से ।

धीरे धीरे = श्री० ३१, ४७ । का०, ५, ७, ८ ।

[क्रि० वि०] (हि०) का० १०, ६५ । का०, २३, २४, ७२,

११८, १२७, १५० १७६, १७७,
२४६, २७७, २८०, २६२। अ०,
६६। प्र०, १६, १७, १८, २५। स०,
१४ ७४।

आहिस्ता आहिस्ता। शन शन।

घुआँ = का०, १६६।

[म०] (हि०) दे० 'घुआ'।

घुँधला = का० २६६।

[वि०] (हि०) अस्पष्ट। घुमा के रंग का धूमिल।

घुँधला सा = का० ७६, १८४।

[वि०] (हि०) काला या घुए के रंग के समान।
अस्पष्ट सा।

घुँधले = का० १६ ११८, अ० ५२।

[वि०] (हि०) अस्पष्ट। साफ न दिखाई देनेवाला।

घुँधली = प्रा० ३०, ६२। का० १४ १२१,
२१२।

हवा में मिली हुई धूल के कारण होने
वाला अंधेरा। हवा में उठनी हुई धूल।
प्रायः का रोग।

धुन = का० कु० २ ५७। वि० १५८ १७२

[म० पु०] (म०) १८० प्र० १३।

कायने की क्रिया या भाव।

• [म० ली०] (हि०) जिसा काम का बराबर करते रहने की
प्रवृत्ति या लगन। मन का तरंग या
मौज। चिन्ता। गाने का तर्ज। मधुर
जानि का एक राग। धावाज।

धुनि = वि० १५ ५१ १७६।

[स० ली०] (म०) नदा।

[म० ली०] (हि०) धावाज।

धुलने = का० ८७।

[क्रि० अ०] (हि०) धुलना का वतुवचन।

धुला = प्रा०, ३७।

[वि०] (हि०) धुना हुआ। स्वच्छ साफ निमल।

(क्रि०) धुनना का प्रतकालिन रूप।

धुली = का० १२० २२४।

[वि०] (हि०) साफ की हुई।

धू धू = का०, २०।

[म०] (हि०) आग की लपटों का रव।

धूनी = का०, १७६।

[म० ली०] (हि०) गुग्गुन, लावान आदि गंध द्रव्यों से
उठा हुआ घुआ। एक गंध द्रव्य। वह
आग जिसे साधु लोग ठडक से वचन के
लिये घसवा तपस्या के लिये जलाते हैं।

धूप = का० १७। का० कु०, २७। का०,

[म० पु०] (हि०) १८१, १८२। अ०, २६।

कपूर, अमर, गुग्गुल आदि गंध द्रव्यों
में उठा हुआ घुआ। एक सुगंधित
वस्तु। धाम। सूर्य का प्रकाश। आतप।

धूपछाँह = का०, २४१।

[म०] (हि०) मिली हुई धूप और छाँह। एक तरह
का रगीन कपड़ा।

[धूप छाँह के खेल सहश—“सब जीवन बीता
जाता है।” स्वद गुप्त की यह कविता
‘जाने दो’ ‘धीपक से इन रूप में—धूप
छाँह का खेल सहश सब जीवन बीता
जाता है—सर्वप्रथम ‘हु’, कला न,
किरण ३, मार्च १९२७ में प्रकाशित।]

धूपधूम सुरभित = का० १८२।

[वि०] (स०) सुगंधित द्रव्यों के जलन से उठे हुए
धूप से सुगंधित।

धूम = का०, १३, ६४, २३३, वि०, ४०,

[स० पु०] (म०) १४१।

धुआ। अथवा के कारण धानवालों
डकार। धूमकेतु। उन्नापात। एक
ऋषि विशेष। उपद्रव। उन्नात।
बोनाहल। हलचल। ठाटबाट।
प्रसिद्धि।

धूममडल = का०, १२१।

[म० पु०] (म०) धूप का घेरा या घनघोर धुआ।

धूमकेतु = का० २००।

[स० पु०] (स०) अग्नि। पुच्छन तारा। केतु ग्रह।
शिव। वह धाडा जिसकी पूछ में
भबरी हा।

धूमकेतु सा = का० कु०, १०८। का०, ५, २०२।

[वि०] (सं०) पुच्छल तारे के समान । अत्यंत भगवान् कष्ट देनेवाले के समान ।

धूमगध = वा०, १८३ ।

[सं०] (हिं०) धुए की महक या गंध । गुणधिन द्रव्य की गुणधि ।

धूमधाम = प्रे०, ७ ।

[सं०] (हिं०) बहुत तयारी । ठाटगाट । समाराह ।

धूमधार = वा०, २६६ ।

[वि०] (हिं०) धुमाधार । सीढ़गत से ।

[सं० पु०] भयवर घुमा ।

धूमपट = का०, ३२ ।

[सं० पु०] (सं०) धूए का परदा ।

धूमरेखा = ग्री० ३० ल० ७५ ।

[सं० जी०] (सं०) धूए की रेखा । हल्का घुमा ।

धूमसा = वा०, १५६ ।

[वि०] (हिं०) धूए के समान ।

धूमिल = का०, ६७, १५६ १७६,

[वि०] (हिं०) २३३ ।

धूए के रंग का । धुसला ।

धूमिल सा = का०, २०६ ।

[वि०] (हिं०) धुसला सा, धूए स प्रस्पष्ट सा ।

धूरि = वि०, ५ १५६ ।

[सं० जी०] (सं०) धूल । गर्द ।

धूल = ग्री०, १४ ३१ ४३ । व० १४ ।

[सं० पु०] (हिं०) वा० कु०, २५ ६५ । वा०, ३६

५५, ऋ० २ ३०, ३३, ६६, ८६ ।

म०, २ । ल० ४६ ।

मिट्टी बासु आदि का बहुत महीना चूण । रज ।

धूल उड़ाना = का० कु० १०७ ।

[सं०] (हिं०) लाधन लगाना । बगनामी करना । हसी उड़ाना ।

धूल धूल = ग्री० ११ ।

[प्र०] (हिं०) बरवाद, साक विनष्ट ।

धूल सदृश = म०, २ ।

[वि०] (हिं०) धूल के समान ।

धूलि = का०, १५२ । ऋ० ६ । प्र० १५ ।

का० कु०, १०४ ।

[सं० जी०] (सं०) मिट्टी के मुदमांगु, रजगु । धूल । गर्द ।

धूलिस्थ = वा०, कु०, २४ । का०, २५३ ।

[मं० पु०] (हिं०) धूल वं बगम ।

धूलिपटल = म०, ६, ल०, १७ ।

[मं० पु०] (म०) धूल पट ।

धूसर = वा० ८२ ११७, २६१, वि०, १४१,

[वि०] (मं०) ऋ० ३४ ल० ५६ ५६ ।

धूल या मिट्टी वं रंग का । मटमला । खाना । धूल से भरा हुआ ।

धूसरित = वा० कु० ८६ ।

[वि०] (सं०) धूल से भरा हुआ । मटमला ।

धेनुचारण कार्य = वा० कु० ११२ ।

[सं० पु०] (सं०) गाय चराने का काम ।

धैर्य = वा०, ६२ १८६ १६७ ।

[मं० पु०] (मं०) चित्त की स्थिरता । धीरता । उतावला न होने का भाव । सन्न । चित्त में उद्वेग न उत्पन्न होने का भाव ।

धैर्यमयी = ल०, ३३ ।

[वि०] (सं०) धीरता से युक्त । धारज से भरी हुई ।

धैर्य सा = वा०, २१३ ।

[वि०] (हिं०) धारता के समान ।

धोरर = प्रे०, २४ ।

[पूर्व क्रि] (हिं०) साफ कर । पसार कर ।

धोखा = का० कु० ८५ । वा १२६ ।

[मं० पु०] (हिं०) भ्रम में डालनेवाला रिझा व्यवहार ।

धुवाका । धूल, दगा । मिथ्या प्रतीति ।

माया । भेडिया का डराने का एक

पुतला खटखटा । एक प्रकार का एक

पकवान ।

धोती = वा० २३ ।

[क्रि० सं०] (हिं०) धोना का वर्तमानकालिक क्रिया ।

धोना = वा०, ६, ११३ १७७ । म० ८ ।

[क्रि० सं०] (हिं०) पानी से रंग कर साफ करना । प्रक्षालित करना ।

ध्रुव = वि०, १६९ ।

[मं० पु०] (सं०) [वि०] आवाग । नील, शत्रु । पहाड़ ।

ध्रुपद। भगवान् के प्रसिद्ध भक्त का नाम। उत्तर में सदा एक ही स्थान पर रहनेवाला तारा। अटल, सदा एक ही स्थान पर एक ही व्यवस्था में रहने वाला। स्थिर, अचल। पृथ्वी के उत्तरी सक्षिप्ता सिरे।

[ध्रुव—राजा उत्तानपाद एवं महारानी मुनीति का पुत्र। पांच वष की श्रमशायु में अपने हठ से एक धन यसागरण से 'विदधुदशन' लिया तथा उनके ही वर से ध्रुव पद प्राप्त कर नक्षत्र मंडल में सप्तर्षियों के नाम ध्रुवतारा के रूप में मेरु के ऊपर प्रतिष्ठित है।]

ध्रुव सा = का० कु० ६४।

[वि०] (हि०) अटल। हठ निश्चय।

ध्यान = का० १३, २८, २९, ३१। का० कु०,

[सं पु०] (सं) १३, १४, २७, २८, ३०, ३१ ५७, ८१, ९८, ११२, ११६। का० ८२, ८५, ११२, १८६, २८५। वि० ६१, ६२, १४१, १४५, १८६। ऋ०, १७, ४३, ५१, ५३। प्र०, ६, १३, १८, २३। म०, ११। ल०, ६८।

सोच विचार। चिन्तन, मनन। भावना। समझ बुद्धि। धारण। स्मृति, याद। चित्त को एकाग्र करने का बुद्धि।

ध्यानधिरत = का० कु०, १८, ३१, ३५।

[वि०] (सं) ध्यान से अलग रहनेवाला। ध्यान न लगानेवाला। अचल स्वभाववाला।

ध्वजा = वि, ४६।

[सं स्त्री०] (सं) पताका, झंडा।

ध्वस = का० ५८, १०७, ११०, १९६।

[सं पु०] (सं) ल०, १३।

क्षय, विनाश वरबादो, हानि।

ध्वनि = आ०, ८। का० कु०, ३, ११४। का०,

[सं स्त्री०] (सं) ६८, ७०, ७७, १७६, १८१, १८२, २११, २५२, २६३, २८६, २९२। वि०, ४७। ऋ०, २४, ८५। म० ४।

ल०, ३३, ३४, ४६, ५८।

जन्म, आवाज। आवाज की श्रृंखला। वह काव्य जिसमें वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ अधिक है। गूढ़ अर्थ। आशय। मतलब।

ध्वनित = का० कु०, ३०। वि०, १६१।

[वि०] (म०) श्रृंखला हुई।

ध्वनि सी = का० कु०, ४८।

[वि०] (हि०) ध्वनि के समान। अनवरत।

ध्वनिसौ = वि १७।

[सं स्त्री०] (म०) ध्वनि में।

ध्वत् = का० १६०, २४१, २४७। ऋ०, ७१,

[वि०] (सं) ८५।

अवकार, अक्षरा। मन, दाप।

ध्वस्त = का०, ८६

[वि०] (सं) विनष्ट, नष्ट। बहला हुआ।

न

नई = आ०, ५८। का० कु०, ३६। का०,

[वि०] (हि०) ८३, १४२, २६६। वि० ३५।

ऋ०, ७६, ८५। प्र०, १, ४, १०।

नवान, नवल।

नक्षत्रमालिका = आ०, १०।

[म० स्त्री०] (सं) तारा की माला। तारा को पंक्ति। एक हार जिसमें सत्ताइन मोती हान हैं।

नक्षत्रलोक = आ०, ६।

[म० पु०] (सं) नक्षत्रों का सौं चंद्रलोक के ऊपर का एक सप्तर।

नक्षत्रमंडल = का० कु०, ११२।

[सं पु०] (सं) नक्षत्रों का समूह। तारामंडल।

नक्षत्रकुमुद = आ०, ४८, ५८। का०, १६०। ल०,

[सं पु०] (सं) २५।

तारा रूपी कुमुदिनी।

नक्षत्र = ऋ०, ६१।

[सं पु०] (म०) नाखून। एक प्रसिद्ध गद्यद्रव्य, खड्ग, दुकड़ा। मुठ्ठी उड़ाने का डोरा।

नरसत = आ०, २७। का० कु०, ४०, ४१।

नति = का०, २३१।

[सं० श्री०] (सं०) उतार, झुकाव। नमस्कार। विनती, नम्रता। ज्योतिष की एक मणना।

नतु = चि०, २६, ४३।

[ग्रन्थ०] (हिं०) झगडा, नहीं तो।

नद = घा० ४१। का, ७ १२२, २५८।

[मं० पु०] (सं०) बड़ा नदी। एक ऋषि का आश्रम।

नत्तियों = का० कु०, २। का०, १५६। प्रे०

[सं० श्री०] (हिं०) पं० २४।

नदी का बहुवचन।

नदी = घा० ७१। क०, ८। का० ८१

[सं० श्री०] (सं०) १७४, २५६, १ चि० ११, १५६ क०, ५४ ४६।

जल का वह प्राकृतिक धारा जो किमा झाल या पहाड़ से निकल कर एक निश्चित मार्ग में जाता हुई समुद्र या किसी नदी में मिल जाता है दरिया।

[नदी की निरुक्त बेला शास्त्र—'हृदय का मोदय' शीघ्र से सवप्रथम 'माधुरी' वर्ष २ खंड २ सम्ख्या ६, सन् १९२४ में प्रकाशित और 'भरना' में संचलित। २० 'हृदय का मोदय'।]

[नदी नीर से भरी—विशाल] में राधा की महिलिया का समूह गान। 'प्रसाद संगीत' में पृष्ठ ३५ पर संचलित। दो दोहे तथा टेक और एक पंक्ति के छंद से नय छंद का विधान। इधर मानस में प्रगाढ़ प्रणय था और प्रेम खेल का संचित जल भी नदी में आ गया इसलिये यौवन नदी में बाल आ गयी उसमें नेत्र का नया उतरा कर वह चली और केवल सनेह के हल्क टांड लयान पड़े। यह नीला न जाने आबाद किनारे पर या ऊनड खंड पर जगती है।]

[१ धरो कह कर इसको अपना—अज्ञानशु] में भिन्नुषा का गीत, 'प्रसाद संगीत' में पृष्ठ ४३ पर संचलित। 'नय' की अपना कह कर न धरो। यह सधार दो दिन का सपना है, यह वमश के

वरगाती नाले में भरे पहाड़ी भरन की गाँति शीघ्र हा रित होनेवाला है। इस बहायो, अयो को इससे मत बहायो अथात् इसे जी खालकर पर उपनार पर खच करो नहीं तो पछताना पड़ेगा। दुखियों का सामू पीछो तारि सुम्ह दुप में स्वयं ग्राह न भरना पड़े। गोभ छोड़कर उदार बना और एक ईश्वर का भजन करो।]

नन्हा सा = क० २३।

[वि०] (हिं०) बहुत छोटा सा मुकामन प्रबोध।

नचाव = म० १७।

[मं० पु०] (ध०) शहगाह एक पद जो अत्यंत माय और शिष्ट छुटिम पदवी है।

नभ = घा० ६, ५ ६६। क० ७ १३।

[मं० पु०] (म०) का०, २७, ३२ ४८, १०० १२७, १५७, १५८ १५६ ८ १७१ १७६, १७८, १७९ १८०, २ १, २१८ २२१ २३४ २६४ २८१ चि०, २३ १४० १५६, १६१ क०, ४१, ४८। सं०, ३३।

आकाश। शून्य। आकाश और भाद्र पद महीन। राजा नल क एक लड़के का नाम। शिव। जल। अश्वत्थ। ज म कुडली का दसम स्थान। वषा। बादल। हिमक।

[वि] (म०)

नभश्चुसुमा = ल०, ३८, ३९, ४०, ४४।

[सं० पु०] (हिं०) आकाश के बारे। आकाशमुखा।

नभगायो = चि० १६१।

[सं० पु०] (सं०) देवता। मृग। चंद्र। वायु। पत्नी। तारा।

नभ लो जाहि = चि० ६६।

[क्रि०] (२० भा०) नभ तक जाता है।

नभसागर = का०, १६७।

[मं० पु०] (हिं०) आकाश रूपी समुद्र।

नभहृदय = क०, ४६।

[सं० पु०] (हिं०) शून्य हृदय।

नमस्कार = सं० पु० ४, ६२, ६४।

[सं० पु०] (सं०) भुक्कर प्रणाम करना। एक प्रकार का विष।

[नमस्कार—इंद्र कला ४ रंज २, किरण २, अगस्त १६१३ म सर्व प्रथम प्रकाशित और वानन कुमुद म पृष्ठ ४ पर संकलित। इस ६ पंक्ति का कविता में पूर्ण विश्व गृहस्थ को सदा नमस्कार कर्म की बात कहा है। उसके मंदिर का द्वार सबवे लिए चाहे वह राजा हो या रत्न सदा खुला रहता है। सारे प्रकृति के वन जिसका वादिका है और जिन मोहर के दीप चंद्र मूल और तार है। उस मंदिर का नाथ विश्व गृहस्थ निरुपम निरामय है।]

नमामि = चि० १५३।

[क्रि०] (स०) प्रणाम करता है।

नमूने = का० कु० ६।

[सं० पु०] (हि०) बालगा, एसा वस्तु जिसमें दूसरी वस्तु का पात्र हो जाय ढांचा खाका आदि।

नयन = आ०, ३२। का० ११ पृष्ठ से नव बार

[सं० पु०] (स०) २७४। चि० ६६ ७२ ७३। ल०

१४ २७ ३०।

बहु नय आश।

[सं० जी०] एक प्रकार की मछली।

नयनों = आ० ७१। का० ६८, १०१, १५२

[सं० पु०] (हि०) प्रे०, १७ १८। ल०, ४० ४४।

दे० नयन' (बुद्धधन)।

नया = का० कु०, १२५। का०, ३७ १५०,

[वि०] (हि०) १८८, २१५। प्र० १।

नूतन, नवीन ताजा।

नयी = का० कु०, २१। ल० २१ २२।

[वि०] (हि०) न० 'नदी'।

नये = आ० ५१, का० ३३ ५६४, १८१

[वि०] (हि०) २७५, अ० ५१ प्र० १३।

दे० 'नया'।

नये सिर से = का० २३।

[मुहा०] (हि०) बिना काय को पुन आरंभ करना।

नर = का० ७७, १६४ १७०, १७१, १८२।

[सं० पु०] (सं०) चि० ५०, ६६, ७२, १४०, १४२।

अ० ४१। म० १४।

विष्णु। शिव। भ्रतुन। एक कृपि का नाम जो ईश्वर का अवतार माने जाते हैं। पुण्य। मय राजा का एक पुत्र। मुद्रित व पुत्र का नाम।

नरक = प्रे० २१।

[मं० पु०] (मं०) धम और पुराणा के अनुसार पापी मनुष्या को दंड देने का स्थान। गदा जगह। नरकामुर नाम का दानव।

नरगत = चि० ६४।

[सं० पु०] (हि०) मानव समुदाय।

नरन = चि० १४१।

[सं० पु०] (सं० भा०) मनुष्या।

नरनाह = चि० ६४।

[सं० पु०] (हि०) राजा मनुष्या का स्वामी मूल।

नर नारी = प्रे०, १३। म०, १७। चि० ६५।

[मं०] (हि०) पुरुष स्त्री। मानव माद। मनुष्य और स्त्री।

नरपति = चि० ६८।

[सं० पु०] (सं०) राजा नृपति, भूपति नरेश।

नरपतिगण = म० ८०।

[सं० पु०] (सं०) राजासभा का समूह। सभी नरेश।

नरपशु = का० १८४।

[सं० पु०] (हि०) दुष्ट नीच। मानव हाकर भा पशु सदृश कार्य करना।

नरपिशाच = प्रे० २१।

[सं० पु०] (सं०) मनुष्य होकर भी राजा का कार्य करने वाला। मत्पत दुष्ट मनुष्य। नरराज्य।

नरमेघ = का०, १८।

[सं० पु०] (सं०) एक प्रकार का यज्ञ जिसमें मनुष्या के मान की आहुति दी जाती थी। यह यज्ञ चंद्र मृग दक्षिणी से शुरू होकर चातुर्दिग म समाप्त होता था।

नराव = चि०, ५३, ६७।

[मं० पु०] (हि०) तार, बाण शर। एक वण वृत्त जिस पंचामर और नगराज भी बटते हैं।

नराधम = का०, २१।

[वि०] (सं०) नीच, पतित, अधम।

नरी = सं०, ६।

[सं० पु०] (फा०) बकरी या बकरे का रंगा हुआ चमड़ा।
मिथामाया हुआ चमड़ा। मृत लपटी
जानेवाली नली। नली। ताल।

[म० स्त्री०] (हि०) नदी के किनारे होनेवाला घास। नाली।
(सं०) नारी। स्त्री।

नरेंद्र = का० २१। चि०, ५०।

[सं० पु०] (सं०) राजा, नरेश। वय, हकीम। एक छंद
का नाम जिसे सार या ललित पद
कहते हैं।

नरेश = का० कु०, ११३। चि०, ६३।

[सं० पु०] (सं०) राजा महाराजा। नरो म जी ईश
सदृश हो।

नर्सन = का० १, ११, ७२, १२३, २५४,

[सं० पु०] (सं०) २६४। ल० २१, २२, ४६।

मृत्य, नाच।

नर्सित = का० २५४। ल०, ६।

[वि०] (सं०) नृत्य या नाच करता हुआ। नाचता
हुआ।

नर्सित = का०, ३६, ५५ का, १६८। चि०,

[सं० पु०] (सं०) २६, १५७। ल०, ४०।

कमल। जल। सारम। नीली
कुमुदिनी।

नर्सिनी = का० कु०, ३६, ४०, ६५। चि०, २६,

[सं० स्त्री०] (सं०) ३३ ६३, १६१।

कमलिनी, कुमुदिनी। कमलवाले प्रदेश।
गंगा की एक धारा का नाम। नदी।
मारिपल का शराब।

नर्सिनीगन = चि०, १४६।

[सं० पु०] (अ० भा०) कमलिनीया का समूह।

नय = का० १३, १६। का० ८, २३,

[वि०] (सं०) २७, ३२, ३५, ३७ ३६, ४७, ५०,

१०६, १३० १४०, १४२, १४८,

१५६, १६८, १७६, १८३, २०६,

२१३, २३०, २६३, २६४, २८४,

२६०। चि०, ३, २, १५, २१, २८,

३६, ४६, ६८, १ ५ १४७, १४६,

१५०, १५६। का०, २४ ३३, ३४।

प्रे०, १०, १२। ल० ६ २८।

नवीन, नया। आधुनिक।

[म० पु०] (म०) स्तान। उसीनर राजा के लटक
का नाम।

नय एरात = का० कु०, २३ ३०, ४०, ४६। का०,

[सं० पु०] (सं०) २४। ल०, २८ ३०, ३३ ४३।

नवान ढंग का व्यवसाय।

नय कल्पना = का० १५६।

[सं० स्त्री०] (सं०) विचार एवं बुद्धि द्वारा नई भावना
मयी कल्पना।

नयचंद्र = चि० ७५।

[सं० पु०] (सं०) नया चंद्र। शुक्ल पक्ष के द्वितीया का
चांद।

नय जलद = का० ८१।

[सं० पु०] (सं०) नया बादल। बपा श्रुत का प्रथम
बरसनेवाला मय।

नय जलधर = ल० २७।

[म० पु०] (म०) नवान समुद्र। नवीन सागर।

नयजीवन = प्रे० १० ११।

[म० पु०] (म०) नई जिंदगी। नया जल।

नय उद्योति = का०, ६७।

[सं० स्त्री०] (म०) नया प्रकाश। प्रातःकाल की प्रथम
किरण।

नयत = चि० १६३।

[क्रि० अ०] (अ० भा०) भुक्त, भुजता है।

नय तमाल = चि०, ४५।

[सं० पु०] (म०) तमान का नया वृक्ष।

नय नय = का० १६१।

[वि०] (सं०) नया नया।

नयनिधि = का०, १६६।

[सं० स्त्री०] (सं०) नव प्रकार की कुचर की निधि। गपति।

नय नीर = चि०, १५७।

[म० पु०] (सं०) नया जल।

नय नील = का० कु०, ३८। का०, ६५।

[सं० पु०] (सं०) अनुपम नीलिमा।

[नमस्कार—बहु बला ४, रजि २, निरण २, अग्रस्त १६१३ मे सब प्रथम प्रकाशित और वानन कुमुम म पृष्ठ ४ पर सनलित। इस ६ पंक्ति का कविता मे पूर्ण विषय ग्रन्थ की मदा नमस्कार कर्म की बात कहा है। उमरे मन्त्रि का द्वार सबने लिए चाहे वह राजा हो या रर मन्त्रि खुला रहता है। मारे प्रशुति के वन जिमका वाटिका है और जिस मादर व दीप बद्र, सुय और तार है। उस मन्त्रि का नाव विश्व ग्रहस्थ निरुपम निरामय है।]

[सं० पु०] (सं०) चि० १०, ६६, ७२, १४०, १४२।
म० ४१। म० १४।

विष्णु। निव। मनु न। एक म्पि का नाम जो ईश्वर का अवतार माने जाते हैं। पुष्प। मय राजा का एक पुत्र। सुश्रुति व पुत्र का नाम।

नरक = प्र० २१।

[सं० पु०] (सं०) धम और पुराणा के अनुसार पापी मनुष्या को दंड देने का स्थान। मदा जगह। नरवानुर नाम का दानव।

नभामि = चि० १५३।
[क्रि०] (सं०) प्रणाम करता हूँ।

नमने = वा० कु० ६।

[सं० पु०] (हिं०) वानया, ऐसी वस्तु निगम द्वारी वस्तु का नाम हा जाय दाया बाबा आदेश।

नयन = मा०, ३२। वा० ११ पृष्ठ म नव बार
[सं० पु०] (सं०) २४७। चि० ६६ ७२ ७३। ल०, १४ २४ ३०।
बहु मय धाव।
एक प्रकार की मछली।

[सं० कौ०]
नयनों = मा० ७१। वा० ६८ १०१, १५२,
[सं० पु०] (हिं०) प्र०, १७ १८। ल० ४०, ४४।
६० 'नयन' (बहुवचन)।

नया = वा० कु०, १२५। वा० ३४ १५०
[वि०] (हिं०) १८८ २१५। प्र० १।
नूतन, नवीन ताजा।

नयी = वा० कु० २१। ल० २१, २२।
[वि०] (हिं०) २० नई।

नये = मा० ५१ वा० ३३ ५६४ १८१
[वि०] (हिं०) २७५ म० ५१ प्र० १३।
२० नया।

नये सिर से = वा० २३।

[मुद्रा०] (हिं०) किसी बाय को पुत्र आरम्भ करना।
नर = का० ७७, १६४, १७०, १७१, १८२।

नरगन = चि० ६४।

[सं० पु०] (हिं०) मानव समुदाय।

नरन = चि० १४१।

[सं० पु०] (सं० भा०) मनुष्या।

नरनाह = चि० ६४।

[सं० पु०] (हिं०) राजा मनुष्या का स्वामी नृप।
नर नारी = प्र०, १३। म०, १७। चि० ६५।

[सं०] (हिं०) पुरुष स्त्री। मानव मात्र। मनुष्य और स्त्री।

नरपति = चि० ६८।

[सं० पु०] (सं०) राजा नृपति भूपति नरेश।

नरपतिगण = म० १०।

[सं० पु०] (सं०) राजाघा का समूह। सभी नरेश।

नरपशु = वा० १८४।

[सं० पु०] (हिं०) दुष्ट, नीच। मानव हाथर भा पशु सहस्र काय करना।

नरपिशाच = प्र० २१।

[सं० पु०] (सं०) मनुष्य होकर भी राज्या का कार्य करने वाला। अत्यंत दुष्ट मनुष्य। नरराक्षस।

नरमेघ = वा०, १८।

[सं० पु०] (सं०) एक प्रकार का यज्ञ जिममे मनुष्या व मान की आहुति दी जाती थी। यह यज्ञ चय मुद्रा दक्षमी स शुक्र होकर चालिम दिन म समाप्त होता था।
चि० १३, ६७।

नराव =

[सं० पु०] (हिं०) तीर, बाग घर। एन नए नृत जिस पचामर और नगराज भी कहते हैं।

नराधम = क०, २६।

[वि०] (स०) नीच, पतित, अधम।

नरी = ल०, ६।

[स० पु०] (का०) बकरी या बकरे का रंगा हुआ चमड़ा।
मिऊया हुआ चमड़ा। भूत लपेटो
जानेवाली नरी। नली। ताल।

[म० स्त्री०] (हि०) नदी के किनारे होनेवाला घाम। नाली।
(स०) नारी। स्त्रा।

नरेंद्र = क० २१। चि०, ५०।

[स० पु०] (स०) राजा, नरेश। बछ, हकीम। एक छद
का नाम जिसे सार या ललित पद
कहते हैं।

नरेश = का० कु०, ११३। चि०, ६३।

[स० पु०] (स०) राजा महाराजा। नरो में जा ईश
महेश हो।

नर्तन = का० १, ११, ७२, १२३, २५४,

[स० पु०] (स०) २६४। ल० २१, २२, ४६।

नृत्य, नाच।

नर्तित = का०, २५४। ल०, ६।

[वि०] (स०) नृत्य या नाच करता हुआ। नाचता
हुआ।

नर्लिन = भा०, ३६, ५५ का, १६८। चि०,

[स० पु०] (स०) २६ १५७। ल०, ४०।

कमल। जल। सारथ। नाली
कुमुदिनी।

नलिनी = का० कु०, ३६, ४०, ६५। चि०, २६

[स० स्त्री०] (म०) ३३, ६३, १६१।

कमलिनी, कुमुदिनी। कमलवाला प्रदेश।
गंगा का एक धारा का नाम। नदा।
नारियल का भाराव।

नलिनीगन = चि०, १४६।

[स० पु०] (ग्र० भा०) कमलिनिया का समूह।

नय = क०, १३, १६। का०, ८, २३,

[वि०] (स०) २७, ३२, ३५, ३७ ३६, ४७, ५०,
१०६ १३० १४०, १४२, १४८,
१५६, १६८, १७६, १८३, २०६,
२१३, २३०, २६३, २६४, २८४
२६०। चि०, १, २, १५, २१, २८,

३६, ४६, ६८, १ ५, १४७, १४६,
१५०, १५६। भा०, २४ ३३, ३४।

प्रे०, १०, १२। ल०, ६, २८।

नवीन, नया। आधुनिक।

[म० पु०] (म०) स्तान। उसीनर राजा के लटके
का नाम।

नय एसाव = का० पु० २३, ३०, ४०, ४६। का०,

[स० पु०] (स०) २६। ल० २८ ३०, ३३, ४३।

नवान ढग का प्रवसापन।

नय करपना = का० १५६।

[म० स्त्री०] (स०) विचार एवं बुद्धि द्वारा नई भावना-
मयी कल्पना।

नयचद्र = चि०, ७५।

[म० पु०] (स०) नया चद्र। शुक्ल पक्ष क द्वितीया का
चाद।

नय जलद = का० ८१।

[स० पु०] (स०) नया बादल। वषा ऋतु का प्रथम
बरसनेवाला मेघ।

नय जलधर = ल० २७।

[स० पु०] (म०) नवीन समुद्र। नवान बादल।

नयजीवन = प्रे० १०, ११।

[म० पु०] (म०) नई जिंदगी। नया जल।

नय ज्योति = भा०, ६७।

[स० स्त्री०] (म०) नया प्रकाश। प्रातः काल की प्रथम
किरण।

नयत = चि०, १६३।

[क्रि० अ०] (ग्र० भा०) झुक्त, झुकता है।

नय तमाल = चि०, ४५।

[म० पु०] (स०) तमाल का नया वृक्ष।

नय नय = का० १६१।

[वि०] (स०) नया नया।

नयनिधि = का०, १६६।

[स० स्त्री०] (स०) नव प्रकार का कुवर की निधि। नयति।

नय नीर = चि०, १५७।

[स० पु०] (स०) नया जल।

नय नील = का० कु०, ३८। का०, ६५।

[स० पु०] (स०) अनुपम नीलिमा।

नवनीत रचित = चि०, १६१ ॥ प्रे०, २० ॥

[वि] (२० भा०) नवनीत सट्टण रचित ।

नवमडर = का० १८३ ।

[म० पु०] (म०) नया मटप ।

नवमसुमय = का० ११२ ।

[वि०] (म०) नवीन मादरता य पूण ।

नवमल्लिमा = चि० ५५ ।

[स० स्त्री०] (स०) नवान् मातिया ।

नवमोद = चि० १६५ ।

[स० पु०] (हि०) नवीन आनन्द ।

नवरग = चि० १७५ ।

[स० पु०] (हि०) नवीन रग ।

नवधसत विलास = का० कु० १६ ।

[स० पु०] (हि०) नये वसत का विलास । नवीन मधु कसु का आनन्द ।

नव हास = चि०, ५६ ।

[म० पु०] (स०) अपूष या नई मुस्कराहट ।

नवल = का० २८ । का० कु० २३, ३६ ६६

[वि] (म०) १०४ । का० ध्रुव ६३ १४२, १६८, १५६ । चि० ३२ १०१, १३७, १४६, १५७ १६१ १६५ १७१ । अ० ४० ४१, ७६ ॥ प्रे०, ४७ । ल०, १६ ।

नवीन । नया ।

नवल ज्योति = का० पु०, १२६ ।

[म० पु०] (म०) नवीन ज्योति नया प्रकाश ।

नवल प्रभास = का० ५३, ८१ ।

[म० पु०] (स०) नया प्रातःकाल ।

[नय वसत—इह कला ३, चिरग फरवरी १६१२ में सर्वप्रथम प्रकाशित और बाननकुमुम में पृष्ठ १७ १६ पर सम्मिलित । पूर्णिमा का रात्रि में चन्द्रमा का चिरछेँ मुधा की चारा बरसाती रही जिससे निमल सुपमा सरग हा रहा था । रात्रि के दो घाम बीत चुक थे सुन्दर जमुना जल में लारी स भरा आकाश प्रतिबिम्बित हो रहा था । नय निचार = का०, १६१ ।

यमुना बिनारे का कुमुमा का वन अत्यंत सुंदर था । वहाँ स्वच्छ प्रासादों का समशीतोष्ण पति भी, कहा आस की मजरी पर नायल धीरे वही कमलदल पर भ्रमर गुजन मीन गुजार कर रहा था । मलयानिन क लीरभ में मत्त लना लनिवा में प्रमत्त लिपट गई । वह मलयज पवन कभी नधारिया क कुमुम मीन कलिया का लिम्बना दना था मीन कभी दा डाला को सहज हा अपन भाका स मिला दता था । वह एक मनोहर कुज में पहुँचा जहाँ एक सुंदरा महासुख में मस्त थी । वही भारत उसका आँख उठा कर चलना बना उधर ध्यान जात ही मधुर आँख उसे सताने लगा । इन क्रीडाभा स न बहल कर कामिनी समयनस्क होकर टहलने लगा । उस सुख के मूल प्रिय का मुँहडा याद आ गया, जैसे भूले नायिक की आँखें बिनारा मिल गया हो । उसके नील नयन में मौन्य छा गया और उसके धर्म प्रयोग में भारत सन मधुर परिमल का विलास छा गया । वही वह सुंदरी आरुमजरा सा खिल उठी । उसके गान हुआ काश में आदनी छा गयी और उसका कल्पनाराय काम का कुमुम कालया स भर गया । कालिका व। काँवला सुन मजरा कामकापत हो उठा मीन प्रणय की बोरी बना मुँरा का चुटका लन लगा । एस हा समय एक युवक उस 'प्रयत्न' कहत हुए समुल आया आर प्रम जताते हुए उसक करपल्लव का स्पष्ट किया । इस प्रकार प्रगति मीन वसत का सुख समामग हुआ मीन युग हृदय क मधुर मिथल स भान रस वहन लगा मीन प्रतु भा ह्मा रग में सा थी । अंतर मीन बाहर सब नय वसत विलसित हो उठा ।]

नय निचार = का०, १६१ ।

[सं० पु०] (हि०) नई समझ । किसी बात को नये ढंग में सोचना । नए विचार ।

नवविद्या = वि०, ७४ ।

[सं० मी०] (सं०) नौ प्रकार का पान । सब तरह का विद्या ।

नवाते = का० कु० ५ ।

[क्रि०] (हि०) झुकाते । विनम्र होते ।

नवाव = म० १४ ।

[सं० पु०] (सं०) मुगलमानी बादशाहत में एक प्रदेश का शासक । मुगलमान रहने की उपाधि । शान शौकत से रहनेवाला ।

नवाव पदवी = म०, १० ।

[सं० खी०] (हि०) नवाव की बेगम ।

नवीन = का० कु०, १५ ४२ ५५, ७३, १०१,

[वि०] (सं०) ११४ । का० ३३, ८१, ६४ १३६ १४०, १६२ २६१ । वि० १०, १४८, १५१ । अ०, १६ । म०, १६ । ल० ४८ ।

नया साज । अपूर्व, विचित्र । तरण । जो पहले पहल मूल रूप में अभा तयार बना हो । नूतन, नया ।

नवीना = का०, १२३ ।

[वि०] (म०) युवती, मुदरा । तरणी ।

नवीने = वि० १५३ ।

[सं०] (हि०) नवीना का सवापन ।

नशीली = अ०, ४८ ।

[वि०] (पा०) मात्क । जिसमें नशा होता है ।

नश्वर = का०, १६५ । अ० २०, ३० । ल०,

[वि०] (म०) ७६ ।

जो शीघ्र नष्ट हो जाय । नष्ट हो जाने वाला ।

नश्वरता = ल० १२, ४६ ।

[सं० स्त्री०] (म०) नष्ट होाने का भाव ।

नष्ट = का०, कु०, १०६ । का०, १६४ १६२ । वि०, ३५ ।

[वि०] (म०)

जिनका नाश हो गया हो । बरबाद । निर्जल । व्यर्थ ।

नस नस = का०, १०१, २३५ । ल०, ३० ।

[सं०] (हि०) साया शरीर ।

४०

न सीछल = वि०, १८१ ।

[वि०] (ब्र० भा०) जलता हुआ, तप्त । जा शीतल हो । अशीतल । गम ।

नसात = वि०, १७८ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) नष्ट होना है ।

नसे में चूर = वि०, २ ।

[सं०] (हि०) इतना अधिक नसे का सेवन कि व्यक्ति अवाग्नान स रहित हो जाय ।

नसीहों = वि०, १५५ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) नष्ट होना ।

नहला = अ०, ७० । ल०, ३८ ।

[पूर्व० क्रि०] (हि०) मिमोहर, स्नान कराने ।

नहलाना = अ०, २० ।

[क्रि० सं०] (हि०) किसी दूसरे को स्नान कराना ।

नहाकर = का०, २६१ ।

[पूर्व० क्रि०] (हि०) स्नान करने ।

नहिं = का० कु० ६ । १४ । वि० ८, ६, १५

[क्रि० वि०] (हि०) २६, ३४, ३६, ४७ ४८, ५३, ५४, ६४, ६५ ६७, ६८ ७२, ७४, ६२, १०५, १४१, १४२ १७४, १८६, १८७, १९० ।

नकारात्मकता का सूचक ।

नहीं = अ०, ३७, ४० । अ० ८, ११ १४,

[क्रि० वि०] (हि०) १८, २२, २४, २५ २७, २६, ३१ ।

का कु०, ५ ६, ७, १०, १२, १४

१६, २२, २४ २५ २७, २६, ३१ ।

का०, कु०, ५ ६, ७, १०, १२, १४,

३५ ४, ४५, ४७, ६६, ६५, ७४ ।

का०, ५२, ५४, ५५, ५७, ११८,

११६, १२६, १३०, १३१, १३३,

१४३ १४५, १४६, १४७, १६२,

१७५ १७६ १७७, १८५,

१८६ १८८, १८९, १९४, १९५,

२०६ २०८, २०९, २१०, २२०,

२२८, २३०, २३४, २३८, २४०,

२४१, २४३, २४८, २४९, २६१,

२६६, २६७, २७८, २८८, २९६ ।

वि०, ३१, ३५, ४८, ६५, १८३,

१४८ । अ०, ६, १३, १५ १६, १०,

नाना = वि०, १।

[वि०] (स०) श्रेक।

नाप = का०, १८५।

[स० स्त्री०] (हि०) माप, परिमाण।

नाभिसौरभ = का० कु०, ७३।

[स० पु०] (हि०) नाभि की सुगंध।

नाम = का० १३, २८। का० कु०, १३ ३।

[स० पु०] (स०) १०६। का०, ६, ६२ १६२, १६८,

१७५, २७८। वि०, ४८, ४६ ५१,

५६, ५७, १५५। प्रे०, २१। म०,

६। ल०, ७८।

किसी वस्तु व्यक्त या समूह आदि का बोधक शब्द, वाचक शब्द।

नाम निरूपण = का० कु० ८६।

[स० पु०] (म०) नाम रखना। नाम नात करना।

नाम मर्णनोपक = का० पु०, ८६।

[स० पु०] (हि०) नाम का मर्णन रूपा दाप।

नायक = म० ५ १२।

[म० पु०] (स०) नेता, अनुमा। स्वामी। श्रेष्ठ पुरुष। नाटक आदि का मुख्य या प्रधान पात्र। माता के बीच का नग। बनावट। एक राग।

नारकी = वि० १०३।

[वि०] (ब्र० भा०) नरक में जाने योग्य। पापी। नरकभागी।

नाराच = का०, २००, २०२। वि० ६६।

[स० पु०] (स०) द० 'नराच'।

नारि = का०, २६। वि०, ४८, ५०।

[स० स्त्री०] (हि०) स्त्री। नारा।

नारी = का०, ६८। का० कु०, ६७। का०, ६३, ६५, १०४ १०६ १२५, १६२, १८५, २०७, २३८। वि०, ६१, १०३। ल० ७६। २० 'नारि'।

नारी जीवन = का०, १०५।

[स० पु०] (स०) स्त्रिया की जिंदगी।

नारी सा = का० २४६।

[वि०] (हि०) स्त्री के समान।

नाल = का० पु० ३८, १२१। वि०, २६।

[स० स्त्री०] (स०) फसल का डठन। पीने का डठन। नली। बटूक की नला। माना का की फुलनी। तलवार के स्थान की सानी।

नाला = का०, १७५।

[स० स्त्री०] (हि०) दे० 'नाल' (बहुवचन)।

नाव = का०, २२। का०, ८, ६, १०, ११।

[स० स्त्री०] (हि०) का० कु०, ८। का०, १५, ६२, १६५। वि०, १६०, १८७। म०, ५५, ६०। ल०, ५६। प्रे०, २२।

जल में चलनेवाला लकड़ो लोह आदि की बनी हुई सवारो। जलयान। नौका। बिहनी।

नायिक = का० ४०, ४१। वि०, १६१। म०,

[स० पु०] (स०) १६। ल०, १४, ४३।

मल्लार्ह, कवट। जहाज चलाने या जहाज पर काम करनेवाला व्यक्ति।

नारा = का० का०, १०६। का०, ६८, ७३।

[म० पु०] (स०) १३२ १४८। ल०, १३।

अस्तित्व रहित होना। ध्वंस। बरबादी। नाशक होना। पलायन। भ्रमण।

नाशक = का० कु०, ८८।

[वि०] (म०) नाश करनेवाला। हटानेवाला।

मारनेवाला। दूर करनेवाला।

नाशमयी = का०, १७०।

[वि०] (स०) नाश में युक्त। नष्ट होनेवाली।

नाशिना = का०, १६६।

[वि० स्त्री०] (म०) 'नाशक' का स्त्रीलिंग।

नसना = वि०, १०६ १३२।

[वि०] (ब्र० भा०) नष्ट होना। उरबाध होना। मरना जाना।

नासा = का०, २२।

[म० स्त्री०] (स०) नासिका, नास। मूँड़। नाक का छेद।

बौद्ध के ऊपर का भाग।

नासिना = का०, ६४।

[स० स्त्री०] (स०) नाक।

[वि०] (स०) श्रेष्ठ प्रधान।

नासिन = का०, २७०।

[म० पु०] (स०) इश्वर के प्रति प्रविश्याम की भावना।

नाहक = वि०, १७८।

[क्रि० वि०] (पा०) युवा। निष्प्रयोजन। व्यय। वेमतनव।

नाहर = वि०, २६। म०, ८३।

[स० पु०] (हि०) मिट्टी, गेर। टेढ़ा का फूल।

नाहिं = वि० १५, ३२, ४०, ५०, ६७, १४५,

[म०] (ब्र० भा०) १६६, १७६।

२० 'नही'।

नाहीं = का० कु०, ६१, बि०, ६७, १४४,
१४७, १७६, १८०, १६०।
२० 'नाहि'।

निकट = का० १५ २८५। बि०, १७५ ल०,
[वि०] (सं०) १७।

पास का। समीप का। जिसमें विशेष
अंतर न हो।

[क्रि० वि०] (सं०) समीप, नज्द।

निकर = का०, कु० ८। बि० १४६। ऋ० ३८

[सं० पुं०] (सं०) समूह भुंड। राशि, दर। निधि, योश।

निकरिहें = बि०, १७२।

[क्रि०] (प्र० भा०) निकालेंगे।

निकल = का० कु० ३७, ४६। वा० ६२

[पूर्व० क्रि०] (हि०) ६०, प्र०, २१।

विलग हो।

निकल निकल = प्र०, २१। म०, ७।

[पूर्व० क्रि०] (हि०) ३० 'निकल'।

निकलना = का० कु०, १०। का०, ४ १६, २६

[क्रि० प्र०] (हि०) १०१, १४५ १५७ १८२, १७६,
१६६, २०६ २२५। प्र० १८, २२।
म०, ४। ल०, ५१।

विलग होना। बाहर होना। रिक्त होना।

[निकल मत बाहर लुपेत आह—'चंद्रगुप्त' का
गीत, प्रसाद मगीत' म पृष्ठ १०७ १०८
पर संकलित। 'राक्षस' ने इस गीत का
सुवासिनी के प्रेम संकेत के उत्तर में
उमकी विकलता शांत करने के लिए
अभिनयपूर्वक गाया है। भरी दुर्बल
आह बाहर मत निकल नहीं लोग तुम
पर हंसते और वह हसी तुम्हारी आह
के लिये शीत की भांति भयंकर होगी।
तु शरद मेघा के बीच विजली की भांति
भातर ही भीतर तड़प ल। प्रेम का
पवित्र फुटार पड़ रही है इसलिये कुछ
मीठी पीर और जलन है। इसे सम्हाले
बल, अधीर मत हो। तारे जिन प्रकार
रानि के शृंगार हैं इसी प्रकार विरह के
भाँसू विरह के शृंगार हैं। भरे हुए
आँसूओं को उफान न दा अपितु उन्हें
भाँसा में ही रहने दो। बोलिल और

पपीहा बनने का लगन न लगा क्याकि
पपाहा का पा कभी नहीं सुनता।
बोलिल की दशा भा तो दख। तुम
भीषण ताप दिया हुआ है। आह
को हृदय के पास छाया की भांति
सहज रूप में रहने दो, छू मत
नहीं तो जल जायगी। हृदय की
घटकन से भक्कार कर उसे जगा
मत। वह स्मृतियाँ का सुकुमार स्वप्न
सोए में दख रहा है। आह को बाहर
निकाल कर हृदय पर अत्याचार तु
न कर।]

निकष = ल० ५७।

[सं० पुं०] (सं०) कसौटी का पत्थर। तलवार की म्यान।

निकाम = बि० १६०।

[वि०] (प्र० भा०) बेकार।

निकाय = बि० २६।

[सं० पुं०] (सं०) समूह किसी विषय काम के लिये
अधिकारियों का समूह या भुंड।

निकास = का० १०६।

[सं० पुं०] (हि०) निकलने का क्रिया या भाव। निकलने का
स्थान। वग का झूल। निर्बाह का डग।

[सं० ली०] ग्रामदना। जुगी। विक्री।

निकाला = का०, १६६।

[क्रि०] (हि०) चना। आविष्कार करना।

निकुज = का० ८८ १७७ १७८।

[सं० पुं०] (सं०) लतामय। घनी लतिकाओं से छाया
हुआ स्थान।

निकुजन = बि० १।

[सं० पुं०] (प्र० भा०) लता मयों में।

निकेत = बि०, १७१। ऋ०, ३३।

[सं० पुं०] (सं०) घर। स्थान। आगार। भंडार।

निरर = का०, ७५। वा०, १५१, २७३। ल०

[क्रि० प्र०] (हि०) ३०।

स्वच्छ होकर।

निररना = का० ६७ १००, १०१ १८१। ऋ०,

[क्रि० प्र०] (हि०) ७१ २३।

स्वच्छ होना। रंग का सुलना या
साफ होना।

निरिखल = का०, १५६।
 [वि०] (स०) सपूर्ण, सब, समस्त।
 निगम = वि०, १५५।
 [सं० पु०] (स०) वेत्। मार्ग। बाजार। मन्त्र। निश्चित,
 वैश्विक।
 निगूढ = का०, ६। ऋ०, ३८।
 [वि०] (स०) अत्यंत गुप्त।
 निच = वि०, १७६।
 [वि०] (हि०) तुच्छ प्रथम, निवृष्ट, बुरा।
 निचय = का०, २४४।
 [सं० पु०] (स०) ढर, समूह, समुदाय। भव्य, किंसा बाय
 विनोप के लिए इकट्ठा किया जानेवाला
 धन आदि।

(प्रय०)

निश्चय, ठीक ठीक, सही। खासकर।
 विशेष कर।

[निज अलनों के अधकार मे—'लहर' मे पृष्ठ
 १० पर सकलित रहस्यवादी गीत।
 अपने ही धलको के धरे मे हं प्रियतम
 तुम छिपकर बने 'प्रायाग'। ठहरा,
 इतना मजग कोतुहल तुम कभी रच न
 सकाग। तुम्हारे जिन चरणा का मैं
 देखते ही प्रेम से चूम लू चाप चाप
 कर (ताकि छानि न हो मके और
 किमी की जात न हो सक) इतना
 अधिक वृष्ट न दो बसो क इस पगतल
 मे जो लाला फलक रही है वह तो
 ऊँचा की लाला के रूप मे वह रहा है।
 यह बसुना जिन पर तुम्हारे चरण है
 वह यहाँ तुम्हारे चरणा के चिह्न के
 रूप मे अचला पड़ी रह जाएगी भले
 हा चरणचिह्नो का गानी से प्राची
 अपना मुहाग सजाए। तुम्हारी इच्छा
 कबल इतनी ही है न कि मैं तुम्ह वही
 देव न तू तो तो मैं स्वय सिर झुका
 सता है फिर अपने प्रकाश की किरणा
 स मरी खुनी धारों ज कर जीवन की
 आत्मिबोनी के खेल मे पूछाग कि
 'पहचानो मैं कौन हूँ, बतानो मैं कौन
 हूँ।' जिन प्रश्नों से तुम यह पूछोग वे
 इस खेल के आनंद मे हमत दोगे, इस
 लिए पहले उनको ही हमी दबा ला।
 पर आत्मिबोनी के खेल की बेला
 मगत हो चुकी है, धासो अपनी वाट
 सता मे मुझ जकड लो। तुम हा कौन
 और मैं क्या हूँ ममे कुछ रखा नहीं
 है। छिपा नहीं उतार बना ताकि है
 मेरे चिह्न (प्रियतम) मानम मागर
 स चुम्बन सदा चलाता रहे।]

निचले = का० २४६।
 [वि०] (हि०) नीचे के नीचेवाले।
 निचोड = धा० ७६।
 [सं० पु०, (हि०) निचाटन की क्रिया या भाव। निचोडने
 पर निकलनेवाला अर्थ। सार कथन।
 कथन का सारांश।

निष्ठावर = का०, १३०। ऋ०, ५६।
 [सं० ली०] (हि०) उत्तरा। उत्सव। नेग। किसी वस्तु
 के ऊपर धुपाकर दान दा दई वस्तु।

निज = धा०, १४, ३८। क०, १५, २२
 [वि०] (स०) २८, २६। वा०, ४, ५६, ६१।
 का०, १६, ३०, ३३, ७३, ७६, ८३
 ८४, ८५, १३५, १४०, १७०, १८१,
 १८३, १८५, १८७, १८८,
 २१०, २१३, २५१, २५४, २६८,
 २७१, २८६, २८७, २८८। वि०,
 ६, ६, १६, २३, २४, २५, २६,
 ३१, ३२, ३५, ३६, ३८, ४१, ४३,
 ४५, ४६, ४७, ४८, ४९, ५०, ५१,
 ५२, ५३, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८,
 ५९, ६०, ६१, ६२, ५५२, १६१,
 १६३, १६५, १७३, १७८, १८५।
 ऋ० २१, ३५, ३८। प्र०, २, ६, १४,
 १७, २२, ३३, ३४, ४५। म०, १, ५,
 ६, १४, २०। ल०, १०, ११, २६,
 ४३, ४३।

भपना। खास। प्रमान। वास्तविक।

निजकर = वि०, १९१।

[सं० पु०] (स०) अपना हाथ।

निज राधर = वि० ५७।

[सं० ली०] (हि०) अपना समाचार। अपना ह्याल।

निज चौकड़ी = का० कु०, ७३ ।

[स० की०] (हि०) अपनी चौकड़ी, अपना छात्रा पत्रा,
अपनी चालाकी ।

निज दोष = का० कु०, १०२ ।

[स० पु०] (स०) अपना दोष या दुष्ण, अपनी भूत ।

निज नव = चि०, ६३ ।

[स०] (स०) अपना नयापन ।

निज नाम से = चि० ६६ ।

[स० पु०] (ब०भा०) अपने नाम से ।

निज निज = चि० १८६ ।

[वि०] (स०) अपना अपना ।

निज पशुगन = चि० ७३ ।

[स० पु०] (ब०भा०) अपने पशुमा की समूह ।

निज प्रियतम = का० कु० ६६ ।

[स० पु०] (स०) अपना प्रिय अपना परम प्रिय ।

निज मुखधर = चि० ७१ ।

[म० पु०] (म०) अपना प्रिय मुख या अठ मुख ।

निज सीमा = का० कु० ७५ ।

[स० की०] (र भा०) अपना सीमा अपना हृद ।

निजसुत = चि०, ५८ ।

[स० पु०] (स०) अपना पुत्र ।

निजसुतहि = चि०, ७४ ।

[स० पु०] (ब०भा०) अपने पुत्र को ।

निजस्व = का० कु०, ८१ । का० २७१ ।

[स० पु०] (स०) अपनापन, निजता । मौलिकता ।

निजहि = चि०, ७० ।

[वि०] (ब०भा०) अपने को, स्वयं वा ।

निजु = चि०, १४३ ।

[वि०] (ब०भा०) २० 'निज' ।

निजै = चि०, २६८ ।

[वि०] (ब०भा०) अपना हा स्वयं का ही । निजी ।

निठुर = चि० १५७, १८८ ।

[वि०] (हि०) कठोरहृदय क्रूर निदय ।

निठुरता = चि० १८४ ।

[स० की०] (हि०) निरयता क्रूरता, हृदय का कठोरता ।

निठुर नर = चि०, ६१ ।

[म० पु०] (हि०) क्रूर मानव, निदय यति कठोर हृदय

वाला मनुष्य ।

नित = चि० ६६, ७३ १००, १०६ १४८,

[प्रथम] (हि०) १४३, १७८, १८४, १६० ।

प्रति दिन, हर रोज, सदा ।

नितहि = चि०, १२ ।

[अव्य०] (ब० भा०) प्रति दिन, हर रोज, सदा ।

नितहि = चि०, १८८ ।

[अव्य०] (ब०भा०) २० 'नितहि' ।

नितान्त = का०, १४४, १५८, १६०, २४०,

[अव्य०] (म०) २४२ । प्र०, १४ ।

विलकुल, एतन्म, परम, बहुत अधिक ।

नित्य = का० कु०, ११ । का०, १०, १६, ३३,

[वि०] (म०) ४७, ४६, ५१ ५४, ५८, ७४, ८१,

१२३ २१६, २३६, २४२, २५०,

२६२ । चि०, ६६, ६४, १०६ १५३,

१८६ । म०, ५८ । प्र०, ८, १०, १४,

२३ । ल० २३, ६० ७० ।

अनवरत शाश्वत अविनाश ।

[अव्य०] २० 'नित' ।

नित्य नूतनता = का० कु०, १ । का०, ५५ ।

[म० की०] (ग०) नव नवीनता ।

नित्य कृत्य = का० कु०, १०० ।

[स० पु०] (स०) सदा किया जानेवाला निरप का कार्य ।

नित्यनवल सवध सूत्र = का० कु०, ६४ ।

[म० पु०] (स०) सदा नवीन सवध स्थापित करने

वाला साधन । वह उपाय जिसे सवध

नवीन बना रहूँ । शाश्वत सवध ।

नित्य परिचित = का० कु० १०० ।

[वि०] (म०) सदा से परिचित, चिर परिचित ।

नित्य यौवन शक्ति = का० कु०, ६० ।

[वि०] (स०) सदा यौवन की क्षमता या योग्यता,

पूरा युवापन का प्रभाव ।

नित्यता = का०, १६५ ।

[स० ज्ञा०] (स०) नित्य होने का भाव शाश्वतता ।

निदाघ = का०, २७० ।

[म० पु०] (स०) गर्मी ठाँव, घाम ।

निदान = का०, २६ । न०, १२ ।

[म०] (म०) चिकित्सक द्वारा रोग के निगम करने

का प्रयोग । रोगलक्षण । पवित्रता ।

वर्धन बर्धन की रक्षा वाग्यार ।

[अव्य०] (स०) घट म । आसिद्ध ।

निद्रा = आ० ५४। का, २६, १४८, २२६।
[स० खी०] (स०) ऋ०, २६, ८८। प्रे०, २, १८।
म०, १८।

प्राणिया की वह अवस्था जिसमें चेतन वृत्तियाँ बाध बंध में कुछ समय के लिये निश्चेष्ट रहती हैं और उन्हें शारीरिक तथा मानसिक विभ्राम मिलता है। तद्रा।

निद्रित = चि० ४६।
[वि०] (स०) साया हुआ।

निधरक = ल०, ४२।

[क्रि वि०] (प्र०भा) नि सकाच, वगडक।

[निधरक तुने ठुकराया सच—सहर' म पृष्ठ ४० पर संकलित रहस्यात्मक गीत।
तूने सब प्रेम की मरी दूटी वाली की जय वे तुम्हारे चरणा की प्रीति माग रहे थे निघडक ठुकरा दिया।
जीवन रस के जा बन बच रहे थे वे आकाश में आसु बनकर बिखर गए और उड़ी म सावन के बादल इस घमुषा का हरातिमा द रहे थे। इस निदय हृदय म जो हूँ है वह मरी पट्टी बूक की घगड़ाइ है और उसका कमर की हूँ से जावन की मूली डाला भी भट्टत हो गद है। प्राणा के प्यास से प्यासे मतवाले विस्मृति य प्यास में मरना के समान स्मृति टाल रही है। सब नश्वर प्रेम के विषय में न सोच।]

निघान = का०, २६।

[स० पु०] (स०) आगार, निधि या कोष। वह जिसमें गुण की परिपूर्णता हो।

निधि = आ०, ६८। वा० कु०, ६६। वा०,
[स०खी०] (स०) ३७ ५०, ६६, २४२, २८६। चि०,
१४६, १५३, १५७, १७०, १८५।
म० ७।

गदा हुआ सजाना। बुद्ध की नौ प्रकार की निधियाँ वा एजान। नौ वस्था का मुख्य शब्द। कोण। समुद्र। घर।

विष्णु। एक श्रीयधि विरोध। एक गवद्रव्य विरोध।

निनाद = वा० कु० २। का०, २७३। चि०,
[स० पु०] (म) ११, १६०।

श द, आवाज ध्वनि। जोर का और प्रिय शब्द। मनोरजन समस्त मधुर स्वर।

निनानिनी = चि०, १६७।

[वि०] (स०) शब्द रचनेवाला, बनि करनेवाला।

निपात = वा० कु० ११२। का० १४।

[स० पु०] (स०) पूरा पतन, अथ पतन। विनाश, क्षय। व्याकरण क नियमी स न बननेवाला और न सिद्ध होनेवाला शब्द।

निघटना = का कु० १२४।

[क्रि०प्र०] (क्र० भा०) छुटकारा पाना। निर्वाह होना, निभना। व्यवहार तथा आचरण का बना रहना।

निबल = का०, २५।

[वि०] (हि०) कमजोर बल से रहित।

निजही = चि० १८।

[क्र०] (प्र० भा०) 'निजहना' क्रिया का भूतकालिक रूप।

निजाहे = वा० १६२।

[क्रि०] (हि०) 'निवाहना' क्रिया का प्रत्ययार्थक रूप। निवाह करें।

निवाहो = चि०, १८४।

[क्रि० म०] (प्र० भा०) २० 'निवाहे'

निभूत = वा०, ८७, १३६। म०, ३०।

[वि०] (स०) एकांत। गुप्त। शान्त। दृढ सकल्प। निजन।

निमित्त = वा० कु०, ११६।

[स० पु०] (स०) हेतु कारण। वह जो नाम मात्र के लिये आया हो, जो वास्तविक वस्तु न हो। शून्य। उद्देश्य।

निमीलन = वा०, २३। म० २५।

[स० पु०] (स०) पलक मारना या ऋक्ता। निमेष, घांसि मूश्न का भाव।

निम्न = वा०, २८८।

[वि०] (स०) नीचा।

नियता = का० २५।

[सं० ॥] (म०) नियन्त्रण या व्यवस्था करनेवाला। काम चलानेवाला। नियम बनानेवाला। शासन के नियम के अनुसार चलनेवाला।

नियत = का० १६३। ल० १५।

[वि०] (स०) निश्चित, ठीक।

[सं० पु०] (स०) विधान। आना। नियोजन। विष्णु। गिव।

[सं० ली०] (प्र०) उद्देश्य। आशय। मशा, दियागत।

नियति = श्री० ५१, ६०। का० कु०, ११६।

[सं० ली०] (स०) का० १६, ३४, ८१, ८३, १६५, २१०, २६०, २६७। चि०, १४२ ल०, ६७।

वधेज। होनी, भाग्य। स्थिरता, जड़ प्रवृत्ति (जन)।

नियतिचक्र = का० १६३।

[सं० पु०] (स०) भाग्य चक्र। भाग्य की हीन दशा। दैव।

नियतिजाल = का०, १७०।

[सं० पु०] (स०) भाग्य का जाल, भाग्यग्रथन। दुभाग्य में फँसना।

नियति नटा = का० १५८। ल० ५७।

[म० ली०] (म०) भाग्य रूपी नटा या नाना प्रकार का खेल करनेवाला। भाग्य दशा के खराब होने पर स्थिर चित्त का न होना। माया।

नियति प्रेरणा = का०, २६६।

[म० ली०] (स०) भाग्य की प्रेरणा या दब का इच्छा। दब के द्वारा प्राप्त प्रोत्साहन।

नियम = का० १६१, १८६, १६१, १६२ [सं० पु०] (स०) १६६, २३६, २६५, २६२६३। ऋ०, ३८।

धार्मिक सिद्धान्त या प्रतिवच। न निश्चित बातें जिनके अनुसार कोई सस्था चलता है। परंपरा दस्तूर। धार्मिकशास्त्र में ईश्वरपरायण व लिय प्राप्त भग्न में स एव। विष्णु। शिव।

नियमन = का०, १७१, १८५, १८६, २०६।

[सं० पु०] (१) नियमबद्ध करनेवाला कार्य। क्रिया विषय या काम का नियमों में बाँधने की क्रिया या भाव। शासन, नियन्त्रण।

नियम परत्तत्र = का०, १६०।

[सं० पु०] (म०) नियमों में बंधकर स्वतंत्रता छीन जाने का भाव।

नियमित = का०, ३३।

[वि०] (स०) नियमों में बंधा हुआ नियमबद्ध। कानून के अनुसार बना हुआ। ठाक समय पर होनेवाला।

नियामक = का०, १६१, १६२।

[सं० पु०] (म०) नियम बनानेवाला व्यवस्थापक। मछली मारनेवाला, माफ़ी।

नियोजित = चि०, १६५।

[वि०] (स०) नियुक्त किया हुआ, लगाया हुआ, संज्ञात भुक्तर। निश्चित।

निरकुश = का० २७०।

[वि०] (स०) जिसके लिये कोई अकुश या स्वावट न हो या जो कोई बधन या नियम न माने। बधनरहित। विमृजल।

निरतर = का० ३१, १६४, २६५, १६६।

[वि०] (स०) बिना अंतर का, लगातार होनेवाला, अविचल। स्थायी।

[क्रि० वि०] (स०) सदा, हमेशा लगातार, बराबर।

निरतरता = का० १६७।

[म० ली०] (म०) अंतर या भेदपन का न होना। अविचलता स्थायित्व।

निरस्त = चि० २८, १४६।

[क्रि० म०] (ब० भा०) दखना दख रहा।

निरस्तता = श्री० ३२, का० कु०, ४३। का०, [क्रि०] (हि०) ७, ११०। प्र० ७, १८ ल०, ७६।

निरस्तना' क्रिया का सामान्य वर्तमान रूप।

निरस्तना = श्री० १८, का० कु० २, ३६, १००।

[क्रि०] (हि०) का०, ४५, ६१, ११६। म०, ६८। प्र० ५, १७। ल० ३१।

देखना ताकना, अवलोकन करना।

निरसि = चि०, ६ १४।
 [त्रि०] (हि०) निरखना' क्रिया का पूवकालि रूप,
 निरखकर, देखकर।
 निरस = का०, २३ १६१ २५४, २८५,
 [वि०] (सं०) २६०।
 क्रिया काम में लगा हुआ, तन्तून।
 [सं० पु०] (श० भा०) नाच, नृत्य।
 निरसत = चि०, १।
 [क्रि०] (श० भा०) निरसना' क्रिया का सामान्य वतमान
 रूप। नाच करने को क्रिया।
 निरधारिकै = चि०, १७२।
 [क्रि०] (श० भा०) निरधारना' क्रिया का पूवकालि
 रूप, निर्धारण करके, निश्चय करके।
 मन में धारण करके।
 निरधारी = चि० १७६।
 [क्रि०] (श० भा०) निरधारना' क्रिया का भूतकालिक
 रूप।
 निरधारै = चि० ६४।
 [क्रि०] (श० भा०) निश्चित कर्त्त। मन में धारण कर्त्त।
 निरपेक्षस्वावकीन = चि०, १३२।
 [सं० ली०] (सं०) तुम्हारा बिना स्वाय की कामना,
 तुम्हारी इच्छा या कामना का अभाव।
 निरमलता = भा०, ६८ ७४।
 [सं० ली०] (हि०) स्वच्छता। दोषहीनता, शुद्धता।
 पवित्रता।
 निरमय = का० कु० ४।
 [वि०] (हि०) रोगरहित। निजसक। पूर्ण। अचूक।
 निरय = का०, २७।
 [सं० पु०] (सं०) नरक दोजल।
 निरयक = का०, १२।
 [वि०] (सं०) बिना अर्थ का। व्यर्थ। बिना मूल्य का
 निमूल्य।
 निरलस सा = ल०, ५६।
 [वि०] (हि०) महाराहल सा। निराश्रित।
 निरवधि = न० २६।
 [वि०] (न०) अवधि या सामारहित, जिनकी कोई
 अवधि न हो।

[क्रि० वि०] निरतर, लगातार।
 निरा = का०, २८।
 [वि०] (हि०) विग्रह, खालिस। केवल एक मात्र।
 निपट, निनात, एक्कदम।
 निरादर = का० कु०, ११५।
 [सं० पु०] (सं०) अपमान बढ़जता। परिमव घनादर।
 तिरस्कार।
 निराधार = का०, २६०, २६१। प्रे० १०।
 [वि०] (सं०) जिनका कोई आधार न हो, मिथ्या।
 बिना सहार का। निरवलम। निरा
 श्रित।
 निरानद = चि० १३२।
 [वि०] (सं०) आनंद रहित। आनंद विहीन।
 [सं० पु०] (सं०) दुःख। परम सुख।
 निरापद = म० ३।
 [वि०] (सं०) आपत्ति तथा बाधा रहित। भयरहित,
 आशंका से शून्य। निष्कटक, अदृष्टक।
 निरालस = का० कु०, १००।
 [वि०] (सं०) आलस्य रहित, तत्पर।
 निराला = का० कु०, ३६, ६०। का०, २०१,
 [वि०] (सं०) २८४।
 अदभुत, विचित्र। अपन ठग का प्रकेला,
 अनूठा, अप्रकृत।
 निराली = भा०, २२, २६। का० कु०, ३६।
 [वि० ली०] (म०) का०, २८४। चि०, ८।
 द० निराला'।
 निराश = भा०, ७८। का०, २०, १५८, १६६।
 [वि०] (सं०) चि०, १६०, १६२, १६६, १६६।
 ऋ०, ३७ ६१। प्र० ४।
 आशारहित, जिस आशा न हो।
 निराशा = भा० ५७। का०, १६ ५४ १६४,
 [सं० ली०] (सं०) ६०, २१७। ल० ३०, ५६।
 आशा का अभाव। नाउम्मीदी।
 निराशापूय = का० ७।
 [वि०] (सं०) २० निराशामय।
 निराशामय = प्रे० २०।
 [वि०] (सं०) निराशा से युक्त या भरा हुआ, हताश।

निरीक्षक सा = वा०, २०६।

[वि०] (सं०) निरीक्षण या देख रेख करनेवाले के समान।

निरीह = वा०, ६२, १४५, १४६, २७१।

[वि०] (सं०) वि०, १७६।
सोचा नापा बेगारा। सटम्प, जालि प्रिय।

निरीहता = वा० १०४। ल० ३१।

[सं० की०] (सं०) निरीह होने का भाव।

निरूपम = वा० कु०, ४।

[वि०] (सं०) जिसकी उपमा न हो, उपमा रहित।
अनुपमेय।

निरुपाय = वा०, २/ ४८, ५२ १४, ५६।

[वि०] (सं०) म०, १४। ल०, ६६।
जिसका उपाय न हो। जो उपाय से रहित हो।

निरस्त = वि०, १५२।

[क्रि०] (हि०) ३० 'निरस्त'।

निरस्त = वि०, १०३ १७२।

[क्रि०] (हि०) ३० 'निरस्त'।

निरस्तिये = वि०, १७१।

[क्रि० सं०] (हि०) निरस्त्या क्रिया का प्रेरणाध्व रूप।

निरोगिता = प्रे०, ७।

[सं० की०] (हि०) रोग रहित रहने का भाव, स्वस्थता।
आरोग्यता।

निर्जन = श्री०, १७, २३, ७६। वा०, ४५,

[वि०] (सं०) ८२, १३३, १२०, १२७, १३३, २३३
२४७ २५०। ऋ०, १७ १८, ३०
३५ ५२। ल० १४ १६।

जहाँ कोई न हो। एकांत, सुनसान।

[निर्जन गोधूली प्रातर मे - 'अजातशत्रु' मे अपनी स्थिति की अभियुक्त करने वाला श्यामा का गीत। निर्जन प्रात मे गोधूलि की बेला में पणकुटी का द्वार खोल, प्रतीक्षा पर अधिकार किए, दीप जलाए प्रतीक्षा मे तुम बठे थे। उस समय तुम्हारी अलस अकपित आंखा से ऐसा आभास होता था कि

बटमारों से ठगे हुए हो या तानों खोला द्वारा छुराए हुए हो। तुम्हारी पत्रों परदे के गमन झुरी हुई थीं और भ्रंत म अभिनय हा रहा था। इसका परिचाय वेदना के भांगू की बूंदें दे रहीं थी। फिर भा तुम भरा परिचय पूछ रहे हो और इन विपुल विषय में अपनी परिचय दूँ भी तो किसकी। मेरे श्वाभा म चिनगारी उठ रही है, रो लेने दो तार्जि साँत ले सकूँ। तुम्हें क्षण भर जाने म एकाकी रहन दो। उम जीतल बोने म सहज व्यथा के साने म विग्राम सम्मल जाएगा। समय बात चुका है नाल आकाश तम स भर गया है, प्रेम का बीणा छिन हो गयी है, प्यार भूल गया है। अब तो बदमा के समान छिपना है, भांगू ही अब हार कर उतका परिचय देंगे।]

निर्जनता = वा०, १६, ११५ १५०। ल०, ४८।

[सं० की०] (सं०) जनराहित्य। सूनापन।

निष्कर = वा०, ४८, ८६ ६६, १४५, २५८,

[सं० प्र०] (सं०) २७०, २८१। ऋ०, ३१, ३४।

भरना, सोता, पानी का अपने आप निकलकर ऊँचाई से गिरना।

निर्भर सा = श्री०, १८।

[वि०] (हि०) ऋत्ने के समान। अपने आप द्रवित होने वाला। कारुणिक।

निर्भरिणी = प्रे० २४।

[सं० की०] (सं०) नदी। पानी का सोता या झरना।

निदय = श्री०, ६६। वा० कु०, २३, ७६।

[वि०] (सं०) वा०, २४८। ऋ०, ३७, ४५, ६६।
म०, १४।

दयारहित, निष्ठुर, बेरहम।

निर्नयता = ल०, ४६।

[सं० की०] (सं०) निदय होने की क्रिया या भाव, निष्ठुरता।

निर्दिष्ट = वा० कु०, ११६।

[वि०] (सं०) निश्चित किया हुआ। जो निश्चित किया गया हो, ठहराया हुआ।

निर्देश = का० कु० ६६।

[सं पु०] (सं०) धात्रा । रख । हुक्म ।

निर्धार = का०, ३२। म०, २१।

[पूर्व० क्रि०] (सं०) बात का निश्चय । याय मे गुण, कर्म आदि को समानता के विचार से भ्रमण वश बनाना । धिमी का मूल या महत्व निश्चिन करना । निश्चित करना ।

[स०] सट पर या किनारे ।

निर्धारक = का० कु० ६४।

[वि०] (सं०) निर्धारण करनेवाला । निश्चय या निणय करनेवाला ।

निर्धूम = ल०, ५६।

[वि०] (सं०) जहा धूमा न हो, धूमा रहित ।

निर्निमेष = का० कु०, २५, ५६, ६८। का०

[वि०] (सं०) १६०, २५१। प्र०, २, १६। म० १४।

बिना पलक गिराए हुए । निमम पलक न गिर ।

[क्रि० वि०] (सं०) बिना पलक झपनाए, एकटक । लगातार । अविरल ।

निर्धूल = का०, २४०।

[वि०] (सं०) बर्हीन, कमजोर ।

निर्धौज = का०, १०।

[वि०] (हि०) बिना बाज का, तरब रहित ।

निर्भय = का० कु०, ८७, ६८। ११६। का०

[वि०] (सं०) १६६, २८३, २६३। वि०, १, ७२। प्र०, २१।

निम्बर, भयरहित । साहसी, निर्भीक ।

निर्भीक = का० कु०, ३०, १०६।

[वि०] (सं०) देश निर्भय ।

निर्मम, निम्मम = का०, ६३। का०, ११६ १६८, २००,

[वि०] (सं०) २६७, २६९। ल० ७८। का० कु०, १२०। का०, १३२।

निर्मोहा, ममता रहित । निदय ।

निर्ममता = का०, १२१, १२४।

[सं० जी०] (सं०) ममता या वासना का अभाव ।

निर्मल = का०, ७। का०, कु०, ५५, ६३, ६५।

[वि०] (सं०) का०, १३५, २५४, २८२, २८५।

वि०, ६३, १५४। म०, २३, ३४, ५५। प्र०, १२, १५, १६। ल०, २५, २६, ३६।

मलरहित स्वच्छ । दोषरहित निर्दोष ।

निमेलता = का०, २४८।

[सं० जी०] (सं०) स्वच्छता, सफाई । निष्कलकता । शुद्धता, पवित्रता ।

निर्माण = का०, २५७, १६१।

[सं० पु०] (सं०) किसी वस्तु का बनाया जाना, बनाने का कार्य, रचना ।

निर्मित = का० कु०, ६। ११०। का० १६७,

[वि०] (सं०) १६२, २०६ २८८। म०, ८। बनाया गया रचित ।

निर्मोक = का०, ५।

[सं० पु०] (सं०) साप की केडुना केडुन । त्वचा, शरीर की ऊपरी छाल ।

निर्माही = का०, ४५, ७०। का०, १५४, १५७।

[वि०] (हि०) निदय, बड़ीरहृदय ।

निर्लिप्त = का०, १६७।

[वि०] (सं०) राग द्वेषादि से मुक्त । अलिप्त ।

निर्बात = ल० ४३।

[वि०] (सं०) जहा हवा न हो, वायु से रहित ।

निनाथ = का०, १२, ८४।

[वि०] (सं०) बिना बाधा या बल के । स्वतंत्र ।

निर्जसना = का०, १५१।

[वि०] (सं०) बिना वस्त्र की, नगी ।

निर्वासना = का०, १५१।

[सं० पु०] (सं०) निवासना, विमज्जन करना ।

निवासित = का० कु०, ६६, १०१। का, १५८,

१६२, २०८, २४४।

निवासा हुआ, विसर्जित ।

निर्विकार = का०, कु०, ३। का०, १५२, १५६,

[वि०] (सं०) २४६, २८६।

बिचाररहित । जिसमे किसी प्रकार का परिवर्तन न हो, अपरिवर्तनशील ।

निर्विघ्न = वि०, ६७।

[वि०] (सं०) विघ्न या बाधा से रहित।

[क्रि० वि०] (सं०) जिना विघ्न बाधा ने।

निर्विवाद = का०, १६७।

[वि०] (सं०) विवाद या झगडा से रहित।

निर्वेद = का० कु०, ८७। वि०, १४३।

[सं० पु०] (सं०) वराम्य। अनुताप।

निलज = वि०, १६०।

[वि०] (प्र० भा०) लज्जा से रहित, निर्लज्ज।

निलज्ज = वि०, १७०।

[वि०] (हि०) 'निलज'।

निलय = भा०, ६। का०, ८२, १८०। का०

[सं० पु०] (सं०) कु०, ३६।

आलय, घर। छिपने का स्थान। जानवरों का बिल या भीटा। घामला।

निवारि के = वि०, १४०।

[प्र० क्रि०] (प्र० भा०) निवारण। क्रिया या पूर्वकालिक रूप, निवारण करके या मना करके।

निवारो = वि० ५०।

[सं० स्त्री०] (प्र० भा०) एक सुष्प विशेष का नाम।

[प्र० क्रि०] निवारण करके।

निवास = का० १५८ २३६। का० कु०, ३६।

[सं० पु०] (सं०) वि० ५३ १५२, १५५, १७० १७७। प्रे० ७।

रहने का स्थान, आवास।

निवासी = का०, २८३।

[सं० पु०] (सं०) रहनेवाला, बसनेवाला वासी।

निविड = का०, १०३।

[वि०] (सं०) धनधोर घना, गहरी।

निवेदन = ऋ०, ४६।

[सं० पु०] (सं०) नम्रतापूर्वक कुछ कहना। विनती प्रायना।

[निवेदन—'करना' से शृङ्ख ४६ पर सकलित कविता। तेरे प्रेम का विष श्रव तो सुख से पी रहे हैं। निरह रूपी सुधा हम बचाए हुए हैं। हम तो मरने के लिए जी रहे हैं। प्रेम के प्यास ने कारण हृदय दोड़ दोड़ कर थक चुका है और

आशा की मृगमराचिका में गूँव भटन भा चुका है। मर महमय जीवन ने ह भगुन गान दर्शन नो, धपन प्रमाथु स हम भी भाप निबित्त कर दा। हम बात से मत डरा नि मिलन पर तुम्ह मरा उपायभ मित्रता। तुम्हारा एक श्रुवन मात्र मरा मुग्ध बद कर दगा।]

निराक = वि०, ६, ६० ६७।

[वि०] (हि०) निर्भाव निरुद, नि शक्त।

निराक = वि०, १५३।

[वि०] (हि०) जहाँ आवास न हो। उपाय, शांत।

निशा = भा०, ५६। का०, ८। का०, २०, ६७,

[सं० स्त्री०] (सं०) १०३ १३६, १६० १६७, २११।

वि०, २३, ७१, १०१, १४०, १६२।

ऋ० २३, ४८, ६३। प्र०, ५। ल०, ४४।

रात, रजनी। हल्का। पलित उपातिप म मेप रुप मिथुन, एक, धनु मकर आदि छ राशियाँ।

निशाकर = का० कु०, ६६। वि०, २३।

[सं० पु०] (सं०) चंद्रमा। महादेव। कपूर। एक ऋषि का नाम।

निशाच्छादित = वि०, २३।

[वि०] (सं०) रात्रि से ढेरा हुआ, अंधकारमय, अनामय।

निशा तापसी = का० १७६।

[सं० स्त्री०] (सं०) रात्रि रूपी तपस्वनी।

निशानाथ = वि०, २५।

[सं० पु०] (सं०) चंद्रमा।

निशामुख = का० ८७।

[सं० पु०] (सं०) रात्रि का मुख सध्या।

निशासनी = वि०, ७१।

[सं० स्त्री०] (हि०) निशा रूपी रानी।

निशा सखी = का० कु०, ३५।

[सं० स्त्री०] (सं०) निशा नायिका का सखी। रजनायका नामक पुन।

निशा सी = का० १२५।

[वि०] (वि०) रात्रि के समान। चांदनी के समान। सुंदरी, रूपवती।

निशि = श्रा०, ५४। वा०, २३४, २८६।
[सं० शी०] (हि०) चि०, १४, २५, १६२। ल०, ४१।
२० 'निशा'।

निशिचारी = वा०, २०५।
[सं० शी०] (सं०) राक्षसी, निशा मे गमन करनेवाली।
[सं० पु०] चद्रमा।
निशीथ = वा०, ३४, ६४, ६७, ११४।
[सं० पु०] (सं०) ल०, ३६।
प्रदरादि।

[निशीथ नदी—सबप्रथम 'हनु', बला ४ किरण
४, अमल १६१३ ई० मे प्रकाशित और
मानन कुमुम में पृष्ठ ५६५७ पर
मकलित अतुल्य कविता। प्रेमी के
हृदयतारक के समान एकटक स्वच्छ
भाकाश में तारकपुञ्ज एकांत अभिनय
कर किमका अनीतिक रूप देख रहे हैं।
दिशा, पृष्ठी, सत्पत्ति सभी चितित हैं
पर शांत पवन अपने स्वर्गीय स्पर्श से
उड़ मुल दे रहा है। अथकार में तारा
गण की मस्तिष्क ज्योति उसी प्रकार कुछ
कुछ प्रकाश दे रही है जिस दुली हृदय
में प्रिय का विश्वास विमल विभा दता
है। हरे भर कूनों के बीच सरिता वह
रही है। वातू भरी जमीन भा इसके
लिये सिंचन से हरी भरी हो रही है
करार भी नहीं बढते और कीचड़
काचड़ भी नहीं है। यद्यपि तमगण
उस अपनी उजाल के सबेते से माग
दिखा रहे हैं तो भी वह किमी की
पत्ताह नही करती और अपनी धुन में
सीधी चली जाती है। न ता उसे किमी
से कोई द्वेष है, न माह। वह न तो
उपलब्ध से टकराना चाहती है और
न पकिन और फैनिल होना जानती
है। पण्डितों को भा वह अपनी
धार क वग में बहाना नहीं चाहती।
धोर गर्मी में भी वह सुखा नही। न
चो उसमें गर्जन है और न उत्पात ही।
जगमें शांति शांत सा कामल ख हा

रहा है। हमारा जीवन स्रोत भी कब इस
नदी की गाँति का होगा। हृदय गौरव
से धूरित होकर सारे दिगंत को कब
परिमल से भरेगा। यह अपने शीतल
नहरी से अशांत चित्त को कब शांत
शीतल करेगा और दुःख व्याम हरेगा।]

निशीथिनी = वा० ११८। चि० ४६।
[सं० शी०] (सं०) रात्रि, रात।
निश्चय = वा०, १४८, १६२।
[सं० पु०] (सं०) विश्राम। दृढ मन्त्र, पक्का विचार।
निश्चल = चि० १३३।
[वि०] (सं०) अचल, अचल, अटल स्थायी।
निश्चित = क०, १०। कु०, ११२। वा० ३२।
[वि०] (सं०) जिसके विषय में निश्चय हो चुका हो।
जा निश्चय किया गया हो। निर्णीत,
पक्का।

निश्छल = वा० २३८ २५०। ल०, १४।
[वि०] (सं०) छन या कपट से रहित, निष्कपट।
निश्चेष्ट = म०, १४ १६।
[वि०] (सं०) निश्चल, चेष्टारहित। बेहाश।
नि शल्य = अ० ८२।
[वि०] (सं०) काँटो से रहित। निर्विघ्न।
नि शेष = वा० कु० ७३। अ० ४४।
[वि०] (सं०) संपूर्ण, जिसमें कुछ गेप न हो।
निश्वास = आ०, २७, ३१ ४२। वा० कु०, ८६।
[सं० पु०] (सं०) का०, ८ १४ ६४ ६०, १७७। अ०,
३६ ६०।
श्वाम साँस।

निश्वासो = वा० ६६ १२५।
[म० पु०] (हि०) निश्वास का बन्धन।
निश्वास पवन = श्रा० १२।
[म० पु०] (हि०) पवन का श्वास या पवनन्वी श्वास।
निशेष = वा० ५२। म०, १४।
[वि०] (सं०) संपूर्ण पूर्ण। अपूर्ण, जो गेप न हो।
निपग = चि०, ७२। ल० ४८।
[सं० पु०] (म०) तरकश लूणरी। तलवार।
निपादपति = वा० कु० ६६।
[सं० पु०] (सं०) निपादा का स्वामी या राजा।

निपिद्ध = का० कु०, ८८ । वा०, २३६ ।
 [वि०] (सं०) वजित, मना बिया हुआ । मुरा । दूषित ।
 निष्काम = प्रे०, २४ ।
 [वि०] (सं०) काम या वासनारहित । स्वाभरहित ।
 अनासक्त ।
 निष्कषण = ऋ० ३८ ।
 [वि०] (सं०) अविचन, जिसका कोई मूल्य न हो ।
 निष्क्रिय = वा० कु०, १०६ ।
 [वि०] (सं०) क्रिया या व्यापार से रहित, निश्चेष्ट ।
 [सं० पुं०] (सं०) ब्रह्म ।
 निष्पुत्र = मा०, ३६ । वा०, १८, २४ । वा० कु०
 [वि०] (सं०) १२० । वा०, १२२, १६७, १७०,
 १७७ । ऋ०, ३२, ६१ । ल०,
 ३२, ३३ ।
 बठोर हृदयवाला, क्रूर मृगश ।
 निष्पुत्रता = ल०, ३२ ।
 [सं० स्त्री०] (सं०) निष्पुत्र होने का भाव, बठोरता, निद-
 यता, क्रूरता ।
 निष्फल = वा० ३३ १३६ । ल०, ३४ ।
 [वि०] (सं०) फलरहित । व्यर्थ, निरर्थक ।
 निस्सर्ग = मा० ६८ ।
 [सं० पुं०] (सं०) स्वभाव, प्रवृत्ति । सृष्टि । दान ।
 निस्सानी = चि०, ७७ ।
 [सं० स्त्री०] (प्र० भा०) स्मृति, विद्वद् यादगार ।
 निस्साले = चि०, ६ ।
 [सं० पुं०] (प्र० भा०) लक्ष्य । जिनपर बार किया जाने
 वाला हो ।
 निस्सापति = चि० १५६ ।
 [सं० पुं०] (प्र० भा०) चद्रमा ।
 निस्सि = चि०, १४६ ।
 [सं० स्त्री०] (प्र० भा०) २० 'निशा' ।
 निस्सिदिन = चि०, १२ ।
 [अव्य०] (प्र० भा०) रात दिन । प्रति रोज ।
 निस्सिनाथ कला = चि०, १४६ ।
 [सं० स्त्री०] (प्र० भा०) चद्रमा का कला ।
 निस्तत्र = का० कु०, ८६ ।
 [वि०] (सं०) निरालस्य । जाग्रुन या जगा हुआ ।
 निस्तद्वध = मा०, ६० । का० कु०, ६६ । का०,

[वि०] (सं०) १६०, १६७, १६६, २११, २४५,
 २५० ।
 बिलकुल शान्त, निश्चेष्ट ।
 निस्तन्वता = वा० कु०, १२२ ।
 [सं० स्त्री०] (सं०) स्तब्ध होने का भाव, सामोचा,
 सन्नता ।
 निस्ततरग = वा०, १६६ ।
 [वि०] (सं०) तरग रहित, शान्त । गतिहीन ।
 निस्तार = वा०, १६६ । चि०, ५४ ।
 [सं० पुं०] (सं०) पार होने का भाव । छुटकारा, उद्धार ।
 मुक्ति ।
 निस्वन = वा० ६८, १६०, २६० । ल०, २१ ।
 [सं० पुं०] (सं०) शब्द, ध्वनि ।
 निस्सग = वा०, २७० । ऋ०, ५२ ।
 [सं० पुं०] (सं०) किसी को साथ न रखनेवाला, किसी
 में लित न होनेवाला ब्रह्म ।
 निस्सबल = वा०, १०५ १७७, २५६ ।
 [वि०] (सं०) आधार या सहारा रहित, असहाय ।
 निस्सहाय = वा०, १६७ ।
 [वि०] (सं०) बिना सहारे का, असहाय ।
 निस्सीम = मा०, २० । ल०, १६, २१ ।
 [वि०] (सं०) अपार, अनन्त । सीमारहित ।
 निस्तेज = वा०, ८२ ।
 [वि०] (सं०) प्रकाशहीन, कातिरहित ।
 निस्पद = ल०, ७६ ।
 [वि०] (सं०) निश्चल, निश्चेष्ट ।
 निस्वान = वा०, २४७ ।
 [सं० पुं०] (सं०) शब्द, ध्वनि ।
 निहार = वा० ८३ १७२, ३३८, २४६ । चि०,
 [क्रि०] (हि०) ७६ । ल०, ३४ ।
 'निहारना' क्रिया का पूर्वकालिक रूप,
 निहारकर, देखकर ।
 निहारि = चि०, १४६, १५५, १६४ ।
 [क्रि०] (प्र० भा०) २० 'निहार' ।
 निहारिये = चि०, १७१ ।
 [क्रि०] (हि०) 'निहारना' क्रिया का प्रेरणार्थक रूप ।
 निहारी = का०, १५३ । चि० १४८ ।
 [क्रि०] (हि०) 'निहारना' क्रिया का भूतकालिक रूप ।

निहारो = वि० ५७, १६० ।

[क्रि०] (हि०) देखो ।

निहित = प्रे०, २० ।

[वि०] (स०) स्थापित । धिपा हुआ ।

निहोरि = वि०, ५४ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) 'निहोचना' क्रिया का पूर्वकालिक रूप ।
निहोरा कर, मना कर ।

निहोरे = वि० ६० ।

[सं० पुं०] (हि०) अनुग्रह कृतपता, प्रायना, भराया ।

नीचे = वि०, १६० ।

[वि०] (प्र० भा०) उत्तम, श्रेष्ठ ।

नीच = का०, ७०, १८०, २१६, २२४,

[सं० स्त्री०] (हि०) २३५ । वि०, १४, ४६ । प्र०, १ ।
लोने की अवस्था, निद्रा ।

नींद जाल = का०, २३५ ।

[वि० स्त्री०] (हि०) नींद रूपो जाल, घोर निद्रा ।

नीच = का०, २८ । का०, ८४ । वि०, ६६,

[वि०] (सं०) १०५, १०६, १९० । सं०, ७६ ।

तुच्छ अयम, निष्ठ ।

[नीच प्रकृति — 'सज्जन' में एक उक्ति । नीच प्रकृति
के लोग बात नहीं सांग से मानते हैं ।
जब बटव पर में मन्ता है तभी उसकी
तजी की समझ कर दिया जाता है ।
वसे ही दुजन की भी स्थिति है ।]

नीचा = का० कु०, ७० । का०, ४५, ६७

[वि०] (हि०) १२५, २८३ ।

गहरेपन का भाव, भुका हुआ ।

नीचे = भा०, ६६ । का०, २६ । का०, ३, ३५,

[क्रि० वि०] (हि०), १२७ १८६ २०९, २१६ । वि०,
७० । प्र०, १४, २४ । सं०, ४०,
४५, ८० ।

नीचे की धार, अधोभाग में ।

नींद = का०, १६ । का० कु०, १५, ३३, ६६ ।

[सं० पुं०] (सं०) का०, ७५, १५०, २३६, २८६ । का०,
१६ । प्र०, ७ । सं०, ४० ।

चीमला । रथ में बटने का स्थान ।

निवास स्थान ।

नींद सा = का०, १२० ।

[वि०] (हि०) नींद के समान ।

नींदों = का०, १४४ ।

[सं० पुं०] (हि०) घोसलो ।

नीति = का० कु०, ८६ । वि०, १८, ६८, १०६,

[सं० स्त्री०] (सं०) १६७ । प्र०, २ । १४ ।

अवहार की रीति, आचारपद्धति ।

नीर = का० कु०, ४८, १२३ । का०, १३,

[सं० पुं०] (सं०) १५७, २१४ । वि०, ५३, ६४, १५७,

१६४, १६६ ।

पानी, जल ।

नीरज = का० कु०, ४३ ।

[सं० पुं०] (सं०) वमल । मोती । जलजीव । शिव ।

नीरद = का०, १५ । का० कु०, ५०, १२३,

[सं० पुं०] (सं०) १२६ । का०, १६४ । वि०, ७१,

१६७, का०, २४ । प्र०, १५ ।

बादल, मेघ ।

[नीरद — बिनाचार' के पराग के अतगल पृष्ठ १६०-

१६१ पर सकलित । दा खडा में परपरा
यत पद्धति पर यत् वनभाषा की कविता
है । जल भरे नवीन धन समीर के रथ
पर आवास मार्ग से भी गरज के माय
भा रहे हैं । य दृषक की हृत्पाते हैं,
मार नाच उठते हैं घरती हरी हो
उठती है । उनम इन्द्रव्यूहो विहार
करने लगती है । बिजली की झलोनी
घटा उसम बिराजती है । क्या होती
है धीर धर धर धर धर का भेद मिट
जाता है ।

इधर बातक स्वाती की आशा लगाए है धीर
अपने ऐसे प्रेमिया का तुम तरमाते भी
ह । तुम्हें पणिकों एवं बिरहियों का
रचक भी विचार नहीं है । तुम्हारे मन
का धर्मर आशय जान नहीं पड़ता ।
जो भी हो, हम तुम्हें हृदय ॥ आशीर्वाद
देते हैं कि इधर भी समय समय पर
आवर मुधा की वर्षा करो ।]

नीरद जाल = का० कु०, ११४।

[स० स्त्री०] (सं०) बादल का समुदाय।

नीरद माला = ऋ०, ६०।

[स० स्त्री०] (मं०) बादल की माला।

नीरद बिंदु = का० कु०, १२४।

[सं० पुं०] (सं०) बादल से टपकनेवाला बूद, घोस
बरा। शबनम।

नीरधर = का० कु०, ११४। का० २१७। वि०,

[सं० पुं०] (सं०) २२।

बादल, मेघ। समुद्र।

नीरधर = श्री० ३१। का० कु० ५६। का०

[वि०] (सं०) ६७, २०, १६८, २१६, २७८।

वि०, ४७, ४६, १६५, १६६। ऋ०,

१७, १८, ३०, ५५, ६६। ल०, ३१,

७८।

नि शब्द, चुप, मौन।

नीरधरा = का०, ६, २६, ३२, ६३, ६७।

[सं० स्त्री०] (मं०) नि शब्दता, चुप्पी, मौनता।

नीरधरा सी = का०, ३, १२०।

[वि०] (हि०) नीरधरा के समान, मौनता, निस्पंदता।

[निरधर प्रम—चित्राधार] में पराग के प्रतगट वृष्ट
१६७-१६६ पर संकलित वृक्षभाषा
का पारंपरिक लंबा रचना। संवत्प्रथम
इंद्र, कला २, किरण ७, माघ १६६७
वि० में प्रकाशित। नीरधर प्रम कमल
कोश में मकरंद के समान अपने सौरभ
में स्वर्ण मस्त रहनेवाला होता है।
कवि निष्ठाजित कल्पना तथा श्रुत्या
की छविप्रतिभा के समान यह है।
सौंदर्य में इतना सतत वास है। प्रादि
प्रादि।]

नीरबिंदु = वि०, २२।

[सं० पुं०] (सं०) जल की बूँटें घाम बरा।

नीरस = का० कु०, ३३। वि०, १५१। प्र०,

[वि०] (सं०) २०।

रमहीन। शुष्क।

नीराजन = वि०, १५६, १६७।

[सं० पुं०] (सं०) प्रारता।

नील = श्री०, ६, ५३, ५४, ६८। का० १२।

[वि०] (सं०) का० कु०, ७३, ५२, ६८। का०,

२६, ३५, ४६, ४७, ५३, ६४, १२२,

१२३, १४३, १५६, १७५, १७६,

१८०, २०६, २५७, २६८। ऋ०, ७१,

५६, ६६। ल० १४, १५, १६, २०,

४७, ७८। वि० २१, २३, ७६, ७९,

८३, १७१, १५७, १६०, १६३।

नीले रंग का। आसमानी रंग का।

राम की सेना का एक वानर। नीला

रंग।

[मं० पुं०]

नीलकमल = का० कु०, ६५।

[सं० पुं०] (मं०) नीले रंग का कमल।

नीलगगन = का० कु०, ६७। का०, ७६, २३४।

[सं० पुं०] (सं०) ऋ०, १६।

नीला आकाश।

नीलगगन मंडल = प्र०, २४।

[सं० पुं०] (सं०) संपूर्ण आकाश।

नीलगगन सा = का० कु०, १५।

[वि०] (हि०) आकाश के नीले रंग के समान।

नीलाभ सदृश।

नीलधन = का० कु० ११५। का०, ४७।

[सं० पुं०] (सं०) नीले या बाले बादल।

नीलनभ = का०, २१६।

[सं० पुं०] (मं०) नील गगन, नीलाकाश।

नीलनलिन = का०, १२। ऋ०, २२।

[सं० पुं०] (सं०) नील कमल।

नीलम = श्री०, २१, २२। का०, १०१। वि०,

[सं० पुं०] (सं०) २३, ६८।

नील रंग की एक मणि।

नीलमधुप = का० कु०, ६६।

[सं० पुं०] (सं०) नीला या बाला मौरा।

नीलमणि = का० कु० २६। ल०, ४३।

[सं० स्त्री०] (सं०) ३० 'नीलम'।

नीलमनि = वि०, १५६।

[सं० स्त्री०] (प्र० भा०) नीलमणि।

नीलमनी = बि०, ६।

[स० स्त्री०] (ब० भा०) नीलवर्णि।

नीलनिशा = ऋ०, ३८।

[स० स्त्री०] (स०) अथकारपूरा रात।

नीललता = का०, १५८।

[म० स्त्री०] (स०) नीली लता या लनाविशेष का नाम।

नीलवसन = बा०, ४०।

[म० पु०] (म०) नावा वस्त्र।

नील द्योम = बा०, १४।

[म० पु०] (म०) नाला आकाश।

नीलावर = बि० २५।

[स० पु०] (म०) नाला आकाश। नीला वस्त्र।

नीलानर मय्य = प्र० १६।

[क्रि० वि०] (स०) नील आकाश के बीच में। नाचे वस्त्रों व बीच में।

नीला = श्री०, ६६। का०, २५१। प्रि०, ६।

[वि०] (म०) एव रंग।

नीलाकाश = म०, ३। ऋ०, ४३।

[म० पु०] (स०) नाले रंग का आकाश।

नीलाम = बि०, १६।

[स० पु०] (हि०) नीला बोलकर माल बेचने का ढग।

नीलिमा = श्री०, ५५। का०, ७। का०, ३०, ६३, १२१। ल०, ११।

[स० स्त्री०] (स०) नात्रापन, श्यामता।

नीली = बा०, ५४, ६८। ल०, ५६।

[वि० स्त्री०] (हि०) १० 'नाला'।

नीले = बा०, १८६ २२१।

[वि०] (हि०) १० 'नाला'।

नीले अचल = बा०, २६।

[स० पु०] (म०) नीले रंग का अचल।

नीलोज्ज्वल = का० कु०, ६७।

[स० पु०] (स०) नाला और ज्वलत।

नीलोत्पल = प्र० २२।

[म० पु०] (स०) नालकमल।

नीव = बा० ५, ७५।

[स० स्त्री०] (हि०) जड़, जिसपर मकान की भित्ति बंधा

हाती है, बुनियाद। किसी काय का आधार।

नीहार = का०, १६६।

[म० पु०] (स०) कुहरा, बाला, हिम।

नुवीली = का०, १६६।

[वि०] (हि०) २० 'नुकील'।

नुकीले = बा०, २००।

[वि०] (हि०) नाकनार।

नूतन = बा० १२७, १२६। बि०, ६४।

[वि०] (म०) नवीन, ताजा।

नूतनता = बा०, ११५, १४०।

[स० स्त्री०] (म०) नवीनता, ताजापन।

नूपुर = का० कु०, १६, ६७। का०, ११।

[म० पु०] (म०) ल०, ४८, ६०।

एक आभूषणविशेष जो पर में पहना जाता है।

नूपुराँ = ल०, ६६।

[म० पु०] (हि०) नूपुर का बहुवचन।

नूपुर सी = का०, १०३।

[वि०] (स०) नूपुर के समान। मधुर शब्द या छवि करनेवाली।

नृत्य = श्री०, ६४। का० कु०, १६। का०,

[स० पु०] (स०) १५, २०, ६६ ८६, १६८, १६०।

२६२, २७३। ऋ०, २८। ल०, ४४।

संगत के ताल और गीत के अनुसार हाथ पाव हिलाने, उछलन कूदने का मुद्रामय व्यापार।

नृत्यमयी = बा० १४०।

[वि०] (स०) नृत्ययुक्ता, क्रीडामयी। नृत्यक्रिया से परिपूर्ण।

नृत्यनिरत = का०, २४२, २५०।

[वि०] (स०) नाच में लान, मग्न।

नृत्यनिकपित = बा०, १८५।

[वि०] (स०) नाच में कापता हुआ। जो नाच नाचने से नाँप उठे।

नृप = बि० ३१ ५२।

[स० पु०] (स०) राजा, नरपति।

नृपचूडामणिवर्य = का० कु०, ६८ ।

[वि०] (सं०) राजाघो में शिरोमणि । चक्रवर्ती राजा ।

नृशस = ल० ७६ ।

[वि०] (सं०) क्रूर निदय । अत्याचारी । अनिष्टकारी ।

नृशसता = ल०, ७७ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) क्रूरता, निर्दयता ।

नेरु = वि०, ८ ६१, ६४, १४७, १४८,

[वि०] (का०) १५७, १५८, १७१, १७२, १७४, १८० ।

अच्छा, शिष्ट, सज्जन ।

नेकहु = वि० ५२, १४७ ।

[अव्य०] (प्र० भा०) तनिक सा, जरा सा ।

नेकहु = वि०, १७५ ।

[अव्य०] (प्र० भा०) तनिक भी ।

नेकी = वि०, १४ ।

[अव्य०] (प्र० भा०) एक भी नहीं ।

नेता = का० २०१ ।

[सं० पुं०] (हिं०) नायक, अगुआ । स्वामी । विष्णु ।

नेत्र = का० कु० १०, १३, ५२ ६८ । का०,

[सं० पुं०] (वि०) २३ २६ । ऋ०, २२ २५ ।

आँख । एक प्रकार का रोगभी वस्त्र ।

माड़ी । जटा ।

नेत्रतारा = का० कु०, ५३ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) आँख की आली पुतली ।

नेत्राभिदूरे यावत् = वि०, १३४ ।

[क्रि०] (सं०) जब तक नेत्र वा अति रंजन करे ।

नेम = वि०, १६५, १७३ ।

[सं० पुं०] (सं०) समय अवधि । गड प्रवार । छत्र ।

सामकाल ।

[सं० पुं०] (हिं०) नियम, धार्मिक क्रियाओं का पालन ।

नेह = वि०, १६, १६५, १७६, १८०,

[सं० पुं०] (हिं०) १६० ।

स्नेह, प्यार । चिन्ता, तन या पा ।

नेहरस = वि०, १५६ ।

[सं० पुं०] (हिं०) प्रेमरस, स्नेहरस ।

नेही = वि०, १८६, १६० ।

[वि०] (प्र० भा०) स्नेह करनेवाला, प्रेमी ।

नेहु = वि०, १५ ।

[सं० पुं०] (प्र० भा०) २० 'नेह' ।

नैतिक = म०, ११ ।

[वि०] (सं०) नाति सबधी, नीतिपुक्त ।

नैन = मा०, १८ । वि०, २, ४, ६, ८, ४६,

[सं० पुं०] ५३ ५६, ६६, १४१, १५२, १७२,

(प्र० भा०) १७४, १७५, १६० ।

२० 'नैन' ।

नैनन = वि० ४७, १७६ ।

[सं० पुं०] (प्र० भा०) 'नैन' का बहुवचन ।

नैया = मा०, ४२ । वि०, १८२ ।

[सं० स्त्री०] (हिं०) नाव, नौका ।

नैसर्गिक = का०, कु०, ६८ । ऋ०, ६७ । प्र०, २,

[वि०] (सं०) २० ।

सहज, स्वाभाविक, प्राकृतिक ।

नौक नौक = का०, ६४, ११७, २३५ ।

[मुहा०] (हिं०) व्यग्य, ताना । कहा सुनी ।

नोखा = वि०, ४६ ।

[वि०] (प्र० भा०) अनोखी । विचित्र, अद्भुत ।

नोचते = मा०, १५ । ऋ०, १८६ ।

[क्रि०] (हिं०) 'नाचना' क्रिया का भूतकालिक रूप, (किसी वस्तु की खींचातानी करके उसके असली रूप का बरबाद कर देना ।)

न्योछावर = प्र०, २५ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) भगलबामना से उत्तारा करके दान करने या भाव, नम, गुरस्नार व रूप में कुछ देना ।

न्हाय = वि०, १८६ ।

[पुं० क्रि०] (प्र० भा०) नहाकर ।

प

पक = का० कु०, ४२ । का०, १८६, २०५,

[सं० पुं०] (सं०) २६० । ऋ०, २२, ६६ । ल०, ७६ ।

बीच, बीच ।

पंकज = ल०, ६, ३२।

[सं० पु०] (सं०) कमल।

पंकिलता = भा०, ७२।

[सं० स्त्री०] (सं०) मलीनपन, गदगी।

पक्ति = का०, ५६, १४२, १७६। ल०, ६८।

[सं० स्त्री०] (सं०) श्रेणी, बतार। पात।

पक्तिर्यौ = ऋ०, ७१।

[सं० स्त्री०] (हिं०) पक्ति का बहुवचन।

परखड़ियाँ = ऋ०, ३६।

[सं० स्त्री०] (हिं०) पुष्प दला। पुष्प के व रंगीन पटल जिनके छितराने पर फूल अपना रूप पाता है।

परयुक्त = ऋ०, ८६।

[वि०] (म०) परवाला। डना वाला।

परा = प्र०, ७।

[सं० पु०] (हिं०) बेना।

पखा मले = वा० कु०, ६८।

[क्रि०] (हिं०) बेना हुआ।

पखुरियाँ = ल०, १७, ३२।

[सं० स्त्री०] (हिं०) १० 'पराडिया'।

पगु = का०, १६८।

[वि०] (सं०) जो परो स न चल सके। लगड़ा।

पगु सा = का०, १४५।

[वि०] (हिं०) लगड़ क समान।

पच = वि०, १७६।

[सं० पु०] (हिं०) समुदाय, समाज, जनता। निष्ठाधिक पांच।

पचतत्त्व = का० कु०, ६।

[सं० पु०] (सं०) पचमूल।

पचन = वि० १४३।

[सं० पु०] (प्र० भा०) ६० 'पच'।

पचनद = ल०, ५१, ५२, ५३, ५४, ५५, ५६।

[सं० पु०] (सं०) पांच नदिया का प्रदेश, पंजाब।

[पचनद—२० 'पीरमिह का शत्रु समपण'। इन बलिता में भीर भूमि के रूप में पचनद का वर्णन प्राया है। मिथु, सतलज,

भेलम, ब्यास और चिनाव इन पांच नदियों का प्रदेश होने से इसे पचनद कहा गया है। अर्थात् पंजाब।]

पचभूत = वा०, १४, १५, १५३, २६७।

[सं० पु०] (सं०) पचतत्त्व। पृथिवी, जल, पावक, गगन, समीर।

पचभूतों = का० कु०, ८६।

[सं० पु०] (हिं०) पचतत्त्वों।

पचम = वि०, ४७। ऋ०, ५७।

[वि०] (सं०) पाँचवाँ। ६० 'पचम स्वर'।

पचम स्वर = का० कु०, ६६। का०, १०१। ऋ०, [सं० पु०] (सं०) सात स्वरा में से पांचवा जो कोकिल के स्वर क समान माना जाता है।

पचमी स्वर सहरी = ऋ०, ६६।

[सं० स्त्री०] (हिं०) पचम स्वर की तरंगें।

पथी = ल०, ३१।

[सं० पु०] (हिं०) राही, बटाटा। किसी मत या संप्रदाय का माननेवाला।

पकड़ = का०, ६२, १००, १७६।

[सं० स्त्री०] (हिं०) ग्रहण। भिडत। सत्य का साक्षात्कार करानेवाले सत्त्वामक बात।

पकड़ना = वा०, ८८, १५८, २१३, २१६, २२७,

[क्रि०] (हिं०) २४१, २८४, २७८। ल०, १०, ७३।

पामना, ग्रहण करना, धारण करना, धरना।

पका = वा० कु०, १०१।

[वि०] (हिं०) तयार। रसभूषण। वृद्ध।

पके = का०, १८०।

[वि०] (हिं०) पका का बहुवचन।

पकान = वि०, ५, १६, १७२।

[सं० पु०] (प्र० भा०) पापाण, परपर, प्रस्तर, जड़।

पग = वा०, १४। वा०, १०३, १०६। वि०,

[सं० पु०] (हिं०) २, १५। ल०, ५०।

पैर, पांव, डग।

पग चापि के = वि०, ७०।

[प्र० भा०] (प्र० भा०) पर दबाकर।

पग पग = वा० कु०, १४।

[मध्य०] (हिं०) डग डग। अत्यंत पग पर।

पगली = श्री०, ८, ५५। का०, १६, ४०।
 [वि०] (हि०) पगल वा स्त्रीलिंग।
 पगली सी = वा०, १०४।
 [वि०] (हि०) मुधि मुधि रोई गी। पगली ने मगान।
 पगि = चि०, १८४।
 [प्र०क्रि०] (प्र०भा०) पगवर, सनवर।
 पगे = वा०, २७०।
 [क्रि०] (हि०) पगना वा भूतकालिक क्रिया।
 पगौगी = चि०, १००।
 [क्रि०] (प्र०भा०) पगना की भविष्यत्कालान् क्रिया।
 पगोडा = का० कु० ६।
 [सं० पु०] (प्रा०) ब्रह्मदेशाय मन्दिर।
 पचीसी = प्र०, ४।
 [सं०ली०] (हि०) एक ढग के पचीस वस्तुओं का समूह।
 पचीसवाँ वर्ष। बीस के घेन का एक प्रकार।
 पछताहि = चि०, १५८।
 [क्रि०] (हि०) पश्चात्ताप करते हैं।
 पट = श्री०, २७, ४५। का० कु०, ५२।
 [म० पु०] (सं०) का०, २८ ३७ ६७, १७० १७६ १८४ २६३। चि० ३८ १५० १६३। ल० ४३, ४६।
 कपडा। ओहार, पदा। समूह।
 पटक रहा = का० ६८।
 [क्रि०] (हि०) पछाड़ रहा है। गिरा रहा है।
 पटल = श्री०, ३८। वा०, १७१ २३३, २५१,
 [म० पु०] (हि०) २५२, २६२। ल०, ७२।
 पर्दा परत, तह। समूह।
 पटली = चि०, १५७।
 [सं०ली०] (हि०) प्र० 'पटल'।
 पटो = का०, १७६, १८६ १८३, २५६।
 [सं० ली०] (सं०) ऋ०, ५६, ६६।
 प्र० 'पट्टिका'।
 पट्टिका = वा०, १४२।
 [सं० ली०] (सं०) पट्टी।
 पड़ना = श्री०, ६८। वा०, १०, ४८, ८८, ६६।

[क्रि०] (हि०) ऊँचे से नाच घाना, पतित होना, बग़ड या दुख म घाना।
 पड़थो = चि०, ११। वा०, १४८।
 [क्रि०] (प्र०भा०) पडा।
 पढकर = वा०, ३२।
 [प्र०क्रि०] (हि०) अध्ययन कर।
 पढना = वा०, ६७।
 [क्रि०] (हि०) गोखना। पाठ करना।
 पढव = चि०, १६ ६८ १०८।
 [क्रि०] (प्र०भा०) प्र० 'पढना'।
 पढि = चि०, १७१।
 [प्र०क्रि०] (प्र०भा०) पढर।
 पडो हुई = वा० ३६।
 [क्रि०] (हि०) जो पड सी गई हो।
 पढ्यो = चि० ५३।
 [क्रि०] (प्र०भा०) पढ गया।
 पण = ल० ५३।
 [सं० पु०] (सं०) पासा खेलना। कोई खेल जा दौब लगा कर खेला जाम। छूत। प्रण। प्रतिभा।
 पण्यवीथिका = प्र०, ७।
 [नं० ली०] (नं०) बाजार म बनी हुई गला। बाजार में जानेवाली गली। वह गली जिसमें हाट लगती हो। हाट। बाजार।
 पतग = श्री० ४४। वा० कु० ७२। वा०
 [सं० पु०] (सं०) १५७ १६४। चि० १६। ऋ० ६३।
 ल० ४६, ५०।
 चिटिया भुनगा, पतिया। गेंद। शरीर। सूप। नौका।
 पतम्भ = श्री० १६ ६१। वा० ३३ ५० २२३
 [नं० ली०] (हि०) ऋ०, २७ ६१ प्र० १७ म० १,
 ल० ३७ ४०।
 पतो वा भर जाना। वह ऋतु जिसमें पत्ते भर जात हैं।

[पतम्भ समीर]—मवप्रथम भागुरी वष ४ तह २, मर्या ४ मन् १६२६ मे प्रकाशित अज्ञातशत्रु मे पतम्भ समार चापन हटा दिया गया। देखिए चल वसत वाला अचल सी']

पतम्भ से = का०, १६४।

[वि०] (सं०) पत्ते भरने के समान। पतम्भ ऋतु के समान।

पतम्भर = का०, २६५, जि०, १७१।

[सं० स्त्री०] (हिं०) द० पतम्भ'।

पतन = का०, ५८।

[सं० पुं०] (सं०) नीचे गिरना। नाश या अस्त होना। पाप।

पतनमय = का०, २३५।

[वि०] (सं०) नाशवान्। गिरने का और बड़ा हुआ।

पतनोमुख = का० कु०, २८।

[वि०] (सं०) जिमका धीरे धीरे नाश हो रहा हो। पतन की ओर बढ़ता हुआ।

पतली = का० कु०, ३६। का०, ११८।

[वि०] (हिं०) द० 'पतल'।

पतले = का०, १६६, २७२।

[वि०] (हिं०) क्षीण। वारण। दुबना। ह्वा।

पतवार = का०, १६, ५७। जि०, १८२। ल०,

[सं० पुं०] (हिं०) ५७।

कण। नाव के पिछले भाग में लगी हुई एक तिखी लकड़ी जिसमें नौका इधर उधर घुमाई जाती है। पतवार।

पता = का० कु०, २५४। का०, १२ १६।

[सं० पुं०] (हिं०) जि०, ५०। ल०, ६६।

ठिकाना। पत्ता।

पति = का० ३० का० कु०, ६१ १०६ का०,

[सं० पुं०] (सं०) २८४, जि०, ६७, ६८, प्रे०, २०।

स्वामी। मालिक। दूल्हा। मयाग। प्रतिष्ठा।

पतित = का० कु० ६४। जि०, १२ १०१

[वि०] (सं०) १७९।

गिरा हुआ। नाश। पाप।

पतितन = जि० १८५।

(सं० भा०) पतित का बहुवचन।

[पतितपावन—गवश्रम 'हृद', कला ५, गड १,

जनवरी १९१४ में प्रकाशित और 'कानन कुमुद' में १४ ६४-६५ पर संक

लित। जमना या कमला चाह जसा पतित हो सबका पिता एक ही ईश्वर है, और यदि उसकी गोद में परवात्ताप के आगू बहाकर उनके चरण कमल में शरणागत हो तो कसा ही पतित नवो न हो वह पवित्र हा जाता है। जो स्वयं से अशुत हो ससार के गर्त में आया उसका उसमें बड़ा पतन और क्या हो सकता है। ऐसे पतितों का बचान के लिये ही ईश्वर दीडा आता है। सममुच जा पतित है वही उम चाहता है क्योंकि वह आता होकर ईश्वर को प्रेम से स्मरण करता है। जो पतित नहीं है वह ईश्वर के प्रेमसागर की सहरो में पवित्र नहीं हा सक्ता और न उमे उसके पद की धून ही लग सकती है। ईश्वर जावो का जीव और पतित पावन है। वह इतना दयालु है कि पतित हान हा शरणागत का पवित्र बना देता है।]

पतिसुर = जि०, ५८।

[सं० पुं०] (हिं०) म्वाभा हा मुख।

पतियों = जि० १५१।

[सं० स्त्री०] (सं० भा०) पतिप्रा। बिट्टिया। बिट्टी।

पत्तन = ल०, ३२।

[सं० पुं०] (सं०) नगर।

पत्ता = प्र०, ४, २२। म०, १, २।

[सं० पुं०] (हिं०) बुझा म हरे रंग का वह अवयव जा उभय सन से निजलता है। पत्ता।

पत्तियों = का० कु०, २८। ल०, ११।

[सं० स्त्री०] (हिं०) छाट पत्त।

पत्ते = का० कु० २। म०, ११। म०, १५।

[सं० पुं०] (हिं०) द० 'पत्ता'।

पत्थर = का० कु० ६, ११०। का०, ३।

[सं० पुं०] (हिं०) प्र०, १६।

पृथ्वा का ठाम म्बर जा 'तून या वालू क जमन से बना हा। सिता २५६।

पत्नी = चि०, ७४। प्रे०, १६, २०।
[सं० स्त्री०] (सं०) भार्या। दारा। बधू। सहधर्मिणी।

पत्र = का०, कु०, ३६, ७६ १२४। वा०, १६०,
[सं० पुं०] (सं०) २१२, २८०। चि०, ६८। ऋ०, ३३,
४४। प्रे०, १। म०, २।

पत्र, सिरा हुआ पागज। चिटछी, रात।

पय = श्री०, ३२ ३८, ४१ ४२, ६६ ७२,
[सं० पुं०] (सं०) ७६। व०, ३१ ३२। वा०, १६ ७४
७६; ११२ ११४, ११७, ११८ १२३,
१४४, १५८, १५९, १६० १६५,
१६७ १८१, १८२, २१०, २४१,
२६७ २७७, २८२। ऋ० ७३। प्रे०,
४ ५, २३। ल०, २६ ३१, ४५
५३। चि०, १५७।

गस्ता। माग। रीति।

(हि०) रोगी के लिये हलरा आहार, पत्थ्य।

पथ पथ = वा० १६०, प्र०, २३।

[श०] (सं०) प्रत्येक रास्ता।

पथिक = व०, १५। वा०, कु०, १२, १४,
[सं० पुं०] (सं०) २५ ५१। का०, ८१, १६७, १७८,
२५७, २५८। ल०, ११, ३३। व०,
१५ १४६, १५८ १६४ १७४। ऋ०,
२४। प्र०, ५, ६, १८, १४, १६।
म०, ५।

राही। बटोहा। माग चलनेवाला।

पथिकन सौ = चि०, ७२।

[सं० पुं०] (श० भा०) बटोहिया को, मुमाफिरो को।

पद = का०, ८६ १८५, १९८। चि०,
[सं० पुं०] (सं०) १५५। प्रे० २३। म०, १७। ल०, ५।
दज। मोहदा। श्रेणी। पदवी। पाव।
चरण।

पदकमल = चि०, १७५।

[सं० पुं०] (सं०) कमल व समान गुत्तर चरण।

पदचिह्न = श्री०, ४१। वा०, कु०, ७३। वा०,
[सं० पुं०] (सं०) ५६। ल० ६।

चरण वा छाप। पर का निशान।

पदतल = का०, ६, ५७, २६०, २६७। ल०,

[सं० पुं०] (सं०) ४३।

पैर का तलवा।

पददलित = वा०, २००। चि०, १०५।

[वि०] (सं०) परा स रीटा हुआ। दमया हुआ।
सताया हुआ।

[पददलित किया है—यग के गनियो का जन
मंत्र का नामयज्ञ में गाता। 'प्रसा'
मंगीत' म पृष्ठ ७१ पर सज्जित।
समस्त बमुधरा की पददलित करने
वाला घोर भयन शीघ्र से विजय की
बौनानेवाला यज्ञ का यह विजया
बाढा भाग चल रहा है घोर हम सब
उसके रक्षक हैं जिन्हें देवदत्त शत्रु
पलायित हो जाते हैं। आकाश तक
पहरानेवाला यह भ्रमण पताका भलय
पवन के साथ विजय के गीत गाता है—
भार्य भूमि का जय आय जाती की
जय जननेजय विजयी हो जिसे दबकर
शत्रु भयभीत हो उठते हैं।]

पददलिता = वा०, ६३। प्रे०, ४७।

[वि० स्त्री०] (हि०) सताई हुई। परो स रादी हुई।

पद पद = का०, १६३।

[श०] (सं०) ३० 'पथ पथ'।

पदपद्म = ल०, २६।

[सं० पुं०] (सं०) कमल के समान चरण। कमलरूपा
चरण।

पदाम्र = वा०, २८०।

[सं०] चरण का म्रगला भाग।

पदार्थ = प्र०, १६।

[सं० पुं०] (सं०) वह द्रव्यवस्तु या पद का अर्थ। वह
जिसका कोई 'भावार्थ' या रूप हो।
वस्तु चाज। पुराण के अनुसार—
धर्म, अर्थ, काम मोर मोक्ष।

पद्म—ल०, २६। व०, १६८।

[सं० पुं०] (सं०) कमल। कमल पुत्र।

पद्मपलाश = वा० १६८।

[सं० पुं०] (सं०) कमल के पत्ते की तरह।

पञ्चराग उद्गम = ल०, ७६ ।

[सं० पु०] (मं०) पराग या पुष्पराज नामक रत्न के निकलने का स्थान ।

पद्मा = वि०, १३२ ।

[सं० मी०] (मं०) लक्ष्मी ।

पद्मिनी = ल० ११ ।

[सं० मी०] (सं०) कमलिनी । लक्ष्मा । रतिशास्त्र के अनुसार चार प्रकार की स्त्रियों में से एक जिसके शरीर से कमल की सुगंध निकलती है ।

पद्मजनि = का०, १४४, ल०, ३३ ।

[सं० मी०] (सं०) पर का आवाज । चलने से जो ध्वनि उत्पन्न होती है ।

पद्मपराग = ल०, ३३ ।

[सं० पु०] (सं०) चरण धूलि । पर की धूल ।

पद्मशब्द = म०, २१, ८२ ।

[सं० १] (सं०) द० पद्मजनि ।

पद्मारे = प्र० ६ ।

[क्रि०] (हिं) धाल । धृपावर उपस्थित हुए ।

पद्मघट = ल०, १५ ।

[सं० पु०] (हिं०) वह घाट जहाँ लोग पानी भरते हैं ।

पद्मग = वि०, ६४, ७२ ।

[सं० पु०] (सं०) मय । पद्मा । मकरद ।

पद्मीहा = का०, १८० । वि०, १, ३६ । म०,

[सं० पु०] (हिं०) २४, ४६ ।

चातक । कर्पा और वसत में सीठ स्वर में बालनेवाला एक पक्षी ।

[पद्मीहा पुकार सा=का० कु०, १२६ । ल०, २७ ।

[वि०] (हिं०) पद्माहा की पुकार 'पी कहीं' 'पी कहीं' के समान ।

पद्म = वि०, ६ । ल०, ६८, ७० ।

[सं० पु०] (सं०) पानी । दूध । रत्न ।

पद्मानो = वि०, ४७ ।

[सं० पु०] (प्र० भा०) गमन, यात्रा, खानपान ।

पद्मोपर = का० कु०, ३८ । का०, ४४ १४२ ।

[सं० पु०] (सं०) स्वयं, बादल, भाग्यमाया, नारियल, पर्वत, पहाड़, भदार, भाव, भवेष्ट,

तालाव, तडाग, दुग्ध वृक्ष । 'दोहा' छंद का ग्यारहवां भेद । समुद्र । एक प्रकार की ईंख । छप्पय छंद का सत्ताइसवाँ भेद, गाय का स्तन ।

पयोधि = का० कु०, १०७ । म०, ६२ ।

[सं० पु०] (सं०) समुद्र । जलवि ।

पयोनिधि = वि०, १६ ।

[सं० पु०] (सं०) समुद्र ।

पर = मी०, ८, १४, २०, ३५, ३८, ४०,

४५, ४६, ५१, ५५, ७२ । क० ८,

६, १०, १२, १८, २५ । का० कु०,

५, ७, १० १२, १३, १४ । का०,

११४, ११६, १२३, १२६, १२८,

१३३, १३६, १४१, १४४, १४६,

१४८, १५०, १५२, १५८, १६३,

१६४, १६५ १६६, १७५, १७६,

१८०, १८६, १८३, १८८, २०२,

२५७, २५८, २५९, २६३, २६६,

२७०, २७२ । वि०, ४६ । ५६, ५७,

६०, ६३, ६५, ६६, ७४, ११०

१४३, १६३ १६६, १७४, १८५ ।

प्र०, १०, १२ १४, १५, १६, १७,

१८, २० २२ २५ ।

दूसरा, शय, गैर, परलोच, परामा, जा अपना न हो, दूसरे का । प्रतिरिक्त, भिन्न, जुगा, भलाका । पीछे का, बाद का । जो पर हा दूर । धलप । जा सीमा के बाहर हा । तटस्थ । अधि करण का एक चिह्न । पक्ष, पौर ।

परम = ल० ५७ ।

[सं० मी०] (हिं०) मुण दास की ठीक ठीक जाँच । परोक्षा, पहचान ।

परमते = ल०, ७७ ।

[क्रि०] (हिं०) पहचानत ।

परमा = का० १६१ ।

[वि०] (हिं०) पट्टवाना ।

परचारो = वि०, ७४ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) प्रचार करा ।

परछाई = घां०, ३३। ल०, ४३। का०, २६२।
[सं० स्त्री०] (हि०) स्त्री० १६।

प्रकाश के सामान आन स पीछे की ओर अथवा पीछे का ओर प्रकाश होने से छागे की ओर पड़ी हुई किसी वस्तु का छाया। प्रतिबिम्ब।

परछाई स्त्री = ल० ६।
[वि० स्त्री०] (हि०) परछाई के समान।

परत = वि० १५८ १७६।
[सं० स्त्री०] (हि०) सतह। पत्ती हुई वस्तु। माटाई। तह कण्डे व लपटने या माड़ने पर हुए भाग म प नंबाला मोट।

[क्रि०] (प्र० भा०) पटना है, पठनी है।

परतन = का० १६३।
[वि०] (सं०) पराश्रित दूसरे के सहारे रहनेवाला। पराधान परवण।

परताप = वि० ५७।
[सं० पुं०] (हि०) पीप, मदानया। वारता गति। घातक। मदार का वृक्ष। रामचंद्र के मत्ता का नाम। ताप, गर्मी। युवराज का छत्र।

परता = घां०, ३३। का० कु० ६० १२२,
[सं० पुं०] (का०) १२४। का० ५३ ६६ ६७। प्र०, १६।

छाट करने के निय सत्यवादी हृषा नपटा चित्र। व्ययमान रोक भा, छात्रन शिक्षण। छाट में रखने का नियम। तन नट। परता। वह क्लिप्ता या कमटा जा छाट या व्यययान के न नि है। पतवार।

परदेसी = का० २०६।
[वि०] (सं०) अंगरेज वि० 'परदेसी' अंगरेज देश में भिन्न देश का।

परदेसी = का० १७८। स्त्री० ८१।
[वि०] (सं०) अंगरेज परदेशी।

परनु = का० १०४।
[सं०] (सं०) मरिचक चिन्ता का वस्तु का अंगरेज चिन्ता का नाम। चिन्ता।

परन = वि० १५८।
[सं० पुं०] (हि०) प्रतिज्ञा, टेक, पत्ता।

परनारी = वि०, ४६।
[सं० स्त्री०] (सं०) परायी स्त्री, दूसरे का स्त्री।

परपरा = का०, ७५।
[सं० स्त्री०] (सं०) चाल बहानुक्रमत्व। प्रमा।

परपरागत = का०, ११५।
[वि०] (सं०) परपरा से प्राप्त या भाया हुआ।

परपीर = वि०, ५७।
[सं० स्त्री०] (हि०) दूसरे का दुख। पराई पीडा।

परम = का० कु०, २१ २२। का० २०, २६
[वि०] (सं०) १२१ १७१। वि० ५७ ७३, १४६, १७३ १८६। स्त्री०, ६३। प्र०, २१, २२। म०, १२।
जिससे अधिक या आगे और कोई न हो। सर्वोच्च शक्ति उदाहरण, सर्वश्रेष्ठ। मुख्य, प्रधान। आद्य, आदिम।

परम गुरु = का०, १२।
[सं० पुं०] (सं०) सर्वत्र गुरु। सर्वश्रेष्ठ। सर्वोत्तम ज्ञाना, ईश्वर।

परम धार्मिक = वि० ६०।
[वि०] (सं०) सर्वश्रेष्ठ धार्मिक अर्थत प्रमवृद्धि का।

परम पिता = म० १८।
[सं० पुं०] (सं०) ईश्वर।

परमा = वि०, ५४।
[वि०] (सं०) अत्यधिक, अत्युत्तम।

परमाणु = का० कु०, २६, का० ४८, ७२
[सं० पुं०] (सं०) १२५, २००, ३५२, स्त्री०, २८। ल० ३३।

पृष्ठा, जल तल और वायु इन चार भूतों का बट छटे में छाया भाग पुन जिससे विभाग नहीं है। मरुत। अर्थात् सूक्ष्म अणु। जिगा तल का बट सूक्ष्म भाग जिसका विभाग न है। मरुत।

परमाणु पुत्र = का० १५७।
[सं० पुं०] (सं०) परमाणु का मरुत। पतझून पर मारु।

परमात्मा = का० कु० ६ १२० ।

[सं पु०] (सं) ईश्वर ।

परमात्मा प्रभुता = का० कु०, ६४ ।

[सं श्री०] (सं) ईश्वर की गता, ईश्वर की महता ।

परमानन्द = मं०, २८ ।

[सं पु०] (सं) सर्वोत्कृष्ट आनन्द ।

परमानन्दमय = का० कु०, १२५ ।

[वि०] (सं) परमानन्द से पूर्ण ।

परमार्थ = वि०, १६५ ।

[सं पु०] (हिं०) सर्वोत्कृष्ट सत्य । आत्मज्ञान । जीव श्रीर
महा मन्त्रा नान । काई भी उत्तम
आवश्यक वस्तु । परमाथ ।

परमेश्वर = वि० १५३ ।

[सं पु०] (सं) सर्वोत्कृष्ट गता भगवान् ।

परमोन्नत = का० कु०, १२५ ।

[वि०] (सं) अति स्वच्छ अति मुदर, महान् ।

परलोक् = भा०, ५७ । का०, १५४, १६० ।

[सं पु०] (सं) दूसरा लोक । शरीर छोड़ने के बाद
मिलनेवाला लोक, मरणोपरांत आत्मा
का दूसरी स्थिति की प्राप्ति वा स्थान ।

परवशता = का०, ६६ १५४ । क०, १६० भा०,

[सं श्री०] (सं) ५७ ।

परतन्त्रता, पराधीनता, परबुद्धि ।

परबोह = वि०, १७१ । प्र०, २ ।

[सं श्री०] (का०) चित्त, व्यग्रता लटका, आशका ।
प्यान । आसरा, भरीमा ।

[सं श्री०] (हिं०) बहाना धारा में छोड़ना ।

परस = भा० ३६ । का० ३६ । वि०, ४

[प्र० क्रि०] (हिं०) १८१ ।

स्पर्शर, छूकर ।

परस्पर = का० १६४ । वि० ६२ ७३, ७५ ।

[क्रि० वि०] (सं) प्र०, ८ ।

एक साथ, आपस में ।

परस्त = वि०, ११ ६८ ।

[प्रि०] (हिं०) स्पर्श करत ह । छूत ह ।

परसि = वि०, ४, ५, ११, ६८, १७५ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) स्पर्श कर, छूत ।

परसित = वि०, ६२ ।

[वि०] (प्र० भा०) स्पर्श किया, छुपा हुआ ।

परा = का० कु०, ६४ ।

[सं श्री०] (सं) चार प्रकार की वाणियों में नाद-
स्वरूप बाणों । परमार्थबोध की विद्या ।
ब्रह्म विद्या ।

पराई = का०, २८६ ।

[वि०] (हिं०) दूसरे की, अन्य का । दूसरी ।

पराग = का० कु०, ३४, १०४ । का०, ११,

[सं पु०] (सं) २३, ४८, १६८ १७६, १७७, १८२,
२६२, १६१ । वि०, २, ५, ६, १७६,
१५४ १५६ । मं०, ७६ । म०, ३ ।

फूलों के खड़े कमरा पर जमा हुई धूल
या रज । पुष्परज, नहाने के पहले
शरीर में मलनेवाला धूल । चदन ।
अगराथ ।

[पराग—चित्राधार का एक खंड जिसमें निम्ना
कित रचनाएँ हैं—१ मष्टवृत्ति (पृ०
(१४१ १४२), २ कल्पना मुख
(पृ० १४३-१४४), ३ मानस (पृ०
१४५), ४ शारदीय शोभा—प्रभात
(पृष्ठ १४६), रजनी (पृ० १४७),
चंद्र (पृ० १४८), ५ रमाल मजरी
(पृ० १४९ १५०), ६ रमाल (पृ०
१५१), ७ वषा म नदी कून (पृ०
१५२), ८ उद्यान लता (पृ० १५३)
९ प्रभात कुमुद (पृ० १५४) १०
विनय (पृ० १५५), ११ शारदीय
महापूजन (पृ० १५६) १२ विमा
(पृ० १५७) १३ विदाई (वपृ०
१५८-१५९) १४ नीरद (पृ० १६०-
१६१), १५ शरद पूर्णिमा (पृ०
१६२), १६ मध्या तारा (पृ० १६३),
१७ चंद्राय (पृ० १६४) १८
इंद्रधनुष (पृ० १६५), १९ भारतेन्दु
प्रवास (पृ० १६६) २० नीरव प्रेम
(पृष्ठ १६७ १६८) २१ विस्मृत
प्रेम (पृ० १७० १७१) २२ विमज्ज

(पृ० १७२)। इनका परिचय इनके शीपको में दलों। ये प्रायः इंदु में प्रकाशित हैं। पहले सस्वरण में इसमें चार रचनाएँ और भी जिसमें प्राण प्यारे और प्रियतम बानन कुमुम में परिचित परिवर्तन के साथ हैं और भ्रमर तथा भूल चित्राधार के 'मकरद बिंदु' में ही हैं।]

परागमय = का० कु० ३७।

[वि०] (सं०) पराग से युक्त जिनमें पराग हो। पराग से भरा हुआ। 'पराग'।

पराग सी = का०, ३६।

[वि०] (हि०) पराग के समान। सुगन्धित मृम द्रव वत्। भस्तिगम्य सौंदर्य एवं सुकुमारता का बोधक।

परागहि = वि०, ११।

[सं० पु०] (प्र० भा०) पराग को।

पराश्रय = का०, २६। वि०, ६७। ल०, ७७।

[सं० पु०] (सं०) हार, पराश्रय मनु का मात खाना। हार जाने की क्रिया का भाव।

पराजित = का० ७ ३३। वि०, ५। ल० ५२,

[वि०] (सं०) ७४।

परास्त, हाग हुआ।

पराधीनता = ल० ७४।

[सं० गी०] (हि०) परबलता परतन्त्रता परमुखापत्तिता।

पराया = का० २८७।

[वि०] (हि०) दूसरा, अन्य का, जो अपना न हो। दूसरा, गर।

पराये = का० २०६।

[सं० पु०] (हि०) दूसरे, अन्य।

पराशक्ति = वि०, ७२।

[सं० गी०] (सं०) भक्तिक शक्ति परा विद्या व द्वारा प्राप्त शक्ति अज्ञात शक्ति।

परि = वि०, १७३।

[सं०] (सं०) एक सस्वरण उत्तम जो मन्त्र का परत सस्वर उत्तम निम्न ध्वनि बढ़ाना है—चारों ओर ध्वनि उत्पन्न ध्वनिगम्य मृगता दूतग।

परिकर = का०, १७१।

[सं० पु०] (सं०) पथक पत्तन। परिवार। समूह, मुह। अनुचर वर्ग। कमर बंद, पटका।

परिकर सा = का०, १२४।

[वि० पु०] (हि०) परिकर के समान। 'परिकर'।

परिचय = का०, १८, ६२, ६७। का० कु०,

[सं० पु०] (सं०) ६८। का०, २७। भ०, ११।

जानकारी, अभिज्ञता। पहचान। लक्षण। किसी व्यक्ति के नाम धाम गुण बर्ण आदि से सबंध रखनेवाली सब या कुछ बातें जो किसी को बतलाई जाय। जान पहचान।

[परिचय — भरता] के भार में ही गई चार छंटा म यह कविता है। क्या का प्राची में आभास, उसी समय जलज का जलाशय में विवास। इनका क्या परिचय, क्या सबंध था जो गगन मंडल में ग्रहणमा के रूप में विलसित हुआ। रात्रि में औरें बहती रहे ? जब सरोवर के मध्य कमल खिता। उनका क्या परिचय और संबंध रहा पर उह मकरद मधुर मधुमय और मोहन लगा। मानस गर व बाध प्रकृत कमल का साज करने मलय गिरि में मनिला राज चलता है। उनका क्या परिचय और क्या संबंध है जगति एक ही पश्मिल निधम मिलता है ? वास्तव में रागद्विज मकर एव परिमल के आनंद मितन में जो परिचय और गर्व है वही प्रेम बंधन हमारे और सुन्दार परिचय और संबंध है। 'भरता']

परिवारक = सं० १८।

[वि०] (सं०) परिवर्षा करनेवाला।

परिपालित = का०, २६८।

[वि०] (सं०) चनामा हुआ हिताया हुआ।

परिचित = का० २८। का० कु० ७७। का०,

[वि०] (सं०) ८१। भ०, ७०। प्र० ८, १०, १३, १४। म०, १८।

जाना हुआ, ज्ञात। जिसका या जिससे
परिचय हो, जिससे जान पहचान हो।

परिचित सा = का०, ३५।

[वि०] (हि०) पहचाना हुआ सा।

परिचित से = मा०, १६।

[वि०] (हि०) पहचाने हुए से।

परिणत = का०, २४५।

[वि०] (स०) रूपांतरित, एक रूप से दूसरे रूप में
भाया हुआ। पचा या पचा हुआ।

परिणति = मा०, ४६, ६२। का०, १६३। वि०,

[स० ली०] (स०) ५४।

रूप में परिवर्तन हुआ, परिपाक, प्रौढ़ता
पुष्टि, समाप्ति, मृत।

परिणाम = का०, ४३, ५४, ७५, ९३। ऋ०, ७६।

[स० पु०] (स०) स०, ४४।

बदलने का भाव या काय, विकार,
रूपांतर। विकास, वृद्धि। परिपुष्टि।
समाप्त होना, बीतना। किंसा काय व
मृत से उसके फलस्वरूप होनावाला
काय, नतीजा, फल।

परिणाम स्थिति = प्र०, २३।

[म० ली०] (स०) फलप्राप्ति की अवस्था।

परिवृत = वि०, २५।

[वि०] (स०) हर प्रकार से समुदृत। जिसका अत्यधिक
संतोष प्राप्त हो चुका हो।

परितोषित = प्र०, २२।

[वि०] (स०) दुःखी सतत, जलता हुआ।

परितोष = ऋ० ६४।

[स० पु०] (स०) संतोष, जिसके बाद सामयिक शांति
का अनुभव हो। तुष्टि।

परितोषों = का०, १७१।

[स० पु०] (हि०) 'परितोष' का बहुवचन। ऋ० 'परितोष'

परिधान = का०, ४६।

[स० पु०] (स०) वस्त्र, पोशाक पहनावा, पहनने का वस्त्र।

परिधि = का०, ८६ ६७।

[स० ली०] (स०) वृत्त के घेरनेवाली रेखा। नियत धर्मवा
नियमित और प्रायः गालाकार वह
भाग जिसपर कोई बाज चलता धूमता

या चक्कर लगाती है। परिधान।
सोमा।

परिणाम = वि० १८३।

[स० पु०] (ब्र० भा०) देखें 'परिणाम'।

परिणीता = म०, ११।

[वि०] (ब्र० भा०) परिणीता, विवाहिता।

परिपाटी = का०, २६४।

[स० ली०] (स०) क्रम। सिपमिता। चनी घाई हुई
प्रसाली। पड़ति। शली। राति। प्रथा।

परिपालक = का० ३१।

[स० पु०] (स०) हर प्रकार से पालन करनेवाला।

परिपूर = वि० २, २३।

[वि०] (ब्र० भा०) परिपूरित, प्रच्छिन्नी तरह से भरा हुआ।
पूर्ण तुल। समाप्त किया हुआ।

परिपूरित = वि०, १८०।

[वि०] (ब्र० भा०) ३० 'परिपूर'।

परिपूर्य = का० कु०, ५।

[वि०] (स०) २० 'परिपूर'। पूरा या समाप्त किया
हुआ।

परिभाषा = का०, १६०, १८५।

[म० ली०] (स०) किसी शब्द या पद का अर्थ या भाव
प्रकट करनेवाला स्पष्ट बयान।
व्याख्या। वह शब्द जो किसी शास्त्र
या विज्ञान में किसी एक कार्य या भाव
का सूचक मान लिया गया हो। जैसे,
शोध विज्ञान की परिभाषा (डेफिनिशन
टर्म)। किसी शब्द की वह व्याख्या या
स्पष्टीकरण, जिससे उसकी विवेकता
और व्याप्ति पूरी तरह से निश्चित या
स्पष्ट हो जाय।

परिमल = का०, १५, का० पु०, १७, ५७, ६६,

[स० पु०] (स०) ८३। का०, १६८, २६१, २६२,
२६४। वि०, ५। ऋ० ११, २८,
३६, ४५, ५५, ५६, १५८, १७३।

मुगम, सुगंध।

परिमल घूँघट = ल०, २५।

[स० ली०] (हि०) परिमल रूपा घूँघट। परिमल से प्राप्त
रित। मुगधित।

परिमल परिपूरित = चि०, १७५।

[वि०] (स०) मुगधित। सुवासित। परिमल से पूरण।

परिमलपूर = चि०, ५६, ६६।

[वि०] (ब० भा०) मुगधित, सुवासित। परिमल से पूरण।

परिमल परित = ऋ०, ५।

[वि०] (ब० भा०) > 'परिमलपूर'।

परिमलमयमन्यो = चि०, १३२।

[वि०] (स०) सुवासितो मे श्रेष्ठ।

परिमल मिलित = क०, २५।

[वि०] (स०) मुगधित से सना हुआ।

परिमलनाही = प्रे०, ६।

[वि०] (स०) मुगधिताहक (बायु) (भ्रमर)।

परिमल सा = क०, ८।

[वि०] (हि०) परिमल के समान।

परिमित = का०, २७०। ऋ०, ४१। प्रे०, १६,

[वि०] (स०) २५।

सीमित।

परिमितता = ल०, ३३।

[सं०] (स०) सीमितता। सीमित होने का भाव।

परिमिलित = का० कु० ५५।

[वि०] (स०) विनेपनया मिली हुई। हर प्रकार से ममिलित।

परिरभ = घा० २७।

[सं०] (स०) घालिगन, गले या छाती से लगाकर मिलना।

परिवर्तन = क०, २८। का०, २५ ५५ १२६

[सं०] (स०) १५६, १६६ १७७ १६०, २४६ २५३, २७२ २६१। वि०, ७५।

ऋ०, ५५। प्रे०, २२ म०, १७।

ल०, ४६, ७५।

जिमा बाज अथवा युग का समान या सम। शुभाव चक्र। कुछ बड़ा बड़ा कर रूप बनना। उन्नत, पर बाज व बन्धन म रगरी बाज सना या दना। निमय तबाना।

परिवर्तनमय = का० २३६।

[वि०] (स०) निरंतर परिवर्तनमान।

परिवर्तनशीलता = का० १३।

[सं०] (हि०) बदलने का भाव।

परिवर्तित = का०, १६१।

[वि०] (स०) बदला हुआ।

परिवर्धमान = चि०, १३२।

[वि०] (हि०) बढ़ा हुआ। बढ़ता हुआ, उन्नतिशील, उन्नतोमुखी।

परिवर्द्धित = प्रे०, १।

[वि०] (स०) > 'परिवर्धमान'।

परिवार = का० कु० ११५। का०, २१६।

[सं०] (स०) कुटुंब। आवरण। म्यान। शीप। जिसा राजा या रईस के साथ उसे घेरकर चलनेवाले लोग, पारिवर्त। घर के लोग, वंश, खानदान, बाल बच्चे। एक ही तरह की वस्तुओं का वंश। कुल। जाति।

परिवारी = ल०, ७८।

[वि०] (स०) परिवारवाला।

परिवेष्टित = चि०, १४५।

[वि०] (स०) घिरा हुआ। गुरुभित।

परिश्रम = का० कु० १३। का०, ६३, १८२।

[सं०] (स०) ऋ० २६। प्रे० ७।

तेमा काम जिस करते करते बनावट आन लय। श्रम। महन। घराबट।

परिषद् = ल०, १२।

[सं०] (हि०) विद्वान् ब्राह्मणों व मध्याय मभाओं जिस प्राचीन काज म राजा जिमा विलय वर व्यख्या दन व नियं मुताता था। मभा समान। जुने हुए या निपुण विद्वान् सम्मति का समारोह।

परिस्थितियों = का० २८६।

[सं०] (हि०) जिमा घटना काय घाति व घागाम या चारा घार का सामानिक या तर्क मगत स्थिति या अवस्था। व बाते या अवस्थाए जा जिमा व्यक्ति या घटना व चारा घार हारी या रणा हैं।

परिहास = का० ६८ ऋ०, ३३।

[सं०] (स०) हँसना, निन्दना। ईया, हाँ, निन्दा। उपहास, व्यंग्य।

परिहासपूर्ण = का०, २८३।

[वि०] (स०) परिहास से भरा हुआ। व्यंग्यपूर्ण।

परिहास भरी = का०, ६६।

[वि०] (हि०) २० 'परिहासपूर्ण'।

परिहासशील = ल०, ६८।

[वि०] (स०) परिहास करने के स्वभाववाला।

परिचाल = का०, १८५, १८६।

[म० पु०] (स०) रक्षा।

परीक्षक = प्रे०, २१।

[स० पु०] (स०) परखनेवाला। परीक्षा लेनेवाला।

परीक्षा = क०, ५३।

[म० पु०] (स०) इम्तहान। योग्यता, विवेचना। सामर्थ्य। गुण आदि जानने के लिए अच्छी तरह से देखने या परखने का क्रिया का भाव। समीक्षा। वह प्रयोग जो किसी वस्तु के गुण दोष आदि का अनुभव करने के लिये हो, आजमाइश। वह प्रक्रिया जिसमें प्राचीन मायालय किमी अभियुक्त अथवा लाठी के सच्चे या झूठे होने का पता लगाते थे। जाँच पड़ताल, दखलाल।

परे = का० कु०, ६४। का०, ११७, २१६।

[म०] (स०) वि० १५, ६५, १५३, १५६, १८४। भ्रम। उम भ्रम, ऊपर दूर। ऊपर। आगे, बाद।

परै = वि०, १६, २२, २३, २४।

[क्रि०] (प्र० भा०) पड़े, गिरे।

पर्जन्य = का० कु०, ११२।

[म० पु०] (म०) बादल, मेघ।

पर्ण = प्रे०, १०।

[स० पु०] (म०) पत्ता, पत्त।

पर्णकुटीर = का० कु०, १७, ६६, १००, १०१।

[म० पु०] (म०) प्रे०, ४।

पर्णों से बनी कुटीर। फोपडा।

पर्णमय = का०, १४६।

[वि०] (स०) पर्णों से ढरा हुआ। पत्ता का बना हुआ।

पर्दा = क०, ४५।

[स० पु०] (हि०) पट, घावरण। झिल्ली। दरवाजो पर लटकाया जानेवाला वस्त्र।

पर्यटन = वि०, ३०।

[स० पु०] (म०) भ्रमण। घूमना फिरना। देशाटन।

पर्याप्त = का० कु० १११।

[वि०] (स०) अधिक काफी। काम भर। आवश्यकता पूर्ति के अनुरूप।

पर्ष = का०, २४, प्रे०, ८।

[स० पु०] (म०) उरग। चातुर्मस्य। प्रथम का विभाग या चर १। यौगार। प्रत।

पर्वत = म०, २२।

[स० पु०] पहाड़।

पल = का०, २३, ६७। का० ८४, १३५,

[स० पु०] (स०) १६०, १६१, १६२, २१३, २६०। ल०, ४६।

समय का एक सूक्ष्म भाग जो २४ सर्वत्र एक बराबर होता है। क्षण। तरायू। एक पुरानी तोन का।

पलक = का०, ३२। का० कु०, ६२। का०,

[स० स्त्री०] (म०) १२०, १७७। क०, ३१। ल०, ४७। अलि व ऊपर व चमड़े का परदा।

पलक = वि०, ८, ७२।

[प्र० भा०] पलक का बहुवचन।

पलकों = का०, ११, ४७, ७१। का०, २८६।

[म० स्त्री०] (हि०) ल०, ४७।

पलक का बहुवचन।

पलने = ल०, ७४।

[क्रि०] (हि०) पाल पोसकर बड़ा करना।

[स० पु०] बच्चों को पुरानेवाला कूना, पालना।

पल पल = का०, ३३, ५४, १३६, १६५।

[प्र०] (हि०) प्रति क्षण।

पालित = का०, कु०, १०६। का० १८०, २४३।

[वि०] (हि०) वि०, १०१।

पानी गई। जिसका पालन किया गया हो।

पल्लव = का०, ५४। का० १२७, २१०,

[स० पु०] (स०) २४६, २८१। ल०, ४०।

कोपत । नया निक्का हुआ कोमल
पत्ता । हृद्य मे पहनने का वजन ।

पल्लवित = वा० कु०, ३४ चि०, १४६, १५० ।
[वि०] (म०) हरा भरा, नयी कोपता मे युक्त हरा
भरा । जिसे रोमाच हुआ हो ।

पयन = वा०, ८ ६ १४ १५ । वा० कु०,
[स० पु०] (स०) ६ ४० ४६, ५०, ५५, ६६ । का०,
१५, १७, १६, २४ २८ २६, ३४
४६, ४८, ८८, ८६, १०६, ११०
११२, १२०, १६८, १८०, २५७
२५६ २६० । जि० १५, २३, ६६
६३, १५८ । ऋ०, ३३, ५२ । प्र,
१० ११, १४ । म०, ७ ११ १८,
१६ ।

वायु । चलनी हुई हवा श्वाभ । प्राण ।

पयन कठ = ऋ ५१ ।
[स० पु०] (म०) पयन रूपी कठ । प्राण कठ ।

पयन तावित = वा० कु० २८ ४२ ६३ १०० ।
[वि०] (हि०) वायु मे सताया हुआ । जिम पाला
मार जाय ।

पयन परिमल परिपूरित = ऋ०, ४८ ।
[वि०] (स०) सुगंधित । पवन ।

पयन वेग = वा०, २५७ ।
[म० पु०] (स०) वायु की तेजी । हवा की गति ।

पवन सत्तुति = वा० कु० ७४ ।
[स० श्री०] (म०) वायुस्था समार । वायु का चरना ।

पवन सा = वा० कु० १६, ७३ ।
[वि०] (हि०) हवा व समान ।

पवनहृ = बि० १ ।
[स०] (श० भा०) पवन का । पवन भी ।

पयनों = वा० १८० ।
[स० पु०] (हि०) पवन का बहुवचन । पवन ४८ प्रकार
के होते हैं ।

पयमान = वा० ३, २५, २७ ।
[स० पु०] (स०) हवा । वायु । माप ।

पयि = वा० कु०, ३१ ।
[स० पु०] (म०) दूध का वय या दधि का दही में
बना भा ।

पयित्र = का० कु०, ११६, १२५ । का०, २४७,
[वि०] (स०) बि०, ५६ । ऋ०, १६, २० । प्र०,
४ १६ म०, १७६ ।

निमल, स्वच्छ । शुद्ध । शुचि ।

पयित्रता = स० ७६ ।
[म० जी०] (हि०) शुचिता । निर्मलता ।

पश्चिम = वा० ४६ १४२ । बि०, २८, १०१,
[स० पु०] (म०) १६३ । ऋ० २१ । म० ७, स०, ५६,
५० ।

पूर के सामने की दिशा । सूर के प्रस्त
होने का दिशा ।

पश्चिम जलवि = स० ७२ ।
[स० पु०] (स०) पश्चिम का मागर ।

पश्चिमहि = बि०, २८ ।
[स० पु०] (श० भा०) पश्चिम में । पश्चिम की ।

पशु = का० कु० १६, २१, २२ २४ । वा०,
[स० पु०] (स०) ८४, ८५ १११, ११६ १४७ ।
बीमाया । जानवर ।

पशुओं = वा० १७ ।
[म० पु०] (हि०) पशु का बहुवचन ।

पशुपति = बि० ७३ ।
[म० पु०] (म०) शिव । महादेव ।

पशु सा = वा०, १५१ ।
[वि०] (हि०) जानवर के समान ।

पशुहृ = बि०, ६३ ।
[श० भा०] जानवर भा ।

पसार = वा० १६० ।
[पु०] (हि०) प्रसार करना । गतान ।

पसारकर = स०, ७० ।
[पुन० वि०] (हि०) फैलाकर ।

पसारत = बि०, १४१ ।
[श०, (श० भा०) फैलाना है ।

पसारा = वा० कु० ८६ ।
[वि०] (हि०) फैलाया ।

पसार = बि० २३, ४० ।
[पुन० वि०] (श० भा०) फैलाना ।

पसारिक = बि० १४० १७२ ।
[पुन० वि०] (श० भा०) फैला करके । प्रसारित कर ।

पसारित = बि० ५७ १११ ।
[वि०] (२० भा०) प्रसारित, फाँसा हुआ ।

पसारे = बि०, १५३ ।
[क्रि०] (हि०) फैलाये ।

पहचान = क०, २८ । का० ४ १६४, १८२,
[म० स्त्री०] (हि०) २२२, २८५ । बि०, ३८, १५६,
१७६, १७७ । ल०, १० । प्र०, २२ ।

जिमी का गुण, मूल्य या योग्यता जानने
की क्रिया का भाव । परिचय । निशान
चिह्न । परखने की शक्ति ।

पहचानने = क०, २८ । का० ८५ २६४ ।
[क्रि० वि०] (हि०) किसी का गुण मूल्य या योग्यता
जानने ।

पहचानी सी = का०, ७ ।
[वि०] (हि०) जानी बूझी सी ।

पहन = क०, १३ ।
[पूव० क्रि०] (हि०) शरीर पर धारण कर ।

पहनते = ल०, ७७ ।
[क्रि०] (हि०) शरीर पर धारण करने ।

पहनना = क०, १० । का० कु०, ३६ । का०,
[क्रि०] (हि०) ६८ । ल०, १८ ७८ ।
शरीर पर धारण करना ।

पहनाते = भा०, ३७ ।
[क्रि०] (हि०) शरीर पर धारण कराते ।

पहने = भा०, ६० । का०, १२१, १५२ ।
[क्रि०] (हि०) ल०, ३७ ।

शरीर पर धारण किए ।

पहर = का०, ७१ । प्र०, १२ ।
[स० पु०] (हि०) पूर तिन का आठवाँ भाग, तीन घंटे
का समय ।

पहरा = भा० ३१ । का० ६३, ७० ।
[स० पु०] (हि०) पहर का बह्वचन ।

पहल = भ०, ७३ ।
[म० पु०] (पा०) वगन । पल्ल । जमा हुई रु०
भयना कन । किसी धन पदार्थ का
महल । तह ।

पहला = का० ३१, ७२, १६३ ।
[वि० पु०] (हि०) प्रथम । आरम्भ का ।

पहली = का० कु०, ७३ । का०, ५ ४७ । ल०,
[वि० स्त्री०] (हि०) ७३ ।
द० पहल । आरम्भ की ।

पहले = भा०, १७ । का०, ६, १६, २५ । का०,
[वि०] (हि०) कु०, ११६, ११७ । का०, १०६,
१६७, बि०, १०१ १६० । प्र० ७,
२० । १७७ ।
पूव । प्रथम ही ।

पहाड़ी = का० कु०, ६६ ।
[वि०] (हि०) पहाड़ पर रहनेवाला । पहाड़ का ।

पहाड़ी रागिनी = भ०, ५२ ।
[स० स्त्री०] (हि०) पहाड़ पर के लोगों का गात । पवत
का प्राकृतिक संगीत । एक रागिनी
का नाम ।

पहिरतही = बि०, ७५ ।
(ब० भा०) पहनते ही ।

पहिराई = बि० ७१ ।
[पूव० क्रि०] (ब० भा०) पहनाकर ।

पहिरावत = बि०, ७२ ।
[क्रि०] (ब० भा०) पहिनाता है । पानान पहिनाता है ।

पहिरावही = बि०, ७० ।
[क्रि०] (ब० भा०) पहिनाते हैं ।

पहिरि = बि० ७० ।
[पूव० वि०] (ब० भा०) पहनकर ।

पहिले = बि०, १०१ । ल०, १० ।
[वि०] (हि०) द० पहल ।

पहुँच, पहुँचकर = का०, ८७, २०१, २७६ । ल०, ६६,
[पूव० क्रि०] (हि०) एक स्थान से चलकर दूसरे स्थान
पर आकर ।

पहुँचा = का०, २६१ । प्र० १५ । म०, १५ ।
[क्रि०] (हि०) ल० १७ ७२ ।

बनाई । बाह । पहुँचना प्रिया का मूल
वाचिक पुनिम रूप । धा गया । किसी
जगह उपस्थित हुआ ।

पहुँचाना = का, ७७। प्र०, १६।

[क्रि० सं० (हि०)] एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाना।

पहुँची = का० १८२ २१३, २१४। चि०, [क्रि०] (हि०) ५८।

पहुँचाना का भूतकालिक स्त्रीलिंग रूप।
कलाई पर पहनने का एक गहना।
युद्ध में कलाई पर पहना जानवाला
एक आवरण।

पहेली = का० २११ २२६।

[सं० जी०] (हि०) धुमाक फिराव की बात। समस्या।
बुझीबल। ऐसी जटिल बात जो ज़दी
निमीय समझ न आवे।

पहेली सा = का० ४६।

[चि०] (हि०) बुझीबल के समान जटिल।

पाडव = चि० ४८। का० कु०, ११२, ११३।

[सं० पु०] (म०) राजा पाडु के पुत्र।

पाडवहिं = चि० ४१।

[सं० पु०] (ब्र० भा०) पाडवों की।

पाडित्य = म० १४।

[सं० पु०] (सं०) पडिताइ प्रवाणता। विद्वत्ता।

पॉलि = का० ३५।

[मं० पु०] (हि०) पत्नी के घर, डने या पल।

पॉव = चि० ६३।

[चि०] (हि०) चार क बाद (सरया)।

पॉति = चि०, २८।

[सं० जी०] (हि०) पति। रेखा। लाइन।

पा = का० १७।

[पू० क्रि०] (हि०) प्राप्त कर।

पाईयाग = म० ५१।

[सं० पु०] (का०) महुली में चारों ओर बना हुआ
बगोचा या छाया बाग जिसमें राजा के
परिवार की स्त्रियाँ रहती हैं। अतः पुर
का उपवन।

[पाईयाग—] करना' में पृष्ठ ५१ पर संकलित
कविता। वसंत की आत्मा पाकर वृद्धा
ने सरमा के पाले बामन पर (सरमा
पनभन के समय खिलनी है और बामन
का अग्र है भरता) अपने पता को मुग्धा
कर गिरा दिया। य वृद्ध बामन
किमलय खिने का खडे खडे परिमला

पूरित पवन के गले मिलने की राह
देखते रहे। अतल जीवनसिंधु में
जीवन की बाजी लगाकर दुखी लगाने
के लिये कोई राजी नहीं हो सकता
यदि अपना गला सजाने के लिये
बाधित मुक्ता का प्राप्ति सागर से न
हो। इस तरह नाहक मरने के लिये
कोई तयार नहीं हो सकता। जस पनभन
के बाद मतयानिल आता है वैसे ही
तुम आकर भरे गले लगोगे। मेरे गुलाब
की यह उजड़ी क्यारी फिर बिकसेगी।
फिर तुम्हें चहलकदमी करने के लिये
काँटा का ध्यान न रह जाएगा और
मेरे मन को आकर तुम अपना पाई
बाग बनाकर क्रीडा करोगे।]

पाई = का०, १३२।

[क्रि०] (हि०) पाना। प्राप्त किया।

[पाई आँखें सुर की—] सबप्रथम डडु कला ५,
किरण ५, मई १९१४ में प्रकाशित
तथा चित्राधार में पृष्ठ १८० पर
संकलित। जब पात पात दुख की ग्राह
उठनी है तब सारा धम नष्ट हो जाता
है। कस शांत होऊ। तब तुम्हारी
शरण छोड़ और कहीं ठिकाना नहीं।
ऐसी स्थिति में तुम मुझे मोहे हुए हो।
किसी कसम खाकर रोज़। मेरी ग्राह
तीनों लोको में छा गई है तेरी वृथा
से ही वह मिट सकती है। मेरे दुख से
मेरा हृदय जिसपर तुम्हारा आसन
है कोप उठा है फिर भी तुम एव
अचल हो गए हो कि रश्मि भा दया
नहीं दिखा रहे हो।]

पाऊँ = ग्राम०, ६८।

[क्रि०] (हि०) प्राप्त करू।

पाऊँगा = ग्राम०, ४३।

[क्रि०] (हि०) 'पाना' का भविष्यकालिक रूप।

पाऊँगी = का० २१२।

[क्रि०] (हि०) 'पाना' क्रिया का भविष्यकालिक
स्त्रीलिंग रूप।

पाश्रो = का०, १३० ।

[क्रि०] (हि०) प्राप्त करो ।

पाश्रोणे = आ०, ५१ । वा० १३०

[क्रि०] (हि०) प्राप्त करने ।

पाक = का०, ३२ ।

[सं० पु०] (सं०) भोजन बनाने की क्रिया । पकाने की क्रिया । आद, यनादि के हेतु बनाई गई खीर या दूध भोज्य पदार्थ ।

[वि०] (वा०) शुद्ध । जिसका कोई अशुद्धि न हो । स्वच्छ साफ ।

पाकर = आ० १५ ६०, ६२ । वा० कु०, २२,

[क्रि०] (हि०) ३३ ३४ ६१, ६२, ६३, ६८ । का०, ११८, १३४ । अ०, २१, २३, ४२, ४१ ।

‘पाना’ क्रिया का पूर्वकालिक रूप ।

पाग्रह = का०, १० । वा० ४८ ।

[सं० पु०] (हि०) वेदविग्रह आचरण । आग्रह । धृति, आलापी ।

पागल = का० १२६ १५८, १७० २०१ । ल०

[वि०] (सं०) १७ २१, २६ ३७, ४७ ५६ । जिसका दिमाग खराब हो गया हो । बिजिल, नाममक ।

पागी = बि० ५६ ।

[वि०] (अ० भा०) पगी हुई सराबोर ।

[क्रि०] (हि०) गुड़ या चाना में बिना वस्तु को पागने का भाव ।

पागे = बि० ६२ ।

[वि०] (अ० भा०) मरम वन समय हुए ।

[क्रि०] (हि०) ‘पागना’ का वतमानकालिक रूप ।

पागे = बि०, ५७ ।

[क्रि०] (अ० भा०) ‘पागना’ का वतमानकालिक रूप ।

पाग्यो = बि०, ६७ ।

[क्रि०] (अ० भा०) ‘पागना’ का भूतकालिक रूप ।

पा जाना = का० २६ । का० कु०, ७१ ।

[क्रि०] (हि०) प्राप्त कर लेना । गन्ध या द्रव्य तक पहुँचने का भाव ।

पाठ = बि०, ६३ ।

[सं० पु०] (सं०) पठन की क्रिया एवं भाव ।

पाणि मद्रमय = का०, २६७ ।

[वि० पु०] (हि०) हाथ, पैर से युक्त । (मनुजादृति) ।

पात = का०, १६ । बि०, ७०, १४२, १५६,

[सं० पु०] (हि०) १७१ १८१ । ल०, २५, ३१ ।

पतते, पत । पतन । गिरना । गिराव ।

पातकी = बि०, १५५ ।

[वि०] (हि०) पापी, निरुद्ध ।

पाता = का०, १४, २२ । प्रे०, १०, १३, १४ ।

[क्रि०] (हि०) का०, २८२ । ल०, १८ ।

प्राप्त करते ।

पाताल = का० कु०, १२१ ।

[सं० पु०] (सं०) नीचे के भात लोका में से अंतिम लोक का नाम । छद्म शास्त्र में वह चक्र जिससे मांसिक छद्म की सहाय, लघु गुरु, कला आदि का नाम होता है ।

पाती = का०, ७८ । का० कु० ३६, ५४

[क्रि०] (हि०) का०, २०, १७५, २३७, २४० ।

बि०, ७१ । प्रे०, २१ । ल०, ४६ ।

‘पाना’ का वतमानकालिक रूप ।

पाते = का०, १४, २२ । प्रे० १०, १३, १४ ।

[क्रि०] (हि०) ‘पाना’ का वतमानकालिक रूप ।

पाते थे = का० ३२ ।

[क्रि०] (हि०) पाना का भूतकालिक रूप ।

पात्र = आ०, २८ । वा० कु०, ७ ११५ ।

[सं० पु०] (सं०) ल० १७ । वा०, १३४ २२८, २७० । अ० ३८ । २०, ७५ ।

वह जिसमें कुछ रखा जा सक, आधार ।

बरतन । कुछ पाने या लेने योग्य

व्यक्ति । अभिनय करनेवाला अभिनेता,

नट । नाटक या उपयाम का वह

व्यक्ति जिसका क्या वस्तु में कोई स्थान

हो या कुछ चरित्र दिखाना गया हो ।

पात्रमय सा = का०, १८ ।

[वि०] (सं०) पात्र व समान ।

पाथेय = अ०, ३८ । २०, ११ ।

[सं० पु०] (सं०) वह साध पदार्थ जो रास्ते में काम आता है । राह खर्च । क्या राशि या लान ।

पात्र = का० कु० । २६ । का०, २५३ ।

[सं० पु०] (सं०) चरण, पैर । मज, शरीर । किसी वस्तु का चौपाई भाग । शिव ।

विरण। एक ऋषि का नाम। घन
 वायु।
 पादप = वि०, ६६। ल०, १२।
 [सं० पु०] (सं०) पृष्ठ। गेट।
 पादपति स्त्रा = म० १४।
 [वि०] (हि०) चरण की मूर्ति करने का समान।
 पान = का० पु० ३४। का०, ११७। नि०,
 [सं० पु०] (सं०) १०० अ०, ७७। ल० ६६।
 पीना।
 पान कस्त = वि० ७३।
 [क्रि०] (श्र० भा०) पीते हैं।
 पानवात्र = म० १४।
 [सं० पु०] (सं०) पीने का यत्न। गिलास आदि।
 पाना = का० ७७ ६३ ६४, १०१ २२८
 [क्रि०] (हि०) २३०। अ०, ५। म०, ५।
 प्राप्त करना मिलना।
 पानी = का०, १५२, २७१, २८४। वि०,
 [सं० पु०] (हि०) ५७। ल०, ५१।
 जल।
 पानी स्त्रा = अ० ४०।
 [सं० पु०] (हि०) पानी के सहक।
 पाने = का० पु०, २४। का०, १२३, १५४
 [क्रि०] (हि०) १६२, १८५ १६४।
 पाना किया का एक रूप।
 पान्थ = का० ११६ १६३। वि०, १४०।
 [सं० पु०] (हि०) पथिक। विद्योमी। विरही।
 पाप = का० पु० ११३। का०, ५ १८५,
 [सं० पु०] (सं०) १६४, २६४। वि० ३८ १८५।
 अ० ७८।
 बुरा काम। अधर्म।
 पाप घनेरे = वि० ७४।
 [सं० पु०] (श्र० भा०) ऋतु से पाप।
 पाप पुण्य = अ०, ७४ का० २५४।
 [ल० पु०] (सं०) सत्कर्म और दुष्कर्म।
 पापन = वि० १५३।
 [सं० पु०] (श्र० भा०) पाप का बहुवचन।
 पापी = का०, २६८।

[वि०] (सं०) पाप करनेवाला।
 पामर = वि०, ६६।
 [सं० पु०] (ग०) नीच।
 पायन = नि०, ३६।
 [सं० ग०] (श्र० भा०) पर।
 पाय = अ० ७४। का० पु०, ३५। वि०,
 [श्र० क्रि०] (श्र० भा०) ४, ५८, ७२ १४१, १७२,
 १८२।
 प्राप्त करने, पाकर।
 पाया = का० ३०। का० पु० ७३। का०,
 [क्रि०] (हि०) १६७ १६३ १७२ २४१, २५६।
 ग्रे० ७१ ३४ ४६।
 पाना किया का मामास्य भूत मे रूप।
 पायो = वि० ८१८, ३३ ५८ ५६, ६१ ७१,
 [क्रि०] (श्र० भा०) १६४।
 प्राप्त किया।
 पार = अ०, ४०। का० ३१। का० पु०, ३
 [ल० पु०] (हि०) ८। का० ३६ १७५ १७७ २५१।
 वि० ३० १५३ १८७। अ० ४२।
 ग्रे० १०। ल०, ३४ ३७।
 नगी या समुद्र का सामनेवाला तट।
 किसी वस्तु के आगे या सामने की
 ओर। अत, शिर।
 पारत = वि०, २३।
 [सं० पु०] (श्र० भा०) पारा, पारद।
 [पारथ - १० 'अनु' १।]
 पारदर्शिका = ल० ४३।
 [वि०] (सं०) दूर तक देखनेवाली।
 पारदर्शिनी = का०, २६२।
 [वि०] (सं०) दूरदर्शनी।
 पारदर्शी = का० १७८।
 [वि०] (सं०) दूरदर्शी।
 पारावार = अ०, ४२। का०, ८। ल०, ४४,
 [सं०] (सं०) ५७।
 समुद्र, सागर।
 पारिजात = का० पु०, १०४।
 [सं० पु०] (सं०) एक द्वैत वृक्ष का नाम जो स्वर्ग लोप

मे इन्द्र के कानन में है। यह समुद्र
मयन के समय निकला था।
हरमिगार।

पारिजात कानन = का०, २२४।

[सं० पु०] (सं०) परजाता का जंगल। परजाता का
बन। हरमिगार का जंगल।

पार्थ = वा० कु०, ११२, ११५, ११७, १२३।
चि०, ३५।

[सं० पु०] (सं०) पृथा का पुत्र—अर्जुन।

[पाथ—३० 'अर्जुन'।]

पार्थिव = ल०, १२।

[वि०] (सं०) मिट्टी का। पृथ्वी संबंधी।

[सं० पु०] एक सवत्सर। मिट्टी का शिवालिंग।

पार्व = का०, २७७।

[म० पु०] (सं०) शरार के बगला व नीचे का भाग जहाँ
पसलियाँ हैं। टेढ़ी चाल। बगल।
काल।

पाल = का० कु०, ३६।

[म० पु०] (सं०) रक्षक। रक्षना। बगल का प्रसिद्ध
राजवंश। पालकी, माडा। लड्डू।
पोला। नाव को तार गामिनी बनाने के
सिधे टंगा हुआ पद।

पालक = चि०, ८, ६, ६४, ६८, ७१, ७३,
[सं० पु०] (सं०) ७४।

पालनेवाला। पालनहार।

पालत = चि० १०६, १४३।

[त्रि०] (हि०) पालन करता है।

पालन = मा० २२। का०, १२, १५। वा०,
[सं० पु०] (सं०) १११, १४७, २४३। चि०, ६०, ६६।
भोजन वस्त्र आदि दाग का जानेवाला
रक्षक। भरण पाषण।

पालन को = चि०, ६४।

[त्रि० वि०] (प्र० भा०) पालने के लिये।

[पालना यन् प्रलय की लहर—स्कंदपुराण] का
नेपथ्य गाथा। 'प्रसाद मयीन मे उद्भुत
७ पत्ति का गाथा। प्रभु पर धर्म सत्ता
विश्वास हाँ तो उसका वृषा स प्रलय
का लहरें पालना की तरह, ज्वाला की
झींझा शीतल वरुणपन की भीति

हो जाती है और विपत्ति क्षण भर भी
पास नहीं ठहरती और सुख का
साप्राप्य छा जाता है।]

पाल्यो = चि०, ५८।

[क्रि०] (प्र० भा०) पालन करो या पालन किया।

पारक = आ०, ३८। वा० कु०, २४। वा०,

[म० पु०] (सं०) २७३। चि०, ४०।

प्रग्नि, प्रनल।

पावत = चि० ४, २२, ३०, १६६, १७२।

[त्रि०] (प्र० भा०) प्राप्त करता है।

पावन = मा० २४, ३६, ६१, १, ६८, ७४।

[वि०] (सं०) वा० कु०, ६४, ६५, ६७। वा०,
१६०, २२४, २५४, २७६, २८०।
चि० १२३, १२५। अ० ७७।

पवित्र।

पावस = का० १७। चि० १६३। ल० ३३।

[म० पु०] (सं०) वर्षा ऋतु।

[पावस—इंद्र] क्या २ विरणा २, भाद्रपद
१८६७ वि० में प्रकाशित और चनाधार
में संकलित। पावस में कदव पर बड़ी
मालती लता का सुपमा के वणन-
परात कवि धरता पर पुण, तुणा,
लता की शोभा का वणन करता है।
हरी धरती पर पावस का भासन है।
पवत पर बादलों के साथ साथ मोर
नाच रहा है। कोकिल का स्वर संगीत
के स्वर का भी मात द रहा है। पवन
सबको मद मत्त कर रहा है। पावस
का यह परंपरागत वर्णन है।]

पावस काल = वा० कु०, ७५।

[सं० पु०] (सं०) वर्षा का समय।

पावस निर्भर = का०, २३८।

[म० पु०] (सं०) बरमाता करना।

पावसप्रभात = अ०, २५।

[सं० पु०] (सं०) वर्षा का सबार।

[पावसप्रभात—'भरना' में पृष्ठ २४, २५ पर
संकलित ऋतुकांत कविता। श्रावण की
पौदनी रात में श्याम-वदना की और

पयिक के सदृश उमने गेप बा कुछ
रंड भटक रहे हैं। आधा रात में रिंली
गालती पर पानी पढ़ने से मलयानिज
कमल गया और वट अस्तव्यस्त भटक
रहा है, उसे ठहरने के लिये कही
स्थान ही नहीं है। नभा डाल से मुक्त
आकाश में पपीहा का वातर भरल
ध्वनि धनजाने ही निवसकर अपने
प्रेमी को प्रेम से खोजने लगती है।
तारों की मधुर मंडली बल से हा
रह रहकर चमकती और फिर लुप्त हो
जाता है। खाली प्याले के समान चद्रमा
आकाश में लुप्त हुआ है और रात्रि
का अंत होनेवाला है क्योंकि उसके
सौंदर्य उपकरण तो बिलर गए हैं।
इस समय क्वा ने घूषट खोलकर
भौंका और प्राचीन अलंकार रूप से
टहलने लगा।]

पावस भूप = का० पु०, ५२।

[म० पु०] (स०) वर्षा ऋतु रूपी राजा।

पावस रजनी = का०, १५८।

[म० खी०] (स०) वर्षा की रात।

पावही = बि०, ५१ १०१।

[क्रि०] (प्र० भा०) प्राप्त करते हैं।

पावेगा = का०, १२४। बि०, १५५। प्र०

[क्रि०] (प्र० भा०) २५। ल०, ११।

प्राप्त करेगा।

पावै = का०, ७७। व०, ३१। का० ११६

[क्रि०] (प्र० भा०) १३०। बि०, १५३, १६२, १८७
१६०।

प्राप्त करना, पाला।

पावेगी = प्र०, २।

[क्रि०] (प्र० भा०) प्राप्त करेगी।

पाश = का०, ८१।

[स० पु०] (स०) बधन, जाल।

पापाण हृदय = बि०, ७२, म०, २२।

[वि०] (स०) कठोर हृदय।

पापाणी = का०, २६४।

[वि०] (म०) पापाणमयी।

पास = व० १३, १६, ३०। का० पु०, ३३,

[म० पु०] (अ०) ३६, ४५, ६०, ६८, ६८। का०, १६,
३१, ३३, ३६, ४७, ५७, ६७, ८४,
८५, १६४, १६५, १६६, २१३,
२३४, २६४। बि०, ५, १६, १०७
१४७, १५७। ऋ०, ५४, ६४। प्र०,
४, २०। म० १० १७, २३।
ल०, ४४।

समल। धार, तरफ। सामान्य, निर-
टका, समीपता। अधिहार, बन्धा।
निश्च नजदार।

पाइन = बि०, १७८।

[स० पु०] (हि०) परपर।

पाइन हूँ = बि०, १८४ १८६।

[म० पु०] (प्र० भा०) परपर को परपर भी।

पिंग = का० २३।

[वि०] (स०) पालापन लिये हुए लाल भूरा तामड़ा।

पिंगल = का०, २०७, २६१। ल० १५ ४६।

[वि०] (स०) पीलापन लिए हुए भूरापन लिए हुए
लाल तामड़ा। अग्नि। छंद शास्त्र।

पिंड = क० २२। ल०, ५६।

[स० पु०] (स०) मोल पदार्थ। ठान गालाकार कोई
वस्तु। श्राद्ध में दिया जानेवाला वस्तु
विशेष का गोला।

पिक = का०, १५६। बि०, १७२। का०,

[स० खी०] (स०) २० ५७।

कोयल।

पिक पॉली = बि०, १८०।

[स० खी०] (प्र० भा०) कोयल की पक्ति।

पिकपुज = का० पु०, १३।

[स० पु०] (स०) कोयलो का समूह या भुंड।

पिक सा = का०, १०१।

[वि०] (हि०) कोयल के समान मधुर ध्वनि का
वाक्य।

पिघलिहै = बि०, १७२।

[क्रि०] (ब्र० भा०) पिघलना क्रिया का भविष्यत्कालिक रूप। पिघलना। दयादृष्टि, मेर अनुकूल बनेगा।

पिचुमारियों = बि०, १८०।

[म० स्त्री०] (ब्र० भा०) एक उपकरण या यंत्र विशेष जिससे कोई द्रव पदार्थ धार या पुहारे के रूप में छोड़ा जाता है।

पिच्छिल = का०, ८४। ऋ०, ८०।

[स० पु०] (स०) आकाशवत्। शीघ्रम्। वायुकि के वश का एक सर्प।

[वि०] (हि०) - किमलनमयी। पिछलनभरी।

पिच्छिल सी = ल०, ७४।

[वि०] (स०) पिच्छल क ममान।

पिछड़ा = का०, ११।

[वि०] (हि०) पीछे छूटा हुआ। निर्बल।

पिछली = का०, ५३।

[वि०] (हि०) पिछली पाछे वाली। पीछी हुई गत बातों में अति। पाछे की ओर वाली।

पिछले = का०, ६३, ७०।

[वि०] (हि०) गत हुए जाने हुए।

पितर्हि = भा०, ३१। बि०, ४८।

[स० पु०] (ब्र० भा०) पिता का।

पिता = का, १८ २१, २२ २४ २५, ३१,

[म० पु०] (हि०) का० कु०, ६४, ६०। का० ५१, १७६ २१०, २३०। बि०, ४१, ६१। प्र०, ८, ६ १०, २१। १० १२। बाप पुत्र पदा करनेवाला।

पितामाता = का० कु० ७।

[स० स्त्री०] (हि०) पिता और माता। बाप और माँ।

पितामित्र = प्रे०, १०।

[स० पु०] (हि०) पिता का मित्र।

पितु = बि०, १४१।

[स० पु०] (ब्र० भा०) पिता, बाप।

पितु मात = का० कु०, ११२।

[स० स्त्री०] (ब्र० भा०) पिता और माता।

पितु

[म० पु०] (ब्र० भा०) पिता मा।

पिन्हा = का० कु० ४४।

[क्रि०] (हि०) पटना।

पिन्हायो = बि०, ७५।

[क्रि०] (ब्र० भा०) पहनाया पहना दिया।

पिपासा = का०, २६७। बि०, ६७।

[स० स्त्री०] (स०) व्यास, तृष्णा।

पिय = बि० ५८।

[स० पु०] (ब्र० भा०) प्रिय, जिसमें प्रेम हो। प्रेम।

पियमोद = का० कु० ६७।

[स० स्त्री०] (ब्र० भा०) प्रिय का अन्न।

पिया = बि० ३४ ५८।

[म० स्त्री०] (ब्र० भा०) प्रिया। जिस स्त्री व प्रति प्रेम हो, प्रथमी।

[स० पु०] पति।

पियारो = बि०, १६०।

[म० पु०] (ब्र० भा०) प्यारा, प्रिय।

पियूप = बि० १८१। ऋ०, ५७।

[स० पु०] (ब्र० भा०) अमृत।

पिये = का० ८। का० १२२, १२३ २२६,

[क्रि०] (ब्र० भा०) २३८। बि० १८६। ल० १६ ३४, ४३।

पीने हैं। सामान्य भ्रूत में 'पीना' क्रिया का रूप।

पिये सी = का०, २८६।

[वि०] (हि०) पिए हुए के ममान।

पिरोती = का०, १२६।

[क्रि०] (हि०) गूथती।

पिरोना = भा०, ७३।

[क्रि०] (हि०) गूथना। पहनावा। सूई में धागा डालना।

पिलाना = का० कु०, ७८।

[क्रि०, (हि०) पाने का काम दूसर में कराना। पान कराना। पान व लिय देना। अदर भरना।

पिशाच = क०, १८। ल०, ५७।

[स० पु०] (स०) एक निम्न योनि म उत्पन्न वीर्यस कम करनेवाला पुरुष। भूत प्रेत। राक्षस।

पिशाच सो = ल०, ७६।

[वि०] (हि०) अत्यन्त निम्न योनि म उत्पन्न क्रूर पुरुष के समान।

पिसपिसकर = वा०, २५०।

[क्रि०] (हि०) विपत्तियाँ भेनकर।

पीजरा = ल०, ७१।

[स० पु०] (हि०) लोहे या बाम की तोलिया का बना वह भावा जिममें पक्ष बना करके रख जात हैं।

पी = मा०, २५, ५७। वि० १६०।

[म० पु०] (हि०) क० ४८७। प्र०, १४। ल० ६०। प्रिय जिसके प्रति प्रेम है। प्रियतम।

पीऊँ = वा० १११।

[क्रि०] (हि०) पाना क्रिया एव रूप।

पीकर = मा० २८। वा०, २१६। ल० ७७।

[पू०क्रि०] (हि०) 'पाना' क्रिया का भूवर्णनिक रूप।

[पी]। कर्णों?—भरना म पृ० ७६ ५० प० मरलन। हे प्राणयन जहा वही भा मू हा या मिला मुम्हारा भला हा। क्याव डाल पर पयाहा बोल रहा है या कही पी कही। प्यास से मर रहे दान चातक व लिये प्राणप्राप्त क्या बनना चाहत हा। हे क्याम यन तुम कही हा। हृदयवाश म बागल छात है उनमे बिजना वा चमन प्रकाश कर रही है। उग प्रकाश मे मुम्ह दस मू तुम कही हा। मांशु व न म मारा जावन दूय गया है फिर भा कठ प्यामा हा है घोर जन रहा है। प्याम कम न हापर रङ्गना जा रहा है घोर पी कही वा कही कट्टर पयाहा उन प्रगट कर रहा है।]

पीये = वि० ७५।

[पू०क्रि०] (वा०ना०) पाकर।

पीछा = ल०, ६६, १२४।

[स०पु०] (हि०) पीछे की ओर का भाग। भाग का उलटा, पीठवाला हिस्सा।

पीछे = क० १४। वा० १४०, २०० २३६

[म०] (हि०) २५७ १६६ २८६, २८६। वि०, ६५ २८८।

पीठ की ओर। दूसरी ओर। १४ भाग मे।

पीटे = वा०, ६६।

[क्रि०] (हि०) पाटना क्रिया का भूतकालिक रूप।

मार, प्रहार किए। चोट देकर। कसा वस्तु को चिपटा किया। किसी न किसी प्रकार से किसी वस्तु को प्राप्त कर लिया। यन केन प्रहारेण किसी काम को समाप्त किया प्रयत्न निपटा लिया।

पीठ = क० ११। ल०, ५१।

[स०पु०] (हि०) पाना, सिंहासन। शरीर मे पेट की दूसरी ओर का भाग।

पीढी = वा०, ११०।

[स०ली] (हि०) कुल म वश परंपरागत काई स्थान, पुस्त। किसी विशेष समय म हुाने वाली यातयो का समष्टि।

पीडनमय = वा०, २६६।

[वि०] (हि०) पाडित पाडा से युक्त।

पीडा = मा० १ १२ १६ ३८। वा० पु०,

[स०ली०] (स०) २२ २३। वा० ११ ५६, ८३,

११६ १२१ १३३ १४३, १५२,

१६४ २२३, २८३। क०, ८६। ल०,

३५ ४८, ५२।

बना अथा, द। कष्ट तत्प्राप।

राग, व्याधि।

पीडित = क० १८। ल० १३।

[वि०] (म०) क्रिम पाया हा व्याधन। गताया दृष्टा। रागी, बामार।

पीत = वा० ११। वि०, ६ २६, १७३।

[वि०] (म०) प्र०, २६।

पाना। भूत।

[स० पु०] (म०) पाना रण। भूरा रण।

पीतम = चि०, ६।

[वि०] (हि०) २० 'प्रियतम'।

[सं० पु०] पति, स्वामी भर्ता।

पीत पटी = चि० १७८।

[सं० स्त्री०] (सं०) पीले या भूरे रंग का रंगशाल का पदार्थ, पाला वस्त्र।

पीता = प्रा०, ५८। का०, ६०, १६६, २२१।

[सं० स्त्री०] (सं०) लंबी। बड़ी मानवगनी। दाग हलदी। देवदार। राल। अमगध। शालिपर्णी। अकास वेल। गोर। चन। असास। पीला केला। बिजोरा नीबू। जग्द चमेला।

[वि०] (सं०) पीले रंगवाली।

पीतानर = प्रे०, २५।

[सं० पु०] (सं०) पाले रंग का वस्त्र। रंगमी घाता जा पूजा पाठ के समय पहनी जाता है। श्रीगुरु। नट, अभिनेयदर्शी।

[वि०] (सं०) पीले कपड़ेवाला।

पीते = का०, १२२। ऋ०, ४६।

[क्रि०] (हि०) २० 'पाना'।

पीते पीते = ऋ०, ४७।

[क्रि०] (हि०) पा पी कर।

पीन = का० १४, १८।

[वि०] (सं०) मीन, स्थूल। पुष्ट, प्रबुद्ध, परिपक्व। सपन भरपूर।

[सं० पु०] (सं०) स्थूलता, मोटाई।

पीना = का०, १६, १२४। ऋ०, ८८।

[क्रि०] (हि०) द्रव पदार्थ का मुख द्वारा ग्रहण करना। पय पदार्थ का घूट घूट कर गले से उतारना। पान करना। बिना बात का दवा देना। बिगो बिचार या मनोविकार का मन हा मन दवा देना। मह जाना बर्दाश्त कर लेना। बूछ भा गप या चर्चा न छोड़ना। मद्यपान करना, शराप पान। धूम्रपान करना। मोखना या जग्न करना शोषण करना।

[सं० पु०] (हि०) सीमा या तिल का खना।

पी पीकर = का०, १८३।

[पूर्व० क्रि०] (हि०) पीत पीत।

पीय = चि०, १५२।

[सं० पु०] (हि०) २० 'प्रिय'।

पीथुप खीत सी = का०, १०६।

[वि०] (हि०) अमृत के सोने के समान।

पीर = का० कु० ५८। का०, ४१। चि०,

[सं० स्त्री०] (हि०) ५४, १७६। सं०, ३७।

पीडा, दुख, दद। दूसरे की पीडा देखकर उत्पन्न होनेवाली व्यथा, सहा नुभूति, करुणा, हमदर्दी, दया। प्रसवकाल का पीडा।

[वि०] (पा०) वृद्ध, युक्त। सिद्ध, महारमा। धूत, चालाक।

[सं० पु०] परलोक का माग बतलानेवाला, मुमल

मानो का धमधुम।

पीरा = चि० ५७।

[सं० स्त्री०] (हि०) पीडा।

[वि०] (हि०) २० 'पाना'।

पीला = का०, ३२। का०, कु०, २८। का०,

[वि०] (हि०) १४२। सं०, ४६।

हलदी या केसर के रंग का। पीत, निस्तेज, कांतिहीन।

पीलापन = का०, १४६।

[सं० पु०] (हि०) पाना होने का भाव। पीताम। जर्दी।

पीला पीला = का०, १४४, १८६।

[वि०] (हि०) पीला होने का भाव।

पाले कागज = ऋ०, २१।

[सं० पु०] (हि०) पीले रंग का कागज।

पी लेना = का० कु०, ८६।

[क्रि०] (हि०) २० 'पीना'।

[पी ले प्रेम का प्याला—कामना का शांत जिते विनाद और लीला आदि के नृत्य के साथ बिलास गा रहा है। प्रसाद संगीत में पृष्ठ ७६ पर संकलित ६ पंक्तियों का गीत। जीवनपान में प्रेम की अमृतमयी हाल पाले ताकि आखा में हा सृष्टि का विकास हो और मन मदमत्त हो उठे। भरि कूना का मानद मधुर मधु पा रहे है सारी की मद्यप मद्यनी, चद्रमा

का मंग व्यापा नी र/। है। रिद-नी
सगुम मर मपुलाग मयी ११ है।
मू भी प्रम का व्यापा नी म।]

पीपल = वि० ८।

[त्रि०] (त्रि०) पात्र है।

पीपल = का० कु० ११०।

[त्रि०] (म०) मांग मोनर। तमहा। भा।।

[म० पु०] (म०) जटा। कपुता। एक जदि का नाम।

पुज = वि० ४। भ० ६०। म०, १०,

[म० पु०] (म०) ३०। धी० ३८। वि० ६ २३,
३६। प्र०, १४। म०, ४६ ४३।
ममू ११।

पुजोभूत = का० १६० २६६।

[त्रि०] (म०) बेंगलूर।

पुजालों = का० १६६।

[म० पु०] (हि०) मूला पाग। धान क मूग तत मोर
पमिमी।

पुजार = का० कु०, २। का० २६ १०६

[म० पु०] (हि०) १६० १५८ १४६, १६१ १३०
१७२, १६२ २४४ २५६। वि०, १
३१ १२६, १२७। म० १३, २६
३४ ३५ ३७, ४५, ५२ ७३ ७७,
१७०।

बिगी का बुताने या पुजारो की त्रिवा
का भाव। हौव। निगा की रजा,
महायता या प्रतिहार आदि के लिये
मुतावा, दुर्गद। बिगा घरनु की बहुत
अधिर मोग।

पुजारिहें = वि० १८५।

[त्रि०] (हि) पुजारिगे। १० 'पुजारना'।

पुजारत = व० २४। वि०, १७८ १७९।

[पू० त्रि०] (हि०) २० 'पुजारना'।

पुजारना = का० कु० १२४। का०, २७।

[क्रि०] (हि०) व० २५। प्र०, १४।

नाम लकर बुलाना या आवाज देना।
ऊँचे स्वर म गवायित करना। नाम
उच्चारण करना, नाम रटना। चिला,

बि गारर करना। मीनना। गुनावा
अमरा बुलात। गरिमा करना।

पुजार मा = का० १६१, २०४। म० २६।

[त्रि०] (हि०) पुजार के मयन।

पुजारा = का० कु०, ७।

[क्रि०] (हि०) पुजारना त्रिवा का मुतावाला का।
नाम मरर बुलात या धारात
त्रिवा। नाम त्रिवा। त रगार त्रिवा।
अभिवाग मयाया।

पुजारनो = वि० १४६।

[त्रि०] (म० भा०) १० 'पुजारना'।

पुजारें = धी० १३।

[म० पु०] (हि०) पुजार का वरवना।

पुमराज = वि०, ६७।

[म० पु०] (हि०) एक प्रकार का रम्भ जा पात्र रग का
होता है। पायमणि।

पुकाराने = का० ८४।

[त्रि०] (हि०) धूमका या मल करर हुए ध्यार
करना। धुमकारना।

पुच्छलताया = म० ७।

[मि० श्री०] (हि०) धूमराना तारा। एक प्रकार का धूम
की तरह का तारकपुत्र जिते धूमरेनु भा
कटा है।

पुच्छमर्दिता = म०, १३।

[म० पु०] (ध०) धूम तारी। हृद।

पुजाया = का० कु०, ६।

[त्रि०] (हि०) पूजा कराया। अथवा आदर या समान
कराया। बिती को दवाकर देना धूमन
बिमा।

पुजारो = का० कु० ६२। भ० ७८। प्र०

[ध० पु०] (हि०) २०।

वह जा मंदिर म दवता का पूजा क
सिय नियुक्त हो। पूजा करनेवाला।
बिती को उच्चतुल्य मानकर उसकी
अचना, पूजा करनेवाला। उपासक।

पुटक = का०, ५। वि०, १५३।

[ध० पु०] (ध०) पोठली, गठरी।

पुण्य = का०, ५। चि०, १५३।

[वि०] (सं०) = पवित्र। शुभ। धार्मिक दृष्टि से शुभ फल देनेवाला।

[सं० पु०] धर्म कार्य। परोपकार आदि का काम।

पुण्यपुरोहित = का०, २२।

[सं० पु०] (हिं०) पुण्य की प्राप्ति व लिये काय करानेवाला पुरोहित।

पुण्यप्राप्त्य = का, ११३।

[सं० पु०] (सं०) पुण्य द्वारा प्राप्त होनेवाला। मिलने व माग्य पुण्य या पवित्रता।

पुण्यमयी = ल०, ३३।

[वि०] (सं०) पुण्य म युक्त या भरा हुआ। पवित्र एवं मागलिक।

पुतरिन = चि०, १५७।

[सं० स्त्री०] (सं०भा०) स्त्री को आहुति की पुतलियाँ या गुडिया। श्राद्ध की पुतलियाँ।

पुतरियों = चि०, १६०।

[सं० स्त्री०] (हिं०) दे० 'पुतरिन'।

पुतलियाँ = का०, २६२।

[सं० स्त्री०] (हिं०) दे० 'पुतरिन'।

पुतलो = का०, १६, का०, कु०, ३०, ७७, ६२।

[सं० स्त्री०] (हिं०) का०, ४४। प्र०, ६, १२, १३, १८, १९, २२, २३। ल०, २८, ४६, ५४, ६०।

छोटा पुतला, गुडिया। श्राद्ध के बीच का काला दाग। कपड़ा बुनने की मशीन। मारिया की मुकुमारता एवं सुंदरता म व्यवहृत होनेवाला शब्द। धोड़े के टाप का मान जो मछ के समान निक्का हाता है।

पुतले = का०, २५।

[सं० पु०] (हिं०) > 'पुतलो'।

पुतली = का०, ७।

[सं० पु०] (हिं०) कपड़े आदि का बना हुई मनुष्य के आकार की मूर्तियाँ।

पुत्र = का०, ११, १६, १८, १९, २१,

[सं० पु०] (सं०) २२, २४, २६, २८, २९, ३१, ६४।

चि०, ३८। प्र०, ६। म०, १५।

ल०, १२।

वेग, पुत्र, लडका।

का०, ११।

पुत्र वनिदान

[सं० पु०] (सं०)

पुत्र का बनिदान। पुत्र का अपने हाथ से हवा नाटकर किसी दब, दबी या अथ किसी समानित व्यक्ति का प्रसन्न करना या उनकी इच्छा की पूर्ति करना।

पुत्रत्सला = ल०, ५२।

[वि०] (सं०) पुत्र का प्यार प्रदान करनेवाली (माँ)।

पुत्राश्रम = का०, २१।

[सं० पु०] (सं०) नीच पुत्र पापी पुत्र।

पुत्री = प्र०, २१।

[सं० स्त्री०] (सं०) लडका। बेटी।

पुन = का०, २६८।

[सं०] (सं०) फिर, दूसरी बार, दोबारा। पीछे, उपरान, अनंतर।

पुनरावर्त्तन = का०, १६१।

[सं० पु०] (सं०) लौटकर आना। बराबर ससार में जन्म ग्रहण करना।

पुनीत = का०, १६५। चि०, १७३। ल०, ३३।

[वि०] (सं०) पवित्र। शुभ। मागलिक।

पुन्य = चि०, १८४।

[सं० पु०, वि०] (सं०भा०) दे० 'पुण्य'।

पुन्य पाप = चि०, १६।

[सं० पु०] (हिं०) पवित्र अपवित्र, शुभ अशुभ, मागलिक अमागलिक, धर्म अधर्म, परांपकार अपराध।

पुर = का०, १८१। २४५।

[सं० पु०] (सं०) नगर। घर, आमार, जैसे अत पुर। भूवन, लोक। शरीर। मोथा। गुग्गुल। नक्षत्र। पुरवट या मोट। पीली कट सरैया। दुर्ग। राजि, दर।

[वि०] (का०) भरा हुआ, पूरा। भरपूर, पूरा।

पुरइन = का०, १३।

[सं० स्त्री०] (हिं०) कमल का पत्ता। कमल।

पुरइन पत्रों = का०, कु०, ३६।

[सं०] (हिं०) कमल के पत्ते।

पुरलक्ष्मी = का०, २०६ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) नगर की लक्ष्मी । घर की लक्ष्मी । घर का साधन या योग ।

पुरघैया = चि०, १८२ ।

[सं० स्त्री०] (दश०) पूरव से बहनेवाली हवा । पूव की वायु ।

पुरस्कार = चि०, ६७ ।

[सं० पुं०] (सं०) आगे लाने की क्रिया । धादर । स्वीकार । वह धन वा द्रव्य जो किसी अच्छे काम के लिये सादर दिया जाय ।

पुरातन = का० कु०, ६३ । का०, १८ २८६, [वि०] (सं०) २६४ ।

प्राचीन पुराणा जीर्ण धिमा ह्यम् ।
[सं० पुं०] (सं०) विष्णु का एक नाम ।

पुगलनमा = का० ५५ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) प्राचीनता, पुरानापन । जीणता, धिमावट ।

पुरारी = चि० १५५ ।

[सं० पुं०] (हिं०) पुर नामक राक्षस के शत्रु शिव महादेव ।

पञ्च = का० ३ ६३ ६४ १७५ १८३
[सं० पुं०] (सं०) ५२ २८६ २६३ । अ० ८ ।

मनुष्य, नर । किसी वस्तु या पीढ़ी का प्रतिनिधि । साम्ने मे अकर्ता तथा असंग चेतन पदार्थ जो प्रवृत्ति से भिन्न तथा उसका पूरक अंग माना जाता है । आत्मा । विष्णु । सूर्य । जीव । परमात्मा । शिव । पुद्गल वृक्ष । पारा । पीढ़ी के खड़े होने की एक स्थिति विशेष । व्याकरण में क्रिया की एक स्थितिविशेष । व्याकरण में क्रिया का एक भेद । पति । पूवज ।

पुरुषत्व = का० १६२ ।

[सं० पुं०] (सं०) पुरुषता, मर्दानगी, वीरता ।

पुरुषार्थ = का०, १५ ।

[सं० पुं०] (सं०) पुरुष का अर्थ या प्रयोजन जिसके लिये वह प्रयत्नशील रहता है पुरुष के प्रयत्न का विषय या वाय । पीम्प, पराक्रम, पुस्त्व, शक्ति, सामर्थ्य ।

पुरुषों = का०, ६ ।

[सं० पुं०] (हिं०) पूवज ।

पुरोडासा = का०, ११६, ११७ ।

[सं० पुं०] (सं०) जो के आगे की टिकिया जो कपाल में पकाई जाती थी । यज्ञ में काट काट कर और मंत्र पढ़ पढ़कर देवताओं की किसी उद्देश्य से इसके टुकड़ा की ब्राह्मति दी जाती थी । हवि, यज्ञ से बची हुई हवि । यज्ञ में होम की जानेवाला वस्तु । यज्ञ भाग । सोमरस । पुरोडाश बनाते समय वाले जानेवाले मंत्र ।

पुरोहित = का०, २७ । का०, १११, ११३, ११४, [सं० पुं०] (सं०) २०१ ।

वह ब्राह्मण जो यजमान के यहाँ कम कांड के सब कृत्य तथा संस्कार कराता है ।

पुल = सं० ५३ ।

[सं० पुं०] (वा०) नदियों और नालों का पार करने के लिये बनाया गया मार्ग, सेतु ।

पुलक = का०, १२ ८६, ११५, १६६, २८६ ।
[सं० पुं०] (सं०) अ०, २३ । सं०, ६ ३७ ४५ ।

प्रेम, हृष आदि के अतिरेक से शरीर के रागते खड़े होना, रोमांच । एक प्रकार परवर या रत्न । खनिज पदार्थ । रत्नदोष । हाथी का दाँत । शराब पीने की काच का गिलास । एक प्रकार का कद । एक प्रकार का बेल एक । प्रकार का अन्न, सरसो । हस्तता । एक प्रकार की मिट्टी । प्रकार का शरीर में पड़नेवाला कीड़ा ।

पुलक कर = का० कु० ७६, ६४ ।

[पूव० क्रि०] (हिं०) पुलकना क्रिया का पूवकालिक रूप, प्रेम, हृष आदि से प्रसन्न होकर, पुलकित होकर ।

पुलकावलि = श्री०, ६४ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) हृष या प्रेम के अतिरेक के कारण प्रफुल्ल या खट्टी होनेवाला रोमांचलो ।

पुलकि = चि०, १५८ ।

[पूव० क्रि०] (अ० सा०) द० 'पुलक कर' ।

पुलकित = प्रा०, ६४। का० कु०, ३, ६६।
[वि०] (स०) का० १०, २६, ३४, ३६, ३७, ६७, ८३, १२७, २८६, २८८, २९०।
चि०, ७३, १४६, १५०, १६०। ऋ० २७, ३२, ४०। प्रे० ८, १२, २४।
ल० ३२, ४०।

जिसे प्रेम या हृषातिरेक के कारण
पुलक हुआ हो। रोमांचित, आनंदित।

पुलकित तनु = वा० कु०, ६७।
[स० पु०] (स०) पुलकित शरीर, आनंदित शरीर।

पुलिन = प्रा०, ११। व० ८। वा० १७८,
[स० पु०] (स०) २७७। चि० ७१। म० ४। ल० ६।
नदी का देताला तट, नगी का किनारा।
एक वृक्ष का नाम।

पुष्टि = वा०, ११०। न०, २४।
[स० ली०] (स०) पोषण। मोटासाजावन, पीनता।
दृढता। वात का समर्थन।

पुष्प = का० कु०, ६६। चि०, ४६।
[म० पु०] (स०) फूल, सुमन। रजस्वता का रज। घोड़े
का एक लक्षण। लवण। मास।

पुष्पपत्र = प्रे० २।
[स० पु०] (स०) फूल से सजाया हुआ वस्त्र। फूल का
डालवा।

पुष्पलावियों = वा०, १८१।
[म० ली०] (हि०) पून चुनने या हथूँटा करनेवाला,
मालिन।

पुष्पवती = का० २७।
[वि०] (स०) फूलवाला, फूल से युक्त।
[स० ली०] (स०) रजस्वता स्त्री।

पुष्पाधार = म० २०।
[स० पु०] (स०) कुसुमा पर आधारित या आश्रित वस्तु
वा 'यक्ति। वृत्त। फूला की जगिर।

पुष्ट = चि०, ३६।
[स० पु०] (प्र० भा०) फूल। पुष्प।

पुष्टमी = चि०, २३, १०८।
[स० ली०] (प्र० भा०) पृथ्वी।

पूछ = का०, २०२।
[न० ली०] (हि०) जतुआ पक्षियों आदि के शरीर के
पोंछे का एक पतला लंबा भाग। पुच्छ,
दुम। पुछिन्ता। पिछलग्गू।

पूछत = चि०, ३५। ल०, ३३, ५६।
[क्रि०] (प्र० भा०) द० 'पूछना'।

पूछना = का० कु०, ६६। का०, ७७, ६१,
[क्रि०] (हि०) १८३, २१३। चि०, ५८, ६०।
जानने के लिये प्रश्न करना। जिज्ञासा
करना। खोज खबर लेना। दरियाफ्त
करना। सत्कार या संमान का भाव
प्रकट करना।

पूछने = ऋ० ४७।
[क्रि०] (हि०) 'पूछना' क्रिया का रूप।

पूछ्यो = चि०, ५८।
[प्र०] (प्र० भा०) पूछना क्रिया का भूतकालिक रूप।

पूजत = चि०, ६१, १७७।
[क्रि०] (प्र० भा०) पूजा करता है।

पूजता = का०, १६१।
[क्रि०] (हि०) ३० 'पूजत'।

पूजन = वा०, १६१। चि०, १५७, २०८।
[स० पु०] (स०) देवता का पूजा सेवा आदि करना।
अर्चन। आदर समान।

पूज्य = क० २६। ल० ७६।
[वि०] (स०) श्रेष्ठ, पूजन योग्य। आनेवचनीय। आदर-
योग्य, सम्मान के योग्य।

पूजा = प्रा०, ६८। का०, १६१। चि०, १०५।
[स० पु०] (स०) प्र०, २०।

वह वाय जो इश्वर या देवी-देवता को
प्रसन्न करने के लिये, श्रद्धा भक्ति करने
के लिये किया जाय। खातिर, सत्कार।
किसी को प्रसन्न करने के लिये कुछ
देना। दंड, सजा।

पजित = चि०, ६०१।
[वि०] (स०) पूजा गया। जिसकी पूजा हुई हो।
पतरी = चि०, २।

[ध० श्री०] (प्र० भा०) पुतलिया, पुताली, छाँटा न बाव बा
काला दाग । मुहिया, मुताली ।

पूरन = बि० ४२, १४६, १६८, १७७ ।

[ध० पु०] (हि०) पूरा करने या भरने की क्रिया का भाव ।
समाप्त करना । पूर्ण करना ।

पूरय = बि०, १४६, १७० १७१ ।

[ध० पु०] (हि०) यह दिखा जिसमें मूल निष्पत्ति है ।
पूर्व प्राप्ति ।

पूरा = क०, ३१ । का० कु०, १५ । का०

[वि०] (हि०) १६३ । प्रे०, ६, १२ । ल०, १३, ३५ ।
जो सात्ता न हो भरा हुआ । परि
पूर्ण । सम्पूरा सादा, सम्पन्न । जिसमें
बोई हुई या बोर बनने न हो । पूर्ण ।
भरपूर, यथेष्ट, काफी ।

पूरि = बि० ५, २३, २८, १०६ ।

[वि०] (प्र० भा०) पूरा किया हुआ । परिपूर्ण । गुणा
रिया हुआ । गुणित ।

पूरित = प्रा०, ३५ । का०, ११, ६६, १६४

[वि०] (हि०) २४६, २५२ । बि०, ७२, १७६
१७८ । ल०, १४६ ।

पूरा किया हुआ । परिपूर्ण । गुणा किया
हुआ ।

पूरी = का०, ११४, १३१, १७८, २७२ ।

[ध० श्री०] (हि०) प्रे०, २३ ।

खोलते हुए या म छानकर बनाया हुआ
रोटी की तरह का एक प्रसिद्ध खाद्य ।
मृदग, तबला ढाल आदि न मुह पर
मढ़ा हुआ गोल चमड़ा या उपपर लया
हुए गाने वाली टिब्का ।

पूरो = बि० ४४ १४३, १५५ ।

[वि०] (प्र० भा०) > 'पूर्ण' ।

[क्रि०] (प्र० भा०) पूर्ण किया, पूरा किया संपन्न किया ।

पूर्ण = क०, ८, ६, २६ । का० कु०, २ ५२,

[वि०] (स०) ५३, ८०, ६३ ६४ १०६ १२०
१२२ । का०, १०, ४७, ५८, १६२,
१६३, २४२, २६४, २६० । ऋ० ७७,
१७, ६३ । प्रे० १२ १५ । म०, २,
८, १६ । ल०, २२ ।

जा मय हृदिया स पूरा हो । और अपने
अग्निमय तथा बाय आग्नि न निय निगी
की अघोरा न रगता है । मृत, प्राप्तकाम ।
भरपूर, सम्पन्न । मिष्ट मयन । जः काम
पूरा हो चुका है । मयमा ।

पूर्णकाम = का० कु० १८ । का०, १६० ।

[वि०] (म०) जिसकी मय कामना पूर्ण हो चुका है ।

पूर्णपत्र = प्र०, १५ ।

[ध० पु०] (ध०) पूर्णमा का चंद्रमा ।

पूर्णता = का०, १२३ १६३ ।

[ध० पु०] (हि०) सब प्रकार से पूर्ण होने का अवस्था
या भाव ।

पूर्णोद्गति = का०, १३ ।

[ध० श्री०] (ध०) यग या हाथ समाप्त होने पर मन म
दी जानेरना भाहूति । जिना काय
की समाप्ति के समय हानवाला अंतिम
श्रव्य ।

पूर्णिमा = प्रा०, ३३ । का० कु० = १७ ।

[ध० श्री०] (ध०) चांद्र मास के शुक्ल पक्ष की अंतिम
तिथि जिसमें चंद्रमा अपनी सब
कलाभी से युक्त होकर पूरा दिखाई
देता है ।

[पूतिपियूप - मयप्रथम मासुरी वर्ष ५, संव १

सख्या ३ मन् १९२६-२७ में पूति
पियूप बापब के अतगत प्रेम की प्रतीत
उर उगरी मुलाई मुल' प्रकाशित ।
चित्राधार म मई छ- पू० १८२ पर
मकरद्विदु व अतगत मकलित है । लगता
है कि यह समस्यापूति की रचना है ।
प्रेम के प्रति विश्वास हृदय म उपजा
जिससे मुल मिला । हम भूलकर भी
काम का छनना न समझना । प्रेम क
पतग उडान में मनमाहन स खीच
खांच और काट पेंच कोन बरे बरोकि
उसका डार उ हान डोल दो है । चाहे
हम छाँटें खोलें चाहे बद करें एक
जसो उनका छवि छाई रहता है
और भरी हुई छाँटें उनसे रूपमुपा

के पान के लिये प्यासा रहता है।
उन्से मिलन और विरह अब दोनों में
कोई भेद नहीं रहा है। चाहे मान का
भक्ति विद्युत् हो या पतंग की भक्ति
मिलन।]

पूर्व = का० कु०, १०, ४६। का०, ८६, १६१।

[सं० पु०] (सं०) चि०, ३६, ६०। म०, ४३।

वह दिशा जिधर सूर्य उदित होता है।
पश्चिम के सामने का दिशा।

[वि०] (सं०) जो पहले हुआ हो। पहले का। पहले
से होनेवाला। प्राचीन, पुराना।

पाछे का।

पूर्वज गन = चि०, ४८।

[सं० पु०] (ग० भा०) पूव पुष्पा का समुदाय।

पूपा = का०, २५।

[सं० जी०] (सं०) सूर्य। दृष्टि में दाहिने पान की भाँति।

[पूपा—ऋषद्वि दक्षता जो संपूर्ण चराचर का
स्वामी माना गया है तथा बकरो व रथ
का उत्तम मारपी। रात्रि उमका माँ
और ऊपा इसकी बहुत मानी गई है।
उमने हमसे प्रेमयाचना भा की थी और
दक्षताभा ने उमकी कामविद्वत्ता
दख मूर्ख से उमकी शादा करा दी।
यह पृथ्वी और आकाश के बीच सदैव
धूमना रहता है और मृत व्यक्तियों का
अपने पितरों तक पहुँचाने तथा पृथिवी
के संरक्षण का दक्षता है। "तन्म यज्ञ
कर वदन्त मन्त्रतर म इम उत्पन्न
विया।]

पृथामुत = का० कु० ११४।

[सं० पु०] (सं०) पाप, अतुल।

पृष्ठ = चि०, २२।

[सं० पु०] (सं०) पिछला भाग।

पैगों = का०, १६५।

[सं० जी०] (हिं०) पैग मारना। टिडाले का दोनों ओर
या झुलाने का भाव। पैग का बहुवचन।

पेट = का०, १८०।

[सं० पु०] (हिं०) शरीर में छाती के नीचे का वह अंग

जिममें पहुँचकर भोजन पचना है।
उदर।

पेय = म०, ४७।

[वि०] (सं०) पीने योग्य या पाने का (वस्तु)।

पेशा = प्र० १४।

[वि० वि०] (पा०) सामने, भाग, सम्मुख।

पेशोला = ल०, ५६ ५८।

उदयपुर की पिछोला झील जिसका
निर्माण महाराणा लाला के समय में
हुआ था।

[पेशोला की प्रतिध्वनि—सहर में पू० ५६ स ५८
तक मकलित अतुकानि कविता।

जो भूमि महसूस करा स अंगर आहूतिया
लुटता रहा वह विकल विवतना स
और विरल प्रवतनों में नत है। पशाला
जीवनविहीन सा है और दग्ध और
अवसाद का जीवन यहा व्यतीत किया
जा रहा है। दुहुमी, मुदग, तूग सभी
ज्ञात हैं। फिर भा आकाश में यह
आवाज गूँज रही है। नीन। अविचलित
वच्य की भाँति कीन जीवित व्यक्ति
अविचलित ऊँची छाती कर यह कह कि
मेवाड में जीवन है और धरावली
के समान बोल, जिसका सिर उठना है।
अर। काइ तो बाली। क्या तुम मन
मर गए हो। इस धन अवकार में
मेवाड की सास इस आशा पर घटकी है
कि कोई न कोई पतवार धाम लगे।
आज भी पशाला की भाँति में वही शब्द
गूँजता है कि यह वहा प्रताप का गौरव
शाली मेवाड है चित्तु आहूत क लिये
और उमका रक्षा क लिये कोई प्रति
ध्वनि नहीं मुनाई पड़ता। द० 'लहर'।]

पै = चि०, १४३ १५५, १५७।

[अ०] (ग० भा०) ऊपर।

पैठ = का०, १५०।

[सं० जी०] (सं० भा०) पटने या घुमने की क्रिया का
भाव। प्रवृत्त। दक्ष, गति, पहुँच।

पेटुक-रक्तप्रवाहपूर्ण = का० कु०, १२०।

[वि० पु०] (सं०) पूजनी के रक्त की भोजस्वितता स पूज्य।

पेनी = ल०, ४६।

[वि० खी०] (हि०) सीमा, सीमा, तेज।

पेर = का० कु०, १२। का०, ४१, १६७।

[सं० पु०] (हि०) पांव, शरीर का वह अंग जगस प्राणी खड़े होने और चलने फिरते हैं।

पेरो = का०, १४। का० १७०, २३३। प्र०,

[सं० पु०] (हि०) १५। म०, २।

पर का बहुवचन।

[पेरा के नीचे जलधर—ध्रुवस्थामिनी म मंदादिनी द्वारा गाया गया गीत। सामंत कुमारों के भाग भाग गाती हुई वह चलती है। प्रसाद समाप्त म पु० १२० पर सङ्कलित। परा के नीचे विजली और दादल हा तथा सबड़ा भरने व लोत सवीण रास्ते पर वह रहे हा। तूफान चल रहा हो। बुद्ध रास्ता रोक रहे हा सब भी गारपय व अथक पथिन की भाँत सब भेलकर ऊपर हा बढ़ते बनी। पृथ्वा की छाया में छाया के समान तुम बड़ा और अथकार को अपना प्रतिभा का गाल स ज्योतिर्मय कर दो। बाधाओं को दुर्गराकर, पाठा को धूल के समान उड़ाकर और कष्टों पर हसन हसत विजय प्राप्तकर भाग ही बढ़त जाया। जहावर घात के फूल खिले हा, व्याज जहाँ तारा का तरह हो पद पद पर ताडन नृत्य हो, जहाँ पर मरे पग स दशाएँ काँट रहा हो, निशा भय स चारत हो और कविता की धार पसाने की भाँति बहुता हो वहाँ भी सब कुछ भेल भाग ही बढ़त जायो। अचानक मत हा।

भयभीत मत बनी। प्रदन न करा। अपने साहस पर विश्वास करा। अपनी ज्वाला को आप पा जाओ और नालपठ की भाँत अपना आप छोड

जाया। विनाम और शांति का छाड ना तथा ऊँच वनत की उठन जाया।]

पेहे = वि०, ६१, ६४।

[वि०] (प्र० भा०) पालने।

पोमे = वि० १७३।

[वि०] (प्र० भा०) पालन करे।

पोयो = वि०, ६८।

[वि०] (प्र० भा०) पालन करो।

पोत = का० १७।

[सं० पु०] (मं०) पालन पशु या पक्षी का छोटा बच्चा। बपटा। गज या मानी मुनाबट। बडा नाव, जहाज।

पोपर = वि०, ७३।

[वि०] (प्र० भा०) पालन करनेवाला।

पीन = वि०, ६ ४५ ४६।

[मं० पु०] (प्र० भा०) पवन वायु हवा।

पीरप = का० ४ २००।

[सं० पु०] (सं०) पुराण बल लागत।

प्यार = का० ८६, १७७ १८२ २१०।

[सं० पु०] (हि०) वि०, १४१। ल० ६, १२, १३ ३४ ३५ ३७ ३८ ४४, ७७।

प्राप्ति, प्रेम, मुहुरत, स्नेह। प्रेम प्रदर्शन के लिये किए गए स्पर्श चुबनादि। 'पियार' बुद्ध विनोद, शिरोजी।

प्यारी = वि० ७०।

[सं० खी०] (हि०) 'प्यारा' का स्त्रालिग। प्रिया। वह जिससे प्रेम किया जाय प्रेमपात्र। अन्धो लगनेवाली वस्तु।

[वि०] (हि०) का० ५१, १४४। वि० ६, ५७, ५८, १६१।

प्रेमसी। प्रिय अन्धो अथवा सुखद (वस्तु)। जिससे प्रेम किया जाय। जिसका अलग न किया जा सके।

प्यारी प्यारी = का०, २०।

[वि०] (हि०) अन्धो। भला लगनेवाली।

प्यार = का० कु०, ५।

[सं० पु०] (हि०) प्रिय, प्रियतम।

का० कु०, १, ४०, ६३। चि०, ६४,
७१, १७५, १६०। झ०, ४६, ६३।

[वि०] (हि०) प्रिय, प्यार करनेवाला, धन्वा
लगनेवाला।

[प्यारे, निर्मोही होकर मत हमकी भूलना दे—
उदयन के समुद्र नवविधो द्वारा गाया
जानेवाला 'अजातशत्रु' का चार पक्ति
का गीत। प्रसाद सगत म पृ० ४५ पर
मकलित। सदा दया का शातल जल
वरसो जिससे हमारा हृदय मरस्थल
हरा हो। प्रेम के कटीले फूलों को
इस हृदय में फूलने दो। निर्मोही
होकर प्रिय हमको भुना मत दा।]

प्यारो = चि० १७६।

[स० पु०] (ब्र० भा०) जिसमें प्रेम हो।

प्याला = का० कु०, ७८। का०, १३४, २२१।
[स० पु०] (का०) चि०, ६, २, १७५। ल०, ४२,
४५, ४७।

छोटा कटोरा। गर्माशय। सप्पर।
कुलाहा के नरी मिगोने के पात्र।

प्याली = भा०, २१, २८, ३२, ६६। का०,
[स० खी०] (पा०) २७६।

प्याला का स्त्री लिंग। छाटी कटोरी।
पियलिया।

प्याले = भा०, ३२।

[स० पु०] (का०) 'प्याला' का बहुवचन।

प्यास = भा० २८। का०, २८२। ल० ६६।
[स० खी०] (हि०) का० ७४ १२१, १८३, २७०। चि०,
१७१। झ०, ४७। म०, ४। ल०,
२१, ४२।

किसी वस्तु का पान की प्रवृत्ति या
इच्छा। जल पीने की इच्छा, तृष्णा,
पियास। किसी अप्राप्त को प्राप्त करने
का कामना।

[प्यास—भरना म पृ० ४७ ८८ पर सकलित।
इस भरा आसों को अपनी प्यासा आँखा
स हमने उस दिन देखा जिससे हृदय

की दाख ज्वाला से हम पूरे व्याकुल
हो उठे। हमारी प्यास बढनी जा रही
थी। उन आँखा ने अपने हाथा स
प्याला बढ़ाया जिससे उस क्षण चित्त
भीन हो गया। उस रागरजित पेया
को पीते पीते हम रुक गए और हमने
उन्से प्रुछा जिससे वह प्रमुदित हुए।
क्या तुम्हारी नशीली आँखा के समान
हो इसमें नशा है। उत्तर था 'गुलाबी
हलवा सा'। मोह की स्तब्ध रात्रि में
मेरा यह प्रश्न सुनकर क्या यह सदा बनी
रहेगी वे भीन थे। बत्ती गुलाब कटीला
था पर उसकी कली चटबटा कर
खिल उठी। उमो प्रवार जस उपा
का लाला। बादनी म और पवन
परिमल के साथ। ऊया प्राची मे
बढ रही थी और आकाश बदल रहा
था। ऐसी ही बेला मे फिर मैं व्याकुल
होकर कहा कि प्रियतम तुम्हारे कोमल
कर से प्या नशा पीना चाहता हूँ जा
उतरे ही नहो। हृदय की वह बात
नवीन स्त्री की भाँति खोल कर हाथ
हमने वह सा और जीवन घन भी
फूल मलिका के समान यह बात सुन
मुसकरा दिए।]

प्यासा = का०, ७१।

[वि०] (हि०) तृषायुक्त, तृषित, जिसे प्यास लगा हो।
(प्रुल्लिंग)।

प्यासी = का०, १०६। चि०, १७१, १८१।
[वि०] (हि०) ल०, ४६, ४७।
जिसे प्यास लगी हो (स्त्रीलिंग)।

प्यासे = का०, २१६, २६८। चि०, ७, १७५।
[वि०] (हि०) भा०, ७१।

जिसे प्यास लगी हो, तृषित। किसी
विशेष वस्तु को पाने की उत्कट लालमा
वाला। किसी वस्तु की कामना
से युक्त।

प्यासो = भा०, १०। चि० ८।

[वि०] (ब्र० भा०) प्यासा हुआ।

प्रकपन = का०, १३।

[सं० पु०] (सं०) कपवो। भयकर तथा तीव्र गतिवाची श्रापी।

प्रकट = का० पु०, १६, २८, ७५, ११३,

[वि०] (सं०) ११७, १२४। का० १८, ७७, १२३, १३१, १६२, १८६, २१०। वि०, २६, ३६। ऋ०, ६५। प्र०, ५, ५१। म०, २।

जो सबसे सामने है। व्यक्त। सामने आया हुआ। जाहिर। आविर्भूत। स्पष्ट। साफ।

प्रकटित = का० पु०, १०, ३४ = १ १०४

[वि०] (सं०) १२६। ऋ०, ७०। प्र० ६ २० २४। स्पष्ट अथवा साफ हुआ। प्रगट या व्यक्त हुआ। सामने आया हुआ। प्रत्यक्ष हुआ। उत्पन्न हुआ।

प्रकार = का०, ११५ ६५३।

[म० पु०] (सं०) भेद, किस्म तरह, भेति।

[सं० खी०] (हि०) बहार दीवारी परकोट।

प्रकाश = का०, ६२, ७५, १। का० २०६ २४२

[सं० पु०] (सं०) २५२। वि०, १४० १०५ १७०। ऋ० २१, ३५, ६३ ६४। क० १३, २५। का०, कु० १, २, ३४, ३६, ७०, १०३। का०, ३५, १२६, १५१, १५८, १७२, २४१ २४४। वि०, ६, १५२। प्र० १५। ल०, ३४, ७४।

वह शक्ति या तत्त्व जिसके योग से वस्तुओं का रूप आकाश को दिखाई देता है। आलोक। ज्योति। प्रकट या गोचर होना। अभिव्यक्ति। पुस्तक का खड। धूप। धाम। विकास, स्फुटन। स्याति, प्रसिद्धि। खुलना। खुला हुआ हज्जा।

प्रकाश वालिके = का०, १८४।

[सं० खी०] (म०) प्रकाश रुपिणी वालिके। अतीव सुंदर वालिका।

प्रकाशमय = क०, ३१। प्र० ११।

[वि०] (सं०) प्रकाश से युक्त।

प्रकाशयुत = वि०, २२।

[वि०] (म० भा०) प्रकाशमय। प्रकाश युत।

प्रकाशानुभवमूर्ति = का० पु०, ६०।

[म० खी०] (सं०) गान घोर अनुभव का मूर्त रूप। गान घोर अनुभव का प्रत्यंगिरण।

प्रनाशि = वि०, १६४, १७०।

[वि०] (म० भा०) 'प्रणाश'।

प्रनाशित = म०, १६।

[वि०] (म०) दोस्त, उपासित, समवना हुआ। प्रकाश म आया हुआ। जिससे प्रकाश निकल रहा हो।

प्रकाशी = वि० १६१।

[वि०] (म० भा०) प्रकाशित। समवना हुआ। जिसमें प्रकाश है। प्रकाश करनेवाला।

प्रकाशै = वि०, ७६, १०७।

[पुर्व० वि०] (म० भा०) प्रकाश करे।

प्रकासि के = वि०, १४०।

[पुर्व० वि०] (म० भा०) प्रकाशित करके।

प्रकासिता = वि०, ५०।

[वि०] (म० भा०) प्रकाशित किया हुआ।

प्रकृति = क०, ७, ८, ९, १२, १३, ७२ १५६,

[सं० खी०] (सं०) १५६, १६१, १६६, १६८। का० पु०, ११, १३, १५, ६२, ६८, ११६। का०, ७, ९, २३, २५, २८, ३३, ५५, ५६, ७२, ८८, ९१, ११६, १५१, १६४, १७१, १८५, १८६, १८८, १९५, १९६, १९८, २००, २२७, २५४, २८४, २८६, ३१४, ३१६। वि०, १, १०५, १८२। ऋ०, १६, २८, ३३। प्र०, २ १५ १४। म० २।

वस्तु या व्यक्ति का मूलभूत स्वभाव। मिजाज। वह मूल शक्ति जिससे अनेक रूपात्मक जगत् का विकास किया है और जिसका रूप दृश्य म दिखाई देता है। मुरख।

प्रकृति फर = म०, ८।

[सं० पु०] (सं०) प्रकृति रूपा हाथ। प्रकृति की बाह।

प्रकृति कला = प्र०, १२ ।

[स० जी०] (स०) प्रकृति की कला या सीढ़ी । प्रकृति के द्वारा होनेवाला वचिन्त्यपूर्ण कार्य ।

प्रकृति कानन = का०, कु० ४ ।

[स० पु०] (स०) प्रकृति द्वारा निमित्त कानन ।

प्रकृतिकृत = का०, १६६ ।

[वि०] (स०) प्रकृति का निर्माण ।

प्रकृति पद्मिनी = का०, कु०, २ ।

[स० जी०] (स०) प्रकृति रूपा कमलिनी ।

प्रकृति लीला = वि०, २३ ।

[स० जी०] (स०) प्रकृति का लाला ।

प्रकृति विहार = प्र०, १५ ।

[स० पु०] (स०) प्रकृति का विहार ।

प्रकृति सग = का० १६७ ।

[स० पु०] (स०) प्रकृति के साथ ।

प्रसर = का०, १७, २८, १२३ । म०, ४ ।

[वि०] (स०) सीढ़ी । सीढ़ी ।

प्रगट = का० कु०, ५१ । का०, ११४, १८६

[स० पु०] (हि०) २५७ । वि०, ७०, १६६ । ल० ५२ । जाहिर । प्रत्यक्ष । जो सामने ही स्पष्ट साफ । आविष्कृत ।

प्रगति = का०, ६४, ७६, ८१, १२४, १३५,

[स० जी०] (स०) १६८, २०० ।

भाग का ओर गति । अग्रगता । उन्नति ।

प्रगतिशील = का० १६१ ।

[वि०] (स०) जो आगे की ओर बढ़े या उन्नतिमान (व्यक्ति, वस्तु या भाव) ।

प्रगाढ = का०, ६१ ।

[वि०] (स०) बहुत गाढा अथवा गहरा । बहुत अधिक । कड़ा धना, गठोर ।

प्रचढ = का० १८१ । वि० ६६, १०६ । ल०, ७८ ।

[वि०] (स०) अत्यन्त तात्त्विक । उग्र प्रसर, अग्रसर । कठिन । वृद्धवान् । अग्रस्त । बहुत गरम ।

[स० पु०] (स०) शकर के एक गण का नाम । सफेद कनर ।

प्रच्छन्न = का० कु०, १५ ।

[वि०] (म०) छिपा हुआ । प्रव्यत ।

प्रचार = का०, २६, १६१, २४४ । ल०, १३,

[स० पु०] (स०) ५१ ।

किसी वस्तु या बात का निरंतर व्यवहार या उपयोग । चलन, रिवाज । घोड़ों की भाँस का एक रोग ।

प्रचारक = का० कु० ८७ ।

[वि०] (स०) प्रचार करनेवाला ।

प्रचार सी = का० १६१ ।

[वि०] (हि०) प्रचार के समान । विकसित । प्रचारित ।

प्रचारिक = वि०, १४० ।

[क्रि०] (प्र भा०) प्रचार करके । प्रवर्धित करके । ललकार करके ।

प्रचुर = का०, ५८, ६१, २०८ । म०, ८० ।

[वि०] (स०) अधिक, बहुत ।

प्रखलित = का०, २१४ ।

[वि०] (म०) प्रदीप्त, प्रकाशित, जागृत्यमान ।

प्रजा = का० कु० ६६ । का०, १६६, १८६,

[स० जी०] (स०) १६५, १८४, १८५, १८६ । ल० १०० । वि०, ४६, ५२, ७१, १०६ । प्र०, ६ । सत्ता, धीमाद । किसी देश या राष्ट्र में रहनेवाला जनसमूह । रियाया या रीयत ।

प्रजासत्र = का०, १६३ ।

[स० पु०] (स०) वह शासन पद्धति जिसमें प्रजा ही समय समय पर अपने प्रतिनिधि न्याय प्रधान शासक चुनती है ।

प्रजापत्न = का०, १०१ ।

[स० पु०] (स०) प्रजा का पत्न । प्रजा की धार का नाथ या विचार ।

प्रजापति = का०, १८४ १८५, १६२, १६४ ।

[स० पु०] (स०) सृष्टि उत्पन्न करनेवाला । सृष्टि कर्ता । ब्रह्मा । मनु । सूर्य । पाण । विना, वायु । विश्वकर्मा । जमाई । एक प्रकार का पत्त । माठ संवत्सरों

मं से पौषर्षा । एव प्रवार वा विमाह ।
एव सारा ।

[प्रजापति—गमन्त प्रजापति का ब्रह्मा व समान
सृष्टा उत्तरार्धदिन प्राप्ति गर्वप्रभुता
देवता जिसे परब्रह्म धीर विचाराणा व
रूप म भी संबोधित किया गया है ।
प्रजापति देव राक्षसा तथा दृष्ट वा
भी सृष्टा माना गया है । मनु को मनु
पुराण एवं महाभारत म प्रजापति व
रूप म भी संबोधित किया गया है ।
मरुत पुराण म प्रजापति के संबंध म
लिखा है—विश्वे प्रजानो पतयारभ्यो
लोका विनिस्तृता । हर एव कन्य
म नई सृष्टि का निर्माण करना प्रजापति
का कार्य है ।]

प्रजापृथु = व०, २६ ।

[सं० पु०] (नं०) प्रजा का समूह ।

प्रजासृष्टि = व०, १६४ ।

[सं० जी०] (नं०) प्रजा की सृष्टि । सृष्टि को उत्पन्न करने
का भाव ।

प्रज्ञा = ल०, ३३ ।

[सं० जी०] (सं०) बुद्धि ज्ञान । एकाग्रता । सरस्वता ।

प्रण = व०, ३१ । व०, १६१, २४३ ।

[सं० पु०] (सं०) प्रतिज्ञा, टेक । एवं निश्चित तथ्य ।

प्रणत = व०, २४४ । अ०, ३८ ।

[वि०] (सं०) झुका हुआ, विनम्र, विनीत । विनोप
वैय प्रदर्शित करता हुआ ।

प्रणति = व०, कु०, ३ । व०, २४०, २८५ ।

[सं० पु०] (सं०) प्रणाम, प्रणिपात । दंडवत, नमन ।

प्रणय = व०, कु०, ४५ । व०, १८ ६२ १४ ।

[सं० पु०] (सं०) १६३, १८४, २२६ । अ०, २७ । प्रे
१४ । ल०, ५३ ।

प्रीति, प्रेम । विश्वास । भरोसा ।

निर्माण । मोक्ष । अढ़ा ।

प्रणयनी = ल०, ५४ ।

[वि०] (हि०) प्रणयनी का स्त्री लिंग ।

प्रणयप्रकाश = व०, १६३ ।

[सं० पु०] (सं०) प्रेम रूपी प्रकाश । प्रेम प्रक्षालित चित्त
का विशेष आनंद । प्रणयालोक ।

प्रणय शिला = व०, १२७ ।

[सं० जी०] (सं०) प्रणयका शिला । प्रणयाधार ।

प्रणयमृति मूर्त्य = व०, ३६ ।

[सं० पु०] (सं०) प्रणय संबंधी स्मृति का प्रमाणित
करोवना (प्रिय) ।

प्रणयसिंधु = व०, १० ।

[सं० पु०] (सं०) प्रेम का सागर । (प्रेम का प्रणयना
का धारा) ।

प्रणयाक्षर = प्रे०, १० ।

[सं० पु०] (सं०) प्रणय का अक्षर ।

प्रणयानिल = प्रे०, १० ।

[सं० पु०] (सं०) प्रणय की वायु । प्रणय का विकसित
करनेवाला वातावरण ।

प्रणयी = अ०, ३८ ।

[वि०] (सं०) प्रेमी, जिसने प्रणय हो ।

प्रणयोल्लास = प्रे०, २४ ।

[सं० पु०] (सं०) प्रणयी के बिहरोल्लास वाद्य ।

प्रणत = व०, कु०, १२२ ।

[सं० पु०] (सं०) झोका झोका मनु । परमेश्वर ।
त्रिदेव, ब्रह्मा, विष्णु महेश ।

(वि०) झुका हुआ । नम्र ।

प्रणाम = व०, १५ । व०, कु०, ८६ । वि०,

[सं० पु०] (सं०) ५८ ६०, ६१ ।

झुककर अभिवादन करना, दंडवत ।
नमस्कार ।

प्रताप = वि०, १५५ २४६ । म०, ६, ११,

[सं० पु०] (सं०) १५ १६, १७ । ल०, ५८ ।

पौरव, मदनियो । वीरता, शक्ति का
एसा प्रभाव या आतक जिससे बिरोधी
दबे रहे । मदार का पेड़ । रामचंद्र के
एक सखा का नाम । ताप, गर्मी । युव
राज का छत्र । तेज ।

[प्रताप—देखिए 'महाराजा का महत्व' ।]

प्रतारण्या = ल०, ५४ ।

[सं० जी०] (सं०) घोसा, ठगो, वचना ।

प्रति = व०, कु०, २६, ७६, १२१ । व०,

[अ०] (सं०) ६६, १२४, २५७ । वि०, १८५ ।

क्र०, ४४। प्र०, १३, २२, २३।
म०, ६, २०। ल० ५०।
एक उपसर्ग जो शब्द के आरम्भ में
लगता है और निम्न अर्थ देता है—
विरुद्ध, विपरीत, सामने, बदले में, हर
एक, एक समान, सहश, जोड़ को छोड़,
तरफ।

[सं० स्त्री०] (सं०) प्रत्येक वस्तु। प्रतिलिपि।

प्रतिकार = का०, १६६। चि०, १८२।

[सं० पुं०] (सं०) प्रतिशोध, बदला चुकाने के लिये किया
गया कार्य।

प्रतिकूल = का०, १०६, २४७, २६०।

[वि०] (सं०) विपरीत, विरुद्ध, खिलाफ। जो अनुकूल
न हो, विरुद्ध।

प्रतिवृत्ति = का०, १०३, २६४।

[सं० स्त्री०] (सं०) मूर्ति प्रतिमा। अनुवृत्ति, प्रतिलिपि।

प्रतिकृतियों = का०, २५८।

[सं० स्त्री०] (हि०) प्रतिवृत्ति का बहुवचन।

प्रतिवृत्ति स्त्री = ल०, ६७।

[वि०] (हि०) प्रतिवृत्ति की तरह या समान।

प्रतिक्षण = का० कु०। २६, का०, २६७।

[सं० पुं०] (सं०) प्रतिपक्ष, हर समय।

प्रतिघात = का०, १५। ल०, ७८।

[सं० पुं०] (सं०) प्रतिवृत्त घात, प्रतिवार स्वरूप किया
जानेवाला आघात या प्रहार।

प्रतिज्ञा = क०, ११। चि०, ३१। क्र०, ६४।

[सं० स्त्री०] (सं०) म०, ६७।

प्रण, टैक।

प्रतिच्छादित = का० २१७।

[वि०] (सं०) चारा तरफ से ढका हुआ।

प्रतिदान = का०, ८५।

[सं० पुं०] (सं०) ली भयवा रखा हुई वस्तु को लीजाना।

प्रतिदिन = का०, ६, १६४। ल०, ३४।

[सं० पुं०] (सं०) प्रत्येक दिन, हर रोज।

प्रतिध्वनि = का०, ८। का०, ७, १६, ६३, ११०,

[सं० स्त्री०] (सं०) १५६, १६७, २७७, २८५। म०,

१७। ल०, १३।

भगने उत्पत्ति स्थान पर फिर म सुनाई

पडनेवाला शब्द, गुंज, प्रतिशब्द। शब्द
से व्याप्त होना। गुंजना।

प्रतिनिधि = का०, ६९। का०, ११, ३०, ११४,
[सं० पुं०] (म०) १७६, २६० २८३। ल०, ७१।

प्रतिमा, प्रतिमूर्ति। वह व्यक्ति जो
दूसरे के बदले कोई काम करने को
नियुक्त किया जाय।

प्रतिपक्षी = चि०, ६३।

[सं० पुं०] (सं०) विरुद्ध पक्षवाला, विपक्षी या विरोधी।

प्रतिपग = का०, १५७।

[सं०] (सं०) पग पग पर।

प्रतिपद = का०, १५७, १५८, १८४। क्र०, ४५।

[सं० स्त्री०] (सं०) रास्ता, मार्ग। आरम्भ। पक्ष की पहली
स्थिति। बुद्धि। पक्ति। अग्नि की जल
स्थिति।

प्रतिपक्ष = का०, १५६, १८०, १६० २५८।

[सं०] (सं०) प्रतिक्षण, हर समय।

प्रतिपालक = क०, २५।

[वि०] (सं०) पालन पोषण करनेवाला, पापक।

प्रतिपालत = चि०, ७३।

[क्र०] (प्र०भा०) पालन करता है।

प्रातफल = का०, २६४। म०, ५।

[सं० पुं०] (सं०) छाया, प्रातर्विह। परिणाम। बदल म
मिला हुआ वस्तु।

प्रतिवार = का० कु०, ६६।

[सं०] (सं०) हर रोज, प्रातर्दिन।

प्रतिदिन = का० कु०, ४३, ८२, ६३। का०, ४८,

[सं० पुं०] (सं०) ४६, १७६। चि०, २३, ७१।

परछाई, छाया। मूर्ति, चित्र। वपण,
शोभा।

प्रतिबिम्ब पूरित = का० कु०, १७।

[वि०] (सं०) परछाई म युक्त। जिसमें परछाई
पडा हा।

प्रतिबिम्बित = का०, ६७। का०, १४७, १७६, २३३,

[वि०] (सं०) २४१। प्र०, १६।

जिसका परछाई या प्रतिबिम्ब पड़े।
जो परछाई पडने के कारण दिखाई
देता हो। जो झनकता हा।

प्रतिभा = भा०, १८। क०, १५। वा०, ८७,
[सं ली०] (सं) १६६, २६२, चि०, १५२।

बुद्धि, समझ। असाधारण मानसिक
शक्ति। असाधारण बुद्धि बल।

प्रतिभा = भा०, २०। वा०, १००, २२२, २६०।
[सं ली०] (सं) चि०, १५२, १६६। ल०, ३३।

प्रतिवृत्ति, मूर्ति, अनुवृत्ति।

प्रतिरूप = चि०, २२।

[सं पु०] (सं) प्रतिमा, मूर्ति, चित्र, तस्वीर।

प्रतिरोध = वा० कु०, १०६।

[सं पु०] (सं) विरोध, बाधा। रोक, रूकावट। पुर
स्कार। प्रतिविम्ब।

प्रतिवर्त्तन = वा०, ७६, १५०। ल०, ६६।

[सं पु०] (सं) लौट आना, वापस आना।

प्रतिवर्ष = का०, २८४।

[सं पु०] (सं) प्रत्येक साल।

प्रतिशोध = का०, १८५, २०७, २३०। ल०, ६८,
[सं पु०] (सं) ७४, ७५, ७७, ७८।

बदला चुकाने की भावना से दिया
जानेवाला काम। बदला।

प्रतिशोध अधीर = का० १०१।

[वि०] (सं) प्रतिशोध करने के लिये विकल।
अथवा प्रतिशोध के कारण विकल।

प्रतिष्ठा = का०, १५७, प्र०, १०।

[सं ली०] (सं) स्थापना, अवस्थान रखा जाना। दब
प्रतिभा की स्थापना। सम्मान।

प्रतिष्ठित = का० कु०, ११३।

[वि०] (सं) जिसकी प्रतिष्ठा हो। समानित। जिसकी
स्थापना की गई हो। स्थापित।

प्रतिहारोगण = म०, २०।

[सं पु०] (सं) राजाभा के यहाँ के द्वारपाला अथवा
सदस्यवाहकों का समुदाय।

प्रतिहिंसा = का० कु०, १०६। का०, २३०।
[सं ली०] (सं) ल०, ७६।

बदला चुकाने के हेतु का जानवाली,
हिंसा, बर चुकाया, बदला लेना।

प्रतिहिंसा पूर्ण = वा० कु०, १०८।

[वि०] (म०) प्रतिहिंसा का भावना में भरा हुआ।
प्रतिवारिता मपूर्ण।

प्रतिहिंसा पूरित = वा० कु०, १०८।

[वि०] (सं) प्रतिवारिता में भरा हुआ।

प्रतीक = भा०, ६८। वा०, १५७, १६६

[म० पु०] (सं) १६७, १६८, २११।

प्रतिमूर्ति, प्रतिरूप, अनुवृत्ति। मूल वस्तु
का दूसरा आवार।

[वि०] उन्नत। स्थानापन्न। प्रतिनिधि।

[प्रसौख—दक्षिण परिशिष्ट।]

प्रतीक्षा = भा०, ३६, ५२। वा०, १७७, १७८।

[सं ली०] (सं) भ०, २५।

भासना, इतजार। प्रत्याशा।

प्रतीची = वा० कु०, ३३। चि०, १०१, १०६।

[सं ली०] (सं) पश्चिम दिशा।

प्रतीत = भ०, ६४।

[वि०] (सं) शांत, विरहित, जाना हुआ। विख्यात
प्रसिद्ध, मशहूर। प्रसन्न, खुश।

प्रतीप = का०, ३८।

[वि०] (म०) विरद्ध, विलोम। एक घण्टालकार जिममें
उपमय को उपमान मान लेते हैं।

प्रतन सत्व = प्र०, २०।

[सं पु०] (सं) वह विद्या जिसमें प्राचीन काल की बातों
का विवरण या विवेचन हो। प्राचीनता
का सत्व। पुरातन का सार।

प्रत्यक्ष = का०, ६८, १६२। चि०, १४१,

[वि०] (सं) प्र०, ७।

आँखों के सामनेवाला। नयनगोचर।
जिसका ज्ञान इंद्रियों द्वारा हो।
इन्द्रियगोचर।

[सं पु०] (सं) चार प्रकार के प्रमाणों (दार्शनिक)
में से वह प्रमाण जिसका आधार
दखी जाना हुई बातों में स होता है।
अनुसृत प्रमाण।

प्रत्यक्षा = का०, १४१। चि० ६७। भ०, ३६।

[सं ली०] (सं) अनुष का डारी जो कमान के दोनों
सिरों से बंधा होता है।

प्रत्यावर्त्तन = भा० ४१। वा०, ७, १२७। ल०,

[सं पु०] (सं) ५३, ७५।

लौटकर वापस आना । वापस आना ।
लोपना ।

प्रत्याशा = श्री० ३६। ऋ०, ५१, ५४।

[सं० श्री०] (सं०) भाषा, भरोसा । उम्मीद, सहारा ।

[प्रत्याशा—मनप्रथम 'हुडू', वत्सा ६, राज १, किरण २ में प्रकाशित और 'भरना' में पृष्ठ ५२-५३ पर संकलित अनुवात कविता । छपिरी रात में मंद पवन बह रहा है, अकेले निर्जन में प्रत्याशा में बनात हो बठा हूँ । शिथिल वशी में बिरह का मपात उदास पहनाड़ी रागिनी में बल रहा है और उसपर से तुम कहते हो 'यह उल्का तुम्हारा कपट है।' प्रताप्ता करत करत सबम निकट होने के कारण) धुपल तारो को रिडका से मैं देख रहा हूँ । ह जीवनपन । मुझे सत्य का दर्शन हो रहा है । समस्त आवाज में वह मुझे दिखाई पड़ रहा है । मुझे अनेका देसकर हिचका मत । तुम्हें प्राप्त देवकर सभी व्यवधान स्वयं समाप्त हो जाएँगे । यहाँ आने में सफा मत करो । लगता है हमारा मिलना तुम्हारे लिये सुनम है इसलिए तुम्हें हमारा ध्यान नहीं है क्योंकि हम तो तुम्हारी मुट्ठी में हैं । गीत की सवदना होनी चाहिए । पर हे मेरे जीवनपन, मेरी और पराक्षा न हो और नहीं किसी सहाय्य प्रतिस्पर्धा करोगे और उ उत्तेजना ही दो । हमारा हृदय समर्पित है इसलिये हिलाने डुलाने के लायक नहीं है । इसे मलय पवन का पवित्र चाल चलन दो । हृदय के हीरक पात्र में चद्रविरण क हिय विदुषो 'तुम्हारे बिरह के आसु' स बना मधुर मकरदवाला सुधा रस दी है । यह प्रेम से छलाछल भरा है इस छत्रकाया मत ।]

प्रत्यारथ = श्री०, ३० ।

[वि०] (सं०) जिस वस्तु का भाषा भी जाय ।

प्रत्युत = प्रे०, १७, २६ ।

[सं० पु०] (मं०) विपरीतता ।

[मं०] (सं०) बन्कि, वरन् इमने विरुद्ध ।

प्रत्युत्तर = मं० १४ ।

[सं० पु०] (सं०) उत्तर मिलन पर दिया गया उत्तर ।

प्रत्येक = का०, ७३, २४१ ।

[वि०] (सं०) बहुता में से हर एक ।

प्रथम = का०, ११ । का० पु० ३६, ६३, १०६ ।

[वि०] (सं०) का० ५, १८ ४५, १०४ । वि०, ३६ ६८, १६५ ऋ०, १५ । प्रे० ११ ।

गिनता में पहले प्राप्तवाला पहला ।

सबसे प्रच्छा, सर्वश्रेष्ठ । प्रधान, मुख्य ।

[क्रि० वि०] पहले, पहलर प्राग प्रादि में ।

[प्रथम प्रभात—सर्वप्रथम हुडू बना ४, किरण ५, मन् १६१३ में प्रकाशित तथा भरना में पृ० १६-२० पर संकलित । अतः करण क नवान मुन्द नीड म खग-कुन के समान मनावृत्तियाँ सा रही थी । नाल गनन के समान प्राप्त हृदय सा रहा था । भीतर और बाहर की प्रवृत्ति भी सुप्त थी । अपन ही छिपे हुए पवित्र मकरद से नए मुकुन के समान अवचल मन संतुष्ट था । ऐसी ही स्थिति में अचानक पुत्रो के सौरभ से भरपूर मलयानिल ने स्पश कर गुदगुदाया । आस खुल गई और आनंद का द्रव्य दिखाई देठ लगा । सन्तोषेण छोड़े सा गुजार करता हुआ मधुर गान गाने लगा । पूना के मकरद का वर्षा होने लगी और प्राणरूपी पर्षाहा आनंद स बोन उठा । वह छवि बालारणा सी प्रकटी और उसने शुभ हृदय को नए प्रेम स रजित कर दिया । मद्य प्रेम के ताप में स्नान कर मन पवित्र हो उल्लाह में भर गया और सारा संसार पवित्र आनंदवाम हो गया । यह मेरे जीवन का प्रथम प्रेम प्रभात था ।]

[प्रथम यौवन मंदिरा से भक्त—चद्रगुप्त म

भलवा का गीत । प्रसाद संगीत मे पृ० ११० पर सकलित । इसमे भलवा सिंहरेण के प्रति पूव स्मृतियों को प्रकट करती है और भविष्य के लिये उसपर आस्था प्रकट करती है । यौवन के पहले प्रहर मे यौवन मद से मत्त हो जब किसी को हृदयदान करना चाहिए इसके पहचानने तक का चाह न थी केवल प्रेम करने की चिन्ता थी । अपना प्रमोद हृदय मीने बेच डाल । प्राज्ञ वही हृदय मुझमे प्रपना मूल्य माँग रहा है । बिना किसी मतलब के ही उस सोभी प्रियतम ने ले लिया जिसका परिणाम यह हो रहा है कि तराजू पर तौल कर प्रयाप्त अपार वेदना मिल रही है और हृदय में धूल उड़ रही है फिर भी तुम्हें कोई परवाह नहीं है । क्या धर्म द्विडककर प्रेम के इस रास्ते को विछलन बाधा बना दू ताकि तुम मेरे हृदय के रास्ते पर सभलवर चलो । और इसम तुमको बिलब लगेगा इसलिये अधिक समय तक तुम्हारा स्नेह मिलता रहेगा जिससे जावन का सभी साथ सफल होगी । और भासा का कुछ सहारा मिलेगा । विश्व की समस्त सुयमा धाम्नी बनकर बह जायगा जिससे रूप का रत्नाकर अथाह भर जायगा और पहचानना भी बठिन हो जायगा ।]

प्रथम स्पर्श = का० कु०, १०० ।
[वि०] (स०) पहला स्पर्श । नव मिलन । मुहागरात का प्रथम घालिगन ।

प्रथा = का० कु० ११५ ।
[म० श्री०] (स०) रीति रिवाज प्रणाली, परंपरा, प्रसिद्धि ।
प्रदर्शन = का० १३३ ।
[स० पु०] (स०) दिखाने का काम । नाना प्रकार का वस्तुओं का दिखाने के लिये एक स्थान पर रचना ।

प्रदर्शिका = का० २८० ।
[स० की०] (स०) वह पुस्तक जिसमे विद्या स्थान विषयक सब बाढ़ा का संक्षेप में बखन, हा,

ताकि उस स्थान के सबध मे पूरी जान बारी हो जाय ।

प्रदेश = का०, २८०, म०, १७ ।
[स० पु०] (स०) स्थान । किसी देश का छोटा हिस्सा ।
प्रदोष प्रभा = का०, २८४ ।
[स० पु०] (स०) साधकानीन आभा, सध्या की छवि । सध्या की लानी ।

प्रधान = बि०, २५ ।
[वि०] (स०) मुख्य खास, सर्वोच्च, श्रेष्ठ ।
[स० पु०] (स०) मुखिया नेता सरदार । मन्त्रा, सचिव । ससार का उपादान कारण । एक राजा का नाम । किसी सस्था का मुख्य अधिकारी ।

प्रधानता = का० ३ ।
[म० की०] (स०) प्रधान होने का भाव, धर्म कार्य, या पद ।

प्रपच = का०, १९६ ।
[स० पु०] (स०) ससार और उसका जजाल । भवजाल । आश्चर्य डाय ।

प्रपूर्तिता = बि० १३६
[स० की०] (स०) भरी हुई । परिपूर्ण ।

प्रपुञ्ज = का०, २६३ । बि०, ६६ । प्र० ७
[वि० पु०] (स०) प्रम न पूरा लिखा हुआ विकसित ।

प्रफुल्लित = का० कु० ३५ । का०, १८२, २६० ।
[वि०] (स०) बि०, ११ २३, ५६, ६३, १६४ ।
म० ११ ।
फूला हुआ, खिला हुआ, प्रसन्न ।

प्रफुल्लित गात = का० कु० ६७ ।
[स० पु०] (स०) प्रसन्न गारा ।

प्रपथ = का०, १६ ।
[स०] (स०) बिना वाय का भना । प्रकार से करने की व्यवस्था । धावाजन, उपाय । बांधने की डाय । प्रमद्वता, गद्य या पद्य मे परस्पर सबध बना का भाव ।

प्रबल = का०, २४४ । का०, १५८ । का० कु०, ८ ७३ ७४ ७५ ८७ १२१ १२६ ।
[वि०] (स०) का०, १६ । बि०, १२, ५३, ६५ ।
प्र० ४२४ । म०, २ ६ ।
ताब । बलवान । उग्र, पार । महान ।

प्रसुद्ध = का०, २३। ल०, ५१।

[वि०] (सं०) जाग्रत, जगा हुआ। प्रबोध युक्त, पंडित। जानी। विद्वान्, खिल्ला हुआ। सजीव।

[मं० पु०] (सं०) नव योगधरो म स एक।

प्रभजन = का० कु०, ५३, वि०, ६६। क०, ६।

[सं० पु०] (सं०) भ०, ६५। म०, २।

अत्यधिक तोड़ फोड़, टुकड़े टुकड़े कर डालना। पवन, वायु विपणन प्रांथो। महाभारत के अनुसार मणि पुर के एक राजा का नाम।

प्रभा = का० कु०, १६। १८। ५१। क०, ८।

[सं० ली०] (सं०) का० ४४। १६३। वि०, १३६, १४०, १५३। भ०, ३५। म०, १६। ल०, ७०।

प्राभा, चमक। मूयवि। मूय का पानी का नाम। एक अक्षरा का नाम। मदानिकी। द्वादशाक्षरा वृत्ति।

प्रभात = श्री०, ७७, ७६। क० १३। का० कु०,

[सं० पु०] (सं०) १०४। का, २७, १५१, १६२। १७५, २१८, २२६, २३०। वि०, १४०, १४३, १४५, १५६, १६०। प्र० ५, ७। ११, १५, १८।

प्रातः काल, मवेरा।

[प्रभात कुसुम—यह रत्नना सवप्रथम प्रभातिव कुसुम शीपन से इतु कना २, किरण ४, कार्तिक १६६७ विक्रमी म प्रकाशित हुई। चित्राधार म पराग म अतर्मत पृ० १५४ पर यह नवलिन है। प्रभात के फूल का कुसुम पवित्र सौरभवाला मकरद वायु म मुख भर दता है जिसमे हृदय म असीम आनंद होता है। वह ऐसा लगता है मानो कि रमणीय अप० निवास म बठकर प्रिय के प्रवास से आन का प्रताप्ता आत्मा मे अश्रु भर कर रहा है। तुम्हारी इतनी अनुपम प्रतिभा है, तुमने किम रूप का दर्शन दिया जिससे तुम

हलना प्रवास है और तुम्हारा विकास हो रहा है। सूर्य की किरणों का सम पानर तुम फूलकर इतरा रहे हो। अर अनजान फूल। तुम नही जानने, यही तुम्ह जलाकर तुम्हारे मान का मदन करगी।]

प्रभात समीर = का० कु०, १०१।

[सं० पु०] (सं०) प्रातःकालीन वायु शीतल, मद और सुगंधित पवन।

प्रभातिक = वि०, १५२।

[वि०] (सं०) प्रातःकालीन।

प्रभापुत्र = का०, २४३।

[वि० पु०] (सं०) प्रभा का मपूह। अत्यधिक प्रशंसावाला।

प्रभापूरित = का० कु० १०।

[वि०] (सं०) प्रभा से भरा हुआ।

प्रभापूर्ण = का०, १८७, २३८।

[वि०] (सं०) प्रभा से पूर्ण।

प्रभा भरी = का०, २२४।

[वि०] (हि०) प्रभा से भरी हुई।

प्रभाव = का० कु० ८८। वि० ३२, १७७।

[सं० पु०] (मं०) प्र०, ३, १७। ल०, २४।

किसी वस्तु या बात पर किसी क्रिया का होनेवाला परिणाम, असर। प्रादु भाव। अतः कारण को किसी की ओर करने का गुण। सूर्य के एक पुत्र का नाम। सुधीव क एक मंत्री का नाम। महात्म्य।

प्रभावती = वि०, १४०।

[वि०] (सं०) प्रभावती दक्षियुक्त।

[सं० ली०] (मं०) सूर्य की पत्नी का नाम, प्रभावती नामक रास।

[प्रभावती—मेरे सावर्णि का क्या। यह मय दानव के निवास स्थान पर तपस्या करता थी और सीता की खोज म गए वानरो से मिली थी।]

प्रभावशाली = म०, २०।

[वि०] (सं०) प्रभावपूर्ण प्रभावित करनेवाला। जिससे प्रभाव हो।

प्रभु = का० कु०, ३, ५८, ८७, १२०, १२१,
[सं० पु०] (सं०) १२२। वि०, १५४ १८६। प्र०, ६।
ईश्वर, भगवान्। वह जो अनुग्रह या
निग्रह करने में समर्थ हो। अधिपति।
श्रेष्ठ पुरुष के लिये सर्वोपन। चवई
राज्य के वायव्या की उपाधि।

प्रभुचरण = प्र० २१।

[सं० पु०] (सं०) प्रभु के चरण।

प्रभुता = का०, कु० ८७।

[सं० ली०] (सं०) अधिकार, प्रभुत्व।

प्रभुत्व = का०, १३६, ल०, ७८।

[सं० ली०] (सं०) प्रभुता।

प्रभुपद = प्र० २१।

[सं० पु०] (सं०) प्रभुत्वं पद। प्रभुचरण।

प्रभुस्मरण कार्य = का० कु० १२२।

[सं० पु०] (सं०) प्रभु के स्मरण का वाय।

प्रभो = का०, ६, १० १५, २३ २५, २६,

[सं० पु०] (सं०) ३०। का० कु० १, २, ८, ६२ ६३,
८७, ६६। वि० १४०। म०, १०
२२।

प्रभु का सर्वोपन।

[प्रभो—सर्वप्रथम इदु कला ३, किरण १,
आश्विन शुक्ल १६६८ वि० (१६१२
ई०) में प्रकाशित तथा वाचन कुमुम
की पहला रचना पु० १२ पर
सकलित। पवित्र इदु वा विनाल किरणों
व माध्यम से ह प्रभा तुम वितना
प्रकाश है यह पता चलता है। तुम्हारी
अनंत माया अनादि काल में ससार
का तुम्हारी लीला दिशा रही है।
तुम्हारी दया सागर की तरह अपार है
और तुम्हारा यन्त्रागण सहरें देखनी
हैं। चंद्रिका में तुम्हारा हास है और
नन्पियों के अखिल निनाम में तुम्हारी
हर्षा है। सृष्टि के विज्ञान मोर्चि में
रात्रि में तारों की दीपमाना तुम्हारा
ससार का पना बनाती हैं। हे प्रभा
तुम प्रथम ही, प्रकाश ही और

प्रकृति के पुरुष हो। धरास्वी अपार
उपवन के तुम माली हो। तुम्हारी
दया होने से सारे मनोरथ पूरे होते
हैं। सभी पुकार पुकार कर कह रहे हैं
और तुम्हारी ह। भुके श्री आशा है।]

प्रभन्ता = का० कु०, १८।

[वि०] (सं०) नशे में चूर। मस्त, पागल, उमत्त।
असावधान।

प्रमाण = का०, ११०। वि०, १८६।

[सं० पु०] (सं०) वह वचन या तथ्य जिससे कुछ सिद्ध
हो। सञ्ज्ञत। सरयता, निश्चय, प्रतीति।
मर्यादा। प्रामाणिक बात या वस्तु।
इयत्ता। एक अलंकार जिसमें आठ
प्रमाणों में से किसी एक का उल्लेख
होता है। माय, स्वीकार करने
योग्य।

प्रमाता = क०, १७५।

[वि० पु०] (सं०) प्रमाणा द्वारा प्रमेय के ज्ञान को प्राप्त
करनेवाला। ज्ञान का कर्ता। आत्मा
का दृष्टा। साक्षी।

[सं० ली०] (सं०) पिता की माता। माता की माता।

प्रमाद = का० कु०, १०२। का०, १६७। वि०,
[सं० पु०] (सं०) १८६।

उपमाद। किसी वारणवश कुछ को
कुछ समझना। भ्रान्ति। भूल भ्रष्ट।
अतः करण की दुर्बलता।

प्रमुदित = का० कु०, ३३, ४६, ५१। का०,
[वि०] (सं०) १८१। वि० ६१।
आनंदित, विशेष प्रसन्न।

प्रमोद = का०, १३३। वि०, ६, ३१, १७३।
[सं० पु०] (सं०) हर्ष, आनंद।

प्रयत्न = का०, ६२, १८२ १८६। प्र०, २१।

[सं० पु०] (सं०) काय वा उद्यम जो कोई उद्देश्य सिद्ध
करने के लिये किया जाय, प्रयास, चष्टा,
वागिष्ठ।

प्रयत्न प्रथा = का०, १८१।

[सं० पु०] (सं०) भौतिक व्यवस्था, उद्योग परंपरा।

प्रयास

प्रयास = ना०, १८१।

[स० पु०] (स०) २० 'प्रयत्न'।

प्रलयकर = का०, २०२।

[वि०] (स०) प्रलय करनेवाला।

प्रलय = घा०, ५६, ७८। का०, १५, २५,

[स० पु०] (स०) १८२, १६४, २७३। म०, ६२, १०७। ल०, ८०।

लय की प्राप्त होना। कालात भ ससार का नाश। मृत्यु। साहित्य में एक सात्त्विक भाव जिसमें बिना वस्तु में समय होने के कारण स्मृति नष्ट हो जाती है। अचेतनता।

प्रलयकारिणी = का० १२।

[वि०] (स०) प्रलय करनेवाली।

[प्रलय की छाया—सदप्रथम हम, जनवरी १९३१ में प्रकाशित तथा सहर में पृ० ५६ से ८० तक सम्मिलित प्रसादजी का सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक प्रबंध मुक्तक।

'सहर' की अंतिम रचना 'प्रलय की छाया' अपना विशेष महत्त्व रखती है। अतद्रष्टा और मनोवैज्ञानिक विस्लेषण का गंभीरतापूर्वक उपयोग और प्रयोग कर प्रसादजी ने 'प्रलय की छाया' की रचना की है। रमणीय रूप और जीवन की पल पल परिवर्तित भावनाओं का सुन्दर प्रतीक के माध्यम से चित्रित करने का प्रयोग और प्रयत्न, ऐतिहासिक कथा वस्तु के आधार पर, कवि ने किया है। गुजर का रानी कमला का जीवन ढलते समय अतीत के रूप सबधी अपने भावों के घात प्रतिघात का अपने मानस में सवाक विज की भाँति दख रहा है।

एक समय ऐसा था, जब कमला के चरणों की रूपनीर्दय व निखार के कारण समीर छूँट साँस लगा था। वह मधुभार में विभोर हो गई थी। गुजर राज्य का मारी गंभिरता उमकी अगलतिका में

एकत्र हो, समा गई थी। उसके अधरो में ऐसी मुमकान खिन पडती थी कि नदन का शत शत दिव्य कुमुमकुतला अप्सराएँ उसका अधर नूमनी थी। जीवन गुरा की उस पहला प्याली की जिसमें आशा, अभिलाषा और कामना के कमनीय मधुर भक्कार की वाणा थी, देखते देखते कमला भक्की लेने लगी। झारों खुलने पर उसने दखा कि विश्व का साग बभब उसके पावों पर लोट रहा है। गुर्जरराज भा उसके सामने झुके हुए हैं। मारी सृष्टि उस पुवती की गेस भावा से देखती, मानो लालसा की दास मरिया—ज्योतिमयी, हास्य मयी बिकल विलासमयी—उसमें थी। लोग उममें सृष्टि का रहस्य ढूढने लग। उसका सौंदर्य चद्रकाश मरिष न समान था तथा हृदय अनुरागपूरा। गुर्जर के बाल में वह स्वणमलिका सी सुरभित था और मधु की वर्षा करती थी।

नियति नदी तडित् सी भीहँ नचाती उमके जावन में आइ। पद्मिनी की सतीत्व गाथा सारे भारत के काने कोने में गूँज उठी। नारी का यशगाथा का दश में भाल उन्नत हुआ। भारत का नारियो ने इस गौरवगाथा की मुनकर भविष्य की नई इष्टि से देखना प्रारम्भ कर दिया। यह देखकर कमला के जीवन की साजभरी निद्रा जाग उठी। वह पद्मिनी से अपनी तुलना करने लगी और साँचेने सभी कि बसा हृदय भर पास वहाँ था ? मैं ता उम समय रूप की लका से हृदय की महत्ता मापने लगी थी। वह सोचने लगी थी कि पद्मिनी तो स्वयं जली थी किंतु रूप के दावा नल द्वारा मैं वमे ही सुवतान की जलाऊँगी।

गुर्जर में सुल्तान के कारण ताड़व नृत्य प्रारम्भ हुआ। देश की विपत्ति में कमला अपने पति के साथ समर भूमि में रुद पड़ी। इससे कमला का वीर पति अत्यधिक प्रसन्न हुआ किंतु हार इनकी ही हुई। देश छाड़ना पड़ा। निर्वासित हो, दोनों शरण खोजने लगे। किंतु दुभाग्य उनका पीछा करने में भाग था। दोपहरी में जब दोनों तह की छाया में धकेले सो रहे थे तुरन्तों का एक दल भस्मावात सा आया। गुजरनरेश लड़ते लड़ते दूर चले गए और कमला बदिनी हुई। वह सोचने लगी कि पतिनी का अनुकरण तो न कर सकी किंतु पतिनी की भूल का परिष्कार अवश्य करूँगी। सिंही के रूप में उसने सुल्तान की मारने की झटल प्रतिज्ञा की। रूप का ध्यान वह उस समय भी न भुला सकी। उसने आशा कि तुकपति मरने के पहले मेरा यह रूप भी देखे और सोचे कि मैं कितनी महान् और विभूतिपूर्ण हूँ।

वह दिल्ली लाई गई। वह कभी वहाँ पति का प्रतिशोध लेने के लिये मचलती और कभी सुल्तान के निमग्न हृदय में रूप सुंदरता की अनुभूति करा भर के लिये ही सही जमाने की बात सोचती। वह ऐसे ही विचारों में तिरती उतराती रही। जब वह सुल्तान के समीप पहुँचाई गई उगने आत्महत्या के लिये शृपाण निशानी किंतु शृपाण ध्यान ली गई। उस क्षण वह मृत्यु से बचा और सोचने लगी कि जीवन अलम्ब है जावन सोभाग्य है, जीवन प्यारा है।

कमला ने सुल्तान से कहा, क्या मारकर भी मुझे तुम मरने न दोग? क्या तुम में मनुष्यता गाय नहीं रह गई है? सुल्तान ने उत्तर दिया—दण्डा है कि भारत की नारियल का गौरवभाग

केवल मरना ही है। पतिनी को मैं खो चुका हूँ किंतु तुमको नहीं खोना चाहता। तुम अपनी कोमलता से मेरी झुर्राओं पर शासन करो। यह कहकर सुल्तान तो चला गया पर सुल्तान का रंग महल अब कमला के लिये स्वर्ण पिंजर बन गया।

एक दिन संध्या के समय सहसा किसी की पदचाप सुनकर वह चौंक उठी। उसके सामने शशव का अनुचर 'मानिक' था। कमला ने उससे पूछा—भरे भभाग, यहाँ तू मरने चला आया?

उसका उत्तर था—यहाँ मरने नहीं आया हूँ, रानी, जीवन पाने का आशा में आया हूँ।

सुल्तान भी वहाँ आ पहुँचे। मानिक को मृत्यु दंड मिला। फिर कमला के कानों में गूँज उठा, जीवन अलम्ब है, जीवन सोभाग्य है, जीवन प्यारा है। कमला ने उच्छ्वास भरे शब्दों में कहा, उसे छोड़ दीजिए। रानी की पहली भागा समझकर सुल्तान ने उसकी यह बात मान ली। कमला का हृदय बोल उठा—

हाय रे हृदय।

तूने कौड़ी के मोल बचा, जीवन का मणिकोप और आकाश को परछने की आशा में हाथ ऊँचा किए, मिर दे दिया अंततः मैं।

गुजरेश बलदेव भी तो जावित थे, उन्होंने सदैव भेजा था कि आन पर कमला प्राण दूँ, किंतु वह जावन न, रूप के व्यामाह्वश एमा न कर सकी था। मानिक भी तो उसमें आज मर जाने की ही बहवा है। वह पुनः सोचने लगती है, मरा प्रेम नुद्ध कहाँ है? रूप क कारण मैं गुजरान का रानी बनी और वहीं रूप आत्महवरी का पद प्राप्त करान

की प्रेरणा दे रहा है। भारतेश्वरी का यह पद रूपमाधुरा वा उपहार और शृंगार है। यह कल्पना उसे सुख दिए हुए थी।

मानिक ने सुस्तान की हल्कावर खुसरो के नाम से राज्यशासन समाला, पर कमला को अब यह अनुभव होने लगा कि मारी तेरा वह रूप, जिसमें पवित्रता की छाया न हो, जीवित अभिशाप है। अब उसके सौंदर्य के चपल चरण की सत्ता हिम विंदु सी डुलकन लगी। उसे रूपसत्ता सौंदर्य का पूर्ण कल्पित ज्योतिर्हीन तारा लगा, जो बालिमा की धारा में विलीन होता दीख पड़ा। उसके रूपसौंदर्य की सृष्टि अब असफल हो सो गई है।

‘प्रलय की छाया’ हिंदी के उन सफल प्रबन्ध निर्वाह मुक्तकों में है, जिनकी गौरव गाथा भाव और कला दोनों दृष्टियों से सनातन है। क्या वा आचार पूर्ण ऐतिहासिक है। कवि ने इन ऐतिहासिक तथ्य में रूप के एकाग्र सौंदर्य की निरर्थकता जिस रूप में प्रतिष्ठित की है, वह प्रसादजी की चिरसन सौंदर्य वाली उस बोधदृष्टि का पता बताता है जिसमें अद्भुत ऐसी शक्ति के निर्माण की ऊजस्विल सम्भावनाएँ हैं। ६० सहर।]

प्रलय घटाएँ = भा०, १६।

[सं० जी०] (हि०) प्रलय करनेवाली घटाएँ।

प्रलयजलधि = भा०, १०।

[सं० जी०] (सं०) प्रलयरूपी जलधि।

प्रलयनिशा = भा०, २०, २३।

[सं० जी०] (सं०) प्रलयकालिक रात्रि।

प्रलयनृत्य = भा०, १४८।

[सं० पु०] (सं०) प्रलयकालिक नाच।

प्रलयपयोनिधि = भा०, १८५।

[सं० जी०] (सं०) प्रलयकालिक समुद्र।

प्रलयभीत = भा०, १६१।

[वि०] (सं०) प्रलयकालिक उपद्रवों से डरा हुआ।

प्रलयमयी क्रीडा = भा०, १८५।

[सं० जी०] (सं०) सहारक खेलवाड।

प्रलयोल्का पड = भा०, ५७।

[सं० पु०] (सं०) प्रलयकर उल्का पड।

प्रलाप = भा०, ५०, ११८।

[सं० पु०] (सं०) व्यय की बातें, बकवास, अनर्थकारी वचन।

प्रलोभन = भा०, १३। भा०, २८। भा०, ६०।

[सं० पु०] (सं०) लोभ, २६८।

लालच, लोभ।

प्रलोभनमय = भा०, २६।

[वि०] (सं०) प्रलोभन से युक्त। प्रलोभन के कारण।

प्रवचक = भा०, ५३।

[सं० पु०] (सं०) धूर्त, ठग, मक्कारो।

प्रवचना = भा०, २८। भा०, ५०, ८२। भा०,

[सं० जी०] (सं०) १३५। लोभ, ११।

ठगी, धूर्तता, छल।

प्रवचन = भा०, २६।

[सं० पु०] (सं०) उपदेश, भलोभाति समझाकर कहना।

धार्मिक या नतिक बातों की जाने वाली व्याख्या। वेदांग।

प्रवर्तक = भा०, ३३।

[सं० पु०] (सं०) संचालक। हार जात का नियम करने वाला। पथ प्रचलित करनेवाला।

प्रवचन = भा०, १६३, २६६। लोभ, ३३।

[सं० पु०] (सं०) कार्य धारण करना। कार्य संचालन करना। प्रचलित करना। प्रवृत्ति। किसी को अनुचित कार्य करने के लिये प्रेरित करना और सहायता देना।

प्रवहमान = भा०, २५८।

[वि०] (सं०) तीव्रगति से चलता या बहता हुआ।

प्रवास = भा०, १७८। वि०, १४३, १५२।

[सं० पु०] (सं०) प्रे०, १४।

अपना देश छोड़कर दूसरे देश जा बसना। विदेश यात्रा।

प्रवासी = भा०, २११।

[वि०] (सं०) प्रवास करनेवाला। अपना देश छोड़कर दूसरे स्थान जानेवाला।

प्रवाह = भा०, ५०, १२५। भा०, १०, २४१,

[सं० पु०] (सं०) २४८। वि०, २६, ५५, ६६। प्रे०,

११। जल का बहाव। बहता हुआ जल।
काम का चलना। भुकाव, प्रवृत्ति।
उत्तम घोड़ा।

प्रवाहिका = का०, २६३।

[सं० स्त्री०] (सं०) बहानेवाली। दस्त की बीमारी।

प्रविसि = वि०, १६६।

[क्रि०] (अ०) घुमकर, भीतर आकर।

प्रवीण = का०, १६१।

[वि० पुं०] (सं०) कुशल मर्मज्ञ।

प्रवीण सार = वि०, १४८।

[वि०] (अ० भा०) प्रवीण के समान।

प्रवीर = का० कु०, ६७ १०६। ल०, ५५।

[सं० पुं०] (सं०) बहादुर वीर, साहसी।

प्रवेश = वि०, २६।

[सं० पुं०] (सं०) भीतर जाना, घुसना। गति पहुँच।
किसी विषय की जानकारी। किसी
क्षेत्र, वर्ग आदि में उसके विशिष्ट नियम
पालते हुए घुसना या लिए जाना।

प्रशसा = का० कु० १। ल० ५२।

[सं० स्त्री०] (सं०) गुण वणन श्लाघा, स्तुति तारीफ।

प्रशात = का० कु०, ३६, ४२ ५२। का०,

[वि०] (सं०) १४८, १६०, २४२। अ०, ६६।

ल०, ७२।

अत्यंत शांत, स्थिर अचंचल। निश्चल
वृत्तिवाला।

[सं० पुं०] (सं०) एशिया और अमेरिका के बीच का
सागर।

प्रशाति = ल०, ३१।

[सं० स्त्री०] (सं०) पूरा शांति निश्चल होने का भाव।
आंदोलन आदि के अभाव का परि-
चायिका।

प्रश्न = का० कु०, १२०। का०, २४ ३३,

[सं० पुं०] (सं०) ५१, ८१ ११३, १२४। अ०, ३१

४७।

जिनासा, वह बात जो कुछ जानने
अथवा जानने के निमित्त कही जाय।
एक उपनिषद्। विचारणा विषय।

प्रसंग = का० ७४। ल०, ४७।

[सं० पुं०] (सं०) मन। बातों का परस्पर संबन्ध।

पूर्वापर संबन्ध। व्याप्ति रूप संबन्ध।
स्त्री पुरुष का संयोग। विस्तार।

प्रसन्न = का० ७१। क०, १५, २२, ३२।

[वि०] (सं०) का०, कु०, ६१ ११२। का०, ११७,

१६६, १८०, २२४, २४२, २४६।

वि०, ४ ६७। अ०, ३७, ६५। ल०,

३३, ६६, ७६।

पुनः, आह्लादित। सतुष्ट, अनुकूल।
स्वच्छ।

[सं० पुं०] (सं०) शिव, महादेव।

प्रसन्नता = का०, ११५, ११६, १६७, १७२।

[सं० स्त्री०] (सं०) १५, २२।

सतीष, सुष्टि। हृष। अनुग्रह। निमलता।

प्रसव = का०, ३२।

[सं० पुं०] (सं०) बच्चा जनने की क्रिया। प्रभूति।

जनन। जन्म। उत्पत्ति। बच्चा।

संतान।

प्रसव समर्पण = का०, ३०।

[सं० पुं०] (सं०) प्रसव हानेवाले का समर्पण।

प्रशसा = प्रे०, २२।

[सं० स्त्री०] (सं०) स्तुति, तारीफ, बड़ाई।

प्रसाद = का० कु०, ३७। का०, २५२। वि०,

[सं० पुं०] (सं०) १७१, १७२, १७३, १७४, १७५,

१७६, १८४, १८८, १८९, १९०।

प्रसन्नता। निमलता। स्वास्थ्य।

कोई वस्तु जो देवता को समर्पण का

जाय। बड़े लोगो क द्वारा प्रसन्न पुत्रा

में छोटी का दिया गया उपहार। काम्य

का बट गुण जिससे भापा स्वच्छ और

साधु होती है। शन्दालकार क अतगत

कामल वृत्ति। धर्म की पत्नी। मूर्ति

स उत्पन्न एक पुत्र।

[प्रसाद—हिन्दी के ब्याप्त कवि श्रीजयशंकर का
उपनाम। इनके समय में पातञ्जल
विवरण इस प्रकार है—

मूल नाम—बचपन—आरखडे। जयशंकर।

उपनाम—पहले 'कनाकर' फिर 'प्रसाद'।

जन्म तिथि—माघ शुक्ल १०, सं० १६४६ वि०।

निधन—प्रबोधिनी एकादशी, स० १९९४ वि० ।

जन्म—



प्रसादजी काशी में उत्पन्न हुए। व शिवरतन साहू सुपनी साहू के पीय थे। सुपनी साहू के घर सबका सम्मान होता था।

उनके पिता दबीप्रसाद जी थे। वे प्रसाद के पितामह बाबू शिवरतन साहू की परंपरा का पालन निष्ठापूर्वक कर रहे थे। महाराज बनारस के यहाँ जो कलाकर आते व उनमें बाद प्राय इनके यहाँ आते, चाहे वे कवि हों, भाट हों और चाहे वैज्ञानिक और सभी दबीप्रसादजी का जय मनाते सीटते। काशीनरेश यहाँ के बड़े महादेव थे और वे छोटे।

११ वर्ष की आयु में उन्होंने धारा क्षेत्र, भोकरेश्वर, पुनर, उज्जैन, जयपुर, ब्रज, भयोध्या आदि स्थानों पर अपनी माँ के साथ सत्कार यात्रा की। वहाँ के नमस्विन दृष्ट्या ने उनके मन को तुमा लिया जिसका व्यापक प्रभाव इनके जीवन और साहित्य पर भी पड़ा।

उनका पिता पहले ही रविवर्मा हो चुके थे। माँ का भी प्यार केवल १५ वर्ष तक पा सके। घर के कर्तव्यों और विधाता उनके बड़े भाई शम्भूराजी थे। शम्भूराजी का इनका अपूर्व स्नेह

था। वे इन्हें कुशल व्यवसायी के रूप में देखना चाहते थे। यही कारण था कि जब उन्हें यह पता चला कि जयधर दूकान पर बैठकर रद्दी बागजो पर बहिताए लिखा करते हैं तो वे रुष्ट हुए। प्रसादजी पर उनका ऐसा स्नेह था जसा बड़े भाई से छोटे भाई को बड़े सौम्य स मिलता है। उन्होंने प्रसादजी के निर्माण के लिये उनके कविता लिखने पर प्रतिबंध लगाया। किंतु जब अभ्यागतों ने उनका दाय्य प्रतिभा की उनसे प्रशंसा की तो उन्होंने उनपर से प्रतिबंध ही नहीं हटाया, उनके पढ़ने पढ़ाने की सुदूर व्यवस्था की। जहाँ तक स्कूली शिक्षा का प्रश्न है, सातवीं कक्षा तक हा वह स्थानीय कबीर कालज में शिक्षा प्राप्त कर सके थे। पिता चल बसे थे, स्कूल की पढ़ाई समाप्त हो गई। पर बाबू शम्भूरत्न ने इनके लिये घर पर ही अंग्रेजी और संस्कृत की पढ़ाई का अच्छा प्रबंध किया। दीनबधु ब्रह्मचारी जैसे सत्पुरुष को उन्होंने इनका अध्यापन नियुक्त किया। वे और उपनिषद् के प्रभाव न जाँ छाप प्रसाद पर छोड़ी है, वह दीनबधु ब्रह्मचारी के अध्यापन का प्रभाव है। प्रसादजी अपने परा पर रखे भा न हो पाए थे कि इनकी १७ वर्ष का आयु में बाबू शम्भूरत्नजी ने भी सबके लिये इनका साथ छोड़ दिया।

अब काशी के एक महान् प्रतिष्ठित परिवार ने उत्तराधिकारी के रूप में प्रसादजी थे। १७ वर्ष की आयु, वैभव और प्रतिष्ठा की महान् परंपरा, कच्ची गृहस्थी, घर में न पिता, न माँ, न बड़ा भाई—एक मात्र अवैध पुरुष। घर में विधवा भार्गवी थी। कच्ची गृहस्था, सबका बोझ विधाता ने उनके

सिर पर सा पटा। एमी ही दुदमायी विपन्न स्थिति में मुटुबिया, परिवार के मुमेच्युआ एव सबबिया का पदमन भी पूर्ण रूप से भर्त्ति पर अभिभार करने में लिये चला। १७ वर्ष के एक युवक के सिर पर ऐसी महान विपदाएँ एव साथ ही पड़ें और वह उह गह ले, यह साधारण व्यक्तित्व का कार्य नहीं।

उन्होंने बठिनाइया की दया, समझा, पर उनसे उन्होंने समझीता नहीं किया। जीवन और भरण जैसे प्रश्नों के रहते हुए भी वे अपने पथ पर चला रहे। बाधाओं से सपथ करते रहे। पहला विवाह उहे स्वयं करना पड़ा। दूसरा विवाह भी करना पड़ा। वे सासरी शादी नहीं करना चाहते थे। दूसरी स्त्री की एक मात्र निशानी भी उससे साथ ही समाप्त हो चुकी था। वह उससे प्रेम करते थे। पर तो वीरान पहले ही हो चुका था, मन भी वीरान हो गया। घर में विषया भाभी का जीवन दुख की अनंत रेखा की भाँति उनके सामने प्रस्तुत हुआ बना रहता था। भय व शादी नहीं करना चाहते थे। पर भाभी का अनुरोध से टाल न सके।

समाज में जिन लोगों से उनका संपर्क हुआ उनमें मुख्यतः साहित्यिक लोग ही हैं। उनके विषय में राय कृष्णदासजी ने लिखा है—

‘इही दिनों जयशंकरजी ने भी पहले ‘सायना’ की देखा। उन्होंने भी उसे बहुत पसंद किया कवल जबानी हा नहीं। एक दिन साण सुनामा की तरह कुछ छिपाए हुए। उसे बहुत छीना झपटी और हाँ नहीं के बाद बड़े हाव भाव से उन्होंने दिखाया। उन दिनों

उसका एमी ही घाँट की जि घनता रचनाएँ लिखने में बड़ा लग करते थे। वह एक मात्र गुपरी छाटा सी बाबा था, जिनमें बाग के लगभग मध्य गीठ उनका लिग हुए थे, मैंने बह्या की भाँति, गुंनर में। एव में का सध्या बगुन अभी तक नहीं भूरा। सिंतु मैं उन दिना याचना हा रहा था। मुझे अपनी गला पर इतना ममत्व और मायह था कि जरा भी उदार नहीं होना चाहता था। मैंने छूटन ही कहा ‘क्या गुरु भूका पर हाथ केरना था।’ व मरी सबीलता पहचान गए। कई दिन बाद कोई मुनासिब बात कहकर उमे उठा स गए और उन भावा में स बतियव का छंदबद्ध कर डाला। उन के भरना व प्रथम सस्तरणा का अधिरास उही बचितामा का मवलन है।’

थीरामनाथ गुमा ने लिखा है कि—

‘मैंने जावन में अपने महात्माओं और महापुरुषों का साक्षात् किया है साव जनिक् रूप से पात भी और भनात भी। इनमें तीन बार तो भर्यत उध्व कोटि क योगा थे और उनका घनासक्ति बड़ी ऊँची सीमा तक बढ़ी हुई थी। पर यह बात कि जावन के प्रत्येक क्षेत्र और रस में बूबकर भी, जीवन का अतिव्याप्तियों से भलग रहना, और अपने लक्ष्य और भानद में सदा तमय रहना, मैंने अपने जीवन में केवल दो ही आदमियों में देखा है—एक गांधीजी, दूसरे ‘प्रसादजी’। मैं जानता हूँ कि मैं बहुत बड़ा बात कह रहा हूँ, पर मैं उसकी जिम्मेदारी समझता हूँ। निस्तदेह इस वृत्ति का विकास दोनों में भलग भलग ढंग पर हुआ है, दोनों की साधना और उस साधना का व्यापकता में भी भेद है पर दोनों में प्रत्येक अवस्था में भानद

प्राप्त कर सकने की क्षमता दिखाई देनी है।'

प० रूपनारायण पाटेल ने उनके साथ रहकर उनमें जो गुण देखा उसका वर्णन वे इस प्रकार करते हैं—'पहली और सबसे बड़ी विशेषता उनमें यह देखी कि वह प्रत्येक सहृदय साहित्यिक के साथ आसपास प्रेम का व्यवहार करते थे। आजकल के अनेक लेखकों की तरह वह किसी प्रतिस्पर्धी से ईर्ष्या न रखते थे। उन्होंने कभी किसी की निंदा नहीं की। उनके मुख से मैंने उच्च मनुष्य के प्रति भाषा की कोई बुरा बात नहीं सुनी, जो उन्हें बुरा कहता था या उनकी प्रतिभा का कायल न था। प्रसादजी यथाशक्ति प्रत्येक साहित्यिक का सम्मान और सहायता करते थे। दूसरी विशेषता यह उनमें थी कि मैंने कभी उनकी श्रोणित होने नहीं देखा। यहाँ तक कि उनका एक बंगाली नौकर के कारण अथेष्ट आर्थिक हानि उठानी पड़ी परन्तु उन्होंने उसके लिये भी कभी कटुता नहीं की। तीसरी विशेषता यह पाई कि उनमें अभिमान नहीं था। आज के जमाने में ऐसी प्रवृत्ति दुर्लभ ही है।'

हिंदी के सुप्रसिद्ध विद्वान् तथा आलोचन स्वर्गीय प० नंददुलारे वाजपेयी उनके मित्रा में से थे। उन्होंने उनके व्यक्तित्व की जो आकांक्षा देखी, उसका अवलोकन कम महत्वपूर्ण नहीं है—'जो कोई किसी की आशा करता है वह अपने साथ प्रवचना करता है। जो अविव्य पर आस्था रखता है, वह अपने अंतःकरण का दुर्वसा प्रकट करता है। जो अपना कृति पर अविश्वास करता, वह अपना कौशल चाहता है। जो अपनी करनी से प्रसन्न नहीं है, ससार में उसे कभी प्रसन्नता नसीब न होगी। बनारसी रंग

से प्रसादजी का एक मात्र यही आशय था, किंतु मैं इसे समझता नहीं चाहता था। दुर्वसा तो मेरे अंदर थी। मैंने प्रसादजी का सर्व यही बनारसी रंग देखा। बाहर से उनका व्यक्तित्व देखकर कोई उनकी मुस्कान से मुग्ध होता, कोई उनकी व्यवहारपटुता और मंत्री से मोहित होता, किंतु उनके इस दिव्य, किंतु मोहक बाह्य के भीतर जाकर अपनी ही कृति में आनंद मानने-वाले, कविता की लिप्सा न रखनेवाले, अती युरी समीक्षाओं से समान रूप से तटस्थ रहनेवाले निःस्पृह तथा दिव्यतर प्रसादजी को बहुत कम लोगों ने देखा। मैं जब उन्हें पहचानने के योग्य हो रहा था, तबने मेरे स्वयं ही न रहे।' यह पूर्व ही स्पष्ट किया जा चुका है कि बनारस की मस्ती, उनकी गंभीरता, उनकी महानता के प्रसादजी प्रताक थे।

प्रसादजी की कौरा नियतिवादी और पलायनवादी कहना उनके व्यक्तित्व के साथ अश्याय्य करना है। उन्होंने आशय प० महावीरप्रसाद द्विवेदी की परवाह नहीं की। उनके संपादनकाल में सरस्वता में अपनी एक रचना 'असद आवाहन' छापवाने के बाद फिर कभी रचना नहीं भेजा। विपम आर्थिक परिस्थिति में अपने साहित्य को प्रकाश देने के लिये उन्होंने 'इंदु' का प्रकाशन कराया। 'शागरण' और 'हंस' उनकी प्रेरणा का परिणाम था। उन्हें प० महावीरप्रसाद द्विवेदी का ही विरोध नहीं सहन करना पड़ा, अपितु प्रारंभ में प्रेमचंद जैसे लोग भी उनके साहित्य के विरोधी थे। बाद में उनके व्यक्तित्व ने सबका अपना बना लिया।

प्रसादजी के घर के सामने अपना पारंपरिक

शिव मंदिर था। शिव के वे भक्त थे। विश्वनाथजी भा जान थे। शिव आनंद की प्रगम धारा में स्नान करनेवाले थे दिया हृदय के व्यक्ति थे। अपने परिचय के संबंध में हंस के आत्मवक्ता के प्रेमचरित्रों के विशेष आग्रह पर उन्होंने एक रचना दी। वह उनके जीवन मर्म के उद्घाटन में सहायक है।

आत्मवक्ता उनके बड़े जीवन की गह्रा में कहा गई क्या है। यह अत्यंत प्रभावशाली है। वे श्रीरा की मुने श्रीर देखनेवाले गभीर द्रष्टा श्रीर छटा थे। उन्होंने अपने भील जीवन में श्रीरों को देखा था। जीवन की प्रगति नीलिमा में असंख्य जीवन इतिहास का योग्य मलिन उपहास भी उन्होंने देखा था। यह सब होने हुए था वे अपना श्रीर से दृष्टि करनेवाले व्यक्ति नहीं थे। उन्हें अपनी मधुर भूतों का ज्ञान था, उनका उन्होंने अपने जीवन में परिष्कार करना भी सीखा था। इतना होने हुए भी उनका अपना आलापन उनके जीवन की सहज प्रवृत्ति थी।

जावन में चतुर्दिश विह्वलता से घिरे व्यक्ति के लिये आनंद का मूल्य समस्त सबसे बड़ा होता है। प्रसादजी ने बाध्य में सबसे आनंद की उपलब्धि की ही अपना साध्य माना है। उनका जीवन की भांति युग भी चतुर्दिश आक्रांत था बना से, पीड़ा से और अपनी आकुल परिस्थिति से। जावन के मध्याह्न में उनके ऊपर श्रेण का भार बढ़ गया था, इसलिए अपने व्यापार की धार में उन्होंने विषय ध्यान लिया किंतु साहित्य में वे विरत नहीं हुए।

उनका जावन इस बात का साक्ष्य है कि वे दूसरे विचारों के साहित्यकारों का आदर करने थे। उनका यही मर्म मना के साहित्यकारों के हाथ में स्वास्थ

का भी वे ध्यान रखते थे। लोगों को यह आश्चर्य लगता था कि वे कद और किस तरह लिखते हैं।

अवरोधी का ताता उनके समुल्ल था। इन अवरोधों के बावजूद उन्होंने चतुर्दिश निष्ठा के साथ काम लिया और जिस क्षण में उन्होंने चरण रखा, वही अपना स्थायी प्रभाव छोड़ दिया। वह उन वातावरण की देन है जिस वातावरण तथा संस्कारों की गोद में प्रसाद का निर्माण हुआ था खेले, कूदे, पढ़े और बड़े हुए थे।

मित्रों के बीच में वे खुलकर हसते थे। परसु सामाजिक मान अपमान एवं मर्णा का वे ध्यान रखते थे। प्रसादजी ने नोबेल पुरस्कार विजेता नागुची के रवींद्रबाबू के यहाँ कलकत्ता आने पर प्रमत्त से स्पष्ट ही कहा था कि यदि नागुची रवींद्र बाबू से मिलने कलकत्ता आ सकते हैं तो बाशी में प्रेमचंदजी से भी मिलने का संकल्प है।

जब विसा बात की वे मन में हृदयपूर्वक ठाक समझ लेते तो उनसे विचलित भी नहीं होते थे। कहना न होगा कि सभी तयारा पूरा हो जाने पर भी जब जावन के अंतिम समय में क्षण से आक्रांत हुए तो राय साहब के बगीचे में गारनाथ नहीं गए। न जाने का कारण जो रहा हो, कुछ लोगों ने इस नियतिवादी बताकर समाप्त किया है। किंतु निपट का जितना स्थान जीवन में है उनका ही प्रमाण मानते हैं, न कि हाथ पर हाथ रख भाग्य पर सब कुछ छोड़ दें।

जीवन के अंतिम क्षणों में रोग ने उनपर चढ़ाई की। यन्मा में वे पाश्चिंत हुए। यन्मा का उन्होंने जीवन भी दानिया और घुंघरू का अवस्था में गंगार में चढ़ा दिया। किंतु इतनी धारा आनु

मे उनके व्यक्तित्व ने जिम साहित्यिक एवं सांस्कृतिक निर्माण का कार्य किया है वह निश्चय ही अत्यंत गौरवशाली तथा उनके उस वृत्तित्व का आख्यान करता है जिम वृत्तित्व का गौरव एडी वाली के साथ ही स्थापित रहेगा, हममें दो मत नहीं हैं। वे सभा सोसाइटीया में तो न जाते थे, किन्तु सम्मेलन की मस्यापना के आयोजन कर्ताओं में से एक थे। नागरीप्रचारिणी सभा के उन्मयन और विवास के वे सक्रिय सहयोगी थे। उससे वे उप समापति भी थे। उन्हें काम से मनलग था, नाम से नहीं।

प्रसादजी की अपनी कमजोरियाँ भी थी, किन्तु उन कमजोरियाँ पर एक तपस्वी व्यक्ति की भाँति, एक साधन की भाँति उन्होंने सदैव हठा विजय पाने का प्रयत्न किया।

वे साहित्य का जीवन का साधन माननेवाले व्यक्ति थे। उन्होंने साहित्य का रचना की कभी भी आर्थिक भाव का साधन नहीं बताया। किसी पत्रपत्रिका से एक पसा भी उन्होंने नहीं लिया। काशी नागरीप्रचारिणी सभा तथा हिंदुस्तानी एकेडमी से मिल पुरस्कारों का तथा पहली बार मिला रायस्ती की उन्होंने सभा की दक्षिण। उनका पुस्तक का प्रकाशक भारतीय अक्षर है। उससे मन्जर ५० बावस्पाति निपाठा न अखिल भारतीय आकाश वाणी से उनके संबंध में अपना वाता में कहा कि—

प्रमाणों के लिखने में स्वात सुखाय मूलमत्र था। वे अपने साहित्य का अपने बुरे से बुरे समय में भी अथ प्रति का साधन नहीं बनाना चाहते थे। फिर भी कभी कभी अपने ही

साहित्यिक की कृपा से अथ लिखा जाता था। ऐसे आए हुए अनाहत अतिथि का निमी दूसरे की सौंपकर ही उन्हें चैन मिलता था। उन्होंने अपनी अनेक पुस्तकें व प्रकाशकों से कई रायस्ती नहीं ली। अपने जीवनकाल में मिली रायस्ती की रकम भी उन्होंने अपने निजी काम में खर्च नहीं की। उन्होंने अपने प्रकाशकों को घावा दे रखा था कि उनका कोई पुस्तक किता पुरस्कार प्रतियोगिता में न भेजी जाय। इसी के परिणामस्वरूप हिंदी साहित्य सम्मेलन को यह नियम बनाना पड़ा कि कामायनी' गरीब कर ही प्रतियोगिता में भेजी जाय। खड़ी बोली का वह सर्वप्रथम काव्य था जिसपर मंगला प्रसाद पारितोषिक प्राप्त हुआ।

जिम समय वे काशी में साहित्य सत्र के लिये उद्यत हुए और अपना प्रयोग आरंभ किया उस समय तथा उनके जीवन भर काशी में ऐसे साहित्यकार वर्तमान थे जिन्होंने अपनी कृतियों द्वारा साहित्य के इतिहास में नई चेतना जगाने का कार्य किया है। उनके बीच में रहकर वे उनसे प्रभावित न हुए, यह उनके महान् व्यक्तित्व का परिचायक है। कहना न होगा कि उस समय काशी में सभी साहित्यकार भौतिक व्यक्तित्ववाले थे। बाबू श्यामसुन्दरदास हिंदी का उच्च स्तर पर सजान के लिये साहित्य और साहित्यकारों का निर्माण कर रहे थे किन्तु उनका क्षेत्र आलोचना मात्र था। हरिऔधजी भी थे, कवि, आलोचक लेखक, उपपासकार, पर विशेष रूप से उनकी प्रतिष्ठा कवि के रूप में है। उनकी कविता उपदेशात्मक नकाशवाजी वाली थी, यद्यपि था अच्छी। रत्नाकरजी प्रजभाषा के समर्थ महान् कवि थे, पर युग उन्हें

पीछे छोड़ चुका था। प्रेमचंद जनजीवन के कलाकार की भाँति, जिसमें सबल प्रचारक का स्वर बमजार नहीं था, हिंदी के कथा साहित्य का निर्माण कर रहे थे। मोस्वामी किशोरीलाल रसमय हावर मन की मोहनेवाली कथाएँ गढ़ रहे थे। जामुनी और ऐयारी कथाओं के स्रष्टागण भी विद्यमान थे। आचार्य रामचंद्र शुक्ल शास्त्रीय समीक्षा दे रहे थे। राय ठगूदास कहानियाँ और गद्यगाथा लिख रहे थे। उष की बतुमुत्ती प्रतिभा लोगों को आकर्षित कर रही थी। पंडित शांतिप्रिय कविता और आलोचना लिख रहे थे। श्रीरघुदेव प्रसाद गौड़ अनूयात्मजी आदि लोगों की हंसा रहे थे। ५० विनीदशंबर व्यास छोटी छोटी कहानियाँ लिख रहे थे। ऐसी स्थिति में बागी में उनके जीवनकाल में सभी प्रतिभाएँ जो बमबूझ रही थी अपनी विविधता लिए हुए थी तथा उनमें स कुछ की ऊँचाई तो आज भी अपने स्थान पर सर्वोपरि है। ऐसी परिस्थिति में सभी क्षेत्रों में उन्नति प्राप्त अपना देन दी, जो अपने स्थान पर आज भी प्रतिष्ठित तथा श्रेष्ठ है।

कथा के क्षेत्र में वे हिंदी के द्वितीय उत्थान के प्रथम कथागीवार ठहरते हैं। गद्य में निहित उनका इतिहास स्वयं स्वयं पर जल बालमय भस्मर है वह निगीत गद्य गीता में नहीं मिलता। कविता के क्षेत्र में वे हरिप्रदीप के बन्त भाग हैं ऊर्ध्व व्यापकता समा दृष्टिमान। जहाँ तक निर्यात का प्रश्न है गुप्तज्ञा के निर्यात हिंदी में सर्वोपरि गौरवशाली है हिंदु प्रजापति के जा निर्यात प्रजापति हुए उनका आध्यात्मिक गौरव है। वे उनका काव्य का धर्म्य स्मृति करते जा गद्य है। गद्य

सबका उनके निबंध भी परम उत्कृष्ट हैं। उनकी व्याख्याप्रणाली साहित्यिक एवं शास्त्रीय दोनों के समिलन से साकार हुई है। उपन्यास के क्षेत्र में वे प्रथम यथायवादा उपन्यासकार हैं। बवाल उसका जीवित प्रमाण है। नाटक के क्षेत्र में उनका गौरव सर्वाधिक दीप्त है। कवि के रूप में वे क्या हैं, और कसा है उनका शब्दभंडार इसका वर्णन तो इस पुस्तक का विषय है। इस प्रकार उ होने अपने वातावरण से लिया और दिया भी।

वे भारतेंदु की काव्यधारा से परिचित थे। द्विवेदीजी के काव्य सिद्धांतों पर उन्होंने मनन चिंतन किया था और उनके प्रयोग का परित्याग देखा। दोनों काव्य धाराओं की अस्मिताओं और बुराईयों की परख उन्होंने की थी। वे केवल केशव कस्तूरी के पारसी नहीं थे, हृदय और मन के भी पारसी तथा जीवन और जगत् का द्रष्टा थे। वे भारत की मूल सांस्कृतिक एवं साहित्यिक भाव धारा से अवगत थे। उन सत्कारों का उन्होंने अपने व्यक्तित्व के द्वारा नए युग के अनुरूप रचा, जो अत्यंत गौरवशाली है।

प्रसाद की कृतियाँ—

(१) काव्य

१—शोराब्ध वास—मद्र १९१०।

२—वातन कुमुद—प्रथम संस्करण १९१२ ई०,
द्वितीय परिवर्धित संस्करण 'विशामार'
प्रथम संस्करण के मानर और नृनाय,
गद्यधित संस्करण १९७७।

३—प्रेम पथिक—प्रथम संस्करण, पुनर्द
१९१४।

४—विशामार—१९१८ ई०

प्रथम संस्करण में निम्नलिखित नम द्रव्य ५—

(१) वातन कुमुद

(२) प्रेम पथिक

- (३) महाराणा का महत्व
- (४) सम्राट् चंद्रगुप्त मौर्य—१९०९ ई० ।
- (५) छाया—परिवर्द्धित ।
- (६) उर्वशी चतु—
- (७) राज्यश्री—१९१४ में प्रथम संस्करण ।
६३ वर्षों ६, १७४ १ विवरण १,
जनवरी १९१५ में प्रकाशित ।

(८) कल्याण—

(९) प्रायश्चित्त—

(१०) कल्याणपरिणय — नागरीप्रचारिणी
पत्रिका, भाग १७, सख्या २, सन्
१९१२ । 'चित्राधार' का द्वितीय सप्तो
धिन परिवर्द्धित संस्करण सन् १९२८ ।
इसमें प्रसादजी की नाम वष लक्ष की
ही रचनाएँ हैं ।

५—भरना—प्रथम संस्करण, अगस्त १९१८,
सन् १९२७ में सप्तोद्धित एवं परिवर्द्धित
द्वितीय संस्करण ।

६—मौलू—साहित्यमदन चिरगाव आमी स
सन् १९२५ में प्रथम संस्करण । सन्
१९३३ में भारती भंडार, प्रयाग स
संशोधित एवं परिवर्द्धित द्वितीय-
संस्करण ।

७—कल्याण—१९२८, भारती भंडार ।

८—महाराणा का महत्व—१९२८, भारती-
भंडार ।

९—सहर—१९३३, भारती भंडार ।

१०—कामायनी १९३४, भारती भंडार ।

(२) काव्येतर

उपन्यास—काल—१९२९ ई० ।

तिली—१९३३ ई० ।

इरावती (अपूर्ण) । मृत्यु व उपरात
प्रकाशित ।

कहानी संग्रह—छाया—१९१२ ई० ।

प्रतिष्ठा—१९२६ ई० ।

आकाशदीप—१९२९ ई० ।

माँझी—१९३३ ई० ।

हृदय—१९३६ ई० ।

नाटक—मेज्जन—१९१० ई० ।

कल्याणपरिणय—१९१२ ई० ।

कल्याण—१९१२ ई० ।

प्रायश्चित्त—१९१३ ई० ।

राज्यश्री—१९१४ ई० ।

विशास—१९२१ ई० ।

अज्ञातशत्रु—१९२२ ई० ।

कामना—१९२४ ई० ।

जनमेजय का नागयज्ञ—१९२६ ई० ।

संदर्भ—१९२८ ई० ।

एक घूट—१९३० ई० ।

चंद्रगुप्त—(१९२८, ३७ ई०)

धुवस्वामिना—(१९३३ ई०) ।

अभिनि (अपूर्ण)

नियमसंग्रह—नाट्य और कला तथा अन्य नियम ।

प्रसाद संगीत —

'प्रसादसंगीत' का प्रकाशन भारती भंडार,

प्रयाग स सं० २०१३ में हुआ है ।

प्रसाद संगीत' में कविताओं का

संस्करण और संपादन प्रसाद ने किया

है । प्रसाद के नाटकों के गीतों एवं

चतुदशपदियों का यह संग्रह है ।

यह स्तुत्य काय अपना महत्व रखता

है । महत्व इसलिये कि गीतों के क्षेत्र में

प्रसाद के गीतों की यह माला न केवल

उनके विकासक्रम पर प्रकाश डालता

है अपितु काव्य के क्षेत्र में यह एक

अभाव का पूरति करती है । इसमें

नाटकों में आई ११९ कविताएँ तथा

२१ चतुदशपदियाँ हैं । नाटकों में भी

तान चतुदशपदियाँ हैं । ये रचनाएँ

सन् १९१० से सन् १९३५ तक का हैं ।

'प्रसाद संगीत' का अध्ययन हम निम्नलिखित

वर्गों में प्रस्तुत करना चाहते हैं ।

१ नाटकों के गीत

२ सौन्दर्य या चतुदशपदियाँ

(१) नाटकों के गीत—

प्रसाद ने अपने नाटकों में भी गीतों का प्रयोग

किया है । प्रसाद के नाटकों की रचना

१६१० से आरम्भ होती है और १६३३ में समाप्त होती है। इस प्रकार नाटकों के मीत २३ वर्ष की विभिन्न अवधि में लिखे गए हैं। यद्यपि नाट्यरत्ना के नये विकासक्रम में धार्मिक युग में मनोविज्ञान नाटकों में मीत को स्थान नहीं देता तो भी प्रसाद ने संस्कृत की प्राचीन परिपाटी का अनुसरण किया है। अपनी भावुकता तथा दृश्य काव्य का सरसता के कारण उन्होंने नाटकों में भरसक उपयुक्त अवसर पर और उपयुक्त पात्रों द्वारा गीता का विधान कराया है।

हमें उन गीतों के सौंदर्य का अध्ययन करना है। नाटकों में उनकी उपयुक्तता पर सामान्यतः विचार नहीं करना है। हम प्रत्येक नाटक के गीतों पर अलग अलग विचार करेंगे।

विशाख (१६२१ ई०) में प्रायः समापन में पद्य और गीतों का प्रयोग हुआ है। नाटक का आरम्भ हठा प्रतीत स्मृति के गान से होता है। इसमें प्रणय सबंधी गान हैं, प्रवृत्ति सबंधी गान हैं और गाता सही स्वगत वनन का भी नाम लिया गया है। उपदेश भी गीतात्मक हैं। इसके पात्र गायक हैं। विशाख की कविताएँ सामान्य हैं। इसमें ३३ कविताएँ निर्वाह छंदों में हैं।

अज्ञातशत्रु (१६२२ ई०) का आरम्भ भी गीतों से होता है। इनमें अश्वकाश गीत व्यस्तारव है जिनमें जगत् का नश्वरता प्रणय की प्रतीति, दुर्गिता के अंगूठे मंगीत ने स्वर नृत्य का ताल पर है। एकाध गीत ठी करणा का मजीब मूर्ति के रूप में सामने आता है। भाव, भाषा और शली सभी दृष्टि से गीत अच्छे हैं। समस्त कविताओं का संख्या २३ है।

कामना (सन् १६२४ ई०) एक रूपक है

जिनका प्रधान पात्रा कामना मानव्य गीतों द्वारा परिचयगत, 'करुणा' का वगन, विरह हृदय का शालता, विनीतलीला, विलासलासता, प्रवृत्ति सत्रा वगन करती है। ये कविताएँ विभिन्न भावा में मग्न जोड़ने में सहायक हैं। ये कविताएँ रसमस्कार रजित हैं। इनकी संख्या २६ है।

जनमेजय का नागयज्ञ (सन् १६२६) का छायावाचक गीतपद्धति पर इसकी रचना है। नृत्य और स्वरमय भावनाओं वाला राष्ट्रीय गीत भी इसमें है। इनके गात देशभक्त और राष्ट्रीयता से पूर्ण हैं। इनके गाता में विश्वात्मा का वणन भी है प्रेम का जय भी है उद्बोधन गीत भी है। इस प्रकार के विविध रूप, रस और गंधवाले गात जनमेजय के नागयज्ञ में हैं। इसमें कुल १० कविताएँ हैं।

स्कन्दयुग (सन् १६२८ ई०) की कविताएँ ऐसे लोको के द्वारा गाई गई हैं जिनका जीवनका गायन पर निर्भर है। इस लोको सामान्यतः मदनरे शृंगार गीत ही सुनाते हैं। दूसरे प्रकार के गीत मातृगुण द्वारा गाए गए हैं जिनमें भावुकता अपनी सारा शक्ति के साथ केंद्रित हो प्रस्तुति हुई है। दसना जसी पात्रा इस नाटक में है जो संगीत को प्रत्यक्ष से मानता है। स्कन्दयुग ने दसना के गान मंगल की राग रागिनिया में बंधकर जावनशान की भावभूमि पर अपनी अवतारणा करते हैं। साथ ही ये मिलन और विरह की धनीभूत व्यंजना का संगतमयी अभि व्यक्ति भी करते हैं। इसका गात हमारे गौरव हैं। देशभक्त का गात भी कवि ने सशक्त स्वर में सुनाए हैं। धार्यगीत का गाया भी कवि ने उपस्थित की है और जावन म आनंद का प्रतिष्ठा का उपक्रम भी इन गीतों में है।

चन्द्रगुप्त (१६३१) ने गीत अपने स्थान पर अनुपम है।—

‘नत भस्तक यव वहन करते।
 यौवन के धन, रस जन ढरते।
 हे साज भरे सौंदर्य।
 बता दो मीन बने रहते हो क्यों।’

सौंदर्य का ऐसा दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है।
 यौवन का माधुरीकुञ्ज, कोकिल के
 बोल, मधु की मधुरिमा, मतवाली
 वपित रात, प्रेम की बहती बात,
 सभा कुछ इन गीतों में है। भाषा
 निराशा, प्रेम-बलिदान सब कुछ इनमें
 ढील पड़ेगा। प्रणय गीत भी हैं और
 गीतों में रहस्यात्मकता भी है। हिंदा
 का सर्वोत्कृष्ट सांस्कृतिक राष्ट्रगीत भी
 इसमें है। अलका गाती है

हिमाद्रि तुम श्रृंग से
 प्रभुद्वन्द्व भगती
 शक्यप्रभा समुज्ज्वला
 स्वतन्त्रता पुकारता

अमल्य वीरपुत्र हो, हठप्रतिष्ठ सोच लो,
 प्रशस्त पुण्य पथ है बड़े चलो, बड़े चलो।

असह्य कीर्ति रश्मियाँ
 विकीर्ण दिव्य दाह सी
 सपून मातृभूमि के
 इकी न शूर साहसी।

भराति स य सिन्धु म, सुबाह्वाम्नि स जलो
 प्रवीर हो, जयी बनो, बड़े चलो, बड़े चलो।

इसमें कुल १६ गान हैं।

ध्रुवस्वामिनी—(सन् १९३४) इन ऐतिहा-
 सिक रचना में दर्शनप्रधान कविताओं की
 आलाकर्मरी सरस सृष्टि है। मुख-
 दुःखवाले मगलमय इन गीतों में
 विराग की, मगल की, प्रकृति की
 रत्नजडा वागा प्रस्फुटित हुई है,
 जिसमें शृंगार का पूर्ण निखार है।
 ध्रुवस्वामिनी में केवल चार पद्य हैं।

एक घूट की छ तथा राज्यश्री की अय ६
 कविताएँ भी ‘प्रसादमगीत’ में हैं।

ममवेत रूप में इन नाटकों के गीतों पर
 विचार करना अधिक सुंदर होगा।
 सबप्रथम हम उनके रचना शिल्प को
 लेंगे। इस दृष्टि से ये गीत नई भावभूमि
 की स्थापना करते हैं। यद्यपि गीतों को
 मगीत के तन्त्र-ताल पर बाधने का
 मोहक प्रवण निराताजी ने बड़े व्यापक
 पमाने पर किया था तो भी इन कुछ
 गीतों में मुर, तय रागरागिनी का
 समावेश कम जनप्रिय भित्ति पर
 स्थापित नहीं होता। नाटक में
 प्रयुक्त गीतों में जहाँ नृत्य और
 गायन का समुक्त निधान होता है वहाँ
 कवि का आश्रय बड़ा गहन हो जाता
 है। मुर-तय तथा ताल का समुचित
 सम्मेलन वहाँ परम आवश्यक होता है,
 अथवा रस की पूर्ण निष्पत्ति नहीं हो
 पाती। इनके साथ ही राग रागिनीया
 का समन्वय इसलिये भी आवश्यक
 होता है कि नाटक के गीत श्रव्य और
 दृश्य दोनों होने हैं। प्रसाद ने इन
 तथ्या का ध्यान रखा है। यहाँ काव्य
 कर्म और कठिन हो जाता है क्योंकि
 नाटकों में चरित्र का विकास भी
 सामान्य इन गीतों के आधार पर
 कवि को करना पड़ता है। प्रसाद के
 गीतों के गायक भक्त पानो का शब्द-
 संस्कार उनके गीतों में प्रसिद्ध होता
 है। प्रसाद ने गीतों के लिये जिन
 राग-रागिनीयों का उपयोग किया,
 उनमें भरवो, दादरा वजली, बहरवा
 आदि का विधान सुंदर हुआ है। छंद
 विविध हैं भावनाप्रा के अनु रूप।
 हिंदी में जितने भी नाटककार हुए
 उनमें कत लोगों में प्रसादजी का एक
 ऐसा है, जिनका गीत, नाटक को छाया
 सत है और टेनीज की दृष्टि से भी

ऐसी भावभूमि पर स्थापित होने हैं, जिनकी स्वतन्त्र मौलिक सत्ता हिंदी की गीत परंपरा में स्थापित होता है।

जहाँ तब भावनाओं का प्रश्न है, प्रसाद के गीत मासल सौंदर्य के प्रति जहाँ मादक अनुप्राण के स्वर सुनाते हैं, वही उनमें भावोच्छ्वास की गभीर विह्वलता है। यह विह्वलता विश्रुत नहीं अनुप्राण के गभीर मनोविश्लेषण पर आढस है। प्रेम और प्रणयजय समस्त सूक्ष्म भावों का काशी की मस्ता के समान सरस और गभीर रूप में प्रसाद ने वणन किया है। इन गीतों में भावा की मृदुता के साथ साथ कवि के व्यक्तित्व का मौलिक छाप है। जो लोग प्रसाद के गीतों में 'ससज्ज और सलज्ज अवयुक्त' देखकर घबड़ाते हैं, उन्हें नाटकों के ये गीत देखने चाहिए। इन गीतों में जी छायावाद का काव्यकौशल अपने चरम उत्कृष्ट पर मिलेगा किंतु भावा की दुर्लभता इनमें नहीं। अनेक को इन गीतों में परम सत्ता का दर्शन भी हो जाता है। पर अपनी दृष्टि में वह परम सत्ता न होकर प्रसाद का गभीर चिंतन है, जीवन का दर्शन है, जो अलौकिक नहीं लौकिक है। अनेक ऐसे भी हैं जो भावुकता और आवेश की ही प्रगीतों की आत्मा धीवित करते हैं, किंतु अपने देश के गाता की शक्ति में गभीरता और चिंतन का सनातन योग रहा है। पश्चिम के विशिष्ट गीत भी इसमें अपवाद नहीं।

भावनाएं चित्रमय, ध्वनिमय रमण्य होकर अपना मूल सत्ता स्थापित करने में सफल हुई हैं। इनमें पाँच चतुश पदियाँ हैं जिनपर आग विचार किया जायगा।

नाटकों में अनेक गीत राष्ट्र राष्ट्रीयता और मानवता से संबंधित हैं। प्रसादजी

सांस्कृतिक व्यक्तित्व के गंभीर प्राणा थे। उनके राष्ट्रीय गीतों में अंतर का ध्वनि एक गंभीर सत्कारनिष्ठ चिंतन की भांति व्यक्त हुई है न कि मंच का सरती भावुरतामया चंचल परिवर्तित भाव्यता का तरीका। इस दृष्टि से यदि देखा जाय तो छायावाद कवियों में प्रसाद और निराला दो ही "यन्त्र सांस्कृतिक राष्ट्रीयता के सदेशग्राहक" के रूप में दृष्टिगत होंगे। निरालाजी की सत्कृति शारदा मयी है और प्रसादों का पुनरुत्था नमया। इस दृष्टि से प्रसाद अप्रतिम राष्ट्रीय कवि भी ठहरते हैं जिनकी राष्ट्रीयता क्षणिक नहीं, समयोपयोगिता वादी नहीं, युग युग के लिये भारतभूमि के निवासियों में जागरण और आत्म सदेश की प्रेरणा जगाती रहेगी।

प्रसाद का नाटकों के गीत, इन दोनों दृष्टियाँ से, खड़ा बोला का गीत परंपरा की नई भावभूमि पर खड़ा जाते हैं जिस भावभूमि पर निराला का आंतरिक और किमी के गीत नहीं रखे जा सकते, क्योंकि उनमें भारतीय भावपरंपरा है शेष की मृदुलता है, सनातन भावा का सांस्कृतिक उच्च वास है, लय में लान करने की क्षमता है और है साधारणीकरण का समुत्त तत्व।

(२) सॉनेट या चतुर्दशपदियाँ—

'प्रसादनगीत' में श्रीरत्नशंकर प्रसाद ने 'एक बात' में लिखा है कि 'इस सग्रह में पिताजी की चतुर्दशपदियाँ एक उनके नाटकों के समस्त गीतों का सग्रह हैं।'

चतुर्दशपदी के दो मध्य हिंदी में लगाए जा सकते हैं। एक मध्य है चौदह पाँक्त की कविता और दूसरा है सॉनेट (Sonnet)। पहले मध्य के अनुसार निम्नलिखित ३० चतुर्दशपदियाँ इस सफल में हैं—

१ हृदय के कोने-कोने से	(विशाल)	प्रसाद संगीत, पृ० ४०	
२ अलका की किस	(अजातशत्रु)	" " ६०, माधुरी, व० ४, खं० १	स० २५, २५
३ चल बगत वाला अचल से	(")	" " ६३, " " स० २, १६२६	
४ ससृष्टि के सुंदरतम	(स्वदगुप्त)	" " ८४ सुधा, सितंबर २१	
५ सब जीवन बीना जाता है	(")	" " ६१ इंदु, मार्च २७ ।	
६ आरु धूम की प्र्याम	(")	" " ६६ मनोरमा, स० २, १६२७	
७ जावन वन में उजियाली है	(एक घूट)	" " १०३	
८ जलधर की माला	(")	" " १०४	
९ तुम बनव कररण	(चद्रगुप्त)	" " १०६	

ये तो नाट्य की चतुदशपदियाँ हुई । धर्म चतुदशपदियाँ क्रमानुसार निम्नलिखित हैं—

१० सराज	(इंदु मार्च १९१२)	प्रसाद संगीत	पृष्ठ	१२३
११ खोलो द्वार	(, जनवरी १९१४)	"	"	१२४
१२ रमणी हृदय	(,, " ")	"	"	१२५
१३ प्रियतम	(,, सितंबर ,,)	"	"	१२६
१४ मेरी बच्चाई	(, अक्टूबर ,,)	"	"	१२७
१५ हमारा हृदय	(इंदु जनवरी १९१५)	प्रसाद संगीत	पृष्ठ	१२८
१६ प्रत्याशा	(" फरवरी ")	"	"	१२९
१७ अर्चना	(" " ")	"	"	१३०
१८ स्वभाव	(" मार्च ")	"	"	१३१
१९ वसंत राधा	(" मई ")	"	"	१३२
२० दशन	(" अगस्त ")	"	"	१३३
२१ मुख भरी गीद	(" सितंबर १९१६)	"	"	१३४
२२ स्वर्ण ससार	(चाद, नवंबर १९३५)	"	"	१३५
२३ दीप	(करना) (माधुरी वर्ष १, पृष्ठ १, सन् १९२२)	"	"	१३६
२४ गान	(बानन कुसुम)			
	तीसरा मस्करण			
२५ मनुहार	(गहर) (माधुरी, मार्च १९३३)	"	"	१३७ ।
२६ प्राथना	(करणाख्य) (इं, फरवरी १९१३)	"	"	१३८ ।
२७ पाइबाग	(करना) (चित्राधार प्रथम मस्करण)	"	"	१३९ ।
२८ नही डरते	{ बाननकुसुम } (चित्राधार " ")	"	"	१४० ।
	{ द्वितीय मस्करण }			
२९ महारवि	{ बाननकुसुम }			
तुलसीनाम	{ तृतीय मस्करण }	(तुलसी प्रयावन्ती, मया, १९२३)	"	१४२ ।
३० नमस्कार	(बाननकुसुम) (इं, जून १९१३)	"	"	१४३ ।

चौह पत्तिवाली इन कविताओं पर विचार जगह जगह पर पहले रिया जा चुका है।

प्रसादजी का चतुदशपदियों की ओर इधर श्रीविश्वोरोलाल गुप्त ने ध्यान आकृष्ट किया और वे मानेंते के अथ म इसका प्रयोग करते हैं। 'इदु' द्वारा श्री लोचनप्रसाद पांडेय ने इधर हिंदी का ध्यान मानेंते का धार आकृष्ट रिया।

प्रसादजी ने इस संबंध में अपने विचार एक पत्र में व्यक्त किया था—

'चतुदशपदी कविता हमने तीन छंदों में लिखा है। इदु की प्रतियों में आप उद्देश्य सकते हैं।'

यह लोचनप्रसाद पांडेय के निम्नलिखित प्रश्न का उत्तर था—

हिंदा में Sonnets (चतुदशपदा कविता) लिखे जाय या नहीं। Sonnets के लिये मात्रावृत्ति में से कौन सा छंद चुना जाय ? क्या यही वीर' छंद ? इसमें 'तुक' का क्या नियम हो ? क्या अग्रजों और बगला शलो पर हिंदी में भी तुक रहे।'

इन दोनों के प्रश्न और उत्तर दख लेने के पश्चात् यह सहज ही कहा जा सकता है कि चतुदशपदी का सीधा और सरल अर्थ सॉनेट है। यहा अग्रजों और बगला का नाम लिया गया है। सॉनेट की बगलावाली प्रणाली अग्रजों पर आधारित है। 'तुक' की बात भी स्पष्ट आई है। इसलिये अनुकूल उन पदों को सॉनेट नहीं माना जा सकता जिसमें सयोग से चौह पत्तियाँ मात्र आ गई हैं। हिंदीवाले सॉनेटकारों के लिये उस समय बगला, उडिया और अग्रजों का ही द्वार सॉनेट के लिये खुला था, अतएव सॉनेट के संबंध में निवेदन करने का पश्चात् ही प्रसाद और सॉनेट

विषय पर कुछ निश्चय अधिक समीचन होगा।

सॉनेट—चौह पंक्ति का कविताओं का सप्रवेश चतुर्दश के मतगत होता है। इन पत्तियों में तुक की अनिवार्य प्रथा है। तुक प्रणाली अलग अलग भाषाओं तथा विभिन्न कवियों में भिन्न भिन्न होती है। सामान्यतः चतुदशपदा के लिये जिस छंद का उपयोग किया जाता है, वह छंद अपनी भाषा के प्रमुख छंदों में से एक होता है। छंदविशेष मात्र सॉनेट का अनिवार्य लक्षण नहीं माना गया पर एक भाषा में एक कवि एक ही छंद में प्रायः सॉनेट लिखता है।

पश्चिम में सॉनेट का भारंभ इटली से होता है। पेट्रार्क (Petrarch) वहाँ इस पद्यति का प्रवर्तक था। इस पद्यति में तुक निम्नलिखित प्रणाली पर रहता है—

पंक्ति	तुक	
१	a	
२	b	
३	b	
४	a	
५	a	
६	b	
७	b	
८	a	
९	a	
१०	d	तुक या [c d
पंक्ति	तुक	तुक
११	a	[c
१२	d	[c
१३	c या	[d
१४	d	[c

पेट्रार्कन पद्यति का प्रयोग इंग्लैंड, फ्रांस, अलेक्जेंडरिया में सामान्यतः रोमांस साहित्य के लिये किया गया। विभिन्न

दशो के प्रतिभासपन्न कवियो न
भिन्न रूपा म इमका प्रयोग किया
है। यह विभिन्नता तुका का लेखर
है। किया ने—

पक्ति	तुक	पक्ति	तुक
६	c	१२	c
१०	d	१३	d
११	d	१४	c

और किसी ने—

पक्ति	तुक	पक्ति	तुक
६	e	१२	e
१०	e	१३	d
११	d	१४	e

तुक के उपयुक्त क्रम को आधार बनाया।
पहला छाठ पक्तियां के तुक का क्रम
यथापूर्व बना रहा।

सानेट के दूसरे रूप का प्रवक्त गेम्सपियर
(Shakespeare) है। हमने सानेट
में तुको का क्रम निम्नलिखित रूप
में रखा—

	पक्ति	तुक
	१	a
पद १	२	d
	३	a
	४	b
	५	c
पद २	६	d
	७	c
	८	d
	९	e
पद ३	१०	f
	११	e
	१२	f
अन्तिम	१३	g
अद पत्नी	१४	g

गेम्सपियर सानेट पद्धति को पल्लिजार्मियन
या सप्रजी सानेट पद्धति और पूर्ववर्ती

का पटाकन, इटैलियन या बलसिकल
सानेट पद्धति व नाम से लागू सबाधित
करते हैं।

तेरन्वी शताब्दी में ही सानेट का आविष्कार
हो चुका था। इसके आविष्कार का
अथ मिमिलियन पद्धति के कविया
का है। यद्यपि दान (Dante)
तथा उसके ममतामयिक साहित्यकारों
ने भी इसका प्रयोग किया है।

बाद में पटाकन ने इसका रूप तथा तुक गाना की
मरमाय स्थापना का। इसका प्रथम
प्रयोग उमा छपनी प्रेमिका (Sura
denova) के प्रति मयादित प्रमानु-
भूते व्यक्त करने के लिये 'राइम'
(Rime) में किया। इस सानेट
पद्धति का प्रयोग सालहवीं शताब्दी के
प्रारम्भ तक केवल इटली में होता रहा।

यूरोप के अन्य देशों ने इसी समय नये पद्य
रूप की आकांक्षा से इसे ग्रहण किया।
स्पेन में बोमकांत (Boscan) और
गसिल्लासो डी ला वेगा (Garcilaso
de la Vega) ने इसका प्रयोग
प्रारम्भ किया। इसी समय इंगलैंड में
प्रथम सानेट सर थोमस व्यार्ट
(Sir Thomas Wyatt) ने लिखा।
सन् १५७७ ई० में सर थोमस व्यार्ट
तथा उनके अनुवर्ती सानेटकार सर
(Surrey) के सानेटों का सग्रह
संगम एण्ड सानेट्स (Songs and
sonnets) नाम में प्रकाशित हुआ।
व्यार्ट पदार्थ के अनुगमन पर प्रेरित
बना पर अंतिम दो पक्तियां में उनमें
तुक का विधान अपेक्षा रूप से किया।
सरे ने दाना प्रकार के तुका का प्रयोग
किया। इन दाना के प्रयत्न न स्पेन्सर
(Spencer), सिडनी (Sidney)
तथा पूलरूप से गेम्सपियर (Shakespeare)
के विर सानेट का द्वार
खोल दिया।

सॉनेट हैं । वे लावनिया निम्न-
लिखित हैं—

पद्यसख्या १ निमी भी अर्थ मे सॉनेट नहीं
है । न तो उसमे समान पद हैं न किसी
सॉनेट प्रणाली पर तुक ही ।

अथ पदा के सवध मे निम्नलिखित तथ्य
द्रष्टव्य हैं ।

पद्यसख्या २ छंद की मात्रा ३०

तुक्प्रणाली

पक्ति १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, १०, ११, १२, १३ १४
तुक a a b b c c d d d d e e f f

पद्यसख्या ३ छंद की मात्रा ३०

तुक्प्रणाली

पक्ति १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, १०, ११, १२ १३ १४
तुक a a b b c c d d d d e e f f

पद्यसख्या ४ छंद की मात्रा ३०

तुक्प्रणाली

पक्ति १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, १०, ११ १२, १३, १४
तुक a a b b c c d d c c e e a a

पद्यसख्या ५ गीत है । उसमे १४ पक्तिया
ता हैं पर पहला दो पक्तिमा टे. का
हैं । इसलिय यह मानट नहीं ही है ।

पद्यसख्या ६ छंद की मात्रा ३०

तुक्प्रणाली

पक्ति १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, १०, ११, १२, १३, १४
तुक a a b b c c c c a a a a e e

पद्यसख्या ७, ८, ९ गीत हैं ।

पद्यसख्या १० छंद की मात्रा ३२

तुक्प्रणाली

पक्ति १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, १०, ११, १२ १३, १४
तुक a a b a c a d a e a f a g a

पद्यसख्या ११ छंद की मात्रा ३१

तुक्प्रणाली

पक्ति १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, १०, ११, १२, १३, १४
तुक a a a a a a a a b b a a a a

पद्यसख्या १२ छंद की मात्रा २४

तुक्प्रणाली

पक्ति १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, १०, ११, १२, १३, १४
तुक a a b b c c d d e e f f g g

पद्यसख्या १३ छंद की मात्रा ३१

तुक्प्रणाली

पक्ति १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, १०, ११, १२, १३, १४
तुक a a b b c c d d e e f f g g

पद्यसख्या १४ अनुकात है ।

पद्यसख्या १५ अनुकात है ।

पद्यसख्या १६ अनुकात है ।

पद्यसख्या १७ अनुकात है ।

पद्यसख्या १८ अनुकात है ।

पद्यसख्या १९ अनुकात है ।

पद्यसख्या २० अनुकात है ।

पद्यसख्या २१ अनुकात है ।

पद्यसख्या २२ छंद की मात्रा २८

तुक्प्रणाली

पक्ति १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, १०, ११, १२, १३, १४
तुक a a b a c a d a e a f a g a

पद्यसख्या २३ छंद की मात्रा ३०

तुक्प्रणाली

पक्ति १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, १०, ११, १२, १३, १४
तुक a a b b c c d d e e f f a a

पद्यसख्या २४ छंद की मात्रा ३०

तुक्प्रणाली

पक्ति १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, १०, ११, १२, १३, १४
तुक a a b b c c d d e e f f a a

पद्यसख्या २५ छंद की मात्रा ३०

तुक्प्रणाली

पक्ति १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, १०, ११, १२, १३, १४
तुक a a b b c c d d e e f f g g

पद्यसख्या २६ छंद की मात्रा २१

प्रथम १२ पक्तियो मे तुक की कोई प्रणाली
नहीं है । अन्तिम दो पक्तियो मे तुक है ।

कहें कि उलाने की छाना म सोनेट
लिया पर १६१५ की यह बात
शास्त्रीय नही है। गमय रूप म उता
मलिन पर पागमय दृष्टि म निरार
करने पर ३ अत्यंत कुशन मानटाार
नही उनक प्रारभित प्रमुख प्रयागरता
मात्र ठहरते हैं।

मनेट पर उता प्रयाग जावनपयन बनता
रहा पर बाद रास्ता व एता न
निराल मर जिगा परवती माहि य
प्रभावित हाना।

कनेयाल यह उट मान हैं कि य अत्यंत
गभीर भविष्यष्टा सति यहार य।
इगलिये आज जा विदेगा म गुता वा
बघन उठा लिया गया है, उमग भा
प्रागे बडनर उ हान छन तथा गुनाना
वा बघन उठा दिया, प्रगाद व प्रति
भास्या रखने हान भा, एमा मानन वा
जा तयार नही है। इगलिये माने
ने छन म मी उट प्रमुख प्रयोगरता हा
मानता हैं। यह प्रयाग उ हान उत
पहन दिया। गलिये इगका यह व
इनिहाम का दृष्टि स है।)

प्रसाधन = वा०, १८१।

[सं० पु०] (सं०) शृंगार करना। शृंगार की गामग्री से
मज्जा का काम पूरा करना। बघी से
बाल मबारता।

प्रसार = वा० पु०, १ ३६, ४३।

[सं० पु०] (सं०) विस्तार। सवार, गमन। निगा बात
का चारा और फराना या मुनाना।

प्रसारित = वा० १८०।

[वि०] (सं०) विस्तार किया हुआ, फैलाया हुआ।
सगात भाषण आदि की बनि वा
रहियो द्वारा प्रसार किया हुआ।

प्रसिद्ध = वा० २३६।

[वि० पु०] (सं०) विख्यात मशहूर। भूपित, अलटूत।

प्रसूती = वि०, ३८।

[सं० जी०] (सं०) प्रसव। जनन। वरण। प्रवृत्ति।

उपति स्थान। गतति। यह स्त्री
जिम्मे प्रसव किया हो। जन्मा।

प्रस्नार = वा० १७।

[सं० पु०] (सं०) विस्तार। कून और पता की गज या
गया। आधिगम। परत। घाम का
जगत। छंद शास्त्र का अनुसार नर
प्रत्यया म म प्रथम जिसम छन व मद
की मया, उनर मया का वरण होना
है। वस्तुप्रा, मया आदि ने वगयद
ममूना या बर्गो व क्रम या दिया
म गगत तथा मभव परिवर्तन करना।

प्रस्तुत = वा० पु०, ८१ १०१। ल० ७३।
[वि०] (सं०) प्र० ४ ६७।

जिमर। स्तुत या प्रशमा का गद हो।
जा बटा गया हो। वधित। प्रामागिक।
उद्यत। विगत। उपयुक्त।

प्रस्तुति = वा० पु०, ४४ २७७। वा०, ३३।
[वि०] (सं०) विक्रमल, मल्ल दृष्टा। प्रस्ट।

प्रहर = वा० १७ ३४।

[सं० पु०] (सं०) दिन रात का आठवा भाग। ती
घटे रा मयम।

प्रहरिया = वा० १८०।

[सं० पु०] (वि०) पहरवाला। पहर पहर पर घटा उजाने
बाता, चढवाता।

प्रहरी = वा० पु०, ६८। वा०, १८४, १८६,
[सं० पु०] (सं०) २०५। वि०, ६८।

पहरा दनेवाला, पहरवाला। पहर
पहर पर घटा उजानेवाला द्वारपाल।

प्रहरी सा = वा० पु० ६९।

[वि०] (वि०) प्रहरा के गमान।

प्रह्लाद = वा० पु०, ६४।

[सं० पु०] (सं०) विष्णु का परम भक्त दासव।

[प्रह्लाद—हिरण्यकशिपु नामक असुर राजा का
पुत्र। इसका माता का नाम कयाधु
था। विद्वानों व अनुमार होमोश्रयाग
परवात' (पुण्या माभा का राजा) भी
इम कहा गया है। यह विष्णु का
परम भक्त था। इसक पिता असुरेंद्र
हिरण्यकशिपु ने विष्णुभक्ति के कारण
इस हाथा के परा द्वारा कुच-

लवाया, सर्प से ढसवाया, पर्वत से गिराया, गडढ म गाढा, विष बिनाया, कारणापाश स बाँधा, शस्त्र से मारा, घग्नि मे जलाया—सार पड्यत्र किए किंतु विष्णुतृपा से यह वचता गया ओर अत म नृसिंह का रूप धारण कर विष्णु ने हिरण्यराशिपु का वध किया । यह विष्णु का नृसिंहावतार भी माना जाता है । इद्र पद प्राप्त करनेवाला यह सधप्रथम दानव था । इसकी पत्नी का नाम दवा पुत्र का विरोचन एक ब्या का नाम रत्ना था ।]

प्रह्लाद सट्टा = का० कु० ६४ ।

[वि०] (म) प्रह्लाद के समान ।

प्रसित = का० २४२ ।

[वि०] (स०) आनदित, हवित खुश ।

प्रात = का० १४ १० २१७ २२१ २३३,

[म० पु०] (स०) २४२ २४४ । म० १७ ।

अत, सामा सिरा । दिशा । खड । प्रदेश, किसी बड देश का कोई शास निक भाग । एक ऋषि का नाम ।

प्राकार = प्र० ४ ।

[स० पु०] (स०) परकोटा । चहारदीवारी ।

प्राकृतिक = का० कु० ५१ । का०, ३५ ।

[वि०] (स०) जो प्रकृत स उत्पन्न हुआ है । प्रकृति के विचार । साधारण । भौतिक । सहज, स्वाभाविक ।

प्राण = का० कु०, १०८ । का०, ३०, १७६ ।

[स० पु०] (स०) भ० २५ ।

आगन । सहन । एक प्रकार का ढोल ।

प्राची = आ०, ३२ ६७ । का० कु० ८ १०

[सं०ली०] (म०) ६५ । का० ७७ १६८, १८१, १८४ १६७, २१८ । चि० १८, २८, १६० १६३ । म० ११, २५ ८८ । प्र० १५ । ल०, १० ।

पूर्व दिशा जिधर सूरज उगता है ।

प्राचीदिशा = चि० ६ ।

[स० स०] (हि०) वह दिशा जियम सूर्य निकलता है ।

प्राची नभ = का०, १७१ ।

[स० पु०] (स०) पूर्वी या पूर्व का आकाश ।

प्राचीर = का०, १४६, २१७ ।

[स० पु०] (स०) चारो ओर से घेरनेवाली शीवाल । चहारदीवारी, परवाग ।

प्राण = का०, १२, १८, २६ । का०, कु०, ७,

[म० पु०] (म०) ७३, ६३ । का०, ६६, ११७ १३६, १४०, १५१, १६६, १६२ २६६, २६८ । म०, २४ ३३ ६१ ८८ । म०, ५ । ल० २७, २६, ५३ ५४, ५५ ।

शरीर म रहनेवाली पाँच वायुया म एक वायु । शरीर का वह हवा जिससे नर जीवित कटलावा ह । सान । परब्रह्म । इन्द्रिय । प्राण समान कोई पदार्थ या यक्ति । प्रम पात्र । का य की वह श्रिया जियम इस दाध मात्राओ का उच्चारण हो सक ।

प्राण अधार = का० कु०, २० ।

[स० पु०] (हि०) प्राण का आधार । प्राण रक्षक ।

प्राणघातक = म०, ४८ ।

[वि०] (स०) प्राण हरण करनेवाला ।

प्राणधन = का० कु० ६३ । चि०, १८५ ।

[स० पु०] (म०) प्रिय । प्राणरूपी धन ।

प्राणधारी मन = चि०, १४० ।

[स० पु०] (हि०) प्राणिरग ।

प्राणनाथ = क० १७ ।

[स० पु०] (स०) प्राणा का स्वामी । प्रिय, पति ।

प्राणपपीहा = का० कु०, १६ ।

[स० पु०] (म०) प्राणरूपा पराहा । प्रिय स विपुल प्राण । प्रिय, वयाग म आकुल प्राण ।

प्राणप्यारे = म०, ४३ ।

[वि०] (स०) प्राणा को प्रिय लगनेवाला । प्रिय ।

प्राणप्रिय = का० कु० २२ । का० २१४ । चि०,

[वि०] (स०) १८७ । प्र० १२ ।

प्राणपुत्र प्रिय । प्राणा क प्रिय ।

प्राणेश्वरी = ल०, ५२ ।

[वि०] (हि०) प्राण स भरा हुई । प्राण स पूरा ।

प्राणमयी = वा०, १६३।

[वि०] (सं०) प्राण से युक्त।

प्राण संहार = वा०, १६३।

[वि०] (सं०) प्राण के समाप्त प्रिय।

प्राण समीर = वा०, २७।

[सं० पु०] (सं०) प्राण प्रदान करनेवाली वायु। इनका लानवाली वायु।

प्राणधारा = वा० कु०, ६३। वि० १२२।

[सं० पु०] (सं०) जिनसे कारण प्राण रह। परम प्रिय।

प्राणिया = का० १३३। ल०, १२ १३।

[मं० पु०] (सं०) प्राणा या वस्तुवचन।

प्राणी = का०, ३८। का० १६ ११६ १२७

[मं० पु०] (सं०) १२६ १५७ १६ १७० २१, २१० २२२, २४० २७०। प्र०, १०, १८। ल०, ३२, ७७, ७७।
जिमम प्राण हा। जीव। प्राणवाला।

प्राणेश = का० ५८।

[सं० पु०] (सं०) प्राणा के स्वामी (प्रिय, पति, ईश्वर)।

प्राणो = वा०, १७५ १७६ १६१ १६६, १७७ २००, २३७ २८८। मं० ५।
प्राण का वस्तुवचन।

प्रात = का०, ३१ ३२। ल०, ३१, ७६।

[मं० पु०] (सं०) प्रभात, प्रात काल, सबेरा।

प्रात कर्म = वा० कु०, १०१।

[सं० पु०] (सं०) प्रात क्रिया।

प्रात सा = वा०, १०१।

[वि०] (सं० भा०) प्रात का सा रक्तिम। कत या मुक्त करानवाले के समान।

प्रात हिमकन सो = वि०, १८१।

[वि०] (सं० भा०) प्रात कानीन आम कणा के सह्य।

प्रादुर्भाय = ल०, १२।

[मं० पु०] (सं०) आदिभाय।

प्रात = वा०, ६८। वि०, ३५ १७०, १८१

[सं० पु०] (सं० भा०) १५६ १६५, १८६। मं०, ३७।
ल०, २८।
द० 'प्राण'।

प्रातन = वि०, ११, १७५।

[सं० पु०] (सं० भा०) प्रात का बहुवचन। द० प्राण।

प्रात प्यारे = वि०, १७०, १७५।

[सं० पु०] (सं० भा०) प्राणा के प्रिय जगनेवाले प्रिय।

प्रात = का०, ७। का०, १८, १६७। का०,

[मं० पु०] (सं०) ७२।

प्रदक्ष।

प्रात = वा० कु० ३५ ७२ १११। का०,

[वि०] (सं०) १८६ मं० १५।

लक्ष्य, पाया हुआ। उत्पन्न। समुपस्थित।

प्राति = वा० कु०, ३०। का०, २६६।

[सं० लो०] (सं०) उपलब्धि प्राप्त, मिलना। रसीद।
पट्टक आगमन। अष्टसिद्धियों में पाँचवीं
सिद्धि। कथित व्योमिष के अनुसार
म्यारहवाँ म्यान। भाग्य। व्याप्ति।
प्रदेश। मयात। मेत।

प्राप्य = वा० १६५, २७०। मं० २१।

[वि०] (सं०) पान या प्राप्त करने योग्य। बनाया जा
विषी से मिलनेवाला हो।

प्राय = प्र०, ५।

[मं०] (सं०) अक्सर, अधिक अवसर पर, लगभग,
करीब करीब।

प्रायश्चित्त = वि० ३२।

[सं० पु०] (सं०) बहु शास्त्रीय ऋषि, जिसमें कर्ता का
पाप छूट जाता है। जन मतानुसार ती
प्रकार के कृत्य जिनके करने से पाप
छूट जाते हैं। आलोचना, प्रतिक्रमण,
विवेक, व्युत्पन्न, तप, ध्यान, परिहार
और उपस्थान दीप।

प्राख्य = वा० कु०, ६६।

[वि०] (सं०) आरम्भ किया हुआ।

[मं० पु०] (सं०) वह कर्म जिसका फल आरम्भ हो चुका
हो। भाग्य, किममत। भावी।

प्राग्भ = वा० कु० ७७। का०, ७३।

[मं० पु०] (सं०) आरम्भ, आदि।

प्रार्थना = वा० कु०, ८१। का०, १८६। वि०,

[मं० लो०] (मं०) ७७। मं०, १८, ६७। मं०, २१।
ल०, ७३, ७३।

विशेष कुछ माँगना या चाहना।
सन्तान कथन। विनय। एक तांत्रिक
मुद्रा।

[प्राथेता]—गद्यमय दृष्टि तथा २ विरग १, भावग १६६७ गि० म प्रवाणिता तथा भरना म १०० ६७ ६८ पर मंत्रिता । प्राज्ञ घणो ह्य प्राणि । घणना रमणाय रूप मुष्ट ह्यारा गयम है प्राणान । ग्य ता प्रा-मुष्टारा मात्र घमिनव है । मुम म घणग योरा वा विगय उय ह्य है घोर मुम उया गा गीयमया मनुताति न गत हा । मुष्टारा महज गीयम माय मन्त्रि व ममान है । मन्त्रमुन मुष्टारा य दग रितना नैगमिा है । जिग रतन एक बार । गगने ग ह्य उमम चान हा गग । यन् मुम स्वय घपना र्य ह्यता निश्चय हा मुम घपन ऊार ही घामन हा ज घा । यन् मुम घागि केर ता ता मारी सुष्टि हा मधु वा धारा म स्नान तर न घोर मर मरद वा गगा कामल गान करना हृद् व चन । मर ह्यय वा यट प्राथना है घोर जम ज मानर ना प्राथना है कि जमम ता मुष्टारा गीय निहा घोर मुष्टार हा दगिन म मुके गान से मुक्ति मिल ।]

प्राथेता = का० १३ ।
[वि०] (स०) प्रलयनाति प्रलयनाला प्रलय वा ।
प्राह = वि० ६६ ।
[क्रि०] (स०) बोला ।
प्रियगी = वि० १३२ ।
[स० पु०] (स) कगाली नामक अन्न टागुत । पापल ।
मुटका । राजिका ।
प्रियवदा = वि० ५६ ५६ ६७ ।
[वि०] (५) प्रिय वातने वाली ।
[म० स्त्री०] (स०) एक प्याता का नाम ।

[प्रियवदा]—कश्चक आथम म रहनवाला घोर शकुन्ता का सखा । यह पौराणिक पात्र नहीं ह । अभिमान शकुन्तल म कल्पना द्वारा हमकी रचना वा लिखत ने का है ।]

प्रिय = का० कु०, २४, ७५, ६३ । वा०, १२७

[५] (३०) १३/ ११०, ७४६ । वि०, ७४ ६४, १५६, १७० १७४ १७७ १८६ ।
जिगम एम हा प्यारा । मनाग ।
[म० पु०] (म०) म० ५१ । म०, १६ ।
पति रायाम । गतिरय, ल प्रसार वा गिरा । जति । गगना । हिन भगार्द । वा । गगतान । घमममा ।
गुंर । दंगर ।

प्रिय अगुनीला = ५०, ११ ।
[म० पु०] (म०) प्रिय वा मरा वा ।
प्रिय कर = प्र० १८ ।
[म० पु०] (म०) प्रिय वा हाय । घानममक वा ह्य प्र यगु ।
प्रियतम = घा० १७ । वा० पु०, २० २३ ७७ ८३ । वा० २५०, २६६ । वि० १८८ १६० । म० २१ ४४ । प्र०, १६ १७ । म०, १७ ।
मरमे बदरर प्यारा । परम प्रिय ।
[म० पु०] (स०) पति स्वामा ।

[प्रियतम]—दृष्टि तथा । ग्य २ विरग ३ मितवर १०१४ म प्रवाणिता तथा भरना म १०० ४४ पर सरतिता । हसिण प्रसाद व सानेट वा वमुदगपनिया । यह रचना बीरछ म है । ह प्रियतम घोर न प्रति मुष्टारा प्रम है ह्यवा मुके दुय नही है लरिन जिगक मुम एवमान गटारा हो बही बही न भुना दिया जाय । अपने को अपने प्रति प्रयाय कर हमन मुष्ट धपित कर दिया लेकिन मुमने हम जो क्षण भर का समय लिया वह प्रम नहीं करणा करन के लिये वा । अत्र भा अच्युता है कि मुके नाहक वदनाम न करो । मुष्टारा खेल तो हा चुका क्या मरा भा बाई काम हागा । मुष्टारा याद वा लरर हम जावन हा त्याग देंग । यथ म पुनमिलन वा लाभ न दिलाया । मुके घोर कुछ नहीं चाहिए बवल अपना ला । प्रिया मे जब मुके स्थान दिया है ता आसु का

तरह मत बहाधो । मेरे कामल मन को रचव चोट न पहुँचे । हम तुम्हारी आँखों में सदा पुतली बनकर चमकते रहे क्योंकि हे जीवनधन । तुम्हारा जो हमारे प्रेम के सबंध में गाय है उसे लिखते हुए वनम और वागज दोनों काँप जाते हैं । देखिए भरना ।]

प्रियतममय = प्रे० १७, १८ ।

[वि०] (सं०) प्रियतम का स्वरूपमय । वण कण में प्रिय के आभास से युक्त ।

प्रियन्शन = का० कु०, ५१ । प्रे० ६ ।

[वि०] (म०) प्रिय लगनेवाला दशन । जिसके दशन से प्रसन्नता है । प्रिय का दशन ।

[प्रियन्शन—श्रीपत्नी स्वयंवर के उपरांत हुए युद्ध में हुपद व इस पुत्र का कर्ण ने बंध दिया था ।]

प्रिय भान = का० कु०, ६७ । वि०, १८० ।

[वि०] (प०) प्राण लुप्त । प्रिया, प्रिय (संबाधन) । अत्यधिक सज्जा लगनेवाला (व्यक्ति या रूप) ।

प्रिय मनोरथ = का० कु०, ७५ ।

[सं० पु०] (सं०) प्रिय की इच्छाएँ । अत्यंत रुचनेवाली अभिलाषाएँ । प्रिय सबंधी हादिक शुभ, सुखद कामनाएँ ।

प्रियलक्ष्य = का० कु०, ७५ ।

[सं० पु०] (म०) मुख्य लक्ष्य, जिस लक्ष्य में प्रियता निहित है ।

प्रियवदन = का० कु०, १८ ।

[सं० पु०] (न) प्रिय का मुख ।

प्रियवर = वि० ५८, ५९, २१, प्रे०, २१ ।

[सं० पु०] (सं०) सर्वाधिक प्रिय । जिससे बँकर और काँप न हो ।

प्रियव्रत = वि०, ६६ ।

[सं० पु०] (म०) एक राजा का नाम ।

[प्रियव्रत—शतरंज का पुत्र तथा स्वाधभुव मनु व पुत्रा भय एक । इनके यत्न और पराक्रम से सप्तद्वीपा एवं सप्तसिंधुओं का निर्माण हुआ था ।]

प्रिय सगम = का० कु० ३३ ।

[सं० पु०] (सं०) प्रिय का मिलन । प्रिय के आलिंगन, सम्भाषण एवं संयोग से मिलनेवाले सुख का भाव ।

प्रियहि = वि०, १५ ।

[सं० पु०] (प्र० भा०) प्रिय का ।

प्रिया = वि०, १६२ ।

[सं० लो०] (सं०) प्रिय का स्त्रीलिंग ।

प्रिये = का० १६, १७, २६ । का० कु०,

[सं० लो०] (सं०) ६७ । म० १४ ।

‘प्रिया’ का सबाधनमूचक शब्द ।

प्रीत = का० कु० ११२, ११३ । वि० १८५,

[वि०] (सं०) १८६, १८८ । म०, ६१ ।

प्रणय, आह्लादमय, सपुष्ट, धारा ।

प्रीति = वि०, १५, ३५, १०६, १५७, १७२,

[सं० लो०] (म०) १८३ ।

हृष्ट, आनंद, प्रेम । कामदेव की स्त्री का नाम जो रति की सौतनी थी ।

प्रेम = श्री०, ३२, ४२, ६४ । का०, ८, १४,

[सं० पु०] (सं०) २१, २८ । का० कु०, २६, ३१, ६५,

७६, ८५, ६३, १११, १२४ । का०

७० १५३, १६५, २४३, २६४ ।

वि०, १८, १६, ५८, ७३, ७७, ११०,

११६, १६२, १६५, १६८, १७०,

१७७, १७५ १८१, १८३, १८४,

१८६, १८० । म०, ११, १६, २४,

३४, ३८, ७४, ७६, ८६ । प्रे०, २,

१३, १६, १७, १६, २० २२, २३,

२४ । म०, १७ । ल०, ४३, ७५ ।

मन की वह आनंदमयी वृत्ति जो किसी

को सर्वोत्कृष्ट सम्बन्धन सदैव उसके

साथ रहने के लिये प्रेरित करती है ।

मुहूर्त्त, प्रीति, प्यार, स्त्री और पुत्र

का ऐसा पारस्परिक स्नेह जा बहुधा

रूप, गुण एवं वाचनानामिध्य के

कारण होता है ।

प्रेमज किंजल्क = का० कु०, २० ।

[सं० पु०] (सं०) प्रेमरूपी कमल का पराग । अतिगण्य सीदर्यानुप्राणित, आनन्दयुक्त सरसता का भाव ।

प्रेमकथा = सं०, १४ ।

[सं० जी०] (सं०) प्रमिया की कहाना । प्रणयशिली कथा ।

प्रेमकला = का०, ७६ ।

[सं० जी०] (सं०) प्रेम व्यापार में होनेवाले नैपुण्य का भाव ।

प्रेमकुल = वि०, १५० ।

[सं० पु०] (सं०) प्रेम सक्धी अभिलाषाभा की पूर्ण करने का बुद्धि और सत्ताभा से घिरा हुआ स्थान जहाँ प्रणया बठकर स्नेहालाप किया करते हैं ।

प्रेमचक्र प्रतिविम्ब = प्रे०, ११ ।

[सं० पु०] (सं०) प्रमरूपी चन्द्रमा की परछाई । प्रमियों की अति सरस शांतिदामिनी स्निग्धता का भाव ।

प्रेमचलाद माला = सं०, ३६ ।

[सं० जी०] (सं०) प्रेमरूपी बादलों की माला । प्रिय सामेलनात्मक आभलापाभा की सौम्यता का भाव ।

प्रेम जाह्नवी = प्र०, २२ ।

[सं० जी०] (सं०) प्रमरूपी गंगा, प्रेम की पवित्रता का भाव ।

प्रेमतीर्थ = वि०, १५ ।

[सं० पु०] (सं०) प्रेमरूपी तीर्थ, प्रेम में मनोमलहारिता का भाव ।

प्रेमधारा पाश = का० पु०, ६३ ।

[सं० पु०] (सं०) प्रेम की धाराभा का बधन । प्राणियों की प्रणय की वृत्तियों का पारस्परिक बधन ।

प्रेम नाव = प्रे०, १० ।

[सं० जी०] (सं०) प्रेमरूपी नाव । जीवन के दुःख-सागर से पार करनेवाली आनन्द रूपिणी नौका ।

प्रेमनिकेतन = सं०, २६ ।

[सं० पु०] (सं०) प्रमरूपा घर, प्रेम का आवास ।

प्रेमनिधि = का० पु०, ३ ।

[सं० पु०] (सं०) प्रेम का खजाना । प्रीति का निधि । प्रेम का आश्रयस्थान ।

प्रेमनिधि जल = का० पु०, ३१ ।

[सं० पु०] (सं०) प्रेमरूपी सिन्धु का जल । प्रेम में मिलने वाला दिव्यान्तर ।

प्रेमपताका = सं०, ६५ ।

[सं० जी०] (सं०) प्रेमरूपी ध्वजा, प्रेम के महत्तम उद्देश्य का भाव ।

प्रेमपथ = का० पु०, ६३ । प्रे० १४ ।

[सं० पु०] (सं०) प्रेमरूपी पथ । वह पथ जिसमें सारा रिव जीवन के क्लेश दुःख न दें सकें और प्रेमी दुःखाधिक्य में भी परमानन्द का अनुभव किया कर ।

[प्रेमपथ—सर्वप्रथम इंदु कला ५, खंड २, किरण ५, नवंबर १९२४ में प्रेमपथिक के खंडी बोला में प्रकाशित कुछ भरा का पूरूप ।]

प्रेमपथिक = प्र० १, १८ ।

[वि०] (सं०) प्रमपय का राही, प्रणयी प्रेमी ।

[प्रेमपथिक—इंदु कला १, किरण २ भाद्रपद १९६६ वि० में सर्वप्रथम प्रकाशित । ब्रजभाषा में इसमें प्रेमपथिक की कहानी है । प्रेम के प्रति प्रेमपथिक का समपूर्ण भाव इस कविता में दिलाया गया था और ब्रजभाषा के इसके इस रूप का स्वयं कवि न खोजें बोली में परिवर्तित कर दिया जो प्रेमपथिक के नाम से बाद में पुस्तकाकार प्रकाशित कर दिया गया ।

‘प्रेमपथिक’ प्रसाद जी की वह प्रारम्भिक रचना है जो अपनी आर आनयास ही लोगों का ध्यान आकृष्ट कर लेती हैं । यह पहले ब्रजभाषा में ६६ पक्तियों में प्रकाशित हुई थी और आज इसका जो रूप मिलता है वह २७० पक्तियों की खड़ा बोला में है । इसके स्वयं में

प्रथम संस्करण में प्रसादजी ने जो निवेदन किया है वह अत्यन्त महत्वपूर्ण है, कालक्रम का दृष्टि से—

‘इस छांटो सा पुस्तक के लिये किया बड़ी भूमिका की आवश्यकता नहीं। केवल इतना कह देना अधिक न होगा कि यह काव्य गजभाषा में आठ वर्ष पहले मैंने लिखा था जिसका कुछ अंश तो ‘इंदु’ के प्रथम भाग में प्रकाशित भी हुआ था। यह उसी का परिवर्द्धित परिवर्धित तुल्यविहीन हिंदी रूप है।
(प्रथम संस्करण से)

विनीत

जयशंकर प्रसाद

काशी, माघ शुक्ल २, १९७० व० ।’

प्रसाद की भावस्वच्छता का पूर्ण प्रातिनिधिक करनेवाली यह उनका पहला रचना है। यह भावनामूलक सधु प्रबंध है। भावना का आधार मानव कथा की कल्पना लेखक की है। उस कल्पना में प्रतीक के सहार प्रकृति का आधार ग्रहणकर जीवन के मानवीय प्रेम रहस्य का उद्घाटन करने का आयास किया गया है। इसमें भावनाओं की व आरम्भिक सरल रचना है जिसमें प्रसाद का साधना जीवनभर रंग भरती रही। अतएव प्रायः हिंदी के सभी समीक्षक और विद्वान् एक स्वर से इसे अत्यन्त महत्वपूर्ण रचना मानते हैं।

प्रेमपथिक की कहानी सत्त्व में इस प्रकार है।

एक तपस्वी के आश्रम में बस एक पथिक उसके आग्रह पर अपनी राम कहानी सुनता है। कभी दो पहाड़ी नदी के किनारे आनंद नगर में रहते थे। एक को लड़की और दूसरे का लड़का था। दोनों हिलामलकर परस्पर खेलते थे और गाम होने पर उनका माता पिता उन्हें चढ़वा चढ़ई सा बिलग कर देते थे। प्रभाव होने व पुन

मिल जाते। लड़के का पिता मरते समय लड़की के पिता को धाती के रूप में अपना लड़का सौंप गया था। अब वे खुलकर खेलते थे। भट्टमी के आकाश के तारों को भी वे सहज ही गिन लेते थे। जाड़े की रात भी वे बाता में काट लेते थे। उनकी सध्या और प्रभाव दोनों ही आभासमय होते थे। एक दिन उसके चाचा ने उसे बताया कि उसकी प्रेयसी पुतली का फलदान जा रहा है। प्रेम का चंद्रमा मेघ के भीतर छिप गया। हृदय का प्रेम कुचल दिया गया। भग्नहृदय युवक घर छोड़कर चल पड़ा। अब सारा ससार, सारा समाज उसे परदेश प्रतीत होने लगा। हृदय के फकीले भाँसू बनकर वह जाते। एक दिन वह शिला पर बैठकर चंद्रमा को निहार रहा था और उस चंद्रमा में शत शत रूप में चमेली उसे दीख पड़ी। चंद्रमा के प्रतिबिम्ब से देवदूत सा उतरकर कोमल कठ से कोई कहने लगा—

अभिलाषा मगरद सूख
जावेगा, मुरझा जावेगी,
जिस धरणी से उठी हुई था,
उस पर ही गिर जावेगी।
‘लीलामय की अद्भुत लीला
किससे जानी जाती है,
कीन उठा सकता है घुसला
पट भविष्य का जीवन में।
जिस मंदिर में देख रहे हो
जलता रहता है कर्पूर,
कीन बता सकता है उसमें
तेल न जलने पावेगा।’
‘पथिक! प्रेम की राह मनोहीन
धून भूलकर चलना है,
धनी छाँह है जो ऊपर
तो नीचे कटि बिछे हुए।
प्रेमपथिक में स्वार्थ और
कामना हवन करना होगा,

सम तुम प्रियतम स्वर्ग बिहारी
होने का फल पाओगे ।
× × ×
'इसका परिमित रूप नहीं
जो व्यक्तिमान म बना रहे,
क्यारि यही प्रभु का स्वरूप है
जहाँ कि सबको समता है ।
इस पथ का उद्देश्य नहीं है
आत भवन में टिफ रहना,
किंतु पहुँचना उस सीमा पर
जिसके धामे राह नहीं,
अथवा उस आनंद भूमि में
जिसकी सीमा कहीं नहीं ।
यह जो केवल रूपजय है
मोह न उसका स्पर्धा है ।
यही यत्तिगत होता है
पर प्रेम उदार बनन महा,
उममे हमम गल और
सरिता का सा कुछ अंतर है ।

× × ×
'प्रियतम मय यह विश्व निरखना
फिर उमरो है विरह कहीं,
फिर तो वही रहा मन मे,
नयनों में प्रत्युत जगभर मे,
कहीं रहा तब डोप किता से
क्यानि 'वश्व ही प्रियतम है ।
हा जब ऐसा वियोग ता
सयोग वही हो जाता है
यह सनाए उठ जाती हैं
सत्य सत्य रह जाता है ।'
बोलाटल था, बहुत बड़ा
उत्सव था माना घर भर म,
तोरण बदनवार सजाए
जात थे प्रति द्वारा म,
निंतु हमारा हृदय स्तब्ध था
क्या यह हनिवाला था ।
पुनर्जी व्याही जावगी, जिनस
वह परिचित कभी नहीं ।
यही ध्यान था उठता मन में
'हाय प्राणप्रिय ! क्या होगा ?'

जिम तापसी की आश्रम में क्या गुनाई जा रही
थी वही चमत्ता था । चमत्ता का सौन्दर्य
अन विनष्ट हो चुका था । वह लाछिना
विधवा समाज से पाठित प्रताडित हा
एरान तपस्यापर जीवन व दिन का
रही थी । जीवन व अतान व चिन्ता न
कत्यागु माग में दाना व चरणा की
बन्धन का प्रेरणा दा । परिणाम यह
हुमा कि व गल गन में नहीं शरीर
शरीर में नहीं, हृदय हृदय में मिल और
फिर महासौंदर्य के मागर में जहाँ
अपठ शांति विराजता है मुक्त हा मिलने
का प्रेरणा में सवलित हुए । उनके
चपन की पीत विभा सान का समार
बनाने लगी । दाना व समुल अहणाय
था विश्व आत्मा' का सौंदर्य उह दीप्त
पडा । यह तो मनुष्य में प्रेमपथिक
की क्या हुई ।

मनु १९१४-१५ ई० की यह रचना है और
प्रसाजी का यह रचना समाज के बचना
के प्रति ऐग सजनात्मक विद्रोह की
परिचायिका है जो युगद्रष्टा साहित्यकारों
द्वारा हुमा करता है । वे परपरा की
याती का अग्नि में स्वाहा कर नए युग
का निमाण नहीं करते अपितु परपरा
पर जसी कठि का मल को धो उस
प्रभावान बनाते हैं । इस आलोच स
वतमान समाज प्रेरणा ग्रहण करता है ।
प्रसादका भा यहा अपने देश का परपरा
नहीं भूले । उन्होंने उस देश का वर्णन
किया है जहापर पथिक पदा हुमा,
फला पूना जहाँ उनके जीवन की
फुलवारी म्महसित हुई । वे उससे
बहलाते हैं कि वह नगरा उस व लिये
उपा की पहिला निरण था । उस
नगरी में सभी सच्चरित थे, सतुष्ट थे,
सदृष्टस्थ थे । दया बहा सातस्वती
हापर बहती थी । वहाँ सभी निराणा
थ । गाँव दुःखझाला हुमा बरती थी ।

वह प्रेम गीतों की धुन में मुख विलास करता था। सब प्रफुल्लित थे। सब अपने अपने बाँधों में परिभ्रम करते थे। वही आनन्द का स्रोत उमड़ा करता था। ऐसी विराट कल्पना सामान्यत आनन्दवादी धारा के लोग जीवन में पति करते हैं। कहना न होगा कि 'दृष्टि, दृष्टि, भौतिकता' वाली कल्पना से यह वैदिक कल्पना मानव के लिय कम मनोहारी नहीं है।

समाज के कारण प्रेम की असफलता पर क्या का विकास जिस रूप में किया गया है वह भी सबका भारतीय क्या प्रणाली है। प्रेमी और प्रेमिका पिला का विराट नहीं करते, अपितु सहज ही उनके सन्तोष के लिये अपने हृदय की कुमुद की भाँति बुलबुल जाने देते हैं, मोन रहकर। हो सकता है इस चरित्र की दुबलता व लोग मानें जो उस स्वच्छता व हिमायती हैं जिसका छोर ही उच्छ्वलता से आनन्द होता है। प्रेम विद्रोही नहीं, स्नेही होता है और मन्त्रा प्रेम आत्मसमर्पणमय। साथ ही उस नगरी का युवक जहाँ चिर आनन्द स्थापित रहता है, विद्रोही हानि अपना ही नाम बढ़ा सकता है, उनका अवरोध नहीं कर सकता, जिन्होंने उस पाला, पीमा और बड़ा किया है। भारतीय सभ्यता की सभ्यताशीलता का सरल मकरन्द ऐसी ही भावनाओं से समुत्पन्न है।

सामाजिक भावभूमि का यह आधार सार्वत्रिक है, क्योंकि क्या व्यक्ति की है, व्यक्ति व प्रेम की है। इस प्रेम की, जो पवित्र साहचर्य के नियमित पुलनन का परिणाम है।

मानस का प्रेममय पाठा को उहनि इस रचना में अभिव्यक्त करने का प्रयत्न

किया है और रूप सौंदर्य से विमुक्त प्रेम सृष्टि की शार जीवन का अभिमुख करने का सदाश भी इस रचना में दिया है। रूप सौंदर्य की अभिव्यक्ति में प्रमादजी आधुनिक हिंदी के प्रप्रतिम शिल्पी हैं। किंतु इस रूप सौंदर्य में वे खाये नहीं हैं अपितु उहनि समाज में व्याप्त रूप सौंदर्य के प्रति असमाजिक भाव धारा का, जो सामाजिक है व्यक्त भी किया है। इस अभिव्यक्ति में उहान समाज का यथाव चित्र भी उपस्थित किया है। समाज में नर-पिशाचा की क्या स्थिति है, उसका अभिव्यक्ति करते हुए प्रमाजी ने बड़ा ही मुदर चित्र उपस्थित किया है। एक चित्र ता आधुनिक मित्रा का हैं और दूसरा पति क मर जाने पर बसेली के प्रति नरपिशाच मिनन व काम वासना प्रकट करने वाले व्यवहार का। कहना न होगा कि तत्कालीन और आज के समाज में भी विधवा के प्रति किसी प्रकार का आक्षेपण हमारे समाज में पाया है, किंतु उस विधवा के सहज रूप में प्रत कुल्लत काम-यापार समाज का एक अंग है। इसका दर्शन भी प्रमादजी ने अच्छी तरह हम पुस्तक में कराया है। उस अंग का दखना अब अप्रासंगिक न होगा—

सज्जा ! मच ही सज्जा मुझका कहने दता नहीं उसे जिम नर पिशाचा ने करने का उद्योग किया। मुझमें काम वासना प्रकट की गई अर्द्धा मित्र की जाया स। और दुख मागर मैं उभचुम हान हूने पाती थी।

प्रमादजी लागो का मित्र जनान में हिचकते थे। इस हिचक में निश्चय ही अज्ञात की वे अनुभूतियाँ रही होंगी, जिनकी प्रतिष्ठा मित्रा के व्यवहार के कारण हुई होगी। सच्च मित्र उडे सोभाय स जीवन में प्राप्त हुते है। प्रसाद न

ऐसा अनुभव बिया या धीर उहाने उस अनुभव का इतनी मृदुर अभिव्यक्ति की है कि इतिवृत्तात्मक हस्त हुए भाये अनुभूतियों लोगों को सहज मत्स्य से मोह लेता है—

क्षणभर में ही बने 'मित्रवर' गृह पीछे फिर दुजन हो 'प्रिय' हो प्रियवर' हो तो तुम हा काम पद पर परिचित हो। कहीं तुम्हारा 'स्वार्थ' लगा है, वही लोभ है मित्र बना, कहीं प्रतिष्ठा, वही रूप है, मित्र रूप में रगा हुआ।

इतना ही नहीं, उहाने दुजनों का धीर कर्मभारा रजना स भा भवान्न प्रताया है। इस दृष्टि से दलने पर प्रसाद का इस भावप्रधान रचना में जीवन धीर जगत् के यथाथ चित्र मिलते हैं। हिंदा साहित्य में यथार्थवाद के नार रटनवाला की कमी इधर कुछ वषा से नहीं है। हिंदा में नारा न दादा को बटाया गया है। जिस प्रकार लोग विना कपिटल के पद भावसंवादा, विना गाथा की रचनाए पद गाथीवादा विना नेहरूजी के कृतित्व के जाल के उनका जय बालनबाल हो गए हैं, उसी प्रकार आज साहित्य में श्रुति का महत्त्व घट रहा है। यह श्रुति स्मृति से कोई नाता नहीं रखता। श्रुति पर उस समय विश्वास रखना अधिक उपाय होता है जब समाज में यथा का सम्यता पल्लवित पुष्पित नहीं रहता। स्मृति उस समय श्रुति की गति देता है। किंतु इस युग में जब प्रत्येक लिखा बात की ही सनद मानने का व्यवस्था है, ऐसी बात अच्छी नहीं। वादियां क आज के युग में प्रायः बौद्धिक दिवालिवापन दिखाई पड़ रहा है। वह हमलिये कि लाग पढ़ना लिखना नहीं चाहते। कबल बाणा और बुद्ध के विलास में लाग महान् होना चाहते हैं। प्रसादजी के इस भावनामूलक यथाथ को परखने के लिये उस दृष्टि का

भाष्यप्रता हमी जिनके द्वारा भादर्य धीर यथाथ का अंतर देना जा सके। कहना न होगा कि प्रसादजी पहले यथि है जिहान यथार्थ धीर भादर्य के अंतर का अच्छा सरट दला धीर समझा है। यथाथ का व्याख्या प्राप्तिन हिंदा में उहान बहुत पटन हा जिस ढंग से की है उसे स्वीकार करने से कोई विद्वान् हिचकेगा नहीं। यथाथ गन्गी नहीं है, गन्गता नहीं है, विषमता नहीं है, वह तो जानने के उस पक्ष का प्रतिनिधित्व करता है जो वर्तमान के अभाव के मूल में है। वह माग पर गति की प्रेरणा है किंतु जानने का अंत नहीं। प्रेमपथिक में यथार्थ का इस दृष्टि से दलना होगा।

प्रसादजी ने यथार्थ के संबंध में लिखन हुए कहा है—यथाथवाद की विचारताओं में प्रधान है लघुता की धीर साहित्यिक दृष्टिपात, उसमें स्वभावतः दुख की प्रधानता धीर बन्ना की अनुभूत आवश्यक है। लघुता से मरा तात्पर्य है साहित्य के मान हुए सिद्धांत के अनुसार महत्ता के कारनिक् चित्रण के अतिरिक्त यत्नित जीवन के दुख धीर अभावों का वास्तविक उत्सख। साधारण मनुष्य, जिस पहले लाग अविचन समझने थे, वही सुदृढ़ता से महान् दिखाई पड़ने लगा। उस यथाथ दुःखसंकलित मानवता की स्पष्ट करनेवाला साहित्य यथार्थवाद बन जाता है। इस यथाथवादिता में अभाव, पतन और वदना के अश प्रचुरता में होत है।

अतः यह कहा जा सकता है कि यथार्थवादो साहित्य बन्ना से प्रेरित होकर जनसाधारण के अभाव और उसकी वास्तविक स्थिति तब पहुंचने का प्रयत्न करता है।

इस दृष्टि से यदि देखा जाय तो प्रेमपथिक के प्रेम के माध्यम में प्रसादजी उस आदर्श का धार पट्ट करने का प्रयत्न करते हैं जो आदर्श दम्य व्यक्ति और जगत् को आनन्द की धार से जाने का प्रयत्न करता है। समाज में अनर चमेना था। अनर उनके प्रेमी हैं। अनर के साथ क्या ही होता है जमा उनके साथ हुआ। वे व्यक्ति नहीं, समष्टि के रूप हैं। उनके व्यक्तित्व की वे ग्रामा हैं, जिस ग्रामा से समाज के अनर लागे का आलोक मिलता है। साहित्यकार न तो धीरा इतिहासमेतर होता है और न केवल प्राणों का मित्र मित्रता और दर्शन का प्रवचन करता। उनका तो एक अनर संसार होता है। एक अलग बस्तु होता है, एक अलग घम होता है और वह रम की सृष्टि करता है। आज के कुछ साहित्यकार और आलोचक रम का को रुढ़िवादी समझकर चौङ्गे, किन्तु उन्हें यह जानना चाहिए कि रम आनन्द का साहित्यिक नाम है। स्वयं प्रसादजी ने लिखा है—

दुःखान्ध जगत् और धानदपुष्प स्वर्ग का एकावरण माहिय है, इसी लिय अप्रति घटना पर कल्पना को वाणी मृत्पूष्प स्थान देना है, जो निज सार्य के वारण मत्स्य पद पर प्रतिष्ठित होता है। उसमें विश्वमगल की भावना प्रीतिप्रोत रहती है।'

इसा दृष्ट में यह रचना भी सचचा विश्वमगल का भावना को प्रकट करने के लिये लिखी गयी जानी चाहिए। हो सकता है कि इसकी महत्ता बहुत बड़ी न हो, किन्तु उस महत्ता की आस्था करने का क्षमता का वाङ्मय रचना में है जो महत्ता कामायनी के कारण प्रसादजी के साहित्य में मस्थापित हुई। इस

दृष्टि से प्रसादजी की प्रारम्भिक रचनाओं में इसका अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है।

कहानी कहने का ढंग भी इसमें नवीनता है। स्वच्छन्द रूप से क्या कहने की प्रणाली काव्य में बड़ी पुरानी है। जहाँपर भावना की प्रधानता होगी, कथा की भावना ही काव्य की नियमन शक्ति होगी वहाँ निश्चय ही कवि को उस भावना के अनुरूप कल्पना पर क्या का गठन करना होगा। किन्तु इस गठन में अन्ध्रादृष्टिक, भ्रमनोयना निर भ्रमनमगि सरवा का अधिक समावेश क्या के सौन्दर्य की, उसकी सत्यता का तथा उनके मगल पक्ष की अधिक मयादित नहीं होने देता। जिस युग में इस पुस्तक की रचना हुई उसमें सीधे साधे परिवर्तित इतिवृत्ता में कल्पना का स्वयं स्थापित करना पड़ता था। स्वतन्त्र कल्पना द्वारा क्या के निर्माण की मयादि अधिक प्रतिष्ठित नहीं थी।

का यन्त्रा कहने की प्रणाली कहानी कहने की प्रणाली पर है, ऐसी कहानी कहने की प्रणाली पर जिसमें जिनासा वृत्ति को पर्याप्त स्थान दिया जाता है। प्रकृति के बिना स क्या के विकास में पर्याप्त सहारा लिया गया है। प्रम पथिक का आरम्भ ही प्रकृति के वाङ्मय से होता है। प्रकृति एक स्वतन्त्र रचना के रूप में प्राची है और उसमें सावैतिन ढग में क्या का मम का वाङ्मय दी गई है तथा क्या का प्राणवान् बनाया गया है।

उस युग में उपदेश की वृत्ति प्रायः सर्वत्र मिलती है। प्रसादजी का प्रारम्भिक काव्य इसमें अद्वय नहीं है, किन्तु वहाने मच के उपदेश की भांति नहीं, कथावाचक व्यास की भांति नहीं, उपदेशक का काम भी अतवृत्ति को

स्पष्ट करनेवाली प्रणाली पर बधि ने किया है और इस ढंग से किया है वह कया की भाव बढ़ाने में सहाय्य होती है। उम् युग व का य की मा यता भी ता था कि बधिता में उपदेश भी होना चाहिए। इस मा यता का दुःखान्तर नहीं, सवारवर उ होने प्रमथिष्य में ग्राह्यिष्य मयात्ता का रक्षा की है।

इस का य का आरभ प्रवृत्ति के चित्रण से हुआ है और प्रवृत्तिचित्रण में ही समाप्त हुआ है। आरभ तो सध्या का केना में हुआ है और अत आरणा दय है।

जितनी रचनाएँ का यक्षन में प्रसादन आमु के पूर्व रची है 'प्रेमपथिक' का महत्व उनमें सर्वाधिक है। सर्वाधिक इसलिये कि प्रसाद का महत्ता सदा योता के काव्य में जिन कारणों से सस्थापित है उनके बीच इस रचना में किसलय के रूप में प्रबल हुए है। प्रवृत्ति है, प्रताप का रमणायता है आ योताय का सस्पष्ट ह मानवाय प्रेम है उस प्रेम का अतवृत्ति है और सबसे बड़ी बात है सादय का आत्मा का चिरतन सत्य। यह आ यदर्शन विश्व आत्मा के सौंदर्य का उद्वाच करता है जिसमें ससार की सुंदर लगनवाली सभा वस्तुएं सय होकर आनन्दमागर में भरपड़ शांति प्राप्त कर सकती हैं तथा स्वच्छन्द रह सकती हैं। मानवजीवन का वास्तविक अरुणोदय इस दृष्टि से प्रसाद में जावनयत माना है जिसकी पूछ कोमुना कामायना में विकसित हुई।

हिन्दी कविता के क्षेत्र में प्रमाण्ता जिस नई भावधारा के प्रतिष्ठापक मान जाते हैं वह मूलत रूपमौल्य से मन का पुलकित करनेवाली महज मान्य का आनन्दमूला अभिव्यक्ति है। उनकी यह अभिव्यक्ति पोष्यमपन सांस्कृतिक

येता से गीत है। उन्होंने अग्रम काव्य में हृदय का उम विनाग भावना का उद्घाटन किया है, जिसका मर्म योवन-मयी रूपमौल्य का आभास स गुलबमरा जावन पाता है। इस गुलब में योवन की रूपनात्ता का निगार रहता है तथा रूपजय पाठा का स्वर भी विरहानुन हो परिणाम का आस्थान करता है। यह बचल रूपचनता स उपग्र पीडा का ही जावन व योवनप्रवाह का परम दिक्ता नहीं मानता, रूप क आरपण की ही जावन का परम मौल्य नहीं धारित करता वह पीडा क ससार का ही योवन क गुलबन की आत्म परिणति नहीं माता, अपितु जा सासदा और भावना व्यक्ति की रूप सोदय की ओर आह्वय करती है, उस आरपण के चिरतन सौंदर्य मर्म आन का भी पहचानना प्रमादजी का सकलपारम्य चेतना का ध्येय रहा है। प्रेमपथिक के सबंध में भी यह बात कहा जा सकती है।

चमेली के रूपय सौंदर्य का आत्म परिणति पारस्थितियों के हाथा पडकर जसी हुई है, वह सहज ही अस्मि भमवाल आरपण के प्रति विक्षपण उत्पन्न करता है, किंतु इस आरपण में प्राणों का सुरभित करनेवाली उत्तास का जो चेतना है, वह समाप्त नहीं होती। वह पथ के उद्देश्य का सीमा का सफलतापूर्वक आस्थान करती है। वह मरनेवाले भीरो की नहीं, सतत आत्मसमपणमय है। विराट सौंदर्य में, जो प्रसादजी क शान्ति में सोदय की प्रमथिष्य है, इस रूपआभा से दास सालसाधरे हृदय की भरपड़ शांति मिल सकती है तथा स्वच्छन्तापूर्वक सस्थापित करने की स्थिति भी हा मवती है। यह ध्यात भवन के आग की

मजिल है, जहाँपर वही पहुँच सक्ते हैं जिनके पथ का उद्देश्य टिकना नहीं, भवितु वहाँ तक बढ़ते जाना है जिसके भाग रास्ता नहीं हुआ करता ।

आकार प्रकार की दृष्टि से प्रेमपथिक बहुत छोटी रचना है । अपने समय में अपने समय के भाग का आस्थान करना उनका काम हुआ करता है जो अपने चित्तन द्वारा तिमिराच्छन्न भविष्य के पट पर भूत रेखाएँ खींच कर रहे हैं । इस अर्थ में प्रेमपथिक उस भावधारा का आस्थान करनेवाली रचना ठहरती है जिससे हिंदी काव्य का भविष्य उबर हुआ । अभिव्यक्ति में अनुभूति के मर्म की जो कथा कही है वह इस बात की साक्षात्ता है कि कवि के मानस की गहराई कितनी अधिक है । इस अभिन्नता में सरसता की सीमा भी है, और वह सीमा अनेक स्थान पर भी जलस्रोत की भाँति उभर पड़ी है । उनकी उमाङ्गल सत्यता का एक संदेश है उन लोगों के लिये जो रूप धारण की जावन का चरम साध्य समझते हैं । रूप परिवर्तन बालचक्र के विधान का स्वचालित नियम है । आकषण उनकी प्रकार विकपण में परिवर्तित हो जाता है जिस प्रकार बसंत विकसित होने लगता है जिसमें म, शांत म और शीत पतझड़ में । पर इस नश्वर रूपविधान की छाया में एक अनश्वर तत्व है । उसमें उसना ही आनंद है जितना रूपसौंदर्य में जो अटल, अडिग और शाश्वत है । वह है हृदयसौंदर्य का बोध । हृदय का प्रेम स्थायी होता है, रूप का चंचल । वास्तविक शांति जो कभी लुप्त नहीं होता, वह हृदय के सौंदर्य से ही विराट सौंदर्य में अपनी सत्ता को ज्ञानकर प्राप्त हो जा सकता है । यही प्रेम पथिक का संदेश है । इस संदेश के

भीतर हृदय की अनुभूतियाँ इस भाँति सार्वर हो बोलती हैं जिसे भाँति कभी इसी कलाकार द्वारा मनु की वाणी तुमुल बोलाहल में श्रद्धा के प्रति मुखरित हुई थी । यह वृत्ति के प्रति कला की आस्था जगत् का प्रतीक है । यह तो हुई रचनासौंदर्य की बात । अब उसके बाह्य पक्ष पर विचार करना अप्राप्तगिक न होगा ।

जहाँतक छंद का प्रश्न है, नए ढंग से तीस मात्राओं के अनुवात छंद का प्रयोग किया गया है । जगह जगह पर अनुप्रासों की छटा भी भावार्थ के साथ दीख पड़ती है । अजभाषा में प्रेम पथिक की रचना पहले प्रकाशित हुई थी यह पहले ही निवेदन किया जा चुका है । उसकी अपेक्षा जो नया परिवर्तन तथा परिवर्द्धन भाषा के साथ कथानक में किया गया, वह अधिक मनोवैज्ञानिक ढंग से हुआ है । यह इस बात का प्रतीक है कि लेखक का काव्य कौशल प्रगति के साहित्यिक विकास के सुन्दर पक्ष का ग्रहण करने के लिये कितना सचेष्ट रहा । प्रवृत्तिवर्णन प्रसादना के काव्य का एक आवश्यक भाग है । वह इस रचना में भी सुन्दर ढंग से अभिव्यक्त हुआ है और कथामुक्त की संपुष्ट बनाता है । प्रेमपथिक का बहुत बड़ा आकषण अध्येता को उनकी उपमाओं में भी दाख पड़ता है ।

इन उपमानों की विवेचना इस बात में भी है कि संस्मालीन साहित्य में ये अलग अपनी मौलिक सत्ता रखते हैं । उस समय प्रायः उपमय स्थूल हुआ करते थे । अमूर्त तत्वों का उपयोग उपमान के रूप में प्रायः नहीं किया जाता था । अमूर्त को उपमा का आशय वही कलाकार दे सकता है जो अनुभूतियों

की सूक्ष्म रेखाओं से परिचित हो। इसमें शक्य नहीं कि प्रसादजी उनसे परिचित ही नहीं, उनकी वह मधुमकर तूतिवा की रेखाओं का जीवन मय रंग प्रदान करनेवाले कवि थे। उन्होंने उसे पहचाना था और यथा स्थान उनसे अनिष्ट परिचय भी प्राप्त किया था, एक सफल जित्नी की भाँति। इस रचना से व्यापक रूप में भावविशेषों की उपमा उन्होंने दोनों प्रकार की। दोनोंतर उनका विकास ही होता गया, अथवा इसके पूर्व भी उनके काव्य में इस तरह का गुण मौजूद था।

इस रचना में एक बहुत बड़ा बात है विश्वासना एक विश्व देवता का कल्पना। राधा यथा व उस प्रारम्भिक युग में इस कल्पना का मूल्य बहुत बड़ा है, यह भुजा देने का बात नहीं।

इस रचना में ऐसे स्थल बहुत कम हैं जहाँ नीरस इतिवृत्तात्मकता अपना सारी शक्ति के साथ केंद्रित हुई हो, किन्तु यह सबका बिजुल भी नहीं है। कहीं कहीं शक्तिभंग होय भाषाप्रवाह पर ठहर लगाता है, पर एतद स्थान अत्यन्त कम हैं।

प्रेमपथिक प्रमाण काव्य की वह सभि है जहाँ प्रसाद का व्यक्तित्व सामान्य मान्यता का भी नवान पथ पर चलता हुआ गीत पढ़ता है। यह नवानवा विभाग का विंग मोमा पर पहुँचा, यह प्रमाण का दन है कि कविता का। प्रमपथिक रम भयम प्रसाद क काव्य का एक अनिहारिण माया का नवान प्रवाहमय है और वह माया प्रसाद क काव्यमानस सबलिन नाना प्रमाण उसका सबल पुनस्तम मायुता का कविता म है। अतएव

निश्चय ही इस रचना का अपना महत्वपूर्ण स्थान हिंदी कविता में है, विशेषकर आधुनिक हिंदी कविता में।

प्रेमपरिपूर्ण = ५०, ५३।

[वि०] (स०) प्रेम से भरा हुआ।

प्रेमपरिपूर्ण = वि०, ६२।

[वि० पु०] (ब्र०भा०) दे० 'प्रेमपरिपूर्ण'।

प्रेमप्रवाह = वि०, ५६।

[स० पु०] (स०) प्रेमरूपी प्रवाह, प्रिय में मिलने की साधु आनन्दयुक्त उत्कठा की सीढ़ना।

प्रेमपिपासा = ५०, ४६।

[स० स्त्री०] (स०) प्रेम की प्यास। प्रेमी से मिलने की अभिलाषा का अविनाशितरेक।

प्रमपुतला = प्र० ८।

[स० स्त्री०] (हि०) प्रेम की पुतला। प्रेम की स्तितता प्रतिमा।

प्रेमपुलकित गात्र = १० पु०, ३१।

[वि०] (हि०) प्रणय की उस स्थिति का भाव जब वह आनन्दतिरेक भयवा विरहजय सुभाविकय के कारण विभार हो जाता है और शरीर का रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

प्रेमविष = प्र०, १७।

[स० पु०] (स०) प्रेम का मूल रूप अथवा विद्रव्यारी प्रेम।

प्रेमभर = वि०, ६२।

[वि०] (हि०) प्रेम से।

प्रमभरा = १० पु० १३ ६१, ६६, १०१।

[वि०] (हि०) प्रेम से पूर्ण।

प्रेममदिरा = ५० ८।

[स० पु०] (स०) प्रेमरूपी मानस द्रव पदार्थ (प्रेम का आत्मविभूति का भाव)।

प्रेममय = ५०, ८। १० पु०, २ ३१, ६६,

[वि० पु०] (स०) १२२। वि० १४१।

प्रममयुक्त।

प्रेममयी = १० पु०, २३।

[वि०] (स०) प्रेम में युक्त।

प्रेममहान = का० कु०, ७५।

[सं० पु०] (सं०) प्रेम की महता का भाव।

प्रेमयज्ञ = प्र०, १६।

[सं० पु०] (सं०) प्रेमरूपा यज्ञ। प्रेम की उस भावना का भाव जिससे मिटने की आनन्द दायिनी प्रेरणा मिलती है।

प्रेमरग = चि०, १८२।

[सं० पु०] (सं०) प्रेमरूपों रगमिलन का वह आनन्द जिनमें दो सत्ताएँ एक ही बनकर रहती हैं।

प्रेमराज्य = चि०, ७५।

[सं० पु०] (सं०) प्रेम का राज्य। प्रेममय वातावरण।

[प्रेमराज्य]—सबप्रथम इसका प्रकाश हुआ था १, किरण ४, कातिप १९६६ वि० में प्रकाशित हुआ और उत्तराध को मिला कर कवि ने एक पुस्तक ही इस नाम से जुनाई १९१४ में प्रकाशित करा दी जिसका समावेश चित्राधार में पृ० ७३ से ८५ तक है। ७३ से ७८ तक प्रवाद है और ७९ से ८५ तक उत्तराध। प्रजभाषा की यह परंपरागत कविता है। राजा मूय और बहमना मुगलान के बीच मन् १५६५ ई० में टालाकाठ में युद्ध हुआ। विजयनगर के नरेश सूर्यकेतु ने युद्ध में जान के पूर्व अपने एकमात्र पुत्र चद्रकेतु को जिनकी आयु केवल ५ वर्ष की थी, एवं भील सरदार का सौप दिया और वह चद्रकेतु का गुरदा के दृष्टि से हिमालय की तराई में लहर चला गया। मूयकेतु ने मन्त्री ने विश्वासघात किया और शत्रुओं से मिल गया। मूयकेतु मारे गए फिर भी मन्त्री की कोई लाभ नहीं हुआ और घर पर उसकी पत्नी ने उसके विश्वासघात के कारण उस बहुत ही फटकारा। ग्लानिवश वह भी हिमालय की ओर चला गया। यही प्रवाद समाप्त होता है। उपराध में चद्रकेतु और मन्त्री की पुत्रा ललिता के प्रेम की कहानी प्रेम

राज्य में वर्णित है, और अतोगत्वा चद्रकेतु की ललिता रानी बनी। मन्त्री ने भी भावों के बीच या भीला के राजा चद्रकेतु और अपना पुत्री ललिता को आश्रीत दिया। इसमें वीरता, प्रणय, स्वामिभक्ति और विश्वासघात की कहानी अच्छे ढंग से बही गई है तथा भारत का गौरवगाथा तथा शत्रु के पातननत्ता रूप का बड़ा हा सुंदर ढंग से वर्णन किया गया है।

प्रेमलता = चि० ७५।

[सं० स्त्री०] (सं०) प्रमत्ता लता। वह विशुद्ध भावपूर्ण आशुगंधीय का पराक्षा या समीक्षा किए बिना ही केवल रूप, रस, गंध, शब्द एवं स्पर्श के सांगीध्य की प्रेरणा से उत्पन्न होता है।

प्रेमवारि = का० कु०, २७।

[सं० पु०] (सं०) प्रमत्ता जल। शांतिदायक होने का भाव।

प्रेमवेणु = सं० २६।

[सं० पु०] (सं०) प्रमत्ता वंश।

प्रेमसहित = चि० १४, ७३।

[वि०] (सं०) प्रेम से युक्त।

प्रेमसागर = का० कु०, ६५।

[सं० पु०] (सं०) प्रेमरूपी सागर।

प्रेमसिन्धु = प्र०, १६।

[सं० पु०] (सं०) प्रेमरूपी समुद्र।

प्रेमसुतीर्थ = का० कु०, १६। अ०, २०।

[सं० पु०] (हि०) प्रेमरूपी मुंदर तीर्थ।

प्रेमसुधा = का० कु०, १२४।

[सं० पु०] (सं०) प्रेमरूपी अमृत।

प्रेमसुधानर = प्र०, १७।

[सं० पु०] (सं०) प्रेमरूपी चंद्रमा।

प्रेमसुधाभय = का०, ६।

[वि०] (हि०) अमरता से निवन प्रेम। विशुद्ध प्रेम।

प्रेमसुधा सोता = का० कु०, ६१।

[सं० पु०] (हि०) प्रेम रूपी अमृत का तालाब या सोता।

प्रेमहि को = चि०, ७४।

[सं पु०] (ब्र० भा०) प्रेमही को।

प्रेमालिंगन = का०, १०।

[सं पु०] (सं०) प्रेम जतानेवाला आलिंगन।

प्रेमाश्रय = का० १८०। चि०, १८४।

[वि०] (म०) प्रेम किए जाने योग्य। जिससे प्रेम

प्रेमिका = चि० १४१ म० ६।

[सं स्त्री०] (सं०) प्रयत्नी प्रेमपात्री।

प्रेमी = का० कु० ६३। प्र०, ५ २२।

[वि०] म०) प्रेमपात्र जा किसी से प्रेम करे।

प्रेमीगन = चि० १५८।

[वि०] (ब्र० भा०) प्रेमिया का समूह।

प्रेमोद्भूति = का० कु० ३७।

[वि०] (ब्र० भा०) प्रेमरूपा जल से पूजा।

प्रेमोपालभ = चि० १८४।

[सं पु०] (सं०) प्रेम का उलाहना।

प्रेमोपालभ—इदु बला ४ किरण ६ जून १९१३ म प्रकाशित और चित्राधार म पु० १८४ पर मबलित है। सदा प्रेम करत हुए ही दिन बात गया। मवरद विदु म जिम मनभावन का देखता रहा वह नित नूतन होता रहा। जहाँ भा मन माह्न सीरम मिला वहीं मन मधुकर रम गया, चाह वह कमल हा या बकुल हा या मग्नार। पगर म भा और नदी म भा उगत सौर्य का चिहनाई दमकर मन विमल गया या वह गया। भवर का भय नहीं लगा बल्कि उमस हुआ माह्न बढ़ गया। मुमुक्षु ज्ञान का दमकर उमपर बठ गया और बाँट का परबाह मुख मन की नहीं हुई और उगा चन्न, चन्न, धिन्न और बिछने में छान और मुख मिला। प्रमी का यह निष्ठुरता जानकर भी भी पाद पर नो हटाया और मन कपटी का प्रमा क रूप म बहर मन न दण्ड कर निजा। दण्ड महा नित प्रम करत निन गया।]

प्रमो = का०, १२८। प्र०, १८।

[५० स्त्री०] (सं०) प्रम पात्रा।

प्रेरक शक्ति = का० कु०, ११६।

[वि० स्त्री०] (सं०) प्रेरणा देनेवाली शक्ति।

प्रेरणा = का०, ७६, १०६, १६५, २६१,

[सं स्त्री०] (सं०) २६८, २८१।

वह शक्ति जो किसी कायविशेष से अनुरक्त करा दे।

प्रेरणामयी = का० ११, १६३

[वि०] (सं०) प्रेरणा देनेवाली। प्रेरणा युक्त।

प्रेरित = का० कु०, ६६। का०, ४८, २६७।

[वि०] (सं०) चि० ५५। प्र० २१। ल०, २६, ७५।

प्रेरणा प्राप्त। प्रेरणा पाया हुआ।

प्लावित = का० ६४, २६६। ऋ०, १६ ३२।

[वि०] (म०) हुवा हुआ।

फ

फँसा = का० २७।

[वि०] (हि०) फसा हुआ। बचा हुआ।

फँसे = का० १३।

[क्रि०] (हि०) बंधे, फस जाय।

फटफटा = का० ४०। प्र० २५।

[वि०] (हि०) फटफट शब्द करना, मल्ला आदि फँसना। साफ करना।

फण = का० ८५।

[सं पु०] (सं०) सप का फण।

फणिया = का० २१।

[सं पु०] (हि०) मर्ग।

[फनह सिंह—मिना 'बीर बावन'।]

फन = का०, १४, ६८।

[सं पु०] (हि०) २० 'फण'।

[सं पु०] (का०) दन्त विद्या। हृत्तर। धनने का दण।

फफोले = प्र० १५।

[सं पु०] (हि०) धान, मक्का।

फरकत = चि० ८, ६५।

[वि०] (ब्र० भा०) फरकना।

फन = का०, ६ १४, १६ ३१। का० कु०,

[सं पु०] (सं०) १ १। चि०, ६, ६४, १५३, १५४।

१७२, १८५, १८६ । फ०, ६४ ।
म०, १८ ।
वनस्पति मे हानेवाला मूदे ग बीज
से भरपूर बीजकोश जो किसी विशिष्ट
श्रुतु मे फूट आन के बाद उत्पन्न होता
है । वर्मभोग । नतीजा, परिणाम ।

फलक = ल० ४३ ।

[सं० पु०] (घ०) स्वर्ग, आकाश ।

फल ढेर से = का० कु०, १०१ ।

[वि०] (हि०) फला के समूह के समान ।

फल फूल = क०, १७ । म०, २२ ।

[सं० पु०] (हि०) फल और फूल ।

फलभरता = का० ६८ ।

[सं० का] (म०) फला स लद होने का भाव ।

फलभोक्ता = का० कु० ११६ ।

[वि०] (सं०) फल का भोगनवाला ।

फल मूल = का० कु०, १०० ।

[सं० पु०] (सं०) फल और जड़ । फल और खाने योग्य
कद ।

फलवती = म०, २४ ।

[वि०] (सं०) फलवाला, फल से भरी हुई ।

फल्यु सदृश = का० कु०, ७१ ।

[वि] (सं०) गया तथा व निषट बहनेवाली फल्यु
नदी के समान । व्यथ सा, निरथक सा,
सामान्य सा ।

फसना = का०, २६४ ।

[क्रि०] (हि०) अनायास हाथ बजाना । छल छंद का
शिकार हा जाना ।

फहरत = बि०, १६३ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) फहरता है, लहरता है ।

फहराती = क०, १० ।

[क्रि०] (हि०) फहरती, लहरता है ।

फॉस = का० ८ ।

[म० खी०] (हि०) पाश, पदा, बेंत ।

फॉसना = बि०, २३ ।

[क्रि०] (हि०) फमाना, जाल मे फसाना ।

फॉसी = बि०, ३ ५८ १४३ ।

[क्रि०] (हि०) बाँध, फमाण ।

[सं० खी०] (हि०) मृत्युदद । शूली ।

फाड़ना = का०, ३८ । म०, ४० ।

[क्रि०] (हि०) किसी चीज को टुकड़े टुकड़े करना,
फाड़ देना, चीर देना, चीर लगा देना ।

फार सी = बि०, १०१ ।

[वि०] (ब्र० भा०) हल व फल के सदृश ।

फारिके = बि० १७२ ।

[पुन० क्रि०] (ब्र० भा०) फाड़कर ।

फिटफार = का० कु०, ८० ।

[सं० खी०] (हि०) धक्कार लानत कोसना । टाट डपट ।
फिटकी ।

फिर = मा०, ११, २७, ४०, ५३, ५६, ६४,

[म०] (हि०) ६६ ६७७१, ७४ ७७ ७६ । म०,

११, १५, १७, २२, २३ २६, २८,

३० । का०, कु०, ५, ६ ७, ८, १४,

१६, २५, ३२, ३५ । का०, ११ १५,

१७, २३, २५, २८, ३१, ३३, ३७,

३६, ४५, ६४ ७१, ८३, ८५, ८०,

६२, १०१, १०५, १०६, ११०, ११३,

११४, ११८, १२२, १२६, १३२,

१३३, १६०, १६१ १६२ १७६,

१८०, १८४, १८५, १८६, १८१,

१८२, १८३, १८४, १८५, १८६,

१८७, १८८, १८९, २००, २०१,

२१३, २१८, २३०, २३६ २३८,

२४३, २४७, २४८, २५७, २६३,

२६७, २७३, २८१, २८५ ।

एक बार हो चुकने पर एक बार और ।

दुबारा, पुन, पुनि, बाद मे ।

फिरना = मा०, १६, ६८ । का० कु०, ७५, ६६ ।

[क्रि०] (हि०) का०, ३, ४८, ११७, १३१, १३४ ।

१४८, १५०, १७६ । बि०, ४८,

१५२, १६६, १७७, १८३ । प्र०, ६,

२०, २४ । ल०, ६६ ।

चलना, खेलना, घूमना । चक्कर

खाना ।

फीकी = का० कु०, ३५ । बि०, १८६ । प्र०

[वि० खी०] (हि०) २३ ।

फाका, नोरप, स्वादहीन ।

फीके = का०, १२६।

[वि०] (हि०) जिसमें रस न हो स्वादरहित।

फुलवारी = भा० १६।

[स० खी०] (हि०) फुलवाही, उपवन, बगीचा।

फुल = का० कु०, ११४। का०, १५१। चि०,

[वि० पु०] (स०) १४७।

फूला हुआ, फिला हुआ प्रस न।

फुल्लमल्लिना = भा० ४८।

[स० खी०] (स०) लिला हुआ बेला का पुष्प।

फुहारे = का० २६३, चि०, १५८।

[स० पु०] (हि०) एक उपकरण विशेष जिससे दवाव व कारण जल की बतली धार ग्रथवा छोटें चारा धार निकल कर गिरते हैं। जल का महान छोट। हन्ना बरसात (झोला)।

फूंक = का० कु०, १११।

[स० खी०] (हि०) फूलाए हुए माला से सवग छोड़ी हुई हवा। मुह का हवा सोस। मनादि पन्जर छाड़ी हुई हवा।

फूट पत्ती = का० २६।

[त्रि०] (हि०) साइफर मट पत्ती।

फूटना = का०, २२६, २६८।

[क्रि०] (हि०) भग्न होना दशवना टूट जाना। भ्रं कर निरसना।

फूटो = का० २६। का० २८१।

[त्रि०] (हि०) फूट गइ।

[वि०] (हि०) टूटा हुआ भाग।

फूटे = का०, १०। का० ५६।

[त्रि०] (हि०) फूटना का एक रूप।

[वि०] (हि०) टूटे हुए, भंग्य ए।

फूटकार = का० ५७।

[स० पु०] (स०) मुट ग हवा छाटन का भाव, पुंशरार।

फुल = का०, २६ ५४। का० ६, १४। का०

[स० पु०] (वि०) कु० ६ १५, ३८ ७३ ८२ ८३।

का०, ४६ ५५ ६३ ६४ ६५ ७३

७७ ६२, ६७ १५१ १७८, १६६

२४४ २४६। चि० २७ ६३, १५१,

१५२ १६६, १७० १७७। अ० १६

३३। प्रि०, २, १३। स०, १७, ३२।

पुष्प, कुसुम, सुमन। गभाशय। बेलजूटे।
ताम्र मिश्रित रागा। राग विशेष।

[फूल जय हँसते हैं अविराम—महारानी वपुष्टमा की नवपरिचारिका कालिका का जनमेजय का नागयज्ञ में गीत। लोग जब हसते हैं तभी हम राने लगत हैं। जब बसत ऋतु में मुँर फूल हसते हैं तो उनमें सुंदर मकरंद भरने लगता है। इस जो फूला का रोना सम्भन्ध है वह उनकी भूल है। उपायाल में मलय वं स्पश से छत सहलहा उठन हैं किंतु खेतों पर पड़े मोसकण बिलर जाते हैं, इसे रोना माना जाय या हय। इसलिय है नाथ हमारा प्रह तुम ल लो ताकि कोई वस्तु तुम छूट न सय। और मुझे भयना बनाकर दया करा ताकि जब लोग राने लगें तब हम हसने लगें क्याकि हमने ही हमारा लिय मुख है।]

फूलना = का० कु०, ४४ ५४। का०, १५३, २६४, २६१। चि०, २२, ६३, १५३, १७७। अ० ५४। प्रि० ३।

कुसुमित होता, खिलना, विकसन होना। गुजना स्थू न होना। टठना। प्रस न होना।

फूल = चि० १८।

[पु० क्रि०] (हि०) फूलकर, प्रस न हाकर, खिलकर।

फूली = चि०, ६३।

[वि०] (हि०) फूला हुई। खिला हुई।

फेंकना = का०, ४५ ८४, ६३ २४७। चि०, ६।

[त्रि०] (हि०) अ० ३३।

झाड़ का एक स्थान से दूसरे स्थान का धार गतिमय करना।

फेन = का० १४। चि० १५३।

[स० पु०] (स०) पाना व छोटे छोटे बुलबुल का कुट्ट मटा या मटा मयूर। अाग।

फेनिल = का० ४२ ७१। का० कु०, ५७।

[वि० पु०] (स०) चि०, १६०। स०, १५।

फन मुल, फनवाला, अागगर।

फेनिल फन = का०, ६८।

[वि० पु०] (स०) भागदार फण।

फेनिल लहर = का०, ३९।

[स० खी०] (स०) भागदार लहरें।

फेनोपम = का०, १६७।

[वि०] (स०) फेन के सदृश (भागदार)।

फेरत = बि०, १६३।

[क्रि०] (ब्र० भा०) फेरते हैं।

फेरा = का०, २११। बि०, १७७। प्रे०, १७।

[म० पु०] (हि०) चारों ओर घूमने की क्रिया। चक्कर, बार बार आना जाना।

फेरि = बि०, ६। १५०, १५७, १७०, १८८।

[प्र०] (त्र० भा०) फिर, पुन, दुबारा।

फेरी देना = प्रा०, ३९। का०, ६५, ११४।

[क्रि०] (हि०) बार बार आना जाना।

फेरी = प्रा०, ८।

[स० खी०] (हि०) परित्रमा, प्रवक्षिणा।

फैलाना = प्रा०, ७३। का०, १, १६, १७, १८।

[क्रि०] (हि०) का० कु० ८८, १०७। का०, १४, २८, ५७, ६१, १२१, १२६, १५२, १६४, १६८, १७८, १८०, १८४, १८६, १९१, २०२, २४३, २८१। बि० ४५, ४६, १४८, १८२। प्रे०, १०, १९। म०, १। ल०, ३९। अधिक जगह घेरना, पसरना। प्रसरित होना।

फैलाना = प्रा०, ९, ४१, ६५। का० कु०, ३४,

[क्रि०] (हि०) ४२, ५५, ७८। का०, ११९, १५९, १६०, १६८, १७०, २५६, ३७२। प्रे०, १५, १८। ल०, ३५, ४४। पसारना, बिखेरना, घिनराना। प्रचरित करना।

फैलाप सी = का०, ९७।

[वि०] (हि०) प्रसारित सी। प्रसरित हुई सी।

फोडकर = का०, ४७।

[क्रि०] (हि०) सोडकर, टुकड़े टुकड़े करके।

फोड़े = श्री०, ११।

[क्रि०] (हि०) तोड़ दिए नष्ट कर दिए।

फौजें = बि०, ६१।

[म० पु०] (प्र०) सेना। झुंड।

व

वक = का० कु०, ३०।

[वि०] (हि०) टेढ़ा, तिरछा। वक्र।

वक्रिम भू = ऋ०, २२।

[वि०] (हि०) टेढ़ी भीड़। तिरछी भीड़।

वद = प्रा०, २५। का०, ६५, ६७, ७१, ८२,

[स० पु०] (फा०) १४०, १६५, १८१, १८६, १८९, २१८, २६०। बि० ३२। ल०, १९।

वह पदार्थ जिसमें बाईं बाया जाय। बाय, घरीर के अंग का जोड़।

[वि०] जिसके चारों ओर कोई अवरोध हो। स्वगत। घमा हुआ।

वद्विगी = का०, १९९।

[स० खी०] (फा०) प्रणाम, ईश्वरोपसना, भगवान् की प्रार्थना।

वदी = प्रा०, ४९, ६। म०, ७, १०, ११,

[स० पु०] (म०) २०, २३। ल०, ६७।

चारों ओर।

[स० खी०] (हि०) आभूषण विशेष।

[स० खी०] (फा०) कर्ण, जो वद किया गया हो।

वधन = प्रा०, २५, ७३, १। क०, २२। का०,

[स० पु०] (स०) १३४, १९१, १९४, १७०, २४९। बि० २६। ऋ०, ६४। ल० १५, २१। वह रस्मा जिससे बाईं बाया गया हो। पाश। बाधन की क्रिया या भाव। बँध-खाना। शिव।

वधनमुक्त = का०, ८३।

[वि०] (स०) मुक्त, छूटा हुआ, स्वतंत्र।

वधनविहीन = का०, १९०।

[वि०] (स०) मुक्त, स्वतंत्र।

वधनहीन = का०, १९१।

[वि०] (स०) पाशमुक्त। स्वतंत्र।

वधा = का०, १९३।

[वि०] (हि०) वधन में पड़ा हुआ। वधा हुआ।

घघु = का०, ६४।
 [सं पु०] (सं०) भाई। गोत्रज। सहायक 'यक्ति'।
 घघ्यो = चि०, १८२।
 [क्रि०] (प्र० भा०) घघ गया।
 घश = चि० घ८, ५१।
 [सं पु०] (सं०) कुल, कुटुंब, परिवार, खानदान।
 घशी = प्र०, १०।
 [सं स्त्री०] (हि०) प्र० 'वसी'॥
 घसी = का० कु०, ८। का०, ६८। ऋ०, ३०।
 [सं स्त्री०] (हि०) मुरली, वात का बना हुआ, गुह से
 वजान वाला वाद्य यंत्र।
 घकत = चि० ५१, १४७।
 [क्रि०] (प्र० भा०) बोलता है। बक बक करता है।
 घकता = का०, ३७, १०५।
 [क्रि०] (हि०) बक बक करना, बकवाद करना। अड़
 बड़ कहना। बोलना।
 घक घक = का० कु०, ४४।
 [सं पु०] (हि०) बकवास।
 घकुल = चि०, ५१, १८४।
 [सं पु०] (सं०) मोलसिंदी का पेड़ या फूल। शिव।
 एक प्राचीन दश का नाम।
 घकुलतर = चि०, ७०।
 [सं पु०] (प्र० भा०) बहुत के नीचे या तले।
 घघारना = म० ४।
 [क्रि०] (हि०) छींकना लड़का देना। योग्यता प्रदर्शन
 व लिये बड़ बड़ कर या आवश्यकता
 से अप्रिय बोलना।
 घघरर = का० १११।
 [क्रि०] (हि०) 'घघना' का पुनरावृत्ति रूप।
 घघन = चि० ४६ ५४ ६४ १६४।
 [सं पु०] (प्र०) घन, काला।
 घघना = म०, १।
 [क्रि०] (हि०) बड़ धाँदे से चलना रहना। मुरझित
 रहना। बायोरात घघना रहना।
 घघपन = म० २३।
 [सं पु०] (हि०) लड़कन बाल्यावस्था।
 घघपन सी = म०, ६।

[वि०] (हि०) लड़कपन के सदृश, निश्चल। सरलता
 सूचक भाव।
 घघाना = प्र०, ३०। का० २६। का० कु०,
 [क्रि०] (हि०) ८। का०, ३२ ६२ १२४, १३२,
 २६१। म०, ७।
 रझा करना।
 घचि = चि०, ५२।
 [पू० क्रि०] (प्र० भा०) बचकर।
 घचे हुए हैं = का० १२६।
 [क्रि०] (हि०) 'वचाना' का आसन्न भूतकालिक रूप।
 घच्चे = का० कु०, १०६।
 [सं पु०] (हि०) १ से ५ वष तक की आयु। लड़के।
 [घच्चे बच्चों से खेलें—प्रजातन्त्र का गीत।
 इस गीत में जनता को दासवी समझाती
 है। 'प्रसाद संगीत' में यह गीत पृष्ठ
 ४१ पर संकलित है। यह दाह सं
 जलाना अच्छा बात नहीं है। घर का
 आदेश यह हुना चाहिए कि बच्चों के
 मन में परस्पर स्नेह हो और वे एक
 दूसरे से खेलें। महिलाएं प्रसन्न हो कुछ
 लक्ष्मी बर्तें और जीवन में मंगल भरें।
 बहुत समानित हा सेवक गुली रह
 अनुसर विनम्र हा, घर के स्वामी का
 मन पूर्ण शांत हा हमस हा घर स्पृहाय
 बनता है।]
 घच्यो = चि० ४८।
 [क्रि०] (प्र० भा०) बचे है बचा है, रक्षित है।
 घज = का० कु०, ११।
 [सं पु०] (हि०) घज, विजला, हार। इद्र का प्रधान
 अक्ष। हारा।

[वजा दो वेणु मनमोहन—स्वदगुप्त का गीत
 'प्रसाद संगीत' में पृष्ठ ६४ पर संकलित
 है। हे मनमोहन बीणा वजाकर
 हमारे जीवन का जगा दा। हममें
 पवित्र स्वातंत्र्यमय फूल ताकि
 सभी मंत्र और अपना म मुक्त करा
 दा। तुम्हारी अनुलियो व सहार जा
 रम का सृष्टि हो उमम मन रमरजित

हो जाय। तुम्हारी इस स्वरलहरी के द्वारा जीवन की चेतना सन्निधानदमय हो जाय।]

बजाना = आ०, १४ २३, २६। का० कु०, ६३। का० ३५, ६८ ११२, २७७, २६३। बि०, २३, ३०, १७६। अ०, ३६, ५२। प्रे०, १०, ११, १३। ल०, ४८ ५७, ७६, ८३।

आघात करके शब्द उत्पन्न करना।
आघात करना। हवा के आघात द्वारा ध्वनि उत्पन्न करना। पालन करना।

बजावती = बि०, ४७।
[क्रि०] (प्र० भा०) ध्वनि बरती है। बजाती है।

बजावट्ट = बि०, १००।
[क्रि०] (प्र० भा०) बजाओ।

बटमारहूँ = बि०, १६१।
[सं० पु०] (प्र० भा०) लुटेर, डाकू।

बटा = का०, १६६।
[सं० पु०] (हि०) गोल वस्तु। गोला गेंद। रोटा। पथिक, यात्री।

बटोरना = ल०, १८, २४।
[क्रि०] (हि०) बिलरी वस्तुओं को एक स्थान पर रखना, समेटना, इकट्ठा करना।

बटोही = का०, २१३, २५७।
[सं० पु०] (हि०) राह, पथिक, मुसाफिर।

बडभागी = बि०, ३३।
[वि०] (प्रवर्ण) अत्यधिक भाग्यशाली।

बडबानल = आ०, ४२ ६१।
[सं० पु०] (सं०) वह भाग जो समुद्र के ऊपर जलती हुई माना जाती है।

बड़ा = का० कु०, २३ ३१, ३२। का० १६७,
[वि०] (हि०) २०६, २२८, २६८। बि०, ७० प्रे०, १०। म० २२।

अधिक विस्तारवाला। अधिक अवस्था-
वाला, श्रेष्ठ।

बड़ाई = बि० ४१, ८३।
[सं० स्त्री०] उच्चना महत्ता, श्रेष्ठता।

बडी = का०, १५। का० कु०, २३।
[वि०] (हि०) दाढ़। दीघतायुक्त। छोटी का विलोम 'बडी'।

बढती = का०, २०१, १३४, १३६। प्रे०, १५।
[सं० स्त्री०] (हि०) उन्नति वृद्धि। अप्रत्याशित अधिकता।

बढाना = आ०, १४ २५ ५२। का० १४।
[क्रि०] (हि०) १५। का० कु०, २६, ६६, ७३। का०, १५, ४६, ५१, ५६, ६४ ८७, ६६, १२१, १३४, १३६, १४१, १५० १६४, १७१, १७२, १८०, १८२, १८६, १९० १९३, १९७, २००, २०६ २१०, २१०, २५७, २७८, २८६। बि०, १२, ४७, ५३, ५६, ६१, ६२, १०१, १०६, १५५। प्रे०, १०। म०, ३, ५, ७। अधिक विस्तार करना। विस्तृत करना, फलाना। दुकान आदि बढ करना।

बढावन = बि०, ६१, १०१।
[क्रि०] (प्र० भा०) दे० 'बढाना'।

बतरावत = बि०, ५८।
[क्रि०] (प्र० भा०) बात बरते हो।

बतलाती = का०, २६३।
[क्रि०] (हि०) कहती, बताती निर्देश करती। नृत्यांगिनी अधिक चेष्टाएं करती। मार पीट कर ठीक रास्ते पर लाता।

बताना = आ०, ७६। का०, १८, २६। का० कु०, १, २, ५, ३६ ५१। का० १७, २८, ४६, ५२ १०४, १४६, १६६, १८४, १६२, १६८, २२६, २६१, २६५, २७२ २८०। बि०, १६ ४६, ६६, ६८, १५५। प्रे०, २, ५ = २१। ल०, १०।

दे० 'बतलाना'।

[बताओ कौन जोर है— सवप्रथम इंदु कला ३, किरण १२, धनद्वार १६१२ म विनाद-
बिंदु के अतपन प्रकाशित तथा ५० १८० पर चित्राधार म मकरदविंदु के अतपत सकलित 'कण्ठाग्निधान

मुयो तेरी यह था' कविता। ह
कम्पागार तुम गदा नीन दुनिया पर
नया बरत हो तुम्हारा यह आत्मा है
पना मुना था तब भी मात स्वरा भय
तुम्ह वया पुराणा और दाता की
घार दोडर उता वास त्या तों
यना। ता, तुम सचमुच पथर के हो
कम्पा दाता की आह गार तरन भा
तुम्ह रही त्रिा पाना है। कम्पा
तागर मे यदि तरगा को उत्तानर
उसमे तुम्हो दुवाधो ता घार वीन
सतरा है। अथत् दाता का उता
अधुनागर मे यदि तुम्ही दुयाना
चाहा हा तो और वीन उनपर श्रा
परेगा।]

वतानर = वि० ३० १७८ १७९।

[क्रि०] (म० भा०) बताती है।

वदन = का० कु० ३४ ६७ १००। वा०, ८३
[सं पु०] (सं०) १५२ १८६। वि०, २८, ७० १६
६५ ७०, १७७ १८२। म०, ५ ८।
देह शरार।

वदनाञ्ज = वि०, १३४।

[सं पु०] (सं०) मुखरुपा कमल।

वदला = क० १३, २२। वा० ३३ १३५
[सं पु०] (हि०) १६४ १६०, २३५ २६६। क०
८६। प्र० १६ २१।
परस्पर कुछ जन देने का व्यवहार।
पता विनिमय प्रतिहार।

वद्राह = वि० ४२।

[म स्त्री] (हि०) जिमा शुभ व्यवहार पर किया जाने
वाला या आनंद प्रबट कान्तेवाना
वचन। मुखारकाश। वृद्धि मयन
उत्पन्न।

वधू = वि० २२।

[सं स्त्री] (सं०) कुनयाता। वृद्ध मी। नवविवा
हिता पत्नी।

वध्य पशु = का० कु० ११४।

[सं पु०] (सं०) बलि का पशु।

वन = का० २०, ३० ३८ ६६, ७३,

[सं पु०] (म०) ७६। का०, २६। वा० कु० ८, १६
३६, ६१, ७०, ७२ ७२, १०२
१०४ १२८ १६ १२१, १२४
१३। १३६, १४। १४५ १६०
१६४ १७०, १७१ १७६। वा०,
१३ ३१, १८, ८४ ८६ १७८,
१८६ २००, २६४ १६६ २०८
२८१ २८६ २६० २६३। वि० १
२२ ११ ४७ ६० ७२, १०६,
१७७। क०, ८१। प्र० १४। म०
११, १८। ल०, २५ ३० २५ ३८,
४२ ४३, ४६ ४६ ४०।

वानर जगन। पाना। बगाथा।
बाना' दिया या एक रूप।

वनकर = का० कु० १०१ वा० २७ ४८ ५०
[पुन० क्रि०] (हि०) १६, ६०, ७०, १६५ १६६ १६६
१७८। ल० १० ३९।

रकर। वनना क्रिया का एक
रूप।

वन गया = का० १४०। १० २६।

[क्रि०] (क्रि०) वनना क्रिया का भूतकालिक रूप।

वनचर = का० १७६।

[सं पु०] (हि०) जगती आदिना। वन पशु।

वनचारी = वि० १६१।

[म० पु०] (हि०) वन मे विचरण करनेवाला वनवासा।

वनन ही = वि०, ७०।

[क्रि०] (हि०) वनन ही।

वन्देयी = वि० ७३।

[म० स्त्री] (हि०) वन की वधिष्ठानी स्त्री।

[वनदेवि]—दरें बभ्रुवाहन-वाकर घास की पुस्तका
विनाश' का दा पति का गीत जो
वद्राहा जिस ल' को सुनता है—तुम्हारे
घास का पुतली वननर तुम्हारे साथ
खेला करेगा।]

वनना = का० १४ २८ ५३ ५४। का० कु०,
[क्रि०] (हि०) ८४। वा०, ३ ८ १८ १६ २०
२७ ४६ ५७ ५६ ६५ ६६, ६६,
७१, ७२ ७५, ७६, ८६ ८८ ११०
१११, ११३, ११५, १२३, १२६,

१४४, १४७, १४८ १६०, १६४
१७०, १७६ १८०, १८१ १८२,
१८८, १८९ १८६, १९०, १९२,
१८४, १९७, २०१ २०८, २०९,
२१० २१४, २१८, २१८, २०३,
२०६, २२८ २२१ २२८, २३६,
२४१ २४३, २४८ २४८ २४८,
२४० २४१ २४० २४३, २४४
२४३ २६८ २७३ । चि०, ६० १७०
२८१ । प्र०, १६ । म० ६, २४ ।
ल०, १०, ११, १४, २४, २७ ।

तैयार टागा, रखा जाना । निभना ।
मरम्मत होना । प्राप्त होना । मुग्रमर
मिता । मूर्त या हास्यास्पद गिद्ध
हाना ।

घन घागा = प्र०, १४ ।

[स० पु०] (हि०) जगल घोर गगावा । (वहुवचन) ।

घननाला = चि०, १६, ५८, ५९ ।

[स० ला०] (स०) जगन की रमणा ।

घनवास = चि०, ३५ १०७ ।

[म० पु०] (हि०) जन म जावर निवास करना । जगन म
वसना ।

घनवासिनी = चि०, ६० ।

[म० ला०] (हि०) जगन म वास करनेवाता ।

घनवासी = चि०, ५७ ।

[म० पु०] (हि०) वासन म रहनेवाता ।

घननिहग = प्र०, १२ ।

[स० पु०] (म०) जगल क पक्षी । वासन निहग ।

घनमाला = चि०, १ ।

[स० ला०] (म०) नगना फूटा का माला ।

घन रहा = का० ८७, ६३, ६४, ६८, ६८, १०१

[प्र०] (हि०) १०३ । १४५ ।

घनना क्रिया का एक रूप ।

घनराजी = चि०, ६६ । ल०, ७० ।

[स० ला०] (प्र० भा०) जन म भुशभिन पक्ति या श्रेणा ।

घनाता = प्रा०, ३२ । का०, ३३, ४८, ६४ ७३,

[हि०] (हि०) ११४, १२० १२४, १२६, १८८,

१६७, १६६, २६७, २८७, २८८,

२६४ । चि०, १६४ । प्र०, २१ । म०,
२१ । ल०, २८, ४३ ।

घनना क्रिया का एक रूप ।

घनाता = प्रा०, १०, ४८ । का०, १८ २८ । का०

[क्रि०] (हि०) कु०, ६, ११, ३३ ३६ । का०,

१६, ८३ ६३, १६३ १८०, १८१,

१६० २४५ २४०, २४७ । चि०,

६८ । प्र० १०, १४ १६ १८, २४

२६ । ल०, ६, ४८, ७० ।

रचना । अन्तिम म लाना । तयार
करना ।

घनाया = का० कु०, ६, ४२ । का० ३०, ८६,

[क्रि०] (हि०) १२७ १३२ १४२ १४८, १८७,

१६६ । चि० २ ४७, ७१, १०४ ।

ल०, २३, ७५ ।

घना क्रिया का भूतकालिक रूप ।

घनाली = का० १८ । चि०, १४३, १७१ ।

[क्रि०] (हि०) घना लिया ।

[स० ला०] (म०) घन का पक्त ।

घना सा = का० १४२ २०० । ल०, ७१ ।

[चि०] (हि०) बने हुए व समान ।

घनि = चि० १७४ ।

[चि०] (हि०) सय कुल ।

[अन्व०] घनकर ।

घनि सोपा = चि० १७२ ।

[प्र०] (हि०) घनी वनकर ।

घनी = प्रा०, ३२ ३३ । का०, ३० । का०

[क्रि०] (हि०) कु०, ८, ३१ । का०, १३, १६, १६,

१६ २०, ७०, ७३, ७४ १०६,

१२६ १३१, १४७, १६०, १६२,

१७२ २६४ २६६ २७१, २७२,

२८४ २६४ । चि०, ४५, ४७, ४८,

७२, ८५ । ल०, १०, १४ ।

'घना' क्रिया का एक रूप ।

घनी सी = का०, १८३, १८६ ।

[चि०] (हि०) घनी हुई वे समान ।

घनेगी = चि०, ७३ । ल०, १६ ।

[क्रि०] (हि०) ६० 'घना' ।

घहि = चि०, ६१ ।

[स० ला०] (प्र० भा०) घाग ।

वध्रुवाहन = चि० ७३।

[स० पु०] (सं०) अजुन का एक पुत्र।

[वध्रुवाहन—इदु बला २, किरण १२ आपाठ १९६८ विक्रमी मे सप्तप्रथम प्रकाशित तथा 'चित्राधार' मे सगृहीत चपु। इसम अजुन और चित्रागदा का कथा नाटकीय ढंग से है और महाभारत और जमिनी अश्वमेध से यह कथा ली गई है। इसम पृष्ठे परिच्छेद मे ११ तथा दूसरे परिच्छेद मे १०, तीसरे परिच्छेद मे ५ और चौथे मे ७ कविताएँ हैं जो सभी सामान्य एवं परंपरागत हैं।]

वयार = का० १६६। चि० १७६, १८७।

[स० ली०] (ग्य०) हवा। वायु।

घर = चि० १७६।

[स० पु०] (हि०) श्रेष्ठ। वर। वटवृक्ष। दूल्हा।

बरजोर = चि० १५।

[वि०] (हि०) जजरदस्त। बलवान। अस्याचारी।

बरजोरी = चि० १८२। ऋ०, ७०।

[स० ली०] (सं०) जवर्दस्ती। अस्याचार छेडछाड़।

बरसे = चि० १०६।

[त्रि०] (ब्र० भा०) काम मे लं भाव। व्यवहार कर।

बरबस = घा० ५५। का० १२८। चि० १४७।

[क्रि० वि०] (हि०) ऋ० ६४। ल० १७।
अनायास। "यथ"। बलपूर्वक।

बरबस ही = चि० १७६।

[क्रि० वि०] (हि०) अनायास ही। "यथ ही।

बरपी = चि०, ५६।

[सं० ली०] (हि०) मृतक का वापिक आढ।
(वि०) सबधी।

बरस = घा०, ५५, ७८। वा० कु०, ११३।

[सं० पु०] (हि०) वा० २२५।

वष साल।
[क्रि०] वरस कर।

बरसता = घा०, ३५, ६७। वा० ८६, ६१।

[क्रि०] (हि०) चि०, १ ५ १६ २२ ५७, ५६ ६० १४६ १५६, १७४, १७५। ल०, २१, २७।

आकाश से गिरता। ऊपर से गिरता।

[बरस पड़े अश्रुनल—जनमजय का नागयज्ञ य

सरमा का नीत—'प्रमाद संगीत' मे वृष्ट ६७ पर सकलित। एक दो क्षण का परिहास ऐसा हुआ कि वह निर्दय ऐसा हुआ कि लौटकर आया ही नहीं और हमारे रोंते का विषय बन गया। आँसू बरस रहे हैं। मान भाग गया है। नखों मे धनु की सरिता बह रहा है और क्रोध द्रव्यनुप के समान आकाश पर उड़ गया है। अब वह स्वयं उस पार लड़ा होकर पुकार रहा है लेकिन बीच मे बृष्ट बड़ी लार्ड पड़ गई है। भला तुम्ही बता दा घमी आने का समय हो गया है जो मैं आऊँ, जीवन भर भले ही रोता रहूँ इसकी मुझे चिंता नहीं है। बसो हसी फिर न करना' कहकर वह मेरी ओर अपने आप आने लगा है। न जाने क्यों वह ऐसा दयालु हो गया है।

बरसहु = चि०, १५६, १६८।

[क्रि०] (ब्र० भा०) बरसा।

[सं० पु०] (हि०) वष भी।

बरसा = घा० ३६। चि०, १८०।

[क्रि०] (हि०) ऊपर से गिरा।

बरसात = घा० ५८। वा० २१७।

[सं० ली०] (हि०) वर्षाऋतु। वर्षाकाल। वर्षा।

बरसाती = का० कु०, ३। चि०, ११।

[वि०] (हि०) वर्षा ऋतु का। बरसात सबधी। वर्षाकालीन।

(त्रि०) बरमाना' क्रिया का रूप।

बरसाना = वा० कु०, ७२। का० १३ २३।

[क्र०] (हि०) ऋ० ६२।

ऊपर से गिराना।

वरसि = चि० ३६।

[पूर्व० त्रि०] (हि०) वरमकर।

बरसे = का० २३२ २६३। चि०, १४६।

[क्रि०] (हि०) आकाश से गिरे।

बरबर = का० कु०, २। ऋ० ६१, ८१।

[वि०] (हि०) समान। मुख्य। एक सा।

बरणा = सं०, १२ पर तीन बार, १३ पर छान बार, ३१।

[स० खी०] (स०) काशी में सारनाथ के समीप से बहने वाली नदी जो गंगा में मिलती है।

[बहणा]—सहर के बीच 'श्री वरुणा की शक्ति वरुणा' में इस नदी की चचा है। यह नदी वाराणसी नगर का उत्तरी सीमा बनाती है और वाराणसी नामकरण का कारण यहां गया में मिलकर साथ में बहती है। इसका उत्तर में १ मील से भी कम दूरी पर सारनाथ है।

बरोनी = भा०, २२। का० कु०, ७७। ऋ०, ७७।

[न० खी०] (हि०) पत्तों के धागे के बास।

बर्क = का० कु०, ७१।

[स० खी०] (प्र०) पाना का जमा हुआ शीतल रूप।

बर्बरता = स० ३३।

[स०] (हि०) क्रूरता। जगतीपन।

बल = भा०, २२। व०, १४। का० कु०, ३८।
[स० पु०] (स०) ३८। का०, ६, ३६, ५६, ७७, ८७, १७०, १७८, १८२, १८६, २२०, २३८, २३६, २४०। वि०, ६६। ऋ०, ८१। ल०, ७६।

शक्ति। पराक्रम। शौर्य। केरा। लपेट।

बलदाता = भा०, १५।

[वि०] (हि०) (हि०) लक्षणा हुआ।

बलदाना = का०, ६८।

[वि०] (हि०) टेढ़ा होना। दब जाना।

बलभीयुत = का०, १८२।

[वि०] (हि०) मकान में बनी ऊपर की बाढरी व सहित। चौकार के सहित।

बलवान = वि०, ६५।

[वि०] (हि०) बलवाला। शक्तिशाली।

बलवैभव = का० ६६।

[स० पु०] (स०) शक्ति और ऐश्वर्य।

बलशाली = का० कु०, ६६, १०६।

[वि०] (हि०) 'बलवान'।

बलाका = का० कु०, १४।

[स० पु०] (स०) बगला। बकुला।

बलि = व०, ११। का०, ५२, १२६।

[स० ३] (स०) एक भूत यक्ष। भय। देवभोग।

बलिकुम्भ = का०, ३१।

[स० पु०] (स०) बलिदान, बलि दान।

बलिवेदी = स०, ५४।

[स० खी०] (स०) बलि चढ़ाने का स्थान।

बलिहारी = ऋ० ६३।

[स० खी०] (हि०) निष्ठावर होना। चढ़ाना।

बली = भा०, १५, २०, ४३। वि०, १४६।

[वि०] (हि०) बलवाला, शक्तिशाली।

[स० पु०] (स०) एक नरेश।

बली = वि० १०६।

[स० पु०] (स० भा०) मङ्गल, घेरा।

बल्लरियो = प्रे०, ३।

[स० खी०] (हि०) मजूरियाँ, सत्ताएँ।

बसत = का० कु० ११८। वि० १७१ १८०।

[स० पु०] (स०) प्रे०, ६। ल०, २३।

एक ऋतु का नाम जिस ऋतुराज कहा जाता है।

बसतहि = वि० १७२।

[स० पु०] (स० भा०) बसत का।

बस = भा०, ८, २०, २५। व० १३ १६।

[वि०] (हि०) का०, कु०, ८२। का०, ६, १५, १२४, १७१, १८६, २००, २०५, २१०, २२८, २३३, २३६, २४२, २४५, २६६, २७१, २७३, २७८, २८६। वि०, ६, २६, ६५, १५०। म०, २१। ल०, ५२।
गुरा, बहुल, पयात।

बसकर = का०, १७१।

[वि०] (हि०) 'बसना' क्रिया का पूर्वकालिक रूप।

बसन = का० कु०, ३६। वि०, ५, १५६।

[स० पु०] (हि०) वस्त्र निवास। स्त्रिया की कमर का आभूषण।

वसना = भा०, २४ २६। का०, ८६, ८७, ८८।

[वि० पु०] (हि०) १२४, १८१। वि०, ८, १७६।
निवास करना। किसी स्थान पर टिकना।

पावड़े बिछाए हैं। मुझे किसी का भय नहीं है और न कोई डूमरा मेरा है हा। इस मरी हृदय कुटिया में न आकर हं चंचल तुम वहीं जा रहे हो यदि यहाँ नहीं आना है तो इसे अपने कामल चरणा से मुक्त दो और इसने जो मेरे दय हृदय में छाट निकली वह भी प्रेम में मेरे विजय की बात हो रहेगी।]

वहु नाको = चि० ६३।

[म० पु०] (हि०) वृत्त में नाके। बटू स्थाय जहाँ में शत्रुओं को घेरकर पराजित किया जा सकता है।

वहुमति = चि० ७६ ५५।

[अव्य०] (हि०) सब तरह का।

वहुमत्य = क० १८।

[वि०] (स०) मूलवान कीमती, अधिक मूल्यवाला।

वहुरंग = का०, १८२।

[वि०] (स०) अनेक रंगवाला, रंगविरंगा।

वहुनयिया = भ०, ६४।

[म० पु०] (हि०) वह जो तरह तरह का रूप धारणकर लोगों का प्रसन्न करके अपना जीवन निवाह करता है।

वहुष = चि०, १६५।

[वि०] (स०) अधिक, ज्यादा, विशेष।

उहे = का०, १२८, १६५।

[क्रि० प्र०] (हि०) 'उहना' क्रिया का प्रयोगकर्ता।

घाउघो = चि०, १३०।

[स० पु०] (हि०) भाइया, बहुषा। मित्रा रिश्तागार।

बोरी = का० कु०, ७३।

[वि०] (हि०) घुट्ट और उना ठनी हुई। छली।

[म० पु०] (हि०) राम व टन का टंगा एक औजार।

बोटती = का० २७०।

[क्रि० सं०] (हि०) 'बोटना' क्रिया का सामान्य वतमान कालिक रूप।

बोध = का०, १६६।

[म० पु०] (हि०) पाना व बहाव को रोकने के लिये भट्टा चूने आदि का बना हुआ पुस्ता।

बोता = का०, ६२।

[क्रि० सं०] (हि०) 'बाचना' क्रिया का सामान्य भूत कालिक रूप।

बोना = का० कु० ८८।

[क्रि० सं०] (हि०) बसने व लिये देकर रोहना। पावद करना। प्रेम पाश में बद्ध होना।

बोधि = चि० २६, ७३।

[क्रि० म०] (ब० भा०) बोधकर।

बोधि पराजे = चि०, ६३।

[क्रि० म०] (ब० भा०) पराजय को अवशुद्धकर, विजय को कामना साथ लेकर।

बोरो = चि० ७७।

[क्रि० सं०] (हि०) बाचना क्रिया का आभाषक रूप।

बाग = चि०, १८०।

[स० पु०] (म०) उद्यान, बालिका, उपवन।

[म० लो०] लगाम।

बाजी = भ०, ५१।

[वि०] (हि०) काई।

[स० लो०] (फा) शान, दाव।

[पु०] (हि०) घोड़ा।

[क्रि० प्र०] (हि०) 'बजना' क्रिया का भूगभूत कालिक रूप।

बाजी जीतना = का० ६३।

[क्रि० म०] (हि०) दाव का जीत लेना, शर्त में जीत जाना।

[पु०] विजय प्राप्त करना।

बाटने = का०, ८७ १५३।

[क्रि० सं०] (हि०) किसी वस्तु का भाग अलग करने के लिये। वितरण करने के लिये।

बाट्यो = चि०, ६६।

[क्रि० म०] (ब० भा०) बाट दिया। वितरित कर दिया।

बाडव = का०, १६, २७।

[स० पु०] (स०) बटवान। ब्राह्मण। घोड़ियों का समूह।

बाडवरूप = का० कु०, ७५।

[म० पु०] (म०) बटवान का रूप या स्वरूप।

बाढ = का०, २०२। चि०, १८२। ल०, १३।

[म० पु०] (हि०) नदी के पाना का अपनी सीमा से ऊपर आकर चारा तरफ फैल जाना, बटने का आरंभ होने होना।

घाटी = चि० १२, ५३।

[क्रि०] (२० भा०) उड़ गई।

घात = घा०, ८। १०, १, १८, १६ २२,

[सं० खी०] (हि०) २८। वा० कु०, ४७, ८४। वा०, ६४, ८६ १११, १३४, २७८। चि०, ३, ८, १८, २६ ३१, ३५, ६०, ६१ ७२, ६०, १०३, १०५, १६०, १७२, १८७, १६०। प्रे०, ११, १६, १६, २४। म० १०, १४, २४। ल०, ११। मयन, वाणी, वचन।

[सं० पु०] वायु।

घातन = चि०, ६१।

[सं० खी०] (प्र० भा०) वात' का बहुवचन।

घाद = ल० १३, ३१।

[सं० पु०] (सं०) तर्क। भ्रमदा, उपद्रव। मामला।

घादल = भ०, ३१ ५४। ल०, ३७।

[सं० पु०] (हि०) भेष धन।

घाधक = का०, ११७।

[वि०] (सं०) बांधनेवाला, बाधा पहुचानेवाला रोकनेवाला। प्रतिवधक।

घाधा = प्रा०, २१। का०, १४। का० कु०,

[सं० खी०] (सं०) १०६। वा०, १३६, १८६, १६। भ०, ७७, ८२। ल०, ६६। ग्रन्थन। क्वावट।

घाघाँ = का०, ६६।

[सं० खी०] (हि०) क्वावटें। ग्रन्थन। विष्णु।

घाघाँ = का०, २०७।

[सं० खी०] (हि०) क्वावटो। कठिनाइयो। विष्णो। ग्रन्थोयो।

वावामय = का० का०, १६५।

[वि०] (सं०) विष्णो से भरा हुआ। कठिनाइयो से परिपूर्ण। ग्रन्थोमय।

वान = चि०, ३, १६३, १७८, १७६ १८६।

[सं० पु०] (हि०) तीर। भादत। पानी की ऊँचा सहर। बनाव। शृंगार।

वानन = चि०, ४२।

[सं० पु०] (प्र० भा०) वान का बहुवचन।

वानि = चि०, १८६।

[सं० पु०] (हि०) दे 'वान'।

वानी = चि० ५०।

[सं० खी०] (प्र० भा०) वाणी। वचन। गरस्वती। सामुद्रा व उपदेश।

वावा = का०, ६१।

[सं० पु०] (हि०) वाप का वाप। दादा। मापु। स'वाली। वडे वृद्धा व लिये प्रादरसूचक संबोधन।

वारवार = का० कु०, ६४। का०, १६। भ०, [क्रि० वि०] (हि०) ८१। ल० १३। वारवार। लगातार। धनवरत।

वार = का०, ३०। का०, ८६। चि०, ४१,

[सं० पु०] (हि०) ४२, ६६। म०, १०। ल० ३५। द्वार। राजसभा। समय। काल। बाल। वारी।

वारवार = का०, ११। का०, १२, १४, २३,

[क्रि० वि०] (हि०) १६६। चि०, ६ प्रे०, ६। ल०, ३५। प्रे० 'वारवार'।

वारिधि = चि० १४६।

[सं० पु०] (सं०) समुद्र।

वारुद = ल०, ६५।

[सं० खी०] (प्र० भा०) प्रसिद्ध बिरकोटक बूछें जो घाम लगने से भटक उठता है।

वाल = का० कु०, १०६, १२१। का०, ४७,

[सं० पु०] (सं०) ७२ १५२। चि०, ५७, ६३, ६६ ७, १४१। भ०, ६१, ८१। प्रे०, १८। बालक। नासमझ। केस।

वाल अरुण सी = का० २४८। भ० २०।

[वि०] (सं०) बाल मूय के समान या उगते हुए सूर्य के समान।

वालक = का० कु० ४२, १०५ १०६। का०,

[सं० पु०] (हि०) २७६, २८०। चि० ६४, ७१, ७३, ७४, ७५। भ०, ६। लडका। बेटा, पुत्र।

वालक युगल करस्थ = का० कु०, ७, ११६।

[वि०] (हि०) वालक के दोना हाथो मे।

वालरूकोमल कठ = का० कु०, ११८। वा०, २४३।

[सं० पु०] (सं०) बालक का सुरीला गला।

[वाल मीडा—सर्वप्रथम इंदु कला ३, विरणा २, वातिन १६६८ विजयी मे प्रकाशित

और 'बालननुयुम' मे पृष्ठ ४६ ४७ पर संकलित । हे बच्चा ! ऐसी क्या बात है कि तुम खेल मे इतने व्यस्त रहते हो जो मेरी सुनने नहीं । तुम्हें आनंद का कौन सी दरी मिल गई है । यदि हम रहे हो तो भ्रूव हमारे पर खेल मे हार न जाओ और हमने हमारे हमी ने खेल मे रोझा मत । खेल मे तुम्हारे गौर गार गाल आनंद से लान हा गए हैं और निर्द्वंद्व विनाश से हृदय मस्त है । इस खेल मे उपवन के फल पूरे तुम्हारे रास्ता दखने ह और इसके निय तुम काटो की भी परवाह नहीं करत हा । जब तुम्हें राकन के लिये बूझा मानी बक्काम करता है तो तुम्हारे हमी दसहर उसका शोध जाता रहता है । राजा हा था रक खेल मे सभी समान हैं और वे ही परस्पर श्रेष्ठ हैं जा एक दूसरे से स्नेह करत हैं । जब कभी वृद्धों का मत्प कहानियाँ प्रारम्भ होती है तो तुम इतने आनंदमग्न हो जाते हो कि हस देते हो ।]

बालक्रीडा भूमि = का० कु०, ११२ । म० २२ ।

[सं० खी०] (सं०) बालक के खेलन की जगह ।

बालपन = ल०, ७२ ।

[सं० पु०] (सं०) लड़कपन । बचपन ।

बाल बकुले = चि०, १३२ ।

[सं० पु०] (सं०) बकुले के बच्चे ।

बाल खरी = चि०, ५६ ।

[सं० खी०] (सं०) बचपन की खरी ।

बाला = भा० ६१ । का० कु०, ८६ । का० ३६,

[सं० खी०] (सं०) ६२ ११६ १६८, १७१ १७८ । चि०, ५८, ६७, ६८, ६९ ७०, ७५ । ल०, ७८ ।

बालिका । खरणा । पुत्रा । भार्या ।

बालिका = का०, ४, ४३ । ल०, १५ ।

[सं० खी०] (सं०) लड़की । बाला ।

बालिकाएँ = ल०, ६० । प्रे०, १० ।

५३

[सं० खी०] (हि०) नटकिया । बालाए ।

बालिका भी = का०, ६३ ।

[वि०] (हि०) नटकी गा ।

बालिके = का०, १६५ ।

[सं० खी०] (मं०) बालिका का सवावन ।

बालुका = चि०, १७० ।

[सं० खी०] (मं०) रत बालू ।

बालू = का० कु०, १२ । का० १८२ । भ०

[सं० पु०] (मं०) ३१ । प्रे० १४ ।

रत । चट्टान का चूर ।

बालू से दीवाल = का० कु० १०८ ।

[मुद्रा०] (हि०) ज गी नष्ट हो जानेवाला ।

[बालू की चेला सबप्रथम 'माधुरी', वष २ मर्या ५ मनु १६२४ ई० प्रकाशित और भरना' मे पृष्ठ ३२ पर संकलित । हे प्रियतम, इस जीवन मे मे घ्रास बचाकर मारा आनंद ही किर-किरा न कर दो । दन भीड़ मे यदि नहीं मिलोगे तो कहा मिलोग । क्या किसी दर निजन मे । साक्षिरकार प्रेम के इस दुगम पथ पर दूर और कितनी -२ मैं चलू । चलन चलते थककर चूर हा गया हूँ और सार भग भा चूर चूर हा गए हूँ । मैंने प्रेम के खेल मे बहुत कष्ट पाया है । फिर भी तुम कहते हो कि मुझे काहि दुख नहीं हुआ । हा ठीक है । इस सा पर अपनी बाकी चितवन से स्वयं पूछ लो कि क्या कष्ट मैंने नहीं भेला । प्रेम का मोठी मोठी से सुपूर की भरकर आन दो और हाथ बढाकर गनवाहा दा और अपने मुख से कहो कि अपने हृदय का प्याला ले आओ । उस प्रेम से भर दें । तुम्हारे ही चरणा पर हृदय ग्रथु का सागर उलीच रहा है । पसीनो, पुलकित हा बालू की तरह धासू के रत्नार का साक्ष मत जाओ ।]

बाले = का०, १००, १६६ ।

[सं० खी०] (मं०) बाला का सवोवन ।

वाल्म्यसरो = प्र०, १६।
 [सं स्त्री०] (हि०) दक्षिण की सहेरी।
 वावली = का० ३०।
 [सं स्त्री०] (हि०) पगनी। छात्र गहरा छाता।
 वावले = का० २११।
 [सं पु०] (हि०) पगन। पिछत।
 वास = बि० २७।
 [सं पु०] (हि०) गुग्गुलु। स्थान। निवासस्थान।
 प्रमि। यक्ष।
 वासर = बि० ३५।
 [सं पु०] (सं०) दिन।
 वासी फल = का० ५१।
 [वि०] (हि०) पुराना फल। विगत वन का फल।
 वासुरी = का० कु०, १११।
 [सं स्त्री०] (हि०) वेणु। मुह स कृत्तर उजाया जाने
 वाला एन बाध।
 वाह = का० पु०, १६। ल० ५२।
 [सं स्त्री०] (हि०) बुझा। बौध।
 वाहन = बि० १५७, १८६।
 [सं पु०] (हि०) सवारी।
 वाहनहूँ को = बि०, ७२।
 [सं पु०] (प्र० भा०) मवारी का भा।
 वाहनि = बि० ५७।
 [सं स्त्री०] (हि०) सवारी। सेना।
 वाहिर = का० २१६, २३७ २३८ २५१।
 [क्रि० वि०] (हि०) ऊ० ७३।
 सीमा के उस पार का सामा। अदर
 का उलटा।
 बाहुषाश = ल० ५४।
 [सं स्त्री०] (सं०) हथकड़ा। भुजवद।
 बाहुलता = आ० २४ ल० १०।
 [सं स्त्री०] (सं०) भुजारुपा लता।
 बाहूँ = का० ६७ १७६ १६८।
 [सं पु०] (हि०) भुज।
 विंदी = का० कु० ११।
 [सं स्त्री०] (सं०) सीमागवती के मस्तक पर सिंहर का
 गोल टाका। शूय वा मुचक।

विंदु = का०, २१, २७२। बि०, १६२,
 [सं पु०] (सं०) १८१। ल० ३५।
 गानी ता २८। वि०, गुप।
 विभ जाती = का०, ११२। अ० २१।
 [वि०] (वि०) जंग जा।। उभक्त जाती।
 विभ = का० १६३।
 [वि०] (वि०) विभ हू। जंग हू।
 विभ = का० २३३। वि०, २१, १६२।
 [सं पु०] (सं०) बन्मा। बन्म। छाया।
 विभल = वि० १७६।
 [वि०] (वि०) व्याकुल। व्यग्र। व्यथित। व्यवसाय
 हूमा।
 विफसाया = का० कु० ३४।
 [क्रि०] (हि०) प्रफुल्लित किया। प्रगल्भ किया।
 विभसित = का० कु०, ३४ ३६ ७२।
 [वि०] (हि०) उगा हुआ। प्रफुल्लित। तिला हुआ।
 विभसे = का० कु० ७८।
 [क्रि०] (हि०) तिले प्रसन्न हू।
 विकास = का० कु०, १८।
 [सं पु०] (हि०) फलान। उत्ति। प्रगति।
 विग्रहली = का० ८४ ११।
 [क्रि०] (हि०) चारो तरफ छिन्नवती।
 विग्रहा = आ०, २५ ३८ ५४। का० कु०, ८१।
 [क्रि०] (हि०) का०, २३, २५ ३६, ७०, ५४ ५८,
 ६६ ६८, ७०, ७५ ६१, १४३ १४१,
 १५८, १६७ १६८, १६९, १७६,
 १७७ १७६, १८३, १६७ २१३,
 २१८, २२१, २७१ २७३। बि०,
 ४६। अ०, २५ २८, ३३। प्र०,
 २५। ल० १५, २१, २४, ३, ४२
 ७३, ५० ५६ ७६।
 चारो तरफ छिन्नवती।
 विग्रहा = आ० ४५ ४८। का०, ८६, २६२।
 [क्रि० अ०] (हि०) ल०, ३६ ४५।
 तितर बितर हुआ, फटा हुआ।
 विग्रहा = आ०, ३८।
 [क्रि० स०] (हि०) छिन्नकए गए।

[वि०] (हि०) विखरे हुए ।
 विखराता सा = वा०, १८५, ६५, २१० ।
 [वि०] (हि०) बिखरात हुए वं ममान ।
 विखरायत = वि०, ६० ।
 [क्रि० प्र०] (हि०) बिखर दता है । बिखराता है ।

[विखरा हुआ प्रेम—भरता म पृ० ३८ पर सकलित है । प्रनात बाल म विवत प्रम मे व्याकुल हार, माया वा प्रम मुता प्रवस्था मे प्रवार होकर तारा की मति जावन वा निमूत धान दुवड दुवडे कर केव निया या, आशा वा तारा लकिन पुन उषा ममय म उन्नि हया है । हम उम व्यथ ही फरर पोर प्रयनार वं वारण विवत हुए थे । प्रयन दुवना गमभरर छात्र म प्रणा वया वनू । क्यानि मैं ता प्रणयी हूँ । मुन्ध लाग से राकर जानन क पात्र म वाम वा मदिरा कम भर् । घर म प्रभिमान तुमन मुफ प्रविचन वया वना दिया । मुन्धार इम प्रनत पय वा ता वहा प्रणान पायय रहा है । प्रव मौन की घूट घूट से साचन पर भा ता प्रणु प्रणु स्नेहिन न हा सर्वे मे । इमालये प्रवना प्रम गुषानर खाना तारि यह सगार हिमाना से वीतल टा प्लावित हा ।]

[विखरी विरण अलख व्याकुल हो—यह वविता सवप्रयम मनारमा प्रवद्वर १६२६ म 'तारिका के प्रत' शीपक स प्रराजिन हुड प्रीर चद्रगत म प्रलका वा गीत वन गई तथा प्रसाध सगान म यह पृ० १११ पर सकलित की गई है । देखिए 'तारिका वं प्रति' ।]

विखेरत = वा० २८५, २८८ । वि०, १५६ ।
 [क्रि० प्र०] (हि०) बिखेरता है ।
 विगडता = वा०, १२६ ।
 [क्रि० प्र०] (हि०) खराब हो जाता । काप म भाकर कुछ बहता ।

विगडते घनते = वा०, १०६ । ल०, ७६ ।
 [मुहा०] (हि०) उषान प्रीर पतन वा स्थिति म ममान रूप से घाम बढ़ता । गुम्मा होता ।

विगडयो = वि० ४८ ।
 [प्र० प्र०] (प्र० भा०) विगड गया, नष्ट हा गया ।
 विचारि = वि० ४२ ४८ ।
 [प्र०] (प्र० भा०) विचार कर ।
 विचारी = वि० ५०, ५६ ।
 [प्र०] (हि०) विचार दिया ।
 [खी०] दोन खा घमहाय खी ।
 विचार = प्र०, ५ ।
 [वि०] (हि०) जमका वाड गाया न हा । गरीय दान । (वट्टवचन ।)
 विद्ध = वा० कु० १३ । वा०, ११८ ।
 [प्र० प्र०] (हि०) विद्या प्रया वा र ।
 विद्यदना = वा० कु०, १०६ । प्र०, ६३ ।
 [प्र०] (हि०) प्र०, २ ।
 प्रलय या कुग हाता । विद्या हाता ।
 विद्ये = वा०, १२ ।
 [वि०] (हि०) छूटे हुए ।
 [प्र०] विद्यना क्रिया रा एक रूप ।
 विद्यती = प्र०, २५ ।
 [प्र०] (हि०) विद्यना क्रिया का एक रूप । विचारी ।
 प्राम पर विरती ।

विद्यना = वा० कु०, १०१ ।
 [क्रि०] (हि०) पतना ।
 विद्य रहा = वा० १०८ ।
 [प्र०] (हि०) विद्यना क्रिया का एक रूप ।
 विद्यलता = वा०, ११, १०१ । प्र०, २४ । ल०, २३ ।
 [प्र०] (हि०) फिगलता । विद्यना क्रिया का एक रूप ।
 विद्यलन = वा०, ६३ ।
 [मं० स्म०] (हि०) सरहन । फिगलन ।
 विद्यला = ल०, ४४ ।
 [क्रि०] (हि०) विद्यना क्रिया का भूतकालिक रूप ।

बिछाड़ = बि०, ७० ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) २० 'बिछावर' ।

बिछावर = अ०, १४ ।

[क्रि०] (हि०) बिछाते हुए । फलावर । (पूर्वातिर) ।

बिछुडना = का० कु० १०१ । प्र०, १३ ।

[क्रि०] (हि०) अलग या जुटा होना । वियोग होना ।

बिछुडे = का०, २२७ ।

[वि०] (हि०) छूटे । अलग हुए ।

बिछुरन = बि०, १८१ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) २० 'बिछुडना' ।

बिछुरे = बि० ६१ ६२, १८१ ।

[वि०] (हि०) २० 'बिछुडे' ।

बिछे = क०, १५ । प्र० १६ ।

[वि०] (हि०) फल । बिखरे ।

बिजली = का०, ७ ४६, ८१ २२४ २२६ ।

[सं० जी०] (हि०) विद्युत् । चमरात्ता । चपल । अतिशय चपल ।

बिजली सी = भ०, ६२ ।

[वि०] (हि०) अत्यंत चपल सा । बिजली के समान, चमकाता सा, विद्युत् सा ।

बिजुलता = बि० १३ ।

[सं० जी०] (प्रप०) विद्युत् सत्ता । बिजली की बेलि ।

बिजुली = बि०, १५० ।

[सं० जी०] (प्रप०) २० 'बिजली' ।

बिठलाया = प्र० २० ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) बठाया । बठाना क्रिया का एक रूप ।

बिठा = का० कु० ४५ ।

[प्रव० क्रि०] (हि०) बठाना क्रिया का एक रूप ।

बिठावा = प्र० २१ ।

[क्रि०] (हि०) बठावा । बठाना क्रिया का एक रूप ।

बिडवना = ल० ११ ।

[सं० हि०] २० 'बिडवना' ।

बितरहु = बि० ६१ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) बितरण करा । बाटा । बाटना क्रिया का एक रूप ।

बिताना = का० कु० ३३ । का०, १७५ । प्र० २१ । ल०, ३५ ।

[क्रि०] (हि०) गुजारना । व्यतीत करना ।

बितै = बि०, १७१ ।

[प्रव० क्रि०] बिनाकर । व्यतीत करके । बीतना (ब्र० भा०) क्रिया का एक रूप ।

बिदा = का० कु०, ६६ । प्र० १४ ।

[सं० जी०] (हि०) घाग हुए वा लौट जाना । गमन । जाना । जाने की प्रार्थना ।

बिगाई = प्र० १४ ।

[सं० जी०] (हि०) जाने का भाव (जुगाई) ।

बिधान = बि० ६८ ।

[सं० पु०] (सं०) कानून । नियम ।

बिधि = बि० ६६, ७३, ७४ १३३, १४३ ।

[प्रत्य०] (हि०) प्रकार ।

बिधु = प्र०, १६ ।

[सं० पु०] (हि०) चद्रमा ।

बिधुकर = का० कु०, ३४ ।

[सं० पु०] (सं०) चंद्र किरणें ।

बिधुकला = बि०, ४५ ।

[सं० पु०] (सं०) चंद्र किरणें । चद्रमा की कला ।

बिद्वयो = बि०, १८४ ।

[वि०] (ब्र० भा०) छिना । बिधा ।

बिन = भा० ५१ । बि०, ३४ ५७, १६६ ।

[प्रत्य०] (हि०) बिना ।

बिनती = का० कु० ८४ ।

[सं० जी०] (हि०) प्राथना बिनय निवेदन ।

बिना = का० कु०, ४३ । का० ५६ । बि०,

[प्रत्य०] (सं०) २१, ३४ ६१, १७१ । प्र० २, २३ । ल०, १२ ।

सिवा । अतिरिक्त । छोड़कर ।

बिनु = बि०, १७४ ।

[प्रत्य०] (ब्र० भा०) २० 'बिना' ।

बिनोद = बि०, १९७ ।

[सं० पु०] (सं०) द० बिनोत् ।

बिनोदमय = का० कु० ४८ ।

[वि०] (हि०) बिनोदयुक्त । मनोरंजनयुक्त ।

बिघ्न = बि०, ३१, ३३ ।

[सं० पु०] (ब्र० भा०) बिघ्ना, बाधना, द्विधा ।

विभात = चि०, ७७ ।

[वि०] (ब्र० भा०) चमकता हुआ । ज्वालित ।

विमल = का० कु० १६ । चि०, ४५, १६५ ।

[वि०] (मं०) २० 'विमल' ।

विरल = का० १७७ ।

[वि०] (सं०) २० 'विरल' ।

विरह = चि० १४ १७१, १६० ।

[२० पु०] (हि०) २० 'विरह' ।

विरहाग्नि ज्वाला = चि०, ३६ ।

[न पु०] (मं०) विरह के अग्नि का ज्वाला ।

विराजहि = चि० ४७ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) विराजमान हो ।

विलसता = का० कु०, ६४ ।

[क्रि०] (हि०) विलाप करता ।

विलसाता = पा० ३१ । फ, ३१ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) २० 'विलसना' ।

विलसती = पा० ८ । का०, ११८, १६४ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) २० 'विलसना' ।

विलसै = चि०, १४६ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) प्रमुदित होना है । बिनाम करता है ।

विलोक्त = चि, १७६ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) दलता है ।

विलोकै = चि०, १८२ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) 'विलाकत' ।

विलोल = चि० १४३ ।

[वि०] (सं०) हिलना हुआ, चबल ।

विशेषकर = का० कु० ३१ ।

[सं० पु०] (ब्र० भा०) ईश्वर, प्रभु ।

विश्व = चि०, १६ ।

[सं० पु०] (सं०) जगत्, मसार ।

विसरत = चि०, ३

[क्रि०] (ब्र० भा०) भूल जाता है ।

विसरायो = चि०, ३४, १६६ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) भुला दिया ।

विसारी = चि, ३५, ५७ १७६, १८३ १८४ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) विसार दिया । भुला दिया ।

विसेति = चि०, १७२ ।

[पु० क्रि०] (ब्र० भा०) विशेषतः संयुक्त हाकर ।

विस्तृत = का० कु०, ३६ ।

[वि०] (हि०) फैला हुआ । २० 'विस्तृत'

विहगम = का० कु०, ३३ ४२ ।

[सं० पु०] (हि०) पक्षी । चिटिया । २० 'विहगम' ।

विहसती = पा०, २५ ।

[क्रि०] (हि०) प्रमदित हाती प्रमन होती ।

विहरण को = चि०, १६ ।

[क्रि० वि०] (ब्र० भा०) विचरण करने के लिये । विहार करने के लिये ।

विहरत = चि०, १४३ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) विहार करता हुआ । विहार करता है ।

विहरन = चि० ६० ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) विचरण । विहार करना ।

विहरे = चि, १४६ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) विहार करे ।

विहारथल = चि०, १८८ ।

[सं० पु०] (हि०) विहार करने का स्थान । अभिमार का स्थल ।

विहारि = चि०, ५१ ।

[पुन० क्रि०] (हि०) विहार करके ।

विहारी = प्रे०, १६ ।

[वि०] (हि०) विहार करनेवाला ।

विहाल = चि०, १७१, १७७ ।

[वि०] (हि०) प्रसन्न । कामुक । व्यग्र ।

वीच = पा०, २५ । का० कु०, ३६ ४८,

१०३ । का०, ४६, ४८, ५३, ५४,

१३६, १५०, १८१ १८२, २६१ ।

वि०, २, ११, २४, ४६, ५५, ५९,

६६, ६७ । फ०, ११, ५५ । प्रे०,

१४ २१, २२ । म०, ४, ८ ।

मध्य ।

बाच वीच = का०, १८२ ।

[म०] कुछ अंतर पर ।

वीचि = का० कु०, ३४ । चि०, १४६ ।

[सं० खी०] (हि०) लहर, तरंग ।

वीचिन = चि० । १७० ।

[सं० खी०] (ब्र० भा०) छोटी छोटी लहरें ।

धीचिर्यो = बा०, १६६।

[सं० श्री०] (हि०) छोटा छोटा सहरिया।

धीचिर्यो = भ०, ३५।

[सं० श्री०] (सं०) सहरो।

धीज = बा० १४१ १४६ १८२। म०, २४।

[सं० पु०] (हि०) मूल। युक्ता। बीया।

धीणा = बि० १४ ३०। भ० ३४।

[सं० ला०] (सं०) एक प्रकार का वाद्ययंत्र। "० बीणा"।

धीणा स्वर = बि० ४७।

[सं० पु०] (म०) बाणा का स्वर।

धीत चलो है = बा० १८६। ल० १०।

[म०] (हि०) गमास हा चला है।

धीतत = बि०, ८।

[क्रि०] (प्र० भा०) व्यतात होना है।

धीतना = भा० ८, ५५ ७०। बा०, १७, २४,

[क्रि०] (हि०) ६० १६२, १६४ १६५ १६६

१६७, २०७, २२२। बि०, १८ ५७,

६०। प्र० १६, १८, १६ २०, २२।

ल०, ३२।

व्यतात होना।

धीती = बा० २३, १७७। प्र० १२ १६

[क्रि०] (हि०) १६ २३। ल०, १६।

व्यतात हुई।

[धीती बिभाषरी जागरी—लहर म पु० १६ पर सकलित जागरणगत। उपारूपा बाला अबर ने पनघट म तारा जटित घट डुबो रही है अर्थात् उपा दीख रही है और तारे अबर मे विलान हो रहे हैं। रात बीत चुका है, जागा। पत्नियों का परिवार कलरव कर रहा है। मलयज समार ने सस्पर्श किसलय का भ्रम डोल रहा है अर्थात् कलिया विल रहा है और लोन यह लातवा भी मधु मुकुला के नवल रस स गयरी भर लाई है अर्थात् जलिका म खिल फूल रस रजित है लेकिन अपने अघरा म अमद रागरजित किए हुए हो तथा जिसस

मतयन वनन भी मुन्गारे मनका म बन हो गए हैं। (मनयन पवन सगने पर धारमी जाग जागा है किन्तु यह! मन्मत्त गा! क बारण उमका भी अगर रही पट रहा है। लगी स्थिति म जब प्रकृति घोर पक्षा तब जाग गए हैं। तब भी प्राणों के घोषों म रामागति निग मारि हा। राग बीत चुका है, उठा जागा।)]

धोत = बा० १० ६६ ११२, १६३। नि०

[सं० पु०] (हि०) ४७ १०० १६७। ल०, ७६।

मुद्रत नूतनर रनाया जानना का वाद्य यंत्र। बाणा।

धोनकर = बा० १४१।

[प्र० क्रि०] (हि०) छोटकर। तुनकर।

धीनती = बा०, १४६।

[क्रि०] (हि०) छोटता। घुनती।

धीर = बि० ३८ ४१ ५१, ६५, ७० ७२,

[सं० पु०] (हि०) ६७, १०५।

भाई। अता।

[श्री०]

सखी, सहना।

[वि०]

शक्तियां। बहादुर।

धीर फर्म = बि०, ६३, ६६।

[सं० पु०] (हि०) बहादुर का काम।

धीरन गले = बि०, ४२।

[सं० पु०] (हि०) वारा क गले।

धीरपथ = बि०, ६५।

[सं० पु०] (सं०) वीरो का मार्ग।

धीहठ = भा०, ४०। का०, १५८।

[वि०] (हि०) उजाड़। धीरान।

धुम्फ न जाय = का०, १७६।

[क्रि०] (हि०) ठंडा न हो जाय। प्रकाश समाप्त न हो जाय।

धुम्फना = का०, ११८ १२०, १३६, १६० १७६

[क्रि०] (हि०) १८३। भ० ४७।

जलने के बाद समाप्त हो जाना।

धुम्फी न प्यास = बि० १५, १०३।

[सं० स्त्री०] (हि०) व्याप्त समाप्त न हुई । इन्ध्या नष्ट न हुई ।

सुदसुद = का०, १७, १७६, २२३, २७० म० ४ ।

[सं० पुं०] (हि०) पानी का बुबुला ।

सुदसुद सा = का०, २८८ ।

[वि०] (हि०) बुनबुल के समान । जणभपुर ।

सुद = प्रे०, २१ ।

[वि०] (हि०) जागा हुआ । ज्ञानी ।

[सं० पुं०] (म०) गोतम बुद्ध ।

बुद्धि = का० कु०, ८, १२२ । का० ६, १०,

[मं० स्त्री०] (म०) १३४ १६६ १७१, १७२, १६३,

२७० । मं०, ६३ । ल० २१ ।

सोचने समझने और निश्चय करने की शक्ति । श्रवण ।

बुद्धिचक्र = का०, २६६ ।

[सं० पुं०] (सं०) बुद्धिरूपी चक्र ।

बुद्धिधल = का०, १८६ ।

[सं० पुं०] (सं०) बुद्धि की शक्ति ।

बुद्धिवाद = का०, १७२ ।

[सं० पुं०] (हि०) वह मित्रात जिसमें बवल बुद्धिसम्मत या समझ में आनेवाली बात ही मानी जाती है ।

बुधजन = मं०, १२ ।

[सं० पुं०] (हि०) विद्वान् लोग । बुद्धिमान् लोग ।

बुधि = चि०, ३५ ।

[सं० स्त्री०] (ग्र० भा०) दे० 'बुद्धि' ।

बुनते = भा०, १४ । का० १७६ ।

[क्रि०] (हि०) बुनना क्रिया का एक रूप ।

बन दे = का०, १५० ।

[क्रि०] (हि०) काट दे । बना दे ।

बुनना = का०, ३२, ६५ ७५, ६८, १४३,

[क्रि०] (हि०) १४४, १६८ ।

लोगों का सहायता से कर्षे पर कपड़ा तयार करना ।

बुरा = का० १८६ ।

[वि०] (हि०) मंद । खराब । निष्ठुर ।

बुराई = का०, १६५ ।

[सं० स्त्री०] (हि०) खराबी । दोष । श्रवण ।

बुरी दशा = का०, २५ ।

[सं० स्त्री०] (हि०) खराब हालत । दयनीय स्थिति ।

बुलाई = चि०, ५२ ।

[क्रि०] (हि०) पुकारा ।

बुलाता है = का० कु०, ४६ । का० ६७, ८६ ।

[क्रि०] (हि०) पुकारता है ।

बुलाती = क०, ८ ।

[क्रि०] (हि०) पुकारती ।

बुलाना = क० १६ । का०, ८६ ८७ । मं०,

[क्रि०] (हि०) ६४ ।

पुकारना ।

बुल्ले = का० ६७ ।

[सं० पुं०] (हि०) पाना के बुनबुल ।

बूँद = भा०, ६६, ७२ । का० कु०, २१,

[सं० स्त्री०] (हि०) ३१, ४५ । का० १६, २२३, २६३,

२६१ । चि०, ५७, ७०, ७१, १७२ ।

मं० २१ । प्रे० ६, २२, २६ ।

पाना का कतरा । गिरते समय किसी

द्रव पदार्थ का सबसे छोटा कण ।

बूँद सदृश = प्रे०, १६ ।

[वि०] (हि०) बूँद के समान ।

बुक्ति = चि०, ५३ ।

[पूर्व० क्रि०] (ग्र० भा०) समझार ।

बृदानन = ल० २६ ।

[सं० पुं०] (हि०) मथुरा के निक्क एक नगर जहाँ कृष्ण न प्रेमलीला की थी ।

बृद्ध = प्रे०, २१ ।

[वि०] (हि०) बुजुग । बृद्ध ।

बृद्धि = का० कु०, ४७ ।

[सं० स्त्री०] (हि०) बढ़ता । बढ़ावा । व्याज ।

बृष = का० २७७ ।

[सं० पुं०] (सं०) बल, साठ ।

वेग = चि०, १२ ।

[सं० पुं०] (हि०) गति । तंज । प्रवाह । बहाव ।

वेगसहित = का० कु०, ४०, १

[वि०] (हि०) प्रवाह के सहित ।

बेगार = श्री०, १२।
 [सं० पु०] (हि०) बिना कुछ दिए हुए लिया गया काम।
 बेगि = चि०, १४७, १७५।
 [सं० पु०] (ब्र० भा०) 'बेग'।
 बेगिहि = चि० ४२।
 [सं० पु०] (ब्र० भा०) ज दो से।
 बेगुन = आ० ४२।
 [वि०] (हि०) गुण रहित। बिना डारी का।
 बेगे = बि ६६।
 [वि०] (ब्र० भा०) जल्ना हा।
 बेचारी = चि०, ५८।
 [वि०] (हि०) निस्महाय। मबलरहिता।
 बेटे = का० २१३।
 [सं० पु०] (हि०) पुत्र।
 बेडी = भ०, ५१।
 [सं० ली०] (हि०) लोहे का जजर जिसे कदिया बो
 पहनाते हैं।
 बेदी = चि०, ६८।
 [सं० ली०] (हि०) हथकण्डा। बेदी।
 बेधो = चि०, १७२।
 [क्रि०] (हि०) धेध दो। ताड डालो।
 बेमन की = श्री० ४४।
 [वि०] (हि०) प्र यमनस्क बिना मन की।
 बेर = चि०, ६०।
 [सं० पु०] (हि०) एक वृक्ष। बार, दफा।
 बेरोक टोक = का० ६४।
 [वि०] (हि०) बिना किसी रोक टाक क। निर्विघ्न।
 त्रयधान रहित।
 बेल = का०, ५७ ७८। भ०, ६६।
 [सं० पु०] (हि०) श्रीपत्र। लता।
 बेला = ल०, १०। श्री० ६०।
 [सं० पु०] (सं०) बमली की भाँति का एक सुगन्धित
 फूल। लहर, चिनारा। तरंग। समय।
 बेलि = का० कु०, ८६। चि०, ५।
 [सं० ली०] (हि०) लता।
 बेली = का० १२६, २६०।
 [सं० ली०] (सं०) वन्या लता।
 [पु०] सापी, मयी।

बेसुध = श्री०, ११, १३। का०, ४०।
 [वि०] (हि०) अचेत। वदह्वास।
 बेमाल = चि०, ५६।
 [वि०] (पा०) व्याकुल, बेचन।
 बैठता = श्री० २५। का०, २६१ २६४।
 [क्रि०] (हि०) बठना प्रिया का एक रूप।
 बैठना = श्री० २५ ३८ ४३ ५५। का०,
 १४। का० कु० ३६। का० २४
 ३३ ८५ ६१ १ ५ ११६ १२३,
 १४१ १८३, १८६ २०६ २११,
 २१३ २१४ २१६, २१८, २३०
 २७८ २८४ २८५। चि० २ १३,
 २४, ५४ ५६ ५८ ६६ १८०। प्रे०,
 १६। म ७ ८। ल०, ६६, ७२।
 भासीन होना, भासन जमाना।
 बठी सी = २३०।
 [वि०] (हि०) बठी हुई के समान।
 बेटो = चि० ७२।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) बठा।
 बेनन = चि० १७६।
 [सं० पु०] (ब्र० भा०) दाता बचनो।
 बैरिन = चि० ३५।
 [वि०] (हि०) शत्रु। दुश्मन। वर रखनेवाला।
 बैरी = चि०, १०६।
 [वि०] (हि०) 'बे' बरिन'।
 बोझ = का० कु० १२।
 [सं० पु०] (हि०) भार बजन।
 बोझ सी = का०, ११८।
 [वि०] (हि०) भारमय, भारयुक्त।
 बोध = का० २३०।
 [सं० पु०] (सं०) ज्ञान। धर्म। सात्वता।
 बोलकर = का० कु० ४१ ६६।
 [पूर्व० क्रि०] (हि०) कहकर।
 बोलन बोली = चि०, ५८।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) व्यग करता है।
 बोलति = चि०, १४, ४५, १५१।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) बोलती है।

बोलना = भा०, ६५। ६०, १६। बा० कु०,
[क्रि०] (हि०) ४५ १२६, १२८, १३२। बा०
३६ स २८७ ता २८ बार। बि०,
१, ४८, ५७, ५३, ५६, ६१, ७०,
१५८। प्रे० १२, १४। म०, १४।
ल, १८, ५७।
मुह न शब्द निकलना। उच्चारण।
कुत्र रहना। बाकी न रहना। हार
मान लेना।

बोली = बा० कु० ४५। बा० ६३, १२८,
[म० ली०] (म०) १३२, १६८ २६०। बि०, ५६ ५७
प्रे० ११ १८ ६१।
वाला। साधक जान। किसी प्राणा के
मुँह से निकला हुआ शब्द।

बोलु = बि० १४७।
[सूच० क्रि०] (२० भा०) बाना, बानवर।
बोख्यो = बि० ५४, ५८ ७२ ७३, १८४।
[क्रि०] (२० भा०) बोला। कहा।
बोले = भा० ७७।
[स० पु०] (स०) नाट, वक्त्र से छूटे। बानन अंगुल का,
ठिगने।

बयजह = बि०, ७७।
[वि०] (स०) अभियन्त करनेवाला।
बयघन = बि०, १३४।
[क्रि०] (स० भा०) बजना है। बट्ट देता है। मारता है।
प्रहार करता है।

ब्याकुल = का, १४०। १०, २६।
[वि०] (स०) परदाया हुआ। बचन।
ब्याह = प्रे० १०।
[म० पु०] (हि०) ब्रिवाट, शादा वाणिग्रह्य।
न्याही = प्रे०, १३।
[वि०] (हि०) विवाहिता।

न्योम मध्य = का० कु०, ४३।
[म० पु०] (हि०) वाच आकाश में।
ब्रजनाला = बि०, १६२।
[स० ली०] (हि०) ब्रज का युवती। ब्रज की तरुणिया।
गायिका।

ब्रह्ममेला = बा० कु०, १००।
[म० मी०] (म०) ब्रह्म मुहूर्त।
ब्रह्माडि = बा, २५३। बि० १५५।
[स० पु०] (स०) सक्न सृष्टि। गान्धो के ऊपर का
ग्रीचमाला भाग।
ब्रह्माडि निग्न = बा०, १८३।
[म० पु०] (स०) सृष्टि।
ब्रह्मा = बा० कु० ११४।
[म० पु०] (म०) विद्याना गृष्ट।

[ब्रह्मा—एक पौराणिक देवता जो सङ्ग प्रजा का
मृष्टा माना जाता है। ब्रह्मा की उत्पत्ति
विष्णु ने कमल रूप घारी पृथ्वी क
निमेष द्वारा किया। भगवान् विष्णु
के धन से सृष्टिसृजन की भावना से
भी ब्रह्मा की सृष्टि मानी जाती है।
पुराणा में इस चार मुखवाना बत-
लाया गया है। इसे पाचवा मुख
भा था किंतु उसे शरीर ने मरोड़ कर
फेंक दिया। यह वेदा का निमाता भा
था। मरीचि यज्ञि, यगिरय, पुलस्त्य
पुनह बतु दक्ष, भृगु एवं बशिष्ठ इसके
पुत्र थे। याला धीरे बिपाता नामक
इसके दा और पुत्र माने जाते हैं।
इसका पुत्री का नाम जतरूपा था।
स्वायम्भु मनु की उत्पत्ति इसका पत्नी
सावित्री द्वारा बतनाई जाती है।
जनरूप और साविना भा इनकी
पुनियौह थी। शारूपा का नाम मरुध
पुराण में सावित्री मरुस्वती गायत्री
और ब्राह्मणी भी दिया है। दुहितृमने
से लज्जित हुए ब्रह्मा का रज द्वारा मदव
दहन का घोष दिया गया था किंतु
मृत्यु के उपरांत भी बारह स्वाना पर
निराश धनरूप से करने का बात
बहो था। वे स्वान हैं—विद्या क लेन
बलाघ्न जघा, लून स्वय, अचराष्ट
(शारीरिक धवपा) तथा वसन
वाक्लवर् अद्रिका, वपा क्रतु चन
और वजास भाग आदि। सावित्री के

शाप से यह प्रपण्य हो गया। ब्रह्मा के बारे में अनेक कहाए मिलती हैं। सरस्वती के प्रति पुष्करवा के मोह के कारण तथा उसके रति पर कुपित हो उसने सरस्वती को नदा बन जाने का शाप दिया और उबशी द्वारा प्रायश्चा करने पर पुन सरस्वती को नदियों में पवित्र समझा जाने का वरदान दिया इसने तार्यों की रचना भी की है।]

अण = २०, ५६।
[६० पु०] (हि०) धाव, कोडा।

{आहुद्रथ—[वृद्ध] मगध देश के गिरिजन नगर में शासन करनेवाले वृद्ध राजा के यशज वाट्ठय नाम से सर्वाभक्त किए जाते हैं। यह जरासम का पिता था।]

ग्रीडा = का०, ६७, ११६। ल०, ७६।
[६० ली०] (६०) लज्जा।

अ

अण = का०, २१। का०, ७७, १५७। प्र०,
[६० पु०] (६०) ४। ल०, ७६।
खड। दूटने का भाव। विध्वंस।
भय। पराजय। भाग।

अँयर = भा०, २८। वि०, १६४, १८५।
[६० पु०] (हि०) भीरा। आहत। भरा।

अँयर सी = का० कु०, ८।
[वि०] (हि०) भवर के समान।

अई = वि०, ५०, ६२, ६७, ७४, १८१।
[क्रि०] (हि०) हुई।

अकत = का० कु० ३०, ७२।
[६० पु०] (६०) उपासक। विभक्त। अनुयायी। सेवा करनेवाला।

अकत भावना = का० कु० ६।
[६० ली०] (६०) भक्ति। भक्ति की लानसा। सेवा भावना।

भक्ति = का०, ११, १५। का० कु०, ५। का०,
[६० ली०] (६०) १६५। वि०, ५६। २०, ७८, ८८।
म०, १५, १६।

पूजा। अर्द्ध। वाचना। अवधर।
भय।

भक्ति प्रयाग = प्र०, २२।
[६० पु०] (६०) भक्ति रूपी प्रयाग।

[भक्तियोग—इंद्र कला ४, खंड १, किरण ४, अग्रत १६१३ में सर्वप्रथम प्रकाशित। यह सभी कविता कालन कुसुम के पृष्ठ २८-३२ पर संकलित है। सुप्रसिद्ध की बेला था। पीली किरण का सहारा दे ले रहे थे और उनका प्रभाव मलान पड़ गई थी। भय और वाकुलता से पतनो-पुत्र सूर्य का रूप पीला पड़ गया था। जिन पतितों पर किरणों का प्रभाव ग्रहण करती थी वे भी उनसे दूर हटती जा रही थी। सत्संग में सुख के साथ सभी हैं और हृदयवाक्य को मरु धार में बचाने की जान जाता है? उसी पहाड़ प्रदेश में नदी कल कल नाद करती हुई बह रही थी और उसके अंतर के आनंद का उसमें उठनेवाली लहरियाँ प्रकट कर रही थी। पर पकत ऐसा शांत था जैसे कोई विरक्त योगमग्न हो और सरिता माया के समान था जो कह रही था कि 'मनुरक्त बनी', मन के दृष्टा पर सुंदर कूल खिल रहे थे जिनमें म कुछ हवा के वशीभूत हो आनंद से हिल रहे थे। ऐसी स्थिति में ही 'आलोचन वाणी' को खोज में बितित पद्मासन साधे शिला पर सात क्षीत मस्तकवाला बड़ा योग साधन कर रहा था। दुःप्राप्य का प्राप्ति के लिये वह मुक्त जावनबद्ध था। ऐसे व्यक्ति का मनुरक्त कहा जाय या विरक्त। कुछ समय तक वह जब ध्यान भंग था इतने में ही मनुर की मधुर ध्वनि हुई और ध्यान मग्न हुआ और आवाज से एक पुनरा उतरी और उसने सामने खड़ा होकर कहने लगी है भक्तवर। यह परिश्रम क्या कर रहे

हो, विश्व का धानंद तुम यो क्या सो रहे हो। सगर म सुन्दर मायी, सपत्ति, सुन्दरा मुन्दरा है। ममार तुम्हारा स्वागत कर रहा है फिर क्या भाग रहे हो भ्रम ज्ञात तबो।' धानंद विह्वल भक्त ने तब छुट कर कड़ा ध्यान के दा बूद धौम्य हो हमारा सब कुछ है क्याकि प्रेममय सर्वेश का ही सारा जग है। उनवीं वृत्ता मे हा धानंद है। वह प्रेम का प्रागट्य परम धानंद दाता है। हम ता प्रेम मतवाले हैं भव मनवाला कोन बन। मत धम सबका प्रेम सागर मे बहा दिया है। हम धीरे सर्वेश का समुत्त गंगा मे स्नात हो धानंद धामन पर बठे देख तुम्ह ईप्या हा रही है मुदरी। कुछ दिन धीरे ध्यनीन हान दो फिर तुम्हीं देखोगी कि हम तुम सभी उनव हैं धीरे वह हमारा है धीरे हमारा उनका तादात्म्य हो जान पर तुम भा हमस भिन न रहाग। यह मुन वह मूर्ति हँसी धीरे कदगा का पाणिना हा गई धीरे धानंद की कपा होन लगा।]

भक्ति सुधा = का० कु०, ८६।
[म० छा०] (ध०) भक्ति रूपी समुत्त।

भक्षाक = का० कु०, ६३, ७१। का०, २७३।
[वि०] (स०) स०, ५६।

भक्त्य करनवाता। निज स्वार्थ के लिये दूसरे का विनाश करनेवाता।

भग रहा = का०, १७२।
[क्रि०] (हि०) भगना क्रिया का एक रूप।

भगवति = का० २२४, २८७।
[स० स्त्री०] = दुगा। देवा।

भगाली = का०, ११२।
[क्रि०] (हि०) भगाना क्रिया का एक रूप।

भगे = का० २४८, २५८।
[क्रि०] (हि०) भगना क्रिया का एक रूप।

भग्न = का०, ८४। ऋ०, ३०।
[वि०] (स०) टूटा हुआ। नष्ट।

भगनाश = का०, २५६।
[वि०] (स०) निराश। घावा की जो खी चुका हो।

भज्यो = वि०, १५६।
[क्रि० म०] (प्र० भा०) भगा। भजन किया। भजना क्रिया का भूतनातिर रूप।

भटकना = का०, ४६, ७७, ८१, ६३ १११
[क्रि० प्र०] (हि०) १५४, १५३, १६०, २२७। ऋ०, १७। न०, ५६।
भाग भूलकर इधर उधर चला जाना। भूल जाना। भ्रम में पडना।

भटकाओ = का० कु०, ८३।
[क्रि० प्र०] (हि०) भटकना क्रिया का एक रूप।

भटक्यो = वि०, १८७।
[क्रि० प्र०] (प्र० भा०) भटका। भूना। भटकना क्रिया का एक रूप।

भद्र = प्र०, ६।
[वि०] (स०) श्रेष्ठ। माधु। मंगलकारी।

भद्र पथिक प्र०, ७। ६।
[स० पु०] (स०) सम्य पथिक। श्रेष्ठ यात्री (संबोधन)।

भद्रे = प्र०, ११।
[वि०] (हि०) भद्र, सम्य। (संबोधन स्त्री)

भयकर = का०, २०२।
[वि०] (स०) भयानक, उग्र, डरावना, विकट। जिसे दलकर डर लग जाय।

भय = का० कु०, २८, ७२, १२०। का०,
[स० पु०] (स०) १५७, १८५, १८६, १८८, २०६
२४०। स०, ५२, ७७।
डर, रोक। विकार।

भयकरी = का०, १६६ २५७।
[वि०] (हि०) डरानेवाली, डरावनी।

भयते = वि० १८७।
[स० पु०] (प्र० भा०) डर से।

भयभीत = का० कु०, १२०। का०, ५१, १५७।
[वि०] (स०) वि०, १६१।

डरा हुआ, भययुक्त। जिससे मन में डर उत्पन्न हो जाय।

भयसकुल = स० ३२।
[वि०] (स०) भय से घाच्छादित। भयभीत।

भयानक = का० कु०, १२१, १२२। का०, १८५,
[वि०] (स०) २००, २८१। ऋ०, ८८। प्र० ५।
जिसे देखने से डर उत्पन्न हो जाय।
भयावना भोगण।

भयावने = का० २१८। चि०, ७१।
[वि०] उरावन।

भयानह = का० कु०, ६७।
[वि०] (स०) भय उत्पन्न करनेवाला। विषट
भयर, भीषण।

भयी = चि०, ११ १२ १७ २४ ३६ ५६
[क्रि० प्र०] (हि०) ६३, १६४ १६६ १६७, १८३
१८४।
हुई।

भये = चि०, १५ ३५ ७२ ६५ ६६ ६७
[क्रि०] (हि०) १५७, १६४, १८४।
हए।

भरत = चि०, ६०।
[सं पु०] (स०) शत्रु तला क गम से उत्पन्न दुष्यत
पुत्र। दशरथ और ककयी क पुत्र।

[भरत ? —दुरवशी सम्राट् दुष्यत तथा शत्रु तला
का पुत्र। यह कश्यप क आश्रम में उत्पन्न
हुआ था तथा वचनपन में दानवी
राक्षसा तथा सिंहा का दमन किया।
शत्रु तला क साथ दुष्यत क दरबार
में ध्यान पर डा दुष्यत ने नहीं
पहुँचाया। पुन उन में दूतने अश्वमेध
यज्ञ के समय दुष्यत क घाड़े का रोक
और दुष्यत का मुँह में पराभूत किया।
शत्रु तला द्वारा पिता का वाच कराए
जाने पर यह माना। इसने भारत
साम्राज्य का स्थापना का। भव्य
पुराण क अनुसार इसने नाना दत्ता का
विभजन नागा में वाट दिया। इस कारण
इस दत्त का नाम भारत पड़ा। दत्त
३१४ अश्वमेध यज्ञ किए। दत्तने
म्लच्छा तथा दानवा आदि का नाश
भा किया था। प्र तपस्विपुर से दृष्टाकर
हस्तिनापुर का स्थापना कर अपना
राजधानी इनने बना दिया।

[भरत २ —दशरथ और ककयी का पुत्र। कुत्राज
जनक का कन्या मांडवी इसका पत्नी
था। कनैया ने दशरथ से वरदान प्राप्त
किया था कि राम को वन तथा भरत
का राज्य मिले। उस समय भरत
अपने ननिहाल में थे। कनैया क इस
पट्टवत्र ने रामप्रभ क कारण दशरथ
का प्राण भा हर लिया। सिंहाय ने
भरत का अयोध्या बुलाया जा एक मन्त्रा
था। सभी स्थितिमें स प्रवगत होने
पर भरत प्रजा समेत राम का लाजते
खाजते वन में राम से मिले किंतु इनका
अनुनय अनुरोध राम ने स्वीकार नहीं
किया और नदा याम में जय तक राम
बा स वापस नहीं आए तब तक उनका
पाहुका लकर अयोध्या का शासन भरत
निमित्त मान बनकर चलाते रहे और
उस राम का ध्यान समझ कर रखात
रहे। भरत ने गंधर्वों का पराजित
किया तथा तक्षशिला और पुष्कलावती
पुष्कल का साथ कर विजया हा अया य
पुन वापस आए। द्वादश भाई क रूप
इनका प्रतिष्ठा है।]

भरना = का० १६ बार। क०, २ बार। का०
[क्रि०] (हि०) कु १३ बार। का०, १०५ बार।
चि० २७ बार। ऋ० ८ बार। प्र०
५ बार। म० ३ बार। ल०, ३१
बार।
उठेलना उलटना। फैलना। फुटना।
दना। पूँछ करना।

भरपूर = का०, ३२ ६१।
[वि०] (हि०) अच्छा तरह भरा हुआ। सपूरा।
भरभर कर = का० कु०, २८।
[क्रि०] (हि०) पात्र में लहरा। (भूतकाल क क्रिया)।
भरमार = का० १७८।
[सं को०] (हि०) बत्तायन आचरता।
भरमोद = का०, ७७।
[क्रि०] (हि०) धान ग पूरत हाकर (पूतकाल क
क्रिया)।

[भरा नयनों में, मन में रूप—मन प्रथम तिरा रूप शीपक से 'इदु', नला ८ किरण २, फरवरी १९२७ में प्रकाशित 'स्फुट गुप्त' का गात, प्रसाद सपात में पृष्ठ ८७ पर सकलित। दवगना के भावी जीवन का संवेनात्मक अभिव्यक्ति देवेवाना यह योवन वितासित गीत है। किंगी छलिया का सुदर अपूर्व रूप आल और मन में भरा हुआ है। जमीन आसमान, पाना और वायु चारा और वहा छाया हुआ है पर में प्रेम विह्वल उम खाज खोजकर पामत हो गई। सारे हुए म ही भाग पडी हुई है। नस नस में प्रेम सत्री बज रहा है और तू कान लगाए वठा है बलिहारी ह। प्रियतम तू भरा जीवन और प्राण है और उसा प्रकार तू मुझ से खेल खेलना है जस छाया स घूष।]

भरिके = चि०, १८५।

[क्रि०] (प्र० भा०) भवर। (भूतकालिक क्रिया।)

भरि भरि = चि० ३४, ५३।

[क्रि०] (हि०) भर भर कर। पूरा कर करके। (पूरा कालिक)

भरी = का०, १४०। का० कु०, ५४।

[वि०] (हि०) पूरा। भरा हुआ।

भर = चि० १५२।

[वि०] (हि०) भरा हुआ। पूरित।

भरयो = चि० ६, १७। म० ५७।

[क्रि०] (हि०) भरा पूरा किया। भरना क्रिया का भूतकालिक रूप।

भल = चि०, २४, ५१, ५७, ६८, ७३

[वि०] (प्र० भा०) १८४।

भला, कल्याणकारी। सुदर।

भला = का० १३। का० कु० ३१ ५३,

[वि०] (हि०) १०६। का०, १२५, १५६, १६०, २१२, २१५, २१८, २३८। म० ३६ ४६, ५१। प्रि०, ३। म०, १५, १६, १८, २१। स०, ११ ७२।

बढ़िया, अच्छा। कल्याणकारी। सुदर।

भली = का०, ८। चि०, १४८। का० कु०, ८,

[वि०] (हि०) ५२, ६६। का० २२२। चि०, १८, ३३, ४५, १५६, १६४, १७७। म०, २४, ४८। म०, २, ७, १७।

अच्छी, सुन्दर, मनारम।

भले = चि०, ३६, १८०।

[वि०] (हि०) दे० 'भला'।

भले बुरे = का०, २१०।

[वि०] (हि०) अच्छे बुरे। उचित अनुचित।

भले = चि०, १७७।

[वि०] (प्र० भा०) भले। अच्छे। भले ही।

भरल = चि०, ४१, ४२, ५३।

[वि०] (प्र० भा०) भला। ठीक। उचित।

भव = का०, ६२। का० कु०, २६ ८६।

[म० पु०] (म०) १६६, म० २८।

उत्पत्ति, जन्म। सत्ता। कामदेव।

भयकानन = का० कु० ३।

[म० पु०] (स०) समार रूपी वन।

भयजन्य = का० कु०, ७२।

[म० पु०] (स०) सत्ता स उत्पन्न।

भवजलनिधि = का०, १४७।

[म० स्त्री०] (स०) सत्ता सागर। माया का सागर।

भवतम = प्र०, २।

[स० पु०] (स०) माया। सत्ता रूपी अधकार।

भवतापदग्ध = का० कु० ६।

[वि०] (स०) सत्ता व ताप स जलाया हुआ। भन दुख दुखी।

भवनिक = का०, २४२।

[वि०] (हि०) भौतिक। समार सबधी। पक्कूत सबधा। पाथिव।

भवधरा = प्रि० २२, म० २०।

[स० स्त्री०] (म०) ग्रहिल विरव। सपूर्ण जगत्।

भवन = का०, १५। का०, २१८। चि० ४६।

[स० पु०] (स०) म०, ३६। म०, १६, २०।

मकान। घर, प्रामाद। आश्रय या आधार स्थल।

भवनों = का०, १८०।

[म० पु०] (हि०) दे० 'भवन' (बहुवचन)।

भयवध = ल० १३ ।

[सं० पु०] (सं०) सात्त्विक वधन । माया मोह आदि का जाल ।

भयवधन = का० कु० १२६ ।

[सं० पु०] (सं०) सात्त्विक वधन । > 'भयवध' ।

भयवजनी = का०, १३६, २०५ ।

[सं० ली०] (सं०) ससार रूपी रात्रि ।

भयसागर = चि०, १२ ।

[सं० पु०] (सं०) संसार रूपा सागर । माया माह का प्रपाह सिंधु ।

भयसिंधु = चि०, १८६ । प्र०, १० ।

[सं० ली०] (सं०) संसार रूपी समुद्र । > 'भयसागर' ।

भयिष्य = का० ७, ८६, १६६, १६७ प्र०, ३ ।

[सं० पु०] (सं०) भानेवाना काल ।

भयिष्यविता = का०, २१० ।

[सं० ली०] (हि०) भयिष्य के सवध की विता ।

भयिष्यन् = का० कु०, १२० । का०, ५२ । प्र०, [सं० पु०] (सं०) २३ ।

होनहार । भावी ।

भस्म = चि०, ७७ ।

[सं० ली०] (सं०) राक्ष । रस प्रीति ।

भाढार = का०, ३६ ।

[सं० पु०] (हि०) भडार, लजाना, बौध ।

भाति = चि०, ७, २३ ४३, ५०, ५१, १४२,

[सं० ली०] (हि०) १४८ ।

तरह । निरुम । प्रकार । मर्मादि ।

भावरो = का० ८३ ।

[सं० ली०] (सं०) केरा । चक्कर । परिक्रमा ।

भाग = का०, ४१, ८७ १३२ १६६ २२६,

[सं० पु०] (हि०) २३६, २७१ । चि०, ६५ । ल० १२ ।

भाग्य । गोभाग्य । खड । घोर । ललाट ।

भागन = चि०, ६५ ।

[सं० पु०] (ब० भा०) भाग्य स ।

भागना = का०, ४८ । का०, कु०, १० । का०,

[सं० ली०] (हि०) १६५ २६८ । चि०, २५ । का० ३५,

६० । म०, १०, ल०, ७३ ।

दोटना । हट जाना । किसी काम स डरना या बचना ।

भागीरथीतट = का० कु०, ११४ ।

[सं० पु०] (सं०) गंगा का किनारा ।

भाग्य = का०, १३, १५ । का० कु०, ९३,

[सं० पु०] (सं०) ११६ । का०, १६०, १६६, १७६,

२३६, २४४ । चि०, २५ । का०, ६० ।

प्र०, १० ।

प्रारम्भ । तदनीर । नियति ।

भाग्यगन = का०, १८७ ।

[सं० पु०] (सं०) भाग्यरूपी भाकाश ।

भाग्यवान = का०, २६८ ।

[सं० ली०] (सं०) सौभाग्यशाली । भव्य भाग्यवाला ।

भाता = प्र० ३२ ।

[सं० ली०] (हि०) भव्य सगता है ।

भान = का०, २६ । का०, ८८ ।

[सं० पु०] (सं०) प्रकाश । ज्योति । दासि । भाभास । काल्पनिक विचार ।

भानु = चि० २६, १०३, १६३ ।

[सं० पु०] (सं०) सूर्य किरण । राजा ।

भानुहि = चि० १६३ ।

[सं० पु०] (ब० भा०) भानु को । सूर्य ही ।

भाप = का०, १० । चि०, ६६ ।

[सं० पु०] (हि०) भाप । ताप पाकर विलीन होनेवाली पानी का अवस्था ।

भामिनि = चि०, ७५, ७७ ।

[सं० ली०] (सं०) स्त्री, घोरत ।

भाया = चि०, १७६ ।

[सं० ली०] (हि०) प्रिय, प्यारा ।

[सं० ली०] (हि०) भव्य सगा ।

भायो = चि०, ५७, ७५, १८६ ।

[सं० ली०] (ब० भा०) भव्य सगा । पसद भाया ।

भार = का० २६, ६६, ८५, ८६, ६४,

[सं० पु०] (सं०) १७८ १७९ । चि०, २२, २८, १७८,

१६० १६० । का०, २१ । ल०, १३,

५७ ७३ ।

वाम, उत्तरदायित्व, वजन, सम्हाल ।

भारत = का० कु०, १०४, १०६, ११०, ११२,

[सं पु०] (मं०) ११८। चि०, १६५। म०, १७, १६।
हिंदुस्तान। अग्नि।

[भारत—इडु, कला १ किरण ११, ज्यष्ठ, १६६७
वि० मे प्रकाशित। भारत दुदशा की
वचा कर कवि ने हिमगिरि पर भारत
के भाग्य दिवाकर के उदय की कामना
ब्रजभाषा की इस राष्ट्रीय कविता में की
गई है।]

भारतखंड = चि०, ६६।

[सं पु०] (सं०) भारतवर्ष का भाग।

भारतवासी = का० कु०, १०६। म०, ६।

[सं पु०] (हि०) भारत में रहनेवाला, हिंदुस्तान का
निवासा।

भारतेंदु = चि०, १६५।

[सं पु०] (सं०) भारत का चंद्रमा। कविवर हरिवचन
का उपाधि।

[भारतेंदु प्रकाश—भारतेंदु हरिवचन (सन् १८५१
१८८५ ई०) आधुनिक हिंदी साहित्य के
प्रवक्तृ हैं। यह कविता उनकी हीरक
जयंती के अवसर पर नामरी प्रचारिणी
पत्रिका में तथा 'इडु' कला २, किरण १,
आश्विन १६६८ वि० में प्रकाशित और
चित्राचार में 'परम' के अंतर्गत पृष्ठ
१६५ पर सज्जित है। प्रसादजी ने
भारतेंदु की अद्भुत अपित करते हुए
उन्हें आनंददायिनी हिंदा की चंद्रिका का
छिटकानेवाला, अक्षरकार में पद्य प्रदर्शन
एवं पद्यप्रकाशक, कविवचन मुधा की
धार, प्रकाश की चंद्रावली हिंदीरूपी
रजनीगंधा का खिगानेवाला महाम्
हिंदा प्रवक्तृ के रूप में स्मरण
किया है।]

भारतेश्वरी = ल०, ७५।

[सं ली०] (सं०) भारत की माझानी।

भारवाही = का०, २०।

[सं ली०] (सं०) भार वहन करनेवाली, गाड़ी।

भारी = का० कु०, १२। चि०, ५६, १६०।

[वि०] (हि०) गंभीर। कठिन। शांत।

भाल = का० कु०, ६, ११, १२१। का०,
[सं पु०] (हि०) १६८। चि०, ६, २२, ३८, १६१।
भ०, २८।

मस्तक। कपाल। तेज। ललाट।

भाव = का०, १३। का० कु०, ६, २०, ३६,
५५, ७५, ८१। का०, ११, ५८, ८१,
११६, १२६, १३२, १४३, १६१, १६६,
१८३, १८४, १८५, १६२, २३६,
२५०, २६२, २६४, २६५, २७७,
२८८, २८९। चि०, ५६, १६६।
प्र०, १, ४, १८, २०, २४। म०, ६।
ल०, २३।

अभिप्राय। विभूति। आत्मा। विचार।
चाह। अदा।

भाव अनेक = चि०, ६०।

[सं पु०] (हि०) अनेक भाव। विभिन्न विचार।

भावचक्र = का०, २५०।

[सं पु०] (सं०) कुडली में प्रस्थिति प्रगट करने की
क्रिया। विभिन्न विचारों का जाल।

भावत = चि०, ३०, १५१।

[क्रि०] (प्र० भा०) मछली लगता है।

भावती = चि०, ४५।

[क्रि०] (प्र० भा०) मछली लगती।

भावते = चि०, ३८।

[क्रि०] (प्र० भा०) मछली लगते, भाते।

भावन = चि०, १६१।

[वि०] (प्र० भा०) मछली लगनेवाला।

भावना = का०, ८८। ल०, २१, ७४।

[सं ली०] (सं०) चाह। विचार। स्थान। कल्पना।

भावनाओं = का०, ६४।

[सं ली०] (हि०) २० भावना। (बहुवचन)।

भावनामयी = का०, १४०।

[वि०] (सं०) काल्पनिक। भाव से भरी हुई।

[भावनिधि में लहरियाँ—स्कंदपुराण में नर्तकी का
गोल। प्रसाद संगीत में पृष्ठ ६३ पर
सकलित। भट्टक के शिविर में नृत्यांगना
या रही है। जब झूलकर भी लुम्हारी
याद आ जाती है तो मनसागर में
स्मृति की लहरियाँ उठने लगती हैं।

अभी अभा मुक्त वो नीन् घाद् थी वि
तुमन मधुर मुरली फूज दी जिससे रग
रग म मित्रता दोड रहो है। हे
धनश्याम क्या कभी भा वरसोने नही।
अथात् तथा नटपान ही रहोये। मन्था
निल वा एव मोठा ही छुद्र कलिया
वा खिला देना है। मर मर कर हम
तरह कीन जिएगा। क्या यह नमस्या
कभा हन न होगा। अर्थात् क्या कभी
चिरतन प्रेम तुम्हारा नहीं मिलेगा ?]

भावभूमि = का० २६४।

[स० स्त्री०] (म०) भाव रूपा पृष्ठभूमि।

भावमयी = का० २६७। २० १६।

[वि०] (स०) भाव से भरा हुई।

भावमानस = वा कु० २६।

[म० पु०] (स०) मन के भाव।

भावसागर = वा० कु० ८१।

[स० पु०] (स०) भाव रूपा समुद्र।

[भावसागर—वातन सुमुख म पृ० ८०-८१ पर
सरलित। हे भावसागर मुनी। मेरा
स्वर लहरा तथा बह रही है। बाबा
भी ज्योत्स्ना मुक्त। हमन देखन हो याहा
मुझे ज्ञान के लिये उन्मुख हो जाते
हो। मेरा जग दशवर तुम्हें दया क्या
है। पूजा कर भा तुमन यह श्रवणा
क्या ? तुम्हारे स्मरण म मेरा हृदय
गद म पूज नाता है और अन्तर्गत वा
मुझे मान है। यद्यपि हमारा यह
प्रापना अकार म भरा हुई है। पर
हम दशवर अकारु मन हाना। वास्तव
म यदि तुम ध्यान म दया ता ऐसा
अगा कि तुम्हारी उम घटपार न बाव
रुम मादुम द रह हो। मादुम करक
तुम्हें जिया ता पर मत्वाच व भार न
न। मरा क्या व भाषा वास्तविक
नद का घाट नहीं बन पा रहा है।]

भाव सो = वा० १६७।

[वि०] (वि०) भाव व समान।

भावी = का० १४३। वि०, २० १४३।

[म० स्त्री०] (हि०) म०, ५।

भविष्य म होनेवाला भाग्य। आनेवाला
समय। नियति।

भाजोदधि = का०, २३५।

[स० पु०] (म०) भविष्यत् रूपा मित्रु

भाषण = वि०, १६५।

[स० पु०] (स०) व्याख्यान। वक्तृता।

भाषा = वा० कु०, ८१। वा० ६६।

[म० पु०] (म०) बाना वाक्य।

भासत = वि० १५३।

[क्रि०] (हि०) बालन।

भिक्षा = ल० ५४।

[म० जा०] (म०) भिक्ष मागना। भिक्ष देना। भिक्षारी।

भिक्षुक = का० १५३।

[म० पु०] (म०) भिक्षमया। भगन। भिक्षारी।

भिर्यारिणी = ल०, ७०।

[वि०] (हि०) भिक्षुणा।

भिर्यारी = का १२३ १८४। ल० ४५।

[म० पु०] (हि०) भिक्षुक भिक्षमया भगन।

भिर्यारी सा = ल० ७०।

[वि०] (हि०) भिक्षुक के मनान।

भिडना = वि० ४१ ६५।

[क्रि०] (हि०) टक्कर खाना लडना, मटना।

भिन्न = क० ८। वा० कु०, ११६। वा०,

[वि०] (म०) २७२, २८८। प्र० ११।

अलग पृथक् अथ दूरतरा। तज धार
स जिया वस्तु के जिया अग व प्रलग
होन का जिया।

भिन्न = वि० १३।

[क्रि०] (प्र० भा०) भिडना। लडना। मटना, भिन्न
जिया का एक रूप।

भित्ति गण = वि० ५३।

[क्रि०] (प्र० भा०) भित्ति गण। कटिबद्ध हो गण। जूक गण।

भी = घा० १२ बार। ५०, ८ बार। प्र०,

[मध्य०] (हि०) ३ बार। ल० ८ बार।

जिया बात बिचार पर प्रभाव डालन व
निय इस रूप का उपलक्षण होता है।
अवश्य। अविज्ञ। अचर।

भीर = म०, ६।स०, २६।

[स० ली०] (हि०) भिक्षा। गैरात। भिक्षा द्वारा प्राप्त वस्तु।

भोगना = भा० ११। का० कु० १२३। का०,

[क्रि०] (हि०) ३ ४७, १०६। ऋ०, २१ ३६, ३८।
भाजना। किसान उरल पदार्थ या पानी
से याद होना।

भीगी पलकें = का०, १७८।

[स० ली०] (हि०) अधुपुग पलकें। भीगी हुई पलकें।

भीगी पोरों = का०, ३५।

[स० पु०] (हि०) भीग हुए पल।

भीजि = वि० ४५।

[क्रि०] (ब्र० भा०) भाजकर (पूजनादि)।

भीजिए = वि०, १७५। ऋ०, ३४।

[क्रि०] (हि०) भीजना क्रिया का एक रूप। भागिए।

भीड़ = का०, १२, ६८ १४०, १८६। ऋ०, ३१।

[स० ली०] (हि०) जनसमूह। किसान स्थान पर अल्प
धिक लोगों का जमावड़ा।

भीत = का०, १५। का०, १८६। वि०, १६१

[म० ली०] (हि०) म०, १०।

भित्ति, दीवार, छत। ऋरी, पड़,
दरार।

भीतर = का० कु०, ७१। का०, ४ ६४ १७१

[अव्य०] (हि०) १८२, १८६, १६, १६८, २२८,
२३४ २५१।

अंदर। म। अंत करण।

भीतर बाहर = का० १५५।

[अव्य०] (हि०) अंदर बाहर।

भीतर हूँ = वि०, १७६।

[अव्य०] (ब्र० भा०) भीतर हूँ। भीतर भा।

भीति = का० कु० १४ ८८। का०, २४३,

[स० ली०] (स०) २६७।

दीवार। भय। कप।

भीनी = का० ८८, २६३।

[वि०] (हि०) झोतप्रोत। सनी या लिपटी हुई।
मधुर।

भीनी सी = वि०, १८०।

[वि०] (हि०) मधुर सी। हलसी (सुगंधि) सी।

भीने = का० कु०, ७६। वि०, १५३, १७१।

[वि०] (हि०) २० भीनी। तरापीर।

भीन्यो = वि०, १४७।

[क्रि०] (ब्र० भा०) भीन गया। भिनना क्रिया का एक
रूप।

भीम = का० कु० १०६, ११४। का०, १३,

[म० पु०] (स०) २ ८। वि०, १००।

पांडु के पांच पुत्रों में से एक। एक
राक्षस। शिव का एक नाम।

[वि०] (स०) भयानक। भयकर।

[भीम—पांडु के पुत्रों में से द्वितीय, जो वायु
द्वारा कुंती के गर्भ में उत्पन्न हुआ
था। पाण्डवों में सबसे अधिक वीर तथा
महाभारत का श्रेष्ठतम योद्धा। यह
शारीरिक शक्ति तथा यदा चलन में
प्रद्वितीय था। यह दुर्योधन का धाजम
विरोधी था। दुर्योधन तथा दुर्योधन
के सहित सभी धृतराष्ट्र पुत्रों का हसने
वध किया था। इनमें कीचक और
जरासंध का भी वध किया था। वयु
से भी इनमें युद्ध किया था और उसे
पराजित भी किया था। इसकी तान
पानिया था, हिडिंबा, द्रौपदी और
बलधरा। इनकी तानरी पत्नी का
नाम भागवत में काली दिया हुआ है।
महाभारत के अनुसार काली शिशुपाल
की बहन थी। शिशुपाल भीम का
कट्टर शत्रु था।

भीमकाय = म० ११।

[वि०] (स०) भयानक शरीरवाला। विशाल शील-
शीलवाला।

भीमा = का० १३६ २०५।

[सं० ली०] (स०) चाबुक। दुर्गा। एक प्रकार का नाव।
दक्षिण भारत की एक नदी।

[वि०] भीमस। भयकर।

भार = वि० ५१, ५६४।

[वि०] (ब्र० भा०) मोह, मज्जा।

भील = का० कु० ६८ । वि०, ७३, ७४ ।

[सं पु०] (हि०) एक प्रकार की जंगली जाति ।

भीलन = वि०, ७४ ।

[सं पु०] (प्र० भा०) दे० 'भील' (बहुवचन) ।

भीलनाल = वि०, ७४ ।

[सं पु०] (प्र० भा०) भील के बालक ।

भीलहि = वि, ६४, ७४ ।

[सं पु०] (प्र० भा०) भील की ।

भीषण = का०, कु०, ८६ १०८ । का०, ५,

[वि०] (सं०) १२ १८ २०, १२८, १३२, १५८,
१६६ २००, २०१ २०२, २०५,
२५७ २६७ २६६ । म०, १ । ल०,
१५, ४७ ।

भयकर । विकट । घोर ।

[सं पु०] (सं०) शिन । प्रहृष्ट । भयानक रस ।

भीषणतम = का० १७०, १८६ ।

[वि०] (हि०) अत्यंत भयण । अत्यंत भयकर ।

भीषणतर = का०, २५४ ।

[वि०] (सं०) अत्यंत भयण । बहुत भयकर ।

भीषणता = का० कु०, १०६ । का० ११६ ।

[सं ली०] (सं०) भयकरता । डरावनापन ।

भीषण रव = का० १३, १४ ।

[सं पु०] (सं०) भयंकर आवाज । डरावनी ध्वनि ।

भीरम = वि० ६७ ।

[सं पु०] (सं०) राजा शासन के पुत्र देवत ।

[भीष्म—शासु एव यमा स उपत मुक्तिपात
राजनीति, रणकुशल एव शास्त्र
आजम अज्ञातं तथा दुष्मा न
घनय शुभच्यु । दशवत गाय
जातवपुत्र भाग्ययोग्युत्र यदि
नामा न दूरा गायधिन निया जाता
है । महाभारत में यह वीरक पक्ष का
अतिरथ था । महाभारत के युद्ध में
पटु द्वारा वनाई गई गराया पर
उम मनय इवैवा गमान दूषा जय
मृत उत्तरायण दुषा । यह महा दुष्मा
की रक्षा करने दूषा । यह महाभारत
कावच मन्त्रपु पराक्रमी क्षत्रिय मान
जाते हैं । यह सभी दृष्टि में अथवा
दूषा के अतिरथ नर थे ।]

भुज = का०, १८२ । वि०, १, ३४, ५६,

[सं पु०] (सं०) १७४, १८८ ।

हाथ । बाहु । हाथी का सूट । शाखा ।

भुजदंड = का० कु०, १०६ । वि०, ६५, ६४ ।

[सं पु०] (सं०) बाहु रूपी दंड ।

भुजन = वि०, ६६ ।

[सं पु०] (प्र० भा०) बाहु । 'भुज' (बहुवचन) ।

भुजपेथ = वि० १५१ ।

[सं पु०] (हि०) भुजपाश ।

भुजबल = का०, १० ।

[सं पु०] (सं०) भुजाओं का बल ।

भुजबल से = वि०, ६७ ।

[सं पु०] (हि०) बाहु की शक्ति से ।

भुजमूला = का०, १०, १२५ ।

[सं ली०] (हि०) कबो, काखो ।

भुजलता = का०, ७३, १०५ ।

[सं ली०] (सं०) भुजाएँ लता ।

भुजाश्रो = का०, १६७ ।

[सं पु०] (हि०) बाहुप्रा, हाथा ।

भुननी = ल०, ५० ।

[क्रि०] (हि०) जल का सहायता के बिना गरम करके
पनाना । पलाना ।

भुलगावी = का० १३५ १४४ ।

[क्रि०] (हि०) भ्रम में डालनी । धोखा देती ।

भुलात = वि०, ४८ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) भूल जाता । भ्रम में पड़ जाता ।

भुला देना = का० कु०, ७३ । का०, ४१ २८७ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) विस्मरण कर देना ।

भुला ली = वि० १८४ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) विस्मृत हुआ । भूत गया

भुलाया = का०, २८६ । ल०, १४ ।

[सं पु०] (हि०) धारा ।

भुलाया देना = का० कु० ८२ ।

[क्रि०] (हि०) धार में डालना ।

भुलावे = ल० ६७ ।

[सं पु०] (हि०) भ्रम में डालना । भ्रम ।

भुनन = का०, ५३ । का०, १५६ । ल०, २१ ।

[स० पु०] (स०) समार । जन । जन । लोक पुराण के अनुसार चौन्ह हात है । जैसे, भू, भुव, स्व । मह । जन तप और सत्यम् य ऊपर के और अतल, सुतल, वितल, गभस्तिमल, महातल, रमातल और पाताल यह सात नीचे के मान गए हैं

भू = का०, १८ ।

[स० ली०] (स०) पृथ्वी । स्थान ।

भूर = का०, १७, १८ । का०, १२,

[स० ली०] (हि०) ३५, ५१, ७४, २५०, २६७ ।
वि०, ६६ ।

क्षुधा । भोजन का इच्छा ।

भूरा = का० ५६ ।

[वि०] (हि०) क्षुधित । जिस भोजन का प्रबल इच्छा हो ।

भूरी = का० १८१ ।

[वि०] (हि०) भूरा वा रंग लिए ।

भूरे = का०, ७८ ।

[वि०] (हि०) क्षुधित लोग । भूखे लोग ।

भूत = का०, २५, १८५ । वि०, १४१ ।

[स० पु०] (स०) प्राणा । जीव । बीता हुआ समय ।
मृत शरीर का आत्मा । वह भूत तत्व जिससे सृष्टि का रचना हुई है ।

भूतनाथ = का० १८५ । वि०, ७३ ।

[स० पु०] (स०) शिव ।

भूतल = का०, ५८, २३८ । ल०, ३१ ।

[स० पु०] (स०) पृथ्वी का ऊपरी तल । ससार ।

भूतहित रत्न = का०, ५२ ।

[वि०] (म०) प्राणियों की भलाई में लगा हुआ ।

भूधर = का०, २५३, २६० ।

[स० पु०] (स०) पहाड़, पर्वत ।

भूधरनृपति = वि० ५५ ।

[स० पु०] (स०) हिमालय पहाड़ ।

भूप = वि० १०० ।

[स० पु०] (स०) राजा, नृपति ।

भूपर = का०, २०२, २४५ ।

[वि०] (हि०) पृथ्वी पर ।

भूमटल = का०, २६१ । वि०, १६३ ।

[स० पु०] (स०) पृथ्वी । अखिल विश्व ।

भूमा = का०, ५४ ।

[स० ली०] (स०) पृथ्वी । धरती ।

भूमि = का० १४ १७ । का० कु० ५ १०,

[स० ली०] (हि०) ७२, १०१, १०६, १११, १२१ ।

का०, ६३ २६३, २७८ । वि० १०,

१५७ १८६ । प्रे०, १५ । ल०, ३३,

५२ ७४ ।

पृथ्वी । जमीन ।

भूमिका = का०, १५६, २५१ । ल० २२ ।

[स० पु०] (स०) शिवा प्रथम के आरम्भ का वह वस्तु जिसमें प्रथम के सबब में लिखा हो ।
पृष्ठभूमि ।

भूमिपति = का० कु०, ६६ ।

[स० पु०] (म०) राजा । भूतपति ।

भूल = का०, ७६ । का० ११ २८ । का०,

[स० ली०] (म०) ७५ ८७ ६२, १६२, १८६, २४१,

२४६, २८६ । वि०, १६६ ।

का० ४१ ।

भुटि । गलनी । बूझ । अपराध । दाप ।

[भूल—इट कला ४ खंड १, निरण ५ मई सन् १६१३ इ० में प्रकाशित गजल । इसका भाव यह है कि जो प्रेमी है उसे मत भूना । सम्जन जिस स्वीकार कर लेन है उसे कभी छाड़त नहीं ।]

भूलना = का० कु०, ७ बार । का०, २५ बार ।

[वि०] (हि०) वि०, ७ बार । का०, २ बार । प्रे०,

३ बार । म०, १ बार । ल०, ३ बार ।

विस्मृत करना । गलनी करना । बूझना ।

भूल भूलकर = प्रे०, १६ ।

[पुर्व० वि०] (हि०) गलती कर करके ।

भूल सी = का०, ३६, १४५ । ल०, ४० ।

[वि०] (हि०) विस्मृति के समान ।

भूल सुधारो = का०, ७७ ।

[वि०] (हि०) गलता ठीक करो ।

भूलि भूलि = वि०, १७६ ।

[पुर्व० वि०] (हि०) भूल भूलकर ।

[भूलि भूलि जात—दृष्ट कथा ५, विरग ३, गितकर १६१४ म मररदगिदु व धंतगत प्रराक्षित वचिता । त्रिषाधार म मररद विदु वे धंतगत पृ० १८१ पर गफलित । ह दानमंयु लसी पतित मू मति ह्मारी क्या । कर त्रिया है त्रि सुम्हार पक्कमल वा भूल जाता है घोर दोउ दोहकर काम प्रोप व संगम म दूव जाता है घोर सपन सधियादि स प्रेम न कर भूते सांगारिक लोग स दोहकर प्रेम करता है । व्याकुल है । फिर भा सुम दानमंयुना विसरा कर हृदय की पाटा क्या नहीं माचत ।

भूली = वा० २८६ । चि०, ६३ । प्र० २३ ।
[वि०] (हि०) विसृष्ट । भूला हुई । छुट या छूट म पडा ।

भूले भटके = अ० २४ ।
[वि०] (हि०) गलता स रास्त का छाडे हुए ।

भूपण = चि० ६ ।
[स० पु०] (स०) अलवार ।

भूपनों = चि० १०१ ।
[स० पु०] (हि०) गहना ।

भूपित = चि० १४४ ।
[वि०] (स०) भूपायुक्त । शोभित ।

भृग = स०, ५० ।
[स० पु०] (म०) भौरा ।

भृगा = चि०, १३२ ।
[स० पु०] (स०) भवरा । फतिगा ।

भृकुटि = चि० ४०, ४६ ।
[स० ख०] (स०) जू, भी ।

भृत्य = स०, ५० ।
[स पु०] (स०) नौकर । सयक ।

भेजना = का० कु०, ८१ । का०, ११४ । प्र०
[क्रि०] (हि०) ६ । म०, १० १२ । स० ७५ ।

काई वस्तु एक स्थान स दूसरे स्थान ने स्थि रवाना करना ।

भेट = अ० ३४ ३५ । प्र० १५ ।
[स० ख०] (हि०) भेंट मुलाकात । मिलना ।

भेटता = वा०, ८२ ।
[वि०] (हि०) बिना स गति म म गल मिलना ।

भेटति = चि०, १५१ ।
[वि०] (हि०) भेटता है । म म म म मिलना है ।

भेटि = चि० १६, १६३ ।
[पू० प्रि०] (प्र० भा०) भन्तर ।

भेटिये = चि०, १७४ ।
[वि०] (हि०) भेंटें ।

भेटो तो = स०, २४ ।
[वि०] (हि०) गल स गल मिल ता ।

भेद = वा० कु० ६ । वा०, ४६, १४६
[स० पु०] (हि०) १६४, १६५, २५७ २७० २७१ ।
चि० १४३ १५८ १८१, १८६ ।
१८७ । अ० ७७ ।
रहस्य । गुप्तवात, छिपा हुई बात ।

भेदनी = वा० १८१ ।
[वि०] (हि०) भेदनाला ।
भेद बुद्धि = वा०, १३२ ।
[स० ख०] (हि०) रहस्य का जाननेवाला बुद्धि ।

भेद सी = का० ६० ।
[वि०] (हि०) रहस्य क समान ।

भेरव = वा० कु० १०७ ११८ । वा०, १४
[वि०] (स०) = १५ ।

भोपण खवाना । भयानक, भयकर ।

भैरवी = स०, २० ।
[म० ख०] (स०) दवा का नाम । मयेर गाई जानवाली
एक रायिनी ।

भोग = वा०, ५६ १४८ । स० १२ ।
[स० पु०] (स०) दुख सुख आदि का अनुभव करना ।
प्राप्त्य । समोग ।

भोगत = वा० कु०, ६६ ।
[क्रि०] (हि०) भाग करत ।

भोगा = वा० १६० ।
[क्रि०] (हि०) उपभोग किया । दुख सुख आदि का
अनुभव किया ।

भोगे = चि० ५१ ६४ ।
[वि०] (स० भा०) भागना क्रिया का रूप । भोगे अथवा
अनुभव करे ।

भोग्य = वा० कु०, ११५। का०, १२८।

[वि०] (म०) जिसका भाग किया जा सके।

भोजन = व०, १६।

[सं० पु०] (हि०) भाज्य पदार्थ। खाने की गामग्री।

भोर = वा०, ४७। चि०, ५२।

[सं० पु०] (हि०) तरबा, प्रभात। धोखा। भ्रम।

भोरी = चि०, १८२।

[वि०] (प्र० भा०) भोली।

भोला = का०, ७, ८३, १००, २४३। ऋ०,

[वि०] (हि०) २८।

मीया सादा। मरल।

[सं० पु०] (हि०) भगवान् गुरु।

भोली = ल०, ११।

[वि०] (हि०) माधी सादा।

भोली भोली = ल० ११।

[वि०] (स०) सरल स्वभाव की।

भो = म० ५।

[सं० स्त्री०] (स०) बरीनी। भू।

भौतिक = वा० २०, १६६, १८६, २६६।

[वि०] (हि०) सासारिक। जगत् सबधी।

भौरे = ऋ०, ६७।

[म० पु०] (हि०) भ्रमर।

भौह = का० ६८। चि० ३ १६०। ल०, ७६।

[सं० स्त्री०] (हि०) २० भौ'।

भ्रम = का० ६६, १६२, १६३, १८४ २४०

[वि०] (हि०) २४१। चि०, १६७ १७१। ल०, ६७।

भूल। गनता। ब्रू।

भ्रम कुहेलिका = का० कु०, १४।

[सं० पु०] (हि०) भ्रमरूप कुट्टर।

भ्रमत = चि०, २८, १७१।

[वि०] (प्र० भा०) भूलता है। गतती करता है। भ्रमता है।

भ्रमपूरित = वा० कु०, १०२।

[वि०] (हि०) भ्रम से भरा हुआ।

भ्रमर = चि०, १७१ १७३।

[सं० पु०] (स०) मोरा। मृग।

[भ्रमर इडु बला ३, विरग ३, फरवरी १६१२

में 'वसत विनाद' के अतगत प्रकाशित।

यह समस्यापूर्ति है। समस्या है—कौन

बन बलित आज भूल हा। मकरद भरे

सतत सीरभजाल कमल व हिडाले पर

चढ़कर भूल हो। मजुन घाघ्र मजरिया

में प्रेम का प्रसाद पाकर गुजन किया

है। धव केतकी के ताक म मधुमास

का ही भुताकर स्वाथ के वणाभूत हा

गए हो—तुम्ह धनने हित का चिता

नहीं है। इतना किए पर आ तुम्ह लज्जा

नही है, पता नही किस बन बलित पर

धव लुम भूल हुए हो।]

भ्रमरावलि = वा० कु० ५०।

[म० पु०] (स०) भ्रमरो का समूह।

भ्रमारत = चि०, १७०।

[क्रि०] (प्र० भा०) भ्रमण कराता है। भ्रम में डालता है।

भ्रात = वा० कु०, १४, ११६। का०, ३०

[वि०] (म०) ४८, ८१, ८८, ६३, ११०, १६२,

१६६, १६७ २४०, २४१। चि०,

३५। ऋ०, १७।

भूला हुआ। जिसने गलती की हो।

भ्राति = वा० ४०। ऋ०, ६२।

[म० स्त्री०] (स०) भूल। गलता।

भ्रातृ = का० कु०, ६०।

[सं० पु०] (स०) भाई। भ्राता।

भ्रमग = का०, २५।

[पुहा०] भीहो का टडा हाता। क्रोपित होना।

भ्रविलास।

भ्रूयुग्म = का० कु०, ३०।

[सं० स्त्री०] (स०) दोना भाह।

भ्रूलता = वा०, ६४।

[सं० स्त्री०] (स०) भीह रूपी लता।

म

भगल = घा०, ६५। का०, ५३, ५७, ६१,

[सं० पु०] (स०) १२४, १४८, १५०, १६०, २२७,

२३६, २५२, २७८, २८८, २६०,

२६२। चि०, ६, ६२, १०६, १५३।

क राग लुभ । गौर रागु वर प्रसिद्ध
 पं० गान्धर्व की राग क राग युग ।

मंगलशरी = वि० १११ ।

[वि०] (ध०) क राग क राग ॥ धन क राग ॥

मंगलपाठ = वि० कु० १२१ । १० २३ ।

[ध० ५०] (ध०) पद रागगुणराग पद राग गुण राग
 क राग भोग राग क राग भोग राग राग
 का जाता है ।

मंगलमय = वि०, ५८ । वि० ३८ १५७ ।

[वि०] (ध०) • मंगलमय ।

मंगलमयी = वि० ६३ । वि० ७१ । म० ३१

[वि०] (ध०) ३२ ।

क राग ॥ पदगुण रागगुण भोग राग गुण ।

मंगल सा = वि० २०३ ।

[वि०] (ध०) गुण का राग मंगल का राग ।

मध = वि० १८३ । म० २० ।

[ध० ५०] (ध०) राग । राग । राग । राग । राग राग
 जगत्तर मन्दर मधगाभास्य क
 नाम राग राग दिया जाय ।

मधवेदिका = वि० १८३ ।

[ध० ५०] (ध०) मध का राग या राग ।

मजरी = वि० कु०, १३ १६ । वि० २८४ ।

[ध० ५०] (ध०) वि०, १ १७७ १७८ १७९ १८० १८१ ।
 म० ७० ।

नया राग राग राग राग । राग
 का गौर या गुण राग ।

मजीर = वि० कु०, ३० ।

[ध० ५०] (ध०) नूपुर, घुघु ।

मजु = वि० कु०, ४२, ४८ । वि०, ८४ ।

[वि०] (ध०) वि० १, ४ ५६, ६२ १३२ १७७,
 १७८, १७९ १८६ ।
 सलोना, मुंदर ।

मजुमान = वि० ७७ ।

[ध० ५०] (ध०) मुंदर का राग ।

मजुल = वि०, ६७ । वि०, ६७ । वि०, ५६

[वि०] (ध०) ७०, १६४ ।

मुंदर, मनोहर ।

मजुलता = वि० १५१ ।

[ध० ५०] (ध०) मुंदर, मनोहर ।

मजुल - वि०, २०६, २११ २१६ ।

[ध० ५०] (ध०) मजुल का राग राग राग राग,
 मजुल का राग राग राग राग,
 मजुल का राग राग राग राग,
 मजुल का राग राग राग राग ।

मजुलता = वि० १६०

[ध० ५०] (ध०) मजुलता का राग राग राग राग,
 मजुलता का राग राग राग राग,
 मजुलता का राग राग राग राग,
 मजुलता का राग राग राग राग ।

मजुल = वि० १७२ १९८ । वि० १७ १९६ ।

[ध० ५०] (ध०) मजुल का राग राग राग राग,
 मजुल का राग राग राग राग,
 मजुल का राग राग राग राग,
 मजुल का राग राग राग राग ।

मजुलता = वि० कु०, १०८ । वि० ११, १४८ ।

[ध० ५०] (ध०) म०, ७० ।

मजुलता का राग राग राग राग,
 मजुलता का राग राग राग राग,
 मजुलता का राग राग राग राग,
 मजुलता का राग राग राग राग ।

मजुलता = वि० ४३ २६३ । वि० १२८, २५८ ।

[ध० ५०] (ध०) मजुलता का राग राग राग,
 मजुलता का राग राग राग राग,
 मजुलता का राग राग राग राग,
 मजुलता का राग राग राग राग ।

मजुलता = वि० १६३ । वि० १५६ १७१ ।

[ध० ५०] (ध०) मजुलता का राग राग राग,
 मजुलता का राग राग राग राग,
 मजुलता का राग राग राग राग,
 मजुलता का राग राग राग राग ।

मजुलता = वि०, १८ ।

[ध० ५०] (ध०) मजुलता का राग राग राग,
 मजुलता का राग राग राग राग,
 मजुलता का राग राग राग राग,
 मजुलता का राग राग राग राग ।

मजुलता = वि० १८७ ।

[ध० ५०] (ध०) मजुलता का राग राग राग,
 मजुलता का राग राग राग राग,
 मजुलता का राग राग राग राग,
 मजुलता का राग राग राग राग ।

मजुलता = वि० कु०, १२३ । वि०, ८६, २७७ ।

[वि०] (मं०) ऋ०, २७।

धामी गतिवाला, मद, घीमा।

मद = वा० कु०, ८६, १००। वा०, २६,

[वि०] (सं०) ४८। वि०, २६, ४५, ४७, ४८, ५५,

६३, १४६, १५६ १६०। ऋ०, ५२।

धामा, सुस्त, आलसी। जड्युद्धि। मूर्ख।

मदहि = वि०, ४६, १५६, १६०।

[मं० पु०] (ब्र० भा०) मद बो, मूर्ख या आलसी बो।

मदाकिनी = वा० कु०, १००। का०, १६७

[सं० स्त्री०] (सं०) ऋ० ६८।

आकाश गंगा। एक नदी। गंगा।

मदाकिनी तट = का० कु०, १०१।

[मं० पु०] (मं०) मदाकिनी का किनारा।

मदिर = वा०, २८, ८६, ८७, १८१। वा०

[मं० स्त्री०] (सं०) कु०, २, ४, ६७। वि०, ४६, १५३,

१५५, ऋ०, ६, ३७। प्रे०, ३।

देवालय।

[मदिर—काननकुसुम म पृष्ठ ४-६ पर सकलित।

जब सभी यह मानते हैं कि क्षिप्रि, जल पावक, गमन, समीर, तारा शशि सब म भगवान् यास है तो नाहुक यह हठ था कि वह मदिर म नहीं है। भगवान् या ब्रह्म के लिय नहीं (नास्ति) शब्द है ही नहीं। जिस पवित्र मूर्ति पर सहस्र नमन करत हैं वह उस मूढ़ चित्त को क्यों नहीं आता। जिस पक्ष तत्व से शरीर बनता है उमी स यह मदिर भी बना है इसलिय अपना आत्मा और परमात्मा म भेद न मानन वाला क लिये शोभा की बात नहीं। सार जग म उसी की सीला व्याप्त है। मर्याद, पगोडा, गिरिजा य सबक सब एक हा भक्तिभावना के प्रतीक हैं। यह नारा ससार हा उसका मदिर है।]

मदिर घटा सो = वा०, १८४।

[वि०] (सं०) मरना उत्पन्न करनेवाला घटा के समान।

मह = वि० ३६, ४०, ४१, ४५, ४६, ४७,

[अव्य०] (ब्र० भा०) ५०, ५३ ५५, ६३, ६४, ६७।

६८, ६९, ७१, ७४, ७५ ६७, १०१,

१४०, १४८, १५०, १६०, १६२।

ल०, ४७।

मध्य, बीच।

मकरद = आ०, ३५, ४४ ४५, ७७। का० कु०,

[मं० पु०] (सं०) १०, १५, ३४, ३६, ५२, ५४, ६४,

७२ ११०। वा०, ६५, १७५, २२३,

२६१। वि० १, ६, २३, २६, १५२,

१६५ १८८। ऋ०, ११, १६, २०,

४०, ५३, ५६। प्रे०, ३, ६, १०।

फूना का रस, पुष्प का रस या तत्व।

मकरद घोस = वा०, १५२।

[मं० पु०] (सं०) पुष्परस या फूलों का केसर मिला

हुआ कोई सरस पदार्थ, सुरभिरस

पूरा।

[मकरदंविदु—सबप्रथम हड्डि, कला ५, किरण ३,

माच १६१४ तथा हड्डि कला ५, किरण

५ मई १६१४ तथा हड्डि कला ५,

किरण ३, सितंबर १६१४, हड्डि के

तीन अक्षों म, मकरदंविदु शीपक के

असगत निम्नांकित रचनाएँ प्रकाशित

हुई, माच अक्ष-(क) और जब कहिहै

तब कहिहै। (ख) नाथ नहीं फीकी परै

गुहार। (ग) मधुप ज्यों कज देखि

मदरावै। (घ) मरे प्रेम का प्रतिवार।

मई अक्ष-(क) तुम्हारी सबहि निरासी

बात। (ख) प्रियस्मृति कज म लक्ष्मीन।

(ग) पाई आच सुख वा। (घ) आसुन

अल्लात। सितंबर अक्ष-(क) आज इस

घन की अधियारी मे। (ख) हृदय नहि

मेरा शून्य रहे। (ग) आहुत नीजे

नेह निहारा। (घ) यह सब ता पहले

समुझयो हा। (ङ) भूलि भूलि जात।

इसके अतिरिक्त चित्राधार म मकरदंविदु के अंतर्गत पृ० १७५ से पृ० १८८ तक निम्नांकित पद सङ्गृहीत है। १ पात विन किहो। २ कौन अम भूलि कै। ३ राते नैन कीहै। ४ कौन मुख

पाय । ५ सीब जी न प्रेम । ६ सरिता
मुकूलन मे । ७ फेरि रक जान ही । ८
पुनवि उठ हैं रोम रोम । ९ अलव
तुलित आल । १० रजित बियो है
कुमुमावर । ११ आवत ही अतर मे ।
१२ दलि व अमल मुख चद । १३
मानस की तरल तरण । १४ पून
भल फून । १५ करणानिवान मुन ।
१६ पाई आच दुख की । १७ आंगुन
अह्नात । १८ भूलि भूलि जान । १९
मिलि रहे भाते मधुर । २० भले अनु
राग मे रंगि हो । २१ आव इठलात ।
२२ प्रेम का प्रतीति । २३ बदन
विलोक । २४ धोर उठे घन रात । २५
जा तुम सो बियो । २६ भई दाडि
फिर । २७ अहा नित प्रेम करत ।
२८ दियो भल उत्तर । २९ दाठ
ह्व करत । ३० पुन्य मो पाप । ३१
छिपि व अगडा । ३२ ऐसा अह ।
३३ और जब कहि है । ३४ नाथ
नहि फीकी । ३५ मधुप ज्यों कज ।
३६ भरे प्रेम की प्रतिकार । ३७ प्रिय
स्मृति कज मे । ३८ भरे मन अबहू ।
३९ आउ तो नीक । ४० यह तो सब
समुझयो ।

काननकुसुम म मकरदविदुपृ० ६२ से ६४
तक है जिसम निम्नांकित रचनाए हैं ।
१ तत हृदय की । २ है पलक परदे
खिचे । ३ हृदय नहि मेरा शून्य । ४
मिले प्रिय । ५ प्रथम परम आदर्श ।
६ गज समान है श्रुत । इन रचनाओं
का परिचय इन रचनाओं के शार्पक के
समुझ दिया जा चुका है ।]

मकरद भरा = का० कु०, १३ ।

[वि०] (सं०) मकरद स परिपूर्ण सुरभित (वायु) ।

मकरद भार = का०, २६ ।

[सं० पु०] (सं०) मकरद का भार, सुरभित वायु का
घोलन ।

मकरद विदु = का० कु० १०३ । का० १३३ ।

[सं० पु०] (सं०) पुनरुप रम की बूद, सुरभि विदु ।

मकरद सा = का०, ६४ ।

[वि०] (सं०) मकरद व समान, मरगता का घोलन
शब्द ।

मग = का०, १६ । का०, १८, २३५ । वि०,

[सं० पु०] (सं०) १३, १६४ । ल०, १० ।

भाग, रास्ता ।

मगध = ल०, ४६ ।

[सं० पु०] दक्षिणी बिहार का प्राचीन नाम ।
वदाजन ।

मगध सम्राट = का० कु० ११२ ।

[सं० पु०] (सं०) मगध देश का राजा ।

मगन = का०, ६८ । वि०, ६४, १५७ १६० ।

[वि०] (हि०) मगन, प्रसन्न ।

मगन = का०, ३२, १५१ ।

[वि०] (सं०) २० 'मगन' ।

मचलता = का०, ७७ । का०, २६ । का० कु०,

[क्रि० प्र०] (हि०) ३८ । का० ३६ १६८, २०१ ।
म०, ६ ।

शोर आदि का आरम्भ होना । उत्तव
आदि की चर्चा का चारों ओर चलना ।
धूम होना ।

मचल = का० कु०, ३४ । का०, २६४ २७६ ।

[क्रि० प्र०] (हि०) 'मचलना' क्रिया का पूर्वकालिक रूप,
हट करके । विचलित होकर ।

मचलता सा = का० १०१ ।

[क्रि० वि०] (हि०) मचलते हुए के समान, हट या अघटित
का वातार्थ शब्द ।

मचलना = का० ५१, २०५ २५७, २६१ ।

[क्रि० प्र०] (हि०) किसी बात के लिये बालका या स्त्रिया
की तरह हट करना, अडना ।

[मचा है जग भर मे अघेर—विशाख की रचना

प्रसाद सगत म पृ० १४ पर एक लित ।

विशाख की अतिरिक्त प्रशंसा मे उसे

प्रसन करने की दृष्टि से महाविगम्

भाता है । सारे समार मे बार अघेर

मचा हुआ है । उल्टा साभा जो जो कुछ

भी समझ रहा है उसा को सहा मान

रहा है और बुद्धि एसा हो गई है जसे

अघे के हाथ मे बटेर लग गइ हो ।

किसी तरह से दूसरा का धन उठाओ।
 बक वाम करने दूसरा को चुा कर दो
 यही चतुर्धाई है। यहाँ चालवाजी
 चलता रहेगी और ऐसा स्थिति में जो
 चतुर और समाने हैं वह हेराफेरी
 करते रहेंगे।]

मछली = मां०, १०। का० कु०, ८।

[सं० स्त्री०] (हि०) एक प्रसिद्ध जल जनु, मीन।

मजूर = का० कु०, ६१।

[सं० पुं०] (हि०) साधारण शारीरिक कम करके जीवन
 निर्वाह करनेवाला, मजदूर, श्रमिक,
 बालक होनेवाला। मयूर।

मज्जन = वि०, १५।

[सं० पुं०] (प्रप०) स्नान, नहाना।

मढे = का० कु०, १०३।

[क्रि० सं०] (हि०) 'मटना' क्रिया का पूरणभूत रूप।

मणि = ल०, ४८, ७६।

[सं० स्त्री०] (सं०) बहुवचन रूप।

मणिभ्रातृपण्य = प्र०, २४।

[सं० पुं०] (सं०) मणियों से बना हुआ भ्रातृपण्य।

मणि दीप = घा०, ३८, ६०। का०, ७।

[सं० पुं०] (सं०) मणियों का दीप या दीपक के समान
 चमकती हुई मणियाँ।

मणि पद्मधासी = वि०, १५३।

[वि०] (सं०) मणि के कमल पर निवास करनेवाला,
 (ईश्वर)।

मणिपुर = वि०, ३३।

[सं० पुं०] (सं०) यह उदासा की राजधानी थी। आज
 कल इस मणि पट्टन नाम से लोग
 जानते हैं।

मणिबधो = ल०, ५४।

[सं० पुं०] (हि०) कलाई के जोड़।

मणिवलय = ल०, ५४।

[सं० पुं०] (सं०) मणियों का चक्कण या कण।

मणिमय = का० कु०, १०४। म०, १६, २०।

[वि०] (सं०) मणि से युक्त या मणि से भरा हुआ।

मणि माणिक्य = वि०, ५१।

[सं० पुं०] (सं०) मणि और माणिक या मानिक। धन-
 धा य पूणता, संपन्नता।

मणिरचित = का०, २३।

[वि०] (सं०) मणियाँ से बनाया हुआ।

मणिरत्न = का०, २६।

[सं० पुं०] (सं०) मणि और रत्न।

मणिराजी = का० ४०।

[सं० स्त्री०] (सं०) मणियाँ की पत्नियाँ।

मणिशलाक सम = प्र०, ११।

[वि०] (सं०) मणि की सनाई के समान, चमकीली
 किरण का चीतक शब्द।

मणि सम = वि०, १६०।

[वि०] (सं०) मणि के समान, बहुमूल्य या क्रांति
 मान् का सूचक।

मसग मुग = वि०, ५१।

[सं० पुं०] (सं०) प्रचंड हाथियों का समूह।

मठ = घा० ४४, ५७। का०, १४, १७, १९।
 का कु०, ४०, ४३, ४६। का०, ३७,
 ६१, ११०, १५४, १७०, १८४, १९६
 २०१, २४०, २६१, २७१। वि०,
 १५। ऋ०, ४३, ४५ ५२। प्र०, २३,
 २४। म०, ३, ६, १४।

[सं० पुं०] (सं०) समति। धर्म। संप्रदाय। भाव। बोट।

[क्रि० वि०] (हि०) नहा, न, (निधेय)।

मत धर्म = का० कु०, ३१।

[सं० पुं०] (सं०) संप्रदाय और धर्म या भाव और धर्म।

मतवाला = का० कु०, ३६, ५५। का०, १७१

[वि०] (हि०) २२२, २६३ २६८। ऋ०, २३। ल०,
 ३१ ४२, ४७।

नये म चूर। हर्ष से उ मत्त। पागल।
 शत्रुओं को मारने के लिये किले पर से
 लुत्काया जानेवाला भारी पत्थर। एक
 खिलौना विशेष।

मतवाली = का० कु०, ४०, ६१। का०, ५ ४०,

[वि० स्त्री०] (हि०) ६३, ७३, १०३। ऋ०, १२६। ल०,
 ११।

दे० मतवाला'।

मति = वा० कु०, ५३, ५६। का०, ६,
[म० स्त्री०] (सं०) १६२। चि०, ६१ ६७, १००, १०७,
१८६।

बुद्धि, समझ।

मत्त = वा० कु०, ५०, ५४। का०, २३६।
[वि०] (सं०) ऋ०, ६७। ल०, ५३।
मतवाला, मस्त।

मत्तता = ऋ० ५७।
[सं० स्त्री०] (सं०) मतवालापन, मस्ती।

मत्तसारत्त = ल० २१।
[सं० पुं०] (सं०) मतवाली हवा। शीतल, मद, सुगंध
वायु।

मत्तय = का० कु०, ७८। का०, १७। चि०,
[सं० पुं०] १४३।
बड़ी मछली, मान। बिराट देश का
प्राचीन नाम।

मय = घा०, ७२।
[क्रि० स०] (हिं०) मयना क्रिया का पूवकालिक रूप।

मयने = वा०, ११६।
[क्रि० स०] (हिं०) बिलोने की क्रिया। किसी को बार
बार दुःख देनेवाला पाडा का घातक।

मद = घा०, २१। वा० कु० ५२। चि०,
[सं० पुं०] (सं०) २। ऋ० २२। ल० ३७।
हृष। घमड। हाथियों के गडस्थल से
छूनेवाला गंध द्रव। मतवालापन।

मदरुल = चि० ७५।
[वि०] (म०) मतवाला मस्त।

मन्धूर्य = ऋ० ७७।
[क्रि० स०] (सं०) मद से भरकर। 'पूरव' या स० पूरण'
क्रिया का पूवकालिक रूप। मस्ती में
पूरकर।

मदन = चि० ७०।
[म० पुं०] (सं०) प्रेता का पुत्र कामदेव (दमिए प्रेता)।

मन्मत = ल०, ४८।
[वि०] (सं०) मन्ता म भुकी हुई या मतवालेपन के बोझ
से दबकर झुका हुई। ममदावनन।

मदनहु = चि० ७०।
[म० पुं०] (म०) मन्त या नामदेव भा।

मदनीर = चि०, ५१।
[सं० पुं०] (सं०) हाथी का मद जल।

मदभरी = वा०, ७७।
[वि०] (हिं०) मस्ती में पूर, पूर्ण मतवाली। मादकता
से भरी हुई।

मदमत्त = वा० कु०, ३४। वा०, १०। चि०,
[वि०] (म०) १५७।
प्रमानता में पूर, घमड में पूर। मद से
पागल।

मदमाले = का० कु०, १३, ७३८। वा०, २६२।
[वि०] [हिं०] चि०, ४८, १७१। ल०, २०।
मद से मतवाले, मदमस्त।

मद्य मडली = ऋ०, २४।
[सं० स्त्री०] (सं०) शराब पीनेवालों का सम्प्रदाय या
समूह।

मदिर = का०, ११, १२, ८६, ८८, ८६, ६१।
[वि०] (सं०) श्रे०, २०, २२।
मस्त करनेवाली नशीली।

मदिरा = घा०, २५, २७, ३२, ३६, ५१।
[सं० स्त्री०] (सं०) ऋ०, ३८, ६७।
मद्य, शराब।

मदिरा मकरद = ऋ०, २६। ल०, २१।
[सं० पुं०] (सं०) मन्त्रि या रस या सौरभ।

मदिरा मोद = का०, १८२।
[म० पुं०] (सं०) मदिरा का आनंद।

मदीय = घा० ५।
[वि०] (सं०) मरा।

मदोद्धत = ल० ७६।
[वि०] (सं०) मद से उद्विग्न या उद्ध मदा मत्त।

मधु = घा० २५ ३१ ३५ ६५ ६६ ६८,
[सं० पुं०] (सं०) ७५। वा०, १०, ३५ ७६, ७८,
६५, ६८, ८४ ८८, ६०, ६२, ६४,
६७, १०४, १४५ १७७ १७८ १८४
२०७, २७१, २६०। चि०, २, १७,
१६, २८ ४३, ४४, ७८, ७६, ६०,
१४६। ऋ०, २८, ४०।

शह, मकरद। वसंत ऋतु। सन
मास। अमृत। मोठा। मद्य।

मधु अंध = वि०, ५६ ।

[वि०] (स०) मधु स अथा होनेवाला या वसत की बहार से पागल ।

मधु अंधरों = का० कु०, ४३ ।

[स० पु०] (हि०) अमृत भरे हुए अंधर या होठ ।

मधु उत्सव = का०, ७३ ।

[स० पु०] (हि०) वसंतो मव ।

मधुऊपा = भा०, २३ ।

[स० आ०] (म०) वासन्ती ऊपा, मधुवर्षी ऊपा ।

मधुऋतु = ल०, ४० ।

[स० की०] (म०) वसंत ऋतु ।

मधुकण = ल०, ४३ ।

[म० पु०] (स०) मकरद कण । पराग कण ।

मधुकर = भा०, ७८ । का० कु० १६ २६, ३४,

[म० की०] (स०) ३४, ४० ८३ । का०, ११, २६ ।

वि०, १, ५, ८, २६, ३५ ५६, ६६,

१३२, १४७, १४८, १४९, १५०

१६१, १८०, १८५, १८६ ।

अमर, भीरा ।

[मधुकर प्रीति की रीति नई—चित्राधार म बबुबाहन बन्ना का गीत आ उसके पु० ४१ पर सफलत है । चित्रागदा की सली उसके अनुराग पर माती है । जब गुनाब की नई बलिया रिली हुई देखते हो सब काटों में सुध सुध भुला कर उलझने घूमने हा । जबतक मलया-निल से ये खिलती नहीं तबतक तो उनके पास ठहरत हा और अपने स्वाध वश फूला का रस लेकर फिर घुंड़ नहीं दिसलाते । हे मधुकर यह प्राति की रीति नई है ।]

[मधुकर बीत बली अब रात—‘उवशा’ म अपनी बोणा बजाती हुई उवशा माती है । यह पु० २३ पर सफलत तथा सर्वाप्रथम इ दु कला ६, किरण ४, अग्रैल १६१५ ई० मे प्रकाशित है । हे मधुकर अब रात बीत बली है । शिथिर का यह कुदकली फूल रही है और अग नही समाती ।

अब तो दुल के गुजार छोडो । यह शुभ अवसर है । अरए किरणा सी माया प्राची मे दिखाई पड रही है ।]

मधुकर सा = का० कु०, १६ ।

[वि०] (हि०) मीरे के समान ।

मधुकरी = का०, ३६, ४५, ८२ ।

[स० की०] (स०) दे० मधुकर ।

मधुसाति = का०, ६७ ।

[स० की०] (स०) वामता बोधा ।

मधुमीडा कटस्थ = का० कु०, ६२ ।

[स० पु०] (स०) वसंत के प्रामाण प्रमोद हपी पक्ष की ऊंची बाटी (मकरद) ।

मधु गध = का० ३६ ।

[स० पु०] (स०) पुष्प केसर की सुगधि ।

मधुगुजार = का०, ४५ ।

[स० की०] (स०) अमृतमया ध्वनि ।

मधु जीवन = का० १५१ ।

[स० पु०] (म०) अमृतमय जीवन ।

मधुधारा = का०, ६४, ६७ १४८, २२४, २२८,

[स० की०] (स०) २५६ । का०, ६८ ।

अमृत की धारा या पुष्परस का धारा या प्रवाह ।

मधुनि = वि० १३२ ।

[म० पु०] (म० भा०) मधु के बहुवचन का रूप मकरद ।

मधुप = का० कु०, ५४ । का०, १६८ १७५,

[वि० पु०] (स०) १८२, २१७ । वि०, २७, २६, १८८ का०, ५६, ७३ । ल० ११ ।

[मधुप कव एक कली का है—चंद्रगुप्त नाटक का गीत, प्रमाद समीप मे पु० १५५ पर सफलत है । भालविका का गीत । मधुप एक कला का प्रेमी कव है । जिसमे उस प्रेम रस का सौरभ और मुहाग प्राप्त होना है, वेमुध हो अनुरागपूर्वक वह उस बली से मिलता है, वह तो कुजबली का विहारी है । वह कुमुमश्रुति स ध्वनित भले हो जाय । वह तो रगरली की राह पर बावला बना फिरता है चाहे भले हा काटा म उलझ जाय । चाहे

मलिका हो चाहे सरोजिना हो या
जूही हो उसे तो सुपमय क्रीडाकुज
चाहिए। इस कविता में चद्रमुस के
ऊपर एक 'यग भी' है। मलिका
कल्याणी का, सरोजिनी कानैलिया का
तथा यूथी मालविका का प्रनीर भा
माना जा सकता है।]

[मधुप गुन गुनाकर कह जाता—दखिए आत्म
कथा। यह कविता हम के आत्मकथा
के जनवरी फरवरी १९३२ में मधुप
गुनगुनाकर कह जाता' भाषण से प्रका
शित हुई थी।]

[मधुप यो कज देरि मडराये—सवप्रथम ह दु,
कता ५, विरह, ३, माच १९१४ में
मकरदबिदु के अतर्गत प्रकाशित और
विश्राधार में मकरदबिदु व अतर्गत
पृ० १८७ पर सफलित। जैसे भवरा
कली दखकर मडराता है वैसे ही हे
मन मधुकर ! भगवान् के चरण कमल
में बसा नहीं चित लगात। वहाँ सदा
सुख का मकरद जूता है और दुख का
तुपारपात नहीं होता। वहाँ आनन्दही
मूय का विरहणा से सदा उजियारा
रहता है। ऐसा बिहारस्थान तजर
तू नहीं न जा। भगवान् के प्रसाद क
मकरद स समय दुख भूल जाएगा।]

मधुप सटश = का०, ६।

[वि०] (६०) मधुप व समान।

मधुप सा = प्र० २५।

[वि०] (हि०) भार के समान।

मधुप से = भ० ४५।

[वि०] (हि०) '० मधुप सटश'।

मधुपान = वि० १७८। ल०, १०।

[६० ५०] (६०) अमृत या मकरद पान का भाग।

[मधुपान कर चुने मधुप—विनाश का गीत जा
प्रसाद समान में पृ० ३७ पर सफलित
है। हम मधुप गुन मधुपान कर चुके।
बोवन मुमन मुरझ गया। प्रथम का

शीतल मलवानिल चला गया। मुमन
का कौन सीचे। पत्ते नारस हा गए।
डाल मुख गई। प्रथम जीवन के उपवन
में लू चल रही है। हरियाली कहाँ है।
बोवन ढलने पर महाराणी का नरदद
क प्रति यह व्यग है।]

मधुपां = का०, २६, ६५। का०, १७१, २८५।
[६० ५०] मधुप का बहुवचन।

मधुपाला = ल०, ४५।

[स० ला०] (स०) मधुपवी नायिका। शराब डालनेवाली
नायिका।

मधुवैदो = का०, १६६।

[स० जी०] (हि०) मकरद या फूल के रस की बूँदें।

मधुभार = ल०, ६०।

[स० ५०] (स०) मकरद का भार या बोझ।

मधुभिज्ञा = ल०, १७।

[स० जी०] (स०) मधु की भिज्ञा या पुष्परस की याचना।

मधुमगल = ल० १८।

[स० ५०] (स०) वसत का शोभा।

मधुमथन = का०, २५२।

[स० ५०] (स०) अमृत का मथा जाना।

[मधुमत्ता मिलिंद साधुरी—विशाख का चार पक्ति
का गीत, प्रसाद संगीत में पृ० २०
पर सफलित। जो मिलिन्द की भाँति
रात भर जगकर मधु का पान करते हैं
उन्हें प्रभातकाल में शतदल मकरद
का पुन दान देता है। प्रमानंद का
यह श्रवण कि आनन्दपान में रात्रि लग
रहनेवाले की सदा मकरद मिलता
रहता है, इस पद्य से अभिव्यक्त है।]

मधुमय = का० ५० १४, ३५। का०, ४, ५, ८,
[वि०] (न०) १२, २३, २७, ३८, ५०, ५४, ६३,
६७ ७४ १३३ १४८, १५, २४१,
२६३। अ०, ११।

अमृतमय या मुरभित। सुगवना।

मधुमाया = का०, ७१। ल०, ६१।

[स० जी०] (स०) मधु या मय का मायामादृशता।

धुमिश्रित = का०, १२८ ।
[वि०] (सं०) मधु मिला हुआ ।

धुमुख = का० कु०, ८४ ।
[सं० पु०] (सं०) जिसके मुख में मधु हो या मधु बरसाने-
वाला मुख ।

धुर = क०, १७ । का० कु०, १६, २२, २६,
[वि०] (सं०) ५४, ५५, ६, ६२, १०१, १०४ ।
का०, पृष्ठ २७ से २६३ तक २६ बार ।
वि०, २६, ३६, ४६, ५६, ६३, १४१,
१४३, १४७, १४८, १४८, १७०,
१७६, १८६ । ऋ०, ११, १५, २८ ।
स०, ११, १४, १५, २३, २५, २७,
३३, ४१, ४३, ४४ ।
स्वाद में माठा । मुनन में प्यारा ।
सुदर । कोमल ।

मधुर गान = का० कु०, ३४ । का०, १५० ।
[सं० पु०] (सं०) मीठे स्वर से युक्त गीत ।

मधुर चाँदनी सी = का०, १८० ।
[वि०] (हि०) रस बरसानेवाली चाँदनी के समान ।
रस पूर्ण कोमलता का द्योतक शब्द ।

मधुर जीवन = का० ८१ । स०, २२ ।
[सं० पु०] (हि०) वह जीवन जिसमें सरसता हो ।

मधुरसम = का०, ६ । ऋ०, ५४ ।
[वि०] (सं०) अत्यंत मधुर ।

मधुर ध्वनि = का० कु०, ७४ ।
[म० जी०] (सं०) मधुर वाद या धावाज, माठा बीनी ।

मधुर प्रातः = क०, १४५ ।
[सं० पु०] (सं०) वह प्राण या जीव जो सरस हो ।

मधुर प्रेम = भा०, १२ ।
[सं० पु०] (सं०) वह प्रेम जिसमें मधुरता या सर-
सता हो ।

मधुर भार = का०, ६६, ८६ ।
[सं० पु०] (हि०) कोमलता का भार या बोझ या
मुकोमलता ।

मधुर मधु = ऋ०, ३६ ।
[सं० पु०] (सं०) वह मधु जो मधुर हो ।

मधुर मधुर = का० कु०, १६, ६७ । का०, १३०,
[वि०] (सं०) १८० । ऋ०, १६ ।
अत्यंत मीठा ।

मधुर मरालो = का०, १८४ ।
[सं० जी०] (सं०) मधुर बोलनेवाली हंसी या मधुर चाल
से मन मोहनेवाली हस्तिनी ।

[मधुर माधन ऋतु की रजनी—जनमेजय का नाग-
यज्ञ में रत्नबलो और प्रमदा का नृत्य
और गायन । प्रसाद मग्नता में सकलित ।
यह वसंत ऋतु की मधुर रात्रि है । कान्ति
की रसीली सान सुन घरी छाबली हठीला
मान भयना छोड़ द और भाजन
को सुखी कर । मदमाती प्रकृति की
इम आला को आल भरकर गलबाही
हाल हृदय में प्रेम भरकर देखे । इस
समय कामल किसलयकुज खिले हुए
हैं । मुरझि और मकरंद से सरोज भर
हुए हैं । मुखपाम मुखमण्डल खोलकर
बाल ताकि प्रमदुद बज उठे ।]

[मधुर माधवी संध्या में—सहर का गात पृ० ४४
पर संकलित । जब मधुर वासती
साँझ में रागरजित मूय अस्त होता
है, कोमल विरल पतावाली डाल से
जब वायु उलझकर व्यस्त होता है,
जब श्यामल आकाश में प्यार भरे
कान्ति का अधीर कूजन होता है,
तब तू आत्मा में आँसु भरकर उदास
क्यों होता है और इतना एकाद
क्यों चाहता है कि कोई भा पास न
हो और प्रेमवचित यह अतात का
किम 'यासुन कल्पना का फल है ?
विश्व की आँखों में पहल कभी क्षणिक
विश्राम कर चुका है क्या ? क्या वह
स्मृति ऐसे समय में एकांत में अपार हो
झूट हो जाता है ? संध्या के समय
जब प्रकाश का विरल नक्षत्र से
खेलन आती है तब दुहारी संध्या
कमला की तरह उदास क्या हो
जाती है ?]

मधुर मारुत से = का०, ५४।

[वि०] (सं०) वह धातु जो मधुर हो उससे समान।

मधुर मिलन = का०, १७१, २८६, २६२।

[सं० पु०] (सं०) वह मिलन जिसमें सरसता एवं आनंद हो।

[मधुर मिलन कुज में—एन घूट का प्रतिम गीत। 'प्रसाद सगीत म गृष्ठ १०५ पर सरलित। प्रेमलता श्रीर आनन के मिलनोत्सव पर यनलता का गान। जहाँ जगत् का सारा श्रम गंताप ग्यो गया हो श्रीर 'हो गुल', सहज, निष्पाप मुमन (भाव) पिल रहे हाँ एस मधुर मिलन कुज में त एव सता एस गल मिलन है बि उनका माथ कभा छूट ही नहीं सक्ता। उसी का पवित्र छाया का नीच प्रेम का एन घूट का लान।]

मधुर लहर = का०, ६६।

[सं० पु०] (सं०) वह लहर जिसमें आनन प्राप्त हो, सुंदर लहर।

मधुराका = का०, १७। का०, ४८, २१५।

[सं० ली०] (सं०) का०, २६।
सरस चाँदी।

मधुराक्षर = वि०, १६६।

[सं० पु०] (सं०) सुंदर लिखे गए अक्षर या वक्ता।

मधुरिमा = का० ४८ ५१ ५७, ८१। का० ७६।

[सं० ली०] (सं०) मधुरता, मिठास सुंदरता।

मधुलहरी = का०, ६६।

[सं० ली०] (सं०) 'मधुर लहर'।

मधुलुब्ध = प्र०, २५।

[वि०] (सं०) मधु पर लुभाया हुआ।

मधुलेखा = ल०, १५।

[सं० ली०] (सं०) सुन्दर रेखा।

मधुलोभी = वि०, २७।

[वि०] (हि०) मधु का लोभ करनेवाला। भ्रमर का खातक शब्द।

मधुवन = का०, ६४। का० १२०। ल०,

[सं० पु०] (सं०) १८, २०।

यज का एक वन, शिविंधा के पास का एक वन।

मधुघ्नत = का० कु०, ६, ३७, ३६।

[सं० पु०] (सं०) भोरा, भ्रमर।

मधुराला = ल० ४५, ५७।

[सं० ली०] (सं०) मधिराजन, शरासमान।

मधु-संगीत निनादित = ल०, २६।

[वि०] (सं०) गुप्तर से गाए जानराल गान मधुजित।

मधुसचित = का०, ६६।

[सं० पु०] (सं०) इन्द्रा निया दृमा मधु या नदर।

मधुसा = का०, १६।

[वि०] (सं०) मधु या यस्त व समाग (मादक)

मधु स्नेह = का०, १४४।

[वि० पु०] (सं०) आनंद उत्पन्न करनेवाला स्नेह या प्यार।

मधु स्पर्श सी = का०, २७।

[वि०] (हि०) यह स्पर्श जिसे दस्त से आनंद मिल उसके समान। आनंदोत्पादक स्पर्श के समान।

मधुहास = का०, ७२। का०, ७६।

[सं० पु०] (सं०) मीठा हसी।

मध्य = का० २६२ २६३। वि०, ४६ १०१,

[सं० पु०] (सं०) १५३।
बीच का भाग। कमर। अंतर।

मध्य पथ = ल०, १३।

[न० पु०] (सं०) मार्ग के बीच में या बीच मार्ग में।

मध्यम = का०, १८, १६। वि०, ४२।

[वि०] (सं०) मध्य का, अर्धत मान का।

मध्यहि = का० कु०, १०८। वि०, ११।

[सं० पु०] (सं०) ठीक दोपहर।

मन = का०, १२ १६, २० २६, ४२ ४८,

[सं० पु०] (सं०) ५१, ७०, ७३, ७५। का० कु०, ६ २६, ३५ ३६, ५१ ५३, ५८, ५६, ६३, ७५, ७७, १०६। का०, ३२, ३६, ४०, ४५, ४८, ५०, ५१, ५२ ६४, ७०, ७४, ८७ ८८ १००, १०२ १०३, १०६, १०८, ११०, ११२,

११५, ११८, ११९, ११७, १३४,
१३५, १३६, १४२, १५४, १५७,
१६२, १७५, १८४, १८६, २१६,
२२६, २२६, २४८। वि०, १, ११,
३४, ३६, ४५, ५४, ६७, ६६, ६९,
६४, १५१, १५८, १६१, १६३,
१६४, १७१, १७६, १८०, १८१,
१८४, १८६, १९०। ऋ०, १६, १८,
२०, ३३, ३५, ३६, ३७। प्र०, २, ८,
११, १३, १५, १७, २३, २५। ल०,
१७, २३, २८, ४७, ५२, ५४।

अनुभव। सकारण, विवर्ण, इच्छा,
विचार आदि करनेवाली शक्ति। मत
करण की वह श्रुति जिससे सफ़्त
विवर्ण होता है।

मन कुरंग = ल०, ४८।

[वि० पु०] (सं०) मनरूपी मृग या हिरण्य।

[मन जागो जागो—'जगमेजय का नागयश' म
कलिका की प्रभाती। कलिका रानी
बपुष्टमा की नवपरिवारिका थी। मोह
रात्रि को त्याग जागो। बसल बल
विकसित हो। मधुपमालिका गुजार
करती है जागो, जागो। प्रकृति प्रभृत
सागर से स्पृश पात्र भरकर तुम्हारे
लिये लौटी है जागो, जागो। प्रसाद
समीन भ पृष्ठ ६६ पर लक्षित।]

मनन = का०, ५, ३३, ८२।

[सं० पु०] (सं०) चिंतन। अन्वी तर० स संवेककर किया
आनयाया अध्ययन या विचार।

मननशील = का०, २४४।

[वि०] (सं०) वह जो बराबर मनन या चिंतन
करता रहता है।

मननस्थली = का०, २२५।

[सं० को०] (सं०) मन रूपी वनस्थली या जंगल।

मन भरि = वि०, ७२।

[वि०] (प्र० भा०) मयेच्छ। मन की भाँगे के अनुसार।

मनभावन = का० कु०, ६७।

[वि०] (प्र० भा०) मन का अच्छा लगावाला या मन
वांछित।

मनभावे = वि०, १६२।

[त्रि०] (हि०) अच्छा लगे।

मन मोह = वि०, ७२।

[सं० पु०] (प्र० भा०) मन मे।

मनमदिर = का०, ३५। का०, २२२।

[सं० को०] (सं०) मन रूपी मंदिर।

मन मधुकर = वि०, १८४, १८८।

[सं० पु०] (सं०) मन रूपी मौरा।

मन मधुकर = का०, ६५।

[सं० पु०] (सं०) मन रूपी मौरा।

मन मधुप = का० कु०, ६३।

[सं० पु०] (सं०) मन रूपी मौरा। लोनुप मन।

मनमयूर = ऋ०, ३६।

[सं० पु०] (सं०) मनरूपी मार। लोनुप मन।

मनमान = वि०, १४३।

[वि०] (प्र० भा०) जो अच्छा लगे। मयेच्छ। जो मन में
भावे।

मनमालिक = वि०, १५६।

[वि०] (प्र० भा०) मनरूपी मालि।

मनमाली = का०, १६७।

[वि०] (हि०) 'मनमान'।

मनमाने = का०, ५१, ७८। वि०, १। ऋ०,

[वि०] (हि०) ७०।

दे० 'मनमान'।

मनमाने से = ऋ०, ४५।

[वि०] (हि०) मनमान के समान। मनमाना काम
करने के समान।

मनमारे = का० कु०, ६३।

[त्रि०] (हि०) उलास होकर, व्यापा सा। विन होकर।

मन माहि = वि०, ७८।

[सं० पु०] (प्र० भा०) मन म।

मनमुग्धकारी = का० कु०, ४२।

[वि०] (सं०) मन को मुग्ध या प्रसन्न करनेवाला।

मनमोद = वि०, १८०।

[सं० पु०] (सं०) मन का प्रम न्तर।

मनमोहन = का० कु०, १२६। वि० १८४, १८५।

[वि०] (हि०) ५०, ५८।

[सं० पु०] (हि०) मन का मोहनवाला। प्यारा। श्रीकृष्ण।

मनमोहिनी = का० कु०, ४२।

[वि० जी०] (हि०) मन को मोहनेवाली।

मनमृग = का० कु०, ७३।

[सं० पु०] (सं०) मनरूपी मृग या हिरण्य। चंचल मन।

मनसों = वि०, ७०, ७३।

[सं० पु०] (श्र० भा०) मन से।

मनस्ताप = का०, १८६।

[सं० पु०] (श्र० भा०) मन का ताप या दुःख।

मनस्वी = का० २८१।

[वि०] (सं०) बुद्धिमान्। स्वेच्छाचारा।

मनहर = का० कु०, ३४। वि०, २६, ७२।

[वि०] (श्र० भा०) मन को हरने या मोहनेवाला।

मनहरन = वि० ५६।

[वि०] (श्र० भा०) मन का हरण करनेवाला। चित्तचोर।

मनहारी = का० कु०, ६६। वि०, १६२।

[वि०] (हि०) मन हरनेवाली मन को लुभानेवाली।

मनहि = वि०, ५८।

[सं० पु०] (श्र० भा०) मन में।

मन ही मन = का० २२८, २३०। वि०, ५६, १६६।

[सं० पु०] (हि०) अपने आप स्वयं।

मनहुँ = वि०, २, २१, २६, ३३।

[प्र०] (श्र० भा०) माना।

मनहु = वि० ११ २१ २३ २३ ७०।

[प्र०] (श्र० भा०) माना।

मना = का० ३१ का० १७६, १८०।

[वि०] (प्र०) निषिद्ध, वर्जित।

[मना आनन्द मत—विगास नाटक का वह गात जिसमें उस प्रमान ने शिक्षा दी है। प्रमाण मंगल में कुछ १८ पर संकलित। मंगल के मुख में ही तुम्हारा मुख है इगलिय मणि कोई दुःख है तो आनन्द मन मना। दुःखों का दबाकर तू गर्जन कर बधाई निमी का दुःख फट्काने से हा तू दुखी है।]

मनाता = सं० ७६।

[वि० म०] (हि०) मनाना क्रिया का सामान्य भूत रूप।

मनात = वि० ६०।

[वि० म०] (हि०) मनाना क्रिया का सामान्य भूत रूप।

मनाना = का० कु०, ८८। का०, ८६, १०३

[क्रि० सं०] (हि०) ११७। प्र०, २३।

छटे हुए को प्रस्तन करना, राजी करना। प्रार्थना करना, जैसे भगवान् को मनाना।

मनाया = का० कु० ३३।

[क्रि० सं०] (हि०) मनाना क्रिया का सामान्य भूत रूप।

मनाये = का०, ५०।

[क्रि० सं०] (हि०) २० 'मनाया'।

मना ले = वि०, १४।

[क्रि० सं०] (हि०) मनाना क्रिया का प्रत्यक्ष रूप।

मनि = वि०, १४२।

[सं० जी०] (श्र० भा०) २० 'मणि'।

मनी को = वि०, ६।

[सं० जी०] (श्र० भा०) मणि को।

मनीपा = का० ६।

[सं० जी०] (सं०) बुद्धि जो सत्य प्रत्यय का विवेक रखती है।

मनु = का० पृष्ठ ३० से २८७ तक ६६

[सं० पु०] (सं०) बार। वि० ४२ ४६, ६८, १४१

१६०, १६१ १६२।

ब्रह्मा के चौदह पुत्र जो मूल पुरुष माने जाते हैं। अंतःकरण, मन। ब्रह्मवत् मनु। चौदह का संख्या।

[मनु—२० कामायनी का क्या, कामायनी के चरित्र।]

[मनु की चिता—कामायनी का प्रादि अंग 'हिम गिर के उत्तम शिलर पर' मनु का चिता जीर्ण से सवप्रथम 'सुधा' वर्ष २, गड १, संख्या ३, वर्ष संख्या १५ अक्टूबर १९२८ में प्रकाशित हुआ था। २० कामायनी का क्या।]

मनुच = का० २७। का० कु० ७। वि० ५,

[सं० पु०] (सं०) १४१, १४३ १५०। प्र०, २२।

मनुष्य आत्मा।

मनुजहि = वि० १४१।

[सं० पु०] (श्र० भा०) मनुज का।

मनुवीणा = वि०, ४७ ।

[स० स्त्री०] (स०) मानो वीणा वा मनु की वीणा ।

मनुष्य = क०, २६, २७ । वा० कु०, ३६, ३७ ।

[स० पुं०] (स०) मान०, १६२ । वि० १४०, १४१ ।
आदमी, नर ।

मनुष्यता = स० ७१ ।

[स० स्त्री०] (स०) मनुष्य का भाव, मनुष्य का आवश्यक
धर्म, सिष्टता ।

मनुहार = वा०, १३४ ।

[स० स्त्री०] (हि०) मनावन, पुगामद, विनय, प्रार्थना ।

मनो = वा० कु०, १३ । का०, १४ । वि०,

[धर्म०] (त्र० भा०) ७४ ७० १४२ १५८ ।
मानस, मनु जनु ।

मनोरथसंपर्ण = (नाम) वामावना से ।

मनोगत = क०, १३ ।

[वि०] (स०) मन में होने या आनेवाला (भाव
विचार आदि) ।

मनोगत भाव कुल = वा० कु०, २७ ।

[स० पुं०] (स०) मन में आनेवाले भाववृत्ता कुल ।

मनोह = वा० कु०, १३ ३४, ६३, १००,

[वि०] (स०) १०५ ।
सुंदर, मनाहर ।

मनोनीत = वा० कु०, ७७ ।

[वि०] (स०) जो मन से अनुकूल हो । पसंद किया
हुआ ।

मनोबल = क०, ८० ।

[स० पुं०] (स०) मन का बल, मन की दृढता ।

मनोभाव = वा०, १२६ १७२, २७० ।

[स० पुं०] (स०) मन में उत्पन्न होनेवाला भाव ।

मनोमय = वा०, २६४ ।

[वि०] (स०) मन से युक्त या पूर्ण । मानसिक ।

मनोमुकुल = वा० कु०, १३१ ।

[स० पुं०] (स०) मन की कली ।

मनोमुकुल माल = वि०, १८० ।

[स० स्त्री०] (स०) मनकवी कली का माला ।

मनोरथ = आ०, ४४ । वा० कु०, २, ११५ ।

[स० पुं०] (स०) मन की इच्छा या अभिलाषा ।

मनोरम =

[वि०] (स०) मनोहर, सुंदर ।

मनोविकार = वा० कु० ८८ ।

[स० पुं०] (म०) मन में उठनेवाले विकार जैसे काम,
क्रोध, मद, मोह, मत्सर, लिप्सा
आदि ।

मनोवृत्ति = का०, १६० । ल०, ६७ ।

[स० स्त्री०] (स०) मन में चलने या काम करने की वृत्ति,
मन की स्थिति ।

मनोवृत्तियाँ = वा० कु०, १५ । क०, १५ ।

[स० स्त्री०] (हि०) 'मनावृत्ति' का बहुवचन ।

मनोवेग = क० १६ ।

[स० पुं०] (स०) मनोवृत्ति ।

मनोवेदना = क०, २३ ।

[स० स्त्री०] (स०) मन में उत्पन्न होनेवाली वेदना
या दुःख ।

मनोहर = क०, ६, १३ । का० कु०, १५, ३०,

[वि०] (स०) ३५, ३७, ४०, ४२, ४३, ११२ ।

वा०, १३, ३१ ३४, ७५, ८५, ८७,

६०, १३५, २११, २८४, २८५,

२६३ । वि०, ७१, २८, ३१, ५६,

५६, ६०, ६३, ७०, ७१, १००,

१४३, १४५, १४०, १५४ १५८,

१५६, १६०, १६३ ।

१६५ । क०, १२, १५, २८ । प्र०,

८, १३, १४, १५, २३ ।

मन को आकर्षित करनेवाला, सुन्दर ।

मनोहरसा = वि०, १८३ ।

[स० स्त्री०] (स०) आकर्षण, सोदय ।

मनोहारिणी = का०, २६३ ।

[वि०] (स०) दे० 'मनोहर' ।

मनोहारिणी = वि०, ४५ ।

[वि०] (त्र० भा०) दे० 'मनोहर' ।

मम = वि०, ३१ ५७ ७४, ८८ ६६, ६६,

[वि०] (स०) १५५, १७३, १८८ ।

मेरा ।

समता = आ०, ४३, ५० । क०, ११ । वा०,

[स० स्त्री०] (स०) ८४, १०१ १०४, ११२, १५७,

१५८, १५९, २०७, २३८, २४३,
२६७, २८६ । ऋ०, २६ ।
अपनेपन का भाव, स्नेह, लाग, माह ।

ममत्व = वा०, १७३, २६७ । ऋ०, ५ ।

[स० पु०] (सं०) अपनेपन का भाव, ममता ।

ममत्वमय = वा०, १६१ ।

[वि०] (म०) ममता से भरा हुआ । जिसमें ममत्व
भर गया हो ।

ममात्रियों = वा०, २७१ ।

[स० मी०] (हि०) मधुपविलया ।

मयक = चि०, ६, १४६ ।

[स० पु०] (म०) चद्रमा ।

मय = आ०, ५१ । का०, २०७ । चि०, ४६,

[स० पु०] (सं०) ७३ ७४ । ल०, २१ ।

एक दानव का नाम जो बहुत बड़ा
शिल्पी था ।

(वि) दप घमड़ ।

(ध०य०) युक्त ।

मयी = का०, २६५ ।

[ध०य०] (हि०) युक्त, भरी हुई ।

मयूरो = चि०, ६३ ।

[स० मी०] (सं०) मारुती ।

मरद = का०, ७३, १७८, २१७ । चि०, २७,

[स० पु०] (सं०) ५६ १३२, १४६ । ऋ०, ६८ ।
३० 'मवरद' ।

मरद उत्सव सा = वा० ११ ।

[वि०] (म०) मरद के उत्सव के समान । वसंत
के समान ।

मरद उद्गम = आ०, ६६ ।

[स० पु०] (म०) मवरद के निकटों का स्थान फून के
पराग का स्रोत ।

मरदमथर मलयन सी = वा०, २२४ ।

[वि] (सं०) मवरद युक्त गभीर वायु सहज । पराग
से युक्त मंद हवा के समान ।

मरदे = चि०, ४६ ।

[स० पु०] (म०) मरद मरद ।

मरवत = वा०, २८४ ।

[स० पु०] (सं०) एक प्रकार का मणि या रत्न विष्णु ।
पना ।

मरवत हारायलि = चि०, ५५ ।

[सं० मी०] (सं०) मरवत मणि के हार की मंति ।

मरवर = वा०, ४५, २२१ ।

[वि०] (हि०) 'मरवा' क्रिया का पूर्वकाचित् रूप ।

मरय = वा०, १७, ३२३ ।

[सं० पु०] (सं०) मृत्यु, मीन ।

[मरय जब दोन जीवन से भला हो—'विशाख'
का मीन । 'प्रसाद संगीत' के पृष्ठ ३५
पर संक्षिप्त । महाविमल की हृदया के
उपरीत 'विशाख' का कथन । मनुष्य
हारर बाता, अपमान और भिन्नार
का जावन जीने से मृत्यु मनी है ।]

मरणपर्ण = वा० २०१ ।

[सं० पु०] (सं०) मरण का पत्र । प्रलय ।

मरता = ल०, ५५ ।

[क्रि० घ०] (हि०) मरना क्रिया का रूप ।

मरना = क०, १२ । वा०, ५, २८, १२३ ।

[क्रि० घ०] (हि०) म्र०, १० । ल०, ३८ ४३ ५३ ।
शारीरिक क्रियामा का सदा के लिये
धृत हो जाना । मृत्यु दुःख या कष्ट
उठाना । भासक होना ।

मर ले = का०, १३३ ।

[क्रि० घ०] (हि०) 'मरना' क्रिया का प्रेरणाधिक रूप ।

मराल = का०, २३५ । चि०, ६६ ।

[सं० पु०] (सं०) हंस । घोड़ा । हाथी ।

मराल सी = चि०, ७० ।

[वि०] (सं०) मराल के समान ।

मरालिनि = चि० १४३ ।

[सं० मी०] (म०) म० मराल' ।

मराली = चि०, ४५, ५८ ।

[सं० मी०] (म०) ३० 'मराल' ।

मरी = चि० ६७ ।

[क्रि० घ०] (सं०) 'मरना' क्रिया का सामांय भूत रूप ।

[मरोचि—एक ऋषि जिनके आश्रम में
शकुन्तला और भरत की दुःखत से
विरहवृत्त होने पर मेनका ने आई और
उसी में दुःखत से शकुन्तला का
पुनर्मिलन हुआ ।]

मरीचिका = का०, २६८ । ख०, ४८ ।

[सं० प्र०] (सं०) विरह, वाति, मृगतृणा ।

मरीची = चि०, ५६ ।

[सं० पु०] (सं० भा०) मूय । चद्रमा ।

मरु अचल = का०, ६७, १५८ ।

[सं० पु०] (सं०) वायु प्रदेश का अचल, शुष्कता ।

मरु ड्याला = का०, २१७ ।

[सं० खी०] (सं०) वायु प्रदेश की ज्वाला । सदा ताप से जननवाली ज्वाला ।

मरुत = का० कु० १७ । वा, २५, १६७,

[सं० पु०] (सं०) प्रे०, २४ ।

वायु । प्राण ।

मरुत सदृश = का०, १५७ ।

[वि०] (सं०) वायु के समान । न रुकनेवाला । गत शीत ।

मरुधरणी सम = ऋ, ४० ।

[वि०] (सं०) मरुस्थल के समान । शुष्क ।

मरुभूमि = का०, १६ । वि०, १८० ।

[वि० खी०] (सं०) मरुस्थल । मरुवाढ देश ।

मरुभूमि निराशा = प्र०, १५ ।

[सं० खी०] (सं०) निराशा की मरुभूमि । वहा जहाँ काम नाए पूरा नहीं होनी ।

मरुमय = ऋ०, ४६ ।

[वि०] (सं०) मरु से युक्त । ज्वलनशील ।

मरुमरीचिका = का०, १८ ।

[सं० खी०] (सं०) मरु प्रदेश की विरहों जो लहराते हुए जल सी दीखती है । निष्कस प्रयास ।

मरुसम = वि०, १६० ।

[वि०] (सं०) मरुस्थल के समान । ज्वलनशील ।

मरुस्थल = भा० ४१ ।

[सं० पु०] (सं०) वह प्रदेश जहाँ पानी नहीं बरसता, वायु के बग हलते है मरुभूमि । रेगिस्तान ।

मरुँ = का०, २३०, २४३ ।

[क्रि०] (हि०) 'मरना' क्रिया का सामान्य वतमान रूप ।

मरे = का०, २८७ । वि०, १८१ ।

[क्रि० प्र०] (हि०) मरना क्रिया का सामान्य भूत रूप ।

मरोर = का०, १०३, १४० ।

[सं० पु०] (हि०) मरोरन की क्रिया या भाव । मुमाव । पेट में हानवाली एंठन, व्यथा ।

मर्दन = वि०, ११२ ।

[सं० पु०] (सं०) कुचलना, मसलना मलना ।

मर्म = का० कु०, ६४ । म० १४ ।

[सं० पु०] (सं०) स्वरूप । रहस्य । अभिस्थान ।

[मर्म कथा—सबप्रथम 'दु' कला ४, विरह १० सितंबर १६१२ में प्रकाशित तथा कानन कुसुम' में पृ० २०-२१ पर सकलित । प्रियतम तुम्हारे के प्रेमभाव क्या हुए ? प्रेम स्तवन कैसे सुन गए ? हम में तुममें इतना भेद क्य हो गया । प्राणाधार शत्रु तसे हा गया ? मर्म वेदना कहती है कि उमम जाकर मेरा दुःख क्या कहा ? लेकिन चुप रहकर ही सारी क्या कह दूंगा । मेरा मोन ही तुम्हें सुनकर करेगा । चाहे जितना शात गभार धनो मेरा मोन तुम्हें सुनवा कर ही दम लेगा और न बोला ता जानें कि तुम धीर हो । जो कुछ भी हो तुम रुखे ही रहो लेकिन रन की दूँ भरती रह । हम तुम जब एक हैं तो लोग का बहवास करने दो ।]

मर्मर की दीवाल = का० कु०, १०६ ।

[सं० पु०] (हि०) सममर्मर का धनी हुई दावान ।

ममवाधा = का० २०६ ।

[सं० खी०] (सं०) रहस्यमयी वाधा या विन, अविनात वाधा ।

मर्मवेदना = का० कु०, २० । का० ८ ।

[सं० खी०] (सं०) ममभरी हुई चदना, वह वेदना जिस कोई जान न सके ।

मर्यादा = का०, १८१ । वि०, ६५, १०६ ।

[सं० खी०] (सं०) सीमा । तट । प्रतिष्ठा ।

मर्यादा = का०, १५ ।

[सं० खी०] (सं०) दे० 'मर्यादा' ।

मल = ऋ०, ५१ ।

[६० पु०] (६०) मल । दोष । पाप ।

मलना = ऋ०, ८७ ।

[त्रि० स०] (टि०) हाथ से घिसना या रगड़ना ।

मल मल = आ०, १० ।

[त्रि०] (टि०) मसल मसल कर ।

मलय = आ०, २७ ४२ । वा०, ६७, २१६ ।

[६० पु०] (म०) बि०, २७ १७० । ऋ०, ६१ ७२ ।

ल० २४ २१, ३७ ।

दक्षिण भारत का एक प्रदेश, तथा वहाँ के निवासी, वहाँ की जन वायु । सफेद चदन ।

मलय की घात = वा०, २१६ ।

[६० पु०] (टि०) मलय प्रदेश की हवा, सुगन्धित वायु ।

मलयन = मा० २६ । वा० कु० १३ ४६,

[६० पु०] (स०) ६६ । बि० १७७ । ऋ० २७ ४१

५६ ६२ । प्र० ११, १४ । स० १६

४५ ।

मलय प्रदेश में उत्पन्न होनेवाला पानी ।

मलयन आवास = ऋ० २६ ।

[म० पु०] (म०) मलय पर्वत से आनेवाला शीतल मल सुगन्धित वायु का घर । चन्दन का गुग्गुलु में पूरा आवास ।

मलयज धोर = बि० ६३ ।

[म० पु०] (स०) गतिन मल सुगन्धित वायु ।

मलयन पवन = बि० ६८ ।

[६० पु०] (स०) सुगन्धित मल गतिन मल वायु ।

मलयन सा = वा० ११६ ।

[त्रि०] (स०) >० 'मलयन मा' ।

मलयन सी = वा० २०४ ।

[त्रि०] (स०) चन्दन व समान ज्ञात । मरगता मल घानन प्रदान करनेवाला वस्तु व समान ।

मलय पषा = म० २१ ।

[म० पु०] (म०) सुगन्धित मल पषा पषा ।

मलय घात = म०, ३१ ।

[म० पु०] (टि०) >० मलय की घात ।

मलय बालिका सी = का०, १८२ । ल०, २० ।

[त्रि०] (स०) मलय जाति की बालिका के समान । मलय गति से चलनेवाली बालिका के सन्तान ।

मलय मरत = ऋ०, ८५ ।

[६० पु०] (स०) >० 'मलय पवन' ।

मलय मारस = का० कु०, ८ ।

[६० पु०] (स०) >० 'मलय पवन' ।

मलय हिरलोल = वा० कु० ४६ ।

[६० पु०] (स०) मुगावत वायु से प्रत स्थल में उठने वाला धानव की लहर ।

मलयाचल = वा० १७१ ।

[६० पु०] (स०) मलय प्रदेश का एक पर्वत । चदन वन ।

मलयानिल = आ०, ३१ । वा० ६ । वा० कु०, १५,

[म० पु०] (स०) ३४, ६२, ६६ । वा० ७३, २२०,

२६२ । बि०, १ २६, ३६, ३६

१४३ १८३ १७२ । ऋ०, १६ २५,

४६, ८३ । प्र० १ । ल०, २८ ३१,

४० ।

>० 'मलय पवन' ।

मलयानिलनादित = वा०, ८ ।

[त्रि०] (म०) मलयानिल व द्वारा पाए पठुवाया हुआ । गुग्गुलु का मूल ।

मलयानिल सा = ऋ० ६४ ।

[त्रि०] (स०) मलयानिल व समान, आमतान करने वाला ।

मलयानिली = त्रि०, ४८ ।

[६० पु०] (म० आ०) मलयानिल म ।

मलिन = मा० ४० । वा० कु० ३६, ६३ ।

[म० पु०] (म०) मा० १४ ३१, ६० ११३, १२०,

२०४ २३६ २४४ २८१, २६६ ।

बि०, १५७ १७० । ल०, ७२ ।

>० 'मलिन' ।

मलिनना = बि०, १० ३६ । प्र०, १८ ।

[म० पु०] (म०) मलिन होने का भाव । चन्दन, चन्दन ।

मलिनचल = ऋ०, ३० ।

[सं० पु०] (स०) मलिन अवन। विचार से भरा हुआ,
दोषपूर्ण मौल।

मलिनता = का० कु०, २७, २८।
[वि० स्त्री०] (स०) २० 'मलिन'।

[मलिनता—कानन कुमुद] मे पृष्ठ ३८-४० पर
संनित। नभय मतवाले नव श्याम
जलवर छाए हैं और ध्रुम रहे हैं।
मलिनता लता नजीली मुवाला भी
लजाती तरुणा के संग सजीवी बनी है।
फूला से भरी दा डालिया हिल रही
हैं और दोना पर बठा पक्षि की
जोड़ी मिल रही है। सुनमुख कायन
शार मचाने हैं और बरसाती नाल
उछल उछलकर बल ला रहे हैं। हरी
ननामा का शमराई मुकुमारी सी उनी
बठी है। सभा और भावक अनूठा दृश्य
लेख पड़ रहा है। उस मुख सघन
कुंज से भ्रमर महारा रहें हैं। जहाँ
कुछ नया दृश्य और निराती मुक्ता
छाई है वही एक बाला मलीन
वसन पहने बठी है जैसे पुरातन पाता
के बाव कमल की माला हो। उसका
मौन्य मलीन धन से घिर चद्रमा का
मौलि है। हम कमलक्रीडा पर सुवार
पात क्या? किस हालत न उसे मत-
वाला बना दिया है? किस धीवर न
यह जान डाल दिया कि मलीनता एकी
सीरी से मौन्य का माती की यह
माला प्रकटी है। कुछ सागर की
उत्ताल तरंगा म मुकुमारी मुवालयलिनता
के समान हिलनवाली यह सुदरी है।
हवा के झुका म उसे वेग सहित झूक
झोरो मत और न इस कमलिन का
प्यारे मधुर स अभी मिलाओ हो।
अभी इसे पिलन दा ठाँव इस चंद का
नवन सतत प्रकाश व्याप्त हो जाय और
इसके मनवाली हो जाय।]

मलिनता = वि०, १६०।
[सं० पु०] (स०) मलिन वाणि या शोभा।

मलिनता = वि०, १११।

[सं० पु०] (ब० भा०) माली।

मलीन = का० कु०, ४५, १०२। वि०, ४६,
[वि०] (हि०) १७६। म०, ३३।
२० 'मलिन'।

मलीनता = का० कु०, ११२। म०, ८।

[सं० स्त्री०] (स०) २० 'मलिनता'।

[मलिकादि सुमन से—चिन्ताधार पृ० ३३ पर संक-
लित बहुवाहन के अतगत एक सखी
दूमरी सखी से पूछती है कि चद्रमा क्या
इतना मुदर है। उसका उत्तर दूसरी
सखा देती है। स्वच्छ चाँदी की रान
मलिकादि सुमन से धरणी पर
पवित्र वितान रखकर तारों के होकर
हार घोड़कर सुरभित मलय मार्ग
विजन से सीवर चद्रमा से मिलने
बैठी है।]

ममलन = का०, १०३।

[सं० स्त्री०] (हि०) ममलने की क्रिया या भाव।

मसि = म०, ६।

[मं० स्त्री०] (स०) स्याही। काजल, कालि।

मसृण = का०, ४६, १२५।

[वि०] (स०) मुलायम, चिकना।

मसृण बाल = का०, १५२।

[सं० पु०] (स०) चिकन और मुलायम बाल।

मस्त = का० कु०, २२। का०, ६८। म०,

[वि०] (का०) ४३, ४२।

मतवाला। मदावत।

मस्तर = का०, ११४। का० कु० ६०। का०,

[सं० पु०] (स०) २३७।

शरीर के धग का शीर्ष भाग, शिद,
ललाट।

मस्तानी = क०, ८।

[वि०] (का०) मस्ती से मरी हुई। वह जो मस्त हो।

मस्तिज्ज = का० कु०, ६। वि०, १८६।

[सं० स्त्री०] (ब०) मुगलमाना का प्रार्थना स्थान।

मस्तिष्क = का०, १६५। ल०, १२।

[सं० पु०] (स०) मस्तिष्क के अंदर का गुदा। सावने
समझने की शक्ति, बुद्धि।

किरणों का बड़ी भी निकलने लगी।
 सूर्य देव क्या अब पूरा प्रभा के साथ
 उदित होनेवाला है और चक्रवाल के
 जोड़े मिलनेवाले है। आकाश में कज
 कानन का मित्र कुम्भामभ सूर्य पूव में
 प्रकट हुआ। जिसका वपना सदा
 शिशु के खेल का गेंद कहती है और
 मारा रसारहा जिसकी बाढा भूमि
 है। कहां ऐसी स्थिति में तुम किस
 और खींचते हा चले आभास। क्या
 कभी खेल छोड़कर मेरे पाम नहीं
 घाघ्राते। आलस मीचकर इस प्रकार
 भागना अच्छी बात नहीं फिर भा तुम
 चाहें जहाँ भी रहो हम तुम्हें खोज
 लेंगे। तुम्हीं कहो कि छिपकर तुम कहा
 जाओगे। मेरे चित्तचक्र को छिपा सके
 ऐसी भूमि है ही नहीं। हे परम ब्रह्म
 प्रियतम तुम वलियों के मलयपवन, मली
 बनकर कलिया से मकरद पान श्यामा
 के स्वर में ज्ञान तथा प्रवृत्ति की सुपमा
 के मूल में हो। ऊया की प्रवृत्ति का पद
 पहनाकर अपना सहचरा बनाते हो
 और उसके भाल पर बिनी के समान
 सूर्य का कुटुम लगाते हो। क्या मुदरी
 का जो तुम्हारा प्रवृत्ति है उसका स्पय
 नित्य नूतन रूप बना उसकी छवि
 देखते हो। वह तुम्हें देखती है। इस
 प्रकार तुम प्रवृत्ति और पुरुष दोनों
 मिलकर महाक्रीडा करते हो।]

महागत = ल०, ७०।

[वि] (स०) सप्ता के लिये नष्ट कर देनेवाला, शत
 कर देनेवाला।

महाचिति = का०, ५३।

[सं० खी०] (स०) महादुग्ध। महान् चेतना शक्ति।

महा चेतना = का०, १६३।

[सं० खी०] (स०) बलवती चेतना, वह चेतना जो स्वाधी
 और दृढ़ हो।

महा छल = चि०, ६६।

[सं० पु०] (स०) बहुत बड़ा छन या कपट।

महाछत्रि = चि०, १६२।

[म० खी०] (म०) अत्यंत शमाशाली।

महात्मा = चि०, ६०।

[म० पु०] (स०) जिसकी आत्मा महान् हो, साधु। महान्
 पुरुष, महापुरुष।

महाभ = ल०, ४७।

[म० पु०] (म०) बहुत बड़ा घमंड।

महादेश = का०, २६१।

[म० पु०] (स०) बहुत बड़ा देश, महाद्वीप। गुरु घाना।

महान् = का० कु०, १८। का०, ५१, ४४, ८५।

[वि०] (म०) चि०, ६६, १०३, १०५, १४०, १४३,
 १५३। भ०, ७७। म०, १८, २३।
 ल०, ६८।

बहुत बड़ा। अष्ट।

महानद् = का०, २८२, २६०।

[म० पु०] (स०) बहुत बड़ा तालाब। बड़ी नदी।

महानील = का०, २६।

[वि०] (म०) गाढ़ी नीलिमा से परिपूर्ण।

महानील लोहित उगाला = का०, १८६।

[स० पु०] (स०) वह ज्वाला जो नीलिमा से युक्त लाहित
 या लाल हो। (क्राप्)।

महानृत्य = का०, १८।

[सं० पु०] (स०) ताडव नृत्य प्रलयवाला नाच।

महापत्र = का०, २६६।

[सं० पु०] (स०) बहुत बड़ा पत्र, कमलपत्र का द्योतक।

महापर्व = का०, १४३।

[सं० पु०] (म०) पर्वों या त्योहारों में महान्।

महापाप = का० कु०, १२१।

[म० पु०] (म०) बहुत बड़ा पाप।

महाप्राण = म० ८।

[सं० पु०] (सं०) प्राणा या जीवा में महान्। धाकरण में
 उच्चारण का एक स्थान।

महापुरुष = का० कु०, ५१।

[म० पु०] (सं०) पुरुषा में महान्।

महानट = का०, ४।

[म० पु०] (उ०) अत्यंत बट।

महाबल = चि०, ६३।

[म० पु०] (सं०) बहुत बड़ा बल। अत्यंत बलवान्।

महावि = वि०, ४८।

[सं० पु०] (सं०) महागामर।

महाभयानर = वा० कु०, २५।

[वि०] (सं०) भयत डराया।

महाभारतगगा = वा० कु०, ११३।

[सं० पु०] (सं०) महाभारतगी गगा।

महामत्र = वा० १५४।

[सं० पु०] (सं०) महत्प्रशाता मंत्र। बहुत बड़ा मंत्र।

महामति = वि० १८।

[वि०] (सं०) बड़ा बुद्धिमान। गणेश जी।

महामेघ = वा०, ७।

[सं० पु०] (सं०) घनघोर घटन प्रलय नान का मेघ।

महा रण्यग्रि = वा० कु०, ११४।

[सं० पु०] (सं०) महायुद्ध रणी अग्नि।

महारथी = वा० कु०, ११४।

[सं० पु०] (सं०) युद्ध बड़ा योद्धा।

महाराज = वा०, ६। वि० १८, ६४, ६५, ६६।

[सं० पु०] (सं०) युद्ध बड़ा राजा। ब्राह्मण, गुरु आदि के लिये आदरमूचक शब्द।

महाराणा = म० ४।

[सं० पु०] (सं०) चित्तौर का राजा 'महाराणा प्रताप'।

[महाराणा का महत्व—महाराणा प्रताप का जीवन त्याग तथा तपस्या उन लोगों के लिये प्रेरणा प्रदान करनेवाली है जो देश या परतन्त्रता के पाश से मुक्त करने के लिये सधन करते हैं। इस दृष्टि से महाराणा का महत्व खडाबोला व काँच में ऐतिहासिक महत्व रखता है। यह पुस्तक अपने भीतर प्रकाशक का एक नया कथन भी समेटे हुए है, जो अत्यंत महत्वपूर्ण है। उसे यहाँ अविकल दिया जा रहा है।

कथन

(प्रथम सम्करण से)

यह 'महाराणा का महत्व', डब्लू के वला ५, खंड १, निरख ६, जून १९१४ में प्रकाशित हो चुका है। इसके लेखक को भिन्न तुलना कविता लिखने का जब रुचि

हई तब उमा गमय यह प्रान्त उनक मन में उगमिया हुआ था कि इनके लिये कोई शासन होना चाहिये है। कर्नाट तुलनापिहीन कविता में वला विभाग का प्रवाह घोर घुमि व घुमू नून गति का होना चाहिये है। नहीं तो गठ घोर गठ में ५० हों क्या है। घा भगवत भिन्न तुलना कविता के लिये नहीं उरह व छ'। घा नाम निवा है। उमा ग २१ मात्रा का छ' छरित नाम में प्रगुष्ट था, वही किरति व है' का म प्रगतिन किया हुआ परिधि में कविता में व्यपहृत है। इन छ' में भिन्न तुलना में, गमन पहला कविता संग्रह का 'मरत' नाम का है। हर्ष का बात है कि इसी छ' को भिन्न तुलना व सतारा ने पगद लिया है, घोर दशा छ' में व घन विचार प्रकट करता लग गत है। कर्नाट भिन्न तुलना हरी पर भा गति होना चाहिए। वृद्ध इसमें सतथा प्रस्तुत है। मरा संग्रह में गात रूपक व लिये भी यहाँ छ' सबसे उचित है।

मार्च १८१३ में सतारा में 'कल्याण' नाम का एक गातकार 'इडु' में लिखा था। यह दखकर घोर भा हृष होना है कि ५० रानारायण पाठेय जैसे साहित्यिक न हल हल में 'तारा' नामक गातकार का इसी छंद में अनुवाद करने उक्त मत का पुष्टि का है। (प्रवाशक)

इस रचना का पुस्तकाकार प्रकाशन सन् १९२८ में हुआ, यद्यपि सन् १९१८ में ही 'चिन्ताधार' पुस्तक का प्रथम संस्करण में यह रचना उसके एक भाग के रूप में लोगों के सामने आ चुकी थी। कथन में जून १९१४ का बात स्पष्ट ही है। इसे उस समय पुस्तकाकार प्रकाशन का रूप प्राप्त न हो सका।

प्रसादजी की कृतियों में, विशेषकर उनका प्रारम्भिक रचनाओं में यह प्रत्यत

महत्त्वपूर्ण रचना है। इस कारण नहीं कि 'अरिन छ' में यह भिन्न तुलना रचना है। उम छद को प्रतिष्ठा का कारण तो 'कल्याण' है। 'कल्याण' ही क्या, 'मरन' के सर पर ही इसका सेहरा बनना चाहिए, क्योंकि हमने डेढ़ साल पूरा ही जनवरी १९१३ में यह प्रकाशित हो चुका था। प्रमाद साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् तथा आलोचन पं० नन्ददुलारे बाजपेयी ने प्रसाजी के साहित्यिक व्यक्तित्व के संबंध में एक स्थान पर लिखा है कि 'भने और बुरे पुण्य और पाप, देवता और और दानव, दुख और सुख, प्रसाजी के लिये एक सिक्के के दा पहलू भर है। दोनों इन का पञ्चम के लिये समान रूप से आवश्यक हैं। बिना एक के दूसरे का सत्ता ही नहीं है। कवि न तो देवता का भक्त है, न दानव का दुश्मन। उनके लिये तो दोनों उप योगी ॥ दोनों बराबर हैं। यह उनका सात्विक विचार था और इस सात्विक विचार को हम वस्तुस्थितिपूर्वक दशन का हिंदी में प्रथम प्रयोग कह सकते हैं।'

इस सात्विक विचार का स्पष्ट दशन हम रचना में होना है। इसके सभी पात्र आदर्श हैं। यह द्विवेदाजी वं शुभ की पहिली रचना है निगम सभी पात्रों का देवत्व प्रकट हुआ है, सांप्रदायिकता के बंधन को, लगाव और दुःख का भावना को बिना स्थान दिए हुए ही। यह रचना प्रमाद की प्रतिभा की मुख्य पाणी का, जो भविष्य में फूटी, परिचय देने के लिये सज्जत है। हिंदी में कुछ ऐसे आलोचक भी मिलें, जिन्होंने द्विवेदाजी के प्रभाव का रचना व भीतर ही इसका मूल्यांकन किया है। किंतु ऐतिहासिकता, क्या कहने की प्रणाली काव्य की मर्यादा सभी दृष्टि से यह रचना उस

घेरे में बाहर है। पूरा इससे कि इस रचना के साहित्यमोदीय की व्याख्या की जाय, इसका परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत कर देना अप्रासंगिक न होगा।

सबप्रथम इसकी वास्तविकता का ध्यान यहां किया जा रहा है। यह कथानुस्तु इतिहास की अनुश्रुतियों एवं साक्षात् परादृष्ट तथै ही माथ ही कवि ने काव्यकथा कहने की प्रणाली में नाट्य प्रणाली का मनिवदकर क्या में एक सौंदर्यपूर्ण आकषण की सृष्टि का है। पुस्तक पाक राजा में विभक्त है। क्या क्रम पाक घटनाओं के मधुदत प्रभाव से महाराणा का महत्ता निदर्शित करती है। विभिन्न कड़ियां हार की मणियां हैं।

पहले तब में प्रदुल रहीम खानखाना की पत्नी को मरणाश्रम में प्यास लगती है। 'हरम' के नायक का इसकी सूचना दासी देती है। 'हरम' का नायक शाबल की ओर सकेत करता है तथा बताता है कि वही पानी मिल सकेगा। दूसरा अंश वही प्रारंभ होता है जहाँ हरम शाबल पर पड़च जाता है। वही महाराणा प्रताप के पुत्र अमर सिंह एकाएक हरम पर आक्रमण कर देने हैं। युद्ध होता है। 'हरम' बंदी होता है, नवान्न की पत्नी भी। तब वही जाकर तीसरे स्थल पर महाराणा प्रताप प्रकट होते हैं, अरावली का तनहटी में। अपने पुत्र तथा सैनिकों के इस वृत्ति से महाराणा के हृदय को बहुत बड़ा आघात लगता है। वे न केवल सादर और सममान नवाब की पत्नी को वापस करने का आदेश देते हैं अपितु यह भी आदेश देते हैं कि भविष्य में ऐसा न हो। पुन महाराणा प्रताप क्या से अतथान ही जाते हैं, पर महाराणा की महत्ता की कहानी का अंश चलता रहता है।

के लिये बाध्य कर दिया और उह यह मनवाकर छोड़ा कि महाराणा प्रताप जमा आत्मोत्सर्ग करनेवाला यादा जीवन मे कभी उहे नहीं मिला । खानखाना भी अपनी पत्नी से सच्चे सुदृढ़ वीर की भांति प्रताप की प्रशंसा करते हुए कह उठे कि—

‘जैसे भूपटे सिंह, वहा विक्रम लिए
वीर ‘प्रताप’ रहकता था दानामि सा ।
सत्य प्रिय, मैं देख शूर छवि वीर को
हाता था निश्चेष्ट, बाह कमी प्रमा ।
कितने युद्ध मे मेरा निश्चेष्टता
हुई विजय का कारण वार ‘प्रताप’ के,
क्योंकि मुग्य होकर मैं उनको देखता ।’

‘प्रिये ! भला जिस मुल से मैं तलवार धन
लेकर कर मे समर करू उस वीर से,
मिलती मुके पराजय भी यदि युद्ध मे
तो भी इतना क्षोभ न होता हृदय मे ।’

पत्नी के आग्रह पर सच्चे वार की तरह
उहाने महाराणा के समुल्ल अपनी हार
स्वीकार का तथा अत तक महाराणा
के हित के लिये प्रयत्नशाल रहे । यह
महाराणा की चारित्रिक तथा नतिक
विजय था । नयाव मे अकबर से भी
यह मनवा कर ही दम लिया—

‘अकबर ने फिर कहा, बात यह ठीक है
अब न लडाइ राणा स उपयुक्त है ।
मेजो आनापन शीघ्र उस स य को
सब जल्दी ही चल आय अजमेर मे ।’

अकबर भा यहाँ सवथा अपनी मयादा क
अनुरूप ही उपस्थित हुआ और उसने
हठवादिता न स्वाकार कर अपने उस
परम दूटनीतिक चरित्र का परिचय
दिया जिनके स्थि अकबर की क्वाति
इतिहासविदित है । अमरगिह भी एक
अच्छ यादा के रूप मे उपस्थित किए
गए है, महाराणा प्रताप के पुत्र के
अनुरूप । मुगल सपिना का भा कायर
या बलाव उहाने चित्रित नही किया ।

वे भी लडाके थे । उनको बकरी
उहाने नहीं बनाया । वे भा विशाल
हृदयवाले आदशवादी थे । उहोने
हरम की रक्षा के लिये प्राण गवा
दिए, लेकिन शस्त्र समर्पित नहीं किया ।
प्रसादजी न सफल वातावरण की
सृष्टि भी अपने प्रधानक का सपुट
करने के लिये की है । प्रकृति का जा
रूप उहान उपस्थित किया है, वह
उस वातावरण के अनुसार रहा है ।
साथ ही दाशानेक बिनन की उन
भावनाओं की आभा भी यहा मिलती है
जिन भावनाओं के साथ प्रसादजा का
आत्मोपयता सवन भक्तता है । किंतु
कहि ने इस बात का ध्यान रखा है
कि वातावरण के अनुरूप ही प्रकृति
के दृश्यो स ही प्रभाव प्रकट कराया
जाय तथा रहस्य निकाला जाय और
बसा किया भी है—

‘पूछ प्रकृति की पूछ नीति है क्या भली,
अनति को जा सहन करे गभार हो
धूल सहस भा नाच बडे सिर सा नहा
जा हाता उद्विग्न उसे हा समय मे
उस रख कण को शीतल करने का ग्रहो
मिलता बल है, छाया भी देता वहा ।
निज पराग को मिश्रित कर उनमे कभी
कर देता है उह मुगयित, मुकुल भी ।’

जहाँ उहान जीवन के भौतिक विलास का
वर्णन किया है, वहा भी उह पयाप्त
सफलता प्राप्त हुई है । अकबर क
मन्यमाना विलासयुक्त राजनी वाता
वरण का भी ऐसा सुंदर चित्र दिया
है जिसे देखकर हृदय वर्णन का दाद
दिए बिना नहीं रहता । यथा राजभवन
का यह वर्णन—

‘कल रहा था स्वच्छ गुविस्तृत भवन मे
वृत्तिमय छविमय लता, भित्ति पर जा बनी
नव वस्तु सा उन्हें विमल आनंद हा

मुक्तापनमानिनी बाता या बही
 मुग्ध बसी का माता की भी भूमि
 सारन संसार हर दुमय व।
 मुग्ध पया से सब बरिनी गितागरी,
 श्रुत माताएं गजर भी सब हा मर्द।
 प्रगाओ नारीरिषि व गिद पारता भ।
 तल्लेया भावा व धाद दमय जा विव
 उही उपस्थिता किए व धाता मयंग
 की लती सीमा बाता है सभदन जिन
 तफ प्रापुनिष काय का बार्द नि या
 गरी पहुँचा। वदना व हागा प्रगा की
 यहा पकट सखल रूप स नारा क प्रति
 मही भा है जिस से उपस्थित करने म
 प्र यत सिद्धहस्त माग गए है। जब
 प्रगम महाराणा स मुग्ध हो नवाय व
 पात पहुँची और भजार व स्वर
 म नवाय ने यह कहा कि 'यह गांधार
 व मुंदर दास पर दौत न लगा सवा'
 ता भारताय गारा वा, और एही नारा
 का जा केवल एक स प्रेम करती है
 समा स्थित हो सक्ता है इसका जसा
 मफल चित्र प्रसाद न चिन्तित किया,
 सभवत वह भावना का ऐसा जीवित
 कियमय प्राणवान् रूप है जिसे बार
 बार देखने व लिये जी तरसता रहेगा—
 'कपी मुराहा कर की छलकी काहणा
 दख ललाई स्मज्य मधुक बपोल मे,
 विसक गई सर स जरतारा मोढ़नी
 बकाबाव सा लगी विमल झालीक को,
 पुच्छमन्ति वेणा भा बर्रा उठी।
 आभूण भी भा भन कर बस रह गए।
 मुग्ध कुज म पंचम स्वर से तीव्र हो
 बोल उठी वाणा—'जुग भा रहिए जरा
 जिसकी नारा छोडा जाकर शत्रु स,
 स्वीकृत हो सादर श्रवने पति स भला
 यह भा बलि, तो जुग होगा वीन फिर।'
 अमरसिंह का रूपवर्णन भा कम गठा हुआ
 नहीं है। वह भा राजपूत है सच्चा
 राजपूत—

'राजपूत या, उगवा बनी बाता रहा
 जैनी भी भा यहा ठीक यगा बहा
 यहा धनुष या व जहा दौरी माग की
 समवाय वा भा। उग बाता रहा।
 हरम का गाय धोर सपनाम वा दूध मगन
 भी यहा मग वा दूध तया गाति
 विव ३—
 'मुग्ध बिराडी न माता रग धात म
 यगा हा। मगी रग व विव की,
 मुग्ध नि। यहा नंद उति सपना दूध
 श्रुति पत्रम वा उग जाग वा बट क।'
 धातहरणा वा मुग्ध विधान भा प्र व स्थाना
 पर दग रगा म मो सख ३ म विवा
 गया है। तब रगाय रग यहा
 उपस्थिता किया जा रहा है—
 प्रसर धाम वा ताग मिताया या बहा
 छाटा वा मुग्ध रगा हटाता बाध वा
 जग छाटा मधुर गग, हो एक ही।'
 रचना में यहाँ बड़ी दिगीतालन काय
 नीरसता दात पकटा है। बही बात
 बीत म मुगलमानों द्वारा उद्गु शागवला
 और बही गदरत हिंदी शागवली वा
 प्रयोग लटकनवाता बात है। विवु
 बातलाप म जहाँ तक भाषाभियक्ति वा
 सबष है, यह वाणी कुम्त और दुस्त
 है। यहाँ राष्ट्रीयता की भाषा वा
 ध्यान भी बकि की है। समाज व
 सधुर महाराणा की जिस रूप म
 उहोने उपस्थित किया वह निरवय हा
 बकि वा विशाल रूप यत परता है
 और यह स्पष्ट बताता है कि प्रसादजी
 समाज से विरक्त रहनेवाले नहीं,
 समाज वा ध्यान रखनेवाला व्यक्ति थ।
 उहोने भारतवासिवा की दम बात के
 लिय प्रारत किया कि महाराणा जले
 व्यक्ति व। आदेश मानकर चलें।
 उहोने एक कलाकार की तरह प्राण उप-
 स्थित किया है, जिसम उनके वे सभी

रूप स्पष्ट दीख पड़ते हैं, जो बाद में विकसित हुए। वे नेता नहीं, प्रचारक नहीं, चिंतनशील साहित्यिक थे और इस रूप की सफल अभिव्यक्ति उस युग में भी व कर सके, यह महत्व की बात है।]

महार्द्र = चि०, ४१।

[म० पु०] (म०) प्रलय के समय श्वर का क्रोडित रूप।

महाशक्ति = का०, १६५, २०२। चि०, १५४।

[सं० श्री०] (सं०) बहुत बड़ा शक्ति। दबी का क्रोडित रूप।

महाशिशु खेल = का० कु०, १०।

[म० पु०] (हि०) मरुत्वशाली बालका का खेल।

महाशून्य = का०, २७३।

[वि०] (स०) आकाश।

महासगीत = का० कु०, ३।

[सं० पु०] (सं०) महासगीत से परिपूर्ण, ईशानीला जय प्रवृत्ति का गान।

महासमीर = का०, १५७।

[सं० पु०] (सं०) वायु का महान् वगमय रूप, भ्रमा।

महिर्ना = ल०, ६६।

[सं० श्री०] (म०) कई माह।

महिमा = का०, ३१। का०, १८१, २२२, २८३,

[सं० पु०] (सं०) २०। चि०, ३०, १५३। ऋ०, ४१।

म०, १७।

महता। प्रभाव। आठ सिद्धिया में से एक।

महिमामंडित = म०, ८।

[वि०] (सं०) महिमा से शोभित।

महिला का०, २७८।

[सं० श्री०] (सं०) मने घर की स्त्री।

महिषी = चि०, २३।

[सं० श्री०] (सं०) मस। रानी।

मही = का०, ४। वि०, १६२।

[सं० श्री०] (सं०) पृथ्वी। नदी।

[सं० पु०] (हि०) मठा।

महेश = चि०, १५६।

[सं० पु०] (सं०) महादेव।

महोत्सल = चि०, १३४।

[सं० पु०] (सं०) बड़ा कमल।

महोत्सव = का०, १६८। चि०, ७२। ल०, ७६।

[सं० पु०] (सं०) बहुत बड़ा उत्सव।

महो = चि०, १६१।

[क्रि० सं०] (ब्र० भा०) 'महना' या 'मथना' क्रिया का सामा य भूत रूप।

माँ = का०, १७६, १८०, २१५, २१६,

[सं० श्री०] (हि०) २३६, २४४। ल०, ५४।

माता, जननी।

मोंग = श्री०, ४६। का०, २७०।

[म० श्री०] (हि०) मागने का क्रिया या भाव, माँगना। प्राथना या आग्रहवाला बात। बालों का कधी से विभक्त करने पर उनके बीच में बनी हुई रेखा, सीमत।

माँगता = भा०, ६६। ल०, ४२, ७०।

[क्रि० सं०] (हि०) मागना क्रिया का सामा य भूत रूप।

माँगता हूँ = ल०, ४४।

[क्रि० सं०] (हि०) मागना क्रिया का वतमानकालिक रूप।

माँगती = श्री०, ५५। का०, १६५। ल०, १६।

[क्रि० सं०] (हि०) दे० 'माँगता'।

माँगना = म०, ६।

[क्रि० सं०] (हि०) माचना करना, प्राथना करना। चाहना।

माँगने = ल०, १७।

[क्रि० म०] (हि०) मागने व लिये उत्सुक होना या आगे बढ़ने का भाव।

माँगी = का०, १०।

[सं० पु०] (हि०) मल्लाह, खेनवाला।

[माँगी साहस है —स्क०गुप्त म० सखिया का गात। प्रमाद संगीत में पृष्ठ ६२ पर सजलित। दशसेना का स्क०गुप्त के प्रति प्रमरहस्य का उद्घाटन होने पर सखिया ठिठाली के स्वर में गान

गा रहा है। यानिवा मे भरी हुई
मुन्हारी जजर नीचा है, घलम वाले
घादल छाए हैं, वर्षा की झड़ी है, प्रेम
नदी में जल एतन्न तहीं जाल बिछाए
हैं ऐसे घलमय दुदिन की घटा में घुम
घपने शक्ति की मायाणी। प्रेम के
घनजान तट की भाषण मदमत्त सहूरे
घानाश तब उछल रहा हैं ऐसी स्थिति
में क्या प्रेम में मानवाला विपत्तिया
के धपोडा का बरदाश्त कर सकोगी।
क्या इतना साहस है बि एमी भयंकर
बला में नीचा खोलोगी]

मौस = का० १८।

[स० पु०] (प्र० भा०) शरीर का हृदय के बीच का
मुतामक और लचीला पदार्थ, मोसल।

मौसपेशियाँ = का०, ४।

[स० जो०] (स०) शरीर के अंदर का मांसल भाग।

मौसल = का० १२५ १४७ २६४।

[वि०] (स०) मांस से भरा हुआ। मोटा ताजा, पुष्ट।

मौहि = वि०, ४६।

[स० य०] (स० भा०) मध्य में, बीच में।

मातलि = वि० ५६।

[स० पु०] (स०) इंद्र के सारवा का नाम।

[मातलि—दुग्धत, शकुतता और भरत के प्रागमन
का सूचना देनेवाला।]

माता = का० कु०, ६०३। वि० ६२। ऋ०,

[स० जो०] (हि०) १४। प्र० १६।

मा, जननी। आदरणीय स्त्री।

मातापे = का०, २७८।

[स० खा०] (हि०) माता का बहुवचन रूप।

माति = वि०, ३ १८०।

[सुव० त्रि०] (प्र० भा०) मतवाला होकर, मदो मत
होकर।

मातो = का०, ७०।

[वि०] (हि०) मतवाला, मस्त, मदायमता।

मातु = वि०, ४१, १८२।

[स० जो०] (प्र० भा०) दे० 'माता'।

मातो = वि०, १६।

[वि०] (हि०) मन्त्राणा, मन्त्र।

मातुर = का० १४२।

[स० पु०] (स०) माता होने का गुण।

मातृत्वबोध = का०, १४२।

[स० पु०] (हि०) मातृत्व का भाव, मातृत्व का बोध।

मातृभूमि = स०, ५४।

[स० जो०] (स०) वह भूमि या देश जहाँ किसी का जन्म
हुआ हो।

मातृभूमिद्रोही = वि०, ६७।

[वि०] (स०) मातृभूमि से डाह करनेवाला, देश
द्रोही।

मातृमूर्ति = का०, २४७, २४८।

[स० जो०] (स०) माता की मूर्ति।

मात्र = ऋ०, ५८। प्र०, १८। स०, ४१।

[ध्व०] (स०) केवल।

मादक = प्रा०, १२। का०, ७३, ११५, १५६,

[वि०] (स०) १८३, १८६, २६१।

नशा लानेवाला, नशीला।

मादकता = प्रा०, २६, ३३। का०, ७० १२२,

[स० जो०] (स०) १२५ १२८, १२६, २२३, २३७

२६३। स०, २०, ६०।

नशा का भाव, नशीलापन, मस्ती।

मादन = का०, २०३।

[वि०] (स०) मादक, मस्त करनेवाला।

माधव = का०, ७२, ८६, ६७, २६२। वि०,

[स० पु०] (स०) ५।

विष्णु। वसंत ऋतु। माधवा, माधविका।

माधवी = का०, ४७ ६७ ८८। वि०, ५७।

[स० जो०] (स०) ल०, ४४।

सुगंधित फूलोवाली लता। एक प्रकार

की शराब। दुर्गा।

माधविका कुसुम = ऋ०, २६।

[स० पु०] (स०) माधवा लता का फूल।

माधवीकुज = प्रा०, १८।

[स० पु०] (स०) वह कुज जो माधवी लता से बना हो।

माधवी लता = वि०, ६०।

[सं० स्त्री०] (मं०) माधवा नाम की सुगंधित पूजावाली लता ।

माधुरता = बि०, १६२ ।

[सं० स्त्री०] (मं०) माधुर्य, मिठास । सुदरता ।

माधुरी = का० कु०, ११४ । का०, ४७, ७३, [सं० स्त्री०] (सं०) २२२ । बि०, १७०, १३६ । ऋ०, ३५, ६३, ६४ । ल०, २६ ७१, ७६ । मिठास । शोभा । शराब ।

माधुरी सी = क०, १८, २७ । का० कु०, ४७, ८१, [बि०] (सं०) ६८ । का०, ६३, ११७, १४७, १६२, १६३, १६६ । बि०, ४६, १०२, १०५ । १४२, १७०, १८६ । ऋ०, ३३, ७७ ।

माधुरा के समान, मधुरता सी ।

मानकर = का०, १७१ ।

[पू० क्रि०] (हि०) स्वीकार करके, कल्पना करके ।

मान को = बि०, ६८ ।

[सं० पुं०] (सं०) समान को, अभिमान को ।

मान चूँ = का०, १६० ।

[क्रि०] (हि०) 'मानना' क्रिया का वतमानकालिक रूप ।

मानत = बि०, ३२, १०५ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) मानना क्रिया का सामान्य वतमान का रूप ।

मानसी = का० कु० ३३ । ल० ७१ ।

[क्रि० सं०] (हि०) 'मानना' क्रिया का भूतकालिक रूप ।

मानसी सी = का०, ६० ।

[क्रि० बि०] (हि०) कल्पना करती हुई के समान ।

मानस = का० कु०, ५, ६७ । का०, ८८ १६१ ।

[क्रि०] (हि०) ल०, ५३ ।

सहमत होते । कल्पना करते । स्वीकार करते ।

मानदंड समान = का० कु०, २६ ।

[बि०] (हि०) नापने के दंड के समान । मापक के समान ।

मानमोचन = का०, १८४ ।

[सं० पुं०] (सं०) रुठे हुए को मगाने या प्रसन्न करने का भाव ।

मान लिया = श्री०, ५ ।

[क्रि०] (हि०) कल्पना लिया । स्वीकार लिया ।

[मान लें क्यों न ?—'विशास' मे प्रेमानंद का गान । 'प्रसाद संगीत' मे पृष्ठ ३३ पर सकलित । जिसमे पूरी करणा भरी हो और जो दया का दानी हो, विश्व बदना का जो मानद आह्वान करता हो, जिसे तृण तक मे सम सत्ता का का बोध हो, मोहहीन, प्रमी, द्वेषरहित सबमाय ऐसा व्यक्ति चाहे नर हो या चिन्नर, चाहे कीड़ भी नयो न हो उसे भगवान क्यों न मानू ।]

मानव = श्री०, ४६ । का० कु०, ६० । का०,

[मं० पुं०] (सं०) ५८, ७६, १६४, १६६, २४३, २४४, २५०, २७७, २८६, २८६ । बि०, १०३, १५५ । ऋ०, ४१, ६६ । प्रे०, ४, २५ । म०, ७ । ल०, ३०, ४७ । मनुष्य, आदमी, मनुज ।

[मानवकुमार—दे० कामायनी के चरित्र और कामायनी की कथा ।]

मानव जाति = का० कु०, १२५ ।

[सं० स्त्री०] (हि०) मनुष्य वग ।

मानवता = श्री०, ६१ । का० कु०, ८६ । का०,

[सं० स्त्री०] (सं०) ५८, ५६, १२४, १२६ । ऋ०, ३३ । ल०, २३, ७७ ।

मनुष्य का वह धर्म जिससे वह मनुष्य कहा जाता है । मनुष्यता, मनुजत्व इत्यादि ।

[मानवता का विकास—सबप्रथम 'हंस' मई १९३० ई० मे प्रकाशित । कामायनी श्रद्धा संग का 'ढरो मत धरे प्रभुत सतान' से अत तक का अंश । दे०—कामायनी भी कथा ।]

मानवता धारा = का०, १३४ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) मानवतारूपा धारा या प्रवाह, सस्त्रुति का सूचक शब्द ।

मानवती = का०, १२७ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) वह स्त्री जो अपने प्रेमी या पति से भाग नये, मानीता।

मानव देव = का० कु० ८६।

[सं० पु०] (सं०) मनुष्या के देव।

मानवी = का० तु०, १५०।

[वि०] (हिं०) रा। मनुषी व या वा ताम।

मानस = भा० २८, ६५, ६८ ७७। का० तु०

[वि०] (सं०) ६६ ६०। का०, ५० ५६, १०१, १०५, ११३, १२० १४७ २२१, २२५, २८२, २८४ २८६ २६०। चि०, १४३, १५३, १७७। न० ११, १७, ६६ ७७। ल० ४० ४३ ७१। मन से उत्पन्न, मन से विचारा हुआ। मन के द्वारा।

[सं० पु०] हृदय। मानसरोवर। कामदेव।

[मानस—सर्वप्रथम 'इदु' कला १ किरण ३, आश्विन १६६६ ई० में प्रकाशित और 'विश्वामर' के 'पराम' के अंतर्गत पृष्ठ १४५ पर संकलित। हे मानस तुम मानस की भाँति विमल और विस्तृत हो। तुम्हारे बाव भगणित सहर्ष जो मनोहर हैं, उठती रहती हैं। वे सुधा सम हैं। तुम्हारे किनारे बैठकर मनुष्य तुम्हारे तरंगों से निकली अनोखी ध्वनियों को सुनता है। चिंता, हृष, विषाद, क्रोध, निर्वेद, लोभ, मोह, घाना आदि मनोभावों की तरंगें तुममें उठती हैं। इनमें आशा और मुक्ति के दाना का खान भरा पड़ी है जिसे सानंद वलना का मराल जुगता है।]

मानस जलधि = सं० १०।

[सं० पु०] (सं०) हृदय रूपी सागर। अगाध मन।

मानस युद्ध = का० कु०, ८।

[सं० पु०] (सं०) अस्तित्व में बचनेवाला युद्ध। संकल्प और विफल की स्थिति।

मानस शतदल = का० २२३।

[सं० पु०] (सं०) मानसरोवर से उत्पन्न वनस्पति। हृदय कमल।

मानस सर = का० कु०, ८३।

[सं० पु०] (सं०) मानसरोवर, हृदय का सागर।

[मानसरोवर—प्राचीन पर्वत के निचले पवित्र भाग।]

मानस सागर = भा०, ८।

[सं० पु०] (सं०) हृदय सागर।

मानसि = का० कु० ३। का०, १६६, २६६।

[वि०] (सं०) प्रे०, २३।

मन से उत्पन्न मन गर्वणी। मस्तिष्क ग्रन्थ।

मानसी = का० २६४।

[सं० स्त्री०] (सं०) मन में ही की जानेवाली वृत्ति। विद्या दबी का एक नाम।

मानहि = चि०, ६६।

[सं० पु०] (सं० भा०) समान की।

मानहुँ = चि० १४३, १५४।

[प्रत्यय०] (सं० भा०) मानी, जनु।

माना = भा०, २०। का०, १६० १६१।

[सं० पु०] (सं०) एक प्रकार का मीठा, नियात।

[क्रि०] (हिं०) 'मानना' क्रिया का भूतकालिक रूप मान लिया। स्वीकार किया।

मानि = चि०, ५०।

[क्रि०] (सं० भा०) मानकर।

मानिक = ल०, ७२, ७८।

[सं० पु०] (सं०) एक प्रकार का रत्न। एक व्यक्ति का नाम।—द० बाकूर।

मानिक मदिरा = भा० २१।

[सं० स्त्री०] (सं०) मानिक के समान। लाल शराब। वह शराब जो मानिक पात्र में ढाली गई हो।

मानिन = चि०, १५८।

[वि०] (सं० भा०) मानवती, मान करनेवाली। रूठने वाली।

मानिहो = चि० ३३।

[क्रि० सं०] (सं० भा०) मानूँगा। स्वीकार करूँगा।

मानो = चि०, १६४।

[वि०] (हिं०) अहंकार। समाहित। मनस्वी।

मानूंगा = वा०, १८ ।

[क्रि० ग] (हि०) स्वीकार करूंगा ।

माने = वा०, १६२ ।

[घ० प०] (हि०) जन, गोया ।

माने = चि०, १०६ ।

[क्रि० स०] (घ० भा०) मान ले । जान ले । प्रेरणापक रूप ।

मानो = का० कु०, ६७ । वा, २८, २६,

[क्रि० स०] (हि०) ००, १२१, २१६, २६१ । चि०, ६१ ।

प्रे०, १३ । ल०, ६०, ६८ ।

स्वीकार करो, व पना करा ।

मान्यो = चि०, ६६ ।

[क्रि० स०] (घ० भा०) मान लिया ।

माप = वा०, १०, १६ ।

[सं० की०] (हि०) मापने की क्रिया या भाव, नाप । नाप लेनेवाली वस्तु ।

माफ = चि०, १८३ ।

[वि०] (प्र०) क्षमा ।

माया = का०, १८, २४, २५, ७६ । वा०,

[सं० की०] (सं०) २७ । का० कु० १, २६, ४६ । का०,

२८, ३३, ६६, ७०, ७३, ७५, ८३,

८७, ९०, ९७, १०४, ११२, १२२,

१२६, १२७, १६६, १७८, १८४,

१८६, २००, २०८, २२०, २२३,

२२७, २३८, २४६, २६२, २६४ ।

चि०, २६ । ल०, १४, १५, ५८ ।

ईश्वर का वह कल्पित शक्ति जिसमे समस्त सृष्टि भूली हुई है । सृष्टि की उत्पत्ति का मूल कारण ।

मायाजाल = वा०, ६३ ।

[सं० की०] (हि०) मायास्फी जाल, बधन म डालने वाली माया ।

माया भ्रमता = का०, ५७ ।

[सं० की०] (सं०) माया और भ्रमता, माया मोह ।

मायाभयी = अ०, ३८ ।

[वि०] (सं०) माया से युक्त, माया से परिपूख ।

मायाराज्य = वा०, २६५ ।

[सं० पुं०] (सं०) माया का राज्य, माया की 'यापनता' और उसका सबपर जमा हुआ प्रभाव ।

मायारानी = वा०, १५६ ।

[सं० स्त्री०] (हि०) मायास्फी रानी, सबपर शासन करनेवाली माया ।

मायाविनी = वा०, १५३, १६६ ।

[सं० स्त्री०] (हि०) छन करनेवाली नारी । जादूगरिनी ।

मायास्तूप सा = ल०, ७६ ।

[वि०] (मं०) माया के राशे के समान । मोटक किंतु ग्रन्थायी ।

मार = ल०, ७१ ।

[सं० पुं०] (सं०) कामदेव । विष्णु ।

मार खाना = का० कु०, १०६ । चि०, १०७ ।

[क्रि०] (हि०) किसी वं द्वारा चोट या घाघात पहुचना, पीटा जाना ।

मारग = चि०, १०५, १६४ ।

[सं० पुं०] (घ० भा०) रास्ता, पथ । भृगुशिरा नक्षत्र । वस्तुरी ।

मार छवि = चि०, २२ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) कामदेव की छवि या शोभा ।

मारुत = चि०, १८५ ।

[क्रि०] (ज्ञ० भा०) मारुता है । मारना क्रिया का पूर्वकालिक रूप ।

मारना = का०, १६ ।

[क्रि०] (हि०) प्राण लेना, वध करना । पीटना । पछाटना ।

मार सों = चि०, ६५ ।

[वि०] (घ० भा०) कामदेव व समान । बहुत अधिक सुंदर तथा मादक ।

मारि = चि० ५३, ६६, ६७ ।

[क्रि० स०] (घ० भा०) मारना' क्रिया का पूर्वकालिक रूप, मारकर ।

[सं० पुं०] कामदेव ।

मारुत = का० कु०, १३, ३४, ११३ । का०,

[सं० पुं०] (सं०) १२७ । चि०, १५, २४, १८२ ।

अ०, २१ ।

वायु पवन, समार ।

मारुतवश = वा० ८ ।

[क्रि० वि०] (स०) दामु के वशीभूत होकर, हवा या वताग के वश से।

भारत सग = चि०, १७०।

[क्रि० वि०] (स०) पवन के साथ।

भारे = का, १२३। ल०, ७८।

[क्रि० स०] (हि०) मारना' क्रिया का पूर्णभूतनाति रूप।

भारी = ल०, ४६।

[क्रि० स०] (हि०) मारना क्रिया का प्रानार्थक रूप।

भार्ग = का० कु० १४। का०, ४६, ४६,
[सं० पु०] (स०) १०६ १७० १६२ १६३। प्र०,
१४ १८। म०, ३ ४।

रास्ता पथ। मृगशिरा नक्षत्र। विष्णु।

भार्याद्वे = चि०, ४८।

[सं० स्त्री०] (श्र० भा०) भार्या का। सदाचार तथा प्रतिष्ठा का।

भारथो = चि०, ४२।

[क्रि० स०] (श्र० भा०) भार डाला, मारना क्रिया का भूतकालिक रूप।

भाल = का०, ६३, १६६। चि०, १४३
[सं० पु०] (स०) १६६। ल०, २५।

धन। सामान, क्रयविक्रय की वस्तुएँ।
उत्तम सुस्वादु भोजन। माला।

भालति = चि० ५ ५८।

[सं० स्त्री०] (श्र० भा०) एक लता विशेष का नाम और उसका फूल। चादनी रात्रि। जायफर।

भालतियो = भा० ३६।

[सं० स्त्री०] (हि०) मालती का बहुवचन रूप। दे० 'मालति'।

भालती = भा०, ४८। चि०, ५५। भ०, २४।

[सं० स्त्री०] (स०) प्र०, ४। ल० ५६।

दे० 'मालति'।

भालतीकुज = प्र० ४।

[सं० पु०] (स०) मालती का कुज या मालती लता से घिरा हुआ स्थान।

भालती मुकुल = ल०, २७।

[सं० पु०] (स०) मालती का बनी।

माला = भा०, ११, १६, ४१, ६०। ल०,
[सं० स्त्री०] (म०) १३। का० कु०, १०, ३६, १०४।

का० १३, ६७ ११६, १२१, १६८।

चि० १६, ३५, ११, १८, ४६

७०, १४ १६०। भ०, १७, २४,

५४। प्र०, २। ल०, ४५, ४७, ४८,

५६।

अष्टा, माली। हार। समूह।

मालाकचरो = प्र०, ६।

[सं० स्त्री०] (हि०) कपरा नामक मृग का समूह।

मालाहार से = म० २०।

[वि०] (हि०) माला बनानेवाले के समान। हार बनानेवाले की तरह।

मालायें = भा० ७७। का० १३। म०, १६
[सं० स्त्री०] (हि०) २०।

माला का बहुवचन, दे० 'माला'।

माला स्त्री = का० ६८, २२५। भ०, ७६।

[सं० स्त्री०] (हि०) माला के समान। किसी का प्रिय बन जाने का भाव।

मालिका = भ०, ६७।

[सं० स्त्री०] (सं०) माला बनानेवाली स्त्री, मालिन।
बोया। एक प्राभूपण विधेय।

मालिका स्त्री = चि०, १०६।

[वि०] (म०) मालिन के समान। धर्मियों के सदृश।

मालिनि = चि० १५०, १५५।

[सं० स्त्री०] (श्र० भा०) माली की स्त्री। माला बनाने वाली स्त्री।

मालिनि तरल तरंग = चि०, ६२।

[म० स्त्री०] (श्र० भा०) मालिनी नामक नदी में उठनेवाली बुदर लहर।

मालिनी = चि०, ४५, ५६। प्र०, २।

[सं० स्त्री०] (सं०) वह नदी जिसके तट पर मेनका के गम से शकुन्तला पदा हुई या। एक वर्षावृष्टि।

मालिन्य = चि०, ४७।

[सं० पु०] (सं०) मलीनता, मलापन। अपकार।

माली = का० कु०, २४१। चि०, १५३, १७७।

[सं पु०] (हि०) प्रे०, २ ।

दाग क पीचा को देखभाल करने और सोचनेवाला व्यक्ति, वह व्यक्ति जो पीचे लगान और रक्षा करने में निपुण हो । एक जाति विशेष ।

माल्लस = म०, ४ ।

[वि०] (स०) जाना हुआ । नात ।

माह = वि०, १०, ४२ ।

[प्र० य०] (ब्र० भा०) मध्य, बीच ।

[म० पु०] (फा०) महीना ।

माहि = वि० २२ ३०, ३५ ४२, ४६, ४८,

[प्र० य०] (ब्र० भा०) ४६, ५३ ५४, ५६ ५७, ५९,

६० १४५ १४७ १४८ १५२ १५५,

१५६, १५८, १५९, १६४, १७०,

१८१ ।

द० 'माह' ।

माही = वि०, ६८, १०७ १४५ ।

[प्र० य०] (ब्र० भा०) द० 'माह' ।

मिटना = का०, १७५ । प्रे०, १४, १७ ।

[क्रि०] (हि०) मिटना क्रिया का सामान्यभूतकालिक रूप ।

मिटना = का०, २५० । ल०, ४२ ।

[क्रि० प्र०] (हि०) नष्ट होना, न रह जाना ।

मिटानी = क०, १७ ।

[क्रि०] (हि०) 'मिटाना' क्रिया का सामान्यवर्तमान रूप ।

मिटाने देना = का० कु०, १४ ।

[क्रि०] (हि०) द० 'मिटाना' ।

मिटाना = का० कु०, ८७ । का०, ५० । म०, ४ ।

[क्रि० स०] (हि० स०) नष्ट कर देना । न रहने देना । पराजय या जीत करना ।

मिटौ = का० ५१ । प्रे०, १८ ।

[क्रि०] (हि०) मिटना क्रिया का भूतकालिक रूप ।

मिट्टी = का० कु०, ११०, १२१ । प्रे०, १७,

[स० ली०] (हि०) १८ ।

वह मृत्पदार्थ जो पृथ्वी तल पर प्रायः पाया जाता है धूल । मृत शरीर ।

मिट्टी होना = का० कु०, ११० ।

[पुद्ग०] (हि०) बरबाद हो जाना ।

मिट्ट्यो = वि०, ५४ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) 'मिटना' क्रिया का पूर्णभूतकालिक रूप, मिट गया ।

मिट्टी = का० कु०, ४५ ।

[वि०] (हि०) मधुरा । धीमी, मध्यम श्रेणी की, मद्धिम । प्रिय ।

मिट्टी मिट्टी = ल०, ७० ।

[वि०] (हि०) धीमी धीमी ।

मिट्टोहें = वि० ५६ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) मीठा है ।

मित्र = का० कु० ३१, ४३, ४५ । का०, १४,

[स० पु०] (स०) ३६, ११४ । वि०, ४२, ६२ । प्रे०,

६, १०, २१ ।

सखा, दोस्त । वह जो मुबदुल दोनो

में समान रूप से सहायक हो ।

मित्रता = प्रे०, ६ ।

[स० ली०] (स०) मित्र हाने का भाव, धर्म । मित्रत्व ।

मित्ररूप = प्रे०, १० ।

[स०] (हि०) मित्र के रूप या वेश में ।

मित्ररर = प्रे० ६, १० ।

[स० पु०] (स०) अष्ट या अनिष्ट मित्र ।

मित्रा = का० ११४ । प्रे०, २० ।

[म० पु०] (हि०) मित्र का बहुवचन ।

मिथिलाधिप खली = का० कु०, १०० ।

[म० ली०] (स०) मिथिला देश के राजा की पुत्रा, (जानका) ।

मिथ्या = भा०, १६ । का० कु०, ८५ । का०,

[वि०] (स०) १६६ । वि०, १०३ । ल०, ७८ ।

असत्य, झूठ ।

मिथ्या बल = का०, २४० ।

[म० पु०] (स०) वह शक्ति जो अस्थायी या नश्वर है ।

मिथ्याभाषी = क० १० ।

[वि०] (म०) झूठ बोलनेवाला ।

मिलकर = भा०, ४२ । का० कु० ११, ३८ ।

[पुद्ग० क्रि०] (हि०) का०, १७६ । ल०, ३५ ।

मिलना क्रिया का भूतकालिक रूप ।

मिलके = का०, ११०, ११६ ।

[पूर्व० क्रि०] (हि०) मिलकर ।

[मिल जाओ गले—सर्वप्रथम इंदु कला ६, किरण ४५, अक्टूबर, नवंबर १९१५ संयुक्तक म प्रकाशित तथा कानन कुमुम म पृष्ठ ८२-८३ पर सन्तित । कुमुमिल वानन म जो सौंदर्य का छाया विराज रहा है यह तो तुम्हारा ही प्रति बिंब ह । अपनी छाया मे तुम मुझे क्यों मुद्रा रह ह, जग की वृत्तिमता वा रूप चारू वह किना ही मुदर और उत्तम क्या न हो वह बिना तुम्ह पाए उमम नहा झूल सक्ता । जिस भ्रमर का नए कमल का परिमल मानमरूपी सर म मिल गया है वह कुरबन व फूल पर (षटसरमा वा फूल) कसे मुख हो सक्ता है । चाहें भल ही लाग धुंसा वा पात्र समर्थें एस नाच और धमकी जाया वा हम परवाह नहीं क्याकि तुम्हारा अविचल छांव भरे हृदय पर छा गई है । अर मुझे इधर उधर वृद्धिम सीन्य म मन उलझाया । मरी और दता और आकर गल स मिल जाओ ।]

मिलत = वि० १९० ।

[प्र०] (प० भा०) मिलने की क्रिया करना; मिलते हैं ।

मिलता = भा०, ३१, ४४ । वा० कु० ८० ।

[प्र०] (हि०) वा० १२, १२४, २२५, २७० ।
झ०, ११ ।

भैर हाता प्राप्त होता ।

मिलता = भा० ४८ । वा०, १७ । वा० कु०,

[प्र० भा०] (हि०) ३८ ।

। मत्त त्रिया का सामान्य वन मानता ।

मिलते = भा० ४४ । वा० १४६ १६३,

[प्र०] (हि०) २०५ । म० ३० ।

०० 'मन्ता' ।

मिलता = भा० ३३, ५१, ५६ । वा० कु०

[१० ५] (हि०) ४० ७५ । वा० ८ ३६, ७३ ८२ ८४ ८१ १२ १७६ १८८ १४५ २८२ २८३ । वि०, ८, २४ ३४

६०, १८१ । झ०, ४५, ५६ । म०, १५, ४८ ।

संयोग । भेंट । साक्षात्कार ।

[मिलन—सर्वप्रथम इंदु कला ५, खंड १, किरण ५, मई १९१४ म प्रकाशित, तथा 'भ्रमना' पृष्ठ ५६ ५७ पर सन्तित । हमारे श्री प्रिय के मिलन के स्वयं घरती स, कोबिला वा स्वर विपची व नाद स, मलयज पवन मवरद स, मधुप माधवा कुमुम से मिल रहे हैं—हृदय में ऐसी सरल तरंग उठ रही है जिसमे चद्रमा उदय होने लगा है । फूल के झालर के समान आकाश म तारे शाभा दे रह हैं । चद्रमा अमृत लुटा रहा है । सक्त्र प्रकाश ही प्रकाश है और विश्व बभय स पूरा है हृदय कीला उत्तासपुष्प पवन स्वर का प्रसार कर रहा है निभरी मूछना का भादरता व भाग फिर का तान येनुरा सग रहा है ।]

मिलनकथा = वा०, १७७ ।

[४० आ०] (हि०) बट कथा या वाता जितका समय किना व मनन स हा । समाग कहाना ।

मिलना = भा०, १२ ६६ । म०, २० । वा०

[प्र० भा०] (हि०) कु०, ७५, ८३, ६३ । वा०, ८, ३३, ६८ ५५ ७३, ८१ ८६ ११२, १३६, १४८ १६६, २११, २१४, २२६ २३०, २४३, २५४, २६५ २७२ २७३, २७८ २८८ । म० १०, २० १०, ११ १५, १८, २४ २५ २६ । झ०, ३० ३६ ४०, ५३, ५६ । म० ११ १३ १४, ४८ ।

जुटा मिलकर एर हाता । मिलन घनग पत्तियों या प्राणियों वा एर हाता । बीच का अंतर मिट जाना, गमान उभा ।

[मिल रहे माते मधुकर—गवप्रथम इंदु कला ४ किरण ३, मार्च १९१३ म प्रकाशित मकर-चिह्न क भाग्यंत बिना

घार म पृठ १८१ पर सकलित । मन
मे मोद भर मदमस्त भँवर खिले हुए
सुमनो स मिल रहे हैं, ठढो मोनो समीर
चल रहो है जा परागा से मिलने से
एसी लगती हे जम गुलाल बिखर रहा
है । कमलफनो का पिचकारिया से
यसत मकरद का बूँद बूँद बपा कर
रहा है घोर घाम की डाला पर वम
हो पड़ीहे की पात मस्ती मे घमार की
धुन गाए जा रही है ।]

मिला = क०, १५, ३०, ३१ । वा०, ८४, ८७,
[क्रि०] (हि०) १८८, १९०, १९४, १९६, १९९ ।
झ०, ११ । प्र० १६ । ल०, १३,
१८ ।

‘मिलाना’ क्रिया का पूणभूत रूप ।

मिलाई = बि०, ५८ । ल०, ३४, ३५ ।
[सं० लो०] (हि०) मिलने का भाव या क्रिया, मिलाप
करना ।

मिलाओ = का० कु०, ४० ।
[क्रि०] (हि०) ‘मिलाना’ क्रिया का रूप ।

मिलाते = का०, १६२ ।
[क्रि० स०] (हि०) १० ‘मिलाना’ ।

मिलाना = का० ६३ ।
[क्रि० स०] (हि०) एक वस्तु को दूसरी मे ढालकर एक
करना । ममिलित या मिश्रित करना ।

मिलाने = झ०, १७ ५० । का० ६२, १३६ ।
[क्रि०] (हि०) प्र०, १० । ल०, ३०, ३४ ।
मिलन कराने के लिये ।

मिलाप = म०, १८ ।
[सं० पु०] (हि०) मिलने की क्रिया या भाव, मेल या
सदभाव होना ।

मिला ली = बि०, ४६ ।
[क्रि०] (हि०) मिला लिया, एक में कर लिया ।

मिलावत = बि०, १६७ ।
[क्रि०] (हि०) मिलावा है ।

मिलिंद = बि०, २२ । झ०, २६ ।
[सं० पु०] (सं०) भार, भ्रमर ।

मिलि = बि०, ३६, ४२, ४७, ५४, ६३, ७१,
[क्रि० घ०] (हि०) ७४, १४३, १४५, १५०, १८०,
१८६ ।

मिलकर ।

मिलित = झ०, १८ । वा० १८१, २८६ ।
[वि०] (हि०) बि०, ५, १८० ।
मिला हुआ, युक्त ।

मिलि राज = बि०, ७१ ।
[पूव० क्रि०] (हि०) सय राजा मिलकर ।

मिलिय = बि०, १५६ ।
[क्रि० वि०] (प्र० भा०) मिलन के लिए ।

मिली = वा० कु०, ४२, ४६ । वा०, १२३,
[क्रि०] (हि०) १२५ ।

बि०, ७४, १६३ । झ०, ५२ ।
ल०, ६० ।
मिल गई ।

मिले = झ०, ६३ । व०, १४ । वा० कु०,
[क्रि०] (हि०) ६३ । का०, ४१, ७३, २१६, २६५,
२७१, २७८ । बि०, ३५, ५८, ६२,
६७, १८१ । प्र०, २६ । ल० २७ ।
मिल गए या मिल चुके ।

मिलेगा = क०, १४, २५ । का०, १३३ । बि०,
[क्रि०] (हि०) १४, ३४ । झ०, ४८ । प्र० २५ ।
म०, ४ ।

मिलना’ क्रिया का सामान्य मविध्यत्
रूप ।

मिल्यो = बि०, १७०, १८०, १८४ ।
[क्रि०] (प्र० भा०) मिला, मिल गया ।

मिश्र = का० कु०, १०७ । का०, १०, ३६,
[सं० पु०] (हि०) ८४, १३६, २०७, २४७, २७१ ।
बि०, ११ । ल० ३२ ।
ब्राह्मणा का एक वग, मिसिर ।

मिश्रित = का० कु० ३६ । का० १४, १२६ ।
[वि०] (सं०) बि०, २२ ।
मिला हुआ ।

मौच = का० कु०, १० । का०, ६७ । बि०,
[सं० लो०] (हि०) ६६ ।
मरुत, मौन, मृत्यु ।

- मीच = वा०, १२७, २२१।
 [स०] (हि०) 'मीच' वा बहुवचन।
 मीठ = वा० कु०, १०७।
 [वि०] (हि०) मधुर।
 मीठी = का० कु०, १०। का०, १५०, २११,
 [वि०] (हि०) २३५। ऋ०, ३२, प्र०, १६।
 मधुर। कोमल। मंद।
 मीठी चाल = वा० कु०, ६६।
 [स० खा०] (हि०) मंद गति।
 मीठी रसना = वा०, १५२।
 [स० खा०] (हि०) मधुर बोली। माठा जीभ।
 मीड = ल०, २८।
 [स० पु०] (स०) संगीत में स्वर बदलने का सुंदर ढंग।

[मीड मत रिंचे घीन के तार—प्रजातशत्रु का गाल जिसमें पद्मावता ध्वनी दुला बसवा का बणन करता है। सबप्रदम माधुरा यप ७, एड २ सख्या ६, सन् १६२६ में प्रकाशित, प्रसाद सगत में पृष्ठ ७६ पर संकलित गीत। मरा निधय मंगुली जरा ठहर जा धीर पल भर के लिये धनुकपा कर द क्योंकि मेरा मूछित मूछना का माह प्रकट हा जाएगी जा निरपद है। मूक वीण के तार को छेड़ छेड़कर विचलित मत कर क्योंकि वह मेरा बरुगा मे द्रवाभूत हो जाएगी और इसके स्वर का ससार हा समाप्त हा जाएगा। यह कल्याणमया दाणा मसक उठेगी और किता हृदय का पाडा होगी और नगी व्याकुलता नाच उठगी जिस दपकर मेरे प्रिय पर्वे व उस पार व्याकुल हा उठेग।]

- मीलों = ऋ०, ३२।
 [क्रि०] (प्र० भा०) मीड़ का बहुवचन।
 मीत = का० कु०, ७६, १५६। वि० १७,
 [स० पु०] (हि०) १४१, १८५, १८६। ल० ७६।
 मित्र। दोस्त। सखा।
 मीन = वा०, १६७। वि०, २३, १८६।
 [स० पु०] (स०) ऋ०, ७२, ८४।

- मधनी। बारह रातिया में से अंतिम।
 मीनार = म०, १६।
 [स० खा०] (प्र०) बट्टा ऊँचा मीर गानाकार स्तम्भ।
 साठ या पारहरा।
 मुँदती = घा०, ७६ वा०, २६३।
 [त्रि०] (हि०) मुँ जाती, या मूँ लती।
 मुँदते = वा०, ११६।
 [त्रि०] (हि०) बद होना।
 मुफ्ता = वि०, ७०, १७३, १८१।
 [स० पु०] (हि०) मोता। मुला।
 मुफ्त = व०, २१, ३१। वा०, ५१ १८०,
 [वि०] (स०) २१६, २८३। ऋ०, २४, ६३।
 म०, ५।
 जिस मुक्ति मिल गई हो। मयन से छूटा हुआ। स्वतंत्र, स्वच्छंद।
 मुक्त कठ से = वा० कु०, १२७।
 [वि०] (स०) मुला जवान से बिना किसी सहाय या दबाव के, नृतापूवक वही हुई।
 मुक्ता = घा० २३, ३२ ३२ ३४। का०,
 [स० खा०] (स०) २२५। वि०, २२। ऋ०, ५१,
 ल०, ७८।
 माली।
 मुक्ता गण = ऋ०, २२।
 [५० पु०] (स०) मोती का समूह।
 मुक्ताफल शालिनी = म० १६।
 [वि०] (स०) मोतियों के समान फलवाली।
 मुक्तामय = ऋ०, ७२।
 [वि०] (स०) मोती से भरा हुआ।
 मुक्तामाल = वि०, ३३।
 [स० पु०] (स०) मोती की माला।
 मुस्ति = वा०, १४७ १८०, २४६, २७०।
 [म० खा०] (स०) ल० १३।
 मोच।
 मुस्ति द्वार = का०, १७०।
 [स० पु०] (स०) माछ का दरवाजा।
 मुकुट = घा०, ६७। वि०, ७१, ७५। ल०,
 [स० पु०] (पु०) ७७, ७८।

देवताओं, राजाओं आदि के शिर पर
रहनेवाला एवं प्रसिद्ध शिराभूषण।

मुकुट मणिन = बि०, ६७।

[सं पु०] (प्र० भा०) मुकुट की मणियाँ। सवयेष्ट
वस्तु या रत्न।

मुकुटधर = बि०, ५५।

[सं पु०] (सं०) श्रेष्ठ मुकुट। सुदर ताज।

मुकुट सा = बा०, १६८।

[वि०] (हि०) मुकुट के ममान।

मुकुल = बा० कु०, १३। बा०, २६३। बि०,

[सं पु०] (सं०) १८०। ऋ०, ६४। ल०, १६, ३५,
३७, ५६।

कोरक। गुप। शरीर। आरमा।

मुकुल मन = बा० कु०, १५। ऋ०, १६।

[सं पु०] (सं०) मनरूपी कली।

मुकुल माल = ऋ०, ६६।

[सं पु०] (सं०) कलियों की माला।

मुकुल सदृश = बा०, १६८।

[वि०] (सं०) भयसिले फूल के समान।

मुकुल सा = बा०, ६०।

[वि०] (हि०) भयसिले फूल के समान।

मुकुलिय = बा०, १६६, २१७। बि०, १४७।

ऋ०, ८५।

[वि०] (सं०) भयविश्रित। भयसिला।

मुकुल = बा०, २६। बा०, २६१।

[सं पु०] (सं०) प्र० 'मुकुल'। (बहुवचन)।

मुकुर = बा०, ४३, ४७, १३१, १४७, १७६,

[सं पु०] (सं०) २८४। ल०, २६।

दर्पण। शीशा। कली।

मुकुर अचल = ल०, ७६।

[सं पु०] (सं०) अचल रूपी शीशा।

मुस = बा०, २१, ४६, ६८। बा० कु०,

[सं पु०] (सं०) ८, १२, १११। बा०, १०, १२, २३,

४५ ४६, ४७, ११४, १२१, १३२,

१३४, १३६ १४०, १६६, १७२,

१८३, १८४ १६६, २३३, २३८,

२७७। बि०, २, १४, २२ ४६, ५६,

५८, ६०, ६१, ६३, ६४ ६७ ७०,

७३, ७४, ६८, १०५, १३३, १५८,

१७४, १७८, १८८। ऋ०, ४६। प्र०,

१२, १६, १८। ल०, ४६, ६६।

मुट। आनन।

मुस कन = बि०, १४६।

[सं पु०] (सं०) मुसहरी कमल।

मुस कमल = बा०, २३।

[सं पु०] (हि०) मुसहरी कमल।

मुस चद्र = बा०, २७, ४१। बि०, ४६, १७६।

[सं पु०] (हि०) ल०, २६।

मुसल्ला चद्र।

मुसचद्र जिभा = बा० कु०, ५। ऋ०, ५।

[सं लो०] (सं०) मुसल्ला चद्र का प्रकाश।

मुसपर = बा०, २५६।

[सं पु०] (हि०) भयिक्करणा कारक 'मुस' से।

मुस फेरि = बि०, ६४।

[प्र० ऋ०] (प्र० भा०) मुस फेरकर, विरोधी भाव
प्रदर्शित करके।

मुसमदल = बा० कु०, १०८। बा०, १२६।

[सं पु०] (सं०) प्र० ४।

चेहरा, मुसल्लाहति।

मुसर = बा०, २१६ २१७।

[वि०] (सं०) ध्वनिमुक्त।

मुसरित = बा०, २६। बा० कु०, ८६। बा०, ८,

[वि०] (सं०) ११, १६, १८२, २५२, २७८, २६०।

ध्वनित, स्वरमुक्त।

मुस सदृश = बा० कु०, १०८।

[वि०] (सं०) मुस के समान।

मुस सिद्दियाल = बा० कु०, १०५।

[सं पु०] (सं०) सिंह के बालक के सदृश मुख।

मुसल्लाहति = बि०, ७३।

[सं लो०] (सं०) मुसल्लाहति, चेहरा।

मुख्य = बा० कु०, ६३।

[वि०] (सं०) प्रधान।

मुगल = म०, ३।

[सं पु०] (अ०) यवनो की एक जाति विशेष जिसने

भारत पर राज्य किया था तथा जो

मंगोलिया से आए थे।

मुगल अष्टाकाश मध्य = ता० कु०, १०८ ।
[म० पु०] (म०) मुगला व भाग्यही आकाश म ।

मुगलमहीपत = का० कु०, १०८ ।
[स० पु०] (हि०) मुगलो के राजा ।

मुगलवाहिनी = म०, २२ ।
[स० ली०] (हि०) मुगला की सेना ।

मुगल साम्राज्य = का० कु०, १०८ ।
[म० पु०] (हि०) मुगलों का तथा उनके अधिन राज्य ।

मुगल से = का० कु०, १८ ।
[वि०] (स०) माहित के समान ।

मुक्त = क०, २५ । का० कु०, ४२ । वा०,
[सव०] (हि०) १४८, १५४, १५८ १८४, १८४ ।
५०, ५२ ।
मैं का एक रूप ।

मुक्तको = का०, १६, २५, २८ । का० कु०, ५५,
[सव०] (हि०) ८३ । का०, १५४ १६६, १६२,
१८६ १८७ १८८ २१८, २१८,
२३० २४२, २४३, २४४ २५६,
२८७ । प्र०, १६, २०, २२ । म०
१६ १८ । ल०, ३४ ३५ ३६, ४५
५६, ६६ ।
(मै) 'वम कारक' में

[मुक्तको न मिला है कभी प्यार—मरवता,
वर्ष ३७, अथ १, सख्या ५ मई-
१६३३ में सवप्रथम प्रकाशित श्रीर
सूत्र में पृष्ठ ३४ पर सकलित देखिए
'विर लुपित वृत्त से लुप्त विधुर' यथो
के प्रति सवप्रथम माधुरी वष ४
रात्र १, सख्या १, १६२५ २६ में
प्रकाशित तथा प्रसन्न संगत में पृष्ठ
६० पर मन्त्रिन अज्ञातशत्रु का गात-
देखिए 'मलना का किस विना
विरहिणी' ।]

मुक्त पर = का० कु० ७५ । का० १४८, २३६ ।
[सव०] (हि०) मर पर ।

मुक्तसे = व०, २७ । वा०, ८६, १६१ ।
[मव०] (हि०) अधिवरण में (मै) ।

मुक्तसे = का०, २५ । वा०, २५ । ता०, १६८,
[मव०] (हि०) २२४, २३७, २४३ । ल०, ३८ ।
अधिवरण 'वरण' में (मै) ।

मुक्ते = व०, १८, २६ । वा० ८५, ८६, १६०
[मव०] (हि०) १६४ १६६, १६८, २२६, २२८
२४३, २४७, २६१, २८६ । प्र० १५
२१, २२ । ल० ३८, ३६, ६६, ७८ ।
३० मुक्तको ।

मुक्ते = का० ४६ । वा०, १८६, २३६ ।
[क्रि०] (हि०) मोह से धूमने की त्रिया ।

मुदभरि = वि० ५ ।
[त्रि०] (व० भा०) प्रसन्न हाकर, मोह में भरकर ।

मुत्ता = वि०, ५०, १६८ ।
[स० ली०] (व० भा०) प्रसन्नता ।

मुदित = का० कु०, ३३, ३६, ४३ । वि०,
[वि०] (स०) २४, ४५, ४६, ४७, ४८, ४९ ।
प्रसन्न ।

मुद्रित = का० १३२, २१८ ।
[वि०] (स०) मुद्रा से युक्त । मुद्राकित ।

मुनि मन = वि०, ५५, ५६ १६३ ।
[म० पु०] (स०) कृपि का मन ।

मुनिर = वि० ५८ ।
[स० पु०] (स०) श्रद्धावि ।

मुमुषु = का० २०२ । ल० ७७ ।
[वि०] (स०) मुमुक्षु । मूर्खतामय
मुमुषु सा = का०, २०८ ।
[वि०] (हि०) मुमुक्षु के सदृश । मूर्खतामय ।

मुग्ध = वि०, १३६ ।
[म० ली०] (व० भा०) ३० 'मूढ' ।

[क्रि०] मुहकर ।
मुग्धकर = का०, १७५ ।
[मव० त्रि०] (हि०) कुहला कर ।

मुग्धाना = का० १७५ । म०, ३३ । प्र० ३ ।
[क्रि०] (हि०) ल०, ११ ।
कुहलाना ।

मुग्धाहि = वि०, १५ ।
[क्रि०] (व० भा०) मूर्खता है ।

सुरभि = चि०, २४।

[पूव० क्रि०] (प्र० भा०) सुरभि कर।

सुरली = घा०, २६, २६, ३१। वा०, ७७,

[सं० स्त्री०] (प्र०) २६०, २६३। ऋ०, २८, २९।

वाँसुरा, वसी।

सुरि = ति०, ५६, १८८।

[पूव० त्रि०] (प्र० भा०) सुरा त्रिया वा एव रूप।

मुडकर।

सुसक्या = का०, २८७। ल०, ११।

[पूव० क्रि०] (हि०) सुसकावर।

सुसक्यान = का० कु०, ४३। वा०, २६ ४७, ८७,

[सं० स्त्री०] (हि०) १३०। चि० ५६ ७०, १८८।

ल०, ७६।

मुसकराहट।

सुसक्याय = ऋ०, ४८।

[पूव० क्रि०] (प्र० भा०) सुसकरा कर।

सुसक्याती = घा०, १६, १७, ३३, ६४। का०, ३६,

[त्रि०] (प्र० भा०) १२८, १७८, २३६, २६४।

मुसकाती।

सुसक्यानि = का०, २८१।

[सं० स्त्री०] (प्र० भा०) सुसकराहट।

सुसक्याने = चि०, ११।

[क्रि०] (प्र० भा०) सुसकराए।

सुसक्यायि = चि०, ६१।

[पूव० त्रि०] (प्र० भा०) सुसकरा कर।

सुसकरा उठी = का०, १४३। घा० २७।

[क्रि०] (हि०) सुसकराई।

सुसकान = ल०, ६०।

[सं० स्त्री०] (हि०) सुसकराहट।

सुई = घा०, २७, ७३, ७७। वा०, कु०, ७८।

[सं० पुं०] (हि०) वा०, २४३। चि०, ३६। ऋ०, ३६

प्रे०, ६। ल०, ५१।

मुख धानन।

मूक = ऋ०, २६। ल०, ७३।

[वि०] (सं०) गूना।

मूढ = का०, २७। वा० कु०, १। चि०, ६६,

[वि०] (सं०) १५५।

मूर्ख, जह।

मूढ मति = चि०, १७६।

[सं० स्त्री०] (हि०) मूर्ख, मतिहान।

मूदे = चि०, १८१।

[त्रि० स०] (प्र० भा०) वद करे। धाति वद करे।

मूरख = का०, १६। वा०, १७०। चि०, ८, १४,

[वि०] (हि०) ६६, १८४। प्रे०, ६।

मूर्ख, बुद्धिहीन (‘मूर्ख’)।

मूरि = चि०, ३४।

[सं० स्त्री०] (प्र० भा०) मूर, जह, सार।

मूरति = चि० ६६, ७२, १७४, १८६।

[सं० स्त्री०] (प्र० भा०) प्रतिमा, मूर्ति।

मूर्त = का०, १६ २८८, १।

[वि०] (सं०) मूर्तिपारा साधार। प्रकट, व्यक्त।

मूर्ति = घा०, ३८। वा० कु०, २२, २३,

[सं० स्त्री०] (सं०) ३०, ३२, १२१। वा० ४७ ५१,

५३, १०२। चि०, १५६, १४१, १५४,

१५७। प्रे०, १७। ल०, ५३।

प्रतिमा, बाण, प्रस्तर या किसी धातु

की बनी आकृति।

मूर्तिमती = का०, १६६।

[वि०] (सं०) साकार, सविग्रह।

मूर्तिमान = का०, १५६। ल०, ७५।

[वि०] (हि०) साधार, मूर्तिमय।

मूर्तिर्या = का० कु०, ११६।

[सं० स्त्री०] (हि०) मूर्ति का ‘बहुवचन’।

मूर्खता = प्रे०, २४।

[मं० स्त्री०] (सं०) जहता, मूढता।

मूर्च्छित = का०, १०, ६६, १६६, १८०। चि०,

[वि०] (सं०) ४२। ल०, ३५, ४३।

मूर्च्छयुक्त, बेहोश।

मूर्च्छता = का०, ११, २६२। ऋ०, ५७।

[सं० स्त्री०] (पुं०) समेत मे आरोह और अरोह की सधि

विवेच।

मूल = का० कु०, ४५। का०, ५३, ५७, ७२,

[सं० स्त्री०] (पुं०) ७६, ६२, ६४, १३३, १४४, २७२।

जह, सार।

मूलों = का० कु० ४५।

[सं० स्त्री०] (हि०) मूल का बहुवचन। दे० ‘मूल’।

मूल्य = श्रा०, ६२। व०, २०, २२। वा०
[सं० पु०] (सं०) कु०, ८६। म०, ७४।
मोल, वीमत। महता विशेषता।

मृपक हूँ वो = वि०, ७२।
[सं० पु०] (सं० भा०) मूहे वो भी।

मृग = वा० ११८, १४१, १४४ १७६,
[सं० पु०] (सं०) २८४। वि०, ६०, ६७, १६३। ल०,
३३, ५६।
हरिण। मृगशिरा नक्षत्र। पुराण के चार
सेदो मे से एक।

मृगछीनाहि = वि० ६६ ७०।
[सं० पु०] (सं० भा०) हरिण के बच्चे का।

मृगवृष्णा = वि० २७०।
[सं० ली०] (सं०) जल की सट्टो की वह भ्राति जो कभी
कभी रेगिस्तान में कड़ा घूप पड़ने पर
होती है और जिसे जल समझ कर मृग
बहुत दूर तक दौड़ता रहता है।

मृगन = वि० ५६।
[सं० पु०] (सं० भा०) मृग का बहुवचन।

मृगनाभि = वि०, १६६।
[सं० पु०] (सं०) मृगमद। नस्तूरी।

मृग मन = म० ४३।
[सं० पु०] (सं०) मनरुपी मृग।

मृगमरीचिका = का० कु०, १२।
[सं० ली०] (सं०) मृगवृष्णा।

मृगमरीचिका आशा = म० ४६।
[सं० ली०] (हि०) भ्रम क वारण रेत वणो को जल
समझनेवाले मृगा की आशा के
समान झूठी आशा।

मृगया = क०, १३। का०, १३६, १४१, १४६।
[सं० ली०] (सं०) वि०, ६६, १८५। म०, १२।
महेर, शिकार।

मृगशावक = वा० कु०, ६६।
[सं० पु०] (सं०) हरिण के बच्चे।

मृगी = वा० कु०, ६६।
[सं० ली०] (सं०) मृग का स्त्री, हरिणा।

मृणाल = का० कु०, ४३।
[सं० पु०] (सं०) नमल जाल। कमल का डठर।

मृणालमाली = वा० कु०, ३६।
[वि०] (हि०) मृणाली मृणालमयी।

मृत = ल० ७४।
[वि०] (म०) मरा हुआ। जो मर चुरा हो। गत
प्राण। जिसे मरे कुछ समय हुआ हो।

मृति = वा० २३५।
[सं० ली०] (सं०) दे० 'मृ'।

मृत्युना = वि०, १०७।
[सं० ली०] (सं०) मिट्टी।

मृत्यु = श्रा०, ५०, ५४, ७६। का० कु०,
[सं० ली०] (सं०) ११६, १२०। वा०, १७, १८, २६८।
ल० ५३, ५८, ७०।
शरीर से प्राण निकलना। मरना,
मौत।

मृत्युसदृश = वा०, २०।
[वि०] (सं०) मरण के समान। मृत्युतुल्य। श्रम्यधिक
दुःखद।

मृत्युसीमा = वा० १६१।
[वि०] (हि०) मृत्यु का धेरा। मौत की सीमा।

मृदग = वा० कु० ६३। का० २६६। वि०,
[सं० पु०] (सं०) ११। ल०, ४८ ५६।
एक प्रकार का ढोल के समान प्रतिद्ध
पुराना बाजा।

मृदु = श्रा० ७४। का०, २४, २६, ३८,
[वि०] (सं०) ७३ ६०, १३०, १४५, १५२, १५७,
२२२ २७८ २६३। वि०, ४५, ५६।
ल०, ४२।
कोमल, मुलायम।

मृदुध = ल०, १६।
[सं० ली०] (सं०) मुवाव। सुगंध। मोठी गंध।

मृदुमात = ल० ४५।
[सं० पु०] (सं०) कोमल शरीर।

मृदुतम = वा०, २६१।
[वि०] (सं०) कोमलतम। सबसे अधिक कामल।

मृदुल = श्रा०, ८, ११, २६, ७५। वा० १६,
[वि०] (सं०) ४६, ६७ १४५, १५१, २४४। वि०,
२६। ल० १० ४४।
कोमल। मुलायम। मनोहर।

शृङ्खलिका नव = चि०, ५७ ।
 [स० खी०] (म०) नवीन और कोमल बनी ।
 शृङ्खलता = का०, ११२ ।
 [स० खी०] (स०) कोमलता । सुनायमियत ।
 शृङ्खल फेन = का०, १५१ ।
 [सहा पु०] (हि०) हल्की सी गाज ।
 शृङ्खलास = का०, ६६ ।
 [स० पु०] (हि०) मुस्कुराहट ।
 सुनाल सी = चि०, ५७ ।
 [वि०] (हि०) युगाल की तरह । कमल के डठल के समान ।
 सुपा = का०, २७१ ।
 [प्र०] (स०) झूठ, व्यर्थ ।
 मे = मा०, १, १२, २० । क० २०, २८,
 [प्र०] (हि०) ३० ३२ । वि० १४० । ल०,
 ६६, (६ बार) ६७, ६९ ७० ।
 अधिकरण कारक का चिह्न ।
 मेघ = का० कु०, १२४ । का०, १८६ । वि०
 [म० पु०] (स०) ११ ३४ । का०, ४० । प्र०, १२ ।
 ल०, ४३ ।
 बादल । घन । नारद ।
 मेघराज = प्र० १२ ।
 [स० पु०] (स०) बादल व छोटे टुकड़े ।
 मेघगर्जन शृङ्ग = का० कु०, १२४ ।
 [स० पु०] (स०) बादलों का गर्जन रूपी शृङ्ग ।
 मेघपट = ल०, २७ ।
 [स० पु०] (स०) बादलों का पटा ।
 मेघबन = का०, ६६ ।
 [स० पु०] (स०) मेघ का समूह ।
 [क्रि०] मेघ बन कर ।
 मेघबाहन = का० कु०, १३ ।
 [स० पु०] (प्र० भा०) मेघ को धारण करने वाला । हवा ।
 मेघमाला = का० कु०, ५७, १०० । का०, ४६ ।
 [स० खी०] (स०) माला का समूह, शृङ्खलिका ।
 मेघादृत = का० कु०, ६८ ।
 [वि०] (स०) बादल से पिरा हुआ ।
 मेघादर = का०, ७५ ।
 [स० खी०] (स०) बादल का आर्धर ।

मेष्ट = चि०, १५० ।
 [क्रि० स०] (प्र० भा०) मिटा देना है ।
 मेष्टुँ = चि०, ५० ।
 [क्रि०] (प्र० भा०) मिटा दा ।
 मेदिनी = का०, ५६ ।
 [स० खी०] (स०) धरती, पृथ्वी । यात्रियों का वह दल
 जो भ्रम लेकर किसी तार्थ या दब-
 स्थान का जाता है ।
 मेघा = का०, १११ ।
 [स० खी०] (स०) मस्तिष्क । बुद्धि । धारणा शक्ति ।
 मेनका = चि०, ६२ ।
 [स० खी०] (स०) एक अम्बरा का नाम ।
 [मेनका]—स्वर्गलोक की एक श्रेष्ठ अम्बरा विराहाव
 (मेन) की पुत्री और ऊण्डि
 गधव की पत्नी । विश्वावसु से इन्हें
 प्रमद्वरा नामक बच्चा उत्पन्न हुई जिसने
 स्थूलवेष रूप के आश्रम में जन्म देने
 ही प्राण त्याग दिया । इसने अजुन के
 जन्मोत्सव में नृत्य किया था । पृथ्वी
 राजा इसपर सुगंध हुआ था जिसने
 सुपद नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था ।
 इंद्र द्वारा भेजे जान पर इसने विश्वा
 मिन का मोहित कर उनका तप भंग
 किया और शकुन्तला को जन्म दिया ।]
 मेरा = मा०, सत्तरह बार । क०, छ बार ।
 [सब०] (हि०) का०, कु०, सात बार । का०, एक्ता-
 लिस बार । चि०, पन्द्र बार । का०,
 एक बार । म०, एत बार । ल०,
 नव बार ।
 मेरी = मा०, तीन बार । क०, दो बार ।
 [गव० खी०] (हि०) का० कु०, दो बार । का०, सालह
 बार । चि०, एक बार । ल०, सान
 बार ।
 [मेरी ओंलों की पुतली में सबप्रथम जागरण,
 १८ जून, १९३२ में प्रकाशित, लहर में
 पृष्ठ २८ पर संकलित रूढ़िवादी गाथा ।
 हे प्रियतम सत्कार की मायारूपी मेरी
 आँखों में तुम प्राण के सदृश समा
 जाया जिससे जड़ता स्पष्टित हो सके

और मन मे तुम्हारे प्रति पवित्र मलयज भाव उत्पन्न हो और जीवन मे तुम्हारी करुणा का अभिनन्दन हो। इससे मेरे अचरों पर आनन्द की ऐसा रेखा अन्तिम हो जाएगी जिसकी हसी यह विश्व चिरन्तन देखता रहेगा।]

[मेरी कचाई—प्रसुता चतुःशपदी जो सबप्रथम इडु बला ५ किरण ४ भवद्वार १६१४ म प्रकाशित हुई था और प्रसाद सगीत म पृष्ठ १२० पर सङ्कलित है— है प्रियतम। यद्यपि हम तुमसे कहने लायक नहीं हैं फिर भी विनय का हमारा अधिकार है। हम ही कायर है तुमसे क्या कह कि तुम स्वच्छ मन से, साफ हृदय म हमसे मिलत नही हो। मेरी कचाई तो घरी है कि मैं बचन तोड़कर तुमसे नही मिलता। सबको समझा युष्माज्वर सबसे झलक हा जिस क्षण हम तुमसे मिलने के लिय प्रयत्न थे उस समय तुम अपना बन्धन नहीं सभल सने दीड पड। मेरे आचरण मे लिचे रहे फिर भी मेरा बेवसी था। तुमको सब कुछ पता है फिर तुमन ही क्या मुझे अपनी कृपा से वाचन किया। मुझमे कचाई है ता क्या तुम भी नही मिल सकत थे ? यह मैं कह रहा रहा बात प्रायना कर रहा हूँ।]

मेरे = स०, बार बार।
[गव०] (हि०) मैं का मवय वाक्य।

[मेरे प्रेम को प्रतिहार—इडु, बला ५ किरण ३, माध १८१४ म मवप्रथम प्रकाशित और चित्राधार में पृष्ठ १८७ पर सङ्कलित। अन्तर्भाषा का प०। मेरे प्रेम का बन्ना प्रियतम मत दाखिए। मैं सब कुछ छाड कर तुम्हारे प० कमल म प्रेम करता हूँ। या मेरे निरुर मात तुम अनोप बनभान हो हाथ फेनाकर द प्राण जब हम तुम्हें छाता म भरन के तुम प० मुदरकर मुम्हाराट हुए हट

गए। हम तुम्हारा अनुगमन करते रहे और तुम मुह केर कर चल गए—कम से कम अपने चरणों की धूल ही मेरे सिर पर गिरा दो।]

[मेरे मन को चुराकर वहाँ ले चलो—विशाख मे सरला का गीत, इस मात मे नरदेव के अचर की वाणी प्रकट हुई है। मेरे मन का चुराकर मेरे प्यारे मुझे भुनाकर वहाँ चल। हम तो तुम्हारे प्रेम का प्राण म ऐसे जले जस पसगे भा नही जलते तुम ऐसे विषम पवन के समान चल रहे हो जिससे हमारी प्रेम लना कुम्हवा गई, एता क्यों ?]

मेल = भा०, ५०। बा० कु०, १०। का०,
[स० पु०] (हि०) ८१ २२६। वि०, १।
मिलने की प्रिया या भाव।

मेला = म० ३२। स० १४।
[स० स०] (हि०) उत्सव त्योहार आदि के समय होने वाला बहुत से लोग का जमावडा।
भाड।

मेली = वि०, ५६।
[त्रि० स०] (ब० भा) पहना दी।

मेराइ = म० १२, स०, ५७।
[स० पु०] (हि०) राजपूता का वास्ता का बँध स्थान जो राजस्थान म है।

मेराइ गगन = म० १०।
[स० पु०] (हि०) मवाद रूपी प्राणाश।

मेपों = बा० ४६।
[स० पु०] (हि०) भेदा।

मैं = व० १७ १८, २२, २३ २४ २८
[गव०] (हि०) ३०। बा० ४० ७१ ६३ ६४
६८ ६९ १०० १०३, १३१ १४६,
१५० १६६ १७६, १८३, ६८४
२११ २१२ २१६, २१७, २१८,
२१८ २२०, २२७ २२८ २३७,
२४८ २३६, २४० २४३। म०, १४
२१ २३। स० १०, ११, ६६, १७,
६८, ७०

पुण्यवाचक सवनाम का उगम पुनः।

मैदान = वा० कु०, १७, ६६। प्र० १५।
[सं० पु०] (हि०) घेत, क्षेत्र। लवा चौग भूमि भाग।
मैने = वा०, १६, २१, २२। वा०, १२७,
[सब०] (हि०) १४६, १८६, १६१ १६६, १६७,
१६६ २२३। ल०, ६७।
दे० मै०।

मौ = बि० ७३।
[प्रत्य०] (ब० भा०) समया विमक्ति, मे।
मोचत = बि०, १७६।
[क्रि० सं०] (ब० भा०) दूर करता है। नाश करता है।
मोचहु = बि०, ५०।
[क्रि०] (ब० भा०) दूर करा।
मोचै = बि०, १०६।
[क्रि०] (ब० भा०) दूर कर।
मोड़ = बि०, १७८।
[सं० पु०] (हि०) बीराहा। जहा से मुक्त जाय।
मोड़ना = का०, २४३।
[क्रि० सं०] (हि०) घुमाना।
मोड़ोमे = वा०, १३३।
[क्रि०] (हि०) झुका दामे।
मोली = मा० २३, ६७, ७७। का० पु०, ३६,
[सं० पु०] (सं०) ४३, १२६। वा०, १२६, १७८,
१८४। बि०, ७०, ७५, १७२। ऋ०,
३१, ७६। ल०, १८, ३५।
समुद्री सीपी से निवृत्तनेवाला एक
रत्न, मुक्ता।

मोली मस्जिद = वा० पु०, १०८।
[सं० स्त्री०] (प्र०) दिल्ली की एक प्रसिद्ध मस्जिद।
मात्ते = बि०, ७८।
[सब०] (ब० भा०) मुक्त।

मोद = वा० पु० २६ ४६। वा० ४७।
[सं० पु०] (सं०) बि०, २२, ३८, ६०, ६२, १०६,
१४०, १४०, १४४, १६४, १६५,
१६७, १७१, १७३। ऋ०, ८१।
प्रमत्तता, मानंद।

मोद भरना = वा० पु०, १०६।
[क्रि०] (हि०) मानाति करना।

मोदभरी = बि०, १०१।
[वि०] (ब० भा०) प्रसन्नता से युक्त प्रसन्न।
मोदभरे = बि०, १६५।
[वि०] (ब० भा०) आनंदित।
मोदभार = का० पु०, ४८।
[सं० पु०] (सं०) प्रसन्नता का भार। आनंद की प्रचुरता।
मोदमय = वा० पु०, १०।
[वि०] (हि०) आनंदमय।
मोद माते = बि०, १०१।
[वि०] (ब० भा०) आनंद में विह्वल।
मोम = वा० ६८।
[सं० पु०] (हि०) एक प्रकार का वह चिकना पदार्थ
जिसे शहद का छत्ता बनता है।
मोर = वा० पु० ५७। बि०, ५७।
[सं० पु०] (हि०) पक्ष विशेष मयूर।
[सब०] (ब० भा०) मरा।
मोल = वा०, १६६ २३७।
[सं० पु०] (हि०) मूय, कमल। विहायता।
मोह = का० पु०, ११५। वा०, ७१ ८३,
[सं० पु०] (सं०) १४५, १६२। बि० १४, १४३,
१८१। ऋ०, ४८, ५४, ८६। प्र०,
१६ १७। ल०, ३५।
समस्त दुखा का मूल। भ्रांति। प्रेम।

मोह जराद = वा०, १४६।
[सं० पु०] (सं०) माहुरी मय, माह की गहनता का
भाव।

मोहव = बि०, ७०, ६३।
[क्रि०] (ब० भा०) मुग्य करता है।

मोहति = बि०, ५०।
[क्रि०] (ब० भा०) मोहता है।

मोहते = बि०, ३६।
[क्रि०] (ब० भा०) मुग्य होत है या करत हैं।

मोहन = वा० पु०, ७८ ७६, १११। बि०,
१४६, १८१। ऋ०, ११, ५५, ६६।
[वि०, सं० पु०] (सं०) मुग्य करनेवाला, कृष्ण।

[मोहन—सबप्रथम द्रुत बना ५, विरल ४, प्रमत्त
१६१४ में प्रकाशित मोर बाननकुपुम में
पृष्ठ ७८ ७६ पर सफलित उद्ग तर्ज का

गीत—हे मोहन तुम अपने सु दर प्रेम के रस का प्याला पिला दो ताकि उसमे हम अपने को मिला दें और तुम्हारे रूप माधुरी मे सदा छके रहूँ। विषम मर मे व्याप्त अपना सोदय मरे मन मे भवतरित कर दो और हमारा अस्तित्व तुम्हारे मे धिलान हा जाय। अपनी रूप शिला का हमे पत्थर बना दा। मेरा हृदय तुम्हारे रंग मे रंग जाय ऊग की ऐसी लाला दिला दो। अपना ऐसा प्रभूत सगीत सुना दा जिससे रोम रोम प्रानद से भरकर पुलकित हो जाय।]

मोहना = का० कु०, १११।

[वि०] (प्र० भा०) मोहक मुग्ध परनेवाला।

मोहनी = का० कु० ११४।

[वि०] (प्र० भा०) मुग्धकारिणी।

माहमयी = भा०, १२। का० ६६। १८६।

[वि०] (स०) माहनेवाला मुग्धकारिणी। माहक।

मोहमुग्ध = का० १८।

[वि०] (स०) का० १८।

मोह द्वारा मुग्ध या मोहित।

मोहि = वि०, ३० ७६ ५० ६१ ६८ ७४।

[सव०] (प्र० भा०) मुग्ध।

मोहि = वि० ७६।

[हि०] (प्र० भा०) मुग्ध कर। मोहित कर। मुभा कर।

मोहित = भा० १५। का० कु० १३।

[वि०] (स०) मुग्ध।

मोहिनि सो = का० ६५।

[वि०] (हि०) मुग्धकारिणी कम्पदश।

मोचिका हार = वि०, ७५।

[स० पु०] (म०) मोचिका का माला।

मोच = का० कु० १७, ३७। वि० १४

[स० श्री०] (म०) १४३।

लहर, तरंग, उर्मण।

मोज = वि० ६५।

[स० श्री०] (म०) धानद। मन का उर्मण।

मोन = का० कु० ७४। का० १०, १८ २६

[वि०] (म०) ३०, ४५ ५१, ८१ २३० २३८,

२४५। वि०, १६७। ऋ०, २८, ४५,

७८। ल०, ११, ३५, ३६, ३८, ५८।

पुष्पाप। नीरव। शाव। स्तम्भ।

मोहें = वि०, ११, ३६, ५५, ५६, १६३,
[क्रि०] (प्र० भा०) १५३।

मोहित करता है।

म्यान = का० कु०, ७५।

[स० श्री०] (हि०) तलवार रखने का खाना।

म्यानते = वि०, ६४।

[क्रि० वि०] (प्र० भा०) म्यान से या तलवार रखने की खोली से।

म्लेच्छतम = वि० ६६।

[स० पु०] (स०) गंदे यवन। महा अनार्य। वह जो आर्य धर्म पर आपभ्राया का द्रोही हो।

य

यज्ञ = का० १६३।

[स० पु०] (म०) बल। महीन। जतर।

यज्ञो = का०, १६६।

[स० पु०] (हि०) यज्ञ का बहुवचन।

यज्ञ = ऋ० ७६।

[स० पु०] (स०) कुबेर की निधियों के रत्नक। एक देवता। कुबेर।

यजन = का० १३, ३१ ५६, ११४।

[स० पु०] (स०) यज्ञ करना।

यज्ञ = का०, ११, ३१। का०, १३, ३२, १०६,

[स० पु०] (म०) ११२, ११४, ११६, १२६, १३२, २४०।

हवन करने का एक धार्मिक कृत्य।

यज्ञार्थ = का० २३।

[स० पु०] (स०) हवन का कार्य।

यज्ञ प्रज्वलित = वि० ६१।

[स० पु०] (स०) हवन का प्रज्वलित अग्नि। होता दृष्टा यन।

यज्ञपुरोहित = का० २०१।

[स० पु०] (स०) हवन करानेवाला। धर्मदाता।

यज्ञपुरुष = का० १३२।

[स० पु०] (स०) विष्णु।

यज्ञभूमि = वि०, ६०।

[सं० खी०] (सं०) यत्नक्षेत्र, वह स्थान जहाँ पर यज्ञ होता है।

यत्न = चि०, ७४।

[सं० पुं०] (२० भा०) यत्न 'यत्न'।

यत्न = चि०, ४७। ऋ०, ७३। प्रे०, २०।

[सं० पुं०] (सं०) कोशिका, उद्यान, तदवीर।

यत्न सत्र = प्रे०, २०।

[अव्य०] (सं०) यहाँ वहाँ।

यथा = चि०, ६२, ७०। म०, १।

[प्रत्य०] (सं०) जिस तरह, जस।

यथातथ्य = का० कु०, ८१।

[प्रत्य०] (सं०) ज्यों का त्यों, जसा हो ठीक उन्हीं के अनुसार यथा यथा।

यथार्थ = ऋ०, ४१।

[अव्य०] (सं०) ठीक। उचित। सत्य। जसा है वसा।

यथाविहित = प्रे०, ६।

[वि०] (सं०) नियमों के अनुसार जिसका विधान किया गया हो। नियमों के अनुसार जो उचित या ठीक हो।

यद्यपि = चि०, १०, १६, ४१, १७१। प्रे०, ६।

[अव्य०] (प्र० भा०) देखिए 'यद्यपि'।

यद्यपि = चि० ७०, ६१। म०, ८।

[प्रत्य०] (सं०) यदि ऐसा है। भ्रमरचे। गो कि।

यदि = का०, ४५। ऋ०, ११, १५, १८, २२,

[प्रत्य०] (म०) २७, २६। का० कु०, ७५। का०, ८१, १२४, १२६, १४७, १६४, १६३, २२६। चि०, ६६। प्रे०, ६। म०, ४, १८।

भ्रमर, जो।

यम = सं०, ४१।

[सं० पुं०] (सं०) इन्द्रियो की वश में रखना। नियंत्रण। यमराज, मृत्यु के बाद कर्मनुसार दंड की व्यवस्था करनेवाला हिंदुओं का एक देवता—धर्मराज।

[यम—समस्त प्राणियों का नियमन करनेवाला मृत्युलोक का अधिपति एन मृतको पर शासन करनेवाला, विवस्वान् का पुत्र। इसे दक्षिण का शीर मनुष्यों में पहला राजा भी माना गया है।]

यमन = चि०, ६५।

[सं० पुं०] (हि०) यवन। मुगलमान।

यमनराज = चि०, ६३।

[सं० पुं०] (हि०) यमनराज, मुगलमानों का राजा।

यमुना = ऋ०, ७२। प्रे०, २२।

[सं० खी०] (म०) उत्तर भारत की एक प्रसिद्ध नदी। यम की वहन।

यमुनाकूल = का० कु०, १११।

[म० पुं०] (सं०) यमुना नदी का किनारा।

यमुने = का० कु०, १२४।

[सं० खी०] (सं०) दे यमुना।

यवन = का० कु०, १२०, १२१, १२२। चि०,

[सं० पुं०] (सं०) ६५। म० ५, ७, ६, १०, १२।

यूनान देश का निवासी। मुगलमान।

यवन चमूनायक = म०, ६।

[सं० पुं०] (सं०) मुगलमानी सेना का सेनापति।

ययनन के = चि०, ६७।

[सं० पुं०] (प्र० भा०) मुगलमानी के।

ययन वीर = म०, ६, ७।

[सं० पुं०] (सं०) वीर मुगलमान। यवन सेना के सरदारों के लिय संबोधन।

यवनिकी = का०, २८।

[सं० खी०] (सं०) नाटक का परदा।

यवनी गण = म० १२।

[सं० पुं०] (हि०) यवन जाति की स्त्रियों का समूह।

यधनों = ल०, ४३।

[सं० पुं०] (हि०) मुगलमानों।

यश = का० कु०, ६८। का०, १७१, १८४।

[सं० पुं०] (सं०) चि०, ७३, १७६। ल०, १३।

बड़ाई। प्रशंसा। क्याति। कीर्ति।

यस = चि०, ३३।

[सं० पुं०] (प्र० भा०) देखिए 'यस'।

यद् = का०, पृष्ठ ३६ से ७४ तक १४ बार।

[मव०] (हि०) क०, पृष्ठ ६ से ३२ तक १६ बार।

का० कु०, पृष्ठ ३ से ६७ तक ११ बार।

का०, १३ पृष्ठ से २६० तक

१०६ बार। चि०, पृष्ठ ८ से १८४ तक

२८ बार। ऋ०, १६, ३७, ५०, ५७।
स०, पृष्ठ २० से ७६ तक १४ बार।
'इय' का एक रूप।

[यह कसक अरे ओस सह जा—ध्रुवस्वामिनी का
पहला गीत जिसे पुनारिनी मंदाग्निनी
ने गाया है। तू अभिमान की विनम्रता
बनकर मेरे अस्तित्व का बोध करा तू
प्रेम से धूलकर अपनी एकांत बहानी
बढ़ता जा, दुखी यमुषा पर बरणा
बनकर शांतलता फला, जावन का
यह वसक—मेरे प्रांगू सट पे।]

[यह सय तो समुमयो पहिले ही—सबप्रथम
मकरंद विदु के भतगत इदु बला पाँच,
किरण सील सितवर १६१४ मे प्रका-
शित और बिनाघार मे मकरंद विदु के
भतगत पृष्ठ १८८ पर संकलित बिना
घार का प्रतिम पद। नीच, निचाम,
निर्लज्ज बनकर ही संसार मे तुम्हारा
नेही बना। उसपर से भी तुमसे प्रेम
करके भी तुम्हें प्राप्त न कर पाए। प्रिय
तम जगह जगह ढोछाते हो और मन
तुम्हारे लालच मे ढोछता है। ऐसा
करने से तुम्हारा मेरा प्रेम छुटनेवाला
नही है। तुम्हारा श्याम मूर्ति दलकर
औरो को मैं नही छूटता। जो कुछ भा-
हो तुम्हारी मधुर हसी, देड़ी भी सब
कुछ सानद सहैगा तुम्हारे चरणा मे
लेटकर सार ससार क सर पर पर
धर कर रहैगा। मैने सब कुछ पहले
ही समझ लिया है।]

यहाँ = क०, ६, १५, १६, २१, २६। का०,
[क्रि० वि०] (हि०) ५२, ५७, ८१, १५०, १६६, १७२,
१७६, १८३, १८४, १८६, १६०,
१६२, १६५, १६६, २३८, २३९,
२५८, २६४, २६५, २६६, २६७,
२६८, २६९, २७०, २७१, २७२,
२८६, २८७, २८८। वि०, १७६।
म०, ३, १०, ११। स० ७२।
इस स्थान पर। इस जगह पर।

यहि = वि०, १, १५, ३३, ४८, ५४, ५६।
[अभ्य०] (प्र० भा०) यही। इसी।

यहिरे मन = का० कु०, २२। वि०, १८४।
[अभ्य०] (प्र० भा०) हे मन। हे मा यहाँ।

यही = म०, ४। स०, १३।
[क्रि० वि०] (हि०) यहाँ ही। इसी स्थान पर है।

यही = क०, १४, १६, ७६। का० कु०, ७, ७,
५०। का०, २६, ५३, ५६, ८५, १०५,
[अभ्य०] (हि०) १११, १३०, १३६, १६६, १८५,
१६३, १६६, २२२, २१४, २१८,
२१६, २४२, २४३, २६०, २६४,
२७८, २८७। वि०, ४८, १०२, १०३,
१८३। ऋ०, ४४, ५३। म०, १२।
स०, १०, ७६।
'यह ही' का सक्ति रूप। इसी।

यहँ = वि०, २५, ६१।
[क्रि० वि०] (प्र० भा०) इसी स्थान पर।

या = का०, २०, ४०, ८२, १४१, २०५,
[अभ्य०] (का०) २११, २१६। वि०, १४५। ऋ०,
२५। स० ११, ४३।
अपका, या।

याकि = का० ४७।
[अभ्य०] (हि०) अपका कि।

याके = वि०, २४।
[अभ्य०] (प्र० भा०) इसके।

याको = वि०, ४८, ५४, ६६।
[अभ्य०] (प्र० भा०) इसके। इसके।

[याचना—सबप्रथम इदु बला पाँच किरण दा,
करवरा १६१४ मे प्रकाशित तथा
कानन कुसुम मे पृष्ठ ६२ ६३ पर
संकलित है। इस कविता मे ईश्वर से
याचना का गई है। जब प्रलय काल
हो ज्वालाधुला प्रज्वलित हो, सागर
मे प्रलय वाढ आ रही हो सारे तारे
कैल्युत हो, परस्पर लटकर चकना
चूर हो रहे हो और सारी शक्ति
और साहस दम तोड रही हो, ऐसी
स्थिति मे भी तुम्हारे चरण कमला मे

हम तल्लान हैं। जब सारे पर्वतों की चाटियाँ बिजली के आघात से टूट कर विश्व पर प्रहार कर रही हों और आकाश में प्रलयकर बाहुल छाए हो ऐसी भीषण स्थिति में हमारा यह मन तुम्हारी प्रेम धारा में बधन में लवलीन रहे। जब सभी ऋण मन को दुःख की ज्वालामुखी से सभा मुखों की भस्म कर रही हों और बिजली की मौति कुटिल दहन, स्वार्थी जब छत्र प्रपञ्च से भयकर बछ दे रहे हों जब मित्र और प्रेमिया ने बिनारा कम कर पाप पर नमक छिड़कना आरंभ कर दिया हो ता है। दयासागर दुःख या आनन्द जिस स्थिति में हो हमारा मन मधुकर तुम्हारे चरण कमल में विश्वस्त रूप से आनन्द करता रहे। दुःख सुख प्रत्येक अवस्था में तुम हमारे हृदय में विराजत रहो हम किसी भी लोक में रह, है। नाथ ऐसा आलोक दा कि तुम्हारे प्रेमपथ पर ही चलते रह।]

यातना = का० १९७।

[सं० खी०] (सं०) कष्ट, दुःख। पोडा।

यात्रा = का० २१४, २८३, २८७।

[सं० खी०] (सं०) एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना। सफर।

यात्री दल = का० २७७। २८८, २८४।

[सं० पु०] (सं०) यात्रा करनेवालों का दल या झुंड। मुसाफिरी का समूह।

याद = का० ६० ७, १४, ७३। ५०४३। १८ प्र० १६।

[सं० खी०] (का०) स्मरण, स्मृति।

यादव घृद = का० कु० ११२।

[सं० पु०] (मं०) अहार लाभ, गोप समुदाय।

यान = का० १६३।

[सं० पु०] (सं०) जहाज। गाड़ी, सवारी।

यात्रिक = का० ४३।

[वि०] (सं०) यत्रसवधी। यत्रविद्या का जाननेवाला।

याम = का० कु० १६। वि० ४५।

[सं० पु०] (सं०) तीन घंटे का समय, पहर। समय।

यामिनी = का० कु०, २। का० ८६, ६१। वि०

[सं० खी०] (मं०) ४५। ल० ७४।

रात्रि। निशा।

यामें = वि० ४०, ५६, ६१, ६४, १२, १७७।

[सव०] (ब्र० भा०) हममें।

यायावर = का० १६६।

[सं० पु०] (सं०) वह जो एक स्थान पर टिककर न रहता हो, सयासा। ग्राहण। अश्वमेष का पोडा।

यासो = वि० ६६।

[मव०] (ब्र० भा०) हमसे।

याहि = वि० ५६, १८१।

[सव०] (ब्र० भा०) हमको।

याहो = वि० १६ ६०, १८४। प्र० २।

[मव०] (ब्र० भा०) हे 'याहि'।

युक्त = का० ८३।

[वि०] (मं०) जुग या मिला हुआ। साथ लगा हुआ।

युक्ति = का० कु० ८६। का० १६५।

[सं० खी०] (मं०) उपाय तरकीब। चातुरी, कौशल।

युग = का० ७७। का० कु० ४२। का०

[सं० पु०] (सं०) १६२, १६६ १७८ २५३। वि० १३,

३३ ४५ ४६। ल० १५, २७, ३२,

३३, ७४।

दो जोड़ा युग। बारह वर्ष का काल।

काल का एक मान। युग चार हैं—

सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि।

युगनू = वि० १६४।

[सं० पु०] (हिं०) जुगनू पटबीजना, सोनबिरवा।

युगनैत = वि० ७२।

[मं० पु०] (ब्र० भा०) दोनों नेत्र दोनों आँखें।

युग युग = का० १२१, १८१। वि० ३३। प्र०

[अय०] (सं०) २२। ल० १५।

वहुत दिन तक, बहुत समय तक।

[युग युग यह जोड़ी जिये—बधुवाहन मे भर्जुन
घोर चिनापाय की शांति क मा
ग्राहण लोग विवाह मंडप मे इन दोहे
के द्वारा आशीर्वाद दे रहे है कि यह
जादा युग युग तर जिये घोर भवत
राज्य कर। दोना का प्रेमसता फूल
फले घोर सुखी रह चिनापाय भ पृष्ठ
उत्तालीत पर संश्लित।]

युगल = का० कु० ५, ६, ११, ४३, ११६,
[सं० पु०] (सं०) १२७। का० ८१, १४४, २१०, २७३,
२६०, २७१, २८२, २८६। चि० १३,
२२, २४, ३१, ५६, ७०, १७७।
म० २२, ५८। प्रे० ८। म० ६।
युगम। जोडा। जुडुवा।

युगल = चि० ७१।

[सं० पु०] (हि०) देखिए 'युगल'।

युगो = का० ५६।

[सं० पु०] (हि०) युग या बहुवचन, बहुत दिनों।

युत = का० १२७।

[वि०] (हि०) मिला हुआ। संयुक्त।

युद्ध = का० कु० ११५ ११६। का० १०६,

[सं० पु०] (सं०) १६१, १६६। चि० ४५, ६४, १६१।

म० ५ १० १२। ए० ५२।

लड़ाई। सग्राम। रण।

युद्धभूमि = चि० ६३।

[सं० पु०] (सं०) रणक्षेत्र, लड़ाई का मदान।

युधिष्ठिर = का० कु० ११४।

[सं० पु०] (सं०) भर्जुन क बड़े भाई। धर्मराज।

[युधिष्ठिर—पांडु राजा का पत्नी कुंती के ज्येष्ठ
पुत्र, पत्नी धर्मनिष्ठ तथा महात्मा
के रूप में महाभारत में इनकी चर्चा
है। ये समस्त पांडवों का प्रेरणा शक्ति
के प्रतिष्ठता थे। ये पांडवों में सबसे
बड़े थे।]

युवक = का० कु० ६१। प्र० २४। म० ५।

[म० पु०] (म०) ल० ७२।

सोलह स पैंतास वर्ष तक का अवस्था
का पुरुष। युवा, जवान।

युवकों = का० २७८।

[म० पु०] (हि०) युवक वा युवतन।

युवतिया = प्र० ७४।

[म० स्त्री०] (सं०) युवती का बहुवचन। जवान स्त्रियाँ।

युवा = प्रि० ११।

[सं० पु०] (म०) जवान। युवक।

यूथपति = चि० ६५।

[सं० पु०] (म०) सनापति। दन वा गरदार मुखिया।

यूथि० = मा० ४४।

[सं० स्त्री०] (सं०) जूही का पीया और उसका वृत्त।

ये = म० ५४। का० कु० १, २४। का०

[सव०] (हि०) ५१, ५४, ८३, १२६, १३२, १७२,

१७८, १८१, १८४ २१५, २३०,

२३४, २४०, २४८। चि० १४५,

१७७ १७६। म० ११, २५।

'यह' का बहुवचन।

येहि = चि० ४६, ७४।

[सव०] (प्र० भा०) 'ये हो', यह सब हा।

येही = चि० ६४।

[सव०] (हि०) हे 'येहि'।

यों = मा० ४६। का० १३, ३६, ६३, १६०।

[प्र० य] (हि०) इसी प्रकार। ऐसी।

योंही = क० ३०। का० ३३। प्रे० ७।

[प्र० य०] (हि०) बिना किसी कार्य या कारण के, ऐसे
हो। इसी प्रकार हा।

योग = का०, १३१। चि० २६ १०५।

[सं० पु०] (सं०) मेल, संयोग। प्रयोग। ध्यान। शुभ
फल। उपयुक्तता। शुभ मुहूर्त। चित्त
को एकाग्र करने का उपाय या शास्त्र।

योगक्षेम = का० १६६।

[सं० पु०] (म०) लाभ और उसकी रक्षा, गुजारा। वह
संपत्ति जिसका बटवारा न हो। कुशल
मंगल।

योगमान = का० कु० २६।

[सं० पु०] (सं०) योगी, योग करनेवाला।

योग्य = क० १२, २२। का० कु० ११५।

[वि०] (सं०) का० ७७। म० ५३। प्रे० ४।

उपयुक्त ठीक। समर्थ। श्रेष्ठ। अनु
रूप, लायक।

योपित = चि० १३३।
[स० खी०] (स०) छा, औरत।

यौवन = आ० ६६, ६८। का० कु० ८६।
[स० पु०] (म०) का० ४, ४०, ४७, ५४, ७२, ७४, ६६, १२३, १५६, १६४, २२२, २३१, २७७। वि० ७०। अ० २०, २७, ३४। ल०, ४६, ५३, ५४, ५६।
जवानो युवावस्था।

[यौवन उपा प्रथम प्रगट जब हिये भई है—
चित्रागदा अपने सखी से अपने भावो-
च्छवास प्रवट कर रही है कि यौवन
की प्रथम उपा हृदय में प्रकट हुई है।
हृदयाकाश नवराग रजित है। हाथ।
प्रणय की स्मृति का सूर्य नित्य हृदय
के आकाश में उदय की ओर पूवराग
का विस्तार कर उसे अपने श्लोकिक
प्रेमराग से रजित करे, उसकी तीक्ष्ण
किरणों से विरहार्ति की ज्वाला बर स
ओर आँसु की भारा भी प्रिय के
विमोघ में चले जिससे शांत मिले।

बराबर इस प्रेम का वही राग रहे जो
पहले पहल प्रकटा है। यह मधुर कण्ठ
सुख हृदय को मुरमित किए हुए है।
यद्यपि नव वसत की मध्या में विमोघ
के कारण बहुत कष्ट है तो भी वह कष्ट
मुखकर है।]

[यौवन तेरी चंचल छाया—ध्रुवस्वामिनी का
सीमरा गीत। कोमा का एकांत सगान है।
२ यौवन तेरी चंचल छाया में तुम्हारे रस
का एक घूट पा छू क्याकि पता नहीं
कब भरे हृदय के प्लात में तू मद बम
कर समा गया और जावन का बानुरी
क छिने में मदमस्त स्वरसहुरी का
समान समा गया। अरे, पल भर
रुकनवल पथिक। इतना तो बता दे
कि तू कहाँ स आया है।]

यौवन विलासो = ल० ५३।
[वि०] (हि०) जवानों की वासना में मतवाला।
यौवन स्मित = का० ६। वि० ३६।
[म० खी०] (स०) जवानों की मुस्कुटाहट।

र

रक = का० कु० ४७। का० १६६।
[वि०] (स०) गरीब, दीन। हीनता से युक्त।

रक नरेश = का० कु० ४।
[स० पु०] (म०) दरिद्र और राजा।

रग = आ०, ३७। का०, ८५। १६४, १७५,
[स० पु०] (स०) १७६, २३५, २४६। वि०, ४२, १४८,
१६३। ल०, ३६, ७५। अ०, ७०।
म०, ५, २४, ३३।
रागा। नृत्य। गीत। सौंदर्य। आनंद।
भाव। उसका उमंग। पंगु या उसके
आकार से वह मित्र गुण जिसका पान
दृष्टि से होता है। रगने का पदार्थ।

रग देता = का० २०७।
[अ०] (हि०) अपने विचारों के अनुसर बना देता।

रग भरी = चि० १६६।
[वि०] (हि०) रगान, रगा हुई।

रगमच = का० २६४।
[स० पु०] (स०) नाट्यशाला का वह स्थान जहाँ अभि-
नेता अभिनय करते हैं।

रगमयी = ल० २२।
[वि०] (हि०) रगी हुई। रगीन, आनंदमयी।

रगमहल = ल० ७१।
[स० पु०] (हि०) आनंद प्रमाद करने का स्थान।

रगरलियाँ = ल० ५६।
[म० खी०] (हि०) दे०—'रगरला'।

रगरली = का० २२२।
[म० खी०] (हि०) आनंद प्रमाद, आनंद ब्रीडा।

रंगराते = चि० १७२ ।
[वि०] (हि०) आनंद या प्रसन्नता में विमोह या
अनुरक्त हुए ।

रंगरेली = चि० ५६ ।
[सं० खी०] (हि०) दे० 'रंगरली' ।

रंग विरगी = का० ३० ।
[वि०] (हि०) विभिन्न रंगों वाली ।

रंगशाला = ल० ७६ ।
[सं० खी०] (सं०) वह भवन जहाँ अभिनय होता है ।

रंगस्थल = भा० ७६ । का० ७५ ।
[सं० पुं०] (सं०) वह स्थान जहाँ अभिनेता अभिनय
करते हैं, रंगमंच, रंगभूमि ।

रंग सां = चि० ७० ।
[सं० पुं०] (हि०) आनंद से प्रसन्नतापूर्वक ।

रंगा = का० १०० १०२ । प्र० १० ।
[वि०] (हि०) अनुरक्त ।

रंगिनि = भा० ७५ ।
[वि०] (सं०) रंगी हुई आनंदमयी ।

रंगी = ल० २८ ।
[वि०] (सं०) रस रंगवाली आनंदी मीठी ।

रंगीन = का० ६०, २६२ ।
[वि०] (हि०) रंगा हुआ ।

रंगे = चि० १७१, १८० ।
[क्रि०] (हि०) रंग दिए, रंग गए ।

रंगोगा = ल० ७१ ।
[क्रि०] (हि०) रंग देगा । अपने अनुरूप बना लेगा ।

रंग्यो = चि० ३४, ३६ ।
[वि०] (ब्र० भा०) रंगा हुआ । विमोह ।

रंगों = का० ७७ ।
[सं० पुं०] (हि०) रंग का बहुवचन, दे० 'रंग' ।

रजक = ल० २५ ।
[वि०] (५) रंगनेवाला । प्रसन्न करनेवाला ।

रजन = चि० १७० ।
[सं० सं०] (सं०) रंगने की क्रिया । वह पदार्थ जिससे रंग
बनते हैं । स्वर्ण । जायफल ।

रञ्जित = भा० ६५ । का० ३७, ८१, ८८, १५७ ।

चि० १५०, १७५, १८० २०, २२, ३५,
७७, ५७ ७७ । प्र० १ ।

[वि०] (सं०) रंगा हुआ । अनुरक्त ।

रझ = का०, ६६, ६८, २६३ । ल०, ४६ ।
[सं० पुं०] (सं०) छत, मोन ।

रञ्जक = का० ७ । ल० ७६ ।
[वि०] (सं०) रङ्गा करनेवाला ।

रञ्जु = चि० १०६ ।
[क्रि०] (ब्र० भा०) रंगा करो ।

रङ्गा = का० २२ । का० कु० ७ । का० १४६
[सं० खी०] (सं०) १८५ २७२ । चि० १८४ । ल० ५३ ।

बचान, बचाने की क्रिया । धारण, पनाह ।
रङ्गा करना = का० कु० १२१ । म० ३ ।

[क्रि०] (हि०) बचाना ।

रञ्जित = का० १८२ ।

[वि०] (सं०) बचाया हुआ, रङ्गा किया हुआ ।

रक्ष = भा० ५२ । का० कु० ६० । का० ४,
[सं० पुं०] (सं०) ७७, १३६, १३६ १६५ २६६ २०१ ।
प्र० १८ । म० ६ । ल० ७७, ७८ ।
खून लहू क्षपिर । लाल ।

रक्ष दुःशासन = का० कु० ११४ ।

[सं० पुं०] (सं०) दुःशासन का खून ।

रक्ष नदी = का० २०२ ।

[सं० खी०] (सं०) खून की नदी, क्षोणित की सरिता ।

रक्षमयी = ल० ७८ ।

[वि०] (सं०) रक्षित, खून से सनी हुई ।

रक्षवर्षा = ल० ७७ ।

[सं० खी०] (सं०) खून की वर्षा ।

रक्षावण = का० १४४ ।

[वि०] (सं०) खून के समान लाल ।

रक्षिम = का० २०० । ल० ४६ ।

[वि०] (सं०) लाल रक्तवणवाला ।

रक्षि ममृत = का० १७८ ।

[वि०] (सं०) लालमृत, मृद मृत का मूलक ।

रक्षोमद = का० २०१ ।

[वि०] (सं०) रक्तपात करने के कारण उमत्त ।

रक्षित = म० ११ ।

[वि०] (सं०) जिसको रक्षा की गई हो । सुरक्षा
प्राप्त ।

रचना = आ० २८, ३५, ५५। का० कु० १०,
[क्रि०] (हि०) ६२। का० ३२, ३३, ८६, १०६,
१६१, १८३, २३७, २८८। चि० २६,
६१, १४१, १४७, १७६। प्रे० २।
बनाना, रच्ना करना।

रखवाली = का० कु० ६०। का० १०३ २११।
[स० की०] (हि०) ल०, ५५।
देखभाल, रच्ना करने की क्रिया या
भाव, हिराजत।

रखट = चि० १५८।

[क्रि०] (ब्र० भा०) रखो।

रघु = चि० ५२।

[स० पु०] (सं०) एक मुगल राजा का नाम।

रघुकुल राई = चि० ५२।

[सं०] (ब्र० भा०) रघुकुल के राजा।

रघुरा = चि० ७६।

[सं० पु०] (सं०) रघु के नाम से पुरारा जानेवाला वंश।

रघुवश जहाज = चि० ४८।

[सं० पु०] (सं०) जो रघुवश के लिये जहाज हो,
रामचन्द्रजी।

रघुवशहि = चि० ७६।

[सं० पु०] (ब्र० भा०) रघुवश को।

रघुवशी = चि० ७६।

[वि०] (सं०) रघुवश में उत्पन्न होनेवाला।

रचकर = का० १६६, १६०।

[पूर्व० क्रि०] (हि०) बनाकर।

रचती = का० १६, ६३, १६४, २०७, २६४।

[क्रि०] (हि०) बनाती निर्माण करती।

रचदू = न० ४०।

[क्रि०] (हि०) बना []।

रचना = आ० ५७। का० ७४, १५३, १७०।

[क्रि०] (हि०) बनाना, उत्पन्न करना।

[सं० की०] [सं०] निर्माण।

रचनामूलक = का० १३२।

[वि०] (सं०) जिससे रचना होता हो, जो रचना का
मूल में हो।

रचहु = चि० १४१।

[क्रि०] (ब्र० भा०) बनाओ, निर्माण करो।

रचित = का० ५८। अ० ३७।

[वि०] (सं०) बनाया हुआ, निर्मित।

रचे = का० ३२, १२६, १६५।

[क्रि०] (ब्र० भा०) बनाये।

रच्छक = चि० १५७।

[वि०] (ब्र० भा०) रच्ना करनेवाला।

रच्यो = चि० २४, ४८, ६७।

[क्रि०] (ब्र० भा०) निर्माण किया। बनाया।

रज = आ० ६२। का० १८१, १६१,

[सं० पु०] (सं०) १६२। चि० १८८।

पराग। पुष्पधूलि मकर। त्रिषो की
जननेंद्रिय से निकलनेवाला रक्तमय ज्ञाव,
ऋतु। आकाश। पाप। जल। प्राचीन
समय का एक प्रकार का नाद्य।
बादल। धूलि।

रजकण = म० ३।

[सं० पु०] (सं०) मकरदक्ष, धूलिदण।

रजकुसुम = स० १०।

[सं० पु०] (सं०) मकरद। पराग, पुष्पधूलि।

रजत = का० १०६, ११६, २६६, २६४।

[म० की०] (सं०) चि० २३। अ० ५५।

चांदी। हाथी। हार। लहू। सोना।

रजतकुसुम = का० ३६।

[सं० पु०] (म०) रजताम पुष्प। चपा।

रजतगीर = का० २५२।

[वि०] (सं०) चांदी जसा श्वेत।

रजधानी = चि० ५७।

[सं० की०] (ब्र० भा०) किसी देश अथवा राज्य का वह
प्रधान नगर जहां में वह धामित होता
है तथा जहां सामन्तों एवं अधिकारी
रहते हैं।

रजधूसर = का० १७६।

[वि०] (सं०) धूलिधूसरित।

रजनी = आ० १७, २७ ३१, ५७, ७६, ७६।

[सं० की०] (सं०) न० २५। का० कु० ३५, ६६।

का० ३४, ३८ ३६ ४७ ५३, ६३,
७५, १३६, १७८, १८६, २१३, २२६,
२२६, २३४, २४५। चि० ४७,
१७१। अ०, ११, २१, ८५।

सं २६, ३२, ३४, ३८, ४४, ४८,
६८।
रात्रि, निशा रात। ह्रीं। जगुवा
सता। पहाडा। तान। दाहूनी।
सः। एष तान का तान।

रजनीगंधा = बा० कु० ३५। वि० १६४।
[सं० स्त्री०] (सं०) रात क समय पूननवाला एक मुगंधित
पुष्प।

[रजनीगंधा]—सद्यप्रयोग 'इदु बला ३, विरला १,
जनवरा १६१२ म प्रदागित क यता जो
बानन कुमुम म वृष्ट ३३ से ३५ सय
सबलित है। यह ४० पक्षपा की
कविता है जिसमे भाषारमय ढग स
प्रकृतिवर्णन है। रात्रि धारम ह्रीं
के साथ रजनीगंधा क रितने का वणन
और उस की महिमा तथा उन क
सौरभ का वास्थान परवरामत पदति
पर विव्या गया है। रजनीगंधा से सारा
वातावरण कामल और मधुपूष्ण हो
गया है और उसके आने सारागण
की ज्योति भी धीमी पड़ गई है। यह
रातभर सिलवर मधुकर का बाट
जोह रही है और अपलक उस की
प्रतीक्षा कर रही है। इसने छोटे से
मन म बहुत अधिक प्रेम भरा हुआ है।
लगता है कि यह रात्रि का सखी के रूप
मे है। यह अपने सौरभ और गुणधर्म
के कारण रजनीगंधा नाम की सद्यप्रुत
प्रतिकारिणा है।]

रजनीतम = बा० १६७। ल० २४।

[सं० पु०] (सं०) रात्रि का अधवार।

रजनीमर = बा० कु० ३५।

[सं० पु०] (हि०) रातभर।

रज से रजित = बा० २६६।

[वि०] (सं०) पराग से अभ्रमिक्त।

रजरस = भ० २३।

[सं० पु०] (सं०) परागरूपी रस।

रजसिप्त = बा० कु० १००।

[वि०] (सं०) रज ग गिता हुआ। मृतमय।

रज्जु = बा० कु० ३३। बा० ६८, १६६,
२७७।

[म० स्त्री०] (सं०) रग्गा।

रज्जु सी = भ० ४५।

[वि०] (वि०) रग्गा क गगा।

रटन = वि० १६०। ल० १७।

[सं० स्त्री०] (वि०) रटा की रिया का भास।

रटना = भ० १४। म० ६।

[वि०] (हि०) यात्र करना बार बार दुहराना।

रखनीत सिद्ध = ल० ५४।

[सं० पु०] (हि०) रंजय क एक प्रसिद्ध रिजना तथा
राजा का नाम।

रखनाद = बा० २००।

[सं० पु०] (सं०) युद्ध का घोरणा। युद्ध म होनेवाली
ज्वलि।

रखनीति = बा० कु० ११२।

[सं० स्त्री०] (सं०) युद्ध नीति।

रखमीष्म = वि० ६७।

[सं० पु०] (सं०) विकराल युद्ध।

रखमूमि = बा० कु० ११७, ११७। म० ६।

[सं० स्त्री०] (सं०) युद्धस्थल।

रखमत = वि० ६५।

[वि०] (सं०) युद्ध करने मे मतवाला।

रखरगिनी = ल० ५१।

[सं० स्त्री०] (सं०) वह जा रण रग म रगी हुई हो।

रखवपा = का० २००।

[सं० स्त्री०] (सं०) युद्धरूपा वपा।

रखविमुख = बा० कु० ११५, ११६।

[वि०] (सं०) रण से भागनेवाले।

रखसिद्धा = म० ६।

[सं० स्त्री०] (सं०) युद्ध की शिद्धा।

रखगण = ल० ६६।

[सं० पु०] (सं०) युद्ध क्षेत्र, युद्ध का प्रांगण।

रखित = बा० १११।

[वि०] (सं०) भट्ट।

रख = का० ४२। वि० ३६, १७३।

[वि०] (सं०) लया हुआ, भासक।

रत्न = का० २४७। वि० २३, ६६, ७५, १४७।

[स० पु०] (हि०) बहुमूल्य खनिज प्रस्तर, नवाहिरात, रत्न। माणिक, लाल।

रत्नन = वि० १६३।

[स० पु०] (ब्र० भा०) रत्न का बहुवचन, रत्नो, जवा हिरातों।

रत्ननेस = वि० १४६।

[स० पु०] (हि०) रत्ना का स्वामी, रत्नेश। समुद्र, सागर।

रत्ति = का० ७२, ७४, १०३। वि० ६, १८।

[स० लो०] (स०) कामदेव की स्त्री जो प्रजापति ब्रह्म की ब्याही थी। सादय। शोभा, तेज। काति। सभोग।

रत्ती = वि० १६४।

[स० लो०] (ब्र० भा०) कामदेव की स्त्री का नाम।

रत्न = का० ७०, ७४, ८६। का० १२। वि०

[स० पु०] (स०) ४६, ५४। अ० ३४, ७६। ल० ७६। दे० 'रत्न'।

[रत्न—भरना मे सक्लित। एक अनजान रत्न जो धनगन् हाने हुए भी स्वामाधिक है, मुझे मिल गया है। यद्यपि इस का मूल्य अज्ञात है तो भी इसके सहज सौन्दर्य के कारण मन उस चूम लेता है और फिर रह रह कर उस अमूल्य रत्न का मूल्य भी आँकन लगता है। कवि अत मे कहता है कि नोभी मन, इस पहनकर देख ले।]

रत्नहार से = वि० ४७।

[वि०] (स०) रत्ना का माला के समान।

रत्नाकर = अ० ३३, ७२। का० कु० ६५। वि०

[स० पु०] (स०) २३, १४६। अ० ३२, ७६।

समुद्र।

रत्नावली = का० कु० ४२।

[स० लो०] (स०) रत्नों की पक्ति। रचिता विशेष। एक आभूषण, अलंकार विशेष। रामचरित मानस व रचयिता गोस्वामी तुलसीदास की पत्नी का नाम।

रथ = का० कु० १४४। का० ११८। वि० ४१। अ० ६३।

[स० पु०] (स०) स्यदन। शतरज का एक मोहरा जिस ऊट बहने हैं। चार पहियो की गाड़ी।

रथचक्र = का० कु० ७२। म० ६।

[स० पु०] (स०) स्यदन का पहिया।

रथनाभि = का० २६४।

[स० लो०] (स०) घुरी।

रत्न = का० २०१। अ० ३१, ७७।

म० ६, २१। ल० ४३, ६६। वि०

६५, १०३।

[स० पु०] (ब्र० भा०) युद्ध, रण, सन्ग्राम।

रत्नहेतु = वि० ५३।

[वि०] (हि०) लडाई के लिये।

रमण = का० १५३। प्र० २४।

[स० पु०] (स०) विलास, लीला। मधुन। गमन। पति। कामदेव। अहकोप। गया। सूर्य का सारथी।

रमणि = वि० ४८।

[स० लो०] (ब्र० भा०) जिससे रमण किया जाय। युवता। स्त्री।

रमणी = का० १७१, २४८। वि० ५४, ६१। म० १३।

[स० लो०] (स०) दे० 'रमणि'।

रमणीय = का० २६, ३०, ३५, १०१, १७१।

[वि०] (स०) अ० ३, ६७।

मुदर, मनोहर। रमण करने योग्य।

रमणीहृदय = का० कु० ७०, ७१।

[स० पु०] (स०) रमणा का हृदय।

[रमणी हृदय—'दंडु' कला ५ पृष्ठ १, किरण १, जनवरी १९१४ म सप्तम्यय प्रकाशित और काननकुसुम म पृष्ठ ७०, ७१ पर सक्लित १४ पक्तियों की कविता। देखिए प्रमाद का चतुष्पदी। रमणी का हृदय अथाह है। उस का रहस्य जानना सहज नहीं है। वह स्मृति की तरह अपार है। उस ने भावर क्या है और

यया यया यह रहा है यह बिनी की
पात उड़ी हो पाता । जस बप से उरी
छोरी के भीतर यया है कोई नहीं
जानता लेकिन जब उगम से यया यमी
ज्वालाभुग्ना पूर पड़ता है तो सबको
भस्म कर देता है यया ही नारी का
हृदय है । यह स्नेह से भरा हुआ स्वच्छ
है धीरे धीरे भीतर सिधु का ज्वाला
मुली छिपा रहता है । रहस्यमय रमणी
का हृदय यया है ।

रमति = वि० १३२ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) रमना है ।

रमती = वि० २८ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) बिलास करती है, घूमती फिरती
रहती है ।

रमा = का० १६४ ।

[स० स्त्री०] (सं०) लक्ष्मी, कमला, चवता ।

[रमा—देखिए लक्ष्मी,]

रमा हुआ = का० कु० ८६ ।

[वि०] (हि०) त मय ।

रमि = वि० १८४ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) रमना कर ।

रम्य = का० ८ १५, का० कु० १०५ । का०

[वि०] (सं०) ६३, १८२ २२४, २७७ । वि० ४५,
१५७ ।

रमणीय, सुंदर, मनोरम ।

रम्यतटी = प्रे० ३ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) सुंदर किनारा, सुंदर तट ।

रम्यतीर = वि० १४७ ।

[सं० पुं०] (हि०) सुंदर तट, मनोहर किनारा ।

रम्य फलक = का० १४८ ।

[सं० पुं०] (सं०) सुंदर तस्वी । सुंदर हथेली । सुंदर
फल ।

रमे = वि० ४६ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) रमा का 'सवोपन' ।

रव = का० १३ । सं० ५६ ।

[सं० पुं०] (सं०) चरति । गुजार का शब्द ।

रवाँ = वि० १०१ ।

[सं० पुं०] (प्र० भा०) रमना करनेवाले प्राणी ।

रवि = का० ४१ । का० १७४, २४७ । प्र०

[सं० पुं०] (सं०) १८ । सं० १३, ४४ ।

गुण, भातु, निरकर । मंगार ।

रविकर = का० ३० । प्र० ७६ । प्रे० १८ ।

[सं० पुं०] (सं०) गुण की चिरणों ।

रविकर सदृश = का० कु० १०० ।

[वि०] (सं०) गुण का चिरण के समान ।

रविकरोज्ज्वल दाम = का० कु० ६६ ।

[सं०] (सं०) गुण की स्वयं चिरणों की उज्ज्वल
माला ।

रवि किरन = वि० २६ ।

[सं० स्त्री०] (हि०) सूर्य का किरणें ।

रविचंद्र = सं० १३ ।

[सं० पुं०] (हि०) सूर्य चंद्र ।

रविशिम = का० ११ । का० कु० १०४ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) सूर्य चिरण ।

रवि शशि तारा = का० १६० १६५ ।

[सं० पुं०] (सं०) सूर्य चंद्रमा धीरे सितारा ।

रश्मि = का० कु० ११४ । का० २६३ । सं०
४४ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) सूर्य चिरण । चिरण ।

रश्मियों = का० २६४ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) रश्मि का बहुवचन ।

रस = का० २६, ३७, ६६, ७८, १२८,
१२९, १३५ १५१ २६२ २६३,
२६४, २७० २६१, २६३ । वि० ६,
१५ ३६ ६५ ६५, १५७, १७१,
१७४ । प्र० ९३ । का० कु०, ८३ ।

[सं० पुं०] (सं०) रसना या जीभ । घानद । साहित्य के
अनुसार रति हास, शोक, क्रोध, उत्साह
भाव । आश्चर्य । निर्वेद ।

रस भरना = का० कु० ५१ । का० ६६, १८४ ।

[सं० पुं०] (हि०) वि० ५६, १६७ १८४, २८६, १६० ।
रस से पूर्ण करना ।

- रसना = का० कु० ११ । का० १११, ३८५ ।
 [स० स्त्री०] (स०) जीम । चद्रहार । स्वाद लेना । करघनी ।
 रस वृंद = श्रां० १६ ।
 [स० स्त्री०] (हि०) रम का वृंद ।
 रसभार = चि० ३८ ।
 [वि०] (हि०) रस परिपूर्ण वा अत्यधिक आनन्दित ।
 रसमय = का० २८८ ।
 [वि०] (स०) रम से भरा हुआ ।
 रसमेघ = चि० १४ ।
 [म० पुं०] (स०) रस के उादल ।
 रसरग = का० ७७ ।
 [म० पुं०] (म०) रसजनित आनन्द, रसमय आनन्द ।
 रस लेना = ल० ११ ।
 [क्रि०] (हि०) आनन्द लेना ।
 रस लोभी = क० ६४ ।
 [वि०] (हि०) रम का लोभी, रसगोलुप (भ्रमर) ।
 रससागर = का० कु० ३३ ।
 [स० पुं०] (म०) रसलुपी मिथु या प्रतिशय आनन्द ।
 रससौ = चि० ६५ ।
 [म० पुं०] (प्र० भा०) रम से ।
 रसाल = का० कु० ४८ । चि० ४५, ५७, ६८, १४८, १७५ । क० ६६ ।
 [वि०] (स०) मधुर रमनाला ।
 [स० पुं०] (स०) आम का फल ।

[रसाल—सर्वप्रथम 'रसु' विख्या १२, आपाद १६८७ में प्रकाशित, चित्राचार म पृष्ठ १५१ पर तक लत सजभागा की कविता । मंद मद वायु रसाल के साथ खेल रही है जा अत्यंत मुख का कारण है । तत्परराज, तुम उदात्तरहित हो । तुम्हारे ही कारण बमत बलहाला हाना है । आम्र का मज्जा यो का मधुर गव के पारण वन सौमपूर्ण है और और जो मधु क लोभी है गुजार कर रह है । तुम नया सृष्टा करते हो और तुम म अच्छा और वीन सजनहार हैं ? ज्ञानवाले भीम म तुम शीतल छाया द्य है तथा पवित्रा का मन सुभात

हो । तुम्हारा हरा भरा रूप देखकर यात्रिया म सुख की वर्षा होती है । नए वादन देखकर तुम पुलकित होते और कोपन को फल का रूप देकर लोगो में वितरण करते हो । तुम अपार यश की प्राप्ति करते हो और तुम्हारे यश का गान डाल डाल पर बठकर विहंगम करत हैं ।]

- रसालन = चि० १८० ।
 [स० पुं०] (प्र० भा०) आमा ।
 रसाल पुत्र = प्र० १४ ।
 [वि०] (म०) माधुर्यातिरेक ।
 [स० पुं०] (म०) आम्र वृक्षा का समूह ।
 रसाल मजरी = चि० १४७ ।
 [स० स्त्री०] (स०) आम का बौर ।

[रसालमजरी—सर्वप्रथम इंदु बला १, किरण ८, फाल्गुन ६६ चि० में प्रकाशित और चित्राचार में पृष्ठ १४६ ५० पर सव सित । यह रोला छत्रा म लिखी गई रचना है और इसकी भाषा बड़ी ही जीवत है । यह कविता कवि को उन आरम्भिक कविताओं म है जो उसकी भावा शक्ति का परिचय देता है । बमत का वृत्ता म रसालमजरी न नया सुंदर रूप धारण कर लिया है । इसमें अभी थोड़ा ही मधुर मकरद मीना है और अवतक मधुकर न हमें स्पष्ट नहीं किया है । बावरी के रम्य तट से पवित्र मलयानिल धीरे धीरे आया । इस कुन कामिनी के अक्षरे को एकलक मल उदायो यथोक्ति यह मजरी अभा अनात घोवना है । यहा धीरे धीरे आयो । रे कोजिने डाल से हट कर बठ नही तो तगा पवम स्वर सुन मंतरा हिल जाता है । तुम्हारी आवा का अनुगाय यह कामन डालो सह नही सकया । बोलना हा हो तो स्वल्प मधुर स्वर पास बठार दोल ले । तब तक इगन साथ

द्विष्टाढा न कर जब तब कि मत्तयानित
के स्पर्श से यह मजरा नव नी न बन
जाय । हमसे बटि न तो सौजन्यपन
है वह सभी प्रकार से शृण्व के प्रेम का
अधिकारी है । नित्य प्रसन्न मधुकर यही
हमके पूरों का मधुपान करता है और
यह मंजरी उधे नित्य तब न लगता है ।
तुमसे विनती करता हूँ कृपा करने गुन
लो । भलो सितायन है, हृग अपन
हृदय में स्थान दो । चबसता राजा ।
यह पवित्र मंजरी है इसपर सौभाग्य कर
पाव रत्ना सावि यह वही भगवान
करसित न हो जाय ।]

रसाला = चि० ६० ।

[सं पु०] (ब्र० भा०) आम ।

[वि०] मधुमय, रसभरा ।

रसीली = भा० १३ । फ० ५७ ।

[वि०] (हि०) मोठी, मधुमय, सरस ।

रसीले = का० कु० ११ ७६, १११ । का०
१६३ । चि० ३ ।

[वि०] (हि०) मोठे सरस ।

रसोउज्जल = चि० ७० ।

[वि०] (सं०) आनंद की गरिमा से उज्ज्वल ।

रस्सी = का० १११ ।

[सं० जी०] (हि०) डोरी रज्जु ।

रहना = भा० ३ ११, २० २५ २६ ४१
४१ ७७, ४६, ६६ ७२ । का० ८, ६
१४ १७ १६, २२ २४ २६, २७
२८, ३० । का० कु० १०, १२ १३,
१५, २१ २२ २८, २६, ३० ३४
३५, ३६ ३७ ८१ । का० ८, १०
१४ १६ २० २४ २६, ३३, ३५
४५ ५७ ७१ ७२ ७३ ७४, ८१,
८२ ८८, ९२ ९६ १०३ १०६,
१११, १६५ १७६, १८० १८२
१८३, १८५, १८६, १९०, १९१
१९२, १९४, १९५, १९६, १९७
१८८, १९६, २००, २०१, २०२,

२०६, २०७ २०८, २०९, २१४,
२१५ २१६ २१६, २२०, २२७,
२२८, २३०, २३३, २३४, २३६,
२३८ २३९, २४७ २४३, २४८,
२४८, २४९ २६३ २६६, २६५,
२६७, २६८, २६८ २७०, २७१,
२७३ २७७, २७८ २८१, २८२,
२८४, २८६, २८७ २८८ । नि० ८,
९, १८ ३४ ४० ४६ ७२, ६४,
१५३ १५६ १६५, १७७ १७८
१८० १८७ १८८ । म० ११ । सं०
१० ३६ ४२ ४३ ४६ ७६ ।

[त्रि० घ] (हि०) स्थित होना, ठहरना । प्रस्थान न
करना । समागम करना ।

रहस = चि० ४६ ।

[सं० पु०] (सं०) समुद्र । स्वयं ।

[सं० पु०] (हि०) गुप्त भूँ छिपी बात । मर्म या भेद का
बात गुप्त तत्त्व । मजाक हसी ।

रहस्य = का० कु० १२५ । का० १६ ३५, ३७,
४५ ५३, ५७ ६६, ६७ ८१ ८६
१०० ११७ १६५ १६६, १७६
२५१ २५७ २६५ । प्र० ५ २३ ।

[सं० पु०] (सं०) मर्म या भेद ।

रहित = का०, २४ । सं० ५६ ।

[वि०] (सं०) हान बिना बगर ।

राहिये = चि० ७४ ।

[त्रि०] (हि०) रहना क्रिया का एक रूप ।

राहियो = चि० ४८ ६२, ६४, १४७ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) रहो ।

रहि सके = चि० २६ ।

[त्रि०] (ब्र० भा०) रह सके या रह सकी ।

रहिहो = चि० १६० ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) रहूँगा ।

रही = का० कु० १ २ । का० अनेको बार ।

[त्रि०] (हि०) 'रहना' का एक रूप ।

रहीम खों = म० ११ २० ।

[म० पु०] (फा०) थकवर के नवरत्ना में से एक का
नाम । दे० 'अदुरहीम खानखाना' ।

रहै = बि० २, १४ २१ ४३, ७०, १०१,
१०८, २३६ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) रहै ।

रहो = क० १४ । बि० ८६, २६७, १७२ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) ठहरा, रुका ।

रह्यो = बि० ४१ १२, १६६ १६७ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) रहो ।

रह्यो = बि० १७०, १८४ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) रहा था ।

राई सा = भा० २० ।

[वि०] (हि०) छाटा मा, न हा सा ।

राक्षस = का० कु० १०१ ।

[स० पु०] (म०) दानव भ्रमुर गताम ।

राका = भा० १८ । का० कु० १११ । का०
६१ । बि० २४ । ऋ० २४ ६५,
१६२ । ल० ४३ ।

[स० जी०] (स०) पूर्णिमा । पूर्णिमा की रात ।

राना रानी = का० २८४ ।

[स० जी०] (स०) पूर्णिमाखी रानी । चादना ।

राखत = बि०, ३२, ६६, १३८ ।

[क्रि०] (हि०) रखना है । रक्षा करता है ।

राखनहार = बि० १८७ ।

[वि०] (हि०) रखनेवाले । रक्षा करनेवाले (ईश्वर) ।

राखि = बि० ६६, ७१, ६५ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) रख लो । बचाओ ।

राखिकर = बि० १६३ ।

[पूर्व० क्रि०] (ब्र० भा०) बचाकर, रक्षाकर ।

राखिले = बि० २६ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) रख लो, शरणा म ले लो ।

राखिहैं = बि० १७२ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) रखेगा ।

राखे = बि० ७०, १०६ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) रख ल ।

राखे = बि० ५६ १७१ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) रक्षा करे ।

राखेंगे = बि० ६४ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) रक्षा करेंगे ।

राख्यो = बि० ४७, ७४, १५८ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) बचाया है, रक्षा किया है ।

राग = का० कु० १, ११, ४३, ४८, ४९,
१११ । का० ७४, ८८, ६७, १६५

१६८ २४०, २४२ । बि० ३६ ६७

६३ १४७, १५१, १६८, १७५

१७६ । ऋ० ११, २०, २२, ६७, ८४ ।

प्र० १८ । ल० १६, ४१ ।

[स० पु०] (म०) प्रिय या प्रिय वस्तु के प्रति हानवाला
मानसक भाव । ईश्वर और द्वय, प्रेम,
अनुगम । प्रमराग । एक वय वृत्त ।
रग निपत लाल रग । मूय । चद्र ।
महावर । सगात म स्वरो क विशेष
प्रकार तथा क्रम या निश्चित मात्रा
द्वारा बने हुए गीत का ढांचा ।

रागपूर्ण = का० १८३ ।

[वि०] (स०) राग सत्त्व १ । रागा प्रेमी ।

रागभाव = का १६३ ।

[म०] (स०) प्रेम का भाव । ईश्वर भाव ।

रागमय = का० २६० ।

[वि०] (स०) राग से भरा हुआ ।

रागमयी = ल० ५६ ।

[वि०] (हि०) प्रयसा, प्रमिका ।

रागमयी सध्या = का०, १४२ ।

[वि०] (हि०) अनुरागरजिता सध्या ।

रागमयी सी = का० १६१ ।

[वि०] (हि०) अनुरागवती सी ।

राग रग = ल० ४७ ।

[म० पु०] (स०) प्रेमानन्द ।

राग रगी = प्रे० ११ ।

[वि०] (स०) प्रमानदी ।

रागारुण = का० २६२, २६४ २८० । ल० ४४ ।

[स० पु०] (स०) अनुराग व समान अरुण । वह लालिमा
जा माधुर्य और प्रेम बिखेरती है ।

रागिनी = ऋ० ६२ ।

[म० जी०] (स०) विख्याता । मेनका का कथा का
नाम । जयन्ती नामक लम्पी । समीप म
बिभी राग की पत्नी ।

- रात** = का० ८८, २१७, २३३, २७०। वि० १८, १८२। अ० ५२। प्र० २, ५८। स० ११, २०, २५, ३१, ३७।
- [स० स्त्री०] (हि०) मृगस्त से लेकर सूर्योत्थ तब तक समय। रात्रि, निशा, शबरी, विभावरी, रजनी।
- राती** = वि० १२।
- [वि०] (हि०) अनुरक्त।
- रातें** = आ० ७०। का० १७८, २०७। वि० १०१, १७२। स० २१, ४१।
- [स० स्त्री०] (हि०) रात का बहुवचन।
- रातों** = का० १८४।
- [स० स्त्री०] (हि०) रात का बहुवचन।
- रात्रि** = क० १३। का० कु० ८। का० १८६, २६१।
- [स० स्त्री०] (म०) रात।
- रानी** = आ० ७६। का० ६३, १४८ १८७, १८९, २०१। वि० ७१, ७४। स० ४४ ६७, ७१ ७२, ७३ ७४।
- [म० स्त्री०] (हि०) राजा की धर्मपत्नी। स्वामिनी मालकिन। स्त्रियो के लिए आदर्शवचन शब्द।
- राम** = का० कु० ८६, ८७, ६६, ६७, ६८, ६८ १०१। वि० १८ ११ ५२। अ० ६३।
- [स० पु०] (म०) राजा दशरथ के पुत्र सीता के पति का नाम श्रीराम। इक्ष्वर।
- [राम—भगोष्मा के सुविख्यात राजा दशरथ के चार पुत्रों में प्रथम। भगोष्मा के रघुनाथ राजाओं में परमाद्य वंश शाता आदेश भर्थादपुत्र तथा माना के पति। वामीव और तुनीव के पतिनाथ।]
- रामचरित मानस** = का० कु० ८७।
- [स० पु०] (म०) राम के जीवनवृत्त पर गोस्वामी तुनीव दासजी रचित हिंदी भाषा का प्रसिद्ध प्रवयात्मक काव्य ग्रंथ। दक्षिण महा कवि तुलसीदास।

- रामबाहु** = का० कु० १०३।
- [स० पु०] (हि०) राम के हाथ।
- राम वैदही** = का० कु० ६५।
- [स०] (हि०) राम और सीता।
- राक्षसुख** = का० ८६, ६१।
- [वि०] (म०) सुख का राक्षस। सुख का डर।
- राक्षस** = का० २६८।
- [वि०] (स०) प्रातवृत्त में पड़नाल तारा के बारह समूह में से किसी एक या कुछ या सबके द्वारा किया हुआ। तारों का वह समूह निम्नलिखित हैं—मघ, वृष मिथुन, कर्क मि० २ या तुला वृश्चिक, धन, मकर कुम्भ और मीन।
- राष्ट्र** = का० १६३ २६६, २६६।
- [स० पु०] (स०) राज्य देश। एक राज्य में बसनेवाला पूरा जनसमूह।
- राष्ट्रनीति** = का० २४३।
- [स० स्त्री०] (स०) किसी या राष्ट्र द्वारा अपनाई गई नीति।
- रास** = का० कु० १११।
- [म० पु०] (स० भा०) प्राचीन भारत के गांधी की एक ब्रीडा जिसमें घेरा वाद्यकर नाचते थे। श्रावण और रामलीला या उमका अभिनय। घाड़ बल आदि का लगाम। ललितान में रखे घना का डेर।
- राह** = का० ६८, २४१, २४२। का० कु०, ५१। वि० ६५। अ० ५१, ५२।
- [स० स्त्री०] (हि०) रास्ता पथ।
- राहु ग्रस्त सी** = का० २३६।
- [वि०] (हि०) राहु द्वारा ग्रस्त होने के समान।
- [राहु—अथर्ववेद में राहु का निर्देश मृत्यु का ग्रमने-वाले दानव के रूप में एक उग्र दनु का पुत्र बताया गया है। कुछ ग्रंथों में इन वक्ष्य एवं सिंहना का पुत्र बताया गया है। यह पापघ्न भी माना जाता है। मधुघ्नमथन के बाद प्रच्छन्न रूप से जब यह अमृत का पान कर रहा था कि मृत्यु और चंद्र ने इनकी मृत्यु का विष्णु का दो और विष्णु ने इनका

सिर धड़ से अलग कर दिया। राटु वा निर्माण सिर से दृष्टा और शेष अंग से केतु वा। मूय और चद्र स आज भी इनका द्वेष माना जाता है और उह आज भी राटु और केतु ग्रसते ह जिसत ग्रहण लगता है।]

रिक्त = का० ३६, ११७ १८३, २८३। भ० २५, ३८। ल० ३८, ५२, ७१।

[वि०] (स०) खाली राता। निधन।

रिक्तावस = वि०, ४१।

[क्रि०] (प्र० भा०) किसी का अपन पर प्रस न या मोहित कर लेता है।

रिक्तावहि = वि० १००।

[क्रि०] (प्र० भा०) किसी का अपन पर रिक्ताये या माहित करत है।

रिक्तमिम = ना० २२५।

[सं० ला०] (हि०) वर्षा की छोटा छोटा बूद गिरना, फुहार।

रिस = का० १८४।

[सं० ला०] (प्र० भा०) प्राय, रोप।

री = वि० १६३। ल० ६७।

[प्र० भा०] (हि०) सबोधन वा चिह्न (स्मयों के लिय)।

रीभता = वि० १५५।

[क्रि०] (प्र० भा०) रीभता है। ६० 'रीभना'।

रीभना = प्रे० २४।

[क्रि०] (प्र० भा०) किसी व रूप गुण आदि के कारण उस पर प्रस न अनुरक्त या माहित होना।

रीभा = का० १५८।

[क्रि०] (प्र० भा०) रीभना क्रिया का भूतकालिक रूप, माहित हुआ।

रीति = का० २४३। वि० ३५, १६७ १८२।

[सं० ला०] (सं०) कोई काम करने का दण या प्रकार। रिवाज परिपाटी नियम। साहिब य वलों की एमा याचना जिसमें वलों में मात्र प्रमाण माधुय भादि गुण भा सर्वे।

राती = का० कु० ७३। ल० ११।

[वि० ला०] (हि०) खाली, रिक्त, शून्य।

रुह = म० ७।

[सं० कु०] (सं०) गिर कट जाने पर खाली बचा हुआ धड़। वह शरीर जिसके हाथ पांव कट गए ह।

रुकना = ना० ७७। क० १४। का० कु० ४६।

का० ६४, ६६, १०५, १६०, १६१, १८६ २०१ २१०, २१४, २२०, २७६, २८४। प्र० ४, १५। म० ३। ल० ३०।

[क्रि० प्र०] (हि०) गति, प्रवाह आदि में किसी प्रकार का विग्राम या अवरोध होना। रुकना। रुकना होना। रुक जाना।

रुक्नेवाली = का० २०६ २४१, २६१।

[वि०] (हि०) (वह वस्तु) जो रुक जाय।

रुक रुक कर = ल० २६।

[क्रि० वि०] (हि०) यथिमय क्रिया में बार बार रुक कर।

रुकावट = क० १४। भ० ६०।

[सं० ला०] (हि०) रोकने या रोकने जाने की क्रिया का भाव। अवरोध, रुकाव।

रुख = का० ४५। वि० १७३।

[सं० कु०] (का०) रुह। आइति। चेष्टा चेहरे या आइति से प्रकट होनेवाली इच्छा।

रुख सो = वि० १।

[वि०] (प्र० भा०) चेहर या आइति से प्रकट होनेवाली इच्छा व अनुसार।

रुखाई = वि० १८३।

[सं० ला०] (हि०) 'हला' होने का भाव, हलापन। शुष्कता, पुश्ती। व्यवहार में सनोच या शाल का समर्थ।

रुषता = का० १३६।

[क्रि०] (प्र० भा०) रुषता लगना।

रुचि = का० १६०, १६३।

[सं० ला०] (सं०) मन का वह अवस्था जिसमें अनुगार मनुष्य का चेतन सा वस्तु रुचता लगता है। कना माहि य, प्रकृति आदि का कृति का पद करनेवाली या न करनेवाली मन का कृति। प्रम, चाह, स्वाद।

रचिर = का० १४२।

[वि०] (सं०) मुदर। मीठा।

रचि सो = चि० ७३।

[सं० स्त्री०] (प्र० भा०) रचि म। इच्छा से।

रदन = का० १६१।

[सं० पु०] (हि०) रने की क्रिया।

रद्ध = का० १७, ८७, १६६, १६६, १८५, २१२।

[वि०] (सं०) घेरा, रोना या रखा हुआ। बंद।

रद्र = का० कु० ८६। का० १८५, १८६, २४१, २०२, २५६।

[सं० पु०] (सं०) एक प्रकार के गण द्रवता जो सरसा में व्यापक है। व्यापक का सरसा। शिव का एक रूप जो बहुत हा उग्र माना जाता है जिसे उन्होंने कामदेव का भस्म करने तथा दत्त के अश को नष्ट करने के समय धारण किया था।

रधिर = का० ११६, १६६। ल० ६६।

[सं० पु०] (सं०) रक्त रत्न, लहू।

रधिर फुहारापूर्ण यवन कर = सं० ६।

[सं० पु०] (हि०) रक्त के फुहार से पूर्ण मुसलमानों का हाथ।

रजाना = का० कु० ८०। अ० ८२।

[क्रि० सं०] (हि०) दूसरे को राने में प्रवृत्त करना। खराब करना।

रष्ट = का० कु० ८४। का० १८६।

[वि०] (सं०) नागाज, कुपित।

रुद्रा = का० २८। प्र० १३।

[सं० पु०] (हि०) शक्ति, सुप्रकी। जिम व्यवहार में सबोध या शीलता का अभाव हो।

रुखा सा = अ० ३३।

[वि०] (हि०) शुष्क।

रुग्नी = प्र० २३।

[वि०] (हि०) 'रुग्ना'।

रुखे = का० कु० २१। चि० ५६, १८०।

[वि०] (हि०) 'दे रुखा'।

रुखे मन = चि० १८१।

[सं० पु०] (हि०) बिना किसी मनोब या शीलताभर मन से।

रुठ = का० ११७, १७७, १७८, १७९, २५६।

[सं० स्त्री०] (हि०) रुठने की क्रिया का भाव।

रुठना = का० कु० ८४।

[क्रि० अ०] (हि०) अप्रमत्त होकर उदासीन, चुप या अलगा हो जाना।

रुठी = का० ३८।

[क्रि० अ०] (हि०) 'रुठना' क्रिया का भूतकालिक रूप।

रुठे = का० ५०।

[क्रि० अ०] (हि०) रुठ हुए नाराज हुए।

रूप = का० २५। का० ७, ३, २८। का० कु० ११, १३, २८, ५१, ५२, ७६, ८६, १२१। का० ६५, ६६, ७२, ८१, १०१, ३६२, २६५, २६७, २८८। चि० ८, २५, २८, ४२, ५६, ७०, ७२, १००, १४०, १४६, १४८, १५८, १६१, १६३, १६५, १७१, १७७, १८१, १८६, १८६। प्र० १०, १८, १८। सं० २। ल० ६८, ७१, ७६, ७७, ७८।

[सं० पु०] (सं०) शकल, मुरा। स्वभाव। प्रकृति साधन। शरीर। दशा।

[रूप—नलशिक्षण वृत्त शला पर लिखी गई १६ पत्तियां की अनुशासित कविता जिसमें आख, वपाल, नासिका, घोवा, दात, चितवन आदि का वृत्त पर परागत ढंग पर किया गया है वकिम भू, कुटिल कुतल, नील कमल से नेत्र मुदर नावा, चपल प्रावा आदि सभी कुछ उसी पुराना परिपाटी पर वर्णित है।]

रूपचंद्रिका = का० १२५।

[वि० स्त्री०] (सं०) चंद्रिका रूपा रूप।

रूपजन्य = प्र० १७।

[वि०] (सं०) रूप में उत्पन्न।

रूपजलधि = अ० २२।

[सं० स्त्री०] (सं०) रूप का समुद्र।

रूपनिधान = चि० ४६ ।
 [वि०] (म०) रूप का आगार । रूप का निधिवाला ।
 रूपमाधुर = वा० ७२ ।
 [वि०] (स०) रूप का माधुर्य ।
 रूपमाधुरी = वा० कु० ७८ ।
 [वि०] (स०) रूप माधुर्य ।
 रूपयती = का० २६२ प्र० २ ।
 [स० ली०] (स०) गौरी नामक छंद । चणकमाला वृत्ति का एक नाम ।
 [वि०] (म०) सुदरी, नृत्यमूरत ।
 रूपवाले = ऋ० ६३ ।
 [वि०] (हि०) नृत्यमूरत सुंदर ।
 रूपसीमा = भा० २० ।
 [स० ली०] (स०) रूप सोदय की सामा ।
 रूपहली = वा० १८४ ।
 [वि०] (हि०) चांदी के रंग की ।
 रूपावली = चि० ७३ ।
 [स० ली०] (स०) रूप की पंक्ति ।
 रे = चि० १७० । १० ३४ ३५, ३६ ।
 [प्र य०] (हि०) सदावन का चिह्न ।
 रेखा = वा० ५० ५८ ।
 [स० ली०] (हि०) रेखा लफार । चिह्न, निशान । गिनना, गणना । नई निबली हुई भूखें ।
 रेखा = भा० ७५ । वा० कु० ६५ । वा० ५ ३६, १०७ १०५ ११७, १२१, १४० १५६ २३६, २६१ २७३ । चि० ६५ ।
 [स० ली०] (स०) बहू लकीर जिसमें सगई हो पर चौड़ाई और मुड़ाई न हो ।
 रेखाएँ = भा० ६७ । वा० १८० । म० ६ ।
 [स० ली०] (म०) रेखा' वा बहुवचन ।
 रेखावाली = म० ८ ।
 [वि०] (हि०) जिसमें रेखा या लकीर हो ।
 रेखा सी = वा० ६६ ।
 [वि०] (हि०) रेखा व समान ।
 रेणु = वा० २८७ । वा० कु० ८७ ।
 [स० ली०] (म०) धूल । वात । पृथ्वी । कणिका ।
 रेणुस्र = वा० २८७ ।
 [स० ली०] (स०) तनु छिद्र ।

रे रे = व० २८ ।
 [अ य०] (हि०) गवोधन धारक वा चिह्न ।
 रेला = ऋ० ३२ ।
 [स० पु०] (हि०) तज गहाव, लोड । समूह द्वारा चढाई या धारा । घसरी धुकरा ।
 रेशमी = ल० ४८ ।
 [वि०] (पा०) रेशम का बना हुआ ।
 रैन = चि० २४ १६४ ।
 [स० ली०] (हि०) रात्रि ।
 रैनि = चि० ८५ ।
 [म० ली०] (प्र० भा०) रात्रि ।
 रो = भा० ५७ ।
 [क्रि०] (हि०) राना, विलाप करना, रुदन करना ।
 रोइ = चि० ६८ ।
 [प्र० क्रि०] (प्र० भा०) रोकर ।
 रोइये = चि० १७८ ।
 [क्रि०] (हि०) देख 'रोना' । रोमो ।
 रोई = भा० ५७ ।
 [क्रि०] (हि०) रो दिया ।
 रोक = वा० १२५ १३०, १६७ ।
 [स० पु०] (हि०) धक्का ।
 रोकटोक = वा० २३५ ।
 [स० पु०] (हि०) छद्मछाड ।
 रोकना = का० कु० ३६, ७४ ।
 [क्रि०] (हि०) अवरोध करना ।
 रोकट = वा० ८१, १६५ २७८ ।
 [क्रि०] (हि०) राना का वृषकालिक रूप ।
 रोमी = वा० कु० ४५ ।
 [क्रि०] (हि०) अवरोधन बना ।
 रोमे = वा० ११८, २३८ ।
 [क्रि०] (हि०) रोचना क्रिया का भूतकालिक रूप ।
 रोग = प्र० ६ । म० २३ ।
 [स० पु०] (प्र०) बीमारी व्याधि, गणता ।
 रोन = ऋ० ११ ।
 [स० पु०] (प्र०) प्रतिदिन ।

- रोता = का० १५८।
 [क्रि०] (हि०) रुदन करता।
- रोती = घ्रा० १२। का० १६, ६६। ल० १८।
 [क्रि०] (हि०) रुन करती।
- रोते = घ्रा० ३०, ४७। ऋ० ६४।
 [क्रि०] (हि०) रोना क्रिया का भूतकालिक रूप।
- रोदन = घ्रा० ६२। का० १२४, १६५।
 [स० पु०] (स०) रोना।
- रोना = घ्रा० ७७।
 [क्रि०] (हि०) प्रताप करना।
- रोण्यो = चि० ६१।
 [क्रि०] (प्र० भा०) रोपा। आरोपित किया।
- रोम = घ्रा० ४६। का० ४६, १३०, २२५।
 [स० पु०] (स०) शरीर के ऊपर के छोटे छोटे बाल।
- रोमराजी = का० ८३।
 [स० स्त्री०] (स०) रोमावलि।
- रोम रोम = का० कु० ७६। चि०, १७४।
 ऋ० ६३।
 [स० पु०] (हि०) सर्वांग।
- रोमाच = का० कु० २६।
 [वि०] (न०) घानद या भय से रोए का खड़ा होना।
- रोमाचित = का० १७६।
 [वि०] (स०) पुलकित। भय से जिसके रोगटे खड़े हो गए हों।
- रोमानी = का० ६६।
 [स० पु०] (स०) रोमों का पक्ति।
- रोमावलि = ल० ४५।
 [स० स्त्री०] (स०) रोमानी पक्षिया।
- रोय = चि० १६६।
 [क्रि०] (प्र० भा०) रोकर।
- रोया = ना० १३।
 [क्रि०] (हि०) राना क्रिया का भूतकालिक रूप।
- रोये = का० १४०, ११५।
 [क्रि०] (हि०) रोना क्रिया का भूतकालिक रूप।
- रो रो = घ्रा० १५, ७२।
 [स० पु०] (हि०) दुखा होकर, रो रा कर।
- रोली = घ्रा० ६१।

[स० स्त्री०] (हि०) तिलक लगाने की प्रसिद्ध लाल चुकनी।
 शोभा, सौंदर्य।

रो लेती हूँ = का० २३७।
 [क्रि०] (हि०) रोना क्रिया का सामा य वर्तमान।

रोख लाम्गी = चि० ५६।
 [क्रि०] (प्र० भा०) रोने लगा।

रोखै = चि० १०३।
 [क्रि०] (प्र० भा०) रोता है।

रोप = का० १०। का० कु० १०२, १०६।
 का० १६६, २४१। चि० ५३, ५४,
 १७१, १७५।

[स० पु०] (स०) कोप, गुस्सा, क्रोध।

रोपभरी = का० १८१।
 [वि०] (हि०) क्रोधित।

रोपानल = का० कु० १०८।
 [स० पु०] (स०) क्रोधानि।

रोहित = का० २१, ३१।
 [वि०] (हि०) लाल।

[रोहिताश्व—महाराजा हरिश्चन्द्र श्रीर या मा के
 पुत्र जो बाद में भयो-मा के राजा हुए।
 यह वरुण के प्राशोर्वादे से हुए थे।]

ल

लबी = का० ४६, २१४। ऋ० ३६। प्रे० ११।
 [वि०] (हि०) जो दूर तक एक ही दिशा में चला गया
 हो, सीधा का उलटा।

लवे = का० ३।
 [वि०] (हि०) द० 'लबी'।

लई = चि० ३६।
 [क्रि० स०] (प्र० भा०) 'लेना' क्रिया का भूतकालिक रूप,
 लिया।

लिप = का० कु० १८।
 [क्रि०] (प्र० भा०, २० 'लई'।

लकीर = घ्रा० २०। का० १६६।
 [स० स्त्री०] (हि०) जिसमें लघाई हो किंतु चीगाई और
 मोटाई न हो, रखा।

लक्षण = चि० १०३ ।

[सं० पु०] (सं०) पहचानन का चिह्न, निशान । नाम । परिभाषा । शुभ या अशुभमूचक शरीर का प्राकृतिक चिह्न । चाल ढाल, रंग ढंग ।

लक्षहार = सं० ३५ ।

[सं० पु०] (सं०) लक्ष्यरूपा माला ।

लक्षागृह = चि० १०७ ।

[सं० पु०] (सं०) लाख से बनाया हुआ महल जिसे दुर्गों धन न पाइयो के विनाश के लिए बनवाया था । उस स्थान का भाषु निक नाम ।

लक्ष्मण = का० कु० ६८, ६९, १०१ ।

[सं० पु०] (सं०) श्रीरामचंद्र जी के छोटे भाई ।

लक्ष्मी = का० कु० ८८ । चि० ५४, ६५ । प्र० १६ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) धन का अभिष्ठात्री देवी । विष्णु की पत्नी, कमला, दे० 'रमा' । धन संपत्ति । शोभा । गृहस्थामिनी ।

लक्ष्य = का० १३५ १६३ २६६ । चि० १८६ ।

[सं० पु०] (सं०) जिसपर दृष्टि रखा जाय, निशाना । वह जिसपर निशाना प्रकार का आक्षेप हो । उद्देश्य ।

लक्ष्यभेद = का १५७ ।

[सं० पु०] (सं०) चलने या उड़ने हुए जीव या पक्षी पर निशाना लगाना या साधना ।

लक्ष्यहीन = का० कु० ७३ ।

[वि०] (सं०) उद्देश्यहीन, उद्देश्यरहित ।

लग्न = का० कु० १३ । का० १३३ १७१, १८६ । म० ३६ ।

[क्रि०] (हि०) लगना क्रिया का प्रथमात्मिक रूप, देवकर, लगकर ।

लग्नत = चि० ५० ६६ ७५ १६० १६३ १६८ १७१ ।

[क्रि०] (हि०) लगना क्रिया का सामान्य वर्तमान कालिक रूप ।

लगती = का० कु० ४४ ७६ ।

[क्रि०] (हि०) लगना क्रिया का एक रूप । देखता ।

लगत = चि० ५७ ७२ ७३, १५६ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) अवलोकनी, देखा ।

लग्यो = चि० ३१, ४७, ५१, ५३, ५४, १४२ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) अवलोकन किया देखा ।

लग्यात = चि० ३१, ४७, ४६ १०१ १४५, १४६, १४२ १४४, १४६, १६०, १६१, १६८ १६६ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) लिखाता है । दाख पड़ना है । दिखाई पड़ता है ।

लग्यती = चि० ७१ ।

[क्रि०] (हि०) दिखाती है ।

लग्याय = चि० ३३ ५२ ।

[क्रि०] (हि०) लगाना क्रिया का प्रथमात्मिक रूप, लगाकर ।

लग्यायो = चि० ८५६ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) लगाना क्रिया का पूर्ण भूतकालिक रूप, दिखाया ।

लग्यि = चि० १५ २८ ३२ ४२ ५३ ५४, ६४ ६८, ६९, ७०, ७१ ७२, ७४, ६१ ६८ १५० १५२, १६० १६१ १६६ ।

[प्र० क्रि०] (प्र० भा०) लग्यर । देवकर । विलोकर ।

लग्यिहो = चि० ३८ ।

[क्रि०] (हि०) लगना क्रिया का भविष्यत्कालिक रूप देखूंगा ।

लग्यु = चि० ३४ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) लगना क्रिया का आजापक रूप, देखा ।

लग्ये = चि० २२, ४४ ५६ ५८ ६१, ७५ १५७ ।

[क्रि०] (हि०) लगना क्रिया का प्रथमात्मक रूप, देखा ।

लग्ये = चि० १५ ३७ ५१ ६३ ६४ ।

[क्रि०] (हि०) लगना क्रिया का रूप लगता या देखता है ।

लग्यो = चि० १०१ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) दगा ।

लगत = चि० १७६ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) लगना क्रिया का सामान्य वर्तमान कालिक क्रिया का रूप ।

लगता लगती = ब्रा० २० । व० १४ । वा० कु० १६ ।
का० ३६ ४१, ५० ५२ ८२ ९०
९१, १५०, १७८, १६२, १८६, २१५,
२५८ २६०, २६४ । म० २० ।
ल० ३८, ५० ।

[क्रि०] (हि०) लगना क्रिया का एक रूप ।

लगन = का० १३, १५, १७, २४ २७ ३१,
३३ ७३, २८४ । म० ५ ।

[म० स्त्री०] (हि०) किसी काम या व्यक्त की धार ध्यान लगाना । लो स्नेह ।

लगना = ब्रा० २ बार । व० २ बार । वा० कु०
१ बार । का० २७ बार । बि० १७
बार । म० २ बार । म० १ बार ।
ल० ४ बार ।

[क्रि०] (हि०) मटना या जुटना । मटा जाना या जुटा जाना । बिना आधार पर रचना । क्रम स सजना । जान पड़ना । जुलुनाहट आदि मान्य पड़ना । काम में रत होना ।

[लग दो गहने का बाजार—विशाल का गीत,
प्रसाद संगान में पृष्ठ २५ पर संकलित
तरला और महापिंगल का गान ।
खाना मिल या न मिले इसकी चिंता
नहीं है । गहनों से नाक छेद कर, कान
छेद उसे भर दो तभी प्यार पूरा
होगा । इसी से पति पत्नी का प्यार
प्रवृत्त होता है ।]

लगा लगा = म० ५१ ।

[क्रि०] (हि०) लगाना क्रिया का पुंवकालिक रूप ।
लगा लगा कर ।

लगयो = बि० ९, ४२, ५९, ७३, ९९ ।

[क्रि०] (ब० भा०) लगना क्रिया का भूतकालिक रूप ।

लगी = का० कु० १८ ।

[क्रि०] (हि०) लगना क्रिया का भूतकालिक रूप ।

लधिमा = म० ४२ ।

[म० स्त्री०] (म०) लघु का भाव, लघुता । घाठ प्रकार की सिद्धिया में से एक का नाम ।

लघु = ब्रा० ४४, ७० । वा० ५, ३७, ४७,
५०, ८१, ८९, १४८, १५१ १७६,
१८०, २२४, २४९ । म० ३४ । ल०
३८, ४०, ४३ ४६ ।

[बि०] (स०) छोटा । हलका । नि सार । पोछा ।

लघुतम = का० २५८ ।

[बि०] (म०) बहुत ही छोटा या कम । निस्तत्व ।

लघुता = का० २५० । ल० २२ ।

[म० स्त्री०] (स०) छोटाई हलकापन । निस्सारता, कमी ।

लघुभाता = का० कु० १२० ।

[म० पु०] (स०) छोटा भाई ।

लघु लघु = का० १७० । ल० २५ ३० ।

[बि०] (स०) छोटा छोटा बिलकुल छोटा या बहुत छोटा ।

लक्ष्मीक्षा = का० २७३ ।

[बि०] (हि०) सहज में ही झुकनेवाला, लक्ष्यदार । जो सहज में ही परिवर्तित हो जाता हो या जिसमें सहज में ही कमी वैशी का होना संभव हो ।

लजत = बि० ५८ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) 'लजाना' क्रिया का सामान्य वर्तमान कालिक रूप, लजाती है ।

लजाई = बि० २८ ।

[पूव० क्रि०] (ब्र० भा०) शर्माकर, लजाकर ।

लजाई = का० कु० १०० ।

[क्रि०] (हि०) लजाना क्रिया का भूतकालिक रूप ।

लज्जा = का० कु० ३५ । वा० ९४, १३६,
१८५ । बि० ७३ । प्र० २० ।

[स० स्त्री०] (स०) वह मनोभाव जो स्वभावतः या सकोच, दोष आदि के कारण दूसरा के सामने सिर उठाने या बोलने नहीं देता, शर्म । मान मर्यादा । हया ।

लज्जा कर = म० १२ ।

[क्रि०] (हि०) लजाना क्रिया का पुंवकालिक रूप । लज्जा करके ।

लज्जावती = का० कु० ३४। म० ३६।

[वि०] (सं०) लज्जाशीला।

[सं० जी०] (म०) लज्जावती पुष्प, लज्जाधुर का फूल।

लज्जा सा = म० ३६।

[वि०] (सं०) लज्जा के समान।

लज्जित = क० २७। का० कु० १२३। म० ३७।

[वि०] (म०) लजाया हुआ। जो नज्जाता हो।

लज्जोली = का० कु० ३८। का० १४२।

[वि०] (सं०) जिसे स्वभावतः शीघ्र हो लज्जा आती हो, लज्जाशाल।

लज्जे = म० ३३। क० २३।

[सं० जी०] (सं०) लज्जा का संबोधन रूप।

लट = का० ३८। ६०।

[सं० जी०] (हि०) केशपाश, उसके हुए वाला का समूह।

लटफना = का० कु० १ बार। का० ३ बार।
प्र० १ बार।

[क्रि०] (हि०) किसी ऊपरी आचार के सहारे नीचे की ओर झूलना। झुकना। काम का झुझुरा पडा रहना।

लट = का० २५६।

[सं० जी०] (हि०) एक ही तरह का चीजों की थोड़ी या या मोटा। रस्सी या डार क कई तारा म का एक तार। लर।

लटके = का० १६६।

[सं० पु०] (हि०) लटका का बहुवचन। बालक, पुत्र या बंटा (जी० लटकी)।

लटकी = ल० ५१।

[क्रि०] (हि०) 'लटना' क्रिया का एक रूप। लपटा करती।

लटना = का० ८१। म० ८८।

[क्रि०] (हि०) मिटना। भगदा या लपटार करना। टकराना। सफलता क लिये विरुद्ध प्रयत्न करना।

लटायौ = का० कु० ११२।

[सं० जी०] (हि०) लटायौ का बहुवचन।

लटाई = वि० ५१। म० २५।

[सं० जी०] (हि०) लटने का भाव या क्रिया। लपटा। भगडा भनवन।

लटियाँ = का० ११५।

[सं० जी०] (हि०) २० 'लट'।

लट्टी = का० कु० १०।

[सं० जी०] (हि०) २० 'लट'।

लटा = क० १७। का० कु० ३४ ३८, ४१, १०५। का० ७२, ७८, ८६ १६८, १८२। वि०, ३ २२ ५७, १५०।
म० ५८। म० १६।

[सं० जी०] (हि०) जमीन पर फलन या किसी आचार पर चढ़नेवाला कीमत्त पतला पीया धल।

[लता—'हु' कि ए ४, कार्तिक ६७ वि० म प्रका
शित, बिनाधार पुस्त १५३ पर 'उद्यान
लता' शीपक स सकलित ब्रजभाषा का
कविता। पुष्पा स लगी दृष्ट नवीन
हरी पलिया मधुमयी लहरा रही हैं।
य पेठ का हृदय म समझती है जिससे
उसका ताप नष्ट हो जाता है। तुम्हारे
सारे फूल मकरद भर हुए ह जो
घाव के झूल के समान है। तुम किस
आशाभा दृष्टि स दखती हो और
बुद्ध के पास लट्टी रहकर भी नहीं
बोतती ? यह वृद्ध बड़ा नीरस है।
हमे क्या माजूम ? तुम क्या अभी
हसकी और बड़ना हो क्या क्या यह
रखा होता जाता है क्योंकि यह भ्रमानी
जानबूझ कर लपटा जाता है। माता
तुम्ह सोच कर लपटा है, वही तुम्हारा
मनभाता है। पर तुम्हारे लिखत नी
बुद्ध है रोझकर तुम उसी को गले
लगाती हो।]

लताश्री = का० कु० ३६।

[सं० जी०] (हि०) लता का बहुवचन रूप।

लतादल = क० १४।

[सं० पु०] (सं०) लताया क पत।

लताग्र = का० कु० ६८।

[सं० पु०] (सं०) पेठ पर। जड़ो सूटा। रदा चीजें।

लतापु = का० कु० १०। वि० ११।

[सं० जी०] (हि०) २० 'लताग्र'।

लताललित = का० कु० १८।

[सं० स्त्री०] (हि०) ललित या सुंदर लता ।
 [वि०] (म०) लताओं से ललित होने के कारण सुंदर ।
 लतावृक्ष = का० २४७ ।
 [सं० पु०] (सं०) लता और पेड़ पीचा ।
 लता समान = का० ४६ ।
 [वि०] (हि०) लता की तरह सुकामल ।
 लता सी = का० कु० १०० ।
 [वि०] (हि०) लता के समान ।
 लतिका = का० कु० १२५ । का० ६४, १५१, २६५ । चि० १, ५७ । प्र० ३ । ल० १६, ३२ ।
 [सं० स्त्री०] (सं०) छोटी लता । लतर ।
 लतिकाओं = का० १४६ । म० २६ ।
 [म० ग०] (हि०) 'लतिका' का बहुवचन ।
 लतिका लास = का० ५६ ।
 [सं० पु०] (म०) लतिकाया का नाच हुआ के भोजन स भूमती हुई लतिकायें ।
 लतिका सी = का० ६७, १४२, १५३ ।
 [वि०] (हि०) छोटी लता के समान, कोमलता का सूचक ।
 लद गई = का० ६४ ।
 [क्रि०] (हि०) 'लदना' किया का भूतकालिक रूप । भार से घुल हो गई ।
 लदा = का० कु० १४ । क० १६ । प्र० २५ ।
 [क्रि०] (हि०) लद गया ।
 लदि = चि० १५१ ।
 [क्रि०] (हि०) लदकर, लदना' क्रिया का पूर्वकालिक रूप ।
 लदे = का० २७८ ।
 [क्रि०] (हि०) लद गया ।
 लयेडना = म० २ ।
 [क्रि०] (हि०) धूल मिट्टा लगाकर मदा करना । जमीन पर घसीटना । निवाद में विपद्वा को हरा देना ।
 लपट = का० कु० ७५ । म० १६ ।
 [सं० स्त्री०] (हि०) भाग की लौ, आँच का लौ । गरम हुआ का भाका ।
 लपटत = चि० १५ ।
 [क्रि०] (हि०) 'लपटना' क्रिया का सामान्य वतमान

कालिक रूप । भगडा करता है । लडता है ।

लपटाई = चि० १५८ ।
 [क्रि०] (हि०) लपटा लिया, लपटाना क्रिया का भूत कालिक रूप ।

लपट्यो = चि० २१ ।

[क्रि०] व० भा०) लपट गये ।

लपटि = चि० ११, १२ ।

[पूव० क्रि०] (हि०) लपटकर ।

लपटि लपटि = चि० १३ ।

[पूव० क्रि०] (हि०) बार बार लपटकर ।

लपटी = चि० २२, ६२ ।

[क्रि०] (हि०) लपट गई ।

[वि०] (हि०) लपटी हुई ।

लपटी = का० १८१ ।

[सं०] (हि०) लपट का बहुवचन ।

लप लप = ल० ५१ ।

[क्रि० वि०] (हि०) बार बार लप लप करती हुई या लचकती हुई ।

लघ = का० २०८ ।

[वि०] (सं०) प्रातः, भिला हुआ ।

लय = का० ११, ७४ १६१, १६३, १६५, २५२ २७३ ।

[सं० पु०] (सं०) समाना, विलीन होना । छट्टि का विनाश या प्रलय ।

[सं० स्त्री०] गीत गान का ढग या धुन । संगीत में ताल का निवाह ।

लय सीमा = ल० ४६ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) समय की सीमा या प्रलय का घेरा ।

लयो = चि० १८४ ।

[क्रि०] (व० भा०) लिया, लेना' क्रिया का भूतकालिक रूप ।

ललक = का० १०६, १६१, २५६ । ल० ३५ ।

[सं० पु०] (हि०) लालवा, लालच ।

ललकारना = का० कु० १२५ ।

[क्रि०] (हि०) अपने गाय लहन व लिये या किसी पर आक्रमण करने के लिये चिन्ता कर बुलाना, कहना । प्रचारना ।

ललकारा = भा०, ११। का० २०१।

[वि०] (हि०) 'ललकारना' क्रिया का भूतकालिक रूप।

ललारी = पा० ४८।

[म० पु०] (हि०) ललच का बहुवचन।

ललचन = पा० ७७।

[क्रि०] (हि०) ललच करना। ललचा से घषीर होना।

ललचाई = ल० १७।

[क्रि०] (हि०) 'ललचना' क्रिया का भूतकालिक रूप, ललचाना क्रिया का रूप।

ललचाते = पा० ८६।

[क्रि०] (हि०) 'ललचाना' क्रिया का सामान्य भूत कालिक रूप।

ललचान = वि० ९।

[ल० पु०] (प्र० भा०) ललचाने का क्रिया। वह जिसे देख ललच पाय।

ललचावत = वि० ५६।

[क्रि०] (प्र० भा०) ललचाने की क्रिया करना। ललचाता है।

ललजना = वि० १६२।

[स० ली०] (स०) मुदर ली।

ललाई = ल० २०, ३२।

[स० ली०] (हि०) लाटा होने का गुण, लाने।

ललाट = पा० ५। वि० ४७।

[स० पु०] (म०) मस्तक, माथा।

ललाम = पा० ४०, ८६। का० १३६। वि० २।

[वि०] (स०) रमणीय, सुन्दर अथ।

ललित = पा० ८६, १६५। वि० ५, ७१, ७३।

[वि०] (स०) सुन्दर। प्रिय। मुकुमारता का लक्षण, मोंहर अंगभोग।

ललित कला = पा० ५१।

[म० ली०] (स०) वह कला भा विद्या जिसके अभिव्यजन में मुकुमारता और सौन्दर्य का अन्तर्भाव हो।

ललित गान = पा० १४५।

[स० पु०] (म०) सुन्दर एक मनाहर संगीत।

ललित साक्षर = पा० १०६।

[स० ली०] (स०) वह साक्षर या हस्ता जिसका भूत में सौन्दर्य भरा हो।

ललिता = पा० ४०, ३८ १००। वि० ६७, ७१, ७३, ७४, ७५।

[वि० ली०] (स०) मुदर, मनोहर, रम्य।

ललिता सी = पा० ६४।

[वि०] (हि०) ललिता की तरह, सौन्दर्य सूचक।

ललितार्ह = वि० ७५।

[म० ली०] (प्र० भा०) ललिता नी।

ललिताहँ = वि० ७१।

[म० ली०] (प्र० भा०) ललिता नी।

ललित = वि० १८२।

[स० ली०] (हि०) ललकी, या उसके लिए प्यार सूचक शब्द। नायिका प्रमत्ती।

लल = वि० २८।

[स० पु०] (स०) बहुत घोडा माना जाता है। दो बाधा, अतीत निमेष का समय।

लक्ष्मीप लक्षण = वि० १३२।

[३] (स०) लक्ष्मी पर निमेष मात्र भा।

लललीन = वि० १८८।

[वि०] (स०) समय ललीन मन्त्र।

ललसत = वि० ४५, ७२ १६०।

[क्रि०] (प्र० भा०) 'ललसा' क्रिया का सामान्य वर्तमान कालिक रूप। शोभित होता है।

ललसै = वि० १०२ २२।

[वि० प्र०] (प्र० भा०) ललस का बहुवचन।

ललसै = वि० ७१, ६८ १३६, १४६।

[वि०] (प्र० भा०) ललसत।

ललव = वि० १४६ १५४, १६५।

[क्रि०] (प्र० भा०) 'ललव' क्रिया का सामान्य वर्तमान कालिक रूप प्राप्त करता है।

ललहर = पा० १८। का० ३ १८ ल० १।

[स० ली०] (हि०) द्विपार। मोक्ष। प्रानन्द।

[लहर—'लहर' प्रवाह की समान गतिधृति है।

इसका प्रथम संस्करण भारतीय भट्टार, प्रयाग सं सन् १६३५ में हुआ। इसमें सन् १६३५ तक पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित व रचनाएँ भी गई हैं जो खड़ी खाली में हैं और पूरा ग्रन्थ में नहीं आ पाई है। लहर में निम्न लिखित ३० सूक्त और ३ निबन्ध आ का कविताएँ हैं।

- १ उठ, उठ री ! लघु लघु लोल लहर ।
- २ निज झलका के झगकार में ।
- ३ मधुप मुनमुना कर कह जाता ।
- ४ घरी वरुणा की शांत बछार ।
- ५ खे चल वहाँ भुनवा देकर ।
- ६ हे सागर सगम झरुण नाल ।
- ७ उस दिन जब जीवन के पथ में ।
- ८ जाता विभावरी जाग री ।
- ९ झाली में झलल जगाने को ।
- १० आह रे, वह अंधोर जीवन ।
- ११ तुम्हरी झाला का बचपन ।
- १२ भव जागो जावन के प्रभाव ।
- १३ कोमल कुसुमा का मधुर रात ।
- १४ कितने दिन जीवन जलनिधि में ।
- १५ व कुछ दिन कितने सुंदर थे ?
- १६ मेरा झाली की पुतली में ।
- १७ जग की सजल कालिमा रजना म ।
- १८ वमुषा के अञ्जल पर ।
- १९ अपलव जगता हूँ एक रात ।
- २० जगती की मगलमयी उपा बन ।
- २१ चिर नृपित कठ स तृप्तिविधुर ।
- २२ बाली झाला का झगकार ।
- २३ घर की देला है तुमने ।
- २४ शक्ति सी वह सुंदर रूप विभा ।
- २५ घरे आ गई है भूनी सी
- २६ निदय तूने ठुकराया तब ।
- २७ घरी मानस का गहराई ।
- २८ मधुर माधवा तपा मे ।
- २९ अतस्मिन् म अभा सो रही ।
- ३० अशोक की बिना ।
- ३१ गेरसिंह का अछ सम्पन्न
- ३२ पेसोना की प्रतिध्वनि ।
- ३३ प्रलय की छाया ।

ये गीत विविध विषय पर हैं और इनका सबब विभिन्न क्षेत्रों से है। यदि उनका वर्गीकरण किया जाय तो उन्हें निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है, आत्मपरक गीत, रहस्यवादी कविताएँ, लोकपरक गीत तथा ऐतिहासिक

कविताएँ। प्रकाशक ने इस संग्रह के वे विषय भी निम्नलिखित सूचना 'लहर' के पृ० ३ पर दी है—
सूचना'

'प्रसाद जी की स्फुट कविताओं का यह नवीन संग्रह है। कवि के नाते व हिंदी का आधुनिक कविता शैली के निर्माता माने जाते हैं। अतः साहित्य क्षेत्र में यह संग्रह यदि अपना विशेष गौरव स्थापित करे, तो हमें आश्चर्य नहीं होगा। क्योंकि अनेक दृष्टियों से यह संग्रह कविता मर्मज्ञा की अपनी ओर आग्रहपूर्वक देखने के लिये बाध्य करेगा।'—प्रकाशक।

सूचना के अनुरूप ही हिंदी साहित्य में इस का समग्रह का विशेष गौरव है।

अब हम यह देखेंगे कि आत्मपरक गीतों को क्या उपलब्धि है। इस संग्रह की प्रथम रचना 'लहर' है। इसका प्रकाशन 'लहर' में हुआ था। यह रचना लहर के वाच्यघरातल का निर्देश करती है। इसमें जीवन की लहरों का चित्रण की गई है कि वह तट के सूखे अधरा का प्यार के पुलक से भरकर अब छूम ले, और केवल कमलवन में ही भूनी न रहे। यह कामना इस बात का संकेत देती है कि कवि कमलवन की कल्पना से सूखे जीवन की व्यापक चितना तक अपनी का परिधि का प्रसार कर चुका है।

इस प्रकार 'लहर' की भावभूमि विस्तृत है तथा कवि 'श्रीश्रु' में जगती को प्रकाश देने की कामना को नयी भावभूमि पर स्थापित करने का प्रयत्न करता है। आत्मपरक गीतों में सवप्रथम कवि की आत्मकथा की ओर वमवत ध्यान खिंच जाता है। यह आत्मकथा 'हस' का आत्मकथा में प्रकाशित हुई थी। यह गात इस बात का साक्ष्य है कि कवि औरों की मुनना चाहता है पर विगत जीवन की स्मृति अब भी उसके

गीतो की प्रेरणा है। साथ ही कवि सकेत सूत्रों से यह भी संदेश देता है कि अभी आत्मकथा कहने का समय नहीं आया है, क्योंकि अभी उसके प्रयत्न की पूर्णता, हृदय की कामना के अनुसार, अपनी सृष्टिरचना नहीं कर पाई है। यह जिज्ञासा कृति सतत गतिशील चेतना के मगल विकास का परिणाम है। उसके भीषणपन की हसी बराबर उड़ाई गई, लेकिन वह तन्मय रहा। उसने दूसरों की प्रवचना नहीं की। यह सत्साहित्यकार की बहुत बड़ी विशेषता है।

आरम्भपरक गीतो में निम्नांकित गीत की अत्यधिक चर्चा है,—

ले चल वहाँ मुलावा देवर,
मेरे नाविक। धीरे धीरे।

यह चर्चा इसलिये है कि कुछ लोग इसी के आधार पर प्रसादजा की पलायनवादी घोषित करने का आनन्दलाभ उठा पाते हैं। लेकिन वस्तुस्थिति यह है कि कवि इस गाँव में समरसता के सिद्धान्त का सकेत करता है। दुर्लभ क जगत्सत्य द्वारा अमर जागरण का नवसंदेश कवि देता है।

इस संदेश के मूल में अतीत की स्मृति है जो गाँव के रूप में समुच्चिन्न हो चुकी है और जिसे वा. आसि। में वधपनवाले भीषणपन का बरजोरी पर भी कवि अपने जीवन का घन धारित करता है। आज भी उस वह अपने घन के रूप में स्वाकार करता है। कवि उन गुरुर दिनों की कल्पना करने लगता है जब सावन के सघन घन उसके नयना का धारा में बरसत था और जिसमें जीवनस्मृति के मधुर रूप खिल उठते थे। इस जैसे जगत् की वृत्तवर्धन बनाने का बाउ और सजापो से स्नेहा भिन्न करना कवि अब भी नहीं भूलता।

वह कह उठता है 'भुक्तों न मिला रे कभी प्यार' और स्वयं इसका उत्तर भा देता है—

पागल रे। वह मिलता है कब

उसको तो देत ही है सब,
आसु के कन कन से गिनकर

यह विश्व लिये है ऋण उधार। विश्व को ऋण उधार देने की बात अपना महत्त्व रखती है। यहाँ कवि अपने काव्य में विश्व से स्पष्ट रूप में नाता रिश्ता जोड़ता है। भले ही यह रिश्ता विभ्रम मय हो, किंतु आकूल मन का भ्रम अच्छे दिने पर सत्य और मगल का सोपान बन जाता है। कवि यहातक कह उठता है कि वह अब काँपने लगा है। वह अपने अनुराग को नभ के अभिनव कलरव में फलने की याचना विश्ववन की नव विरण के रूप में करता है, भले ही रूपविभा उससे छिन जाय। वह कह उठता है—

इस एकांत सृजन में कोई कुछ बाधा मत डालो,
जो कुछ अपने मुँह से है दे देने दो इनको।
वह अतात की उतराई मानन का गहराई के रूप में देने की तत्पर हो जाता है। वह शोक, प्रेम, मरण, सत्य में हवन की याचना मानन की गहराई से करता है। उसे यह चेतना जगती भी है। क्षिप्र हृदय बाँव रस का यह भिन्नारा प्राचा की मधुगात्र में उपा का मधुवाला का साता हृमा दलवर अदना पुनार गुजरित कर उठता है—

अर अविचन तू बढ़ना जा,

छोड़ दण्ड स्वर अपने,
सोने वाल जग कर दी

अपने मुख का सपना।

इस प्रकार, अपने आरम्भपरक गाना में दूना के व आसि खालकर विश्व के मुख दुख से अपने हृदय का सबव स्थापित करने के नियम मयसता दाग पहता है। इस मयलन के मूल में

प्रसादना के नाव्य का अभिनव कावली भावा क जनदल के रूप में चित्तवती है, जिसका प्रकाश दो रूपों में स्फुटित है एक तो गोरपरफ है और दूसरा अपने में अलौकिक हो गया है। इस अलौकिकता के मूल में लौकिक प्रेम का अमृत दान या रहस्यवाद है।

लोकतरङ्ग कविताभा का और 'यान जान पर' उनकी शाखाएँ दो रूपों में फूटा दोखनी हैं। एक और तो प्रभाता के गायन के रूप में कवि के स्वर गुंजते हैं दूसरा और वहला एक चेहना के के गीत हैं जिसका सबंध अनीत के व्यक्तित्व और कृत्तित्व से है। ऐसे व्यक्तित्व और कृत्तित्व से जा लोकमगल के लिये सचेत है।

यद्यपि भावी ऊपा क आगमन में पूर्व ही कवि जग गया है, ता भी इस पूर्व आगमन की (जगने का) खुमारी का वाइ प्रभाव अब उत्तर नहीं देखता। अतियु यह पथ पर चल पडता है, तथा जीवन का प्रभाता का जगाने लगता है। वह यह दबना है विभावरी कोत चली है। अब वह सोये नोगा को जगाने का प्रयत्न करता है। यह प्रयत्न होइला भवाकर नहीं मधुर रूप से, हासिक स्नेह सूत्रों के द्वारा वह करता है। मानव जावन को मये रूप में कवि देखता है—

लानमा गिराशा में दलमल,

चेना और मुख में निहल

यह वग है दे मानव जीवन

कितना है रहा निखर।

मानव के निखरे जीवन का धार उसका ध्यान जाता है तथा वह मुख और दुख का विह्वलना का अनुमान लगाता है। मानव के इस प्रेम में उनके आत्मपरव व्यक्तित्व की विगट मानव सत्ता के अभिविषय के रूप में प्रस्तुति किया है।

लहर में सकलित 'अरा वहला की शात बडार', 'जगती की मगलमयी उपा बन वहला उस दिन आई थी' और 'अशोक की चिता' ऐसी ही रचनाएँ हैं। लहर में चार रचना बसी हैं। इनमें प्रथम उल्लिखित प्रथम दो रचनाएँ मूलगध कुटी विहार के सत्रप में है। 'निज भलको के छषटार में' और 'शशि सी वह सुवर रूप बिभा' प्रसादजी ने चद्रगुप्त नामक नारक के अभिनय के समय गाये जाने के लिए लिखा था। चद्रगुप्त का अभिनय वतमान पखीण टाकाप में, सम्भवत जिनका नाम उस समय एक्सलियर सिनेमा था, १७ दिसबर सन् ३३ को हुआ था। मूलगध कुटी विहार से सबद्ध रचनाओं के द्वारा विश्व मानवता का जयघोष करने का कवि ने प्रयत्न किया है तथा तिमिर हर कर विश्व के दुखभार हरण की भगवान् बुद्ध से याचना की है। वा भी भगवान् बुद्ध की अभिवदना में मध्य पथ की प्रशंसा का गया है, और उस ही उदार का मार्ग धारित किया गया है। दूसरी रचना जो मूलगध कुटी विहार से सबद्ध है, उसका अभिवाचन मगलाचरण के रूप में समाराहत्मक में किया गया था। उस रचना में गौतम का चेतना का तब की तारण्यमयी प्रतिभा तथा प्रा प्रतिमितता की गरिमा धारित किया गया है। सा ही वमचक्र के प्रवतन द्वारा युग युग का मानवता को व्यापक सप की इस ज मभूमि का नव आभरण सदेश में सुनाया गया है। वह सपना में भूलन की बात भी कहा गया है, जिसने धम की दुहाई देयी था।

तीसरीरचना 'अशोक की चिता' कलित विजय से उत्पन्न पाडा की आधार बनाकर लिखा गया है। इसमें विजय पराजय

महत्त्वपूर्ण है। मानूँ कि वे वीर पुत्रों के लिये, हारने पर, प्राण का भिक्षा माँगना, ठीक नहीं, क्योंकि युद्धभूमि में मरनेवाले ही वास्तव में विजयी होते हैं। यह महान देश के वीर पुत्रों का था। भारत के लिये यह साहित्य स्रष्टा का मन था। छत्र प्रपञ्च के कारण, स्वतन्त्रता की युद्धभूमि में हार कर यदि शत्रु समायोजन करना पड़े तो प्रथम शत्रु को वरो, वह विजय की प्रतिभूति है।'—इस रचना का यह संदेश है।

पेशोला की प्रतिध्वनि भी ऐसा ही रचना है। उस रचना में यह कहा गया है कि राणा प्रताप की इस वीरभूमि में आज वह वीरता कहाँ गई, आज तो स्वयं और मौनसा है। सपन सपना के बलब से बालिमा उतरा हुई है। काव प्रश्न करता है अस्थिरता का दुःखता लेकर इस मना में कौन ऐसा है, जो छाती ऊँची करके यह कह सके कि लाहे से ठोकर और बख से परछ कर यह देख लिया जाय कि मैं पिशाचों की सीला को बिखरा कर चूर चूर कर दूँगा और उड़ घूल या उड़ा दूँगा। पुनः कवि पूछता है कि काई बालता क्या नहीं? क्या इस अंधकार में, अंधकार के पारावार में, कोई पतवार धामने वाला नहीं है। कवि की आशा उसी की आज में उस क्षीण व्याप्ति के लिये क्षुब्ध होकर भटका है। लान्छन कवि अंत में पुनः दुःखकार भरा आत्म्या संबोधन कर पूछता है—
'गौरव का काया,
पदी माया है, प्रताप का,
वही मेवाड

जितु आज प्रतिध्वनि कहाँ?'

भारतीय इतिहास की राष्ट्रिय भावनाओं वाली प्रज्वलित गौरव गाथाओं का आधार बनाकर कवि ने इन दोनों (अतुलित, अमापित)

निर्वेज रचनाओं की सृष्टि की है। इन दोनों रचनाओं के पढ़ने के पश्चात् ऐसा पात होता है कि हमारे राष्ट्रीय उद्वोधन का अमर महान जीवन की प्रेरणा से भाष्पावित हमारे कवि बरह रहा है। यह महान राष्ट्रिय हाजिरे हुए भी मानवता का विराधी नहीं है। यह कवि का अमर सफलता है। दूसरा बहुत बड़ा सफलता कवि का इसमें यह कि उसकी राष्ट्रीयता का यह महान युग युग के लिए है, मनागत है, कालातीत है, पल पल पर परिवर्तित एवं जड़ नहीं है।

'लहर' की अंतिम रचना प्रलय की छाया' अपना विचार महत्त्व रखती है। यह रचना सन् १९३१ में 'हस्त' में प्रकाशित हुई थी। अतद्वदा और मनोव्यक्तिगत विचारों का गभीरतापूर्वक उपयोग और प्रयोगकर प्रसादजी ने 'प्रलय की छाया' की रचना की है। रमणीय रूप और जीवन की पल पल परिवर्तित भावनाओं को सुंदर प्रतीकों के माध्यम से चित्रित करने का प्रयत्न, ऐतिहासिक व्यावस्तु के आधार पर कवि ने किया है। गुजर की रानी कमला का जीवन चलन समय प्रतीत के रूप संबंधी अपने भावों के घात प्रतिघात को अपने मानस में सदाक चित्र की भाँति देख रहा है।

एक समय ऐसा था, जब कमला के चरणों को रूप साध्य के निखार के कारण समीर छूकर सात सेता था। वह मधुमार में विभोर हो गई था। गुजर राज्य की सारी गभीरता उसकी अगलतिका में एकत्र हो समा गई थी। उसके अधरो में एनी मुखान खिल पड़ती थी कि जदन की शत शत दिव्य कुसुमकुतला अक्षराएँ उमका अक्षर चमकी थी। जीवनमुरा की उप पहला प्यासी की जिसमें आशा, अभिलाषा और कामना के

कमनीय मयूर भ्रकार की वाशा थी
देखते देखते कमला भ्रको लेने लगी।
आगे खुलने पर उसने देखा कि विश्व
का सारा वैभव उसके पाँवों पर लोट
रही है। गुर्जरराज भा उसके सामने
झुके हुए हैं। सारी सृष्टि उस युवती को
ऐसे भाव से देखती, माना लाजसा का
दास मणियाँ—ज्योतिमयी, हास्यमयी
विकल चितानमयी—उमड़े थी। लाग
उसने स्रष्टा का रहस्य हूँदने लग।
उसका सौंदर्य चद्रवात मण्डप समान
था तथा हृदय अनुभूतिपूर्ण। गुजर के
पाल में वह स्वयम्भुक्ति का सो सुगन्धित
या धीरे धधु की धपा करता थी।

निमित्त नटी तजिता सी भीह नचाता उसने जीवन में
आया। पक्षिनी की कृतानुगाथा सार
भारत के कोन कोन में भुज उठा।
नारी की यन्त्राया वा दश में भाल
उत्तत हुआ। भारत की नारियो ने
इन गौरवगाथा का मुन कर भविष्य
का बड़े हाथ से देखना आरम्भ कर
दिया। यह देखकर कमला के जीवन
का लाज भरा निद्रा जाग उठी। वह
पक्षिनी से अपना तुलना करने लगी
और साबने लगी कि क्या हृदय मेरे
पास कहा था ? मैं तो उस समय रूप
की महत्ता नापने लगी थी। वह साबने
लगा थी कि पक्षिनी तो स्वयं जला
था, किन्तु रूप के दावान्त द्वारा मैं वस
ही तुलना का जल जगी।

गुजर में सुन्तान के कारण लाहव नृत्य आरंभ हुआ।
देश की विपत्ति में कमला अपने पाल के
साथ समर भूमि में कूद पड़ा। इससे
कमला का वार पात अत्यन्त प्रसन्न
हुआ। किन्तु हार इनका हा हई। दश
घाहना पड़ा। निशमित टा दावा
गरण खोजने लग। किन्तु दुर्भाग्य
उनका पाधा करने में भाग था। दाहदूरा
मजब दाना तर का धीपा में था सो

रहे व गुरका का एक दन भमावात
मा आया। गुजरनेज लड़ने लड़ने
दू जन गय और कमला बगिनी हुई।
यह मचने लगा कि पक्षिनी का अनु
बगग तो न कर सकी, किन्तु पक्षिनी
का भूल का परिवार अवश्य बगगा।
निद्रिना के रूप में उसने सुन्तान को
गारन का अन्त प्रतिगा की। रूप का
व्यान वह उस समय भा न भुजा सकी।
उसने चाहे कि तुलना मरने के पहले
मेरा यह रूप भा दले और सोचे कि
मैं जितनी म्हात् और विश्वनिपुण हूँ।

वह नि-तो लई गया। वह कभी वहा पति का
प्रतिपाथ लन के लिये मचलती और
कभी गुलान के निमम हृदय में रूप
सुदरता का अनुभूति क्षण भर के लिये
ही गही जयाने का जात सोचता।
वह एव हा विचारा में तिरती
उतरती रहा।

वह सुलान के समाप पृथ्वी गई। उसने आत्महत्या
के लिये कृपाया निकाला। किन्तु कृपाया
छन नी गई। उम क्षण वह सुनु से
बचा और साबने लगी कि जीवन
अलम्य है, जावन सोभाग्य है, जावन
प्यारा है।

कमला ने सुन्तान से कहा क्या मार कर भी मुझे
तुम मरने न दोग ? क्या तुम मे
मनुष्यता गप नहीं रह गई है ?
सुन्तान ने उत्तर दिया—देखता हूँ कि
भारत का नारियो का गौरव भाग
कल मरना हा है। पक्षिनी का मैं खो
पुका हूँ किन्तु तुमको नहीं खाना चाहता
तुम अपना कामलता से मरी क्रूरताआ
पर सासन करा।

यह कह कर सुन्तान ता चला गया पर सुन्तान का
रग मटल अथ कमला के लिये स्वयं
निबर बन गया।

एक दिन सच्चा के समय सच्चा किसान की पदचाप

मुनकर वह चौक उठी। 'अरे मामने
शशव का अनुवर 'मानिक' था। कमला
ने उससे पूछा, अरे अभाग यहा तू
मरने आया ?

उसका उत्तर था यहा मरने नहीं आया हूँ रानी
जीवन पान की आशा में आया हूँ।

मुल्तान भी कहा था 'हूवे'। मानिक का मुख दुःख
मिला। फिर कमला के कानों में शूँज
उठा, जीवन द्रुतगम है जीवन मौभाग्य
है। कमला ने उच्छ्वास भरे शब्दों में
कहा, उस छड़ दीजिये। रानी की
पहली आना समझकर, मुल्तान ने
उसकी यह बात मान ली। कमला का
हृदय बोल उठा—

हाथ रे हृदय !

तूने कीड़ी के माल बेचा, जीवन का
मणि कोष

श्रीर आकाश का पकड़ने का आना मे

हाथ ऊँचा किये, सिर द दिया प्रतल भ'।

बणदेव गुजरेल भी तो जावित थे उ होने मदेश भेजा
था कि आन पर कमला प्राण दे द,
किंतु वह जीवनमाह वश ऐसा न कर
सकी थी।

मानिक भी तो उससे आज मर जान को ही कहना
है। वह पुन सोचने लगती है, मेरा
प्रेम शुद्ध कहा है ? रूप व वारण मैं
गुजरान की रानी बनी और कहा रूप
भारतेश्वरी का पद प्राप्त कराने का
प्रेरणा दे रहा है। भारतेश्वरी का
यह पद रुमापुरी का उपहार और
शृंगार है, यह कल्पना उस मुग्ध किये
हुए थी।

मानिक ने मुल्तान की हत्या कर खुशरो के नाम से
राज्यशासन सभाला। पर कमला को
अब यह अनुभव होने लगा कि नारा
तेरा वह रूप, जिसमें पवित्रता की
छाया न हो, जावित अभिगाथ है।
अब उसके सौंदर्य के चपल चरण का

सत्ता हिमविंदु सी टुलबन लगी। उसे
रूप सत्ता मोक्ष का पूरा अनुपम
ज्योतिर्हीन तारा लगा जो कालमा
की धारा में बिलीन होता दीख पड़ा।
उमके रूप सौंदर्य की सृष्टि अब अमफल
हो सो गयी है।

'प्रलय की छाया' हिरी ने उन सदन पयवनिवाय
मुक्तों में है, जिसकी गौरवगाथा
भाव और कला दाना सृष्टि में सनातन
है। कथा का आधार पूरा ऐतिहासिक
है। कवि ने इस ऐतिहासिक तथ्य
में रूप के एकमात्र माध्यम की निरर्थकता
जिस रूप में प्रतिष्ठित की है, वह प्रसाद
का चिरता माध्यमाली उस बाधदृष्टि
का पता चलता है, जिसमें लड़ा गनी
शक्ति के निर्माण की ऊर्जस्वित मभाव
नाए हैं। इस सत्य के उद्घाटन के
समय में रक्षा की उवगा प्रसाद
की कमला के सामने टिकती नहीं
है। यह कवि की अपूर्व सफलता
है। हो सकता है कि कुछ लोग
कमला के अंतर चित्र का कालिदास
के अंतर चित्र से तुलना करें किंतु
यह बात भूलने की नहीं है कि
कालिदास के युग में मनोविज्ञान की
धार नहीं थी ? वहाँ अनुभूति दर्शन
का, सूक्ष्म निरीक्षण का साम्राज्य था।
ऐसा स्थिति में हम सीमा तक पञ्चना
अपना काम नहीं हो सकता यह
साहसिक काय उपायधारिता को ही
छोमा देता है।

लंदर में तीन निवास छ' हैं जो अत्यंत सरल हैं।
निवास छंदरा विनेयताया की और
सवाधेय गौरवतापूज्य उमके प्रतिष्ठापक
'निगला' ने विचार किया है। उद्घाटन
उमके अवध में जा बुद्ध लिया है,
उमके नई बान न हो वही दास पड़ी
और न मुझे गात हो है। इसलिय
परिमल की भूमिका से उस समय में

जिसी ने वाष्प में विनीन कर दिया हो
या असीम सागर में मिला दिया हो।
साहित्य में इस समय यही प्रबल जोर
पकड़ता जा रहा है और यही मुक्ति
प्रयास के चिह्न भी हैं। अन्तर्लोक-प्राप्ति
प्राप्ति के लिए वह चतुर साहित्यिक
फिर उसे अत्यंत नील मंडल में लीन
कर देता है। पान्था के मिलने में विद्या
अनात चिरनन अनादि सब का हाथ
के इशारे से अपने पाम धुनाने का
इंगित प्रत्यक्ष करते हैं। इस तरह विद्या
की सृष्टि असीम मादय में पयवसित का
जाती है। और भा जाति के मस्तिष्क
में विराट् दृष्टि के समावेश के साथ ही
साथ स्वतंत्रता की व्यास की भी प्रखर
तर बरत जा रहा है।

यही बात छन्द के सबब में भी है। छन्द भी जिस
तरह जानन के अन्दर सीमा के मुख में
आत्मविस्मृति हो मुन्द नृत्य करते,
उच्चारण की श्रुति रहते हुए, अन्त
माधुर्य के साथ ही साथ श्रोताओं की
सामाजिक आनन्द में धुना रखते हैं, उन्हीं
तरह मुनन्द भी अपनी विषम गति में
एक ही साम्य का अपार मीदर्य देता है,
जैसे एक ही अन्त महासमुद्र के हृदय
की एक छोटी बहाव में ही, दूर प्रसरित
दृष्टि में एकाकार, एक ही गति में उठता
और गिरती हुई।]

‘लहर’ में रहस्यवाद से सबद अनेक गीत भी हैं। इन
गीतों में अद्वैत मीदर्य की अभिव्यक्ति
वक्त मान है, अहं स इह का समन्वय—
रहस्यवाद की अवस्था में स्थिति—तो
इनमें है ही। इन गीतों में कवि वन्दना
के आधार पर मिलन का साधन
उपस्थित करता है। इन गीतों में
प्रतिप्रतीक विधान द्वारा अपराध
सत्ता की एक समरता की स्थापना
मिलेगी। भावनाओं, अनुभूतियों तथा
अभिव्यक्ति की तादात्म्य स्थिति अनेक
गीतों में समन्वित होकर साकार हुई है।

उदाहरण के रूप में लहर से कुछ
पंक्तियाँ उद्धृत की जा रही हैं—

तुम ही वीन और मैं क्या हूँ
इसमें क्या है धरा, सुनो।
मानस जलधि रह चिर सुरित
मेरे द्वितीय, उठार वनो।

• • •

देवनाग का अमृत क्या की माया
छोड़ हरित बानन की आलस छाया।
विश्राम मागनी अपना,
जिसका देता था सपना,
विस्मय व्याप्त तल नील अक में,
अरण्य ज्योति की भील बनेगी जब सलील
ह सागर समग अरुण नील।

• • •

ठहर, भर आलो देख नयी—
भूमिका अपनी रंगमयी,
अखिल का लघुता आई अन-
मय का सुंदर बातामन,
देखने की अदृष्ट नतन,
अरे अभिलाषा के यौवन।

• • •

कितने दिन जीवन जलनिधि में—
विकल अनिल से प्रेरित हाकर
लहरी, जून जून चल कर
उठनी गिरती सी रक रक कर
सृजन बरगा छवि गति विधि में।

रहस्यवाद का ऊपर उल्लिखित भावनाएं प्रसाद के
रहस्यवादी पदों में मिलती हैं। ये गीत
भी उनमें आभावान हैं।

लहर का वैयक्तिक अर्थ और समष्टि का
समय करता है तथा विश्व मानवता
का मधुर बनना कर लाभमूल के
लिय अत्यंतशील होता है। इस प्रयत्न
के मूल में जीवन के आलाप की
शाश्वत आभा है। ‘लहर’ के गीत
सज्जन हैं। भाषा समतल है तथा
अनेक स्थानों पर उभरा एक सागोपाग
रूप में दोहरा पड़ता है। लहर के गीत

सा-मे पू-सा सा-सा न सा-सा न
सा-सा न सा-सा न है। सा-सा न
न सा-सा न न सा-सा न न
सा-सा न न सा-सा न न

साहर से = धी० १८।

[नि०] (हि०) साहर न सा-सा न।

साहराती = धी० १० ३८।

[नि०] (हि०) साहराती सा-सा न सा-सा न सा-सा न
सा-सा न सा-सा न।

साहराती = धी० ३ ५। सा १८ १८५।

[क्रि० ध०] (हि०) साहराती सा-सा न सा-सा न।

साहरि = धी० २३।

[क्रि०] (प्र० भा०) साहराती सा-सा न सा-सा न सा-सा न
साहराती सा-सा न।

साहरियों = धी० १४ १२१। धी० १२ ३६।

[ध० ११] (हि०) छोटा छोटा साहरा।

साहरियों = धी० १३, २३।

[ध० १०] (हि०) २० 'साहरियों'।

साहरी = धी० २४। धी० १८ ३६ १४। धी०

[ध० १०] (हि०) ५ ५० १७६ २०१ २२३ २३३।

धि० ४० धी० १५ ३४ ३५ १५

७७। धी० २१।

छोटी साहरा सा-सा न।

साहरीली = धी० ५६।

[धि०] (हि०) साहराती सा-सा न, साहरातीली।

साहरी लीला = धी० १२।

[ध० १०] (हि०) साहराती सा-सा न सा-सा न।

साहरी सी = धी० १७।

[धि०] (हि०) साहरा के समान।

साहरी सों = धी० ६३।

[धि०] (प्र० भा०) २० 'साहरा सा'।

साहरी = धी० ८ ३३ ५६। धी० ८। धी०

[क्रि०] (हि०) १८, ३६, १५२, १६५, २२०, २४१,

२४६ २५२, २६२। धी० १२, २६।

धी० ६१।

'साहराती' सा-सा न सा-सा न सा-सा न, सा-सा न।

साहरी = धी० ७१।

[ध० १०] (प्र० भा०) २० 'साहरी'।

साहरी = धी० १० १०। धी० ३ ३४ ६३,

[ध० १०] (हि०) ६८ ६६ ६६ १०१, १०२,

१०३। धी० २० ३६ ३६।

सा-सा न सा-सा न सा-सा न सा-सा न

सा-सा न सा-सा न सा-सा न सा-सा न

सा-सा न सा-सा न सा-सा न सा-सा न

साहरी साहरी = धी० १८।

[धि०] (हि०) साहरी सा-सा न सा-सा न सा-सा न

सा-सा न।

साहरी सा = धी० १० १०। धी० ८ ५४ ८१

[धि०] (हि०) १८१ २०२ २४१ २४६ १०० ३४।

साहरी सा-सा न।

साहरी साहरी = धी० १८, २६।

[धि०] (हि०) साहरी सा-सा न सा-सा न।

साहरी = धी० १८, २० २८ ३६, ४६, ५०,

[क्रि०] (प्र० भा०) ७७ १५२, १६० १६१ १६६।

साहरी सा-सा न सा-सा न सा-सा न सा-सा न

साहरी, सा-सा न सा-सा न।

साहरी = धी० १८३।

[क्रि०] (प्र० भा०) सा-सा न सा-सा न सा-सा न।

साहरी = धी० १८, २८। धी० ४१।

[क्रि० ध०] (प्र० भा०) साहरी सा-सा न सा-सा न सा-सा न

साहरी।

साहरी जात = धी० १६५।

[क्रि०] (प्र० भा०) साहरी सा-सा न सा-सा न।

साहरी = धी० ६२।

[क्रि०] (प्र० भा०) साहरी सा-सा न सा-सा न सा-सा न

साहरी सा-सा न सा-सा न सा-सा न।

साहरी = धी० १८१।

[ध० १०] (हि०) साहरी, सा-सा न।

साहरी = धी० १० ४०। धी० ६७, १०१,

[क्रि०] (हि०) १६७।

साहरी सा-सा न सा-सा न सा-सा न।

साहरी = धी० ३५, ६१।

[क्रि०] (प्र० भा०) साहरी सा-सा न सा-सा न।

साहरी = धी० १५ २२ १०५, १६६।

[क्रि०] (प्र० भा०) साहरी सा-सा न।

लहो = चि० १६५।
 [क्रि०] (ब० भा०) प्राप्त करता हूँ।
 लौघ कर = ल० ४१।
 [क्रि०] (हि०) लापना क्रिया का पूर्वकालिक रूप।
 ला = वा० ७७।
 [क्रि०] (हि०) लाना क्रिया का भ्रानामुचक रूप।
 लाछन = चि० २८। प्रे० २३।
 [स० पु०] (सं०) दोष, बलक।
 लाछित = क० ३०। चि० २८।
 [वि०] (सं०) जिसे लाछन या बलक लगा हो, कलकित।
 लाइ = चि० १५१।
 [क्रि०] (ब० भा०) लाकर, लाना का पूर्वकालिक रूप।
 लाई = ल० १६, ३२।
 [क्रि०] (हि०) 'लाना क्रिया का पूर्णभूतकालिक रूप।
 लाओ = क० ८४।
 [क्रि०] (हि०) लाना क्रिया का भ्रानामुचक रूप।
 लाओगे = का० १३३।
 [क्रि०] (हि०) लाना क्रिया का भविष्यत्कालिक रूप।
 ले लाओगे।
 लासों में = मा० २०।
 [स० पु०] (हि०) बहुतायें।
 लागत = चि० १७६।
 [क्रि०] (ब० भा०) 'लगना या लागना' क्रिया का सामान्य
 बतमान रूप लगता है।
 [सं० जी०] (हि०) किसी काय की तैयारी में होनेवाला
 -यप।
 लागी = चि० ५६, ६०, ६८, ७०।
 [क्रि०] (ब० भा०) 'लगना' क्रिया का पूर्णभूत रूप।
 लाग्यो = चि० १६१।
 [क्रि०] (ब० भा०) लग गया पूर्णभूत रूप।
 लाघव = वा० १८२।
 [सं० पु०] (सं०) 'लघु' भाव लघुता, वमी। वमी,
 छोटाई। हाथ की सफाई।
 लाज = चि० ४१। का० २०, २४, २५, १७०,
 १८३, १८४।
 [सं० जी०] (हि०) शर्म। हया। नीहा। सज्जा।

लाजै = चि० ३५।
 [क्रि०] (ब० भा०) लाज करती है।
 लाजोहें = चि० ३, ५६।
 [वि०] (ब० भा०) लजानेवाली या, लाज करती हुई।
 लातन = चि० १०५।
 [सं० पु०] (हि०) नातो या परा।
 लाती = मा० १८, ७१। का० ३६। म० ५६।
 [क्रि०] (हि०) 'लाना' क्रिया सामान्य भूत रूप।
 लावा सी = का० १३२।
 [वि०] (हि०) लानी हुई सी।
 लाव लिया = का० कु० १२।
 [क्रि०] (हि०) 'लादना' क्रिया का पूर्णभूत रूप। बोझा
 किसी दूसरे पर रख दिया।
 लाभ = चि० ५२, ६२। म० ८।
 [सं० पु०] (सं०) हाथ में आना। व्यापार आदि में होने-
 वाला मुनाफा।
 लाय = चि० १७१, १७२, १८५।
 [क्रि०] (ब० भा०) लाना क्रिया का पूर्वकालिक रूप।
 लायक = चि० १८४।
 [वि०] (ग्र०) उचित, उपयुक्त। सुयोग्य, समय।
 लाया = मा० ४०। का० २६१। चि० १८४।
 प्रे० १३।
 [क्रि०] (हि०) लाना क्रिया का पूर्णभूत रूप।
 लाये = का० १६३।
 [क्रि०] (हि०) ६० 'लाया'।
 लायो = वा० २८१, २८६।
 [क्रि०] (ब० भा०) २० 'लाया'।
 लाल = मा० ३६। का० कु० ४६। का०
 २३५। चि० ६। म० ५। ल० ५१।
 [वि०] (हि०) रक्त वर्ण का।
 [सं० पु०] (हि०) प्यारा पुत्र।
 लालन = वा० २४३।
 [सं० पु०] (हि०) लाल का बहुवचन रूप।
 लालसा = का० २८, ५२, ११६, १३६, १५६,
 १६४, २३६, २६३, २६८। म० १६।
 प्रे० ५। ल० ३०, ७०।
 [सं० जी०] (सं०) प्राप्त करने का उत्कट इच्छा, लिप्सा।

लालसिंह = ल० ५१।

[सं० पु०] (हि०) एक व्यक्तिविशेष का नाम।

लालिमा = का० कु० ३० ३६। का० १८३।
चि० १६४।

[सं० स्त्री०] (हि०) लाल हान का भाव। लाली।

लाली = आ० ११, ६६। का० कु० ४५ ७६।
का० ६६ १००, १०३, १३६ १७१,
२८१। चि० १४७। ल० ३०, ४२,
६०।

[सं० स्त्री०] (हि०) लाल होने का भाव, लालपन, प्रतिष्ठा।

लाघव्य = प्रे० १८।

[सं० पु०] (स०) सरस सुंदरता। जवला या नमक का
भाव या धर्म। नमकीनपन।

लाघव्य शैल = आ० २०।

[सं० पु०] (स०) सादर्य का पवत। नमक का पहाड़।

लावने = चि० ४१।

[क्रि०] (प्र०भा०) लाने।

लास = का० १६०, २६४।

[सं० पु०] (स०) नृत्य, नाच।

लिखने लिखते = का० कु० ५१।

[भ०य०] (हि०) बार बार लिखने की क्रिया।

लिखना = आ० ४५। का० कु० ७६ ८१। का०
३८ ६३ १०६, १६७। चि० ४८।
म० ४४। म० ६।

[क्रि०] (हि०) लिखबद्ध करना, चित्रित या अंकित
करना काय रचना करना।

लिपट गइ = का० कु० २४, १२५, १२५। का०
१७६।

[त्रि०] (हि०) लिपटना क्रिया का पूर्ण भूतकालिक रूप।

लिपटती = का० १४। का० ६७।

[त्रि०] (हि०) लिपटना क्रिया का सामान्य भूतकालिक
रूप।

लिपटा = का० कु०, ६३। का० ४६ १०३,
१४३ १५२ १६८।

[त्रि०] (हि०) लिपटना क्रिया का पूर्ण भूतकालिक रूप।

लिपटा लिपटा = का० २१।

[प्र०क्रि०] (हि०) बार बार लिपटा कर।

लिपटा = का० कु० ७५। का० १०१। का० २२,

[क्रि०] (हि०) २० 'लिपटा'।

लिपटे = आ० ४८। का० १५१। का० २२।

[त्रि०] (हि०) लिपटना क्रिया का प्रेरणार्थक रूप।

लिपि = का० ६४। चि० १६८। प्रे० २०।

[सं० स्त्री०] (सं०) अक्षरों या वर्णों के विह्व। वर्णमाला
लिखने की प्रणाली।

लिप्सा = का० कु० ८३।

[सं० स्त्री०] (सं०) पान का इच्छा। लालसा।

लिया = आ० ४०। का० १३, १८, २२। का०
१६२, २०६, २८५। प्रे० ६, १०,
११, १२, २३, २५।

[क्रि०] (हि०) ग्रहण या स्वीकार किया, प्राप्त किया।

लिया है = का० ५४।

[क्रि०] (हि०) लेना क्रिया का पूरुषभूत कालिक रूप।

लिये = आ० १ बार। का० ५ बार। का० कु०
३ बार। का० २३ बार। चि० ३
बार। म० ३ बार। ल० ३ बार।

[क्रि०] (हि०) २० 'लिया'।

लियो = का० कु० ४६। चि० ३४, ३५, ७३,

[त्रि०] (प्र०भा०) १५६, १६३।

लिया।

लिवा चलेगा = का० २२०।

[क्रि०] (हि०) 'लिवा चलना' क्रिया का भविष्यत्
कालिक रूप। साथ लेकर चलना।

लीक = का० २५१।

[सं० स्त्री०] (हि०) लकार, रेखा। पगडंडी। रुद्रि।

लीजिए = का० कु० ६। चि० १७५।

[त्रि०] (हि०) लना क्रिया का प्रेरणार्थक रूप।

लीजे = का० कु० ६। चि० ७१, १८४।

[त्रि०] (हि०) २० 'लीजिये'।

लीजे = चि० १७६।

[क्रि०सं०] (प्र०भा०) २० 'लीजिये'।

लीन = का० १४, १५, १६७, १७७, १६५,
२५७। चि० ५१। का० ३६।

[त्रि०] (सं०) समाया हुआ निमग्न। काम में लगा
हुआ, तमय।

लीना = आ० ७३।

[त्रि० स्त्री०] (सं०) २० 'लीन'।

लोने = चि० १७१ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) 'लेना' क्रिया का भूतकालिक रूप ।

ली हे = चि० ६८ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) 'लेना' क्रिया का भूतकालिक रूप ।

लीन्हो = चि० ५८, ६०, ६४, ६५, ६६, ६७,

[क्रि०] (प्र० भा०) ६८, १५६ ।

लेना क्रिया का पूरुषभूतकालिक रूप,
ले लिया ।

लीन्हो = चि० ६५, १७७ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) ६० 'लीहो' ।

लीला = का० कु० १, ६ । वा० ३२, ६३, ७६,
१०३, १०४, ११५, १४०, १९०,
२५३ । चि०, २३, ४६, १६१ । ऋ०
१६ । प्र० ३, १८, २३ । स० ३०, ६६ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) मनोरंजन के लिये किया जानेवाला
व्यापार, नाट्य, खेल आदि, प्रेम
विवाद । साहित्य में एक भाव । विचित्र
काम । अवतारा या देवताओं का चरित्र
का अभिनय ।

लुटेरा फर्म = का० कु०, ८८ ।

[सं० पु०] (हि०) लूटनेवाला का कार्य ।

लुटे से = का०, ४४ ।

[वि०] (हि०) लुटे हुए के समान ।

लुडकना = ऋ० २५ ।

[क्रि०] (हि०) ऊपर नीचे चक्कर खाते हुए भाग या
नीचे की ओर जाना, दुलबना ।

लुडका = भा०, २८ । स०, ४८ ।

[वि०] (हि०) जो लुडक गया हो या जिसे लुटका
दिया गया हो ।

लुप्त = का० कु०, १०६ । वा०, २५२ ।

[वि०] (सं०) क्षिप्त हुआ । गुप्त, अदृश्य ।

लुब्ध = का० कु०, ८३ ।

[वि०] (सं०) लोभी । लुभाए हुए ।

लुब्धनयन = का०, ३१ ।

[सं० पु०] (सं०) लुभाए हुए नयन या सलचायी हुई
आँखें ।

लुरि = चि०, २२ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) 'लुखना' क्रिया का भूतकालिक रूप ।

लूंग = का०, १५२ । म० १७ ।

[क्रि०] (हि०) लेना क्रिया का भविष्यत्कालिक रूप ।

लू = म०, ५ । ल०, ६६ ।

[सं० स्त्री०] (हि०) गरम और तज हुआ ।

लूट = स० ५२ ।

[सं० स्त्री०] (हि०) लूटने की क्रिया या भाव ।

लूटसी = भा०, १० । का०, ४०, ६५ ।

[क्रि०] (हि०) 'लूटना' क्रिया का एक रूप, बलाव
प्राप्त करती ।

लूटना = स० १७ ।

[क्रि० स०] (हि०) मारकर या टरा घमकाकर किसी
का धन छीन लेना । ठगना । माहित या
मुगब करना ।

लूटने = चि०, ७२ ।

[क्रि०] (हि०) 'लूटने' क्रिया का भविष्यत्कालिक
रूप ।

लूसा = म०, ११ ।

[वि०] (हि०) गरम और तज हुआ के समान, झुलमा
देनवाली गरमी के समान ।

ले = भा०, ४७, ५८, ६६ । क्र०, २० ।

का०, ३८, ४०, ४७, ४८, २२१,

२२५, २२७, २३७, २४४ । म०, १२ ।

स० १०, १४, ३७, ४८, ४९ ।

[क्रि० स०] (हि०) लेना क्रिया का प्रेरणाधिक रूप,

लेइ = चि०, ३६, १८६ ।

[वि०] (प्र० भा०) 'लेना' क्रिया का भूतकालिक रूप ।
लकर ।

लेइवें = चि०, ३३ ।

[क्रि०] (हि०) लेने, 'लेना' का भविष्यत्कालिक रूप ।

लेकर = भा०, ३६, ४४, ४९, ७६ । वा०, २१,

२६ । का० १४, ६४, १४१, १५०,

१७४, १५७, १६१, १७६, १८०,

१६१, २४८, २६४ । प्र०, ११, २५ ।

स० ४०, ४५ ।

'लेना' का भूतकालिक रूप ।

लेवे = वि०, १६२ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) लेना क्रिया का सामान्य वतमान-कालिक रूप ।

लेश = बा०, ६२, २५४ । प्रे०, १६ । ल०, ५१ ।

[स० पु०] (सं०) मण्ड, बहुत ही थोड़ा अंश । चिह्न, निशान

लेह = वि०, १६६ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) लेना क्रिया का ध्यानार्थक रूप, लो ।

ले के = वि०, ६, ३८ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) लेना क्रिया का पूर्वकालिक रूप, लेकर ।

लो = क०, १८, २५ । बा० कु०, ५८ । का०, ५७, १२८, १८३, २४६ । ल०, १०, १६ ।

[क्रि०] (हिं०) दे० 'लेह' ।

लोक = बा० कु०, ६३ । का० ७०, ८७ । १६६, १६७, १७०, १७१, १७५, १८२, १८३, २३५, २४२, २६१, २६४, २६६ । वि०, ४३, १५७, १८३ । ऋ०, ३४ ।

[स० पु०] (सं०) ससार, जगत्, भुवन । लोग, जनता ।

लोकअग्नि = का०, २४७ ।

[सं० लो०] (सं०) ससार की आग । ताप, दुःख ।

लोकल = वि०, १७८ ।

[स० पु०] (ब्र० भा०) लोक का बहुवचन रूप ।

लोकपथिक = बा०, १२३ ।

[सं० पु०] (सं०) ससार पथ में गमन करनेवाला मानी ।

ससार के सुख दुःख का सहन करनेवाला मानव ।

लोकल्लाम = का० कु० ५६ ।

[सं० पु०] (सं०) अनप्रीय, लोकरजव ।

लोग = मा०, ४० । बा० कु०, ५१ । का०, १६६ । वि०, १०१, १८३ । म०, १७ ।

[सं० पु०] (हिं०) जनवर्ग, जनता ।

लोगन = वि०, १७६ ।

[सं० पु०] (हिं०) लोगो, जनता ।

लोगे = क०, २७ ।

[क्रि०] (हिं०) लेना क्रिया का प्रत्ययार्थक रूप ।

लोगों = म०, १२ । ल०, १७ ।

[स० पु०] (हिं०) लोग का बहुवचन ।

लोचन = बा०, २३५, २५१, २८० । वि०, ३ ।

[स० पु०] (सं०) नैन, आँख, नयन ।

लोटना = बा०, १२१ । का०, ४६, ८८ । वि०, ३८ । ऋ०, ३३ ।

[क्रि० म०] (हिं०) चित और पट हाते हुए इसर उधर हिलना । सुडकना । कष्ट से बरबटें बदलना । तरुपना ।

लोटि = वि०, ४२, ६० ।

[क्रि० म०] (हिं०) लोटना क्रिया का पूर्वकालिक रूप, लाटकर ।

लोभ = बा०, १८१ ।

[स० पु०] (सं०) एक वृक्ष विशेष का नाम, लोय ।

लोनी = वि०, २२, १४७ ।

[वि० लो०] (सं०) सुन्दर, मुहावरी ।

लोप = प्रे०, १७ ।

[स० पु०] (सं०) नाश, गायब, अस्तदान ।

लोभ = बा० कु०, १३, ६२ । वि०, ६५, १४२ । ऋ०, ३८, ४४ । प्रे०, १० ।

[स० पु०] (सं०) दूसर की वस्तु प्राप्त करने की कामना । लालच, लिप्सा ।

[लोभ सुख का नहीं न सो डर है—भजातशत्रु का पीठ, प्रसाद सगीत म पृष्ठ ५८ पर सवासत २ पक्ति की कविता । स्वामि भक्त युवक का कथन है कि मुझे सुख का लाभ नहीं है न तो दुःख से भय है । मेरा प्राण तो कतव्यपथ पर निछावर है ।]

लोभा = वि०, १५०, १६३ ।

[क्रि० म०] (हिं०) लुभा जाना ।

लोभी = बा०, ११५ । वि०, १४६ । ऋ०, ७४ । [वि०] (हिं०) लाभ करनेवाला या जिस लाभ हो, लालची ।

लोभ = बा० कु०, ७७ । ऋ०, ३१ ।

[सं० पु०] (सं०) रावी, बाल ।

वक्तृता = का० कु०, १०६।

[स० खी०] (स०) वाक्पटुता। भाषण देने की योग्यता या शक्ति। व्याख्यात।

वक्तृ = का० कु०, ७५। का०, ६२। ऋ०, ६०। ल०, १२, ६६। वा०, २५०।

[स० पु०] (स०) छाती, सीना, उर स्थल।

वक्तृस्थल = का०, १६४, १६८, २३३। ल०, ३१।

[स० पु०] (स०) छाता, उर, हृदय।

वक्तृ = का०, १२५।

[स० पु०] (स०) वक्तृ का वक्तृवचन।

वचन = का०, कु०, १०१। वा०, ११०, २४४।

[स० पु०] (स०) मनुष्य के मुँह से निकलनेवाले साधक शब्द। वादा। वार्ता, कथन, उक्ति।

वज्र = का, २००।

[स० पु०] (स०) फौलाद। इद्र का एक ताक्षण और कठोर शस्त्र। बिजली। हारा। भाला।

वज्ररश्चित = का०, १६८।

[वि०] (स०) वज्रमय। वज्र से जडा हुआ। मटल। वज्रलिखित।

वज्रप्रगति = का०, १६५।

[वि०] (स०) बिद्युत गति, दृढ़ गति।

वज्रहृदय = प्रे०, ६।

[वि०] (स०) अत्यंत कठोर हृदय, पाषाण हृदय।

वदन = का० कु०, ३४, ६६, ५१। का०, ४, ११। वि०, ५६।

[स० पु०] (स०) मुख, मुँह। बात कहना, बोलना।

वदनविधु = का० कु०, २२०।

[वि०] (स०) वदना के समान मुख।

वदान्यता = ल०, ५६।

[वि०] (स०) बहुत बड़ी दानशालता। मधुरभाषिता।

वत्स = व०, १५। वा० कु०, १०१, १०२।

वि०, ६४, ७४, १३७।

[स० पु०] (स०) गौका बच्चा, बछड़ा। बालक पुत्र।

वर्त्तमान = का०, १३१, १६५, १६६, २१०। प्रे०, १३।

[वि०] (स०) जो इस समय हो या चल रहा हो।

उपस्थित, मौजूद, विद्यमान। प्राप्ति निक आकलन का।

वध = वा० कु०, १२१।

किमी मनुष्य को जान बूझकर किसी

[स० पु०] (स०) उद्देश्य से मार डालना।

वधिका = का०, २८, २६।

[स० पु०] (स०) वह जो प्राणदंड पानेवाले का वध करता है, फाँसी चढ़ानेवाला। व्याध, बहेलिया।

वधू = का०, २४।

[स० खी०] (स०) नवविवाहिता स्त्री, दुल्हन। पत्नी, माया। पुत्र की बहू।

वन = का०, ४४, ४६। का० कु०, ६६, ६७, का०, ६३, ६६, १५३, १५८, २१७, २६५, २६८, २८१, २६०। वि०, २८। ऋ०, १७।

[स० पु०] (स०) जंगल। वनीचा। जल भरण।

वनकुञ्ज = व०, २६।

[स० पु०] (स०) जंगल। वाटिका। झाड़ी।

वनकुसुमो = का० १८१।

[स० पु०] (स०) जंगल के प्रभूत। उपवन के फूल।

वनपथ = का०, ८१।

[स० पु०] (स०) जंगल का रास्ता। उपवन का मार्ग। ऊँचा नीचा, बीहड़ रास्ता।

वनमाला = का०, २८।

[स० खी०] (स०) जंगली फूलों की माला। गले से परो तक लटकनेवाली पुष्पमाला।

वनमिलन = वि०, ५५।

[स० पु०] (स०) वन में हुआ मिलन। जंगल में हुई भेंट।

[वन मिलन—इदु गोप ६६ किरण ६, बला १ म 'वनवासिना बाला' के नाम से प्रकाशित तथा चित्राचार मे 'वनमिलन' शीर्षक से पृष्ठ ६३ ७२ तक संकलित, अभिज्ञान शाकुन्तल की प्रेरणा से रचित प्रथम। प्रारंभ मे कवि ने हिमालय का वर्णन किया है और यह बताया है कि हिमालय अपनी प्राकृतिक सुगन्ध के मध्य पर्वतराज के रूप मे विराज रहा है और उनके कटि प्रदेश मे महर्षि कश्यप का सुंदर प्राकृतिक आश्रम है जहाँ

वन की सहज शीसपदा शोभित है। परपरागत रूप में फूला और पंख पीया का वसन किया गया है। उसके मध्य सुंदर सहज पवित्र स्वभाववाले मुनि विराज रहे हैं। वहाँ पर प्रियवदा और अनुसूया नाम की वनवालाएँ सुशोभित हैं। व शकुंतला के लिये चिंतित हैं। परस्पर इनकी बातों इस संबंध में कायमपूरण है। साथ ही उसमें उत्तमियाँ और मुद्रावरे भी हैं। उसी समय कश्यप का शिष्य वही आया क्योंकि इसके एक पक्ष में गौतमी राजधानी से आई थी फिर भी उसने शकुंतला का कोई समाचार नहीं दिया था। गालव ने यह समाचार दिया कि शकुंतला एव भरत ने साथ महाराज दुष्यंत मरीचि ऋषि के आश्रम में आ रहे हैं। वन शासियों के बीच में जब यह राज परिवार आया तो उसका वसन कवि ने इस रूप में किया है कि शकुंतला और दुष्यंत के बीच में भरत इस प्रकार शाशित हैं जस धर्म और जाति के बीच में आनंद। मित्रों पर प्रियवदा और अनुसूया दुष्यंत पर न्यय करने लगी तो शकुंतला ने उन्हें रोक कि बीवी बातें बिसार दो और इनके चरित्र पर कुछ मत कही ताकि हमारा इनका फिर बिछोह न हो। अपने पिता कश्यप से शकुंतला ने अपनी इन दोनों प्रिय सखियों का माँग लिया। येनका भी इसी बीच में उतर पड़ा। कश्यप ने सब की आज्ञावादी दिया और सब अपने अपने स्थान की चला पड़े। पूरा वसन काव्यात्मक ढंग से है। सौं य वसन में जो सफलता प्रसादजी ने प्राप्त की उस का बाजबिंदु इस रचना में है। यह रचना प्रसादजी के सहज प्रेमसौन्दर्य का परिचायक है।]

वनलक्ष्मी = का०, २६२।

[सं० ली०] (सं०) वन की छटा, वन की शोभा। वन की देवी।

वन धन = का०, १५३। प्र०, ६।

[अव्य०] (सं०) एक जंगल से दूसरे जंगल को।

[वनवर्गसिनी जाला—देखिए वन मिलन।]

वनवासि = का०, १०२।

[सं० पुं०] (सं०) जंगल में रहनेवाला। बस्ती छोड़कर वन में रहनेवाले व्यक्ति। जंगली, भ्रष्ट व्यक्ति।

वनवैभय = का०, १०१।

[वि०] (सं०) वन का ऐश्वर्य, जंगल की मर्यादा। वन की शोभा।

वनरोभा = म०, ६।

[सं० पुं०] (सं०) वन की छाया, जंगल का सौंदर्य।

वनस्थला = का०, २३५।

[सं० ली०] (सं०) जंगली स्थान, वनभूमि। वनसङ्ग।

वनस्पति = का०, ७८।

[सं० ली०] (सं०) पंख पीरे। जडा डूटी।

वनिता = वि०, ७७। म०, १११।

[सं० ली०] (सं०) नारी, स्त्री। प्रिया प्रमिता। रमणी।

वनिताश्र = प्र०, ७।

[सं० ली०] (सं०) स्त्रियों, नारियाँ रमणियाँ।

वनो = का०, १८२।

[सं० पुं०] (हिं०) २० 'वन' (बहुवचन)।

वनो से = का०, १८२।

[सं० पुं०] (हिं०) जंगल का मध्य से।

वय देश = वि०, ७५।

[सं० पुं०] (सं०) जंगल प्रदेश जंगल, प्रात। भ्रष्ट व्यक्ति अशिक्षित जंगली इलाका।

वन्या = का०, १६।

[वि० ली०] (सं०) वन में पैदा होनेवाला वनोद्भवा। जंगली।

वपु = का०, ७६, २८८।

[सं० पुं०] (सं०) शरीर। देह।

वय = का०, ७५, २१३। वि०, ७०।

[सं० ली०] (सं०) उम्र, अवस्था।

वर = का० कु०, १०६ का०, ३१, २११,
[म० पु०] (स०) चि०, ४५, ७०, ३६।
पति, स्वामी। दुलहा। किसी पूज्य
से प्राप्त सिद्धियाँ। फन।

वर कर्णधार = का०, १५। चि०, ४८।
[म० पु०] (स०) श्रेष्ठ नाविक।

वरणीय = का० ३०।
[चि०] (स०) वरण करने योग्य।

वरदान = का०, २७, ५३, ५७, ६८, १०२,
[स० पु०] (स०) १४८, १५३, १६२, २४३, २८१।
किता देवता या बड़े का प्रसन होकर
कोई भाई हुई वस्तु या सिद्धि देना।

वरनायक = चि०, ७३।
[म० पु०] (स०) अधिपति। श्रेष्ठ नायक अथवा बर्गधार।

वररूप आगरी = चि०, ४७।
[चि०] (हि०) प्रतिशय रूपवता।

वर वीर = चि०, ५२।
[स० पु०] (हि०) श्रेष्ठ वीर।

वरण = का०, १२। का०, १४, २५, ३६, ६५,
११४।

[म० पु०] (स०) एक वदिक देवता जो जल के अधि
पति माने गये हैं, जलेश। सूर्य।

[वरण]—श्रेष्ठ वदिक देवता जलेश वरुण वेदकाल
में आकाश के एव लुम्बे बाद क
साहित्य में समुद्र क प्रतीक रूप में
माय हैं। वरुण वदिक युग में नविक
एव भोक्ता नियमों के श्रेष्ठ प्रति
पालक देवता मान गये हैं और बाद
में धार धीरे इसका प्रभाव साहित्य
में कम होता गया और यह बवल
समुद्र क देवता क रूप में प्रतिष्ठित
रह गए। यह एक्वेश्वरवाद का प्रति
निधि रहा है। तथा प्रसादनी इसे
मुस्लिम सम्प्रदाय का आदे प्रवतक क रूप
में भी प्रतिष्ठित मानते हैं। समोटक
साहित्य में आ इसका स्थिति है। साम
का नया अन्त का इमने हरण किया
या और उस वापन भी कर दिया।

इमकी ज्येष्ठ पत्नी शुक्राचाय की कया
थी। इमकी एक अय पत्नी का नाम
वाष्णी था।]

वरुणालय = का०, ३०।

[स० पु०] (स०) समुद्र, सागर सिंधु।

[वरुणालय चित्त शांत था—विशाख का पहला
गीत, प्रसाद संगीत में पृष्ठ ८ पर
सकलित। स्नातक विद्यालय द्वारा यह
गीत गाया गया है। वह प्रिय अतीत
वैत गया और जीवन का बाला सध्या
उमने छिपा ले गई। भविष्य इतना
पास नहीं है कि इस बवल चित्त को
उसे साप दें क्योंकि शशव में शांति,
सतोष, वरुणा और सुपना की दृष्टि
होती था। कल्पना मगलमान क ती
थी। ज म ज म की सुखद स्मृतिया
सुमनाबली के रूप में खिलती थी।
शशव का यह मगनमय रूप और उस
की स्मृतिया बड़ी सुखद थी। लेकिन
सब क सब ने समय के साथ हमारा
साथ छोड़ दिया। भविष्य अवधारमय
है। इस दोलायमान हृदय का अव
कया बल ?]

वरुणी = का० कु०, ६२।

[चि०] (स०) वरुण का, वरुण सबरी, वरुण की।

वरुनी = चि०, १७४।

[स० पु०] (स० भा०) मोह, बरोनी।

वर्ग = का०, १८१, १६६, १३६।

[स० पु०] (स०) एक ही प्रकार का अनेक वस्तुओं का
समूह। कोटि। अर्थात्। सामान्य धर्म
या स्वर्ण रखनेवाले पदार्थों का समूह।
सभा। परिच्छेद।

वर्गा = का०, १८६।

[स० पु०] (हि०) 'वर्ग' का बहुवचन।

वर्जन = चि०, ६६।

[स० पु०] (स०) त्याग। छाड़ना। कुछ करने से रोकना।
मनाही। मुपानियत।

वर्जित = वा० पु०, १०६। वा०, १२२।
 [वि०] (म०) निपिष्ट। अग्राल। त्यागा हृमा।
 वर्ण = वा०, १६१, १६६, २६४।
 [सं० पु०] (म०) पदार्थों के ताल काल धाति भेदों के नाम। रग। भेद। प्रार। सत।
 ध्वज। रूप।

घर्ण = वा० ७२।
 [सं० पु०] (हि०) रग वा बह्वचन।
 घम = का०, १८। वा०, ४६। वि०, ६२।
 [सं० पु०] (सं०) घमच। यस्तर। घर। मवान।
 घर्ष = वि०, ६३।
 [सं० पु०] (सं०) सार। घृष्ट। सात डोहो का समूह या भाग।

घर्षा = घा०, ३५, ५५, ७१। वा० पु०, १६,
 [सं० लो०] (सं०) ७३, ११०। का० २३, ८३, १६६,
 १७६, १८१, २२३, २२६, २६६,
 २८१। वि०, १५०। ऋ० १५, २०
 ३१, ३६। म०, २४। म०, ६।
 एक ऋतु का नाम। पावस ऋतु।
 वरसात।

[घर्षा मे नदी फूल—इदु वला १ किरण १, आ०श
 ६७ मि० मे प्रकाशित तथा बिना
 धार मे पराग शपक के अतगत वृष्ट
 १५२ पर सकलित श्रजभावा का
 कविता प्रारम्भ मे कवि ने मेघाच्छन्न
 मनोहर प्राकाश और पुलकित मरा का
 बरान किया है। साथ ही सदा, पलक
 मधुकर आदि सबका परपरामत
 आस्थान किया है। विजली, वर्षा मे
 सब इन कविता मे वर्णित है और सभी
 स्थिति मे सत्त्व भरती नदी और
 उस के किनारे का वर्णन किया है।
 तममें चल हैं और गतिपूर्वक चलती
 है तथा अपार हिलोरे लेती हैं। किनारे
 से मिलकर व प्रसन्न होती हैं और उन
 की धारा का विस्तार होता है। नदी
 की धारा से कलकल नाद होता है
 और उस मे जा वेग है उस दलकर
 अनुपम का मन मुग्ध हो जाता है।

किनारे के घुर्नों की पति भयत मुग
 दती है और मुग्ध समता है। एवा
 समता है कि ये घुर्न सदा नी नीनी
 व वस्त्र न मुग्ध किनारे है।]

वर्षाकृत = वा० पु०, १३।
 [सं० लो०] (म०) वरमान का भोगम। यह ऋतु जिनम
 वर्षा होती है।

वलि = वा०, ११, ३१। वा०, १८, २२, २६,
 [सं० लो०] (सं०) २०१।

वैसा, लरीर। दवता का बड़ाई
 जानना या आज या उमर उद्देश्य स
 पढ़ाया या मारा जानवाला पशु। पट
 पर की रेखा।

वलि कर्म = वा०, १३, २४, ३१।
 [सं० पु०] (सं०) वलिकान का नाम।
 वलि देना = वा०, १०।
 [मि०] (हि०) दवता को भक्षण करना या बहाना।
 वलि योग्य = वा०, ११।
 [सं० लो०] (सं०) बहाने योग्य। देवता का अर्पित किये
 जान योग्य।

वलकल = वा०, २८५। प्रे० ४।
 [सं० पु०] (म०) पैर की छाल। छाल का वल। क्रान्ति
 का एक शाखा।

वरकल वसन = वि०, ५८।
 [सं० पु०] (सं०) पद के छाल का वल।
 वलकल वसन विभूषित = वि० ५।
 [वि०] (सं०) पद के छाल के वसन से विभूषित।

वल्मा = वि०, १६३।
 [वि०] (सं०) प्रियमम प्यार।
 वलारियों = का०, २८२।
 [सं० लो०] (सं०) मजरीयों। ततार् वलियों। एक
 प्रकार का बाजा।

वशिष्ठ = वा० १२।
 [मं० पु०] (सं०) सप्तविंशो मे एक ऋषि।
 [वशिष्ठ—मयोया के त्रिशकु एव हरिश्चन्द्र राजाओं
 के पुरोहित तथा हरिश्चन्द्र के यज्ञ के
 ब्रह्मा। त्रिशकु राजा से विरोध हुआ
 और उस कारण विश्वामित्र से इनका]

भयंकर सर्वप्रधान प्राचीन भारतीय साहित्य में अत्यन्त श्रद्धालुता है। सत्यव्रत की मृत्यु के उपरान्त हरिश्चन्द्र ने विश्वामित्र को अपना पुरोहित नियुक्त किया पर वशिष्ठ से हरिश्चन्द्र के राजसूय यज्ञ में बाधा उत्पन्न होने पर उन्हें पुनः अपना पद प्राप्त हुआ। वशिष्ठ ने शुन नेत्र का यज्ञ में बलि देने का भाव पड़्यन रचा था किन्तु विश्वामित्र ने उसकी रक्षा की और उसे अपना पुत्र माना। और इस प्रकार वशिष्ठ हरिश्चन्द्र व पुनः राहित का बदला न ले सका। इह वशिष्ठ देवराज के रूप से सर्वोचित किया जाता है।]

वसत = का०, १६। का० कु०, १३। का०, [सं० पु०] (सं०) १०, ५०, ६३, २४६। वि०, ३६। का०, २६। प्र० १०, ११, १३, १४, १७।

साल की छह ऋतुओं में से प्रथम सुहावनी ऋतु। छह रागों में से दूसरा राग।

[वसत (१)]—भरना में सकलित कविता। वसत प्रणय की कवि ने एक समान माना और है। जैसे वसत के आने पर पपीहा, रसाज, मलयज पवन और डाली डाली, पत्ते पत्ते का आनन्द बढ़ जाता है और जब वह जाता है तो पतझड़ रह जाता है उसी प्रकार प्रणय जाता है तो हृदय का तार तार खिन्न उठता है और वह जाता है तो हृदय का सब वृद्ध पतझड़ हो जाता है।]

[वसत (२)]—चित्राधार में सकलित। देखिए 'वसत विनोद'। यह मकरद्विदुष का पहला छंद है। जिह पतझड़ ने कोप कर के बिना पत्ते का कर दिया था उन्हें तुम ने पत्ते और पूना से भरपूर कर दिया। शरद ने जिह विग्रह से बेहाल कर दिया था उन्हें आश्रम की मजूरिया से तुमने भर दिया। कोकिला का वाक्पती से और रसरग तथा केलि से तुमने सारे वन प्रावर

को भर दिया। हैं वसत, तुम रसभीने हो। कौन सा ऐसा मय पड़ दिया कि सबका मन उछाह स भर गया और उस और स और ही कर दिया, अर्थात् विरह स प्रेममय कर दिया।]

[वसत की प्रतीक्षा—भरना की एक रचना। यह रचना अतुल्य है और इस पंक्तिओं की है। बरि करता है कि अपने ग्रामभा से कटकों का परवाह न कर के बड़े श्रम से यह क्यारी हमने सीची हैं इस आशा और विश्वास से कि मेरे जीवन का वसत आयेगा और इसमें फूल खिलेंगे, कुज कुज में मलयसमीर छायेगा, काकिल की किलकार होंगी। इसीलिए प्रतीक्षा कर रहा हूँ कि एक क्षण के लिये हा सही हमारे पास जब बढोग और मुझे प्रेम के मकरद की मदिरा का पान कराओगे तो वसत सब वषा जायेगा।]

[वसतरिनोद—इदु, कला ३, किरण ३, फरवरी १९१२ ई० में सब प्रथम प्रकाशित, चित्रा धार में मकरद्विदुष के अंतर्गत सकलित कविता। देखिए वसत, वद, कोकिल, चातक, शिरीष सुमन, तद्वर, भ्रमर, आत्मान, सुनो, कहो।

[वसतोःसव—देखिए मकरद्विदुष। सर्वप्रथम इदु, कला ४, एब १, किरण ३, मार्च १९१३ ई० में प्रकाशित दो पद। मिल रहे माते मधुकर भले अनुराग स रये हो, चित्राधार पृष्ठ १८१ पर सकलित। देखिए वे दोनों पद।]

वसन = का० कु०, ४५। का०, १०, १४३, [म० पु०] (म०) १६८, २२२, २६३।

वस कपडा। रहना, निवास। स्त्रिया के वसर का एक आभूषण। आवरण।

वसना = का०, २७७, २८५।

[क्रि०] (हि०) निवास करना।

[सं० पु०] (हि०) स्त्रिया के वसर का एक आभूषण।

वायुमंडल = भा०, ५६।

[सं० पु०] (सं०) धातान।

वार = वा० कु०, ७। ६६। प्र० ६। स०,

[सं० पु०] (सं०) ३७।

जन्, पानी। गुह्य समय। प्रथम,
दया। भावरण।

वारण = वा०, २००।

[सं० पु०] (सं०) किसी बात को न कहना या गलत या
भागा। मनाही। रोक बाधा। बन्धन।
हाथी। प्रभुत्व।

वार पार = वा०, १५६, २५१।

[सं० पु०] (हि०) पार पार।

[प्रत्यय०] (हि०) इस विनारे स उभ विनारतक।

वारि = वि०, १४ २४ १५८, १६३।

[सं० पु०] (सं०) जल, पाना, तरल पदार्थ।

[सं० खी०] (सं०) बाणी सरस्वती। वलसा।

वारिद = वा० कु०, ५२।

[सं० पु०] (सं०) मध, बादल।

वारिदपुत्र = वा० कु०, ११३।

[सं० पु०] (सं०) बादलों का समूह।

वारिधारा सी = का० पु०, ११५।

[वि०] (हि०) जल की धारा के समान।

पारी = मा०, २०। वि० ५६, ५८, ६५।

[सं० खी०] (सं०) दीर्घावर। हाथी के बाधने जमीर।

वारुणी = वि० १०१।

[सं० खी०] (सं०) मदिदा, शराब। वरुण का पत्नी। एक
पक्ष का नाम। वृत्तवर्ण के एक
कदंब का रस जो वरुण की शिपा से
बलराम के लिए निकला था।

वारें = वि०, ६५।

[क्रि०] (प्र० भा०) निछावर करें।

वारों = वि०, ५७, १६०।

[क्रि०] (प्र० भा०) निछावर करू।

वाला = मा०, ६२। वा०, १२१, १६६। प्र०,

[प्रत्यय०] (हि०) १३। १०, ५७।

दे० वाली।

वाली = वा०, १०२, ११५ ११६, १६७,

[सं० पु०] (सं०) २८७, २८६। १०, १७, २०, ४७,
४८, ६६।

गुपीय का बड़ा भाई। बाना में पहनने
का आभूषण।

[प्रत्यय०] (हि०) कृत्य, स्वामिन, सर्वम प्राप्ति का
प्रत्यय।

वाले = मा०, २१, ६५ ७। वा० २५६,

[प्रत्यय०] (हि०) २६२, २७०, २७१। १० ३८, ४२,
६५, ७७।

कृत्य, स्वामिन मय प्राप्ति का
गुचक प्रत्यय।

वाल्मीकि = वि० ४८।

[सं० पु०] (सं०) एक प्रसिद्ध मुनि जो रामायण के रच
यिता और प्रादि कवि हैं।

[वाल्मीकि—वाल्मीकि प्राप्ति हैं जिन्होंने
संस्कृत के भाष्य महाकाव्य वाल्मीकीय
रामायण की रचना की। इन्होंने सब
प्रथम राम की नायक बनकर महाभारत
■ कम से कम तीन सौ वर्ष पूर्व
रामायण की रचना की।]

वाप्य = वा०, २०, २६३।

[सं० पु०] (सं०) भाप, धूम्र।

वास = वा०। कु०, ३३ ११३ का०, ३३।

[सं० पु०] (सं०) निवास, रहना। घर मकान।

वासना = वा०, ७, ११, ३५, ७२ ८७, ८६,

[सं० खी०] (सं०) ११६ १२५ १६३ २६७। स०, ६६,
७४।

इच्छा कामना। काम की प्रवृत्ति।

वासनाएँ = स०, ७७।

[सं० खी०] (सं०) प्रत्याज्ञा, कृष्ण पाने या करने का
इच्छाएँ। चाह इच्छा, वाछा।

वासना लुप्ति = का०, १६२।

[सं० खी०] (सं०) इच्छा का सन्तुष्टि।

वासना धारा = का० १२८।

[सं० खी०] (सं०) चाह या इच्छा की धारा।

वासना भरी = का०, १५१।

[वि०] (हि०) वासना से पुण ।

वाहरी = का०, ६७ ।

[वि०] (हि०) वाय ।

वासना सरिता = का० १० ।

[स० स्त्री०] (सं०) वासना रूपी नदी ।

वासर = का० कु०, ३५ ।

[म० पु०] (म०) दिन, दिवस ।

वासित = म०, १६ ।

[वि०] (म०) मुगध स युक्त या मुगधित किया हुआ ।

घासी = का०, १६ । चि०, १५३ ।

[सं० पु०] (म०) किसी स्थान पर रहने या बसनेवाला ।

घास्तव = का०, १६२ ।

[वि०] (सं०) यथार्थ प्रकृत, अमली ।

वास्तविक = प्रे०, २४ ।

[वि०] (सं०) असली, सच्चा ।

वास्तविकता = का०, २११ ।

[स० स्त्री०] (सं०) असलियत, सच्चाई ।

वाह शुक्ल = का० कु०, १२० ।

[स० पु०] (हि०) सिक्का के शुक्ल मन्त्रोपन ।

वाहद्रथ = का० कु०, ११८ ।

[सं० पु०] (सं०) एक राजस का नाम ।

वाहन = का०, ८७ । चि०, ६३ ।

[म० पु०] (म०) सवारी ।

वाही = चि०, ४७, १८६ ।

[वि०] (म०) भा० दोनेवाला, ले जानेवाला ।

वाह्य = का० कु०, १५ । का०, १४५, २५८ ।

[क्रि० वि०] (सं०) क्र०, १६, ४५ ।

बाहरी, अलग पृथक ।

[वि०] (म०) बह्य करने योग्य । जो बह्य करता है ।

[सं० पु०] रथ, यान, सवारी ।

वाह्य उदार = का०, ४६ ।

[वि०] (सं०) ऊपर से उदार ।

वाह्य रूप = का० कु०, १२३ ।

[सं० पु०] (हि०) बाहरी रूप । वायिक रूप ।

विकपित = का०, १६५, १६८, २६० ।

[वि०] (सं०) कपटा हुआ, अस्थिर, हिलता हुआ । भयभीत ।

विकच = चि०, २६, ६६ ।

[वि०] (सं०) खिना हुआ, विकसित, प्रस्फुटित ।

विस्ट = का०, २११, २२६ । २०१ ।

[वि०] (म०) चि०, ४०१ ।

वठिन, भीषण, मुश्किल, भयकर, दुःख ।

विकट ध्वनि = चि०, ५१ ।

[म० स्त्री०] (सं०) भयकर "वनि, कठोर आवाज ।

जिकट भृशुटित = चि० २२ ।

[सं० पु०] (म०) ब्रुड या भयकर भीड़ा का किनारा ।

विकट मुग = का०, कु०, ६८ ।

[सं० पु०] (हि०) भयकर मुख ।

विकर्षणमयी = का० २०० ।

[वि०] (हि०) अनाकपक, लिखाव या आकर्षणहीन ।

विफल = का०, ७ ११, ४७, ५३ । का०, १८ ।

[वि०] (सं०) का०, कु०, २२, २३ । का०, ४, ११,

१६, २५, २६, ३६, ५६, ६०,

६३, ६४, १०५, १४०, १५७, १६०,

१६३, १६५, १८०, १८६, १८६,

२००, २६०, २६७, २७१, २८१ ।

चि०, १२, ६५ । क्र०, १८, ३३,

३८ । स०, १७, २६, ४४ ४६, ४२,

५३ ५६, ५८ ।

विफल, व्याकुल, बेचन ।

विकलता = का०, १२१ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) बेचना विकल हान का अवस्था या

भाव ।

विकल रूप = का० १० ।

[सं० पु०] (हि०) व्याकुल अवस्था । बेचनी का दशा ।

विकलित सी = का० १५ ।

[वि०] (हि०) व्याकुल सा ।

विकल व्यथा = का०, २२४, २४१ ।

[सं० स्त्री०] (हि०) व्याकुल करनेवाला यथा । भयकर कष्ट ।

विकल्प = का०, १७२ ।

[सं० पु०] (सं०) भ्रम, धोखा । विपरात सोच विचार ।

चित्त की पचविध वृत्तियों में से एक ।

विकस = का०, ७६ ।

[पु० क्रि०] (अ० भा०) विकसित होकर ।

विकसत

विकसत = नि०, १।
[त्रि०] (प्र० भा०) विभाग होना विकसित होना।

विकसता = वा० १३ १०१ १३२।
[त्रि०] (हि०) विकसित होता। प्रवृत्ति हा हा हुआ।

विकसद् = चि० २४।
[त्रि०] (प्र० भा०) विकसित हो। पूना।

विरसा = मा० २८।
[त्रि०] (हि०) तिला हुआ। पूना हुआ।

विकसारत = चि० २६।
[त्रि०] (प्र० भा०) विकसित करता है विनाता है।

विकसित = मा०, २३। वा० पु० ८३। वा०,
[त्रि०] (सं०) ७४, १६२। चि० १५। मा०, २७।
प्रे० १, १४, १५।
जिसना विभाग हुआ हा। तिला हुआ।
प्रवृत्तित।

विकसी = मा० ३८। चि०, १६। वा०, २६०।
[त्रि०] (हि०) जिसना विभाग हुआ हो। तिला हुआ।

विकस = चि० १६४।
[क्रि०] (प्र० भा०) विकास हो, कुर्वे।

विरसेगी = मा० १७।
[त्रि०] (हि०) मिलगी। पूलेगा। विकसित होगी।

विकार = वा०, ३२। वा० १७ ८१।
[सं० पु०] (हि०) बाप। प्रवृत्ति हुआ। वातना।
विटुति।

विकारा = वा० ७। चि०, १५२।
[सं० पु०] (सं०) प्रकाश। प्रसार। विस्तार। विकास।

विकास = वा० पु० ५०। का०, २३, १४ ७६
[सं० पु०] (सं०) १३२, १६०, १६१ २६१। चि०
२१, १५४ १५४ १६६। मा०
११, ६३।
प्रसार। फलान। विस्तार।

विकासन = चि०, १४६।
[सं० पु०] (सं०) विकास का बहुवचन।

विकासमयी = वा० २८।
[त्रि०] (हि०) विकसित होने योग्य।

३१८

विकीर्ण = वा०, १६०।
[सं० पु०] (सं०) विगारा हुई। इतर उतर विगारा हुआ।
विगारा हुआ।

विकृत = वा० १६०।
[त्रि०] (सं०) विगम विगा तरह वा विगार हा गया
हा विगार मुक्त। प्रवृत्ति, प्रवृत्ति।

विमम = मा० १६।
[सं० पु०] (सं०) परामम। वारता।

विमय = वा० २०।
[सं० पु०] (सं०) बनना। विमयण, विमो। प्रवृत्ति लवर
कीर्ति वस्तु बना।

विकृत = वा०, २५७। स० ५०।
[त्रि०] (सं०) धामल। पना हुआ।

विक्षुच = स०, १३। वा० १७, २२१।
[त्रि०] (सं०) दुता। नस्त। पावित। क्षोमयुक्त।

विकररी = वा० २५८।
[क्रि०] (हि०) पत्नी क्षिप्यी।

विकारे = वा० १७८। २५३।
[क्रि०] (हि०) पत्नी हूण धिनराण हण।

विरिस्ता = वा०, २४५।
[क्रि०] (हि०) फलता हुआ।

विरिस्थो = चि०, २३।
[क्रि०] (प्र० भा०) पत्नी दिया। विवेर दिया।

विगत = वा० ३२। वा० १७ ८१, १२६,
[त्रि०] (सं०) २०५ २५०। चि०, ५१।
तमय जो गत हो बुद्ध हो। भीता
हुआ। गत। पिछला।

विशर = मा० २६३।
[सं० क्रि०] (हि०) धूमकर, प्रमण करके, याना कले।

विचरण = प्र० १८।
[सं० पु०] (सं०) चलना फिरना, घूमना।

विचरणकारी = प्र० १८।
[त्रि० पु०] (सं०) घूमने योग्य। प्रमणशील।

विचरत = चि०, १३२।
[क्रि०] (हि०) घूमता है।

विपरत

[क्रि०] (हि०) घूमती है।

विचरुंगा = का०, १५३।

[क्रि०] (हि०) भ्रमण करना।

विचलित = चि०, २३।

[वि०] (सं०) अस्थिर, चञ्चल। स्थान, प्रतिभा, सिद्धान्त आदि से हटा हुआ।

विचरित सौ = का०, १५।

[वि०] (हि०) विचलित होने के मध्य।

विचलेगा = ल०, ५७।

[क्रि०] (हि०) विचलित होगा। श्रद्धा से व्युत्त होगा।

विचार = का० बु, ८, ७४। का० ५६, ७७,

[सं० पु०] (सं०) ६८ १००, ११२, १४१, १५३, १७१, १८, २०५, २११, २३८, २४६। वि०, ५६, ६६, १४७, १५८, ५०, १६। म०, ४। ल०, ७१।

बहु जो मन में सोचा गया सोचकर निश्चित किया जाय। सकल्प। मन में उठनेवाली काइ बात। सोचना, समझना।

विचारसकट = का०, १८६।

[सं० पु०] (म०) मानसिक उलझन।

विचारि = चि०, १४८।

[क्रि०] (प्र भा०) विचारना क्रिया या पूर्वकालिक रूप।

विचारि के = चि०, १३०।

[६४ क्रि०] (प्र भा०) विचार करके।

विचारै = चि०, १५३।

[क्रि०] (प्र भा०) विचार करे।

विचारो = का०, १२६, १६८। ल०, ६६।

[क्रि०] (हि०) विचार करो। सोचा।

विचित्र = का०, ६। ५० ७७।

[वि०] (सं०) कई रंगों वाला, विचित्र।

[सं० पु०] (सं०) एक अवधारणा जिसमें किसी फल की सिद्धि के लिये किसी उलटे प्रयत्न का उल्लेख है।

विच्छेद = का०, २४६। भा०, ६५।

[सं० पु०] (सं०) बाटकर अलग करना। नाश। वियोग। परिच्छेद। कविता में यति।

विछलना = का०, ५५। ल०, ३१।

[क्रि० प्र०] (हि०) विचलित होना। किमचना।

विछल पड़ना = का०, ६६।

[क्रि० प्र०] (हि०) किमचना। किमल पड़ना।

विचित्र = ल०, ६०।

[वि०] (म०) जड़ा हुआ। मलमल। जटित।

विज्ञान = का०, २४, ३४, ३६, १५८, १६७।

[सं० पु०] (म०) १७५। चि० २४। ५०, ३२, ८५। ल०, ५६।

जिम्मे जन या मनुष्य न हो। एकांत। निराला। हुवा करने का पला।

विज्ञानपथ = का०, ८१।

[सं० पु०] (सं०) एकांत पथ।

विनय = का० कु०, ११५, ११७। का० १६,

[सं० ली०] (सं०) १३५। चि०, ६ ४१ ४२ ६३, ६७ ६१, ११०, १६३। म०, १३। ल०, ४७, ४२, ७६। जीत। जय।

[सं० पु०] (सं०) भोजन करना। विमान। एक प्रकार का जुग घुटत। अजुन का एक नाम।

विनय कथा = का० १६०।

[सं० ली०] (सं०) विजय की कहानी।

विजय लक्ष्मी = का० बु, ११५।

[सं० ली०] (सं०) विजय की प्रतिष्ठा की तथा विजय कराने वाली देवी।

विजयिनी = का० ५६, १८१। चि०, ५।

[वि०] (सं०) जीतनेवाला। जिम्मे विजय प्राप्त की हो।

विजयिनी सौ = का०, ६३।

[वि०] (म०) विजय करनेवाली के समान।

विजयी = का०, २२। का०, ५७। म०, १५।

[वि०] (म०) ल०, ४६ ५१ ५२ ७७। विजना। विजय प्राप्त करनेवाला।

विजयार्थ = का०, २६७।

[सं० जी०] (सं०) विजय का बहुवचन । ३० विजय ।

विजित = सं० ७६ ।

[वि०] (सं०) पराजित, हारा हुआ । जीता हुआ ।

विज्ञान = का०, १७१ २७२ । का० कु०, १०६ ।

[सं० पु०] (सं०) ज्ञान । ज्ञानकारी । भाषा । विद्या विषय, विगपत जड़ पदार्थों और सीमित विषयों की जानी हुई बातों, तरबरी सिद्धांतों प्राप्ति का वह विधान का एक स्वतंत्र शास्त्र के रूप में है ।

विज्ञानकार = का० कु०, ६४ ।

[वि०] (सं०) वपानिष ।

विज्ञान ज्ञान = का० १६८ ।

[सं० पु०] (सं०) सभी प्रकार का वपानिक ज्ञान ।

विज्ञानमयी = का० १८६ ।

[वि०] (हि०) ज्ञान से भरी हुई ।

विटप = का० २६५ । ऋ०, १६ ।

[सं० पु०] (सं०) वृद्ध । पेड़ ।

विह्वलना = का० १८८ । का०, २७२ ।

[सं० जी०] (सं०) किसी को बिड़ाने या तुच्छ ठहराने के लिये उसकी नकल करना । हसा उठाना । उपहास करना । उपहास । हँस ।

वितरती = का० कु० १३ ।

[क्रि०] (हि०) वितरण करती । बाँटती । फसालती ।

वितरना = का०, १६८ ।

[क्रि०] (हि०) बाँटना । वितरण करना । दे देना ।

वितरित = का०, १६४ ।

[वि०] (हि०) बाँटा हुआ । दिया हुआ ।

वितर = का०, २४४ ।

[वि०] (हि०) दे दिए ।

वितरो = का० १५३ ।

[क्रि०] (हि०) दो । फला दो ।

वितान = का० कु०, ६ । का० १२६ । चि०

[सं० पु०] (सं०) २४ ।

विस्तार । तबू या खेमा । चढ़वा । यज्ञ । घृणा । एक वर्षावृत्त का नाम । शून्य ।

वित्त = का० कु०, ११६ ।

[सं० पु०] (सं०) धन । साध, गरमा धानि के साथ धाय और व्यय का व्यवस्था ।

[वि०] जाना हुआ । मिला हुआ ।

विदग्धता = का० ७४ ।

[सं० जी०] (सं०) पांडित्य । विद्वत्ता ।

[विश्रुति]—इन्द्र बना ४, विरगा १ (जुलाई १९१३)

अ तथप्रथम प्रकाशित और विनाशार म पु० १५८-५९ पर तबलिन ब्रजभाषा का यह रचना दाहा छ मे है । ये दोहे बरत हावे हल भी विन्ययना स परिपूर्ण हैं । इसमें कुल १२ दाहे है । य हरत सुलोष दाहे हैं किनु इनमें काव्यरव बरा पडा है । उगहरण के रूप में—

प्रकृति सुमन बरसत रही
भली रही भयरात ।
या मिलिबे के समय में
सेहि जानि करहु प्रभात ॥
मन मानिक विन बाहि के
पहले सी हो घीन ।
जानि समय नीलाम को
किय कीड़ी को तीन ॥
जाहु हमारे भाह ए
रक्षक तुम्हरे पास ।
बो स देखै लीभि पुनि
तुम को हमरे पास ।

विदारत = चि०, १६३ ।

[क्रि०] (अ० भा०) विदार्य करता है ।

विदायभूव = का०, १३३ ।

[क्रि०] (सं०) प डत हुआ ।

विदारित = का०, १५ ।

[वि०] (सं०) फाटा हुआ । विदीर्ण किया हुआ ।

विदित = का० कु०, ११५ । चि० ६६, १८७ ।

[वि०] (सं०) जाना हुआ । ज्ञात ।

विदूषक = का०, २६३ ।

[सं० पु०] (सं०) अपने वेष, चेष्टा, बातचात प्रादि से दूसरों को हसानेवाला । भौंड । मसखरा ।

विद्या = का०, १६५ ।

[स० स्त्री०] (स०) शिक्षा आदि के द्वारा उत्पन्न ज्ञान । मोक्षप्राप्ति की सिद्धि करनेवाला ज्ञान । ज्ञान के विशेष विभाग । गुण । दुर्गा का एक नाम ।

विद्याधर = चि०, ३० ।

[स० पुं०] (स०) देवयोनि विशेष । एक प्रकार का रतिदण्ड । एक मन्त्रविशेष । विद्वान् ।

विद्युत् = का०, १००, १२५, १७०, २५३ ।

[स० स्त्री०] (स०) २६३ । चि० १०६ ।

विजली । सध्या । प्रतिशय ज्योतिः ।

विद्युत्बृद्ध = का० कु०, ६०, १२६ ।

[वि०] (म०) बिजलिया का समूह ।

विद्युत् विलास = का० २५४ ।

[स० पुं०] (स०) बिजली के सदृश विलास । क्षणभंगुर क्षमक क्षमक का मूख्य भाव ।

विद्युत्कण = का०, २०, २६, ५६, ७३, १७८ ।

[स० पुं०] (स०) आधुनिक वज्ञानिकों के मतानुसार प्रत्येक परमाणु के गम में बन विद्युत् से आविष्ट कण जिसके चारों ओर ऋण विद्युत् से आविष्ट अनेक कण चक्कर लगाते रहते हैं । बिजली के कण ।

विद्युत्पात = का० कु०, ६३ ।

[स० पुं०] (स०) बिजली गिरने का भाव ।

विह्वल = प्रा०, २३ ।

[स० पुं०] (स०) प्रवाल । मृगा । मृत्ताफल नामक वृक्ष । कापल ।

विद्वान् = ऋ०, ७७ ।

[स० पुं०] (स०) जिसने बहुत अधिक विद्या पढ़ी हो । आत्मन् । सर्वज्ञ ।

विद्वेष = का० कु०, १०६ ११२ ।

[स० पुं०] (स०) शत्रुता, बैर, विरोध ।

विधवा = प्रे०, २० । ल०, ५ ।

[स० स्त्री०] (स०) वह स्त्री जिसका पति मर चुका हो, बेवा, राई ।

विधाता = का०, ५७, ५८ । ल०, ५३ ।

[स० पुं०] (स०) ब्रह्मा, विधान करनेवाला । ईश्वर ।

विधान = का० कु०, ७३ । का०, ७१, ११३,

[म० पुं०] (स०) २०६ । चि०, १३६ ।

विषी काम का आयोजन । अनुष्ठान ।

विधि, रीति, प्रणाली ।

विधायिनी = चि०, २२, १६४, १८२ । ऋ०, ७० ।

[वि०] (स०) विधायिका । निर्माण करनेवाली ।

विधि = का० कु०, ८८ । का०, ११४ ।

[स० पुं०] (स०) ऋ० ६३ ।

कोई काम करने का ढंग या रीति । व्यवस्था । प्रवि, नियति ।

विधियौ = का० कु० ८८ ।

[म० स्त्री०] (हि०) रीतियाँ प्रणालियाँ ।

विधिवत् = का०, २७८ ।

[क्रि० वि०] (स०) विधिवत्क ।

विधु = प्रा०, २१ ७२ । व० ७ । का० कु०,

[स० पुं०] (स०) १०१ । का० ७७, ५५ ८७, ८८

११८, १२७ । प्रे०, १२ ।

चद्रमा । वायु । वर्षा ।

विधुकर = प्रे०, १ ।

[स० पुं०] (स०) चंद्रकिरण ।

विधुकर धवलभा = चि०, ७६ ।

[स० पुं०] (स०) चंद्रकिरण के प्रकाश सदृश उज्ज्वल कांति । चद्रमा की उज्ज्वल ज्योतिः ।

विधुकुल राई = चि०, ६० ।

[वि०] (ब्र० भा०) चद्रकुल के राजा (वृष्णा) ।

विधुमडल ते = चि०, ७१ ।

[स० पुं०] (हि०) चद्रमडल से ।

विधु मोहि = चि०, ७० ।

[स० पुं०] (ब्र० भा०) चद्रमा में ।

विधुर = का०, २४६ । चि०, २ ५८ । ल०,

[वि०] (म०) २७ ।

वियांगी । व्याकुल । अतमय । जिसकी पत्नी मर चुकी हो । रङ्गुणा ।

विधुरौ = चि०, १३२ ।

(स०) विधुर का बहुवचन ।

विध्वंस = का०, १८ ।

[म० पुं०] (स०) नाश, बरबाद ।

विषयस्त = का०, १६० ।

[वि०] (वि०) विषय ।

विदु = का०, २३ ५७ । का० मु०, ११,
[वि० मु०] (वि०) ५३, ५४ । का०, ३७, १२२, १५३,
१५७, १७८, २१० २४५ २६१,
२६२ २६४ । वि०, १८० । वि०
६१ । ग० ६ ।
जलरक्षा । जूद । जूय ।

विदुसा = का० ७५ ।

[वि०] (वि०) विदुस सहस्र ।

विदुहि = वि० ७० ।

[वि० मु०] (वि०) विदुस ।

विनत = वि०, १५१ ।

[वि०] (वि०) भुक्ता हुआ । विनत । नत ।

विनता = का०, २६ ।

[वि० जी०] (वि०) विनय । प्राग्रह ।

विनम्र = का० २१ । का०, ६ ।

[वि०] (वि०) भुक्ता हुआ । विनीत । सुगीत ।

विनय = का० मु०, २२ । वि० ६१ ।

[वि० जी०] (वि०) प्रायना । प्राग्रह । विनती ।

[विनय (१)]—इदु बला ६, किरण ४ (मशर १६१५)

मे सद्यप्रथम प्रकाशित और कानन
मुमुम मे पृष्ठ ५८ ५९ पर संकलित १८
पक्षियों का कविता । इस खंडा बोली
की कविता म कवि ने ईश्वर से प्राप्त
की है कि मर हृदन म अपना विवास
स्वान बना ला और प्रभा हम तुम्हारा
नाम कभी न भूनें । तुम सदा हमारे
साथ रहो । हमारा सभा कामनाए पूरा
करो और हम स्वहीन बना दो , मय
का सारा पीछा मिटा दो । स्वच्छ प्रेम
का जल पान कराओ । धरता पर धर्म
छा जाय और विषय सुदर बन जाय ।
सारा दुख दूर मिट जाय । छत छत
पास मे न पटके । ह प्रभो आकर मय
मूकने मिसा ताकि हम तुम्हारे चरणों
म लवलीन रह और हमारे हृदय क

बाध माना घर बना तो तपा मुन
पूज्याम करो ।]

[विनय (२)]— दु बला ७ किरण ४, कानि ६७
म प्रकाशित और विनाशपर म पराग
क संगत गूठ १५५ पर संकलित
ग्रन्थमाणी की कविता । हे प्रभा, तुम
मयध्यायक हाकर म सब मर हो ।
तुम मुम हो और धरती क बना बना
म हा । मम भा तुम्हारा पार नही पात
तो कवि तुम्हारा महिमा का बरान
कम कर सता है ? मूय और धर क
बोध प्रभा क रन म तुम विराजते
हा । मयमानिल का तुम मुग्ध हा ।
तुम्हारे महां मुग्धा का रहस्य कोई
मय प्रकट नहा कर सकता । तुम्हारी
ही टपा स केनिल सगुद सरगायमान
हाकर मभार गजन करता है । ह मनन
दन, तुम कितने दवानु हा कि मभार
होते हुए भी मुमन मादरो से रहते हा ।
तुम पक्ष क पराग क समान निन्द
सौरनशाहा हा और मानद का सरल
सदरो म विराजते हो । सतार पर
गुपा कर स्वामा तुम उसका पालन
करते हो और कल्पवृक्ष का भाति
सतार की नित नवीन मयलकन बन
हो । एस सवशक्तिमान परमेश्वर का
नमस्कार है ।]

विनयन = का०, १६६ ।

[वि० मु०] (वि०) विनय । नमता । शिष्टा । निशय ।
निराकरण । दूर करना ।

विनष्टि = का०, १६४ ।

[वि० जी०] (वि०) नाश । सोन । पतन ।

विनवा = वि० १४८ ।

[वि०] (वि० भा०) विनय करता हू ।

विनाश = का०, ६०, १५७ १५८, १७०, १६१,

[वि० मु०] (वि०) २४०, २५४ ।

नाश । लोप । विपाट । खराबी ।
तबाह । हान ।

विनाशशील = का०, १२३।

[वि०] (सं०) विनाशी। नष्ट होनेवाला।

विनाशी = का०, १२४।

[वि०] (सं०) विनाश का बहुवचन। 'दे० विनाश'।

विनिमय = का०, १७८ २४१, २४६।

[सं० पु०] (सं०) आदान प्रदान। लेन देन। किसी एक वस्तु के बदल में कोई दूसरा वस्तु लेना।

विनियुक्त = का० कु०, ११६।

[सं०] (सं०) नियोजित। काम में लगाया हुआ। प्रेरित। प्रेषित।

विनोद = प्रा०, ५५। का, कु०, २६। का०,

[सं० पु०] (सं०) ७१, ७७ १३६। वि०, ६, २२, १६४ १६५, १७३। ऋ०, ३४, ४१, ८२। ल०, ३३।

छेल। प्रमत्तता। आनन्द।

[विनोद बिंदु (१)]—सद्यप्रथम इंदु कला ४, किरण ६, जून १६१३ में प्रकाशित। इसके अंतर्गत तीन कविताएँ प्रकाशित हुई थी—'बूक हमारी', 'प्रेमपावन', 'उत्तर'। देखिए 'बूक हमारा', 'महा नित प्रेम करत दिन गयो', 'उत्तर'।

[विनोद बिंदु (२)]—इंदु कला ५, खंड १, परवरी १६१४ ई० में प्रकाशित। इसके अंतर्गत निम्नांकित ४ कविताएँ हैं—(१) हृदय में छिप रहे इस डर से, (२) आया देखो विमल बसंत, (३) भ्रमा का कहिए सुंदर राका, (४) मिले शीघ्र इन चरखों की धूल। ये चार रचनाएँ भरना में संकलित हैं और इन्हें देखिए—हृदय में छिप रहे इस डर से, 'आया देखो विमल बसंत', 'भ्रमा को कहिए सुंदर राका' और मिले शीघ्र इन चरखों की धूल' के अंतर्गत।

[विनोद बिंदु (३)]—इस वे अंतर्गत ६ रचनाएँ हैं जो भरना में संकलित हैं। इनको इनकी प्रथम पंक्ति के स्थान पर देखिए।]

विन्यास = का०, ८६।

[सं० पु०] (सं०) स्थापना। रखना। सजाना। जड़ना। किसी स्थान पर डालना।

विपत्त समूह = का० २००।

[वि०] (हि०) शत्रुघोष का समूह, शत्रुगण।

विपत्ती = वि०, २३, १७६। ऋ०, ५२ ५६।

[सं० जी०] (सं०) प्रे०, ११, १६। एक प्रकार की बीणा। वासुरी।

विपत्ति = जि०, १०३।

[सं० जी०] (सं०) दुःख। सकट। आपत्ति। दुःख की स्थिति या अवस्था।

विपत्ति बिंदारी = वि०, ४६।

[वि०] (हि०) विपत्ति दूर करनेवाला।

विपद् = प्रा० ५५। ल०, ३३।

[सं० जी०] (सं०) विपत्ति। आपत्ति।

विपद् नदी = का०, १८१।

[सं० जी०] (सं०) विपत्ति रूपी नदी। दुःख का समय।

विपिन = प्रा०, ३५। का०, ११३।

[सं० पु०] (सं०) वन, जंगल।

विपिनवासी = का० कु०, ११३।

[वि०] (सं०) जंगली म रहनेवाले।

विप्रयोग = ऋ०, ८८।

[सं० पु०] (सं०) भ्रमण होने की अवस्था या भाव। सयाग का विपरातायक।

विपुल = का०, १२१ १२३, २६३, २६८। वि०,

[वि०] (सं०) ५१। म०, ७, ८।

अधिक।

विपुला = प्रा०, ५८।

[वि०] (सं०) बहुत बड़ा। पृथिवी।

विप्लव = का० कु०, ८। का०, ७६, १११,

[सं० पु०] (सं०) १८६, २३६।

उपद्रव अशांति, दंगा, बलवा।

विफल = का०, १७ १२७ १३१, १४७, २४०।

[वि०] (सं०) असफल (प्रयत्न)। फनहान, व्यर्थ।

विफलता = का०, २६७। ऋ०, १७।

[सं० जी०] (सं०) विफल होने का भाव या त्रिया। अयफलता।

विभक्त = का०, १६५।

[वि०] (म०) धलम धलम हुआ, घटा हुआ, विभाजित।

विभक्त = का० १८।

[वि०] (स०) घृणास्त्रं घृणा करो योग्य, घुरा।

विभक्त = का० १८। का० कु०, १७। का०, ८,

[स० पु०] (स०) ४०, ६१ ६७, १०६ १६६, २६८।
त० ६८ ७६।

देवदत्त धनः अपिबत्ता, बाहुल्य।

विभा = का०, ३०। वि० पु० ४६ ५५,

[स० जी०] (स०) १३६। १६६। प्र०, २६। त०, ३६।
दीप्ति, प्रमाण, किरण।

विभाकर = वि० ६३।

[स० पु०] (म०) अग्नि। सूर्य। राजा।

विभाजन = का० २४१, २७१।

[स० पु०] (म०) धलम धलम करने की क्रिया या भाव।
बटवारा।

विभाषरी = का०, ८। त०, १६।

[स० जी०] (स०) रात, रात्रि।

विभाग = का०, २७१।

[स० पु०] (स०) विभाजन। वामसवालन का सुविधा का
दृष्टि काय च्चन के छोटे छोटे हिस्से।
मुहकमा।

विभाजित = का०, १६५।

[वि०] (स०) घटा हुआ। विभक्त।

विभास = वि०, १३६।

[स० पु०] (स०) प्रकाश, दीप्ति। रागविषय जो प्रातः
काल गाना जाता है।

विभासि = वि०, १६६।

[पूर्व० क्रि०] (स० भा०) प्रकाश करने।

विभुता = का० पु०, ८७। का०, १३५। त०,

[स० जी०] ३३।

द० 'विभूति'। प्रभुता।

विभु सी = त० १४।

[वि०] (हि०) निश्चय सा। ईश्वर व सहस्र।

विभूति = का०, १४। क०, १४। का० १६,

[स० जी०] (स०) २६, ३१, ६०, ८५, २०६, १६७।
त०, १२।

प्रमाणः। प्रतीति शक्ति, एकरथ।

महापुरुष। सृष्टि। निर क भग म
लगान का रात या भक्त।

विभूतियौ = का०, १०।

[स० जी०] (हि०) विभूति का बहुवचन २०—विभूतौ।

विभूयित = क०, २६। वि० २८।

[वि०] (स०) शक्ति, गुणजित।

विभा = वि० १६।

[स० पु०] (स०) 'विभु' का समाधन। हे ईश्वर हे भगवान्।

[विभो—इतु कसा २, किरण ३, माशिवन ६७ म
सबप्रथम प्रकाशित पराग दीर्घ के
अतगत चित्राधार म पृष्ठ ५७ पर
संक्षिप्त। हे प्रभो, तुम जगत्पद
आलोचन, सर्वव्यापः श्रीर भानंद
क हो। सारा ब्रह्मात्मक तुम्हारे
प्रकाश से प्रेरित है श्रीर निगम भी
तुम्हारा गुण गाते गाते एक चुके हैं।
तुम अनाथ के नाथ हो श्रीर तुम्हारा
नाम ईशान है। तुम सर्वगुण की शक्ति
हो। हे प्रभो, यदि तुम हमारे कर्मा
पर ध्यान योग तो मैं इतना पतित हूँ
कि तुम्हारे आशुतोष पद की स्थापि
मिट जायगा। पता नहीं किस बात से
तुम प्रसन्न होते हो श्रीर भुक्त जसे मूढ़
मनुष्यों से क्यों चिक्ते हो? सभी
मनुष्यों के हृदय के बाच म जब तुम्हारा
निवासस्थान है तो क्यों नहीं मुझे
भार्य का पता बताते ताकि मैं उसपर
जबू? हमारी बीला मुदर दंग से सज
कर भानंद का राग क्यों नहीं बजाती
है? हे प्रभो, यद्यपि मैं पातक हूँ फिर
भी तुम्हारा दास हूँ। दास को हृदय मे
तुम्हारी ही भास है। तुम मेरे हृदय मे
विराजो ताकि मेरे हृदय मे भा प्रकाश
जगे श्रीर मुझे असोम सुख की
प्राप्ति हो।]

विभोर = का०, १५०, १६१। ल०, २३।

[वि०] (स०) विह्वल, विवल, मस्त।

विभ्रम = का०, ६७, २२६।

[स० पु०] (म०) भ्राति, घासा। साहित्य के संयोग शृंगार का हाव विशेष।

निमल = क०, ८। का० कु० १, १५, २४,

[वि०] (स०) १००, १०१। का०, २६ ६१, २६०
वि०, २४ ५६ ६१, ६३, ६६ ७०,
७१ १४३, १४७, १५०, १५४, १५७
१६८, १६९, १८६। ऋ०, १६, २०,
२६, ७२, ७६, ६६। प्रे०, १, ६,
१०। म०, १६। न, १३।

स्वच्छ। निर्मल। घबल। पवित्र।
पावन। निष्कलक।

विमल कीरति = वि०, ५०, ५२।

[स० जी०] (प्र० भा०) स्वच्छ कीर्ति, निष्कलक यश।

विमल विधु काल = का० कु०, २६।

[वि०] (स०) पूर्ण के चद्रमा के प्रकाश सा उज्ज्वल।

विमला = का०, २६४। चि०, ४६, १६४।

[वि०] (स०) श्वेत निर्मला घबना।

विसक्ति = का०, १५१।

[स० जी०] (स०) छुटकारा, मोक्ष।

विमोहित = चि०, १६५।

[वि०] (स०) विशेषरूप से मुरझ।

वियोग = ऋ०, ४५। प्रे०, १७, २३, २५।

[स० पु०] (स०) ल०, ४६।

प्रलय रहने का भाव या अवस्था जब
दो प्रेमी प्रलग रहते हैं।

वियोगिनी = चि०, ६।

[वि०] (स०) प्रिय से विमुक्त (प्रेयसा)।

विरक्ति = का० ११८ २३७। ऋ०, ८८।

[स० जी०] (स०) विरत रहने का भाव क्रिया या कार्य।
पद या संवा आदि से अलग होना।
चराम्य, उदासनता।

विरचित = ऋ०, ५४।

[वि०] (स०) बनाया हुआ।

विरत = चि०, ६५।

[वि०] (स०) विरवत। प्रलय।

विरति = का०, ११६। ऋ०, ३६।

[स० जी०] (स०) विरत रहने का भाव या क्रिया, विरक्ति।

विरथ = ऋ०, ३२।

[वि०] (स०) रथ हान।

विरल = का०, २४६। ल०, ३५, ४३, ६८।

[वि०] (स०) जो सधन न हो दुर्लभ। कम। घीमा
घीमा, मद।

विरला = ल०, २७।

[अव्य०] (हि०) कोई कोई।

विरस = का० ५०। ल, ९।

[वि०] (स०) नारस। मुक्त।

विरह = श्री०, ३०, ३१। का०, १६५, १७५,

[स० पु०] (स०) १७६। चि०, ६४। ऋ०, ३४, ४२।
प्रे०, १७। ल०, ४८।

विश्वी से प्रलय या रहित होने का भाव।

[विरह—रदु कला ५, रज १, विरह ४, अर्ध १
१६५४ मे प्रकाशित चार चार पक्तियों
के चाररद जो काननकुसुम मे पृष्ठ ६८
६९ पर सकलित हैं। जन जब प्रियजन
दृष्टि से दूर होने है तो य विमोगी तत्र
रक्त के झरू राग हैं और प्रेमी की
सुखश्रीका प्रति क्षण स्मृति मे नाचने
लगता है। प्रिय के पदरज का धूल
से विरही के हृदय का धाकाश मेधा-
च्यम हो जाता है और सारा विश्व
उसमे धो जाता है। स्मृतिरूपी सुख
विजली की भांति रट रह कर चमक
उठता है और वास्तव में विरह की
अविरल अश्रुधारा मे सब कुछ भोग
जाता है। अतीत को याद कर कर
के हृदय द्रवित हो उठता है और हृदय
के सार भाव सशमत होकर मूर्तित
होने लगत हैं। प्रतीत की निधि मे
व्यक्ति गति लगाने लगता है और
जबतक प्रियमिलन नहीं होता तब
तब शांति नहीं मिलता। यह सब क्या
है और ध्यान से यह देखिए कि क्या

यह विरह पुराना पढ गया है ? विरह मे हम पूरा से भलग होते हैं हमलिए यह स्मृति प्रेम को नींद सोरर जगती रहती है ।]

विरह अश्रु = बि०, ५७ ।

[स० पु०] (स०) वियोगकालिक वेदनाश्रु ।

विरह कोक = का०, १७१ ।

[स० पु०] (स०) विरह रूपा कोक । ('विरह' की सावा रता का चोतव) ।

विरह तम = का०, १७८ ।

[स० पु०] (स०) विरहरूपी भयकार । विरहजन्य मुग्ध कारा स्थिति ।

विरह निरा = भा०, ३६ ।

[स० को०] (स०) वियोगकालिक रात्रि ।

विरह मिलन = भा०, ४६ ।

[भा० पु०] (स०) वियोग एव सयोग । विछोह और समिलन ।

विरह मिलनसय = का०, २४२ ।

[वि०] (स०) वियोग सयोग से युक्त । 'भौतिक' प्राणिया की धारणा या सासारिक स्थिति का चोतक ।

विरह वहि = भा०, ८० । प्र०, १५ ।

[स० पु०] (स०) विरहरूपी अग्नि ।

विरह सुधा = भा०, ४६ ।

[स० को०] (स०) विरहरूपी अमृत ।

विरहियी = का०, १७५ ।

[स० को०] (स०) पति से विमुक्त पत्नी । वियोगिनी ।

विरही = का०, ४, ८५ १२४, १५७, १६५,

[वि०] (हि०) १६८, २३६, २४० । बि०, १४, १५८ १८० । स०, १२, १३, ३५ ।

विमुक्त, वियोगी ।

विरहपूर्ण = का०, ३४ ।

[वि०] (स०) विराग से भर हुआ, रागरहित, बराग्यवान् ।

विराग भूमि = का० कु० २३ ।

[स० को०] (भा०) बराग्यदायिनी भूमि, बराग्यरूपी भूमि ।

विराग विभूति = का०, ८४ ।

[सभा को०] (भा०) बराग्यव्यापि विभ संपत्ति ।

विराजत = बि०, ५४ ७२, १५८ १६८ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) शोभित है । स्थित है ।

विराज राजासम = बि०, १४० ।

[वि०] (हि०) राजा क समान शोभित ।

विराजहि = बि०, ६७ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) शोभा देना है ।

विराजिता = बि०, १३६ ।

[वि०] (स०) शाभिता । स्थिता ।

विराजै = बि०, १५० ।

[क्रि०] (प्र० भा०) शोभा देता है ।

विराट् = का०, १७, २४, २६, ३३ १२६,

[स० पु०] (स०) २८३, २८८ । बि०, ७२ ।

विराट्पन्नह्य । विरव । क्षत्रिय । काति ।

विरदुध = का० कु०, ८ । का०, १०६, १६१,

[वि०] (स०) १६५ १६६ । बि०, १८७ ।

विपरीत, उलट, प्रतिकूल ।

विरोध = का०, १४३ । बि० ७३ । भा० ६३ ।

[स० पु०] (स०) स०, ७८ ।

बैर शत्रुता । प्रतिकूलता ।

विरोधी = बि०, ७३ ।

[वि०] (हि०) बरी, शत्रु । प्रतिकूल, विपक्षी ।

विलस रहो = का , १५८ ।

[क्रि०] (हि०) रो रही है ।

विलगाना = बि०, १५७ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) भलग हुमा ।

विलय = का० कु०, १०२ । का०, ४६, ५६ ।

[अभ्य०] (स०) बि०, ६४ ।

अवेर, देर ।

विलसत = बि०, १७ ५६ १४३ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) आनंद करता है ।

विलसही = बि० ६६ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) विलास करता है । उपभोग करता है ।

विलसती = का०, २६४ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) उपभोग करता है ।

विलासित = का०, २८३ ।

[वि०] (म०) विलास करता हुआ ।

विलासित हिमशृंग = चि०, ५१ ।

[वि०] (स०) हिमशृंग म विलास करता हुआ ।

विलास = का० कु०, १०० । का०, ८, १२, १५,

[सं० पु०] (म०) ७१, ८४, ९०, १०३ । चि०, ६ ।

झ०, ११ । ल०, ५३ ।

प्रम न करनवली क्रिया, मनाविनोद ।

मनुरागमूक चेटाए । साहित्य के सयोग

शृंगार ॥ 'हाव' विशेष । भान ।

विलासमयी = का०, २८ ।

[वि०] (हि०) विलासिनी ।

विलासिनि = चि०, ५६ ।

[सं० पु०] (म० भा०) २० 'विलास' ।

विलासिता = का०, ७ । चि०, ५० ।

[सं० ली०] (स०) सासारिक भोग । आराम तलवा ।

विलासिनी = का०, १३, १३० ।

[वि०] (स०) विलास करनेवाली ।

विलासी = का०, १० । चि०, १५३ ।

[वि०] (म०) विलास करनेवाला ।

विलीन = का०, ७ । १०, ७१, ८५, १४०, १५७,

[वि०] (म०) २२७, २५३ । ल०, ५३ ।

नष्ट । गुप्त, अदृश्य । छिपा हुआ । जो

एकत्रैक हो गया हो ।

विलीनपदपद = चि०, १३३ ।

[ल० पु०] (स०) छिपे हुए भीरे ।

विलीन सी = का०, २६१, २६८ ।

[वि०] (हि०) अन्तित्वरहित हान के समान । लुप्त वा

अदृश्य हुई सी ।

विलुलित = चि०, २२ ।

[वि०] (स०) चंचल, हिलता डालता हुआ । गतिमय ।

विलोकन = का०, २०८ । का० कु०, ९६ । प्र० २ ।

[सं० पु०] (स०) दर्शन, अवलोकन ।

विलोडित = का०, १६ । चि०, १६६ ।

[वि०] (स०) मथित, झालोडित ।

विलोम = झ०, ३३ ।

[वि०] (स०) उल्टा, विपरीत ।

विलोल = चि०, ४०, ५६ ।

[वि०] (स०) चंचल ।

विलोलदृष्टे = चि० १३३ ।

[वि०] (स०) चंचल नेत्रवाली । चपल नेत्रवाली ।

विवर = का०, ४९, १६० ।

[सं० पु०] (स०) खिद, दरार । गुफा, कदरा ।

विवर्ण = का०, २३ ।

[वि०] (स०) जिसका रंग बिगड़ गया हो । बदरंग,

काँतिहीन ।

विवर्तन = ल०, ५६ ।

[सं० पु०] (स०) चक्कर लगाने या घूमने का भाव ।

चक्कर । घुमाव ।

विश = का०, २५, ३४, २६७ ।

[वि०] (स०) साधार ।

विवस = का० कु०, ९९ । चि०, १०१ ।

[वि०] (स०) इच्छागुरुल काय न कर सकना ।

साधार ।

विवरान = चि०, १३२ ।

[सं० पु०] (स०) यमराज । मृत्युदव ।

विवादी = का० १६३ ।

[वि०] (स०) झगडातु ।

विवाह = प्र० १६ ।

[सं० पु०] (स०) वह धार्मिक या गामाजिक कृत्य जिसके

अनुसार पुरुष और स्त्री में पति एव

पत्नी का संबंध स्थापित होता है ।

पाणिग्रहण ।

विवाहा = का० कु० ११२ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) विवाह किया ।

विविध = चि०, ४६ ।

[वि०] (म०) अनेक प्रकार के । तरह तरह के ।

विवेक = चि०, ५६ । झ० ६३ ।

[सं० पु०] (स०) ज्ञान । भलाबुरा बातें मोचने का

शक्ति । बुद्धि ।

विशाल = का० कु०, ७५, ९९ १०५ । का०,

[वि०] (स०) २३५ २५२ । चि० १३८, १४३,

१६६ । झ०, ५७ ।

बड़ा । दार्ढ्य । विस्तृत । भय । बृहत्तर ।

विशाला = वि०, ३६।

[वि० स्त्री०] (सं०) द० विशाला' जो साधारण न हो।
प्रसाधारण।

विशुद्ध = का०, १६६।

[वि०] (सं०) शुद्ध। पवित्र। निमल।

विशेष = का० पु०, ७७, १०६, १११। का०,

[वि०] (सं०) १४ ८१, ११५ २६५ ऋ०, ४४।

विशेषतायुक्त, खास।

विश्लेषण = ल० ६६। का०, ७३।

[सं० पु०] (सं०) किसी वस्तु या द्रव्य के प्रत्येक भाग
को तथ्यसमाप्ता एवं परोक्षा की दृष्टि
से अलग अलग करना।

विश्वभर = वि०, ६६ ७३।

[सं० पु०] (सं०) विश्व का भरण करनेवाला। भगवान्
विष्णु।

विश्व = श्री० ५१ ६१। क०, ८ १०, २५,

[सं० पु०] (सं०) ३१ ३२। का० पु०, ६, ६२, ७२,

७४, ८६ ९० ९३, ९४, १२६।

का० ६, से २६३ पृष्ठ तक ४३ बार।

वि०, १४१ १५४ १८७। ऋ०, १६,

१८ ३० ३५ ६३। प्रे०, १७ १८,

२३। ल० १४ २५, २८, ३३, ३६,

४६, ७०, ७६, ७७।

समार, जगत। विष्णु। शरीर।

विश्व कनना सा = का० २६।

[वि०] (हि०) जगत् का कनना के समान।

विश्वकुट्टर = का०, १७० १६३।

[सं० पु०] (सं०) ससार स्त्री मुराख गुफा या बिस।

विश्वगृहस्थ = का० पु० ४ ६२।

[सं० पु०] (सं०) जो समारम्भी गृहस्थों का प्रधान हो
धर्मज्ञ।

विश्व जनता = का०

०] (सं०) समार

= का०, २

सुख। परा

या का

हि

विश्वधारिणी = वि० १/४।

[वि०] (सं०) संपूर्ण विश्व को धारण करनेवाली।

विश्वघाती = वि०, १५४।

[वि०] (सं०) विश्व को धारण करनेवाला।

विश्वपति = ऋ०, १८।

[सं० पु०] (सं०) परमात्मा। ईश्वर जो ससार का
मात्रिक है।

विश्वप्रथिक = का०, १६६।

[सं० पु०] (सं०) समार का मुनाफिर। मनुष्य जो समार-
पथ का यात्री है।

विश्वपाक्षिणी = जि०, १५४।

[वि०] (सं०) विश्व का पालन करनेवाली।

विश्वप्रेम = प्रे०, २४।

[सं० पु०] (सं०) ससार के प्रति प्रेम भाव, मानव प्रेम।

विश्वभर = का० पु०, ७८। का०, ५७। ऋ०, ४२।

[प्र य०] (हि०) संपूर्ण ससार। सारा जगत्।

विश्वमदिर = श्री० ६०।

[सं० पु०] (सं०) ससारस्त्री मदिर।

विश्व मधु ऋतु = ल० २२।

[सं० पु०] (सं०) ससार की मधु ऋतु। वसत।

विश्वमात्र = प्रे०, २४।

[सं० पु०] (सं०) संपूर्ण विश्व। वैचल ससार।

विश्वमाधुरी = का०, १३१।

[म० स्त्री०] (सं०) ससार का सौन्दर्य या मधुरता।

विश्वमानसता = ल० १३।

[सं० पु०] (सं०) ससार का मनुष्यत्व। ससार के संपूर्ण
मनुष्यों के एक होने का भाव।

विश्वरभ = का०, २७३।

[सं० पु०] (सं०) विश्व का छेद। द० विश्व कुट्टर।

विश्व रानी = का०, ६३।

[सं० पु०] (सं०) समार का रानी। विश्व की मासिका
यक्षा।

विश्व = का०, ५।

[सं०] ससारस्त्री मानव।

विश्व = ल०, १३।

[सं०] समार की धात्राज।

विश्ववीणा = का० कु०, ३।

[स० स्त्री०] (स०) ससार स्था बँगा। जगत् की वीणा।

विश्ववेदना बाला = स्त्री०, ६१।

[स० स्त्री०] (स०) विश्ववन्ता स्त्री बाला। ससार की पीर स्था बाला।

विश्ववमन = का०, ६४। ऋ०, ५७।

[स० पुं०] (स०) मसार का एक्वप।

विश्वव्यापी = प्रे०, २४।

[वि०] (स०) जो ससार में सब जगह हा।

विश्वव्याप्त = वि०, १५४।

[स० पुं०] (स०) विश्व में व्यापक रूप से समाया हुआ। भगवान्।

विश्वशरीरी = का० कु०, ६४।

[वि० पुं०] (स०) विश्वशरी शरीरवाना। भगवान्। ससार ही जिसका शरीर है वह ईश्वर।

विश्वसदन = भा०, ७६।

[स० पुं०] (स०) ससार स्त्री पर।

विश्वसत्प्रमुदित = का० कु०, ६३।

[वि०] (स०) जिसका विश्वास बिया जा सक और जा प्रस न हो। जो विश्वास होने से प्रस न हा।

विश्वात्मा = प्रे०, २४, २५।

[स० पुं०] (स०) ईश्वर। विश्वपुरुष।

विश्वामित्र = का०, २७।

[स० पुं०] (स०) विश्वमित्र। ससार का मित्र। श्रीरामचंद्र के गुरु। एक ब्रह्मर्षि।

[विश्वामित्र—प्रत्यक्ष प्रतापी क्षत्रियकुल में का य कुन देश के कुशिक वंश में उत्पन्न ऋषि जिहान वशिष्ठ का विराध किया था। इ होने त्रिशकु का सहायता को और उसे राज्य पर प्रतिष्ठित किया। त्रिशकु के ये राजपुरोहित थे। विश्वामित्र ने इन काय द्वारा दक्षकुवश का राज्य अवाधित रखा। हरिश्चंद्र ने भी इन्हें अपना पुरोहित नियुक्त किया था। राजमूय यन में वशिष्ठ ने ब्राह्मण पुरा हित न होने के कारण दक्षिणा सन स इनकार कर दिया था और दमन रुट्ट होकर इन्होंने पुरोहित पद छोड़ दिया

और रूपगु तीय पर तीव्र तपस्या की जिसके कारण इन्हें ब्राह्मण पद की प्राप्ति हुई थी और पुन गप का मरच्छण करने के पत्राव इन्हें ब्रह्मर्षि पद प्राप्त हुआ। य इन्हें कृपापात्र ना था।]

विश्वसास = भा०, ४। का०, ५७, १०४, १०६,

[स० पुं०] (स०) १४८ १८३, १६७, १६ २२३, २३०, २४४। म०, ४, ७७। ल० २१।

भरासा। प्रतीति।

विश्वसासन = वि० ५६, १०६।

[स० पुं०] (स०) विश्वास का बहुवचन।

विश्वसमयो = का० १६६।

[वि०] (स०) जिसका विश्वास किया जा सके। जा विश्वास स भरी हा।

विश्वसाहीन = का०, १६७।

[वि०] (स०) जिसका विश्वास न किया जा सके। अविश्वासी।

विश्वेति = वि०, १५४।

[स० पुं०] (स०) मसार एसा।

विश्वेश = प्र० २३।

[स० पुं०] (स०) परमात्मा। ईश्वर जो ससार का स्वामी है।

विश्वेश्वर = वि०, ७२, ७४।

[स० पुं०] (स०) दे० 'विश्वेश'। परमेश्वर शिव की एक मूर्ति और नाम।

विश्वभक्त्या = ल० ६०।

[स० स्त्री०] (स०) प्रेमकथा। प्रेमां और प्रमिता के बाव में हानिवाल भगडे या बटाई का वृत्तांत।

विश्वद्वय = का० ५२।

[वि०] (स०) शांत। विश्वास के साम्य। निश्चित।

विश्व्रात = का० कु०, १३। का०, ८ ८८, ६३।

[वि०] (स०) ऋ०, ३१। म०, ७।

यका हुआ। जो विश्राम करता हा।

विश्राम = भा० ५३। का० कु०, १३, ७२।

[स० पुं०] (स०) का० ५७ ६५ ७०, ८७, ६२, ११८, १२४, १४८, १५६ १५५ २१५, २२६। वि०, ४, १५१। प्रे०, ४।

ॐ, ३१ । ल०, १२, १६, ४४, ७१ ।
आराम । आनंद । शांति ।

विश्रामराजा = ॐ, २६, ६३ ।

[सं० पु०] (सं०) विश्राम करने के लिए रखी के समान ।
विश्राम करनेवाली रात्रि ।

विश्रामस्थान = ॐ, ३३ ।

[सं० पु०] (सं०) विश्राम करने का जगह ।

विश्रुतल = ० २१२ ।

[वि०] (सं०) अस्थित । जिसका गृहला या क्रम
अस्थित न हो ।

विष = ॐ, ३२ । का०, ६, ८६ १२२,

[सं० पु०] (सं०) २५ २३६ २४१ । ॐ, ७७ ।
ल०, ३३ ।
जहर । मरल ।

विषम = का०, १६ १२१, १७४, १७१, २०१,

[वि०] (सं०) २३६ २४१ २७३ । ॐ, ३८ ।
वि०, १४२ ।

जा सम न हा । ऊचा नीचा । उबड़
खाउबड़ । असमतल । सगीत का एक
ताल । भयंकर । विषम । जो दो
व भाग देने से १ पड़े ।

विषमता = का० १४ १२१, १७१ १७२ ।

[सं० ली०] (सं०) असमानता । विरोध । बँर ।

विषमयी = का० १२१ ।

[वि०] (सं०) जहरानी । जहर में भरा हुई ।

विषयशून्य = का० २४१ । ॐ ३१ ।

[वि०] (सं०) निगम मन्त्रमूल या प्रतिपाद्य तत्त्व
न हो । निगम विद्या प्रकार विवचन
न हो । तत्त्वहीन ।

विषयशून्य = का० पु०, १२ ।

[सं० पु०] (सं०) निर्याता वृक्ष ।

विषाद = का० पु० १ । का०, १७० २२७ ।

[सं० पु०] (सं०) १६४ । ॐ, ३० । ल० ४८ ।
का०, ७, १८ १४ १२२, १६७,
१८०, २०५ २३६ । वि०, १५१ ।
ॐ, ३१, ४३ । ल० २३ ७२ ।
ल०, ३५ ३६ ५६ ।

दुःख । बट । मानसिक दुःख । काम
करन का दुःख न हाना । दुःखता ।

अधुरणीय अभिलाषा के कारण मन में
होनेवाला दुःख । साहित्य में एक
संचारा भाव ।

[विषाद—माधुरी खंड ३, सत्या १, पृष्ठ ३, पर ६५

१६२५ में सवप्रथम प्रकाशित,
भरना का गीत । मलिन भाँवले में
कोई सतत जगती एकजति निजने में
पेठ का छाया के तले पड़ा है । उसका
प्रत्यया शिथिल, उसका धनुष हटा
हुआ और वशी चुप पड़ी है । स्मृति के
भोके उसका हृदय तो शीघ्र के वरग उठा
रहे हैं । उसकी दृष्टि विषयशून्य है और
उसके हृदय की पीड़ा भरने के रूप में
बहती चला जा रहा है । उसकी हृदी
में सुख है । उसे छोड़ी मत । कवि का
सुख तो सतत विषाद में ही है यह
बीज बिंदु शीघ्र में और कामायनी में
अपनी भावार्थमय सत्त्वार्थमय सत्या
रमात्मक भूति ग्रहण कर सता है । दसिग,
'हीन प्रकृति के बहण काव्य सा' ।]

विषाद आवरण = का०, २०५ ।

[सं० पु०] (सं०) विषाद का पड़ा ।

विषादविलीन = का०, २२७ ।

[वि०] (सं०) दुःखमय । घेद में निमग्न ।

विषाद सो = वि०, ४७ ।

[वि०] (वि०) दुःख का मग्न ।

विश्रुत = का०, १८ ।

[सं० पु०] (सं०) नाटक का एक भाग जिसमें गत
और भाग्य घटनाओं का सूचना निम्न
श्रृंगार का पात्रों द्वारा दी जाती है ।
बाधा । विघ्न ।

विसद = वि०, ४६, १७१, १६८ ।

[वि०] (सं० मा०) बड़ा, विद्यान ।

विसरे = वि० १२३ ।

[वि०] (सं० मा०) भूत । विमर्या श्रिया का एक रूप ।

विसर्जन = वि०, १७० ।

[सं० पु०] (सं०) विद्या करना ।

[विसर्जन—सबप्रथम ईदु कला २, होलिकाक ६७-६८ वि० मे प्रकाशित, चित्राघार में पराग क अंतगत पृष्ठ १७० पर सकलित । तारकगण आकाश में कयो मद मद हस रहे हैं ? हे चंद, तुम्हारी किरणों की कौति मलिन हो कर कयो भागती जा रही है ? रे निलज्ज, तुम्हें यह विचारकर सज्जा नहीं आता कि तुम्हारे दशन से जो मुल मिला या वह सब मलय के मग उड़ाए लिए चले जा रहे हो । फून मयी छिले है किंतु सोरम से हीन है । क्या कमलिनी के कुञ्जसमूह में अब भी पराग है ? किस कारण जल की व सुरभित कर रहे हैं ? हे वनशती नदा-रक, भाग मत । इस प्रकार राजि विसर्जन का साहित्यिक वणन करते करते कवि अंत में कहता है, जाग्रो अस्तावल मे निवास करो ।]

विसरलैय = वि०, ५५ ।

[म० पु०] (स०) कमलनाल के ककण ।

विसारहु = वि०, १६६ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) भूल जाया । भूलो ।

विसारि के = वि०, १७१ ।

[पूर्व० क्रि०] (प्र० भा०) भूल कर ।

विसारो = वि०, १७६ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) भूलो ।

विसाला = वि०, ५५ ।

[वि०] (प्र० भा०) विशाल । बड़ा । विस्तृत ।

विसिख = वि०, ३४ ।

[स० जी०] (स०) विशेष प्रकार की शिखा या विशिष्ट सील ।

विस्तार = का०, ५६ । वि०, १५८ । म० ४१ ।

[स० पु०] (स०) फलाव । उनाव । विस्तृत होना ।

विस्तारो = वि०, ७४ ।

[क्रि०] (हि०) फलावो ।

विस्तीर्ण = क०, १४ ।

[वि०] (स०) द० 'विस्तृत' ।

विस्तृत = का०, ३, २०, ३५, ५६, ७१, १२०, १३२, १८०, २८० । म०, ६३ । प्रे०, ७, १३ । म०, ४, ल, ३३ । वि०, १५० ।

फला हुमा । विशाल । बड़ा ।

विस्तृत सी = का०, २७७
[वि०] (स०) फले हुए के समान । विशाल के सदृश ।

विस्मृत = क०, २४ । का० १७१, १६२ । वि०, ६०, १६८ १७०, १८४ । म०, ६ । भूला हुआ । जा याद न हो ।

[विस्मृत प्रेम—इदु कला २, वि० ४, काविक ६७ में प्रकाशित और पराग क अंतगत चित्राघार में पृष्ठ १७०-७१ पर सकलित । कवि विस्मृत प्रेम के सवय में अनक प्रश्न उठाता है कि प्रेम अतीत के सागर में हूब जाता है तो भी उस प्रेम का राशरग कयो हृदय में उठता रहता है यद्यपि वह ऊपर से समाप्त हो जाता है तो भी उसकी लाली भीतर से कयो जगती है ? प्रकृति की सुंदर सुपमा देखते समय भी तुम्हारी स्मृति आमा कहाँ से प्रकट हो जाती है ? जब सारा आकाश मघाच्छन्न हो जाता है और हृदय निगंशा से भर जाता है तब भी विस्मृत प्रेम का प्रमा दिखाई पड़ती है । ध्रुव के समान तुमने यह कीन सी प्रमा धारण कर रखी है ?]

विस्मृत से = का०, २४५ ।
[वि०] (हि०) भूले हुए के समान ।

विस्मृति = श्री ८, २६, ५५, ७०, ७५ । का० कु०, [म० जी०] (स०) ६० । का० ६, ४६ ६७, ६७, १७७, १६३, २८६ २६३ । प्रे०, १६ । विस्मरण, याद न होना, भूल ।

विहंग = का०, १७२, १८२ ।

[स० पु०] (स०) विहंग, पक्षी । बादल, अश्रु । तीर, वाण, शर । आवागवारी, आकाश में विचरनेवाला प्राणी या कोई वस्तु ।

विहंगम = बा० कु०, ८। बि०, १४५।

[मं० पु०] (घं०) पत्नी।

विहंगम = बि०, १४४ १५५।

[बि०] (हि०) पक्षिवा ने माय।

विहंसते = घा० २६। बा०, २६०।

[क्रि०] (हि०) हंगल। प्रगल्भ होता।

विहंग = बा०, १४४, २६०। बि०, १४६।

[सं० पु०] (सं०) ल०, ७५।

१० 'विहंग'।

विहंग कुल = बि०, ५४ म०, ७।

[सं० पु०] (सं०) पक्षिवा वा समूह वा परिवार।

विहंग वालिका सी = बा० १७५।

[सं० स्त्री०] (हि०) पक्षिवा के शिशु के लगान।

विहंगण = बि०, ६६ १६३।

[सं० पु०] (सं०) घूमना। घूमने वा निवा करना। विहंगण करना। विवाह रूप से छान लाना।

विहंगण प्रेमी = बि० ६६।

[बि०] (सं०) विहंगण वा प्रेमी। विहंगण करनेवाला।

विहंगल = बि०, २८, १५७।

[क्रि०] (प्र० भा०) विहंगल करना है।

विहंगते = का० १८२।

[क्रि०] (प्र० भा०) विहंगल करते। घूमते।

विहंगहि = बि०, ६३।

[क्रि०] (प्र० भा०) विहंगल करते हैं।

विहंस = ल० ४८।

[प्र० क्रि०] (हि०) हंसकर।

विहंसते = घा०, ६४।

[क्रि०] (हि०) हंसते हैं।

विहंग = ल०, १६।

[सं० स्त्री०] (सं०) एक प्रकार का काजल जो आँखों में लगाया जाता है। एक राग जो भाषी रात के समय गाया जाता है।

विहंग = का०, ६। ल०, १३।

[सं० पु०] (सं०) मनाविनीय और सुखप्राप्ति के लिये होनेवाला काज। बौद्ध भिक्षुओं के रहने का स्थान।

विहीरा = बा०, २०, १७१। ल०, ५३।

[बि०] (मं०) गहिरा। विना।

विहल = बा०, ४८, २६३ २६४, ५०, ८१।

[बि०] (मं०) ल० ३०।

घातुन। विभार। घगुप।

विहलसा = बा०, ८।

[सं० स्त्री०] (हि०) घातुन का गमान। प्रगल्भ का गमान।

विहलसी = ल०, ३३।

[बि०] (सं०) घातुन की तरह।

यापि = बि०, ६६ १६६।

[सं० स्त्री०] (सं०) सहर्ष। तरंग।

वीचिन = बि०, १५३।

[सं० स्त्री०] (प्र० भा०) सहर्ष, तरंगें। घबराह, गुन। बमर।

वोचो = बि० ६८।

[सं० स्त्री०] (सं०) सहर्ष। तरंग।

वीछा = बा०, ३८। बा० कु०, १२३ बा०,

[सं० स्त्री०] (सं०) २८२। बि०, १५६। ल०, ३६।

ल० ४८।

एक प्रकार का प्रसिद्ध वाद्ययंत्र।

घोणा अनुकारी वाणी = बा०, कु०, ४८।

[सं० स्त्री०] (सं०) घोणा के स्वर में मिल जानेवाले स्वर।

वीर = का० कु०, ५२ ६६ १०६, १०८,

[बि०] (सं०) ११३। का०, ५५, २४८। बि०, २२,

४०, ४२। म० ८, १०, १२, १५

१६, १७, १८।

बहादुर। वरकर्म। वीरवाद्। भाइ।

लड़का। पति।

वारकर्म = बि०, ६४।

[सं० पु०] (सं०) वारो का काम। वीरना।

वीरगाथा = ल०, ५३।

[सं० पु०] (सं०) वीरो का कथा।

वीरजन = का०, ११५।

[सं० पु०] (सं०) वीर लोग।

वीरता = बा० कु०, १०६। ल०, ५२।

[बि०] (सं०) वीर्य। पराक्रम।

[वीर वालक—] जानन कुसुम में पृष्ठ १११ पर
संक्षिप्त पाँच पृष्ठों की कविता जिसमें

गुरु गोविंद सिंह के पुत्र जोरावर सिंह
और पतेह सिंह, जो दीवार में चुनवा
दिए गए थे, की धर्म पर आत्मबलिदान
काम की शौर्यपूर्ण कथा बड़े ही साहि
त्यिक ढंग से कवि ने वर्णित की है।]

वीरभाव = म०, ८।

[स० पु०] (स०) वीरता का भाव।

वीरभूमि = ल०, ५२।

[स० खी०] (स०) वीरा को पैदा करनेवाली भूमि।

वीरवर = बि० ४८।

[म० पु०] (स०) श्रेष्ठ वार।

वीरविचित्र = का० कु०, १०१।

[स० पु०] (स०) अद्भुत पराक्रमा।

वीरभू गार रस = बि०, २२।

[स० पु०] (स०) माहित्य में माने गए नव रसों में
से दो प्रधान रसों के नाम।

वीरुध = का०, २५ २६, ८६, २८४। का०

[स० पु०] (स०) कु०, २६।

प्र०, ३। बि०, ५७।

लता। वनस्पति। पीडा।

वीर्य = का०, ४।

[स० पु०] (स०) शूरा। रेत। पराक्रम। बल। शक्ति।

वृत्तों = भा०, ४५।

[स० पु०] (हि०) संस्कृत वृत्त का हिंदी बहुवचन। कथा
और छोटा कल। यह पतला ठूल
जिसपर फूल लगाता है।

वृद्ध = बि०, ६। म०, २, ५ १०।

[स० पु०] (स०) समूह, झुण्ड।

वृद्ध = बि० ६६।

[म० पु०] (स०) समूह भी। दल भी।

वृत्त = का० कु०, २५, १०१, १०२। का०,

[स० पु०] (स०) ३२। बि० ४६। प्र० १४। म०,
२४।

पठ। तब।

वृत्त पत्र = म०, ३०।

[म० पु०] (म०) पेट का पत्ता।

वृत्त पात = का०, २३३।

[स० पु०] (हि०) पेट का पत्ता।

वृत्ता = का०, ३४। का०, कु०, १०।

[म० पु०] (स०) गोल घेरा। वृत्तात। हाल। वर्णिक
छत्र।

वृत्ति = प्र०, ४, २४। बि०, १५०। म०,
[स० खी०] (स०) ७१।

जीविका। रोजी। पेशा। व्यवहार
आचरण योग्य छान को सहायतार्थ
दिया जानेवाला धन।

वृत्तघ्न = का०, १६०।

[स० पु०] (स०) ब्रह्मनाम के अक्षर प्रतापी क्षत्र
को मारनेवाले शूद्र।

वृथा = का०, १७५ १६४, २१६।

[बि०] (स०) व्यर्थ। बमतलब। किञ्चन।

वृद्ध = बि०, ६५ ७३, ७४। ल०, ५३।

[स० पु०] (स०) बुढ़ा। पण्डित। विद्वान्।

वृद्धि = का०, ५८।

[स० खी०] (स०) बढ़ती। अधिकता। उन्नति।

वृश्चिकों = ल०, ७८।

[स० पु०] (स०) बिन्दुघो।

वृष = का० २८२, १७७।

[स० पु०] (स०) साँड। एक राशि। बल।

वृषभ = का० २८३, २८६।

[स० पु०] (स०) दे० 'वृष'।

वृषभ की = बि०, ७२।

[स० पु०] (म०) बस का।

वृष्टि = का०, ६, १२, २०, ७३, १६४ २३६।

[स० खी०] (स०) म०, ६०।

वारिस। वर्षा।

वे = का० कु०, १० २५, ३१, ५२। का०,

[सव०] (हि०) ८, ५५ ६४ ७१ १४२ १४३ १८०
१८३ २३८ २४५। म० ५१। म०,
५, १०। ल०, ३३।

वह' का बहुवचन।

[वे कुछ दिन किसने सु दूर थे—नहर का सुपमिद

गीत श्रुत २७ पर सकलित। यह
कविता मिलन क विषयो में भरपूर है
और उन मुदर दिनों का वर्णन करती
है जब गावन के सुख सपन घन आँखों

की छाया मान मे घीर उम समय
घपरा का गुंवा मेला ही लगता था
जमे हनु रंजित नल यान स भर
चिंतित प्रेसर म युग न दाता भरे दूनी
वा भूम रहे ही। उम समय प्राण
परीक्षा क स्वर म योमत था घीर
हरियाली समय बरसती थी। योवन
क मद स निवला दृषा गय मुमुन
मानती के रजकण सा लगता था।
जय न ल छायावा पट पर बिजला प्रम
प्रशय का चित्र लीपती थी तो क्व
क मधुर चित्र स्मृति क माध्यम स मिल
उठने थे। योवन व प्रेम मद स पुरित
मिलन व य बुझ। दल सचमुच। बतने
गु दर य ? यह बविता सय प्रवमजाय
रण क १७ जुलाई १९३२ क भव म
प्रवाहित हुई थी।]

वेग = का० पु०, ५३ ७२ ७५, १०१, १०६
[सं पु०] (सं) ११६ १२५। का०, १२ ५२ २०२।
वि०, १५६। म०, ४०। प्र०, २४।
ल०, ६। ल० ७६।
प्रवाह। बहाव। जार। तेजी। गीघ्रता,
जल्द।

वेगपूर्ण = का० पु०, ४४। म०, २। ल० ६६।
[वि] (सं) प्रवाहपूर्ण। बहावदार। तेज। वग से
भरा हुआ।

वेगभरा = का०, ६५।
[वि०] (सं) प्रवाह से भरा हुआ।

वेगभरी = का०, १६० २२१।
[वि०] (सं) तेजा या प्रवाह से भरी।

वेगभरे = का० पु० १२।
[वि०] (सं) प्रवाह से भरे।

वेगवती = वि०, १५०।
[वि] (सं) प्रवाह से भरी। बहावदार।

वेगसहित = का० पु० १२६। म०, ७।
[सं पु०] (सं) प्रवाह के साथ। तेजी से। प्रवाहयुक्त।
गीघ्रता से। जल्दी से।

वेगु = श्री ३३। का० पु०, ११४। का०,
[सं पु०] (सं) १७८, २२४।

गनी, बानुरी। बीग।

वेगुवादन गुज = का०, ५०, ११२।

[म० पु०] (सं) व कूज जिनमे गंगा का बान होना है।

वेतनयुक्त = प्र०, १६।

[म० पु०] (सं) वेतनभागा। तनमाह जानेवाला।

वेतसी = का०, १४६।

[म० पु०] (हि०) बेट। बेटाना।

वेद = म०, ६३।

[सं पु०] (सं) वाराहिक घीर मन्त्र जान। बायीं के
चार सर्वमाय प्रभात धामिर द्रव
जिनके नाम ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद
घीर धर्मयज्ञ हैं।

वेदना सा = का०, ८६।

[वि०] (सं) पादा के लयान।

वेदना = का०, ७, ११, ४०, ९२, ९६, ८८।

[सं जी०] (सं) का० पु० १०। का० २८, ४०, ५२,

११६, १२० १७५, १७६, २१२।

ल०, २१, ३० ४६।

व्यथा, पाडा। हासिक या मानसिक
दुःख। बृष्ट तरलोक।

वेदनामय = का०, ८५।

[वि०] (सं) वेदनायुक्त। दुःखपूर्ण।

वेदने = का०, ७५। म० ८८।

[सं जी०] (सं) वेदना का सहायन कारकगत रूप।

वेदने ठहरा — भरता का १२ पक्षया का इस
बविता म बवि ने कहा है कि पाडा म
ही युके मुल था। किसी प्रकार का
बुझ नहीं था। लेकिन मिलन के स्वप्न
न उठे पीछित कर दिया। मेरे पास तो
बल्ल भरा प्राण है। वेदने, तुम मेरे
साथ रहो, "ही तो प्राण दहू मा।]

वेदिका = का० १८३ २१८।

[सं जी०] (सं) श्रम या धार्मिक कार्य के लिये बनाया गया
ऊँचा छायादार स्थल। यज्ञादि के लिये
निमित्त चौको घीर सहस स्थल। कुरभी।
आसन, वठन का बुझ ऊँचा स्थान।
बह चबूतरा जिसपर मकान बनाता है।

वेदियाँ = का०, १६६।

[सं जी०] (हि) दे० 'वेदी' (वृद्धवचन)।

वेदी = ग्रा०, ६६। का०, ११४, ११६, २०१,
[सं० खी०] (हि०) २१५, २८४।

शुभ या घामिक वृत्त के लिये निर्मित
ध्यायादार उपयुक्त भूमि।

वेदीबाला = का०, २१४।

[सं० खी०] (सं०) वेदिका की पवित्र लपटें।

वेला = ग्रा०, १२, ४०, ६०। का०, १५।

[सं० खी०] (सं०) ल०, ५६।

किनारा सट। सीमा। काल। समय।

समुद्र की लहरें।

वेशा = का० कु०, ६, ११०, १११। का०,

[सहा पु०] (मं०) ५२, २५८ वि०, २२। ऋ०, ५८।

प्र०, १८, २५।

पहनावा। पाशाव, पहनने के वस्त्र।

वेप = का० कु० १२।

[सं० पु०] (सं०) दे० 'वप'।

वेष = का० कु०, ८६।

[वि०] (सं०) कानून के अनुसार ठीक। विधि के

अनुसार। मविधान के अनुसार।

वेभ्रव = ग्रा०, २३। का० कु०, ११३। का०

[सं० पु०] (सं०) ६ ५६ ६८६। प्र०, १२। ल०,

३४, ४७।

विभव। एश्वर्य। धन संपत्ति।

वेभ्रवहीन = का०, ८२।

[वि०] (सं०) विभव विहान सगच्छहीन।

वेदनानर = का०, १८३। वि० १३६।

[सं० पु०] (मं०) धमि। चेतन परमात्मा।

वेसा = का०, ८७ ६३ १४३। मं० ५, २१।

[वि०] (हि०) उस तरह का। उस प्रकार का।

वैसी = का०, २८, ६७, १५७ २८८।

[वि०] (हि०) दे० 'वसा'।

वैसे = ग्रा० २७। का० २८२। वि०

[मं०] (हि०) १७३। ल०, ६६।

उस तरह।

वोही = का० कु०, ६।

[मं०] (हि०) दे० 'वही'।

व्यग = मा०, ५७। ल०, ६८, ७६, ७६।

[सं० पु०] [सं०] चुटकी, ताना, दोली शब्द का व्यञ्जना
के द्वारा प्रकट होनेवाला गूढ़ अर्थ।

व्यग मलिन = ल० ११।

[वि०] [सं०] वाली बोझने या चुटकी लेने के कारण
अस्वच्छ। व्यग से दूषित।

व्यग हास = ल०, ६७।

[वि०] (सं०) व्यगपूछ हमी। उपहास।

व्यक्त = का० कु०, ७४। का०, १६, २७, ३५,

[वि०] [सं०] ५३ वि०, १६६।

स्पष्ट प्रकट। स्पष्ट। बड़ा।

व्यक्ति = का०, ५०, ७०, १३२। प्र०, १६,

[सं० खी०] (सं०) १७।

मनुष्य, प्रादमा। व्यक्त होने की क्रिया।

व्यक्तिगत = प्र०, १७।

[वि०] (सं०) व्यक्तिगत। किसी व्यक्ति से संबंधित।

व्यजन = का०, ७३, ६०।

[सं० पु०] (सं०) पला। झलर।

व्यतीत = वि०, ३४, ४५। प्र० ८। ल०, २३।

[वि०] (सं०) गत, बीता हुआ।

व्यथा = ग्रा०, ११ ५२, ५४। का० कु० ८,

[सं० खी०] (मं०) २१। का०, ५४, १२६, २१५, २१७

२२६। ऋ०, २७ ६१। ल०, ११,

२१, ३७, ४०।

पाठा, दर्शा, कष्ट, दुख।

व्यथा गौठ = का०, २१३।

[महा खी०] (हि०) दुख की गाठ। व्याकुल वेदना।

व्यथाभार = का०, २४४।

[वि०] (सं०) दुख का बोझ। वेदना का भार।

व्याधायें = ग्रा० १३, ५८।

[सं० खी०] (हि०) दे० 'यथा', 'वद्वेषन'।

व्यथित = ग्रा० ८, ६१। का० कु०, १७, ८०

[वि०] (सं०) ८८। का० ३१, ३७, १२०, २२१।

वि०, ६५ १४३ १५८। प्र०, १४।

ल०, ३३।

दुःखित। जिस किसी प्रकार की वेदना

या कष्ट हो। दुःखा।

व्यथिता = का०, २४५।

[सं० खी०] (सं०) दुःखिनी स्त्री।

की छाया मान वे घोर उस समय
घपरा का उजब लगा हँस लगता था
जसे इन्द्रपुत्र रंजित नण बापन से भरे
चित्तित्त घंवर म युग व दोनों भरे दूरी
वा भूम रह हों। उस समय प्राण
परीक्षा व स्वर म बापता था घोर
हरियाली सवत्र बरसती थी। योवन
के मद से निबन्ना हुआ गम मुगुल
मातता वे रजकला सा लगता था।
जब न ल छायावा पट पर बिजना प्रम
प्रणय का चित्र लोचनी की ली रूप
क मधुर चित्र स्मृति क माध्यम म मिल
उठन थ। योवन व प्रेम मद से पूरित
मिलन व व कुछ दिन सचमुच बिता
सु दर थ ? यह कथिता सय प्रथमजाग
रण क १७ जुलाई १९३२ व मर म
प्रकाशित हुई था।]

वेग = का० कु०, ५३, ७२, ७४, १०१, १०६
[सं० पु०] (सं०) ११६ १२३। का० १३, ५२, २०२।
वि०, १५६। ऋ० ७०। प्रि० २४।
ल०, ६। ल० ७६।
प्रवाह। बहाव। जार। तेजा। शीघ्रता,
जल्द।

वेगपूर्ण = का० कु०, ७४। म०, २। ल० ६६।
[वि०] (सं०) प्रवाहपूर्ण। बहावदार। तेज। वेग से
भरा हुआ।

वेगभरा = का० ६५।
[वि०] (सं०) प्रवाह से भरा हुआ।
वेगभरी = का० १६०, २२१।
[वि०] (सं०) तेजी या प्रवाह से भरा।
वेगभरे = का० कु०, १२।
[वि०] (सं०) प्रवाह से भरे।

वेगवती = वि० १५०।
[वि०] (सं०) प्रवाह से भरी। बहावदार।
वेगसहित = का० कु० १२६। म० ७।
[सं० पु०] (सं०) प्रवाह के साथ। तेजी से। प्रवाहयुक्त।
शीघ्रता से। जल्दी से।

वेगु = सं० ३३। का० कु०, ११४। का०,
[सं० पु०] (सं०) १७८, २२४।

मगी, बागुरी। बाग।

वेगुवादन मुक्त = का०, कु०, ११२।
[सं० पु०] (सं०) व कुत्र विनम गता वा बापन होता है।
वेतयुष = प्र०, १६।
[सं० पु०] (सं०) वानभागी। तनगादू पानेवाना।
वेतसी = का०, १४६।
[सं० पु०] (वि०) वेंग। वृक्षानाम्।
वेद = ऋ०, ६३।
[सं० पु०] (सं०) वादविद धीर गन्धा मान। प्राचीन
चार सवमान प्रथा धार्मिक द्रव
जिनके नाम ऋषि, यजुर्, सामदेव
धीर धर्मधर्म है।

वेदनासा = का०, ८६।
[वि०] (सं०) पादा व तमाज।
वेदना = का० ७ ११, ७०, ६२ ६६ ८८।
[सं० जी०] (सं०) का० कु०, ६०। का० २८, ४०, ५२,
११६, १२० १७५ १७६, २१२।
ल०, २१, ३० ७८।
व्यथा, पादा। हाँस या माननिव
दुःख। बट, तन्वीक।

वेदनामय = का० ८४।
[वि०] (सं०) यन्नायुक्त। दुःखपूर्ण।
वेदन = का०, ७५। ऋ० ८८।
[सं० जी०] (सं०) वना का तवायन वारामत रूप।

वेदने ठहरा — ऋगा का १२ पक्षया का द्रव
कथिता म यवि न ब्रह्मा है कि पादा म
ही शुके सुत था। किसी प्रकार का
कुछ नहीं था। तजिन विलग के स्वयं
न उस पारित कर दिया। मर पास ता
नवल मरा प्राण है। वेदने सुम मेर
साथ रहो - ही तो प्राण दहू गा।]

वेदिका = का० १८३ २१८।
[सं० जी०] (सं०) श्रुत या धार्मिक कार्य के लिये बनाया गया
ऊँचा छायादार स्थल। यज्ञादि के लिये
निमित्त चौकोर घोर सहस स्थल। कुरुधी।
आसन, वठने का कुछ ऊँचा स्थान।
बहु बबुनरा जिसपर मकान बनता है।

वेदियों = का०, १६६।
[सं० जी०] (हि०) दे० वेदी (वह्नयन)।

वेदी = ग्रा०, ६६। का०, ११४, ११६, २०१,
[सं० खी०] (हि०) २१५, २८४।

शुभ या धामिन वृत्य ने लिये निर्मित
छायादार उपयुक्त भूमि।

वेदीज्जाला = का०, २१४।

[सं० खी०] (स०) वेदिका की पवित्र सपटें।

वेला = ग्रा०, १२, ४०, ६०। का०, १५।

[सं० खी०] (स०) ल०, १६।

किनारा सट। सीमा। काल। समय।
समुद्र की लहर।

वेश = का० कु०, ६ ११०, १११। का०,

[सं० पु०] (प्र०) ५२, २५८ चि०, २२। अ०, ५८।
प्रे०, १८, २५।

पहनावा, पोशाक, पहनने के वस्त्र।

वेप = का० कु०, १२।

[सं० पु०] (स०) दे० 'वेश'।

वेध = का० कु०, ८६।

[वि०] (स०) कानून के अनुसार ठीक। विधि के
अनुसार। सविमान के अनुसार।

वेभय = ग्रा०, २३। का० कु०, ११३। का०,

[सं० पु०] (स०) ६ ५६, ६६६। प्रे०, १२। ल०,
३४, ४७।

विभव। एषय। धन भपति।

वेभयहीन = का०, ८२।

[वि०] (स०) विभव विज्ञान सगच्छिहीन।

वैश्वानर = का०, १८३। जि० १३६।

[सं० पु०] (म०) अग्नि। चेतन परमात्मा।

वैसा = का०, ८७ ६३, १४३। म०, ५, २१।

[वि०] (हि०) उस तरह का। उस प्रकार का।

वैसी = का०, २८, ६७, १५७ २८८।

[वि०] (हि०) दे० 'वैसा'।

वेसे = ग्रा०, २७। का०, २८२। जि०,

[म०] (हि०) १७३। न०, ६६।

उस तरह।

वोही = का० कु०, ६।

[म०] (हि०) दे० 'वही'।

व्यग = ग्रा०, ५७। ल०, ६८, ७६, ७६।

[सं० पु०] [म०] चुटकी, ताना, बोली, शब्द का व्यञ्जना
के द्वारा प्रकट होनेवाला गूढ अर्थ।

व्यग मलिन = ल० ११।

[वि०] [स०] बोली बोलने या चुटकी लेने के कारण
अस्वच्छ। व्यग से दूषित।

व्यग हास = ल०, ६७।

[वि०] [म०] व्यगपूर्ण हसी। उपहास।

व्यक्त = का० कु०, ७४। का०, १६, २७, ३५,

[वि०] [स०] ५३ चि०, १६६।

स्पष्ट प्रकट। स्पष्ट। बड़ा।

व्यक्ति = का०, ५०, ७०, १३२। प्रे०, १६,

[सं० खी०] (स०) १७।

अनुप्य, आदमी। व्यक्त होने की क्रिया।

व्यक्तिगत = प्रे०, १७।

[वि०] (स०) व्यक्तिगत। किसी व्यक्ति से सम्बन्धित।

व्यजन = का०, ७३, ६०।

[सं० पु०] (स०) पखा। आलर।

व्यतीत = जि०, ३५, ४५। प्रे०, ८। ल०, २३।

[वि०] (स०) गत बीता हुआ।

व्यथा = ग्रा०, ११ ५२, ५४। का० कु०, ८,

[सं० खी०] (म०) २१। का०, ५४, १२६, २१५, २१७,

२२६। अ०, २७, ६१। ल०, ११,

२१ ३७, ४०।

पीड़ा, वल्गना, कष्ट, दुःख।

व्यथा गाँठ = का०, २१३।

[सं० खी०] (हि०) दुःख की गाँठ। व्याकुल वेदना।

व्यथाभार = का०, २४४।

[वि०] (स०) दुःख का बोझ। वेदना का भार।

व्यथायें = ग्रा०, १३, ५८।

[सं० खी०] (हि०) दे० 'व्यापा' (वहवचन)।

व्ययित = ग्रा०, ८, ६१। का० कु०, १७, ८०,

[वि०] (स०) ८६। का०, ३५, ३७ १२०, २२१।

जि०, ६५, १४३, १५८। प्रे०, १४।

ल०, ३३।

दुःखित। जिसे किसी प्रकार की वेदना

या कष्ट हुआ। दुःखा।

व्ययिता = का०, २४४।

[सं० खी०] (म०) दुःखिनी स्त्री।

व्यर्थ = मा०, १०, ३६ । वा० कु०, १३ ।
 [वि०] (सं०) वा०, ३७, ३६, ८७, ८६, १२०,
 १७४, १६२, १६४ । पि० ५१, ७३ ।
 भ०, ३७ ।
 निरर्थक । अर्थरहित । विषय, जिगासा
 बोझ पत्र न हो ।

व्यवहार = वा०, १८६ ।
 [सं० पु०] (सं०) वाय, वाय । यथाय । साधारण ।
 व्यवधान = मा०, ६१ ।
 [सं० पु०] (सं०) साद, परदा । मन्त्रा । गृह । विच्छेद ।
 याथा ।

व्यवसाय = का० १८२ ।
 [सं० पु०] (सं०) धधा । जीविना निवर्तित के निमित्त किया
 जानेवाला कार्य ।

व्यवस्था = वा०, १६८, २००, २७१ ।
 [सं० ली०] (सं०) प्रवध, इतजाम ।

व्यस्त = का० १०, १३, १४, १५, ३३, ३५ ।
 [वि०] (सं०) ४६, ५१, ५३, ५६ । मा०, ८६ । ल०,
 ४४ ।
 चबडायी हुआ, यागुल घ्यप्र ।

व्याकुल = मा०, ३१, ३३ । वा० १७, १६६ ।
 [वि०] (सं०) वा० कु० १४, ६८, ८५ । वा०,
 ३६, ६५, १११, १३६, १६६, १६८,
 १८५, चि०, ६८, १४१ । भ०, ३८,
 ४५ । म०, ४ । ल० २६, ७० ।
 अत्यन्त उत्कण्ठित, पातर । चबडायी
 हुआ, विवल ।

व्याकुलता = वा० १६१ । चि १५३ । ल०, १२ ।
 [सं० ली०] (हिं०) कानरता । व्यस्तता । उत्कठा ।

व्याकुल सी = का०, २७, १२३ ।
 [वि०] (हिं०) चबडाई हुई सी । व्यस्त सी ।

व्याप्यो = वा०, २७१ ।

[सं० ली०] (सं०) वणन, विश्लेषण । जटिल ग्रंथ का
 स्पष्टीकरण ।

व्याधि = वा० कु०, ७२ ।

[सं० ली०] (सं०) बखेडा । रोग । विपत्ति ।

व्यापक = वा०, १६६, १७६ । ल०, ३२ ।

[वि०] (सं०) भरा या छाया हुआ । घेरने या ढकने
 वाला ।

न्यापकता = वा०, १६५ ।

[सं० पु०] (सं०) न्यापक, व्यापक, निरापक ।

व्यापार = वा०, ७७ । वा०, ५६ । १२४, १८८ ।

[सं० पु०] (सं०) मा०, ४२ । म०, १७, १३ ।

व्यापार, वाप, वास । गतापडा ।
 व्यापक शरावर धनो वा वाप ।
 प्रत्य विषय ।

व्यापी = वा० कु०, १ । ल०, ६० ।

[वि०] (सं०) जो व्याप हो जो व्याप और व्यापक ।
 व्यापक हुआमान ।

व्याप्त = वा०, ३२ । वा० कु०, १०८, ११७,
 १२३ ।

विद्या वस्तु या समाप्त म प्रचक्ष्ति ।
 मोक्षोत्पत्ति दृष्टा ।

व्याली = वा०, ५ ।

[सं० ली०] (सं०) मणिगा, नागिन ।

व्यालीसी = वा० १४ ।

[वि०] (हिं०) सर्पो व समान ।

व्याहृद् = चि०, ५४ ।

[क्रि० सं०] (सं० मा०) व्याहृत करा । व्याहृत त्रिया वा
 एक रूप ।

व्योम = वा० कु०, २४, ६४, ६६, ११२ ।

[सं० पु०] (सं०) का० १४, १६, २०, २६, ८८ ।
 चि०, २३, ६७, ७४, १४१, १४६ ।
 मा०, २४ । प्रे०, १० । म०, ३ ।
 ल०, १६, ५६, ६८, ७५ ।
 आकाश । अंतरिक्ष । आसमान ।

व्योमकेश = चि०, ७२ ।

[सं० पु०] (हिं०) आकाश । व्योम । रजनी । शिव ।

व्योम गगा = मा०, ८ ।

[सं० ली०] (सं०) आकाश गगा ।

व्योमवत्सल = वा०, ५१ ।

[सं० पु०] (हिं०) आकाश की सतह ।

व्योम बीच = वा०, ४६ । चि०, १८२ ।

[सं० पु०] (हिं०) आकाश मध्य । गगन के बीच म ।

व्योम सुकता सम = चि०, १४५ ।

[वि०] (हिं०) आसमान के मोतिया के समान । तारो
 के समान ।

ॐम सरोवर = वि०, १४६।

[स० ली०] (स०) आकाशरुपी सरोवर।

ब्रज = का० कु०, ११२।

[स० पु०] (म०) मयरा। वृण वा क्रोडाभूमि या लोलाभूमि। समूह। गोष्ठ।

ब्रज कानन = का० कु० १२५।

[स० पु०] (स०) मयरा क जंगल। वृंदावन के वन।

ब्रजभूमि = का० कु०, १११, ११४।

[स० पु०] (स०) मयरा और वृंदावन की भूमि।

प्रव्या = का०, ६३।

[स० ली०] (स०) दल। रगभूमि। घूमना फिरना। एकत्रित करना। आश्रय।

ग्रन्हा = का० कु० ११४।

[स० पु०] ईश्वर। चतुरवन। सृष्टि कर्ता, ब्रह्मा।

त्रीङा = का०, ६४ २६३।

[स० ली०] (स०) लज्जा, लाज, शम।

श

शक = वि०, ५०।

[स० पु०] (ब० भा०) डर, भय, शका।

शकर = वि०, ६१।

[स० पु०] (स०) सहार करनेवाला। महादेव।

शका = का० कु०, ५७ ५८। का०, १६६।

[स० ली०] (स०) वि०, ४। ऋ०, ६४। प्र०, २१। अनिष्ट। भय। सदेह। छटका।

शक्ति = का० कु०, ८१।

[वि०] (स०) ममातुर। डरा हुआ।

शर = का० कु०, ११४।

[स० पु०] (स०) धार्मिक कृपा पर बनाया जानवाला बड़े धागे का एक प्रकार का पवित्र वस्त्र। कपु।

शपाश्रो = का०, १४।

[स० ली०] (हि०) विवक्षित। कपरा। स० शपा हिंसा बहुवचन।

शरुल निपात = का०, १४।

[स० ली०] (स०) सपूर्ण नाश। पूरा विनाश।

[शकुन्ती—गंधार नरश मुकुल का पुत्र एवं दुर्योधन का मामा। यह शकुन्ता भीमर के नाम से विख्यात है। यह पांडवा का द्वेषी था। द्रापदा के स्वयंवर के समय ही यह पांडवा का समाप्त कर देना चाहता

था। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में पांडवा के प्रति इसने दुर्योधन के मन में शत्रुता जमाई। धन वपट द्वारा द्यूतक्रीडा (जुआ) कराकर युधिष्ठिर का सब कुछ इसने अपहृत करा लिया। द्वैतवन में पांडवा ने इनका रक्षा की। सहदेव ने महाभारत में इसका वध किया। हमने ही धृतराष्ट्र व साथ गांधार का विवाह कराया था।]

शकुन्तला = वि० ५७ ५८, ५९, ६०, ६१ ६२।
[स० ली०] (स०) कश्यप ऋषि की पालिता कन्या।

[शकुन्तला—कार्तिदास कृत अमर नाटक अभिज्ञान शाकुन्तल का नायिका, महर्षि कश्यप द्वारा पालित कन्या, दुर्योधन का पत्नी एवं भरत की माता थी। शतपथ ब्राह्मण में भी इसका अप्सरार के रूप में उल्लेख है। विश्वामित्र के तपकाल में अप्सरार मेनका इनका तनभग करने के लिये इंद्र द्वारा भेजा गई थी और मालिनी नदी के तट पर उसने शकुन्तला का जन्म दिया था। इसका मां मनका इसे छोड़कर इंद्रलोक चला गई और महर्षि कश्यप ने इसका पालन पापण कन्या मानकर अपने आश्रम में किया। कश्यप के आश्रम में ही हस्तिनापुर नरेश दुष्यंत उनका दशन करने भूगया खलत हुए आए। वही कन्या की अनुवर्त्त्यता में मनका गायक विवाह इस शत पर हुआ कि इसका पुत्र हस्तिनापुर का सम्राट बनेगा। दुष्यंत शकुन्तला का वहीं छोड़ हस्तिनापुर लौट गए कि दून द्वारा वह उस पुत्रवा लेंगे। दुष्यंत अपना वादा भूल गए और इस पुत्र पदा हुआ जिसका नाम भरत और मवदमन रखा गया। कश्यप ने देह इनका प्रतिग्रह भेजा। दुष्यंत का राजममाम जान पर दुःखन ने इसकी बात नहीं मना तब आकाशवाणी हुई कि अगर भरत पुत्रराज नहीं

शपथ = का०, ६७, ८७।

[स० स्त्री०] (स०) वसम। सोण व।

शब्द = का०, ८, १८। का० कु०, १। का०,

[स० पु०] (स०) १६, १११, २४६। म०, १। ल०, ५८
७२, १११।

साथ वस मयूह। ध्वनि। आवाज।
सतो के बनाए हुए पद।

शायन = का०, १५। का०, ११८, १८६। का०,

[स० पु०] (स०) ५५।
सोना, नींद लेना।

शयन नचा = का०, १८६।

[स० पु०] (स०) साने का कमरा।

शयनगार = का०, २।

[स० पु०] (स०) सोने का कमरा।

शय्या = का०, ७६।

[स० स्त्री०] बिछोना। पलम।

शर = का० कु० ६८। वि०, ४२, ५३, ५४।

[स० पु०] (स०) वाण, तीर। भाले का फन्।

शरजाल = वि०, ५३।

[स० पु०] (स०) बाणों का समूह। तीरा का ढेर।

शरजालहि = वि०, ४२।

[स० पु०] (स० भा०) दे० 'शरजाल'।

शरण = का० कु०, ६६। का०, १६१, १७१।

[स० पु०] (स०) १८६ १६५। वि०, ६७। ल०, ६६।
रक्षा। आश्रय। घर भकान।

शरत्काल = का० कु०, १२२।

[स० पु०] (स०) शरद, का मौसम। शरत् ऋतु।

शरद = का०, ७१। का० कु०, ६७। का०, २३,

[स० स्त्री०] (स०) २७१। वि०, १७१। का०, २३।

एक ऋतु जो आश्विन और कार्तिक में
पड़ती है। वर्ष। साल।

शरद का सुंदर नीलाकाश सर्वप्रथम माधुरी खड १,
सख्या १, पृष्ठ ३, में सन् १९२४-५२
प्रकाशित करना का गौत 'जसका
शीपक दो बूँद'। देखिए दो बूँदें।

शरद, इंदु = का०, १४३।

[स० पु०] (स०) शरद काल का स्वच्छ चंद्रमा।

शरद इंदिरा = का०, २८।

[स० स्त्री०] (स०) शरद बाल की लम्बी, चांदनी।

शरद घन = का० कु०, १००।

[स० पु०] (स०) शरद कालीन बादल।

[शरद पूर्णिमा—इंदु कुंज, २, किरण ४, कांति ४,
१९६७ में सब प्रथम—प्रकाशित—श्री
विश्वनाथ—१९६१ पर पत्र, ग
के अंतर्गत सविता व्रजभाषा की
रचना। पूर्व दिशा में ध्रुविनाम सुंदर
चंद्रमा उदित है और अपनी कला
विखेर रहा है। आकाश में पूरा शशि
शामिल है। मद मद वायु ठोल रही
है। सब धन धारण किए हुए चुप हैं
कोकिल और कीर भी उही बालत है।
कभी कभी समार क स्वर से ठुम पत्र
हिलते हैं। आकाश में चंद्र शोभा बरसा
रहा है, मानो प्रकृति के हृदय में गानक
उमड़ रहा है। ऐसा लगता है कि
मोहन मंत्र पढ़ कर ससार पर वह
पराम बिखेर रहा है। निशापति को
शक्तिशाली समझ कर भ्रमकार अपना
भग छिपान के लिये भाग रहा है और
कदराओ में तथा वृक्षों का छाया में
शरण ल रहा है। नदों, पृथ्वी, पर्वत,
वन देश सभी ने नया वेश धारण कर
लिया है और सब ने इस सुख के कारण
मगल रूप धरा है। देखने में सब के
सब मनोहर और अपूर्व सुंदर दिखाई
पड़ रहे हैं।]

शरद प्रात = का०, २२१।

[स० पु०] (स०) शीतलता प्रदान करनेवाला प्रदेश।

शरद ललाट = का० कु०, २९।

[स० पु०] (स०) शरद के समान देदीप्यमान मस्तक।

शरद शर्वरी = का०, कु०, १३।

[स० स्त्री०] (स०) शरद की राशि। शरदरूपी नायिका।

शरभ = ल०, ७६।

[स० पु०] (स०) टिड्डी। हाथी का बच्चा। गैर।

शरासन = वि०, १०६।

[स० पु०] (स०) धनुष।

शरी / = का० कु०, १००। का०, २६, ३६, ४८।

[स० पु०] (स०) देह। तन।

शरीरी = का०, २५४।

[स० पु०] (स०) जीव, आत्मा।

(वि०) शरीर धारी।

शलभ = का०, १७६। ल० ४६। वा० १७६।
 [म० पु०] (स०) पतमा। पतिमा।
 शरता = का०, १३०।
 [स० खी०] (हि०) मुदापन। सब की भाववाचक सज्ञा।
 शरलित = का०, ८४।
 [वि०] (स०) मिश्रित। मिला हुआ, जिन विचित्र।
 शशाक = चि०, १४।
 [स० पु०] (स०) चद्रमा। कर्कर।
 शशा = प्रा०, ३३, ३५। ४४, ७७। का०,
 [स० पु०] (स०) १७५ १८४। चि०, २८, ४५, १०१,
 १४६। म०, २३ ७२।
 चद्रमा।

शशि कला सी = का० कु०, १२०।
 [वि०] (हि०) चद्रमा की कला क समान।
 शशिकिरण = का० कु० ८।
 [स० खी०] (ग०) व मा का किरण। रश्मि।
 शशिकिरने = ल० ८१।
 [स० खी०] (हि०) चद्रमा का किरण।
 शशिलङ्घसदृश = का०, १६८।
 [वि०] (हि०) चद्रमा व दुङ्गे क समान।
 शशिमुख = प्रा० १६।
 [स० पु०] (स०) चद्रमा क समान मुख।
 शशिलेला = का० ११७ २२५ २३६।
 [स० खी०] (स०) चद्रमा का रेखा। चद्रमा की किरणें।
 शशिशतदल = ल०, २५।
 [म० पु०] (स०) चद्रमा रूपी कमल।
 शशिसी = ल०, ३८।
 [वि०] (हि०) चद्रमा क समान।

[शशा सी वह सुंदर रूप विभा—सहर मे पृष्ठ
 ३६ पर सफलित। शशि क समान वह
 सुंदर रूप का विभा चाहे मुझे मत दिख
 सामो पर उस की पवित्र शांतल छाया
 हिमखण्ड का भाँति बिखरतजाना।
 दिन क समान शनि ससार रूपी स्वप्न
 स जमाने नहीं भाया है ८५ लिए
 मर जावन क सुप्त का योनि जात
 जात रह जाना। इन जान की बला
 म भी क्या तुम ठहर कर विधाम नहीं
 कराय? जीवन जिस का रास्ता छाया-

पथ के समान है उस मे विधाम नहीं
 है। बबल चलते जाना है। ससार
 व अभिनव कोलाहल मे भरा प्रेम
 फल जाने दो ताकि वह एकांत भ्रमकार
 म जाकर फिर किरण बनकर लोटे।
 यह एक रहस्यवादी रचना है जिसमे
 रूप की भाषा मे विश्वास न कर उस
 की अंतरात्मा के भाषा से प्रेम की
 बात कहा गई है।]

शस्य = का०, ८२। चि०, १५७। प्र० ७।
 [म० पु०] (स०) ल०, ५१।

नयी घास। अनाज। खड़ी फसल।

शस्यभरो = प्र०, ११।
 [वि०] (स०) अनाज से भरी। हरियाली से भरी।
 शस्य श्यामला = का०, ६३, १६४। चि०, १४३।
 [वि०] (स०) हरी भरा प्रकृति। हरियाला।

शस्याश्लि = चि०, १३६।
 [स० खी०] (म०) अनाज की बाला का समूह।
 शस्त्र = का० १४६। चि० ४२। य०, ५६।
 [स० पु०] (स०) कैंकर मारा जाने वाला भय।

शस्त्रयन = का०, १६६।
 [स० पु०] (स०) कैंकर मार जानेवाला हथियार।
 शस्त्रागार = चि०, ३१।
 [स० पु०] (स०) हथियार घर।

शस्त्रों = का०, १६१।
 [स० पु०] (हि०) कैंकर मारे जानेवाले हथियारों।

शस्त्रोंसा = का०, २००।

[वि०] (हि०) हथियार क समान।

शहनाई प्र० १३।

[स० खी०] (हि०) एक प्रकार का बाजा।

शांत = भा०, १२, ३७। का०, ११। का०
 कु० १४, १५, १८, २१, ४०, ४८,
 ५६, ८८, ९०, ९६, १२०। का०,
 ३०, ३१, ३४ ५०, ८५, ८६, ९३,
 १३६, १६०, १६३, २१३, २३०,
 २४५, २७२, २८०, २८१। चि०, ६६,
 ६९ ७३, १४५। म० १७ १६,
 ३३। प्र०, ३, ४, ६, ८, २५। म०,

७, ११। ल०, १२, १३, ३२, ४३, ५६।

स्वस्थ हो हस्ता रहित। धीर, गभीर।
सौम्य। जिसमें चोम, चित्ता, उद्वेग
दुःख, आदि न हो।

शातकुटीर = प्र० २१।

[सं पु०] (हि०) नीरव झोपड़ी।

शातचित्त = का० कु०, ५७। प्र०, ७।

[सं पु०] (स०) उद्वेग आदि से रहित चित्त। स्थिर।

शातमयी = का०, ७७। चि०, ७३।

[वि०] (हि०) शात, मौन, स्थिर।

शाति = मा०, २५। का० कु०, ५३ ६२ ६३,

[सं कौ०] (सं०) ६६, ११६, १२०, १२२। का०, ८,
१०, २७। १२२, २१०, २३६,
२५०। चि०, ४५, ५६, १४२,
१६१, १७०, १६६। ऋ०, ३४, ३२।
प्र०, ४, २१, २२, २६। म०, ७,
२४।

स्तपिता। सनाटा। समगल आदि दूर
करने का एक धार्मिक उपचार।

शाति देवी सी = का०, कु०, १००।

[वि०] (हि०) शाति का देवी के सहण।

शाति पुज = का०, १४६।

[सं कौ०] (स०) शाति का समूह। गभीर शाति।

शाति प्रात = का०, २५०।

[सं पु०] (स०) शाति रूपी प्रात काल।

शालिन्मय = का०, ६८।

[वि०] (स०) शात, स्तब्ध।

शासि राज्य = प्र०, ६।

[सं पु०] (स०) वह राज्य जिसमें शाति हो।

शासिचारि = ल०, ३२।

[म० पु०] (स०) पूजन का शातिदायक जल।

शासि हेतु = का० कु०, १४।

[क्रि० वि०] (स०) शाति का कारण। शाति के लिए।

शास्त्रा = चि०, २६, ६८।

[सं कौ०] (हि०) ढाली। विभाग। खड। टहनी।

शास्त्रावली = का० कु० ५३।

[सं कौ०] (सं०) वृद्ध की शालियों का समूह।

शाप = का०, १६३, १८५, १६१। चि०,

[ग्र० पु०] (सं०) ५८, ६०।

किसी के अनिष्ट की कामना से कहा
गया कोपमय शब्द। धिक्कार। भयना।

शाप पाप = का०, २५४।

[सं पु०] (सं०) भयना का पाप।

शापित = का०, २८८।

[वि०] (हि०) धिक्कारा गया।

शापित सा = का०, २२७।

[वि०] (हि०) धिक्कारे गए के समान।

शारदघन धोच = ऋ०, २२।

[म०] (हि०) शरदकालीन वादलो के मध्य में।

शारद चद्र = प्र०, १५।

[सं पु०] (स०) शरदकालीन चद्रमा।

शारदशशि = ऋ०, ७२।

[सं पु०] (स०) द० 'शारद चद्र'।

[शारदाष्टक—इदु कला १, किरण १, आवण
१६६६ म प्रकाशित कविता। न छवों
म शारदा की स्तुति हम में की गई है।
यह परंपरागत वयन है। मगहा म
यह ३२ पंक्ति की व्रज भाषा की कविता
संक्षिप्त नहीं का गई है।]

शारदीय = चि०, १५४।

[वि०] (हि०) शरदकाल का। शरद ऋतु संबंधी।

[शारदीय महापूजन - इदु कला २, किरण ४,
कालिका ६७ म सवप्रथम प्रकाशित
और चित्राधार म पृष्ठ १५६ पर
संक्षिप्त। शारदा का स्वरूप धारण
कर माँ भगवती ने आगमन किया है।
विश्व म सुन्दर प्रकाश चारा आर छाया
हृष्टा है। बार भीतल सुरभित पवन
अधीर हो कर बह रहा है तथा आकाश
नील स्वच्छ और नीली ढग से आभित
है। धाम से भरी हुई सारी धरती स
सब को म यत मुख मिल रहा है। यह
मा शारदा की मनोहर मूर्ति विश्व
व्यापित है जो सबके हृदय म आनंद
और उत्साह भर रही है। देववालाएँ
मुखप्रवक इनका पूजन करती हैं और
तारागण इन्हें कुमुममाला पहनाते हैं।

चित्रा माता कुर मे पारता वर द
वा मीरावा करी है धीर माल
पानी उता माल का जल है। माली
माल मे धारण गा है धीर कोटि कोटि
बंड मी, मुहारी कानि निरुपमालि,
विमलमालि। धीर विमोक्ष क म
मं दल मुहारा जयजयकार करण है।]

शाला = विन ५८।

[मं ०] (मं) माल। जगह। माला।

शालि = वं ८।

[मं ०] (मं) जगह माल का धान। माल।

शालियो = वं ३२ १४१।

[मं ०] (मं) धान की शालियो।

शालीगता = वं १०३।

[मं ०] (मं) शिपता। माला। धन्ये माला
(मं) विपार।

शाली = वं ० ५०, २५।

[मं ०] (मं) सेमल का वृक्ष।

शालक = वं ० ५३, १४६, २४८। विं, ५०।

[मं ०] (मं) विना भा वृक्ष या वृक्ष का वृक्ष।

शालरत = वं ० २७ १६३।

[मं ०] (मं) विरत। वंश नष्ट न होनेवाला।
माल।

शालक = वं ०, १६८ २५३।

[मं ०] (मं) शालि। वंश। जो शाला करता है।
जिस में देन का अधिकार हो।

शालन = वं ० १० १७। वं ० १७, २५ ३४

[मं ०] (मं) ३८ ८३, १७१, १८, २०८। विं
१०६। लं ५७ ७४ ७६ ७७,
७८, ८८, १६२ १६४ १६८।
माला। माला। राजत्वकाल। नियम।

शालनादेश = वं ०, २६७।

[मं ०] (मं) शालन की माला।

शालित = वं ०, २६।

[मं ०] (मं) जिसपर शालन दिया जाय। प्रजा।

शालन = वं ०, ५०, १२०। वं ०, ११०।

[मं ०] (मं) किसी विषय का माला ज्ञान जो प्रम
से दिया गया है।

शालन शालन = वं ० २७२।

[मं ०] (मं) प्रत्येक शाल।

शाला = वं ० २०२।

[मं ०] (मं) शालन का वंश।

शाला शाल = वं ०, २०, २३।

[मं ०] (मं) शाला का शाल। शाला।

शालिनी = वं ०, २५। वं ० १८५।

[मं ०] (मं) शाल। वंश।

शाली मो = वं ०, १०६।

[मं ०] (मं) शाल। वंश। वंश। वंश।
(मं) शाल। वंश। वंश।

शाली = वं ० १८५।

[मं ०] (मं) शाल। वंश।

[मं ०] (मं) शाल।

शालित = वं ० ५०, १०६।

[मं ०] (मं) शाल। वंश। वंश। वंश।
शाल।

शाला = वं ० ५०, १२०। वं ० २१।

[मं ०] (मं) शाल। वंश। वंश। वंश।
शाल। वंश। वंश। वंश।

शालन = वं ० ५३ ८८ ११६, १५८, १८६।

[मं ०] (मं) वं ० ५३ ६६। विं, १४३।
शाल। वंश। वंश। वंश।
शाल। वंश। वंश। वंश।

शाला = वं ० ५० ७६। वं ० ११८। विं,

[मं ०] (मं) ७६। लं ५६।
शाल। वंश। वंश। वंश।
शाल। वंश। वंश। वंश।

शालिगण = वं ० ५०, १२४।

[मं ०] (मं) शाल। वंश। वंश। वंश।
शाल। वंश। वंश। वंश।

शाली = वं ० १५७।

[मं ०] (मं) शाल। वंश। वंश। वंश।
शाल। वंश। वंश। वंश।

शालिल = वं ० २४ २७ ५२, ६८। वं ० ५०

[मं ०] (मं) १२। वं ०, १० ६३, ६६ ८१, १४६,
१८५, २१२। लं, ३०, ४५, ५२,
७२। मं २३। लं, १०, २५, ४४।
निक्रिय। वंश। वंश।

[शिल्पिल—इदु बला ५, किरण २, अगस्त १६१४
म सब प्रथम प्रकाशित तथा 'भ्रमना मे
शिल्पिन ह प्रथवा जिसरी बिपकी' के
प्रतगत सबनित । देखिए भ्रमना ।]

शिल्पिलपन = का०, १४१ ।

[म० पु०] (स०) जो यशवत के वारण घोमा पड गया
हो । भीमापन । सुखा के साथ ।

शिल्पिल सी = का०, ७० ।

[वि०] (स०) निरिद्रिय सा, मुग्ध सदृश ।

शिर = का०, १७, २१६ । वि०, ४२, ६७ ।

[स० पु०] (स०) ७ । १० ४६ ।

निर माया । जोरा । सभा का अग्रभाग ।

शिरमौर = का० कु०, ११३ ।

[वि०] (हि०) सवश्रु ।

शिररत्न = का० कु० १०६ ।

[वि०] (स०) शिरामणि, सबसे उत्तम, श्रेष्ठ ।

शिरस्त्राण = का०, १७ ।

[स० पु०] (स०) लोह टाप, मोद । कूड ।

शिरहि = वि०, ६४ ।

[स० पु०] (हि०) शिर वा । शया वा । छोटी का ।

शिरायें = का०, ४ ।

[स० बी०] (हि०) म० शिरा वा हि० ग्रहवचन ।

शरीर म रक्त का छोटा नसें जिसके द्वारा
शरीर के विभिन्न अंगों में हृदय रक्त
हृदय म पहुंचता है । जमीन के अंदर
बहनेवाला नाल ।

शिरीष = १०, ३०, ११ । का०, १७८ ।

[म० पु०] (म०) शिरस का वृक्ष । शरीर का मूल फूलवाला ।

शिरोमणि = म०, २०, ।

[स० पु०] (म०) शिर पर पहनने वा रत्न ।

(वि०) सबसे उत्तम, श्रेष्ठ ।

शिरोरुहा = वि०, १३३ ।

[म० पु०] (म०) शिर के वान शेष ।

शिलहि = वि०, ७१ ।

[म० पु०] (म० भा०) शिला (वहवचन) ।

शिला = का०, कु०, २६, १०६ । का०, ३ ।

[स० बी०] (म०) पत्थर, चट्टान । गेरू । बपूर ।

शिलालयन = का०, २४७ ।

[स० पु०] (वि०) शिला म लग्न गो, शिला म लगी सा ।

शिलासवि = का०, २६ ।

[स० गी०] (म०) चट्टानों की सवि या गुफाए ।

शिल्प = का० कु०, ११० । का०, ८४ । प्रे०,

[म० पु०] (म०) २० । म०, २० । स०, १६ ।

दस्तकारी, हाथ का बना कोई काम,
कारीगरी, वीथन ।

शिल्पकुसुम = का० कु०, ११० ।

[म० पु०] (स०) शिल्पों का कुसुम ।

शिल्पपूर्ण = का० कु०, ११० ।

[स० पु०] (म०) शिल्पमय, कलापूर्ण ।

शिल्प साहित्य = का० कु०, १०६ ।

[म० पु०] (म०) कला संबंधी साहित्य ।

शिल्प सी = का०, १६० ।

[वि०] (हि०) कला के सदृश । कलावर्मी ।

शिल्प सौंदर्य = का० कु०, १०६ ।

[म० पु०] (म०) कौशल की सुंदरता । शिल्प कला की
मनाहारिता ।

[शिल्पसौंदर्य—काननकुसुम के पृष्ठ १०७ पर
मकलिन । यह मधुरा घोर भरतपुर के
आसपास जाट सरदार मूजमल द्वारा
मुगल सम्राट आलमगीर द्वितीय की
सनामा को परास्तकर दिल्ली में
प्राप्तपण के सक्षम म रची गई रचना
है । चर्चा तरफ यह घोर कालाहल
क्या मचा हुआ है ? महाकाल का भय
गजन क्या हो रहा है ? तोन के मुह से
दुहार करता हुआ प्रलय का पयाधि
आ रहा है । महा सष्य में अंधधुन हो
होकर हूँ चदन दायागिन फला रहे
हैं । आस मंदिरा के ध्वज धून उड़ा
रहे है । मुगल साम्राज्य के आधुनिक
या दाना का रूप आतामगर बुढ़
कगवे खाद रहा है । इसी वाच जान
राना मुजमल धूमकेतु के समान प्रकट
हुए । उनकी प्रतिनिधिता जाग उठी है ।
वह मानी मस्जिद के प्राण म राह
मप्याह्न के गंध की भांति तप रहे है ।

उत्तरे हाथ की गंगा मन्त्रिण के दूता पर पड़ी और मंगमरमर की लीला पर तात्पूर हो गई। इस दृश्या हा वदलता गन्धर्वन व हाथ पर ग और उठा मानना आरम किया मन्त्रि सभार का मर मुन्दर गताश्मन मधु प्राश्रील और विद्वय म एम नष्ट कर देंगे तो मर नि पनाय का रर मद्युन गमूना गमार र पुन हो जावगा अति सधन है क्या दास धारता प्रूरता म परिनिता हा गती है। इस प्ररता वे वागुण हा आराधय निप और माहित्य का घट्टा हो मुन्दर मय प्यस्त गौर तुम हो गया। का म मन्त्रि कहता है कि ह भारत क प्यत नि य तुम कितना अधिक बाल का प्रह्वर सह चुके हो ? तुम का मोज वं इस वदल येग म दयार गौर कहगा कि विन ने तुम्ह वच निमित्त किया था और शिल्प पूर्ण पत्थर तुम वच मिट्टा म मिल गए। यह रचना प्रसाजी का साष्टतिन और कलात्मक अभिरवि का आरवाय करती है।]

शिल्पी = का० कु० ६, ५१।

[स० पु०] (स०) शिल्प का काम करनेवाला शिल्प का म छा जानकार। राज। चित्रकार।

शिश = चि० १३६।

[स० पु०] (स०) कल्याण।

शिश = का०, १८५। चि०, २६। प्र०,

[स० पु०] (स०) २३।

कल्याण, मगल। शुभ। हिदुमा व एर प्रधान देवता जिनमे सृष्टि व संहार तथा कल्याण दानो का क्षमता है।

शिविका = म० १, ३, ७।

[स० ली०] (स०) पालका। डाली।

शिशिर = का०, ८८, १४१, १८१। चि०,

[स० पु०] (स०) १८, २८, ३६। अ०, ४६। प्र०, १६।

जोडा, शीतलान, माघ और फाल्गुन

का महीना। शिशु। शिव। पञ्चाक्षर। सात वर्ण।

शिशिरकण्ठ = का०, ३१। अ०, २१।

[स० पु०] (स०) शिव कण्ठ, पाग का रूँ। सान्ध्या का मण्ड।

शिशिर प्रभञ्जन उग = का० पु०, १३।

[स० पु०] (स०) शिशिर उगु का पायु का वग।

शिशु = का० ६८। का० पु०, १०१। का०,

[स० पु०] (स०) ६४ १४१ १४४ २७८। चि०, १४१। अ० २६, ३४ ४१। स०, २६।

वायव्य बगना।

शिशुना = का० १३१।

[स० ली०] (स०) बगान। सहायन।

शिशुपाल = का०, पु० ११२ ११३।

[स० पु०] (स०) येनि दत्त व राजा का नाम शिशुना आशुण्य ने बध किया था।

शिशुसा = का० ६३ २३४।

[चि०] (हि०) बघा सा। बालका के समान।

शिशुसाल = का० ४६।

[स० ली०] (स०) मछली के बच्चे।

शिशु सिंह = का० पु० १०६।

[स० पु०] (स०) सिंह का बच्चा।

शिशुआचार = प्र०, ६।

[स० पु०] (स०) शिशु तथा उसम अग्रहार। गामर का सम्मान करना।

शिश्व = चि०, ५८।

[स० पु०] (स०) चेवा। शिशु शिला की जग।

शीघ्र = का०, ८० ६२, १०२ १२०। का०

[चि०] (स०) ६०, ८० ६२ १०२ १२०। का०, १०, ५५। अ० ८२। प्र० २१। म०, १२ १४ १७ २४। ल०, ७५।

अविलस। ज्यन्त।

शीत = का०, ११८, २५६। चि०, २४। अ०,

[स० पु०] (स०) ६१।

ठडक। शीतलता। एक हनु का नाम।

शीतकर = का० पु०, ५५। अ०, ५६। म०, १६।

[स० पु०] (स०) शीतल करनेवाला। चक्रमा। बपुर।

शीतल = भा०, १०, ३०, ३६, ४३ ६३। म०,

[वि०] (सं०) १४। का० कु०, २३, ३८, ४८, ५३, ५४, ५७ ७०, ७१ ८०, ८२, १४८, १५०। का०, ३ १८, २०, २३ २४, २६, ३१ ४४, ३७, ३८, ४८, ७६, ८५ १३६, १७७, १८३, १७४, २३६ २३८ २४८, २५८, २८०, २८१। वि० ११, ६३ १५४, १५८। ऋ०, १६, ३४ ३८, ४३, ६१, ७३, ८७। प्रे० ११, १५, २२। ल०, ६ १३, ३६, ४३। ठग। शीतयुक्त। जड, मु न।

शीतल करना = म०, ३।

[क्रि०] (हिं०) ठडा करना।

शीतलकारी = का० कु०, १२६।

[वि०] (सं०) जड योग ठग करनेवाली।

शीतलता = भा०, ७१। का०, ७७, १०१, १२२

[म० की०] (हिं०) २०७। ऋ०, २१।

ठडापन। सर्दी। जडता।

शीतलताई = वि०, २४।

[म० की०] (प्र० भा०) ठडापन। सर्दी। जडता।

शीतल मद बयार = का०, ५०।

[सं० पु०] (सं०) ठडी मद हवा।

शीतलता सी = ल०, ३२।

[वि०] (हिं०) सर्दी के समान।

शीतल-दाह = का०, २७।

[म० पु०] (सं०) ठग जलन।

शीताशु = वि०, १५३।

[म० पु०] (मं०) शरमा। बपूर।

शीतावप = का० कु०, १४, ७३, ११०।

[सं० पु०] (सं०) सर्दी, गर्मी।

शील = वि०, २५, ४६ १५५, १६३। ल०,

[सं० पु०] (सं०) ७७, ७६।

सौजयता। धामल हृदय। चाल-ढाल। सकीच।

शीलनिवास = वि०, २२।

[वि०] (सं०) निममें शीत हो, शिष्ट, शीलवान्।

शीश = प्रे०, १३।

[सं० पु०] (हिं०) मस्तक, मिर। शीपभाग, सबसे ऊपर का भाग।

शुक = भा०, २३। क० १६।

[म० पु०] (सं०) सोना। सुग्गा।

शुद्धोह = वि०, ५८।

[सं० की०] (प्र० भा०) सुग्गी।

शुक = का०, ६७।

[वि०] (सं०) चमफाला।

[सं० पु०] धाय। एक नक्षत्र का नाम। दानवों के गुरु, शुक्राचार्य।

शुक्ल = वि०, ३३। ऋ०, ८५।

[वि०] (मं०) श्वेत धरा, स्वच्छ।

शुक्लपत्र = ऋ०, ८५,

[सं० पु०] (सं०) समारम्भा के बाद की प्रतिपदा से पूरणा तक के पंद्रह दिन।

शुक्ल रूप = वि०, ३३।

[वि०] (मं०) विशाल, धवल, स्वच्छरूप।

शुचि = का० कु० १०४, ११४। का०, २६,

[म० पु०] (सं०) २४४। वि०, ४६ ४८, ५३, ७२,

६८, १४५ १४६, १५२, १५५ १५८

१६१, १६२, १६४, १६८। ऋ०, ५३

म०, ४८। ल०, १२

स्वच्छता, पवित्रता।

(वि०) पवित्र, शुद्ध।

शुचितम = ऋ०, ३३।

[वि०] (सं०) अत्यंत पवित्र।

शुचिभाजस = वि०, ७२।

[क्रि०] (प्र० भा०) सुदरता या स्वच्छता अर्थात् तगता ह।

शुचिसौ = वि० ७३।

[वि०] (प्र० भा०) स्वच्छता या शुचितापूर्वक।

शुद्ध = का०, कु०, ११४। का०, ७६, १६६।

[वि०] (सं०) वि०, ५७। ऋ०, ७७। ल०, ७५।

स्वच्छ, निमल। पवित्र। बिना मिला बट का।

शुभ = का०, ३२। का० कु०, १००, १०६।

[वि०] (सं०) का०, २७ १६५, १६२ २६२ २५१।

वि०, १५२, १६१। ऋ०, ५८, ७७।

म०, ७, १८।

मंगलकारी। बन्धाणकारी। भलाई करनेवाला।

शोभा = श्री०, २४। का० कु०, ३, ३३, ५४।
[म० श्री०] (स०) वा०, ६। चि०, १५०, १६३, १६४।
वा०। चमक।

शोभाधाम = का० कु०, ८०। चि०, २।
[स० कु०] (स०) शोभा का घर।
[वि०] अ यत् शोभावाला।

शोभाभित्त = चि०, १३४।
[स० श्री०] (हि०) हे शोभावाला।

शोभित = वा०, १८२, २७७। म०, ८।
[वि०] (स०) सुशोभित। सुंदर। शोभा से युक्त।

शोभ = वा० म० ३८।
[स० कु०] (का०) कालाहल। ह ला, रोरा। प्रसिद्धि।

शोषण = का०, १६६।
[स० कु०] (स०) मोखना। नाश करना। चूषना। ग्रथि
मत्स्य का परमाण करना।

शोषित = का०, ४०।
[वि०] (स०) जिसका शोषण किया जाय।

शोष = न० ५१।
[स० कु०] (स०) पराक्रम। क्षूरता। वीरता।

श्याम = श्री० १८। का० १६०, १६६ १७६
[वि०] (स०) १६० २६५। का० २१ १६२, १६०।
साँवला। काला।

[स० कु०] श्रीरुण्ण। मलयवट का नाम।

श्याम छत्र = का० ६७।
[स० श्री०] (स०) मँडला शोभा।

श्याम घन = का०, ७६।
[स० कु०] (स०) काला घन। घने काल बादल।

श्यामननशाली = का०, ७१।
[वि०] (हि०) घने बना बानी।

श्यामल = श्री० ३२ ७८। का०, १६८ २३६,
[वि०] (स०) २८४। चि० ६६। का०, २४। प्र०,
प्र ७। स० ७४।

सौत्रल या काल रंग वा।

श्यामल घाटी = का०, १६७।
[स० श्री०] (हि०) घँवर घाटी।

श्यामलता = का० ५४। का० १७५।
[स० श्री०] (स०) साँवलापन। कालापन।

श्यामला = प्र०, २४।
[वि०] (स०) साँवला। काले रंग वा।

श्यामले = चि०, ३६।
[स० श्री०] (स०) हे साँवली रंगबानी।

श्याम सिंवार = का०, कु०, ६७।
[स० कु०] (हि०) काला सेवार।

श्यामा = का० कु०, १०, ५५। प्र० ५।
[स० श्री०] (स०) रवि। राधा। युवती। एक पक्षी।

श्यामाध्वनि = का०, १३।
[स० श्री०] (स०) श्यामा नामक पक्षी का मधुर ध्वनि।

श्यामाञ्ज्वल = का० कु०, १००।
[स० कु०] (स०) सुंदर साँवला रंग।

श्लथ = का०, ४८।
[वि०] (स०) शिथिल। मंद। धामा। षक्ता हुआ।

श्लापद = का०, १८६ २४८।
[स० कु०] (स०) हिवरक पशु (पक्षा मार कर लावने
वाले पशु)।

श्लास = का० कु०, १६, २६। का०, १७, १३०,
१६७ २००, २२४, २२५, २५६।
प्र०, ११।

साव। प्राणपायु। प्राणिमों का नाक से
हवा सोवने और निरालन की क्रिया।

श्लास लेगा = का०, १५५।

[वि०] (हि०) सताप लेगा।

श्वेत = का० २५८।

[वि०] (स०) उज्ज्वल, निष्कारण। सफेद।

श्रद्धा = का० ६२ १००, १०६, ११०, ११३
[स० श्री०] (स०) ११५ ११६, ११७, ११८, १२७,
१२८, १३२, १३४, १३६, १४०,
१४२, १४३ १४४, १४६, १५०,
१६०, १६२, १६६ १७५, १७६,
१८० १८२, १८३, १८६ १८६,
१९० २१४ २१५, २१६, २१८,
२२०, २२८, २२९, २३०, २३१,
२३६ २४१ २४७, २४५ २४६,
२८०। चि०, ५६।

ववस्वत यन्तु का दशा का नाम।

पुण्य भावना, श्रद्धा का भावना।
आस्था। पवित्रता। सद्भावना।

श्रद्धामय = का०, २४४।

[वि०] (स०) आस्था स परिपुष्ट।

श्रद्धाविहीन = का० १६१।

[वि०] (स०) श्रद्धा से छलप। बिना श्रद्धा के।

श्रद्धे = का०, १३०, १३६, १४४, १४८,

[म० खी०] (स०) १५४, २१६, २५४।

हे श्रद्धा ! कामायना मे श्रद्धा के लिये
मनु द्वारा बिगा गया सबोवन।

[श्रद्धा देखिए कामायना के चरित।]

श्रम = का०, १४। का०, १०३, १०४ ११८,

[स० पु०] (स०) १२३, १२८, १४६, १८१, २२४
२३६, २८३। वि०, १६१। प्र०
१४, २५।

यकावट। महनत। परिश्रम। दौडधूप।
शयित्य।

श्रम लव विदु = का० कु०, १३।

[स० पु०] (स०) महनत व बारण उत्पन्न कुछ बूढ़े,
क्या। पमोने का बूढ़े।

श्रमित = वि०, १४६।

[वि०] (स०) शक्ति। शिथिल।

शृङ्खला = का० कु०, ११६। का०, १३।

[स० खी०] (स०) बडा। सिलसिला, श्रणी। जजार।
साकल। परपर।

शृग = का० कु०, २८, १०४, १०५। का०,

[स० पु०] (स०) ४३, १४१। प्र० २४।

पहाड की चोटी। शिखर। पशुआ की
सींग। सींग नामक वाद्ययंत्र।

शृगनाद = का०, १७८।

[स० पु०] (स०) पहाड का चोटी पर से आनेवाला
आवाज। सींग नामक वाद्ययंत्र की
आवाज।

शृगार = आ०, १०। का०, ६, ३६, ५१, ५५।

[स० पु०] (स०) ल०, ७६।

सगावट। सजाना। सिद्धर। गाहिय
के नौ रसा में से प्रधान रस।

शृगालिनी = वि०, ५१।

[स० खी०] (हि०) सियारिन।

शृगाली वृद्ध = स०, १२।

[म० पु०] (हि०) मियारिनी का समूह।

शृगोनाद = का० कु०, ८६।

[स० पु०] (स०) सिगा नामक वाजे की आवाज।

श्रमविश्राम = स०, १४।

[स० पु०] (स०) यकावट के बाद का आराम। कार्य
विश्राम।

श्रम विदु = का०, १४३।

[स० पु०] (म०) स्नेह विदु, पमोने की बूढ़े।

श्रम-मीकर = आ० २७। का० कु० १२। का०,

[स० पु०] (स०) १२६, २४५, २४३।

दे० 'श्रमविदु'।

श्रम-स्वेद = का०, १८१।

[स० पु०] (स०) "श्रमविदु"।

श्रमै = वि०, १४०

[स० पु०] (हि०) २० श्रम।

श्रवणा = आ० २६।

[स० पु०] (हि०) कानो।

श्रात = का०, २४ ३६, १४१, १५४ १६०

[वि०] (स०) १६६, २१४, वि० २८, ३६। म०, ८।
यका हुआ। सात।

श्रात भवा = प्र० १६।

[स० पु०] (स०) सात घर।

श्राति = का०, १८१।

[स० पु०] (स०) यकावट। शांति। शिथिलता।

श्रावण = ऋ० २४।

[स० पु०] (स०) प्रापाद के बाद आनेवाला मास।

श्री = का०, १००। म० ७।

[म० खी०] कमला। तन्मी। धन। श्रद्धा। विष्णु।
एक आदर सूचक शब्द जो नाम के आग
लगाया जाता है।

श्रीकलित = का०, ८१।

[वि०] (म०) तन्मा स विभूति।

श्रीकृष्ण = का० कु० १२३।

[स० पु०] (स०) एक प्रमुख मार। वसुदेव क पुत्र।

[श्रीकृष्ण जयन्ती]—"हु बना ४ खंड २ म अगस्त
१६१३ मे प्रतापिन, कानन कुमुम का
आत्म बलिता पृष्ठ १०२ पर सन्निव।
कृष्ण ज माष्टमी क सवनर पर यह रचना
लिखा गई है। यह लकी बचता बार

सगिनी = ल०, ६६।

[स० खी०] (स०) भाप रहनेवाली, सखी, सहचरी।
सहेली।

सगीत = का० कु० ७६। का०, ७५, ७६, ६४,

[स० पु०] (स०) १८० २२६, २२५, २६३। ऋ०,
५२। ल०, १५, ६०।

गान। नृत्य। लय, ताल, स्वर तथा नृत्य
का सामग्र्य से होने वाला मनोरम
कायक्रम।

सगीतज्ञ = का० कु०, ३१, ३८।

[स० पु०] (स०) गायक, सगीत शास्त्र का जानकार।

सगीतात्मक = का०, २६३।

[वि०] (स०) सगीत से युक्त। सगीत संबंधी।

सग्रह = का० १३३, १४१। प्र० २१।

[स० पु०] (स०) सचय। एकत्र या इकट्ठा करना।
ग्रहण करना।

सद्य = ल०, ३३।

[स० पु०] (स०) समूह, समुदाय, संगठित छात्र समाज।

सद्यप = का०, ३७ १४७, १५७, १७१, १६२,

[स० पु०] (स०) १६६, १६७, २४०, २६७।

हीठ। प्रतियोगिता। रम्य। वह
क्रिया जिसमें दा वस्तुएं आपस में रमक
खाती हैं।

सद्यपन = का० कु०, १६६।

[स० पु०] (वि०) दलित 'सद्यप'।

सद्यप-भूमिका = का०, १६६।

[स० खी०] (स०) सद्यप की प्रस्तावना। सद्यप का आरम्भ।

सघात = का०, १५

[स० पु०] (स०) झुड़, समूह। संगठन। सघ। वध।
निवासस्थान।

सघाती = वि०, ११।

[स० पु०] (स०) साधा, मित्र, सहयोगी।

सचय = का०, ८० १६६।

(स०) चलना हुआ।

[स० पु०] (स०) सग्रह। एकत्रीकरण। समूह। सग्रह।

सचरहि = वि०, ६३,

[वि०] (य० भा०) धूमता हुआ। विचरण करता हुआ।
फलता हुआ।

सचरित = का०, १८४।

[वि०] (स०) जिसका सचार हुआ हो। फलता
हुआ। चलता हुआ।

सचार = का०, ७, ५६, ८२, ६०।

[स० पु०] (स०) गमन। फलना। चलना।

सचारिणी = का० कु० १००।

[वि० खी०] (स०) गमन करनेवाली। फलानेवाली।
चलती हुई।

सचित = का० कु०, १००। का० ३१ ३६, ३६,

[वि०] (स०) ७० ७४, ८३, ११५, ११७ १२२,
१४८, १५४, १७१। ऋ०, ७६। ल०,
१७।

एकत्रित। पुजीमूल।

सजीवन = का०, २१८।

[स०] (स०) जीवन शक्ति का उत्पादक।

सँजोवे = वि०, ३६।

[क्रि०] (स० भा०) सँजोना। झलकृत करना। सजाना।

सज्ञा = श्री०, ३६। का० कु०, १०६। का०,

[स० खी०] (स०) ६७। प्र०, १७।

नाम। बुद्धि। पान। व्याकरण के अनु-
सार किसी के नाम को सज्ञा कहते हैं।

सतति = का०, १६६।

[स० खी०] (स०) सतान। शोनाद।

सतान = व०, ११। का०, ४१, ५८, ७७।

[स० खी०] (स०) सतति। शोनाद। बाल बच्चे।

सताप = का० कु०, ६७। वि०, १६१।

[स० पु०] (स०) दुख, ताप, जलन। मानसिक हलचल।

सताप हरण = का० कु०, ८६।

[स० पु०] (स०) दुख को दूर करना। कष्ट निवारण
करना।

सतापित = वि०, १६१।

[वि०] (स०) दुखी। सताया हुआ। पीड़ित। सतप्त।

सतृप्त = का०, १६४।

[स० पु०] (स०) पूर्ण सतृप्त। तृप्त।

सतृष्ट = का० कु०, ७। का०, ७१। प्र०, ७।

[वि०] (स०) तृप्त। जिस सतोष हा गया हो।

सतोष = का० कु०, ८८। का०, २६, १२४।

[स० पु०] (स०) तृप्त। सन्न।

सदिग्ध = का०, १८३।

[वि०] (सं०) सदेह पूर्ण। जिसमें सदेह हो।

सदेश = का०, ३८, ५०, ७६। वि०, ५८।

[सं० पु०] (सं०) म०, १२ स०, २३, ३३।

हाथ चाल। समाचार। कोई महत्वपूर्ण समाचार।

सदेश विहीन = का०, ३४।

[वि०] (सं०) बिना किसी समाचार के। समाचार रहित। बिना सूचित किए हुए।

सदेह = आ०, २७, ४४। का०, ५४, ६६,

[सं० पु०] (सं०) ८६ १०६, १६४, १८४, २६६। ल०, १३। सत्य। शका। अनिश्चय, निश्चय का अभाव।

सपान = का०, कु०, ६८। का०, २६। वि०,

[सं० पु०] (सं०) ५४।

निगाना बठाना। युक्त करना। कमान पर तार लगाना। सधि।

सधि = का० कु०, ११२। का० १५८, १३६,

[सं० जी०] (सं०) २६१। म० १८, २४। ल०, १२। कि-ही दो का परस्पर मेल। संयोग। योग।

सधिपत्र = का० १०६।

[सं० जी०] (सं०) सधि का पत्र। संयोग पत्रिका। कारनामा।

सध्या = आ०, ३०, ३३, ३७ ४७, ५२ ५६।

[सं० पु०] (सं०) का० कु०, ३०, ५२। का०, ३८ ११६, ११७, १४२ १७५ १७६ १७६, १७७, १७८, १८३, २११, २२४, २३३ २७७, २८५। वि० ३६, १४५ १६०, १६१ १६३। ऋ०, ३५, ५८। म०, ७, ८, १०, ११, १३, १५। ल०, ३८, ४६, ५६, ६०, ७२, ७८।

दिवसावसान का बेला। सायंकाल। शाम। रात्रि का एक प्रसिद्ध उपसर्ग। संधि।

सध्या की लाली = का०, १००।

[सं० जी०] (सं०) सायंकालीन सूर्यास्त की लाली। सायंकाल की आभास की लालिमा।

सध्याधन माला = का०, ३०।

[सं० जी०] (हि०) सायंकाल के बादलों का समूह।

[सध्या तारा]—सब प्रथम बंदु कला २, निराश १, आनख ६७, में प्रकाशित, फिर पत्रों के अंतर्गत पृष्ठ १६२ पर चित्राधार में प्रकाशित। तुम सध्या के आकाश में सुंदर रंग के अमल रत्न की भांति झलकते हो। तुम्हें देख कर आनंद भी नहीं आता। मुकुमार प्राची में सध्या आकाश के समान तुम्हें धारण करती है। निराश हृदयों को तुम्हें देख कर आशा दिखाई पड़ती है। तुम शांतियम निशा की महागानों के राज्य चिह्न के समान हो। तुम्हें देख कर लोग धूम की कल्पना करते हैं। यह कविता साहित्यिक है।

सपत्न = का० १८।

[सं० जी०] (हि०) सपत्ति। धन। ऐश्वर्य। दान।

सपत्ति = का०, १३। का० कु०, १३।

[सं० जी०] (सं०) का०, ५८।

धन। विभव।

सपत्न = का० कु० ११३। का० १८१।

[वि०] (सं०) पूरा किया हुआ। सिद्ध। सहित। विभवयुक्त।

सपुट = म०, २३। वि०, २६।

[सं० पु०] (सं०) भजुति। दोला। शिबिया।

सपूरा = का० कु०, ८७। का०, २६३।

[वि०] (सं०) सब बिलकुल, समाप्त पूरा।

सवय = का०, ७५, १२४, १८२। ऋ०, ११।

[सं० पु०] (सं०) सवय। सगाव। मिलना। नाता रिश्ता।

सवय विधान = का०, २७०।

[सं० पु०] (सं०) सवय का नियम। विसा रिश्त का सामाजिक विधान।

सवद्ध = का०, २७३।

[वि०] (सं०) सवय युक्त बैठा हुआ। जुटा हुआ।

सवल = आ० ४४। का० २२२। ल०, ३१।

[सं० पु०] (सं०) दे० सवन।

सवोधन = का० कु०, ८५।

[सं० पु०] (सं०) जगाना, पुकारना। सममाना बुझाना। व्याकरण का एक प्रकार।

[संयोग — संस्कृत का शब्द जो मय प्रथम मनोरथा
सन् १६२७ ई० मे प्रकृति हुआ था।
देखिए 'उपद्रव च च'। मयोन भाषा']

संभव = का०, २३०।

[वि०] (सं०) हा सन्ने शब्द। मुद्रिका।

संभव = का०, २२३।

[सं० पु०] (सं०) एक स्थान।

संभार = का० कु०, १२। का०, ५१।

[सं० पु०] (हि०) रक्षा। निरुद्ध।

संभाग = का० कु०, ७१।

[सं० पु०] [सं०] हिफाजत। भरण। संवय।

संभोग = का०, ४५।

[सं० पु०] (सं०) उपयोग। व्यवहार। रति क्रीडा।
भाष्य सामान्य।

संभोग सेज = प्र०, १५।

[सं० पु०] (हि०) यह शब्द जिसपर रति क्रीडा हो।

संयम = का० कु०, ८८। का० ३६, ६६, २५१।

[सं० पु०] (सं०) वधन, राक, दबाव। परहेज। समाधि।
का साधन।

संयुक्त = का०, ४३। वि०, १५४।

[वि०] (सं०) दो 'संयुक्त'।

संयुत = का०, २६।

[वि०] (सं०) संयुक्त। संवय। जडा हुआ।

संयोग = प्र०, १७ २३। म० १२।

[सं० पु०] (सं०) मिलाप। लगाव। संवय।

संयोजक = का०, कु०, ११२।

[सं० पु०] (सं०) समिभाषक। पोषण करनेवाला। भाष्य
देनेवाला।

संलग्न = का०, १६१, १८४।

[वि०] (सं०) संयुक्त संवय। जुडा हुआ।

संवर = का० कु० ३३।

[क्रि०] (अ०भा०) सज करके।

संवदना = का०, ५३।

[सं० पु०] (सं०) बडाना। उत्साह।

संवत = का०, १८२, २५०, २५४, २७७।

[सं० पु०] (सं०) माग-व्यय। वह साधन जिसके आधार
पर कार्य हो। सहारा।

संवाद = का०, ६१। वि०, ५६। ल०, २१।

[सं० पु०] (सं०) वातालाप। समाचार। विवरण।

संवार = वि०, १५७।

[सं० ली०] हाल। समाचार। संवाद। वातालाप।

संवारत = वि०, ६३।

[क्रि०] (अ०भा०) सवारना। सवारने की क्रिया।

संवारी = वि०, ३४, ४२।

[क्रि०] (अ०भा०) संवार कर। संवारना।

संवेदन = का०, ३६, ३७ १६६।

[सं० पु०] (सं०) ज्ञान। इन्द्रिय का वह शारीरिक व्या
पर जिसके फलस्वरूप कोई अनुभूति
या चेतना का उद्भव होता है।

संवेदन भार-पुत्र = का०, १५४।

[सं० पु०] (सं०) संवयाभूत संवेदन।

संवेदनमय = का० २२६।

[वि०] (सं०) संवेदन संयुक्त।

संवेदनो = ल०, ७४।

[सं० पु०] (हि०) संवत का बहुवचन।

संश्लिष्ट = का०, ७३।

[वि०] (सं०) जुडा हुआ। संयुक्त।

संसाय = वि०, ४०।

[सं० ली०] (हि०) शका। मुबहा। संदेह। द्विविधा।

संसार = का०, १४। का० कु०, ८, १०, २६,

[सं० पु०] (सं०) ३०, ३१, ५३, ६३, ६४ ७२, १०६,

११६, १२५। वि०, ५६, ७२, १३६,

१४१, १४२ १५३, १६१। का०,

६१। प्र०, १०, २१, २६। ल०, १२,

३६, ७६। म०, ६२।

मय, जगत्, दुनिया मयलोक।

संस्कृति = का०, ६५। का०, १६, २३, २६, ३४,

[सं० ली०] (सं०) ४५ ७२, ७६, १३२, १३४, १६५,

१६६, १६८ १८० १६२, २०७,

२५३, २६४, २८२, २८६, २६२।

ल०, ४३, ५०।

संसार। जगत्।

[संस्कृति के वे सुदृढतम क्षण यो ही भूल नहीं जाना—

संस्कृत का गीत, प्रसाद संगीत मे

पृष्ठ ८४ पर संस्कृत। देखिए प्रसाद के

संस्कृत या चतुर्दशपदियों पृष्ठ ३८२ पर।

इस गीत में मातृगुप्त के जीवन की

स्मृति है। यह कहकर नि वह उच्छ्वसल थी अपने मन की मत बहलाना और जीवन के सुंदर क्षण मोहा भुला मत देना। मादवता का सरल हँसी जीवन के प्यासे म लहरा उठनी था और निश्वासो ने बल अक्षर चूमन का लपकती थी और मैं औरों की भाँति मुकुल के परिवर्ध में कौपता रहता था जिस मे प्रेम का प्यासा छलक उठता था जो उछल सछल कर मेरे सुख मापता था। सजग सौंदर्य सो गया। भीँहें चपल हो कर मिलने चली। सहृदय हूँ मैं और मेरे ही हाथ छाती को धिलने लगे। श्यामा का यह नखदान मनोहर मुक्तामो स गुथा हुआ था और मैं जावन के उस पार स्मृति की हवी उडाता हुआ चकित खड़ा रहा। तुम अपना कठोर पीडा के भ्रम से मुझे बहकाने मे सुखी अवश्य हुए किंतु पहचाने हुए पथिक की भाँति रह रह कर मुझे देखने ली लगे। अतीत की यह स्मृतिमाँ इतनी मधुर हैं कि उन्हें स्मरणकर कभी कभी भूल कर ही सही मेरे पास आ जाया करो और मिल कर मधु सागर के तट पर प्रेम की हिलोई उठा जाया करो। यह रचना अनुरोध शोपक से सुधा मे सितम्बर १९२१ ई० मे समयमय प्रकाशित हुई थी। देखिए अनुरोध।

संस्कार = का०, १७१।
[सं० शु०] (सं०) विशिष्ट वृत्त्य। धर्म के दृष्टिकोण से लिए जानेवाले जीवन के विभिन्न अवसरों के आवश्यक परंपरागत कर्तव्य। मृतक की अत्येष्टि क्रिया।

संस्कृति = का०, ३१।
[सं० क्षी०] (सं०) भावार विचार। कला-कौशल तथा सम्यक्ता के क्षेत्र में बौद्धिक विकास। (भ०) 'कल्चर'।

संस्थानो = का, २०६।
[सं० शु०] (हि०) संस्कृति के उत्थान के लिये स्थापित समाज। अस्तित्व स्थापन। प्रत्येक, व्यवस्था।

सहर्षादलिविस्तृतिरितिविगायत्तोलो = चि०, १३४।
[सं० क्षी०] (सं०) हर्ष से परिपूर्ण औरों की गुजार का भावद।

सहार = का, २५३।
[सं० शु०] स) विनाश। गूचना। ध्वस्त।
सहारावरिणी = चि०, १००।
[वि०] (स) नाश करनेवाली। विनष्ट कर्त्री।

सहार-वष्य = का०, २४०।
[वि०] (सं०) विनाश करने के योग्य।
सम्रव = चि० १६२।

[सं० वि०] (हि०) सफल। चिह्न के सहित।
सकना = का०, २, ११, १८। का० कुं, १४, २५, ११२। का० १७, २६, ६६, ८१, १०६, १२५, १२८, १४६, १४७, १६५, १७०, १८६, १८४, १८८, २१२, २१६, २२०, २५६, २७२। चि०, ३, २६, २८, ५०, १०१, १५७। प्र०, २। म०, १३। स०, ४७, ६७, ७१, ७५, ७७।
कुछ करने में समय होना।

सकमक = का०, ३३।
[सं० क्षी०] (सं०) कायशील, क्रियाशील या कमशील प्राणी वह क्रिया जो कर्म रखती हो।

सकल = का० कुं०, ५६, ८६, ६३, ६७। का०, २५, ५८, ८३, १५३, १६५, १७१, १७५, १८०, १८८, २२४, २३५, २३६, २४४, २६६, २७०, २७३। चि०, ५२, ५४। म०, ३४। प्र०, १४। स०, १३, ४३, ७७।
संपूर्ण। समस्त। समा।

सका = का० कुं०, ८१। का०, १३५, १६३, १७०, १९०, प्र०, २३।
[क्रि०] (हि०) सकना क्रिया का भूतकालिक रूप। दे० 'सकना'।

सकि = चि०, १४७।
[क्रि०] (प्र०) दे० 'सकना'।

सकुचाती = का०, २८०। चि०, ६१।
 [क्रि०] (हि०) दे० 'सकुचाना'।
 सकुचाना = सकोच करना। सकुचित करना।
 [क्रि०] (हि०) लजित करना।
 सकूलन = चि०, १७३।
 [सं० पुं०] (प्र० भा०) मनोहर तटो। किनारों पर।
 सक्रोध = का०, १६६।
 [सं० पुं०] (सं०) क्रोध सहित। क्रुद्ध के साथ।
 सखा = का०, ३६। चि०, ७१। प्र०, १०।
 [सं० पुं०] (हि०) मित्र। साथी। दोस्त। बिदूषक।
 सखियन = चि०, ५७, ६१।
 [सं० स्त्री०] (प्र० भा०) सखी सखियाँ।
 सखियो = चि०, ६१।
 [सं० स्त्री०] (हि०) सखी का बहुवचन। सहेलियों।
 सहचरिया।

सखिहि = चि०, ५८।
 [सं० स्त्री०] (प्र० भा०) सखियाँ। सहचरियाँ। सहेलियाँ।
 सखी = का०, ७७। चि०, २७, ५७, १६३।
 [सं० स्त्री०] (हि०) सहचरी। सहेली।
 सखीनान = चि०, ५६।
 [सं० स्त्री०] (प्र० भा०) सखी गण। सखियों का समूह।

[सखी री। सुख जिस को कहते हैं—विशाख की कविता। चंद्रलेखा और इरावती जी बहनें हैं, उनका गान। प्रसाद सगीत में पृष्ठ १० पर सकलित। ऐ सखी पता नही सुख किस को कहूँ? केवल दुख सहते सहते सारा जीवन ही बीत रहा है। कदना केवल सुदर कल्पना है। दया कहीं भी नहीं दिखाई पड़े। निदम जगत् का हृदय सदा कठोर है। इस ससार को छोड़कर अग्न्या होना कही भीत फल कर बसते।]

सखी-सग = चि० ६१।

[क्रि० वि०] (हि०) सखी के साथ। सहेली के साथ।

सखे = का०, ६१।

[सं० पुं०] (हि०) सखा का संबोधन। मित्र। दोस्त, साथी। सहचर।

[सखे। वह प्रेममयी रजनी—चंद्रगुप्त का गीत।
 सुवासिनी अपना प्रतीत जो सुखमय था

और भादक था, उसे इस गीत में स्मरण कर रही है। प्रसाद सगीत में पृष्ठ ११८ पर सकलित। वह प्रेममयी रजनी जिसमें पत्ते शांत थे, चंद्रमा ठिठका खड़ा था, तारे माधव सुमना से हीरक हार गुथ रहे थे, वह मधुमयी रजनी आँखा में स्वप्न बन गई। उस अनात में आँखों में मंदिर विलास छलकता था जिससे उज्ज्वल आलीन खिल उठता था। मृदु वाता को रसना हुई वायु-सुरभि सुधारता थी। अब वह प्रेम का रात्रि सपना हो गई है। यह विश्व मधु मंदिर का स्मृतिमो का भीड़ म जग गया है और कचल मोठी झकड़ उठ रही है जिसमें केवल तुमका दल रही है। सचमुच वह प्रेममयी रजनी सपना बन गई।]

सखेद = का०, १७६।

[वि०] (सं०) दुःख से। खेद के साथ।

सघन = का०, ६, १७। का०, ३, १३, ८१, १२१, १७६, २२०, २५१, २६६, २६८, ३८१। चि०, १७६, १५०, १५८, १६३। ल०, ३८।
 घना, घबिरल। ठाम।

[सघन वन वल्लरियों के नीचे—बामना का गीत 'प्रसाद सगात' में पृष्ठ ७७ पर सकलित। सघन वन सतामा के नीचे प्रात और साध्य विरछा न हृदय की बोझों का तार खींच दिए। मेरे मे गान लहलहा उठे जिह्म मेने आसुओं से सींचा था। मोन कविता मुखर हो उठी जिससे बहुतां ने अपनी आँखें मोच लीं। स्मृति सागर में पलकों के फुल्लू से आँख का जल उलीकत नही बनता। मनस्वी नौका बरछा जल से ऊपर नीचे से भर गई। यह गीत सबप्रथम 'प्रतीत का गीत' शीर्षक से माधुरी वय ५, खंड २, सन् १९२७ ई० में प्रकाशित हुआ था। देखिए 'प्रतीत का गीत'।]

सच =
[वि०] (हि०)

सचमुच =
[प्र०] (हि०)

सचराचर =
[सं० पु०] (सं०)

सचेतनता =
[सं० ली०] (सं०)

सचैव =
[वि०] (हि०)

सच्चरित =
[वि०] (सं०)

सच्चा =
[वि०] (हि०)

सच्चा पुन =
[सं० पु०] (हि०)

सच्चिदानन्द =
[सं० पु०] (सं०)

सजग =
[वि०] (हि०)

सजधज =
[सं० ली०] (हि०)

सजल =
[वि०] (सं०)

भा० ७०। का० कु०, ८४। का०, ६३। प्र०, ६ १६, २०। म०, २३। सत्य। वास्तविक। जवित।

का०, २८। का० कु०, ६५, १००। वा०, १६१ २००, २१४, २६०, २८७। प्र०, १०, १२, १६, २२। म०, १४, २१, २२।

अवश्य, निश्चय, वास्तव्य।

का०, २८८। ससार के चर और मचर समा पदार्थ तथा प्राणा।

का० २६१। चेतनता। जड़ता का विरुद्धाधिक। चेतनशील होना।

वि० १५२। चन के साथ। आराम से साथ। यौज के साथ। भानद तथा शांतिपूर्वक।

प्र०, ७। अन्ध चरित्रवाला। चरित्रवान्।

भा०, २४ ६५। का०, ३०। का० कु० ११४। वा०, २१४। प्र०, ६, २३।

सं०, ६६। सत्यवादा। वास्तविक। अवसी।

वचित। यथाय।

म० ६।

वि०, १७६। परमात्मा। वह जो कि सदा, चित तथा

भानद से पूर्ण हो।

प्र०, ५८ ७५। वा० कु०, ६८, १००। का० ३१, ५१ ५३, ७०, १२०, १६८, २०१ २०६, २३५ २६१। सं०, १०।

सावधान। सचेत। होशियार।

प्र०, ४। बनठन बनाव, मृ गार। सजावट।

वा०, ५६ ५७ ७५ ८१, १५३ १७६ २१७, २३४। वि०, ७३।

जलयुक्त। मधुपूरित (नेत्र)।

सजा =

[क्रि०] (हि०)

[सं० ली०]

[क्रि०] (हि०)

सजाना =

[क्रि० सं०] (हि०)

सजायो =

[क्रि०] (हि०)

सजाव =

[क्रि०] (हि०)

[सं० ली०]

सजी =

[क्रि०] (सं०)

[सं० ली०] (हि०)

सजे =

[क्रि०] (हि०)

सज्जन =

[सं० पु०] (सं०)

सज्जनता =

[सं० ली०] (सं०)

सज्जन कृत

[वि०] (सं०)

सज्जनहि =

[सं० पु०] (प्र० भा०)

सज्जित =

[वि०] (सं०)

वा०, कु०, १६, ३५। वा०, २१८। मलटन हुमा, सुधा भन हुमा।

(वा०) दड।

म ७। प्र०, २। सवारता। सजाना क्रिया का यतमान-वास्तव रूप।

क्र०, ५१। प्र०, २ १३, २२। सं०, १०।

भाना, सुधाभिन करना, सँवारना। मज्जित करना, भूषित करना।

वि०, ६३, ७१। मलटन करना, मलटन किया।

वि०, ५४। वि० ५२।

प्र० सजाना, सजाना क्रिया का रूप। सजकर।

सजाने को क्रिया या भाव। बनाव।

म० १३। का० कु०, ६६ ६८, ६२। प्र०, ४, २५। देखिये 'सजा'। 'सजाना' क्रिया का एक रूप।

का०, ३३ ५२ ६५ ८३। सं० ३३।

जावन से युक्त। भोज्यपूजा। तेजस्वा।

प्र०, २०, ४३। वा०, २१६।

मौज्ज्वल। तेजस्व।

प्र०, २३। म०, ६। म० २०। सजाना क्रिया का एक रूप।

का० कु० ८४। वि० ११० १५०, १६४। प्र० ८। म० १३, २३।

शरीर, भला आदमी। साधु पुरुष। प्रियतम। उत्तम आहार करनेवाला।

वि०, ११०।

सतर्क। साधुपुन। शिष्टता। मत्तमनवाहल।

सोजय।

म०, १४।

साधु पुरुषों द्वारा किया गया।

वि०, ६८।

प्र० सज्जन।

वि०, २२। प्र०, १२।

साधनों से युक्त। आवश्यक। वस्तुमा

स युक्त।

सटेक = चि०, ४२ ।
 [वि०] (हि०) सहारा के सहित । सप्रतिग ।
 सटे से = का० कु०, ११५ । म०, १८ ।
 [वि०] (हि०) होनावस्था के समान । विकार सदृश ।
 सत = का०, २४१ । चि०, ४७ ।
 [स० पु०] (स०) धम । सच, सत्य ।
 सतत = भा० ६१ । का०, १६, ८१, ८३, ६१,
 [प्र य०] (स०) ६२, ११०, १३०, १६१, १६१, १६२,
 १६६, १६४, १६५, २३५, २४१,
 २४२, २५७, २६७, २८८ । चि०,
 १६० । ऋ०, ८६ । ल०, १२, ३३ ।
 सवदा । निरंतर । लगातार । सदा ।
 सताना = का० कु०, १४ । का०, १२ ।
 [क्रि०] (हि०) कष्ट देना । दुख देना । पीड़ित करना ।
 सताने = का० कु०, १८ ।
 [क्रि०] (हि०) दे० 'सताना' क्रिया का रूप ।
 सती-छाया = का० कु०, २४ ।
 [स० ली०] (हि०) साध्वी-छाया ।
 सत्कर्म = चि०, १४० । म०, १८ ।
 [स० पु०] (स०) अच्छे काम । सच्चा काम । मत्स्य क सत्कृत
 पालन । अच्छी कृति । उत्तम काम । अच्छा
 [वि०] (म०) काम करनेवाला ।
 सत्कविता = चि०, ६२, ११० ।
 [स० ली०] (स०) अच्छी कविता, कल्याणकारी रचना ।
 सत्ता = का० कु०, ६४ । का०, १६, २८, ५०,
 [स० ली०] (स०) ६०, १६२ २५२ । ल०, ७८ ।
 मस्तिष्क । शक्ति । सामर्थ्य
 सत्य = भा०, १६ । क०, १७, २२, २३, २६
 [वि०] (स०) ३१, ८८ । का० कु०, ६७ ८५, ६१,
 ६३, १२४ । का०, १८, १६, ५१,
 ५४, ५५, ५८ । ११०, १११, १३४,
 १३८, १७७, २११, २५०, २८५,
 २८८ । चि०, १३६, १३६ । ऋ०,
 १६, ५२ । प्र०, १७ । म०, १२ ।
 ल०, ७४, ७७ ।
 ठीक । असल । वास्तविक । सच ।
 सत्य प्रेम मय = प्र०, १० ।
 [वि०] (स०) सच्चे प्रेम से युक्त (मित्र, सुहृद ।)

सत्य श्रेत—[इडु कला ४, किरण १, जनवरी
 १९१३ में प्रकाशित कविता जो
 'चित्रकूट' शीर्षक से पृष्ठ ६५ पर कानन
 कुसुम में मकलित है । देखिए 'चित्रकूट १']

सत्य-सत्य = क०, २२ ।
 [वि०] (स०) पूरा सत्य । वास्तविक ।
 सत्य सुंदर = का० कु०, ५१ ।
 [स० पु०] (स०) सौंदर्यमय वास्तविक तत्व । सत्य भीर
 सुंदर ।
 सदन = का० कु०, ५१ । चि०, ६१, १६२ ।
 [स० पु०] (स०) गृह । घर । निवास, भवन ।
 सदनहि = का० कु०, ६४ ।
 [स० पु०] (प्र०भा०) घर में । गृह में ।
 सदय = का० कु०, २३, ८४, ८६ । का०, २७,
 [वि०] (स०) १५८ । चि०, ५२, १५३ ।
 दया के साथ । दयालु । कृपालु ।
 सदय = का०, ५८ । ल०, ७८ ।
 [वि०] (म०) धैर्य के सहित । सहकार से युक्त ।
 सदा = भा०, ७१ । का०, १०, १४ १५, १७
 [प्र०] (हि०) का० कु०, ४, २२, २७, २८, ८३,
 ६०, ६३ । का०, १६, २६, ८४, ६३,
 १०६, ११०, १२३, १२६ १५४, १६४,
 १६५, १६०, १६२, १६४ २०६, २४३,
 २७१, २८३ । चि०, १, १५, ४८, ५१
 ६४ ६५, १ १ १०५, १०६, ११०,
 १६६ १८६, १८८ । ऋ०, ४३, ४८ ।
 प्र० ८, २६ । म०, १०, १४, १६ ।
 हमेशा । सदा । निर्या ।
 सदाहि = चि०, ६४ ।
 [प्र०] (प्र०भा०) द०, 'सदा'
 सदृश = भा०, २३ । क०, १३, २८ । का० कु०
 [वि०] (स०) ६०, ८३, १ का०, ६, २७, २६,
 ३०, ४८, ५८, ६८ १२७ १६७ ।
 ऋ०, ४५ । म०, ७ । ल०, ३४, ५० ।
 समान । तुल्य । सा ।
 सदैव = का० कु०, ८७ । का०, ६४, १३६,
 [प्र०] (हि०) १६१, १६३, १६६ ।
 सदा । सदा । हमेशा ।

सदभाव = का० कु०, ८८। का०, ८८, १६४।
[सं० पु०] (सं०) प्र०, ८।

अग्ने भाव। उर्वर भावना।

सन = बि०, ५३।
[सं० पु०] (हि०) एक प्रसिद्ध पोषे का रेशा जिससे रस्ती,
टाट आदि बनता है।

सनमान = बि०, १०१।
[सं० पु०] (ब० भा०) सम्मान, आदर, उत्कार।

सन-सन = का०, २४७।
[सं०] (हि०) हवा के तेज चलने से होनेवाली धावाज।
सनसन की ध्वनि।

सना हुआ = का०, ६८।
[क्रि०] (हि०) लिप्त। झालझोल हुआ।

सनातन = का० कु०, ६३।
[सं० पु०] (सं०) अत्यंत प्राचीन, अनारि काल, बहुत
दिनों से चला आया हुआ व्यवहार।
नित्य, शाश्वत।

सनाय = का०, ७३, ८३।
[वि०] (सं०) रक्षक या सहायक स्वामी से युक्त।

सनी = बि०, ७७, १७६।
[क्रि०] (हि०) झोतझोत हुई, सनी हुई। युक्त, मिली
हुई।

सनी सी = का०, १६३।
[वि०] (हि०) मिली हुई सा।

सने = बि०, १५४, १८१, १८२।
[वि०] (हि०) मिल हुए, युक्त।

सनेह मे चूर = बि०, १५।
[वि०] (हि०) अति स्नेह से भरा हुआ।

सनेही = बि०, ५७।
[वि०] (ब० भा०) वह जिसके साथ स्नेह या प्रेम हो।
प्रेमी।

सनेहू = बि०, ६४।
[सं० पु०] (ब० भा०) स्नेह प्रेम।

सन्नद्ध = का० कु०, ३। बि०, ४१। म०, ५,
[वि०] (सं०) १६।

समार, उद्यत, काम मे पूरी तौर से
लगा हुआ। सत्पन।

सनाटे = का०, २०५। म०, ३१।
[सं० पु०] (सं०) वह ध्वस्त या जिसमें बही कुछ भी शक्ति
न हो नीरवस्था।

समार्ग = बि०, १५५।
[सं० पु०] (सं०) घन्टी राह।

सन्मानन = का० कु०, ६४।
[सं० पु०] (सं०) मानसराज।

समुस = बि०, ६४, ६८, ७३, १०३। म०, २२।
[वि०] (सं०) स०, ६७।

समय, सामने।
सयो = बि०, ५।

[वि०] (ब० भा०) सना हुआ। झोल झोल।
सन्निकट = बि०, ६६।

[वि०] (सं०) निवृत्त, पास।
सन्निधि = का०, ८३।

[सं० खी०] (सं०) समीपता। दक्षीण। आग्ने सामने की
स्थिति।

सन्तुपवजम् = बि०, १३३।
[सं० पु०] (सं०) निश्चित ही कमल।

सपक्ष = बि०, ४१। प्र०, ७।
[सं० पु०] (सं०) अनुकूल या सव पक्ष।

[वि०] (हि०) पक्ष या पक्ष युक्त।
सपने = का०, ११, २६, ५३, ५६, ५७।

[सं० पु०] (हि०) का० कु०, ८७। का०, ६८, १०५,
१०६, ११०, ११२, १२०, १३६,
१६५, १७८, १८३, १८६, १८९,
१९६, २०६। म०, ६५। म०, १३।
स०, १६, २७, ४५।

स्वप्न वह मानसिक दृश्य या प्रक्रिया
जो अच्छी तरह नींद में आने का अव-
स्था में दिखलाई देती है।

सप्रीत = का० कु०, ४४। बि०, १६१।
[वि०] (सं०) प्रथम से, प्यार से।

सपूत = बि०, ४८। म०, १८।
[वि०] (ब० भा०) सपुत्र, साधक या योग्य पुत्र।

सप्त = बि०, १६३।
[वि०] (सं०) गिनती मे सातवीं।

सप्तपि = बि०, १३२।
[सं० पु०] (सं०) सात ऋषियों का समूह—गीतम, अत्रि, विश्वामित्र, जमदग्नि, वशिष्ठ, कश्यप

श्रीर अत्रि। अथवा भरीबि, अत्रि,
अगिग, पुलह क्रु, पुलम्प श्रीर
वशिष्ठ। वे सात तारे जो साथ रहकर
ध्रुव का परिणाम करते दिखलाई
पड़ने हैं।

सप्तसिधु =

[सं०] (सं०)

सफरी =

[वि०] (प्र)

[जी०] [सं०]

सकल =

[वि०] (सं०)

सफलता =

[मं० जी०] (सं०)

सव =

[वि०] (हि०)

[सब जीवन बीता जाता है—रक्तशुत का गीत, प्रमाद
मगीत में ८४ ६१ पर मन्त्रित। देव
रैना का यह गीत है। ध्रुव अहं के खे
के ममान सारा जीवन बतना चपा
जा रहा है। हम भविष्य व समय म
समावर स्थ प्रसिद्ध भागना जाता
है और न जा। वहाँ छिद्र जाता है।
मध्य का बुना, चान का लहरें, हवा
के भेक भर वा जल, इनम त्रिमी म
भा साहय मही हे जा इह राक सन
क्यापि हमरा जीवन म ताता है।
इसलिए जो जीवन की वंशा है उ
बजन दा और मोठी मादा को मान
दो। हम वा जो कुछ माता है भास

बद कर के गाने दो क्योंकि समय
बीतता जा रहा है।]

सवकुल =

[प्र०] (हि०)

सवके =

[वि०] (हि०)

सवने =

[सव०] (हि०)

सव भूतन संग =

[मं० पु०] (प्र० भा०)

सबन =

[वि०] (सं०)

सबसे =

[मव०] (हि०)

सर्वाहि =

[सव०] (प्र० भा०)

मवही =

[मव०] (हि०)

सरेरा =

[मं० पु०] (हि०)

सवै =

[वि०] (प्र० भा०)

सभा =

[मं० जी०] (मं०)

सभी =

[प्रय०] (हि०)

सम =

[वि०] (सं०)

का०, १०६, २२७, २४८।

मारा पूरा। सभी।

आ०, २०। का० पु०, ८४। का०,

१०४, २३८। वि०, ३, ११, ४८,

१४, ५६, ६५, ७३।

सभा के।

आ०, १५।

सभी ने।

सव भूतन संग =

वि० ७३।

[मं० पु०] (प्र० भा०) सभी जावा के साथ।

का० पु०, ६६, १०६, ११७। का०,

१५। मं० ११। लं० ६६।

बलवान, वाकतवर। शक्तिशाली।

का०, १०५, १६५, २३६, २३०।

समा से।

वि० ८ १५, ६४, ६५, १०६, १४८,

१५७।

मव लागा ने। सभी जागा को।

वि०, ४७ ४८, ५०, ५४, १२५,

१५६, १८५ १८६।

२० 'सर्वाहि'।

का०, ११४। प्र० ११।

[मं० पु०] (हि०) प्रातः काल।

वि०, १५१, १५५, १७२, १७६,

समस्त, मपूर्ण, सभा।

का० पु०, ४८ १११। का०, ३०।

[मं० जी०] (मं०) परिपद। समिति।

का०, १०, १३, ३१। का० पु०, २,

१५, ५१, ६२, ६७। का०, ६, ६६,

८४, ८५ ८६, १५७, १६६, १८६,

१८६, २३०। प्र०, ४ २३। मं०, ३,

५, १०।

मन बाद। प्रयेक। हर एव।

का० पु०, ५४, ६७, १०८, १६३,

१६५, १८३, १८६, १८८, १८८,

२०१। का०, १८, २३६, १८, २२,

२८, ३०, ५७, ७२, ७४, १४३, १६० ।
 भ०, २८, ३५ ।

बराबर । समान । सदृश ।

समभक्ता = क०, ११, १४, २२, १ वा० कु०, ३४,
 [क्रि०] (हि०) ८५, ८३, २२, १२१ । वा०, ७ पृष्ठ
 से २८७ पृ० तक २७ बार । चि ,
 २२, २८, ३०, ४२ ७२, ७४, १४२,
 १४३, १६० । भ० २८, ३५ । प्र० ६
 १८, २२, २३ । म० ३ १०, १४ ।
 ल०, १८, ६७ ।

जानकारा हासिल करना नान प्राप्त
 करना ।

समतल = बा० १०६ ।

[वि०](स०) सपाट । चौरस ।

समता = बा०, १७१ । वि० २२ । भ० ६२ ।

[स० स्त्री०] (स०) प्र० १६, २३ ।

बराबरी तु यथा समानता ।

समवय = बा०, ५८, ७४ ।

[वि०] (स०) मिश्रण । मेल । समतल ।

समय = बा०, ३२ । बा० कु० ४१, ५८

[स० पु०] (स०) ७६, ११६ । बा० १८७ । वि०,

१४६, १४८ । भ०, ४४ । प्र०, २ ४

५ । म०, ३ । ल० २२ ।

अवसर । मौका । वान ।

समर = बा०, २६४ । वि० ६७ ।

[स० पु०] (स०) युद्ध लडाइ । दृढ ।

समरगम = बा० १४४, २८८ ।

[वि०] (स०) पर रस । सबस अवसर पर समय समान

मानद प्राप्ति का मान ।

समरगतता = बा०, ५४ १६२, २४४ ।

[स० स्त्री०] (स०) मामरस्य ।

समरग = बा १४४, १५४ ।

[वि०] (स०) शक्ति । मादध्य । उपयुक्त, योग्य ।

समर्थन = बा ११० ।

[स० पु०] (स०) बिना मा का पदण । बिनी क विचार

को ठीक रहना । अनुमान ।

समरणा = बा०, ३१, ५७ ८५, १०४,

[स० पु०] (स०) १६० । भ०, ५ । प्र० २४ ।

गोना, भेज । बरकर रखा ।

समाष्टि = पे० २३ ।

[स० स्त्री०] (स०) यष्टि वा विरहायक । सभी अग्रा या
 व्यष्टिवा का अतभाव । समूह ।

समस्त = बा०, ३३, ५६ । ल० ६० ।

[वि०] (स०) सम्पूर्ण । सभी । सारा ।

समस्वर = बा०, ३१ ।

[स० पु०] (स०) समान स्वर । एक स्वर ।

समस्या = बा०, १४ । का०, २६५ । म० ८ ।

[स० स्त्री०] (स०) विनाट प्रसंग । पहेली ।

समस्याय = बा० १६४ ।

[स० स्त्री०] (हि०) > समस्या, वृद्धवन ।

समाई = बा०, १६४ ।

[क्रि०] (हि०) आइ । स्थाप बनाइ ।

समागम = बा० कु०, १६ ।

[स० पु०] (स०) सभाग । मधुन । आगमन । सभग ।

समाचार = म० १० १२ ।

[स० पु०] (स०) खबर । मराद ।

समाज = बा० ४८ । का०, २६७ । वि०, ६४ ।

[स० पु०] (स०) भ० ६६ ।

गिराह झुड़ । समुदाय ।

समात = वि०, ८ १८, ३१ १२० ।

[क्रि०] (स०) घटना । समा जाता ।

समाता = बा०, ४८ । ल०, १७ ।

[क्रि०] (हि०) > समान ।

समाती = वि० १२ ।

[क्रि०] (हि०) समाता क्रिया का स्व तित्त रूप ।

समादर = भ० ८० ।

[स० पु०] (स०) यश सम्मान ।

समाधि = बा०, ५५ । बा० कु०, ५६ । बा०,

[स० स्त्री०] (स०) १४७ ।

श्रवण क ध्यान में मग्न होना । याग

साधन का चरम पद । मृत अस्थिवा

क गाडे जगन रा स्थान ।

[समाधि सुमन मय प्रथम हनु कता १ विरह ११,

अन्त ६७ म प्रकाशित कविता । देविग

विश्राधार ।]

समानि-मा = बा० २८७ ।

मयाधि की तरह । विवाद भी

समाधिस्थान = वा ५० ७३ ।

[सं० पु०] (प०) समाधि लगाने का स्थान । समाधि का स्थान ।

समान = वा० कु० १० ७४, ९४ १०० । वा०
[वि०] (हि०) ३ ३४, ४४ ४४, ५० ४४, ८०,
६९, १०१ १५१ । चि०, २४, २६
५५ ६१, ८० १४१, १६६,
१७४ । प्र०, ५ १०, ४०, ५ ।
ल०, ५८ ।

बराबर । तुल्यगुण ।

समाप्त = का०, ६३ ११६ ।

[वि०] (सं०) खत्म । अंत ।

समाया = का० कु०, ६ ।

[वि०] (हि०) समाना क्रिया का भूतनामिक रूप ।

समिद्ध = का०, ३२ २३६ ।

[वि०] (म०) प्रज्वलित उत्ताजित । भटकाया हुआ ।

समिध = चि० १०१ ।

[सं० पु०] (सं०) अग्नि, आग । तनल ।

समीप = आ०, २, ४१ ६२ । का० कु०,

[प्र० य०] (सं०) १०५ । वा० १२६ १४३, १४८,

१७६ १६२, १८३, २२६, २७७,

२८५ । चि० ७२, ८६ । प्र० १५ ।

ल०, ६६ ।

निफट, नजदीक, पास ।

समीपहि = चि०, ५७ ।

[अ य०] (प्र० भा०) समाप में ही । नजदीक में । 'समीप' ।

समीपि = चि०, १४१ ।

[सं० पु०] (हि०) नजदीक । मध्या । पहाड़ी ।

समीर = आ०, ३३ । वा०, कु० १०० । वा०,

[सं० पु०] (सं०) ११, १२ २७ ३६, ३६, ६६, ६०

६८, १४६, १७७ २५०, २६३ ।

चि०, १०, ७१ १४०, १४३ १५७,

१६४, १८० । ल०, ३७, ४४ ।

वायु । हवा । बयार । पवन ।

[समीर स्पष्ट कभी कभी खिन्ता—विशाख का
गान, प्रवाद समाप्त में पृष्ठ १८ पर
सकलित । प्रमान का कथन है कि समीर
के स्पष्ट स कभी नहीं खिन्ता बल्कि

मन्दर के आने से वह विकसित होनी
है और खिन्ता है अर्थात् हृदय में
वैराग्यरूपा पराग आने से स्वतः
जीवन आनन्दमय हो जाता है ।]

समीरण = का० कु०, ३७ प्र०, ६ ।

[सं० पु०] (सं०) समीर वायु । मलयज, पवन ।

समीरण = चि०, २६ ५६, १४६, १५२, २५७,

[सं० पु०] (प्र० भा०) १६८, १८६ ।

समीरण ।

समुचित = वा, ७६ ।

[वि०] (सं०) ठाक । उचित । उपयुक्त ।

समुज्ज्वल = चि०, ७१, ७२ ।

[वि०] (सं०) अत्यंत उज्ज्वल ।

समुक्त = चि० १८, १८६ ।

[प्र० भा०] (प्र० भा०) समुक्त कर ६ ।

[सं० जी०] (हि०) बुद्ध ।

समुक्त = चि०, १०१ ।

[वि०] (प्र० भा०) समुक्त क्रिया का एक रूप । समुक्त
है । समस्त आनंद है ।

समुक्त्यो = चि० १६० ।

[वि०] (प्र० भा०) समुक्त । समुक्त क्रिया का भूतनामिक
रूप ।

समुदाय = वा०, २५ ८२ । चि०, २६ ।

[सं० पु०] (सं०) लघु समाज जो किसी व्यवसाय
के लिए होता है । समूह । ७२ ।
झुंड । सब ।

समुदित = वा० कु०, १०८ । चि०, १४८ ।

[वि०] (सं०) उदित । प्रकाशित । आनंदित ।

समुद्र = आ०, ४६ । का० ११ । का०, कु०,

[सं० पु०] (सं०) ४५, ८६ । वा०, १८२, २८८ । चि०,

१७८ ।

सागर । उदयि । पयापि । रत्नाकर ।

बड़ा सागर ।

समूह = चि०, १६६ ।

[सं० पु०] (सं०) झुंड । गिराह । समुदाय ।

समृद्ध = का० कु०, ८८ । का०, २२, २३८ ।

[वि०] (सं०) समृद्ध । एश्वर्यशाली ।

समृद्धि = वा०, ६, ५८ ।

[सं० जी०] (सं०) समृद्धता । एश्वर्य ।

समेट = बि०, १४। फ०, ३४।
[बि०] (वि०) एका कर।

समेटति = बि०, १५१।

[बि०] (वि०) (प्र०) गटारती दृष्ट। एकात्रि करती दृष्ट।
समेटना = बि०, १६। ल०, २४।

[बि०] (वि०) बगारना। एकात्रि करती।
समेटी = बि०, १८।

[बि०] (वि०) बगार कर। समेट कर।
समेन = बि०, ८३।

[प्र०] (वि०) सहेन। साथ।

सम्मान = बि०, ११। फ०, ७८।
[बि०] (वि०) धार दान प्रदान मान।

सम्मुख = बि०, ७८, ७९, १०८। बि०, १३१,
[बि०] (वि०) १८१, १८६, २७८।

सम्पन्न = बि०, ११। साथ।
[बि०] (वि०) जमपट। निताप। सम।

सम्प्रीत = बि०, १३। बि०, ७८। १४४। प्र०
[बि०] (वि०) १०।

माहित बगन का बा भाव। सामान्य व
पपवाला म स एक का नाम।

सम्राजमन्त्राजकुलेगिरिनिधि = बि०, १३४।
[बि०] (वि०) सगुण सरनि कुल का सामान्य म भा।

सम्राट = बि०, ७८, ११६।
[बि०] (वि०) गहवार। नृपति, राजा। महाराजा
पिताव।

समृद्धि के = बि०, १४८।
[बि०] (वि०) गहवार कर। गहारा द कर।

समृद्ध-समृद्ध = म०, १३।
[बि०] (वि०) बग र। ठहर ठहर। भाव साथ।

समृद्ध = बि०, ७८।
[बि०] (वि०) गहारा। रघु।

समृद्धता = बि०, ६६। फ०, ६१।
[बि०] (वि०) गहारा दान। गहारा करना।

[समृद्धता] (वि०) गहारा दान। गहारा करना।

[समृद्धता] (वि०) गहारा दान। गहारा करना।

[समृद्धता] (वि०) गहारा दान। गहारा करना।

[समृद्धता] (वि०) गहारा दान। गहारा करना।

[समृद्धता] (वि०) गहारा दान। गहारा करना।

रागते पर जब काई चलता है ता यथा
के भार से उस गीले रागते पर
फिसल उठता है। सब कुछ यह किता
सुनुमार है कि मन म रह रह कर
सिसर उठता है। सुहाग के प्रपनपन मे
यह धुईधुई सा हा जाता है और हस
उठता है। ऐसे सुनुमार और बचल
प्यार का बाई कस सभाले ?

समृद्धता = बि०, २००।
[बि०] (वि०) 'समृद्धता' विद्या का भूतकालिक रूप।
२०० समृद्धता।

समृद्धाती = ल०, १७।
[बि०] (वि०) समृद्धता विद्या का स्त्री लिंग रूप।
सर = बि०, ७८, ३४, ३५, १०, २७१,
[म०] (वि०) २८५। बि०, ६६, १५७, १८९, फ०,
११। प्र०, १३।
सालाव। स। विर।

सरद = बि०, २७०।
[बि०] (वि०) सग। जाटा, शात।

सरन = बि०, १७८।
[बि०] (वि०) गहारा।

सरवस = बि०, १८५।
[बि०] (वि०) सरन। सब कुछ। सभा चारों।

सरमाती = बि०, ७८।
[बि०] (वि०) सग। खाती दृष्ट।

सरल = बि०, १८। बि०, २८, ७४, ८३, ८४,
[बि०] (वि०) ८५, ८६, १०५, १०६, ११६, ११७,
११८, ११९। बि०, १२५, ७३, १७३,
१८५। फ०, ४१, ७०, ७६, ८४।
प्र०, २४। म०, १४, ६६। ल०,
११, २३।
साधा। निरुद्ध। निष्कपट।

सरल क्या = बि०, ७८।
[बि०] (वि०) साधारण क्या।

सरन सरन = ल०, ४३।
[बि०] (वि०) सरन सरन।

सरन स्वभाव = बि०, ६।
[बि०] (वि०) सग। स्वभाव। सीपान।

[बि०] (वि०) सग। स्वभाव। सीपान।

सरवर = बि०, ८, २८, ४६, ६७।

[सं पु०] (हिं०) तालाव, सरोवर।

सरवर-जलहँ = बि०, ४५।

[सं पु०] (ब० भा०) सरोवर के जल में भी।

सरस = का०, ६३, ८२, ६७, १०३, १३३,

[वि०] (सं०) १४२, २१७। बि० ५५, १८१।

भ०, ३८। ल०, २३।

मोठा। रसाला। मधुर। मीठा।

ताजा। भावपूर्ण।

सरस सीकर = ल०, २१।

[सं० पु०] (सं०) पसीने का बूँदें। श्वेत विंदु।

सरसाश्री = बि०, १७४।

[क्रि०] (हिं०) सरसाना क्रिया का एक रूप। शोभित करो। सरस बनाओ।

सरसात = बि०, १५९।

[क्रि०] (ब० भा०) देखो सरसाना। सुशोभित होता है।

सरसाधि = बि०, २४।

[पूव० क्रि०] बाण को लक्ष्य पर साधकर। तीर को [ब० भा०] समेटा कर।

सरसाय = बि०, १८०।

[क्रि०] (ब० भा०) शोभित हुए। 'सरसाना' क्रिया का एक रूप।

सरसावै = बि०, १६२।

[क्रि०] (ब० भा०) सरसाना क्रिया का एक रूप। देखो 'सरसाना'। लुभाती।

सरसि = बि०, १३४।

[पूव० क्रि०] (ब० भा०) प्रानदित हाकर।

सरसिज = का०, ६५। बि०, १४। भ०, २८।

[सं पु०] (सं०) ल०, २०।

कमल। लोचन। अरविद।

सरसिज-वन = का०, २३।

[सं पु०] (सं०) कमल का वन। मधुज-वनन।

सरसी = का० कु०, ३६। का०, १७५। बि०,

[सं ली०] (सं०) २३।

छाया तालाव।

[वि०] (हिं०) शाश्वत। चिन्ती हुई।

सरसीहै = का० कु०, ३६। का०, १७५। बि०, २३।

[क्रि०] (ब० भा०) सुंदर लगती है। मुहूर्त है।

सरस्वती = का०, १६०, १६७ २०५ २८७।

[म० ली०] (सं०) शारदा। भारती। विद्या। विशा की अविद्यायी देवी। इत्यादि।

सरहिद = का० कु०, ११८।

[म० पु०] (का०) भारतवर्ष का मध्य भाग।

सराह = का०, २८६। बि० १७१।

[पूव० क्रि०] (ब० भा०) सराहना क्रिया का एक रूप। प्रशंसा करके।

सराहना = बि०, २०।

[क्रि०] (ब० भा०) प्रशंसा करना। बड़ाई करना।

[ली० सं०] बड़ाई। प्रशंसा।

सराहना = बि०, ६०।

[क्रि०] (ब० भा०) प्रशंसा करना। सराहना क्रिया का एक रूप।

सराही = बि०, १८४।

[क्रि०] (हिं०) प्रशंसा या। सराहना क्रिया का एक रूप।

सरिता = का०, ७६। का०, ७३, २३३, २४३,

[सं ली०] (सं०) २४२ २४६ २४७, २६६, २७७। बि०, १, २२, १७३। भ०, ३६। प्र०, ३,

१३ १४ १५ २६। म०, ४। ल०, २७, ७०।

नदी। नद।

सरिता-तीर = बि०, ४५।

[सं पु०] (सं०) नदी का किनारा। बछार।

सरिस = बि०, ३०। भ०, ३६।

[वि०] (हिं०) समान। सहज।

सरोज = का०, २८। बि०, ३, २८, २६, ४६,

[सं पु०] (सं०) १८८, भ०, ११।

कमल। जलज। पत्रज।

[सरोज]—मध्यम इन्द्र माघ १६१३ ई० म प्रकाशित

श्रीर कानन कुमुद म पृष्ठ ३६ ३७ पर

सकलित। यह प्रमाद को चतुदशपदा या

सानेट है जो प्रमाद संगत म पृष्ठ १२३ पर

सकलित है। दलित पृष्ठ ३८२ प्रमाद को चतुदशपदा या सानेट।

सूक्तियां वे साथ ही साथ सरोज की महिमा का दम मे चमकन है। धरणी प्रसुप्त स प्रज्ञान सरसा मे सरोज रिल रहा है और भारी स भिन रहा है। माय लालिमा स जा समुचिन हा गया था और जिसने प्रेमिया की मकरद नही दिशा था उ हा कमला व मध वह मिल रहा है। स ता य हय का निरूपण भाव सुय को देख कर प्रमुदित हो रहा है। यद्यपि जन मे यह रहता है तो भी उस स उसका स्पर्श नही होना। यह पाठ पढ़ता है कि मनुष्य की लिंग नही होना चाहिए।

तुम। उन लहरा मे भी छटल हा जो मुह विचलिन बनना चाहता है। इसा रूप म कत य पथ पर मनुष्य का स्थिर हुना चाहिए। यदि तुम्ह हा भवभरती हं तो भी उसे तुम परिमल दान करते हो। यह तुम्हारा सौजय है। तुम्हारे ही केशर के पान स समुद्र परागशायी हो रह है। भगवान तुम पर प्रपा कर यही हमारा हय कह रहा है।]

सरोजपत्रेनु = वि०, १३३।

[स० पु०] (स०) कमल क दल।

सरोजपराग = का० कु० ३६ १००।

[म पु०] (स०) अरविद का मकरद। कमल पराग।

सरोजराजि = वि०, १३४।

[स० स०] (स०) कमल की पत्तियाँ। कमल लाल।

सरोज हृदय = का० कु०, ६०।

[स० पु०] (स०) कमल क समान सुकोमल हृदय।

सरोरुह = का०, १७६। वि०, १४३। अ०, ११।

[स० उ०] (स०) कमल। अरविद।

सरोरुहरणि = वि०, १३३।

[स० पु०] (स०) वननिना। कुत्रिनिना।

सरोवर = का० कु० ५५। का०, २३५। वि०,

[स० पु०] (स०) १५३। अ०, ११।

दालाब। सर। दावली। उद्याग।

सग = का०, ७, १७, १८, ५३।

[स० पु०] (स०) सतार। सृष्टि। स्वर्ग। प्रवाह। स्वभाव, प्रवृत्ति। तीर्थ।

सग प्रकुर = का०, २१०।

[स० पु०] (स०) जीवन विभाग।

सप = का०, २१।

[स० पु०] (स०) साप। बारा। भुजग।

सरटि = का०, २०५।

[स० पु०] (सि०) मर सर का हा हा। लोडन की प्रिया म हाभेयावा सनसनाहट।

सवश = का०, १६५।

[वि०] (स०) सब कुछ या सभी दाता का नाता।

सवन = का० कु०, ७६, १०९ १११। अ०,

[स० पु०] (स०) ४४। प्र०, १४। म० १३।

समी जगह।

सवनसुलस = का० कु० ६१।

[वि०] (स०) समी जगह सुनभ। सुगम।

सवमगले = का० २४६।

[स० बी०] (स०) (मवापन)। शकका मगल करोवानी अथवा श्रद्धा।

सवस = वि० ३४।

[वि०] (स० भा) मवस्व सब कुछ। कुल। समस्त।

सवस्व = का० कु० ७३ ११३। का० १०४।

[वि०] (स०) प्र० १३ २० २२ २५। म० २। कुल। समस्त। सबस।

सवाग = का० २५२।

[स० पु०] (स०) सवुय शरीर। सारा बदन, कामा के सभा अवयव।

सलज्ज = का०, ४७।

[वि०] (स०) लज्जा के साथ लज्जापूवक।

सलिल = का०, २८३। वि०, २३ १६०। अ०

[स० पु०] (स०) ३७। म०, ८। ल० १६, १४३। अ०, जल। पय। नार।

सलोनी = वि० १४७, १५८।

[वि०] (हि०) सलाना का स्त्रावाची रूप। टे० सलोने।

सलोने = वि०, ६३, १६२।

[वि०] (हि०) सुदर। नमकान। मनाहर।

सलोने श्रग पर पट हो मालिन भी रग साता है—विशाख का गीत जिसमे चद्र सेला के सौ ग्य की प्रशंसा की गयी है। प्रसाद संगत म पृष्ठ ६ पर सकन्ति। यह मियेटरा चुन में दो पक्तिया की कविता है जिग म विशाख कहता है कि मलिन वल्ल भी सुन्दर श्रग की नया रग दे देता है। कमान कीचड़ से सना रहता है फिर भी सु दूर लगता है।]

सवारत = बि०, १७८, १८५।

[क्रि०] (१० भा०) मशाना। ६० 'सवारता'।

सविता = का०, २५।

[म० पु०] (६०) मय। दिनार।

सविलय = का० कु०, ६८। का०, १३१।

[वि०] (हि०) नम्रतापूर्वक।

सविलास = का०, ५४, ५९, ६८। क० २८।

[वि०] (हि०) भा० इ तथा उल्लासपूर्णक।

सवेरा = का०, १२०, २५८।

[स० पु०] (हि०) सुबह। प्रातःकाल। दिन का प्रारम्भिक प्रश। मवेरा।

सद्यः-साची = का० कु०, १११। बि०, ३१।

[म० पु०] (स०) प्रजुन। सुती के तृतीय पुन।

सन्नीड = का०, ८६, ८४, १।

[वि०] (स०) सज्ज।

सशव = का० २४९। ल०, ७७।

[वि०] (स०) मय से। शका से। डर से। ६० 'सशक्ति'।

सशक्ति = का०, २७१।

[वि०] (स०) शक्ति। मयमीन। डरा हुआ।

सशक्त = का० कु०, ६०।

[वि०] (स०) बलवान। मजबूत। शक्तिशाली।

समी = बि०, १४६।

[म० पु०] (स० भा०) शशि। राकापति। निशापति।

सस्नेह = का० कु०, ६८। का०, ५४, १६२।

[वि०] (स०) क०, २५।
स्नेह महि। प्रेमपूर्वक।

सस्वर = प्रे०, ११।

[वि०] (स०) राग मे। मधुर राग स।

सस्मित = का०, ८६।

[वि०] (स०) मुस्कराता हुआ। विह्वल।

सह = का०, २६, १७७, १७८। बि०, २८, २६, ५३, ५५, ६३, ६४, ७१। म०, १७।

सहित। समेत। साथ।

सहकार = बि०, ७१।

[स० पु०] (स०) शरीर के साथ मिलकर काम करने की प्रवृत्ति। सहयोग। सुगम। पदाथ। धाम।

सहचद = बि०, ७१।

[वि०] (स०) चन्द्रमा के साथ। चन्द्र के सहित।

सहचर = का० १३। का० कु० ६७ १०६।

[स० पु०] (स०) का० १६, ७१ ८५, १८३। बि०, २८। प्रे०, ६, २२।
साथी। सगा। मला। सेवक।

सहचर-मुख क्रीडा = का० कु० ६८।

[स० पु०] (स०) खला द्वारा का गहमुख की क्रीडा।

सहचर-सी = का०, ६।

[वि०] (हि०) साथी के समान। सहचरी।

सहचरी = का० कु० ११।

[स० पु०] (स०) साथी का स्त्रीयाची शब्द। पत्नी। साथी।

सहज = का० कु०, १८ १००। का०, ३२।

[वि०] (स०) ८६ ११२, १४३, ११० १६६, १६६, १७१, १७० १६७ १८८, २०८, २०६ २२४ २६८, २७८। बि०, ३०, ५६ ६३। प्रे०, ५। ल०, ५७।
सरल, सुगम, साध राग। सगा (भाई)। स्वाभाविक।

सहजमुद्रा = का० १२८।

[म० पु०] (स०) स्वाभाविक आदिति। साधारण अवस्था।

सहज-लब्ध = का०, १४७।

[वि०] (स०) सरलता से हो मिलने वाला। साधारण टग में प्राप्त।

सहजही = बि० ६६।

[प्रय०] (हि०) साधारण ही। सरलता से ही।

सहजै = बि०, ४ ७७।

[वि०] (प्र० भा०) ६० 'सहज'।

सहस्र = बा०, १११, १३७ १८८, २०२,
[त्रि०] (हि०) २३८, २४०, २६० । वि० ६ १०५ ।
सहस्र त्रिंश वा एतन्म । सहस्रं ह्यम् ।

सहस्रा = बा०, १४ १६६, १६४, २१६, २५१ ।
[त्रि०] (हि०) म० २ ३ ६, ८ ।
अथवा । पार करता । वर्णित करता ।

सहस्रे = वि० १८४ ।
[क्रि०] (हि०) 'सहस्रा' त्रिंश वा रूप ।
सहयोगी = बा०, १८१ ।
[सं०] (सं०) सार्थ । सहकारी । सहयोग करनेवाला ।
सहप = बा० ४१ ।
[वि०] (सं०) धन जन प्रमुख । प्रारंभ प्रारंभ ।
सहस्राना = बा० ५० । बा० ८१ २११, २१६ ।
[क्रि०सं०] (हि०) मलना । तिसरा वर्ण्य वस्तु या व
पर हाथ फेरना ।

सहस्रारवि = वि०, ६६ ।
[वि०] (सं०भा०) सारथा वा सहित ।
सहस्रवत्ता = बा० ११३ ।
[क्रि०] (हि०) सहस्र कर सक्ता, सहस्रा' त्रिंश वा रूप ।
सहसा = बा० ३८ ४२ ७७ ८६ १०१ १०४
[प्र०यं] (हि०) १६६ १८६ २१४, २७३ । वि०
११४ । क्र०, ६० । प्र० ११ । ल०
६६ ७२ ।
एकाएक । अकस्मात् ।

सहानुभूति = बा० ३२ । प्र० ० ।
[सं०को] (सं०) हृदयार्थ । दुख की देवदत्त दुःख होने
का भार ।

सहाय = बा०, १००, १७१ । वि०, १० १४६ ।
[सं०यु०] (सं०) सहायता । साधन । मदद । सहारा ।
सहायक = बा०, १४ । प्र०, २२ ।
[वि०] (सं०) सह मना करनेवाला । सहकारी ।
सहायता = बा० १८ ।
[सं०को] (सं०) सहारा, साधन ।

सहारा = बा० ४१ । बा० ७० २३, २८, ७६ ।
[सं०यु०] (हि०) क्र०, ४१ । प्र० २१ । म० २० ।
साधन । नरामा । सहायता । सहारा ।

सहाये = बा० १६, ४३ । वि० २४ १०१,
[वि०] (हि०) १८२ ।
दे० 'सहाय' ।

सहि = वि०, ३१, ४०, ४८ ।
[पूर्व०त्रि०] (प्र०भा०) गत कर ।
सहिता = बा०, ३० । बा०, ५१ । वि०, १, ६,
[प्र०यं] (सं०) १४ २८ ४८ ६४ ६६, ७३, ७४
१४१ । क्र०, ६० । म० ६ ।
समा । माय ।

सहि ना सहि हे = वि० १४७ ।
[त्रि०] (प्र०भा०) गत नही गर्हे । दयाला उकर गर्हे ।
सहिही = वि० १६० ।
[त्रि०] (प्र०भा०) गत ।
सही = बा० ७० ७१ ११२ ११३ । बा०
[त्रि०] (हि०) ११२ । वि० १४ ३९ ३९, ४८ ।
'सहना' त्रिंश वा श्रावित न ।
[वि०] सत्य । शीघ्र ।

सहदय = वि० १६४ ।
[वि०] (सं०) दयालु । दयित । हृदय । भाव ।
सहदयता = बा० ६६ । बा०, २०८ ।
[सं०ली०] (सं०) दयालुता । भाव । दयित ।
सहदु = बा० १४७ ।
[वि०] (सं०) दारुण नरित ।
सहै न भार = वि० ६७ ।
[त्रि०] (प्र०भा०) वजन नही मूना ।

सहो = वि० ३९, ४६ ।
[त्रि०] (प्र०भा०) सहना त्रिंश वा भूतकालि रूप । मृत् ।
मा = बा० १९ ३० ४५ ५४ ५७ ५८
[प्र०यं] (सं०) ७३ । बा० ७ ६० १४० २२३,
२४४, २६ २६६ २६८, २१५ बा०
७० १०, २८ ६१ ११२ । वि० २२
५६ । क्र० ७० । म० ४ ल०, १८
३० ३४ ३७ ४० ८ ।
सहस्र । समान ।

साच = वि० २४, ६७ ।
[सं०यु०] (प्र०भा०) सत्य, साधन । उचित ।
साचहु = वि० २६ ५२ ।
[सं०यु०] (प्र०भा०) 'साच' ।
साचे = बा० १०१, १०५, १७२ । वि० ४७
[सं०यु०] (हि०) १७६ ।

सत्य । डालन व लिये बनपा हुआ

एक प्रकार का साँवा जिसमें कोई
वस्तु ढाली जाती है। (बहुवचन)

साम्म = का० १७६। चि० ५७ ल० १४।

[सं० स्त्री०] (हिं) सामकाल, सध्या।

साम-किरण-सी = का०, १७६।

[वि०] (हिं०) सायकालीन किरणों के समान।

साम्म-सवेदे = चि०, ५३।

[सं० पुं०] (हिं०) प्रातः समय।

साम्म-सी = ल०, १४।

[वि०] (हिं०) सध्या के समान, सायकाल सहण
कानी।

साध्य = क०, ७। चि०, १, ३६।

[वि०] (स०) सामकालीन।

सायकाल = का०, ५१।

[सं० पुं०] (स०) सध्या समय। अंतिम पहर।

सावरो = चि०, १४८।

[वि०] (ब० भा०) गोपाल। प्रियतम।

सास = भा०, १० १२। का० कु०, ८५। का०,

[सं० स्त्री०] (हिं०) १६, २२, २२२, २४७, २७१।

सास। सास। जीवन। दम।

सासारिक = का० कु०, १०४।

[वि०] (सं०) लौकिक ऐहिक।

साकार = का०, ४८ ६०, १७५, २०६ २६४।

[वि०] (सं०) रूप या आकार वाला, स्थूल भूतिमान।

साक्षात् = ल० ६६।

[अभ्य०] (सं०) सम्मुख। सामने प्रत्यक्ष।

[वि०] साकार।

साक्षी = का० कु०, ६४। का०, १८६। ल०, १

१३।

[सं० पुं०] (हिं०) गवाह। सटस्थ दशक।

साक्ष = का०, ८६।

[सं० स्त्री०] (हिं०) मवादा रात्रि, घाक।

साक्षा = चि०, ५५, ६६, १८४।

[सं० स्त्री०] (हिं०) साक्षा, शक्ती, दाल।

सागर = भा, ४२, ४८, ६१। का० कु०, १। का०,

[सं० पुं०] (वि०) २६, ३६, ३४, ३५, ३६, ४८, १६६,

१७६, २०६, २८८। चि०, ६६,

१८६। प्र०, २२, २६। ल०, १७,

१५, १६, २०, ३४।

समुद्र, रत्नाकर। शाल।

साचि = चि० २४।

[वि०] (हिं०) दे० 'साचि'। सची।

साची = चि०, १८३।

[वि०] (हिं०) दे० 'साचि'।

साज = का०, ८७, ६२, १४२। चि०, ३३,

[सं० स्त्री०] (हिं०) ७१, ६४, १०६। ऋ०, ५६, ६७।

शुभार, सजावट, सजे हुए होने की
भवस्था।

साजती = चि०, १४५।

[वि०] (ब० भा०) सजाती।

साजहि = चि०, १५४।

[वि०] (ब० भा०) सजाती, साजती।

साजि = चि०, ६८, १००।

[पूर्वक्रि०] (ब० भा०) सजाकर।

साजै = चि० ७१।

[क्रि०] (ब० भा०) सजाते हुए।

साज्यो = चि०, ७१।

[क्रि०] (ब० भा०) सजाया, ठाट बाट बनाया।

साडी = का० ३८।

[सं० स्त्री०] (हिं०) खिया के पहनने की धोती। भारतीय
महिलाओं के पहनने का एक प्रकार
का वस्त्र।

सान = ऋ०, ७६।

[वि०] (हिं०) चार और छील के योग से बना (मर्यादा)।

सात्विक = का० कु०, ५८, ६७। का०, ३७।

[वि०] (सं०) शुद्ध, पवित्र। सत्वगुणा सत्त्व गुण से
उत्पन्न, निमल। विष्णु।

साय = का०, ९, १६, २०, २६। का० कु०,

[सं० पुं०] [हिं०] २२, २८, २५, ३०। का०, ७३, ८३,

८८, ११०, ११७, १५७, १७६,

२१३, २१४। चि०, १७०। ऋ०,

६६। प्र०, २, ६, १८, २२, २४।

म० ३, २२।

सगति, सत्चार। साधी। सगी। धर्मवृत्त

कृतवत्ता का श्रुद्ध।

[अभ्य०] सिद्धा, अतिरिक्त।

साय-साय = म०, १।

[अभ्य०] (हिं०) एक साथ, मिलकर।

साधिन = ल०, ४० ।

[सं० ली०] (हि०) 'साधो' (ली०) (बहुवचन) ।

साधो = आ०, ७४ । का० कु०, २८, ५१ ।

[सं० पु०] (हि०) का०, ७३, ६४, १०, १२६, १६० ।

चि० ५६ । प्र०, २४ ।

मित्र, सगे, सहचर, सहयोगी, दोस्त ।

सादर = म०, २३ ।

[वि०] (सं०) आदर के साथ, सम्मान, मान सहित ।

सादी = भा०, २२ ।

[वि०] (हि०) सीधो, सरल, स्वेत ।

साध = वा०, ४८ २२० ।

[सं० पु०] (हि०) साधु पवित्र सात्विक ।

[ली०] (वि०) लालसा । उत्तम अशुद्ध ।

साधक = वा०, ७५ । म० १८ ।

[सं० पु०] (सं०) साधना करनेवाला, योगी, ऋषि ।

साधती = का० कु०, ८८ ।

[क्रि०] (हि०) साधने की क्रिया करती ।

साधन = वा० कु०, १०६ । वा० ३ ७१ ७५

[सं० पु०] (सं०) ११४, १७१, १८१, १८३ ।

जगिया । निष्पत्ति । आना । उपाय युक्ति । कारण हेतु तात्पर्य ।

साधना = का० कु०, ७३ । वा०, ८८ ६३

[सं० ली०] (सं०) १०६, १६२ १६३ २६८, २८० ।

आराधना । तपस्या । सिद्धि ।

साधारण = वा०, ११५ ।

[वि०] (सं०) आसान सामान्य आसानी सहज, आम, सरल, सुगम, सभी से संबंधित ।

साधि = चि०, ७२, १४६, १६३ ।

[प्रव० क्रि०] (प्र० भा०) साथ करके ।

साधिता = वा० कु०, ७२ ।

[सं० ली०] (सं०) साधना करनेवाली महिला ।

साधिवार = वा० १४७, २३८ ।

[क्रि० वि०] (सं०) अधिवार मत्त अधिवार से ।

[वि०] जिस अधिवार प्राप्त हो ।

साधु = व०, ३० ।

[सं० पु०] (सं०) सज्जन, कुलीन आश्रम, सत्यपथ ।

सानंद = वा० कु०, १२१, १ वा०, ४५ ५८,

[क्रि० वि०] (सं०) ८०, ६० । चि०, १४२ । म०, १७, २६ ।

आनंदपूर्वक, आनंद सहित ।

सानु = का०, २६ ।

[सं० पु०] (सं०) समतल भूमि । पत्र का चोटा । वन, जंगल । पल्लव । भाग । पठित । सूक्ष्म ज्ञानी ।

सानुनय = चि०, ६६ ।

[क्रि० वि०] (सं०) अनुनय सहित, विनय के साथ ।

सानुराग = का०, १४८, २३६ ।

[वि०] (सं०) अनुराग सहित, नेह के साथ, प्रेमपूर्वक ।

साभिमान = का०, १५० ।

[क्रि० वि०] (सं०) अभिमान के सहित ।

सामजस्य = वा०, २७२ ।

[सं० पु०] (सं०) अनुकूलता । श्रौचित्य । मेल ।

सामग्री = वा० कु० ८४ । प्र०, १ ।

[सं० ली०] (सं०) वस्तु । भावत । सामान चीज ।

सामना = का० कु० ३०, ५०, ६८ । म०, २२ ।

[सं० पु०] (हि०) ल० ७२ ।

भेंट मुलाकात । मुकाबिला । ममक, सम्मुख ।

सामने = व० १३ । वा० कु०, १६ ४८ ।

[क्रि० वि०] (हि०) का० १८३, २८३ । म० ११ ।

सम्मुख ।

सामूहिक = का०, २०१ ।

[वि०] (सं०) समूह से संबंध रखनेवाला ।

सामूहे = चि०, ५३ ५६, ६१ ६६ ।

[प्रत्यय] (प्र० भा०) सामने, सम्मुख ।

साम्राज्य = का० कु०, १०६ । चि० ४८ । ल०,

[सं० पु०] (सं०) ७६ ।

आधिपत्य । वह बड़ा राज्य जिसके अधिन अनेक छोटे छोटे राज्य हों । राज्य और उपनिवेश ।

साम्राज्यस्थापन = वा० कु०, ११२ ।

[सं० ली०] (सं०) विशाल राज्य की स्थापना । साम्राज्य का नींव ।

सायक = चि० ४१ ।

[सं० पु०] (सं०) बाण तोर । खट्वा । एव वण वृत्त ।

सार = वा० १७७ १६८, १७७ २५१ ।

[सं० पु०] (सं०) म०, ४२ ।

तब तात्पर्य, निष्पत्ति । शक्ति, बल । उत्तम, श्रेष्ठ । दृढ़ ।

सारथि = चि०, ४८, १७७।
 [म० पु०] (ब्र० भा०) रथ हाकिमाता, मृत, स्थान
 चालक। समुद्र, सामर।
 सारथी = का० कु०, ८, ११४, ११५। चि०,
 [स० पु०] (सं०) ४८।
 दे० 'सारथि।' रथ का चालक।
 सारथे = का० कु०, ७२, ७३।
 [स० पु०] (सं०) सारथी का सवोयन।
 सारथ्य = का० कु०, १११।
 [सं० पु०] (सं०) मरलना, सघापन, सहजता।
 सारस = चि०, ८३, ६८।
 [म० पु०] (सं०) चरमा। एक प्रकार का बड़ा पक्षी।
 हंस। कमल। झील का जल।
 सारस्वत = जा०, १६६, १६७ २०१, २०४,
 [वि०] (सं०) १८३।
 विद्वानों का। सरस्वती का। सारस्वत
 प्रदेश का।
 [स० पु०] सरस्वती नदी पर स्थित पंजाब का एक
 प्रदेश।
 सारस्वतप्रदेश = का०, १६०, १६८।
 [१० पु०] (सं०) सरस्वती का प्रदेश। सारस्वत प्रदेश।
 सारा = ग्रा०, ६१। का० कु०, ३१। का०,
 [वि०] (हि०) ३७, ६४, १२१, १६६। अ०, १६।
 ल० ५०।
 समस्त मनुष्य, सन।
 सारिका = का०, १६।
 [सं० खी०] (सं०) मना, एक पक्षी।
 सारी = का०, १४, का० कु०, १२। का०,
 [वि०] (हि०) ६६, १६१। अ०, ७६।
 दे० 'सारा'।
 सारे = का०, १४ का० कु०, ४ ७७ ५६।
 [वि०] (हि०) का०, २२४। चि० १७८। अ०, ७१।
 दे० 'सारा'।
 सायक = का० कु०, ३३।
 [वि०] (सं०) उचित। सफल। उपकारी, गुणकारी।
 ग्रथ सहित।
 सायजनिक = का०, १३।
 [वि०] (मं०) सवसाधारण सम्बन्धित। सभी स
 सम्बन्धित।

सालवे = चि०, १३२।
 [वि०] (सं०) आलव सहित।
 सालती = का०, २१३, २६८।
 [क्रि०] (हि०) चुम्बती। कसकती। छेद करता।
 सालुवापति सालुवाधिपत = म०, ६, १२,।
 [सं० पु०] (सं०) सालुव प्रदेश के राजा।
 साले = चि०, १३२।
 [सं० पु०] (हि०) साल का वृक्ष।
 सावधान = का०, १६५। चि०, १०६।
 [वि०] (मं०) सचेत। सतक।
 सावन = ल०, ४२।
 [म० पु०] (हि०) यावण। अमावस के बाद का महीना।
 यजमान। वरुण।
 सावन घन सघन = ल०, २७।
 [सं० पु०] (हि०) सावन क घने बादल।
 साहस = ग्रा०, ३८, का०, २७। का० कु०,
 [सं० पु०] (सं०) ८१। का०, १६४, २०१, २३६,
 २५७, २५६। चि०, ४१, १८४।
 ल०, ६६।
 मानसिक दृढ़ता जो किसी बड़े कार्य
 करने की ओर प्रवृत्ति करता है।
 हिम्मत।
 साहसिक = का०, २००।
 [वि०] (सं०) निर्भीक। पराक्रमी। डाकू। हठ ला।
 सिचकर = ग्रा०, ७१।
 [पुर्व० क्रि०] (ब्र० भा०) पाना पानकर। भीग जान पर।
 सिचत = चि० ५७।
 [सं० पु०] (हि०) जल छिड़कना। साचना।
 सिचन हलु = का०, कु० १३।
 [क्रि० वि०] (मं०) सीचने के लिये।
 सिचा = का० कु०, ६३।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) साचना क्रिया का भूतकालिक रूप।
 सिचाव = अ०, ७६।
 [सं० खी०] (हि०) सिचाई। पत्तवन क लिए पीवा मे
 पाना देना।
 सिचित = का०, २६३, २६१। चि०, २७४। प्रे०
 [वि०] (सं०) २२। म०, २४।
 सिचा दृष्टा। भागा दृष्टा। तर।

सीखती = स०, ५६ ।
[कि०] (हि०) काम करने का ढंग जानने का प्रयत्न करता ।

सीखना = का०, ६३ १६६ । चि०, १७२ ।
[क्रि०] (हि०) जानना । पान प्राप्त करना । काम करने का ढंग जानना ।

सीख = चि०, १३६ ।
[स० स्त्री०] (प्र० भा०) सीमा ।
सीडी = का०, ११० ।
[स० स्त्री०] (हि०) ऊँचे स्थान पर चढ़ने का वह साधन जिसमें एक के बाद एक पर रखने का स्थान बना हो । निसेनी । सीपान ।

सीत = चि०, १४१ ।
[स० पुं०] (प्र० भा०) सीत, सर्दी ।
सीतल = चि०, १७३ ।
[वि०] (प्र० भा०) ठंडा सीतल ।
सीना = का० कु० १०१ ।

[स० स्त्री०] (स०) मराना पुष्टपोषण या रामचंद्रजी का धर्म पत्नी । जोनी हुई भूमि ।

सीपी = प्रा० २२ । का०, १४० ।
[वि०] (हि०) जो टेढ़ा न हो, सरल । जो अपने लक्ष्य का मोर हो । मला, शांत । सुशीला ।

सीप = का० कु० ४३ । स०, ३५ ।
[स० पुं०] (स०) सीपा, समुद्री साप का सफे चमकीला आवरण । एक जलजंतु विशेष ।

सीपी = प्रा० २३, ७२ । का० २२३ । चि० १८१ ।
[वि०] (हि०) सीप ।

सीम = स० २२ ।
[प्रत्य०] (हि०) समान । सुष्य ।

सीमा = का०, १३१ १३४, १३६, १६५, २०५
[स० स्त्री०] (स०) २१०, २३८ । चि०, ५३, प्रे०, ७, १६ १७ ।

ह, मरह । वह प्रतिम स्थान जहाँ तक कोई काम हो सता हो या होना उचित हो ।

सीमामयी = स० ७० ।
[वि०] (स०) मामा सं मुख या घिरा हुआ । वह बिम्बा आदि अत आलुम हो ।

सीमायें = का०, २३६ ।
[स० स्त्री०] (स०) सीमा का बहुवचन ।
सीमाविहीन = स०, ३ ।

[वि०] (स०) सीमा रहित, प्रसीम, प्रगत ।
सीमित = का०, १३३ ।
[वि०] (स०) वह जो सामा के प्रदर हो या जिसकी सीमा हो ।

सीरी = चि०, १८० ।
[वि०] (हि०) शीतल ।
सीवन = स०, ११ ।
[स० पुं०] (स०) सीने का काम । सिलाई का टाँका, दरार, सधि ।

सीस = का० कु०, ५ । चि०, १६० ।
[स० स्त्री०] (प्र० भा०) सिर, शीश ।

सीसी = चि०, २३ ।
[स० स्त्री०] (हि०) सीतार सूचक शब्द । सी सी ।
सु = चि०, १३६ १४०, १४५, १५६ ।

[प्रत्य०] (हि०) सुदरता या श्रेष्ठता का द्योतक । उत्तम ।

सुदर = प्रा० २० । का०, ८ । का०, कु०, १६ ।
[वि०] (स०) ३०, ३४ ३६, ३८, ३९, ४१, ४२, ४३, ४१, ५६ । का० ३०, ४५ ५७, १०६ १२०, १४८ २६२, २६३, २६४ । चि०, १४, २१ ५६, १६० । स०, २२, २८ । प्र० २ । शोभाशाला, खविमान ।

सुदरी = का० कु० ३०, ३१, ६७ । स० २६ ।
[स० स्त्री०] (स०) सुदर नारा, सलता ।

सुग्रह सी = चि०, ७० ।
[वि०] (प्र० भा०) शब्दे ग्रह के समान ।

सुअनोखिये = चि०, २४ ।
[वि०] (प्र० भा०) विविध, घनाछा, विमज्जल ।
सुग्रत = चि०, १३६ ।
[स० पुं०] (स०) अच्छा अग्र, वह अग्र जो सत् कर्म में प्रयाग किया जाय ।

सुनछु = चि०, १६४ ।
[प्रत्य०] (प्र० भा०) कुछ चिचित् ।
सुवम = स० ११ ।
[स० पुं०] (स०) अच्छा कर्म, सत्कर्म ।

सुकलोल = चि०, २३ ।

[चं० पु०] (स०) धामोद प्रमोद, ब्रीडा ।

सु वहत = चि०, ५१ ।

[चं० पु०] (ब० भा०) ध्वज कहता है । ध्वज्यो बात ।
बोलता है ।

सुकीर्ति = चि०, ४८, ६६ ।

[चं० ली०] (स०) ध्वज्यो कीर्ति, सुवश ।

सुकुमार = धा०, ७१ । का०, ४६, ४७, ६० । चि०

[वि०] (स०) ४७, ५६, ७४, १७३ । म०, १३ ।
ल०, २३ ।

सुकुमारता = का०, ६३, ६४ ।

[चं० ली०] (स०) सुकीमलता ।

सुकुमारि = का०, १२५ । चि०, २४ ।

[वि०] (ब० भा०) दे० 'सुकुमारी' ।

सुकुमारी = चि०, ५८, १६० । म०, २२ ।

[वि०] (स०) सुकीमलागी । सुदर कीमल प्रगो वाली ।

सुकुमारीन्सी = का० कु०, ३४ ।

[वि०] (हि०) कीमलागी के समान ।

सुकुसुमित = चि०, १५ ।

[वि०] (स०) ध्वज्यो तरह पुना हुआ । विकसित ।
सुदर फूलों से युक्त ।

सुकृत फल = का० कु०, १०१ ।

[चं० पु०] (स०) उत्तम कर्मों का फल, पुण्य ।

सुकुतु = म०, ८ ।

[चं० पु०] (स०) सुदर पताका ।

सुनवि = धा०, ८ ।

[चं० पु०] (स०) ध्वज्यो कवि ।

सुकेश = चि०, ६ ।

[चं० पु०] (स०) सुदर केश या बाल ।

सुकौन = चि०, १६६ ।

[सव०] (हि०) यह कौन ।

सुख = धा०, ११, १२, १३, २७, ४०, ४५,

[चं० पु०] (स०) ४६, ५०, ५३, ५५, ५७, ७४, ७५,
७६, ७६ । का०, १०, १३, ३० । का०
कु०, ७, २२, १८, ३३, ५१, ६३,
६६, ७५, ६७ । का०, ६, ७, ८, १६,
२८, ३०, ३२, ३५, ४०, ५३, ५४,

८४, ८७, ६०, ६६, ११०, ११२,
११५, ११७, ११६, १०५, १२६,
१२६, १३०, १३१, १३३, १३५,
१३६, १४७, १४८, १५४, १५८,
१७६, २१०, २२१, २२८, २३७,
२६६, २६६, २८१, २८२, २८३,
२८८, २८६, २८१, २८३ । जि०, १,
३, ५, १४, १५, २१, २२, २३, ३२,
३३, ३५, ४६, ६६, ५०, ५१, ५३,
५८, ६१, ६२, ६३, ६४, ७१, ६४,
१४३, १४८, १५०, १५४, १७७,
१८१, १८५ । म०, १३, ३६, ४६,
८१, ८८ । प्र०, २, १०, १४, २३ ।
ल०, २५, ४५, ४७, ४८, ७८ ।

यह अनुकूल और प्रिय अनुभव जिसके
सदा हान रहने की कामना हो ।

सुख की सीमा नहीं—विश्राय का गीत, प्रसाद
संगीत में पृष्ठ २८ पर सङ्कलित । ब्रह्मेखा
का कथन है सुख असौ है और इसकी
नित्य नूतन रचना होनी है । मनुष्य की
जितनी आवश्यकता बढ़ जाती है उतने
ही इसके नये नये रूप बदलते जाते हैं ।
वास्तव में सच्चा सुख तो सतोष है जो
इम समार में मिलता है और ऐसे
मानस में शांत सराज की भाँति खिलता
है जो पूर्णरूप हो, प्रयात् जो कामना
रहित हो ।

सुख याकर = चि०, ७१ । ल० ३६ ।

[वि०] (स०) सुख का समूह । सुख का घर ।

सुखवारी = धा० ५४ । का० कु०, ४७, ४८,

[चं० पु०] (हि०) ६६ । प्र० १४ ।

सुख उत्पन्न करनेवाला ।

सुखद = का०, १३ । का० कु०, १४, १०४ ।

[वि०] (स०) का०, २५, १८२, २३६, १४१, २४२,
चि०, ११, ३६, ५८, ५६, ७०,
७४, १४१, १४८, १५०, १५४, १७१,
म०, ८८ । प्र०, १, १६ ।

सुख देनेवाला, सुपनाई ।

सुख-साज = वि०, ५४, १७०, १८६ ।

[सं० पुं०] (हि०) सुख की मामग्री ।

सुख साधन = का, १६०, १७१, १६२, १७२,

[सं० पुं०] (सं०) १८२, १८४ १६१, १६८ ।

सुख का साधन या उपाय । सुख में का
द्योतक ।

सुख-सानो = वि०, १६० ।

[वि०] (श्र० भा०) सुख में सनी हुई, सुखमय ।

सुख-सीमा = का०, १३६ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) सुख की भासा या सीमान सुख,
अस्थायी आनंद, सामारिक सुख का
सूचक शब्द ।

सुखलाकर = का०, ५१ ।

[क्रि०] (हि०) 'सुखाना' क्रिया का पूव कालिक रूप ।

सुख सूत्र = का० कु०, ३१ ।

[सं० पुं०] (सं०) सुख प्राप्त करने का सूत्र, कारण या
उपाय, सुख का मागार । सुख स्त्री
कीरा ।

सुख से = प्र० १२ ।

[वि०] (हि०) सुखपूर्वक ।

सुख सो = वि०, ७५, १०६ ।

[वि०] (श्र० भा०) सुखपूर्वक ।

सुख सौरभ-तरंग = का० १५३ ।

[सं० पुं०] (सं०) मुख रूपी मोरम की लहर । आनंदमय
जीवन ।

सुख-स्वप्न = का०, २६, ३७ १७० ।

[सं० पुं०] (मं०) आनंदमय स्वप्न, सुख का सपना ।

सुखाई = वि०, १८१ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) सुखाकर (प्रवकालिक क्रिया) ।

सुखाय = वि०, ३४ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) सुखाकर । (प्रवकालिक क्रिया) ।

सुखी = का०, २६ । का० कु०, ६६ । का०, १३२,

[वि०] (हि०) १३५ १५४, १५७, १७६ १६३,

२२८ । वि०, १८२ । प्र०, २३ ।

वह जिसे सुग या आनंद प्राप्त हो ।

सुखो = प्रि०, ४८ । का० कु०, २३ । का०,

[सं० पुं०] (हि०) १३६, १४८ ।

सुख का गृहवचन रूप ।

सुरयाति = वि०, ४८, ६७ ।

[सं० स्त्री०] (मं०) सुप्रसिद्धि ।

सुगंध = का० कु०, ११६ । का०, १६२ । वि०,

[सं० स्त्री०] (सं०) ३८, ५६, १३६, १४३, १६५, १६६,
१८० । मं०, १९ । लं०, ६०, ७६ ।

सुंदर गंध, वह गंध जो आनंद देनी हो ।

सुगवित = का० कु०, ३७ । मं०, ३ ।

[वि०] (सं०) सुगंध से पूरा, जिसमें सुगंध हो ।

सुगाठिहि बांधो = वि०, ७४ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) गाँठ को अच्छी तरह बांध ली ।
मनोभाति चेत लो ।

सुगारव = का०, ६ ।

[सं० पुं०] (मं०) अच्छा प्रातिपद ।

सुघड = वि०, १६२ ।

[वि०] (श्र० भा०) सुंदर, आभाशाली ।

सुघर = का० कु०, १३ । वि०, ७०, १००,

[वि०] (हि०) १४७, १५८ ।

दे० 'सुघड' ।

सुघराई = का०, १०८ । का०, १६ । लं०, ४३ ।

[सं० स्त्री०] (हि०) सुंदरता, सुघरता ।

सुचार = वि०, २३ ।

[वि०] (मं०) अच्छी तरह, सुंदर ढंग से ।

सुचि = वि०, २४, ४७, ५५, ६०, ७०,

[सं० स्त्री०] (प्र० भा०) १४१ ।

पवित्र, निमल ।

सुचिर्चंद-वर्देन = वि०, ६१ ।

[सं० पुं०] (प्र० भा०) निमल चंद्रमा के समान मुख ।

सुचित्त = वि०, ११ ।

[सं० पुं०] (सं०) सु व्यवस्थित चित्त या मन । चिंता-
रहित मन । वह चित्त या मन जिसमें
विकार न हो ।

सुचिरेण = वि०, १३३ ।

[प्र० भा०] (सं०) बहुत काल तक ।

सुचूर = वि०, २३ ।

[मं० पुं०] (प्र० भा०) सुंदर नूला ।

सुचेली = वि० ६५ ।

[सं० स्त्री०] (प्र० भा०) सुंदर शिप्या या सुंदर दासी ।

सद्यप्रथम प्रकाशित हुई थी ।]

सुधाकर = वि०, २६ ७१ । भ०, ३८ ।

[सं० पु०] (सं०) चंद्रमा ।

सुधारि = वि०, ११० ।

[क्रि० ध०] (अ० भा०) 'सुधारना' क्रिया का पूरक, लिक रूप । सुधार कर ।

सुधाधारन = वि०, १७७ ।

[सं० स्त्री०] (अ० भा०) सुधा को धाराएँ । अमृत को धाराएँ ।

सुधाकण = का० कु० ४२ ।

[सं० पु०] (सं०) सुधा के बिंदु । अमृतकण ।

सुधाकलश = का० कु०, ५६ ।

[सं० पु०] (सं०) अमृत घट ।

सुधा भरी सी = वि०, १४० ।

[वि०] (व०) सुधा के भरने के समान ।

सुधा नीर = का० कु०, ३ ।

[सं० पु०] (सं०) जलरूपा अमृत ।

सुधानिधि = प्रे०, २२ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) सुधा का सागर या सुधा का कोष । चरमा वा सूचक शब्द ।

सुधामदाकिनी = का० कु० ३१ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) सुधा बरमानवाली आकाशगंगा । सुग या अमृत रूपी गंगा ।

सुधामय = का०, ८७ । का० कु०, ७६ । का०, [वि०] (सं०) १६१ ।

सुधा स युक्त या परिपूर्ण ।

सुधार = प्रे०, १० । वि०, ४२, १५६ ।

[सं० पु०] (सं०) सुधारने की क्रिया या भाव, सुवार ।

सुधारत = वि०, ६०, १६१, १६६, २८७ ।

[क्रि०] (अ० भा०) सुधार करता है, दोष दूर करता है । अपनी गलतियों दूर करता है ।

सुधारना = का० कु० १०० ।

[क्रि०] (सं०) दोष या त्रुटि दूर करना ।

सुधारस = वि०, १५८, १७५ ।

[सं० पु०] (सं०) अमृत रस ।

सुधारी = वि०, १०१, १०६ ।

[क्रि०] (हिं०) सुधार किया । परिवर्तन किया ।

सुधारे = वि०, ५०, १७६ ।

[क्रि०] (हिं०) सुधारण किये । ठीक किए ।

सुधासागर = प्रे०, २५ ।

[सं० पु०] (सं०) सुग का समुद्र ।

सुधासिचन = भ०, ६१ ।

[सं० पु०] (सं०) अमृत सिंचन ।

सुधासिधु = का०, २०७ ।

[सं० पु०] (व०) अमृत का समुद्र ।

सुधालोत = भ०, ४६ ।

[सं० पु०] (सं०) अमृत का सेता या प्रवाह ।

सुधि = वि०, ३५, १७२, १७४ । प्रे०, २ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) धार, स्तरण । खबर लेना ।

सुधीरज = वि०, ३५ ।

[सं० पु०] (हिं०) प्रसन्न धय ।

सुन = का० कु०, ६, ५६, १ । का०, ६०, १७८

[पुन० क्रि०] (हिं०) २०१ । वि०, १६७ । प्रे०, १३ ।

ल०, ७१ ।

सुनकर । अवण करके ।

सुनकर = का० कु०, ४८ ।

[क्रि०] (हिं०) सुनना क्रिया का पूरकानिक रूप ।

सुनत = वि०, ५१, १७२ ।

[क्रि०] (अ० भा०) सुनता है ।

सुनती = ल०, ६५ ।

[क्रि०] (हिं०) सुनती है ।

सुनती सी = का०, १४४ ।

[क्रि० वि०] (हिं०) सुनने के सदृश, अवण करना सी ।

सुनते सुनते = का० कु०, ४६ । प्रे०, १८ ।

[अ० ध०] (हिं०) अवण करते करते ।

सुनना = प्रे०, १३, १४, १५, ७८ । का०,

[क्रि०] (हिं०) ३१ । का०, १०, ५७, ७०, ८५, ६६,

१४५, १७६, १७७, १८४, १८३,

२११, २३३, २४४, २४८, २७५,

२८१ । वि०, ६०, ६६, १४१, १७६,

१८६, १८७ । भ०, ४३ । प्रे०, ४,

१३, १०, १० । ल०, १०, ११ ।

काना से शब्द या कही हुई बात का

ज्ञान प्राप्त करना। किसी बात या
प्राथना पर ध्यान देना।

सुन पडना = म०, १।

[क्रि०] (हि०) सनाई पडना।

सुनते = का०, १५४।

[क्रि०] (हि०) सुनने की आज्ञा देना।

सुन लो = क०, ३१।

[क्रि०] (हि०) सुनने की आज्ञा देना।

सुनहला = मी०, ५४। का०, २३ ३८, १६८

[वि०] (हि०) २२०, २७३। अ०, २८।

स्वस्तिम, सोने के रंग का।

सुनहु = वि०, ५०।

[क्रि०] (प्र० भा०) सुनी।

सुना = का० कु० ४७।

[क्रि०] (हि०) 'सुनना क्रिया का भूतकालिक रूप।

सुनाजा रे = ल० २८, २६।

[क्रि०] (हि०) सुनामो। सुना जामो।

सुनाना = का० कु०, ७६। वा०, ३७, ४५, ७६

[क्रि०] (हि०) ८५ १२७, २६७, २७८। वि०, ११,

६०, ६१, १७८ १८६। अ०, ३५।

प्र० ८, ५, १३, २४। म०, ११ १२।

ल०, १२, १५ ४७, ७३, ७७।

कई बात किसी को सुनने के लिये कहना।

सुनि = वि०, ४१ ४६, ५०, ५२ ६७, २७,

[क्रि०] (हि०) ७३, ६३, १४७, १४८।

सुनकर।

सुनिये = क०, २२। वि०, ५७, ७१।

[क्रि०] (हि०) सुनने के लिये निवेदन करना।

सुनि सकत = वि०, ५१।

[क्रि०] (प्र० भा०) सुन सकता है।

सुनिहित = का०, ८१, १२७।

[वि०] (हि०) अपनी भाँति समझा हुआ।

सुनि है = वि० ६४।

[क्रि०] (प्र० भा०) सुनिये।

सुनी = क०, २२। वि०, १८।

[क्रि०] (हि०) सुनना क्रिया का भूतकालिक रूप।

सुनीति = वि०, १५।

[५० पु०] (५०) अच्छी या सुंदर नानि।

सुनील = वि० २३।

[वि०] (म०) जिनका वर्ण बहुरंग नाना हो। दृग्ग।

सुन = वि०, ३, ५। ल०, १३।

[प्र०] (१०) सुनना क्रिया का भूतकालिक रूप।

सुनै = वि० ४७, ६१, १६७।

[प्र०] (प्र० भा०) सुनना क्रिया का भूतकालिक रूप।

सुनो = क० १५। वा० कु०, ८१, ८२।

[प्र०] (हि०) वा० १८६। वि० १८६, १८७।

सुनने के लिये आज्ञा देना।

सुपयिनी = वि० ६।

[६० ख०] (६०) सुन्दर वपयिनी। दे० 'पयिनी'।

सुपागति = वि० १५१।

[६०] (प्र० भा०) भला भाँति परिपक्व करती है। अच्छा तरह पागता या पाक करता है।

सुपाठ = का०, कु०, ३६।

[१० पु०] (६०) सुंदर सबक।

सुपाणिपल्लव = वा० कु०, १६।

[६० पु०] (६०) सुंदर हाथ रूपा पल्लव।

सुपेक्षे = वि०, १०७।

[क्रि०] (प्र० भा०) भला भाँति देखे।

सुप्रभात = वा० कु०, १११। वि०, ४६। अ०,

[६० पु०] (६०) २१।

सुंदर प्रभात। अच्छी सुबह।

सुप्रसन्न = वि०, १५५।

[वि०] (६०) अच्छाधिक प्रसन्न।

सुप्रम रस = वा० कु०, ७८।

[६० पु०] (६०) प्रमज्जित आनंद। प्रम का आनंद।

सुप्रागण = वा० कु० ६२।

[६० पु०] (६०) सुन्दर आगम।

सुप्त = मी० ११ १३। का० ११७।

[वि०] (प्र०) = सोया हुआ। सक्रियशील। नीद्रा मग्न।

सुप्ति = अ०, ३५।

[६० खी०] (६०) सोना। शयन।

सुफल = वि०, ३२।

[६० पु०] (६०) सुंदर फल या परिणाम।

सुवरन = चि०, १७६ ।

[म० पु०] (ब्र० भा०) स्वर्ण । सुदर रग ।

सुवरसत = चि०, २६ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) मली मीति बरसती है ।

सुवाजहि = चि०, ४७ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) मधुर ध्वनि हाती है ।

सुवाल = चि०, २५ २४५ ।

[म० पु०] (सं०) सुदर वाक्प ।

सुदीर = चि०, ४२ ।

[सं०] (हि०) सुहृद्, वीर ।

सुभा = चि०, २२, ५५, ६६ ।

[वि०] (सं०) सुदर । ऐश्वर्य युक्त ।

सुभट = चि०, ५३ ।

[वि०] (सं०) वार, माहसी, प्रचड वीर ।

सुभद्रा = चि०, ११२ ।

[सं०] (सं०) श्रीकृष्ण की वहन तथा अरुन का पत्नी का नाम । दुगा रा एव रूप । एव नदी ।

सुभाव = चि०, ४६, ५६ १७३ ।

[सं० पु०] (ब्र० भा०) स्वभाव, प्रवृत्ति ।

सुभावति = चि०, १८० ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) अच्छी लगना है ।

सुभीता = चि०, १६० ।

[म० पु०] (हि०) सुगमता, सहजियत ।

सुभ्रातृस्नेह = चि०, १०३ ।

[सं० पु०] (सं०) भाई का सुदर एवं पवित्र स्नेह ।

सुमगल-मूल = चि०, ६३ ।

[वि०] (सं०) सुख और कल्याण की जड़ । शुभमगल का उत्पादक ।

सुमति = चि०, ५०, १०७ ।

[सं० जी०] (सं०) सुवृद्धि । अच्छे विचार । अच्छी राय ।

सुमधुर = चि०, ६० ।

[वि०] (ब०) अत्यंत मधुर । मंद ।

सुमत = चि०, १५, ४५, ७३ । का०, कु०,

[सं० पु०] ६३ । का०, ५०, ५७, ८८, ६६, १३३, १८२, २६३, २६४ । २८४, २८५, २६२, २६३ । चि०, ४, १४, २४, २६, ५५, ६६, ७३, ६१, १४३, १५२,

१५३, १६७, १७३, १७६ । म०, २२,

३६, ५४, १ ल०, ३, ४३ ।

गुप । सुदर मन । निश्चय भाव ।

सुमन मरद = ल०, ७६ ।

[म०, पु०] (सं०) गुप । राग, गुप्परज, गुपधून ।

सुमन रग = ल०, ४६ ।

[सं० पु०] (सं०) पुप का रग ।

सुमन-सा = का०, १०१ ।

[वि०] (हि०) पुष्प के समान ।

सुमन-भुग्भि = का०, कु०, १२४ ।

[सं० जी०] (सं०) गुप की सुगंध ।

सुमन-स्पर्श = का०, कु०, ६७ ।

[वि०] (सं०) का०, कु० ६७ ।

फून सा कोमल स्पर्श वाला ।

सुमनावली = चि० १५१ ।

[म० जी०] (सं०) गुप्ता की पत्निया ।

सुमनो = का०, १४६, २८५ । ल०, १२, ४३ ।

[सं० पु०] (सं०) पुपा, पुत्रो ।

सुमनोहर = चि० ७०, १४३ ।

[वि०] (सं०) अति मनोरम । मन की आकर्षित करने वाला, अत्यंत सुदर ।

सुमल्ल = चि०, ५३ ।

[सं० पु०] (सं०) सुन्दर पहलवान ।

सुमहोत्पल = चि०, १४६ ।

[म० पु०] (सं०) सुन्दर महत्तर कमल ।

सुमुखि = चि०, २५ ।

[सं० जी०] (सं०) सुदर मुखवाली (सुदरी) ।

सुमूर = चि०, ४६ ।

[सं० पु०] (ब्र० भा०) सुदर मूल ।

सुमेहदी = चि०, १६८ ।

[सं० जी०] (हि०) एक वास्पाते जिसकी पत्निया पीस कर हाथ पर म लगाई जाती हैं । स्त्रिया केष्ठवार का एक विशिष्ट उपकरण ।

सुमोद = चि०, १०३ ।

[सं० पु०] (सं०) सुदर आनंद ।

सुयत-सा = का०, कु०, ११६ ।

[सं० पु०] (हि०) सुदृढ यन के समान ।

सुयज्ञ = चि०, १४० ।

[सं० जी०] (सं०) कल्याणकारी यज्ञ ।

मुद्रशलेता = ऋ०, २४।

[सं० पु०] (सं०) मुद्रशलेता तल्लिता।

मुद्रामिनी = चि०, ४८।

[सं० पु०] (सं०) चान्ना गत। मुद्र रात।

मुद्रभूमि = चि०, ६३।

[सं० पु०] (हि०) मुद्र रात गत। रणवेन।

मुद्रोद्यन = का० पु०, ११४।

[सं० पु०] (सं०) दुर्गोद्यन।

[सं० पु०] (सं०) दुर्गोद्यन।

मुद्रा = चि० ५६। ल०, ४६।

[वि०] (सं०) मुद्र रण वाता। मुद्र। रणपू। सं०
महद भादि को म्हायता से जिना
मयवा भादर उदने क लिए उगके
पादे खोदकर बनाया हुआ गहरा मोर
तवा म्हाडा।

मुद्रजित = चि०, १०१।

[वि०] (सं०) सौम्यमय।

मुद्र = का०, ३१। चि०, २६, १००। ऋ०,

[सं० पु०] (सं०) ४५।

देवता। स्वयं न रहनेवाले प्राणा।

मुद्रक्त = चि०, १००।

[वि०] (सं०) मुद्र रक्त। मृत्त लान।

मुद्रधनु = का०, १७६, २५८।

[सं० पु०] (सं०) द्रवधनुष।

मुद्रधनु-स्ता = का०, २३५।

[वि० पु०] (हि०) द्रवधनुष क लमान।

मुद्रनारि = चि० १४६।

[सं० पु०] (सं०) देवताभा की खिवा।

मुद्रनारी = चि०, ५६।

[सं० पु०] (सं०) देवताभा की खिवा।

मुद्रवालाभा = का०, ८, ७४।

[सं० पु०] (सं०) देवताभा का तक्षिणी।

मुद्रवालाय = का०, ११।

[सं० पु०] (सं०) देवताभा का तक्षिणी।

मुद्रभि = का० ६३, ८६, १५३। चि०, २२,

[सं० पु०] (सं०) ३६। ऋ० ४६, म०, १६। सुगधि।

सुरभी, गाय।

मुद्रभिपू = का०, १७६।

[सं० पु०] (सं०) सुगंधित धूलि।

मुद्रभि = का०, पु०, ५१, ७२। का०, ८, १०,

[वि०] (सं०) १३, ६७, १८२, २०२। चि०, २४,

५५, १५८।

सुगंध स सना दृषा। सुगंधित, सुगंध-

मय। मद्रका दृषा।

मुद्रभिपू = का० पु०, ३४, ६७। प्रे०, २।

[वि०] (सं०) सुगंध स भरा दृषा। सुगंध वृत्त।

मुद्रभिपू = का०, ६२। का०, ११।

[वि०] (हि०) सुगंध स भरा दृषा।

मुद्रभि-सचप-नाश-स्ता = का० पु०, ६७।

[वि०] (हि०) सुगंध मयित करनेवाला सत्राने क
मद्रका। सत्राने का के समान।

मुद्रभी-महि = का० पु० ६०।

[वि०] (सं०) सुगंधयुक्त।

मुद्रभी = का० पु०, ५२। चि०, १०३।

[सं० पु०] (हि०) गाय। सुगंध।

मुद्रस्य = चि०, १३६। ल०, ७०।

[वि०] (सं०) मुद्र, रमणीय।

मुद्र-वय = का०, १६१।

[वि०] (सं०) दक्षताया वा समूह।

मुद्रस = का० पु०, ७३। चि० १५५।

[सं० पु०] (सं०) मुद्र रत।

मुद्रसरि = चि० ७१।

[सं० पु०] (सं०) गया।

मुद्रमणि-नीर = चि० ६६।

[सं० पु०] (सं०) गया का तट।

मुद्रसरी = चि०, ७३। ऋ०, ३४, ७६।

[सं० पु०] (सं०) गया।

मुद्रसरि हू को मद प्रवाह = चि०, ६६।

[सं० पु०] (सं०) गया का भा धामा बहाव या मद
प्रवाह।

मुद्रमुदरी-वृद्ध = का० पु० १०४।

[वि०] (सं०) देवताभा को खिवा का समूह।

मुद्र-रमणान = का० ३।

[सं० पु०] (सं०) देवताभा का मरुत।

मुद्रा = का०, ११।

[सं० पु०] (सं०) शराव। मदिरा।

मुद्रका = चि०, १४०।

[सं० पु०] (सं०) बौद्धा युक्त रात। मुद्र राति।

सुराग = का०, १६८ ।

[सं०] [सं०] सुदर राग ।

सुराजत = बि०, २२ ।

[वि०] (ब्र०भा०) शोभित ।

सुराज्य = बि०, ३३, ४५, ४८ ।

[सं०पु०] (सं०) सुदर राज्य ।

सुरीति = का० कु०, ११३ ।

[सं०श्री०] (सं०) मुखाद रीति, अच्छा व्यवहार ।

सुरवि = का०, ८३ । बि०, ५५, ५६ ।

[सं०श्री०] अच्छी इच्छा, उत्तम रुचि ।

सुरचिपूणै = का०, १४६ ।

[वि०] (सं०) सुरचि संयुक्त ।

सुरूप = बि०, २२ ।

[सं०पु०] (सं०) बहु रूप जो क्षण प्रतिक्षण नवीनता अनुभव कराये, सुदर स्वरूप ।

सुलखात = बि०, १५१ ।

[क्रि०] (ब्र०भा०) मली भाति दिखाई देता है ।

सुलखि = बि०, १६४ ।

[ब्र०श्री०] (ब्र०भा०) मली भाति दलकर ।

सुलच्छ = बि०, ४१ ।

[सं०पु०] (ब्र०भा०) सुदर उद्देश्य ।

सुलभना = का०, ४५, ४६, ४७, ४८, ४९, १७७ ।

[क्रि०] (हि०) उलभना वा विपरीतार्थक भाव । उलभन न रहना ।

सुलभी = का०, ६७ ।

[वि०] (हि०) स्पष्ट, सुलभी हुई ।

सुलतान = का० ६८, ६९, ७१, ७२, ७७ ।

[सं०पु०] (ब्र०) दादशाह नवाब ।

सुलभ = का०, ८६ । का०, ५३ । का० १२ ।

[वि०] (सं०) जो सरलता से प्राप्त हो, सुगम ।

सुललित = बि० ४५ ।

[वि०] (सं०) बहुस सुदर ।

सुलागति = बि०, १५१ । प्रे०, १ ।

[क्रि०] (ब्र०भा०) अच्छी लगता है ।

सुलोच = बि०, १४० ।

[सं०पु०] (सं०) उत्तमोत्तम भाव, सुखमय ससार ।

सुवदा = का० कु०, १२० ।

[सं०पु०] (सं०) विशाल वक्षस्थल ।

सुवर्ण-सा = का०, ३८ ।

[वि०] (हि०) सुवर्ण के सदृश कातिमान ।

सुवारिद-चूद = का० कु०, ५३ ।

[वि०] (सं०) सजल मेघवाला ।

सुवासित = का०, ७६ ।

[वि०] (सं०) सुगन्धित ।

सुविकास = का० कु० ७२ ।

[सं०पु०] (सं०) समुद्रति, भलीभाँति विकसित होने का भाव ।

सुविचार = का०, १२ ।

[सं०पु०] (सं०) उत्तम विचार ।

सुविषयी = बि० ४७ ।

[सं०पु०] (सं०) सुदर एवं सुमधुर वादिनी, वीणा ।

सुविभात = बि० १४२ ।

[क्रि०] (ब्र०भा०) भन्ना लगता है ।

सुविश्व = बि०, १३६ ।

[सं०पु०] (सं०) सुखमय विश्व ।

सुविस्तृत = का०, १६ ।

[वि०] (सं०) विशाल, हर ओर फैला हुआ ।

सुव्याप्त = बि०, १३६ ।

[वि०] (सं०) भलीभाँति प्रसारित ।

सुव्रता = का० २२, २६, ३० ।

[सं०श्री०] (सं०) कठिन व्रत का पालन करनेवाली ।

सुशङ्क = बि०, ४२ ।

[सं०पु०] (सं०) तीली धारवाले शङ्क ।

सुशीतलकारी = का०, ३० ।

[वि०] (सं०) सुख या ते प्रदान करवाला ।

सुशील = का०, २१ ।

[वि०] (सं०) शोचमान ।

सुशोभित = का०, ४६ ।

[वि०] (सं०) भन्ना भाँति शोभा प्राप्त ।

सुपमा = का०, २ । का० कु०, ३६, ५१, ६७ ।

[सं०श्री०] (सं०) का०, ६६, ८५, ८७, ९२, १०८, १३५, १६३ । बि०, १६८ । का०, ६५ । प्रे०, २५ ।

सौंदर्य, शोभा, सुदरता ।

सोने की सिकता = का०, १४२ ।

[स० स्त्री०] (सं०) सुनहले रजकण । सुव की किरणों से प्रतिबिम्बित मिरुना राशि ।

सोपान = का०, २०६ ।

[स० पुं०] (सं०) सीढ़ी ।

सोभा = वि०, ६१, ।

[स० स्त्री०] (हिं०) शोभा । सौंदर्य ।

सोम = का०, २४, २५, ७८, १०६, ११६,

[सं० पुं०] (मं०) ११७ १२८, १३४, २८६ ।

चंद्रमा । अमृत ।

सोमपान = का०, ११६, १३४ ।

[सं० पुं०] (सं०) सोमरस पीनेवाला पात्र । चपक ।

सोमरस = का० कृ०, ११४ ।

[सं० पुं०] (सं०) सोमलता का रस । एक प्रकार का मादक पेय जिसे बर्दिक युग में लोग पीते थे ।

सोमलता = का०, १०६, २७७ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) एक प्राचीन लता जिसके रस का सेवन बर्दिक युग में लोग मादक रस के रूप में किया करते थे ।

सोमवाही = का०, २८६ ।

[वि०] (सं०) अमृत को वहन करनेवाली । सुधामयी । सुवासिनी ।

सोया = का०, १६८, १७६, १८०, २३६ ।

[क्रि०] (हिं०) ल०, ३१ ।

शयन किया, सो गया ।

[वि०] प्रसुप्त, निद्रित ।

सोया सदेश = का०, ११ ।

[सं० पुं०] (हिं०) अन्वयन सदेश । छिपा सदेश ।

सोयेगी = भा०, २७ ।

[क्रि०] (हिं०) सोमा का अभिव्यक्त क लिक रूप ।

सोहई = वि०, ४६ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) शोभित होता है ।

सोहत = वि०, ६३, ११०, ११४, १६० ।

[वि०] (प्र० भा०) शोभित ।

सोहे = वि०, ११, ६६ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) शोभित होता है ।

सौंदर्य = भा०, ३३, ६३ । का० कृ०, ५०, ५१

[सं० पुं०] (सं०) ७८, ६८ । का० १०२, १२५, १५१, १८७, २२४ । वि०, १४० । क०, ३५, ६६ । प्र०, १८, २४, २५ । ल०, ७६ । सुंदरता । वह शोभा जिसमें अद्भुत आकर्षण हो ।

[सौंदर्य—सब प्रथम बहुत कला ३, किरण ४ म प्रका

शित और नानम कृष्ण म पृष्ठ ५० ५१ पर सकलित ७ पदा की कविता । आकाश में नीले धन को देख कर किस भाषा में बयो खड़े हुए ह ? चकोरो को उल्लास बयो हुआ है और क्या यही चंद्रमा क पूर्ण विक्रम है ? भ्रमरो का पत्ति कमल पात को देख कर क्या कारण है बि गुजार कर रही है ? कौटा में खिल हुए इन फूला को देख कर हृदय क्या उन पर माहित होता है ? वास्तव में यह सौंदर्य की शोभा है । इस का आभा से लोहे का हृदय भी पिघल जाता है क्या कि सुंदर चेहरा देख कर मन, हृदय सभी कुछ रसमग्न हो जाते ह । बहुत देखकर जिस में सौंदर्य का केवल एक बिंदु है इसे हम प्रिय दृष्टान मानने हैं किन्तु पूर्णसौंदर्य को प्रभा ही सवत्र और सब म प्रियदर्शन है । मानवीय ह या प्राकृत हा सभी सुपमा दिव्य शिल्प के कला कौशल की प्रतीक हैं । इस सौंदर्य को जी भर कर देखो और हृदय म अकित कर लो । जब यह चित्र हृदय म पूर्ण रूप से अपना स्थान बना लग लो सत्य और सुंदर का स्वर साक्षात्कार हो जायगा ।]

सौंदर्य जलधि = का० १६३ । वि०, १३६, २३६ ।

[मं० पुं०] (सं०) सौंदर्य सागर या अगाध सुंदरता ।

सौंदर्य-प्रेम निधि = प्र०, २६ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) प्रतियोग सुंदर प्रेमी ।

सौंदर्यमयी = का०, ६६, । क०, ६० । प्र०, २४

[वि०] (सं०) ल०, ६६, ७६ ।

सुंदरी ।

सुयशलता = ऋ०, २४।

[म० व०] (म०) सुयशलता लतिका।

सुयामिनी = वि०, ४८।

[म० व०] (म०) चाँना रात। सुदर रात।

सुयुद्धभूमि = वि०, ६३।

[स० व०] (हि०) सुदर मग्नम स्वयं। रखनेत्र।

सुयोवन = का० कु०, ११४।

[न० व०] (स०) दुर्गम।

[सुयोवन—३० दुर्गम]।

सुरग = वि०, ५६। ल०, ४६।

[वि०] (स०) सुर रज वाता। सुदर। रमण्य। सुँव, वाक्-भाति को सहायता स बिना मयवा धार उठाने के लिए उसके पीछे रान्तर बनाया हुआ गहग गौर लया गन्दा।

सुरजित = वि०, १०१।

[वि०] (स०) सौम्यमय।

सुर = का० ३१। वि०, २६, १००। ऋ०,

[स० व०] (स०) ४४।

देवता। स्वयं म रहनेवाले प्राणा।

सुरक्त = वि०, १००।

[वि०] (स०) सुदर रज। गूर लाल।

सुरघनु = का० १७६, २५८।

[म० व०] (स०) दृग्घनुष।

सुरघनुना = का०, २३५।

[वि० व०] (दि०) दृग्घनुष र माना।

सुरनारि = वि०, १४६।

[स० व०] (स०) दशनामा का शिवा।

सुरनारी = वि०, ५६।

[म० व०] (म०) दशनामा का शिवा।

सुरनामा = का०, ६, ७४।

[स० व०] (स०) दशनामा का तल्ला।

सुरवाताय = का०, ११।

[स० व०] (स०) दशनामा का तल्ला।

सुरभि = का०, ६३, ८६, १४३। वि०, २२,

[स० व०] (म०) ३२। ऋ०, ४६, म०, १६। सुगवि।

सुरभा गाय।

सुरभिनी = का०, १४६।

[स० व०] (स०) सुरभिनी।

सुरमित = का०, कु०, ५१, ७२। का०, ८, १०,

[वि०] (म०) १३, ६७, १८२, २२१। वि०, २४,

५५, १५८।

सुगव से सना हुआ। सुगवित, सुगव-

मय। महकना हुआ।

सुरभिपूरा = का० कु०, ३४, ६७। प्र०, २।

[वि०] (स०) सुगव से भरा हुआ। सुगव पूरा।

सुरभिमय = का० ६२। का०, ११।

[वि०] (हि०) सुगव स भरा हुआ।

सुरभि-सचय-नोश-सा = का० कु०, ६७।

[वि०] (हि०) सुगव सचि करेवाले लगाने के

सहस। पराय काय के समान।

सुरभी-सहित = का० कु०, ६०।

[वि०] (स०) सुगवयुक्त।

सुरभी = का० कु०, ५२। वि०, १०३।

[म० व०] (हि०) गाय। सुगव।

सुरभ्य = वि० १३६। ल०, ७२।

[वि०] (स०) सुदर, रमणीय।

सुर-वर्ग = का०, १६१।

[वि०] (स०) देवताओं का समूह।

सुरस = का० कु०, ७३। वि०, १५५।

[म० व०] (स०) सुदर रस।

सुरसरि = वि०, ७१।

[स० व०] (स०) गंगा।

सुरसरि-सीर = वि०, ६६।

[स० व०] (स०) गंगा का तट।

सुरसरी = वि०, ७३। ऋ०, ३४, ७६।

[स० व०] (म०) गंगा।

सुरसरि हूँ वो मद प्रवाह = वि०, ६६।

[स० व०] (स०) गंगा का मा मासा बहाव या मद

प्रवाह।

सुरसुदरी-वृद्ध = का० कु०, १२४।

[वि०] (स०) दशनामा की शिवा का समूह।

सुर शमशान = का० ३।

[म० व०] (स०) दशनामा का मरणा।

सुरा = का०, ११।

[स० व०] (स०) शराब। मर्या।

सुरागा = वि०, १४०।

[स० व०] (म०) चाँना पुत रात। सुदर रात।

सुराग = वा, १६८ ।

[सं०] [सं०] सदर राग ।

सुराजत = चि०, २२ ।

[वि०] (ब्र०भा०) शाभित ।

सुराज्य = चि०, ३३, ४५, ४८ ।

[सं० पु०] (सं०) सदर राज्य ।

सुरीति = का० कु०, ११३ ।

[सं० की०] (सं०) सुषार रीति, अक्षया व्यवहार ।

सुरवि = का०, ८३ । चि०, ५५, ५६ ।

[सं० की०] अक्षयी इच्छा, उत्तम रुचि ।

सुरचिपूणा = का०, १४६ ।

[वि०] (सं०) सुरचि सं युक्त ।

सुरूप = चि०, २२ ।

[सं० पु०] (सं०) वह रूप जो क्षण प्रतिक्षण नवीनता अनुभव कराये, सुदर स्वरूप ।

सुलखार्त = चि०, १५१ ।

[क्रि०] (ब्र०भा०) भली भाँति दिखाई देता है ।

सुललि = चि०, १६४ ।

[पू० क्रि०] (ब्र०भा०) भली भाँति देखकर ।

सुलच्छ = चि०, ४१ ।

[सं० पु०] (ब्र०भा०) सुदर उद्देश्य ।

सुलक्ष्णा = का०, ४५, ४६, ४७, ४८, ४९, १७७ ।

[क्रि०] (हि०) उलक्षणा का विपरीतार्थक भाव । उलक्ष्ण न रहना ।

सुलक्ष्मी = का०, ६७ ।

[वि०] (हि०) स्पष्ट, सुलक्ष्मी हुई ।

सुलतान = ल० ६८, ६९, ७१, ७३, ७७ ।

[सं० पु०] (ब्र०) बादशाह, नवाब ।

सुलभ = का०, ८६ । अ०, ५३ । ल०, १२ ।

[वि०] (सं०) जो सरलता से प्राप्त हो, सुगम ।

सुललित = चि०, ४५ ।

[वि०] (सं०) बहुल सुदर ।

सुलागति = चि०, १५१ । प्र०, १ ।

[क्रि०] (ब्र०भा०) अक्षयी लगता है ।

सुलोक् = चि०, १४० ।

[सं० पु०] (सं०) उत्तमोत्तम लोक, सुखमय ससार ।

सुवर्ण = का० कु०, १२० ।

[सं० पु०] (सं०) विशाल वस्तुस्थल ।

सुवर्ण-सा = ल०, ३८ ।

[वि०] (हि०) सुवर्ण के सदृश कातिमान ।

सुवारिद-वृद्ध = का० कु०, ५३ ।

[वि०] (सं०) सजल मेघमाला ।

सुवासित = अ०, ७६ ।

[वि०] (सं०) सुगन्धित ।

सुविकास = का० कु०, ७२ ।

[सं० पु०] (सं०) समुन्नति, भलीभाँति विकसित होने का भाव ।

सुविचार = ल०, १२ ।

[सं० पु०] (सं०) उत्तम विचार ।

सुविपची = चि०, ४७ ।

[सं० पु०] (सं०) सुदर एवं सुमधुर वादिनी, वीणा ।

सुविभात = चि० १४२ ।

[क्रि०] (ब्र०भा०) भना लगता है ।

सुविरव = चि०, १३६ ।

[सं० पु०] (सं०) सुखमय विश्व ।

सुविस्तृत = म०, १६ ।

[वि०] (सं०) विशाल, हर ओर फैला हुआ ।

सुव्यात = चि०, १३६ ।

[वि०] (सं०) भलीभाँति प्रसारित ।

सुव्रता = का०, २२, १६, ३० ।

[सं० की०] (सं०) कठिन व्रत का पावन करनेवाली ।

सुशख = चि०, ४२ ।

[सं० पु०] (सं०) सीखी धारवाले शख ।

सुशीतलवारी = अ० ३० ।

[वि०] (सं०) सुगुन शांत प्रदान करनेवाला ।

सुशील = का०, २१ ।

[वि०] (सं०) शीलवान ।

सुशोभित = का०, ४६ ।

[वि०] (सं०) भनी भाँति शोभा प्राप्त ।

सुपमा = का० २ । का० कु०, २६, ४१, ६७ ।

[सं० की०] (सं०) का०, ६६, ८५, ८७, ९२, १६८, २३५, २६३ । चि०, १६८ । अ०, ६५ । प्र०, २५ ।

सौंदर्य, शोभा, सुदरता ।

सुपुति = का०, २०५।

[सं० स्त्री०] (सं०) सुनिद्रा।

सुमगो = बि०, १०७।

[सं० पुं०] (ब्र० भा०) मनोहर कूल सय, स मय। सुखदायक सय।

सुमवाद = का०, १६७।

[सं० पुं०] (सं०) मनोहार वयावधन।

सुसोहति = बि०, ५०।

[क्रि०] (ब्र० भा०) सुशोभित होता है।

सुस्वादु = का० पु०, १०१, १०५। बि०, १०१,

[वि०] (सं०) १५४।

स्वादु रस। को तुम करनेवाला (मानन)।

सुस्मित = का०, ६३।

[वि०] (सं०) प्रसन्न मुसुरा टटभरा।

सुस्मित-सा = का०, १६८।

[वि०] (हि०) सुहाय्य गा। विशेष। स्निग्धता का भाव।

सुहाग = का०, १७, १००, २१६। बि०, २।

[सं० पुं०] (सं०) भ०, ११। ल० ११।

समय या सोभाग्य ती रहने क दशा।

सुहागिनी = का० ११। का० १५६।

[वि०] (सं०) सोभाग्यवता। समया।

सुहात = का० पु०, ५, ८५। का०, २००।

[क्रि०] (ब्र० भा०) धन्यता लगता है।

सुहाती = का० पु०, ५, ८५। का०, ४०।

[क्रि०] (हि०) धन्यता लगता है।

सुहाया = का०, ६९।

[क्रि०] (ब्र० भा०) सुहाय्य सगा। शोभन हुआ।

सुहावत = बि० ५६।

[क्रि०] (ब्र० भा०) धन्यता लगता। शोभित होता है।

सुहावन = बि०, ११।

[वि०] (ब्र० भा०) मन्दार।

सुहावनी = बि० ५३।

[वि०] (ब्र० भा०) मनोहासिनी।

सुहावन = बि० ५१।

[वि०] (ब्र० भा०) दे० सुहावना।

सुहावे = बि०, १०।

[क्रि०] (ब्र० भा०) धन्यता लगता है। धन्यता लगता है, धन्यता होता है।

सुहास = का०, २४०। भ०, ६४।

[सं० पुं०] (ब्र० भा०) तिरचोर हगो।

सुहिदी = बि०, १६४।

[सं० स्त्री०] (ब्र० भा०) सुदर हिन्दी। पवित्र हिन्दी।

सुहिया = बि०, १४।

[सं० पुं०] (ब्र० भा०) गरजहृदया, गरज हृदयवाली।

सुहीते = बि०, ३०।

[सं० पुं०] (ब्र० भा०) सरस हृदय से।

सुहृद = का० पु०, ३०, ८४।

[वि०] (सं०) मित्र। सुदर हृदयवाला, हितवी।

सुग्रा = का०, १११।

[सं० पुं०] (ब्र० भा०) सुग्रा।

सुक्ति = का०, १४०।

[सं० स्त्री०] (ब्र० भा०) गानवद्ध क उक्ति।

सूक्ष्म = बि०, १४३।

[वि०] (ब्र० भा०) सूक्ष्म, गहीन, योगी, अति लघु।

सूक्ष्म = बि०, १४३।

[वि०] (म०) २० 'सूक्ष्म'।

सूय = का० ३१।

[वि०] (म०) 'सूय'। जिसा का सूय रूप।

सूखत = बि० १६३।

[क्रि०] (ब्र० भा०) शुष्क होता है।

सूखते = का० १३४।

[वि०] (ब्र० भा०) शुष्क होत हुए।

सूखना = का०, ३१। प्र० २।

[क्रि०] (हि०) शुष्क होना।

सूखा = का०, २८, ७८, ७९। का० १६, १७।

[वि०] (हि०) का० ४, ११०, १३३, १६०, १६४,

२८१। का०, ६४। ल०, ६, ३७, १०,

४२, ४७, ४९।

शुष्क हुआ। नारस निन्दित।

सूखी सी = का०, १६।

[वि०] (हि०) सुखाई सा।

सूखे से = का०, २७३।

[वि०] (हि०) सूखे हुए से। शुष्क व समान।

सूचक = का०, १७।
 [वि०] (सं०) सूचना देनेवाला।
 सूम्भना = का० कु०, ८।
 [वि०] (हि०) दिवाई देना।
 सूम्भी = वि०, ५७।
 [क्रि०] (हि०) दिवाई दो।
 सूत = वि०, १४१।
 [सं० पुं०] (सं०) सारथी। महर्षि वेदव्यास के पुत्र का नाम। घासा।
 सूत = का० कु०, ३३, ७५, ८६, १०६,
 [सं० पुं०] (सं०) १५८। ऋ०, ०६।
 जनेऊ, मगधवीर। घागा। कटिभूषण।
 'मागर म मागर' जसा म न व्यक्त करने वाला स द।
 सूतधार = का०, २०६।
 [सं० पुं०] (सं०) नाट्यशाला का व्यवस्थापक। प्रमुख नट। एक घण्टमकर जाति।
 सूताधारिणी = का०, ५।
 [वि०] (सं०) नाट्यशाला की प्रमुख व्यवस्थापिका। नटी।
 सूय = वि०, २६, ६१।
 [वि०] (श० भा०) सरल। साधा।
 सूयी = वि०, १६, ५८।
 [वि०] (श० भा०) सरल। सोयी, वननारहित।
 सूयो = वि० ५६, ५६ ६३ ७४।
 [वि०] (श० भा०) निष्कण्ट। निश्चिन्त।
 सूना = का० ६६। का०, ३, ६७ १४४,
 [वि०] (हि०) १५१, १६०, २१६। ऋ०, ८२।
 प्र०, १४। ल०, ४४।
 एकान्त। नीरवता का भाव। रिक्त।
 सूना सपना = का०, ३०।
 [सं० पुं०] (हि०) सूना स्वप्न।
 सूनी = का० १७६।
 [वि०] (हि०) रिक्त।
 सूनी सास = का० १००।
 [सं० स्त्री०] (सं०) शिथिल।
 सूने = का० ४०, ५१, ७९। का०, ६२, १६०,
 [वि०] (हि०) १७६, २०१, ल० ३८, ४४, ५८।
 पत्रात। शू०। रिजिन।

सूनेपन = ल०, ६, ३६।
 [सं० पुं०] (हि०) नीरवता।
 सूवा = का० कु० ११६, १२१।
 [सं० पुं०] (का०) प्रातः प्रदेश।
 सूर = वि० १६४।
 [सं० पुं०] (सं०) मूय।
 [वि०] (हि०) अघा, दृष्टिहीन।
 सूय ताप = का० कु०, १४०।
 [सं० पुं०] (सं०) सूय की गरमी।
 सूर्यमल्ल = का० कु०, १०८, १०६।
 [सं० पुं०] (सं०) एक हिंदू योधा।
 सूयसे = का० कु०, ११३।
 [वि०] (हि०) सूय के समान।
 सूर्य = वि०, ७२। प्र०, १४।
 [सं० पुं०] (सं०) मान। दिवकर। विशाकर।
 सूर्यवेत्तु = वि० ६६।
 [सं० पुं०] (हि०) सूय की पताका।
 सूजन = का०, ८८, २२५, २५३, २६३। वि०,
 [सं० पुं०] (म०) १५६। ल०, १४, ६।
 सृष्टि या निर्माण करने की क्रिया।
 पासन। सर्जन।
 मृष्टि = का०, २५। का० कु०, ८७। का०, ५,
 [सं० स्त्री०] (सं०) ८, ६, १२, १७, १६ २३, ५६, ५८,
 ६६, ७०, ७१, ७३, ११६, १२२,
 १२३, १७०, १८२, १८५, १८६,
 १६०, १६१, २३६, २८८। ऋ०,
 ५७।
 ज म, उत्पत्ति। निर्माण, सजना।
 मृष्टि कुज = का०, १६१।
 [सं० स्त्री०] (सं०) मृष्टि का कुज।
 सेज = का०, १३। का० कु०, ६३। का०, ८८,
 [सं० स्त्री०] (हि०) १७५। वि०, ४६। ऋ०, ७०।
 प्र०, २।
 शय्या। आराम से सोने योग्य बिस्तर।
 सेतु = का०, १५७।
 [सं० पुं०] (सं०) पुन। बांध।
 सेनप = का० कु०, ११६।
 [सं० पुं०] (सं०) सेनापति।

सोने की मिटना = का०, १४२।

[सं० जी०] (घं०) सुनहले रजकण। सूर्य को किरणों से प्रतिबिम्बित सिकता राखि।

सोपान = का०, २०६।

[सं० पु०] (सं०) सीढ़ी।

सोभा = चि०, ६१, १।

[मं० जी०] (हि०) शान्ति। सौंदर्य।

सोम = का०, २४, २५, ७८, १०६, ११६।

[सं० पु०] (सं०) ११७, १२८, १३४, २८६।

चंद्रमा। अमृत।

सोमपान = का०, ११६, १३४।

[सं० पु०] (घं०) सोमरस पीनेवाला पात्र। चपक।

सोमरस = का० कु०, ११४।

[सं० पु०] (घं०) सोमलता का रस। एक प्रकार का मादक पेय जिसे बर्दिक युग में लोग पीते थे।

सोमलता = का०, १०६, २७७।

[सं० जी०] (घं०) एक प्राचीन लता जिसके रस का सेवन बर्दिक युग में लोग मादक रस के रूप में किया करते थे।

सोमवाही = का०, २८६।

[वि०] (घं०) अमृत को वहन करनेवाली। सुधामयी। सुवासित।

सोया = का०, १६८, १७६, १८०, २३६।

[क्रि०] (हि०) ल०, ३१।

शयन किया सा गया।

[वि०] प्रसुप्त, निद्रित।

सोया संदेश = का०, ११।

[सं० पु०] (हि०) प्रयक्त संदेश। छिपा संदेश।

सोयगी = भा०, २७।

[क्रि०] (हि०) सोना का अव्यय लृक् लिक रूप।

सोहई = चि०, ४६।

[क्रि०] (प्र० भा०) शोभित होता है।

सोहत = चि०, ६, ६३, १५०, १५४, १६०।

[वि०] (प्र० भा०) शोभित।

सोहै = चि०, ११, ६६।

[क्रि०] (प्र० भा०) शोभित होता है।

सौंदर्य = भा०, ३३, ४३। का० कु०, ५०, ५१, ५२।

[सं० पु०] (घं०) ७८, ६८। का० १०२, १२५, १५१, १८७, २२४। चि०, १४०। ऋ०, ३५, ६६। प्र०, १८, २४, २५। ल०, ७६। सुंदरता। वह शान्ति जिसमें अद्भुत आकर्षण हो।

[सौंदर्य—सब प्रथम इन्द्र कला ३, किरण ४ में प्रकाशित घोर कानन पुष्प मं ५० ५१ पर सजलित ७ पदा की कविता। आकाश में नीले धन को देख कर कि प्रभासा म क्या खड हुए हैं ? चकोरी को जल्लास क्यों हुआ है और क्या यही चंद्रमा का पूरा विकास है ? भ्रमरा की पंक्ति कमल-पात को देख कर क्या कारण है कि गुजार कर रही है ? वींठा में खिल हुए इन फूलों का देख कर हृदय क्यों उन पर मोहित होता है ? वास्तव में यही सौंदर्य की शान्ति है। इस की आभास सोहै का हृदय भा पिघल जाता है क्योंकि सुंदर चेहरा देख कर मन, हृदय सभी कुछ रसमग्न हो जाते हैं। इन्द्र को देखकर जिस में सौंदर्य का केवल एक बिंदु है इसे हम प्रिय दशन मानते हैं, किंतु पूरा सौंदर्य का प्रभा ही सबन है और सब में प्रियदशन है। मानवीय हो या प्राकृत हो सभी सुषमा दिव्य शिल्पी के कला कोशल की प्रतीक हैं। इस सौंदर्य की जो भर कर दवा और हृदय में अंकित कर ला। तब यह चित्र हृदय में पूरा रूप में अपना स्थान बना लगा तो सत्य और सुंदर का स्वतः साक्षात्कार हो जायगा।]

सौंदर्य जलधि = का० १६३। चि०, १३६, २३६।

[मं० पु०] (घं०) सौंदर्य सागर या अगाध सुंदरता।

सौंदर्य-प्रेम निधि = प्र०, २६।

[सं० जी०] (घं०) प्रतिशय सुंदर प्रेमी।

सौंदर्यमयी = का०, ६६। ऋ०, ६०। प्र०, २४।

[वि०] (घं०) ल०, ६६, ७६।

सुंदरी।

सौंदर्य-सुधा-सागरं = प्र०, २५ ।

[सं० पुं०] (सं०) सौंदर्य रूपी सुधा का समुद्र । भगवतिम
सौंदर्य ।

सोपना = का० कु०, ७६ । ऋ०, ४४, ८१ ।

[क्रि०] (हिं०) समर्थता करना, सुपुष्ट करना, सहैवना ।

सोपि = वि०, ५ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) सोपकर ।

सोह = वि०, १७८ ।

[सं० पुं०] (प्र० भा०) सपथ । सपथने ।

सौ = क०, १८, २५, २७ ।

[प्र० भा०] (प्र० भा०) एक सौ ।

सौजय = का० कु०, ३७ ।

[सं० पुं०] (सं०) सुजनता, सज्जनता ।

सौदामिनी सधि ता = का०, १६ ।

[वि०] (हिं०) बिजला की कौय के समान ।

सौम = का०, १२ ।

[सं० पुं०] (सं०) महल ।

सौ बार = का०, १८३ ।

[प्र० भा०] (हिं०) धनक बार ।

सौभाग्य = म० ३० । ल०, ७०, ७३ ।

[सं० पुं०] (सं०) सुभाग । सन्ध्या भाग ।

सौम्यो = वि०, ३४ ६५ ।

[क्रि० सं०] (प्र० भा०) 'शोषना' क्रिया का पूरुषभूतकालिक
रूप, शोष दिया ।

सौमनस्य = का० १८३ । म०, २४ ।

[सं० पुं०] (सं०) भवमनसाहत, चिह्नता, प्रेम, सलोच ।

सौम्य = का० कु०, ६२ । का०, २४२ २४४,

[वि०] (सं०) २७१ । प्र०, ५ ।

शब्दे स्वभाववाला, नम्र, सुशील
सुन्दर, सोम या चद्रमा से संबंध
रखनेवाला, बाद ।

सौरवक्र = क० २० ।

[सं० पुं०] (सं०) सौर मंडल ।

सौरभ = का०, ३१, ४३ । का० कु०, १५

[सं० पुं०] (सं०) ३४ ५७, १०१ । का० ११, ४६,
४७, ५७, ६४, ६८, १३२ । वि०
२, १४, १५ १८, २३, २४, ४६,
५५, ६१, १५८, १६७, १७०, १७३,
१७५ । ऋ०, १६ ३४, ५६ ।
सुगंध ।

सौरभित = का० कु०, १६ ।

[वि०] (हिं०) सुगंधित ।

सोहाद = प्र०, २४ ।

[सं० पुं०] (सं०) मृदु होने का भार, सज्जनता, मित्रता ।

सोहाद प्रेम = का० कु०, १११ ।

[सं० पुं०] (सं०) सुहृद् के द्वारा मिलनेवाला प्रेम ।

स्मलन = का० १२२, १६८ ।

[वि०] (सं०) विपिल होना । पतन, गिरना, घुटना ।

स्तम = का० २१४, २१८ ।

[सं० पुं०] (सं०) समा लना । शरार । दहावट, क्लेश
का रोजने का प्रयोग ।

स्तभा = का०, १८२ ।

[म० पुं०] (हिं०) स्तम्भ का बहुवचन ।

स्तब्ध = का० १० । का०, कु०, २६, ६३ ।

[वि०] (सं०) का० ३, ६१ । ऋ०, ४८ । प्र०, १३ ।

स्तमित । दृढ़ । पक्का । मंद । धीमा ।

स्तर = का०, ३७ । का०, १६०, २४६ ।

[म० पुं०] (सं०) तल, परत अस्तर ।

स्तर-स्तर = का० १४, २३६ ।

[प० भा०] (सं०) सतह सतह ।

स्तवक = का०, २४६ ।

[सं० पुं०] (सं०) कृतो वा गुच्छ । स्तुति करनेवाला ।

स्तवन = का०, ३१ ।

[पुं०] (सं०) स्तुति । यथागान, कीर्ति, गाथा ।

स्तिमित = का० १५७ ।

[वि०] (सं०) शान्त, शोभा ह्रमा । ठहरा हुआ,
स्थिर, निश्चल ।

स्तूप = का०, ४६ ।

[सं० पुं०] (सं०) भीमार । ऊँचा टीला । बृहत् । भस्मियो
तथा स्मृतिचिह्नो को दण कर बनाया
हुआ ऊँचा बृहत् ।

स्त्री = म०, १० ।

[सं० स्त्री०] (सं०) पत्नी । नारी, भामिनी । मादा ।

स्थन = का०, १५७ । प्र०, २२ ।

[सं० पुं०] (सं०) तल, जमीन, धरातल ।

स्थल पद्म = का० कु० १२१ ।

[म० पुं०] (म०) मूषि म होनेवाला कर्म । पुताय ।

स्थान = का०, १३, १४, २० । का, १०,

[सं० पुं०] (सं०) २६३ । म०, ३ ।

भावार्थ, स्थल । ठौर । मू भाग ।

स्थापित = वा० कु०, ७३, ६८, १०१, १०६ ।
 [वि०स०] (स०) प्रतिष्ठित, जिसकी स्थापना हुई हो ।
 स्थित = वा० कु०, १२५ ।
 [वि०] टिका हुआ । आसीन । उपस्थित ।
 विप्रदान । अवलंबित ।
 स्थिति = का०, २४१ । न० ७७ ।
 [स०स्त्री०] (स०) अवस्था । दशा । पद । आवास ।
 पस्तित्व ।
 स्थिर = का०, ५७, १२४, २४८, २६२,
 [वि०] (स०) २८५ । प्रे०, २६ ।
 निश्चित । ठहरा हुआ । निश्चल, शांत ।
 स्थूल = का०, १६० ।
 [वि०] (स०) मोटा । मोटी । बिना परिश्रम के समझ
 में आने वाला । इन्द्रियग्राह्य पदार्थ ।
 स्नात = वा० कु०, १६, ३१, १०० । का०,
 [वि०] (स०) १२ । चि०, १८६ ।
 नहाना हुआ । जिसके सम्पूर्ण अङ्ग पर
 कोई प्रभाव पड़ा हो ।
 स्नान = भा० २४ ।
 [स०पुं०] (स०) स्वच्छ अथवा शीतल करने के लिए
 सारा शरीर जल से धोना या जल
 राशि से प्रवेश करना । नहाना । धूप,
 वायु आदि के सामने इस प्रकार बठना,
 लेटना या साना कि सारे शरीर पर
 उसका पूर्ण प्रभाव पड़े ।
 स्निघ = का०, १४२, २४१ । प्रे०, १२, १८ ।
 [वि०] (स०) नरम, २५ । ल०, १२, २३ ।
 चिकना । जिसमें स्नेह भरा हो ।
 स्निग्धालोक = ल०, ७३ ।
 [स०पुं०] (स०) प्रेम का प्रकाश । स्नेह की आभा ।
 स्नेह = भा०, २८, ६८ । का०, १, २५ । वा०
 [स०पुं०] (स०) कु०, ७८ । का०, ८१, ११६, १४८,
 १७६, १८०, १८६, २०८, २२६,
 २२८, २४३, २४४ । चि०, १४७ ।
 प्रे०, १६ । ल०, ४१, ५८ ।
 मोह । प्यार । स्नेह । मुदुलता । चिक
 नाई । नेह ।
 स्नेहमयी-सी = का०, २२१ ।
 [वि०] (स०) स्नेहभरी के समान ।

स्नेह सवल = का०, ८८ ।
 [स०पुं०] (स०) प्रेम का आधार ।
 स्नेह सहित = प्रे०, १० ।
 [स०पुं०] (वि०) स्नेह के साथ । प्रेम के सहित ।
 स्नेह-सा = वा०, ८६ ।
 [वि०] (हि०) प्रेम के सदृश ।
 स्नेहाविगन = ल०, २६ ।
 [स०पुं०] (स०) स्नेह से गले मिलना ।
 स्पदन = का०, १६, ३४, १६१, १६४, २१५,
 [स०पुं०] (स०) २५२ । ल०, २८ ।
 कपन, धीरे धीरे कपना । स्फुरण । हृदय
 या अंग का कपन ।
 स्पदन हीन = वा० कु०, १५ । ल०, १९ ।
 [वि०] (स०) स्फुरण रहित । कपहीन ।
 स्पन्दमान = चि०, १३२ ।
 [वि०] (स०) स्तब्ध करता हुआ । हृत्प में गुदगुदी
 पैदा करना हुआ ।
 स्पदित = वा०, ५४, २५४, २६३ ।
 [वि०] (स०) बाँपता या कड़कता हुआ, स्फुरित ।
 स्पर्धा = का०, १६, २ । प्रे०, १७ ।
 [स०स्त्री०] (स०) द्वेष, डाह । सप, वैभवस्थ । होड़,
 बढाऊपरी ।
 स्पर्श = भा०, ५४ । वा० कु०, ४१, ५५,
 [स०पुं०] (स०) १०० । वा०, १२, ५७, ६७, ६६,
 ९४, २१५, २६२, २८६, २६१ ।
 ल०, १६, ६४ । प्रे०, ८ ।
 छूना । छू जाना । दबने या का छू जाने
 का अनुभव ।
 स्पष्ट = वा० कु०, ३०, १०२ । वा०, ११६,
 [वि०] (स०) १६८, १८६, २४९ । प्रे०, ६ ।
 साफ । सुव्यक्त । साफ समझ में आने
 और दिखाई देनेवाला ।
 स्पृहणीय = वा०, २७, ८८ ।
 [वि०] (स०) बहुत अच्छा । जिसकी कामना करना
 उचित या योग्य हो ।
 स्फटिकशिला आसीन = वा० कु०, ६५ ।
 [वि०] (हि०) स्फटिक शिला पर विराजमान (स्फटिक
 एक प्रकार का सफेद पारदर्शी पत्थर है,

जो बक की तरह श्वेत और बिना होता है) ।

स्कीत [वि०] (सं०) = बा० कु०, २६ । का०, ७ । कला हुआ । समृद्ध । फूला हुआ । बढ़ा हुआ । वद्धित ।

स्फुट [वि०] (सं०) = बि०, १३३ । फुकर । सस्फट, प्रवृत्, व्यक्त । विवसित । खिलना हुआ ।

स्फुलिंग [सं०] (सं०) = बा०, १६० । विनगारी । स्फूर्ति = का० ४७ ६३ । ४० । बि०, १४१ । १४४ । सं० ६० ।

स्फोट [सं०] (सं०) = का० ५ । तेजी । फुटने होना । उत्तजना । स्फोट पड़ना, विस्फोट ।

स्मरण [सं०] (सं०) = का० कु०, ६०, ८१ ६७ । बा०, १७, २०, २४० । सं० १५ । प्र०, ७, ६ ।

स्मशानवासी = प्र० २० ।

[वि०] (सं०) शिव का एक नमः स्मशान पर निवास करनेवाले मरपट पर रहनेवाले । मृत प्रसं भादि का सूचक ।

स्मित [सं०] (सं०) = बा०, कु० २१ । बा०, ६८ । सं०, २२, ६५ । १६६ । ल०, ३४ । मद मुस्कराहट । धामी मुसकान ।

स्मित रेखा = बा०, १०६ ।

[सं०] (सं०) मद हास की रेखा ।

स्मितलतिका प्रवाल = बा० १५२ ।

[वि०] (सं०) मद हँसी जिसमें लाल धमर भूँगे की लतिका क समान सुषोभित होते हैं ।

स्मिति [वि०] (सं०) = का०, १७ १६६, १७८ २२१, २२४, २५६, २७३, २९० । ल०, २८ । हसी । मुसकान ।

स्मृति [सं०] (सं०) = बा० १४, ३५ ७४ ७५ । का० कु०, ६६, ७३, ७७, ११० । का०, २४, ७०, १२, ११५, ११७, १६०, १७५,

स्वचेतन = का० १८२ । [सं०] (सं०) धयनी चेतना । आत्मवृत्ता । आत्म-स्थित चेतनात्मक सत्ता ।

१७८, १७९ । बि०, १८१ । सं०, ३१, ३३, ३५ । प्र०, २३ । ल०, ११, १३, ४४ ।

स्मरण । याद । नीति तथा दर्शन आदि का विवचना तबको धर्म माना ।

[स्मृति]—तब प्रथम इडु बना १, किरला १२, धापा १६६७ बिजयो में प्रनागिन कवक प्रसंग का एष घण ।

स्मृति पथ = बा० ३६ । स्मरण कथा माग ।

[सं०] (सं०) स्मृति रेखा = बा०, २२ ।

[सं०] (सं०) स्मरण चिह्न । यात्रापर । स्मृति की रेखा ।

स्मृतियाँ = बा० ६ ।

[सं०] (सं०) स्मरण । यादगारा । नीति तथा दान आदि का विवेचना नवषा धमशास्त्र ।

स्मृति सी = बा०, १ । स्मरण सहाय ।

स्मृति सौरभ = सं०, ४३ ।

[सं०] (सं०) स्मरण रूपी सुगंध । पात्र का सुगंध ।

स्मृति [वि०] (सं०) स्मृत । स्मिति ।

सुखा = बा० कु०, ११४ ।

[सं०] (सं०) लकडा की वह बलछी जिससे हथकने के समय धमि म धी भादि की आहूति दी जाती है ।

स्रोत = बा०, १४ । का० कु०, ६६, ११६ ।

[सं०] (सं०) बा०, ४ । सं०, १५, ३६ । म० ४, ८ । धारा, पाना का बहाव । भरना, पानी का सोना । नदी । मूल । उद्गम ।

स्रोतो [सं०] (सं०) = बा० २७० ।

[वि०] (सं०) स्मृत का बहुवचन । दे० 'स्रोत' ।

स्वगत = का० २२८ । धनन म धाया या लाया हुआ । स्वत, अपने भाव ।

स्वचेतन = का० १८२ ।

[सं०] (सं०) धयनी चेतना । आत्मवृत्ता । आत्म-स्थित चेतनात्मक सत्ता ।

स्वच्छ = का० कु०, ६, १३, २६, ३०, ५३ ।
 [वि०] (सं०) ५६, ६६, ६६, १२२, १२६। का०,
 ३०, ३४, ५७, २३३। चि० १,
 २४, १५३। ऋ०, २८, ८६, ६४।
 प्रे०, ४, १२, २४। म०, ४।
 शम। शुद्ध। पावन। निमल। उज्ज्वल।

स्वच्छद = का० कु०, २२। का०, ६६। १६०,
 [वि०] (सं०) २८३। चि०, १, ३४। प्रे०, १७,
 २६।

स्वाधीन। स्वतन्त्र। निरकुश। मनमाना
 घ्राकरण करनेवाला। स्वेच्छाचारी।

स्वच्छद सुमन = का०, ६६।

[सं० पु०] (सं०) स्वच्छदना रूपी सुमन।

स्वच्छ शरीर = का० कु०, १००।

[सं० पु०] (सं०) निर्मल तन।

स्वच्छशीला = का० कु०, ५७।

[वि०] (सं०) सहज निमल रहनेवाली।

स्वच्छसुदर = का० कु०, ४२।

[वि०] (सं०) साक्ष सुधरा।

स्वच्छस्नेह = का०, कु०, ७१।

[सं० पु०] (सं०) पवित्र प्रेम। निमल नेह। निश्छल प्रेम।

स्वच्छस्वच्छद = का०, कु०, ७१।

[वि०] (सं०) निमल उमुक्त। पूण उमुक्त।

स्वजन = का०, १८६, २४६।

[सं० पु०] (सं०) आत्मीय जन। कुटुंबी, भातेदार।

स्वजनों = का० १६४।

[सं० पु०] (हि०) स्वजन का बहुवचन।

स्वतन्त्र = का०, १५४, १६३, १६८।

[वि०] (सं०) स्वाधीन, मुक्त।

स्वतन्त्रता = का०, ६६, १७०। प्रे०, १६।

[सं० वी०] (सं०) स्वाधीनता। स्वच्छदता, निरकुशता।

स्वत्व = का०, १३। का०, १६२, २७२।

[सं० पु०] (सं०) अपनात्व। निजत्व।

स्वदेश = का० कु०, ६०। ल०, ६६।

[सं० पु०] (सं०) निज देश। मातृभूमि।

स्वधम्म = चि०, ६६।

[सं० पु०] (सं०) निज धर्म। अपना धर्म।

स्वप्न = का० कु०, १२५। का०, ८, ७०,

[सं० पु०] (सं०) ७७, १५८, १६६, १८६, २१४, २७३,

२८६। ऋ०, ४१, ८८। प्रे०, १६,

२२। ल०, ११, ७६।

मन में उठी हुई ऊँची कल्पनाएँ।

निद्रा अवस्था में दिखलाई देनेवाले

दृश्य और परिस्थितियाँ।

स्वप्नपथ = का०, ८८।

[सं० पु०] (सं०) स्वप्न का मार्ग। स्वप्न रूपी रास्ता।

स्वप्नमयी = आ०, ६५।

[वि०] (हि०) स्वप्निम। स्वप्न से युक्त।

स्वप्नलोक = का०, ३५। चि०, १४। ऋ०, ५४।

[सं० पु०] (सं०) कल्पना जगत्।

स्वप्नसदृश = प्रे०, १६, १८।

[वि०] (सं०) स्वप्नसमान। सपने की तरह।

स्वप्नसवेरे = आ०, १७।

[सं० पु०] (हि०) भोर का सपना। आशापूर्णा स्वप्न।

स्वप्न-सी = का०, २८। का०, ८३।

[वि०] (हि०) सपने के सदृश।

स्वप्नो = का०, ६७। ल०, १२।

[सं० पु०] (हि०) दे० 'स्वप्न' (बहुवचन)।

स्वभाव = का०, २६४। चि०, ५७, ६१, ऋ०

[सं० पु०] (सं०) ध०।

मनोवृत्ति। भावत। मिजाज। प्रवृत्ति

मुख्य गुण।

स्वभाव मकरद = चि०, १७७।

[सं० पु०] (सं०) स्वभावरूपी पराग।

स्वभाववश = का० कु०, ६४।

[सं० पु०] (सं०) स्वाभाविक गति से भावत के वशीभू

होकर।

स्वय = आ०, २४, ६८। का०, ६, ३०। का०

[अव्य०] (हि०) कु०, ८१, ६२, ६६, ११४। का०, ६

१६, ६७, ६८, ८१, ८६, ६२, ६३

११६, ११७, १२६, १६०, १६१, १६२

१७२, १८४, १८५, २०६, २०६, २४

२५२, २७२। ऋ० ४०, ४५, प्रे०

२४। म०, ८, १२, ल०, १७, १८

८६।

सुद। अपने प्राप।

स्वर = आ०, ७, २६। का०, १०। का० कु०

[सं० पु०] (सं०) १०, ४५, ४८, ११८। का० १२, २

६३, ६८, १५०, १७६, १७८, १८

१८६, १८७, १८८, १८९, १९०, १९१, १९२, १९३, १९४, १९५, १९६, १९७, १९८, १९९, २००, २०१, २०२, २०३, २०४, २०५, २०६, २०७, २०८, २०९, २१०, २११, २१२, २१३, २१४, २१५, २१६, २१७, २१८, २१९, २२०, २२१, २२२, २२३, २२४, २२५, २२६, २२७, २२८, २२९, २३०, २३१, २३२, २३३, २३४, २३५, २३६, २३७, २३८, २३९, २४०, २४१, २४२, २४३, २४४, २४५, २४६, २४७, २४८, २४९, २५०, २५१, २५२, २५३, २५४, २५५, २५६, २५७, २५८, २५९, २६०, २६१, २६२, २६३, २६४, २६५, २६६, २६७, २६८, २६९, २७०, २७१, २७२, २७३, २७४, २७५, २७६, २७७, २७८, २७९, २८०, २८१, २८२, २८३, २८४, २८५, २८६, २८७, २८८, २८९, २९०, २९१, २९२, २९३, २९४, २९५, २९६, २९७, २९८, २९९, ३००, ३०१, ३०२, ३०३, ३०४, ३०५, ३०६, ३०७, ३०८, ३०९, ३१०, ३११, ३१२, ३१३, ३१४, ३१५, ३१६, ३१७, ३१८, ३१९, ३२०, ३२१, ३२२, ३२३, ३२४, ३२५, ३२६, ३२७, ३२८, ३२९, ३३०, ३३१, ३३२, ३३३, ३३४, ३३५, ३३६, ३३७, ३३८, ३३९, ३४०, ३४१, ३४२, ३४३, ३४४, ३४५, ३४६, ३४७, ३४८, ३४९, ३५०, ३५१, ३५२, ३५३, ३५४, ३५५, ३५६, ३५७, ३५८, ३५९, ३६०, ३६१, ३६२, ३६३, ३६४, ३६५, ३६६, ३६७, ३६८, ३६९, ३७०, ३७१, ३७२, ३७३, ३७४, ३७५, ३७६, ३७७, ३७८, ३७९, ३८०, ३८१, ३८२, ३८३, ३८४, ३८५, ३८६, ३८७, ३८८, ३८९, ३९०, ३९१, ३९२, ३९३, ३९४, ३९५, ३९६, ३९७, ३९८, ३९९, ४००, ४०१, ४०२, ४०३, ४०४, ४०५, ४०६, ४०७, ४०८, ४०९, ४१०, ४११, ४१२, ४१३, ४१४, ४१५, ४१६, ४१७, ४१८, ४१९, ४२०, ४२१, ४२२, ४२३, ४२४, ४२५, ४२६, ४२७, ४२८, ४२९, ४३०, ४३१, ४३२, ४३३, ४३४, ४३५, ४३६, ४३७, ४३८, ४३९, ४४०, ४४१, ४४२, ४४३, ४४४, ४४५, ४४६, ४४७, ४४८, ४४९, ४५०, ४५१, ४५२, ४५३, ४५४, ४५५, ४५६, ४५७, ४५८, ४५९, ४६०, ४६१, ४६२, ४६३, ४६४, ४६५, ४६६, ४६७, ४६८, ४६९, ४७०, ४७१, ४७२, ४७३, ४७४, ४७५, ४७६, ४७७, ४७८, ४७९, ४८०, ४८१, ४८२, ४८३, ४८४, ४८५, ४८६, ४८७, ४८८, ४८९, ४९०, ४९१, ४९२, ४९३, ४९४, ४९५, ४९६, ४९७, ४९८, ४९९, ५००, ५०१, ५०२, ५०३, ५०४, ५०५, ५०६, ५०७, ५०८, ५०९, ५१०, ५११, ५१२, ५१३, ५१४, ५१५, ५१६, ५१७, ५१८, ५१९, ५२०, ५२१, ५२२, ५२३, ५२४, ५२५, ५२६, ५२७, ५२८, ५२९, ५३०, ५३१, ५३२, ५३३, ५३४, ५३५, ५३६, ५३७, ५३८, ५३९, ५४०, ५४१, ५४२, ५४३, ५४४, ५४५, ५४६, ५४७, ५४८, ५४९, ५५०, ५५१, ५५२, ५५३, ५५४, ५५५, ५५६, ५५७, ५५८, ५५९, ५६०, ५६१, ५६२, ५६३, ५६४, ५६५, ५६६, ५६७, ५६८, ५६९, ५७०, ५७१, ५७२, ५७३, ५७४, ५७५, ५७६, ५७७, ५७८, ५७९, ५८०, ५८१, ५८२, ५८३, ५८४, ५८५, ५८६, ५८७, ५८८, ५८९, ५९०, ५९१, ५९२, ५९३, ५९४, ५९५, ५९६, ५९७, ५९८, ५९९, ६००, ६०१, ६०२, ६०३, ६०४, ६०५, ६०६, ६०७, ६०८, ६०९, ६१०, ६११, ६१२, ६१३, ६१४, ६१५, ६१६, ६१७, ६१८, ६१९, ६२०, ६२१, ६२२, ६२३, ६२४, ६२५, ६२६, ६२७, ६२८, ६२९, ६३०, ६३१, ६३२, ६३३, ६३४, ६३५, ६३६, ६३७, ६३८, ६३९, ६४०, ६४१, ६४२, ६४३, ६४४, ६४५, ६४६, ६४७, ६४८, ६४९, ६५०, ६५१, ६५२, ६५३, ६५४, ६५५, ६५६, ६५७, ६५८, ६५९, ६६०, ६६१, ६६२, ६६३, ६६४, ६६५, ६६६, ६६७, ६६८, ६६९, ६७०, ६७१, ६७२, ६७३, ६७४, ६७५, ६७६, ६७७, ६७८, ६७९, ६८०, ६८१, ६८२, ६८३, ६८४, ६८५, ६८६, ६८७, ६८८, ६८९, ६९०, ६९१, ६९२, ६९३, ६९४, ६९५, ६९६, ६९७, ६९८, ६९९, ७००, ७०१, ७०२, ७०३, ७०४, ७०५, ७०६, ७०७, ७०८, ७०९, ७१०, ७११, ७१२, ७१३, ७१४, ७१५, ७१६, ७१७, ७१८, ७१९, ७२०, ७२१, ७२२, ७२३, ७२४, ७२५, ७२६, ७२७, ७२८, ७२९, ७३०, ७३१, ७३२, ७३३, ७३४, ७३५, ७३६, ७३७, ७३८, ७३९, ७४०, ७४१, ७४२, ७४३, ७४४, ७४५, ७४६, ७४७, ७४८, ७४९, ७५०, ७५१, ७५२, ७५३, ७५४, ७५५, ७५६, ७५७, ७५८, ७५९, ७६०, ७६१, ७६२, ७६३, ७६४, ७६५, ७६६, ७६७, ७६८, ७६९, ७७०, ७७१, ७७२, ७७३, ७७४, ७७५, ७७६, ७७७, ७७८, ७७९, ७८०, ७८१, ७८२, ७८३, ७८४, ७८५, ७८६, ७८७, ७८८, ७८९, ७९०, ७९१, ७९२, ७९३, ७९४, ७९५, ७९६, ७९७, ७९८, ७९९, ८००, ८०१, ८०२, ८०३, ८०४, ८०५, ८०६, ८०७, ८०८, ८०९, ८१०, ८११, ८१२, ८१३, ८१४, ८१५, ८१६, ८१७, ८१८, ८१९, ८२०, ८२१, ८२२, ८२३, ८२४, ८२५, ८२६, ८२७, ८२८, ८२९, ८३०, ८३१, ८३२, ८३३, ८३४, ८३५, ८३६, ८३७, ८३८, ८३९, ८४०, ८४१, ८४२, ८४३, ८४४, ८४५, ८४६, ८४७, ८४८, ८४९, ८५०, ८५१, ८५२, ८५३, ८५४, ८५५, ८५६, ८५७, ८५८, ८५९, ८६०, ८६१, ८६२, ८६३, ८६४, ८६५, ८६६, ८६७, ८६८, ८६९, ८७०, ८७१, ८७२, ८७३, ८७४, ८७५, ८७६, ८७७, ८७८, ८७९, ८८०, ८८१, ८८२, ८८३, ८८४, ८८५, ८८६, ८८७, ८८८, ८८९, ८९०, ८९१, ८९२, ८९३, ८९४, ८९५, ८९६, ८९७, ८९८, ८९९, ९००, ९०१, ९०२, ९०३, ९०४, ९०५, ९०६, ९०७, ९०८, ९०९, ९१०, ९११, ९१२, ९१३, ९१४, ९१५, ९१६, ९१७, ९१८, ९१९, ९२०, ९२१, ९२२, ९२३, ९२४, ९२५, ९२६, ९२७, ९२८, ९२९, ९३०, ९३१, ९३२, ९३३, ९३४, ९३५, ९३६, ९३७, ९३८, ९३९, ९४०, ९४१, ९४२, ९४३, ९४४, ९४५, ९४६, ९४७, ९४८, ९४९, ९५०, ९५१, ९५२, ९५३, ९५४, ९५५, ९५६, ९५७, ९५८, ९५९, ९६०, ९६१, ९६२, ९६३, ९६४, ९६५, ९६६, ९६७, ९६८, ९६९, ९७०, ९७१, ९७२, ९७३, ९७४, ९७५, ९७६, ९७७, ९७८, ९७९, ९८०, ९८१, ९८२, ९८३, ९८४, ९८५, ९८६, ९८७, ९८८, ९८९, ९९०, ९९१, ९९२, ९९३, ९९४, ९९५, ९९६, ९९७, ९९८, ९९९, १००, १०१, १०२, १०३, १०४, १०५, १०६, १०७, १०८, १०९, ११०, १११, ११२, ११३, ११४, ११५, ११६, ११७, ११८, ११९, १२०, १२१, १२२, १२३, १२४, १२५, १२६, १२७, १२८, १२९, १३०, १३१, १३२, १३३, १३४, १३५, १३६, १३७, १३८, १३९, १४०, १४१, १४२, १४३, १४४, १४५, १४६, १४७, १४८, १४९, १५०, १५१, १५२, १५३, १५४, १५५, १५६, १५७, १५८, १५९, १६०, १६१, १६२, १६३, १६४, १६५, १६६, १६७, १६८, १६९, १७०, १७१, १७२, १७३, १७४, १७५, १७६, १७७, १७८, १७९, १८०, १८१, १८२, १८३, १८४, १८५, १८६, १८७, १८८, १८९, १९०, १९१, १९२, १९३, १९४, १९५, १९६, १९७, १९८, १९९, २००, २०१, २०२, २०३, २०४, २०५, २०६, २०७, २०८, २०९, २१०, २११, २१२, २१३, २१४, २१५, २१६, २१७, २१८, २१९, २२०, २२१, २२२, २२३, २२४, २२५, २२६, २२७, २२८, २२९, २३०, २३१,

१८४, १६३, २२४, २४०, २५२, २६०,
२६१, २८६। चि०, ५८, १४७।
प्र०, ४, १०। ल०, २७, ३३, ४५।
धनि, धायज, बोली।

स्वरलहरी = का० कु०, ८१। का०, १८२, २१८।
[सं० श्री०] (सं०) ऋ०, ५५। ल०, २६।

ऊँचे-नीचे स्वरो की वह लहर या क्रम
जो प्रायः संगीत आदि के लिये उत्पन्न
की जाती है।

स्वरूप = का०, १६६, २४३, २५४। चि० ७१।
[सं० पु०] (सं०) प्र०, १६, २४। म०, १४।
व्यक्ति, पदार्थ, वाय आदि की आकृति,
फलक, मूर्ति, चित्र।

स्वरो = का०, १७८।
[सं० पु०] (सं०) स्वर का बहुवचन।
स्वर्गगा = भा०, १७, ५४, ५६। का०, कु०, ६६।
[सं० श्री०] (सं०) का०, १४२।
आकाशमया।

स्वग = भा०, ५६। का०, ११६, १२७, १२८।
[सं० पु०] (सं०) १३१ ३६२, १६२। चि०, ६८।
ऋ०, २६। प्र०, ८, २४। ल० १२।
सकुठ। देवधाम। पुण्य आत्माओं का
निवास स्वतः तीसरा लोक। इन्द्र
लोक।

स्वगमाहि = चि० ६८।
[सं० पु०] (सं०) स्वग म।
स्वर्गीय = का० कु०, १६, १२०। का०, १४८।
[वि०] [सं०] ऋ, १६। ल० ३२।
स्वग में रहनेवाले। भूत। स्वर्गसवधी।

स्वर्गीयभाव = का० कु०, १०३।
[सं० पु०] (सं०) ईश्वरीय भावना। अत्यंत पवित्र एवं
आपणक भावना।

स्वर्गीया सुखमा = चि०, ७३।
[सं० श्री०] (सं० भा०) स्वर्गीय सुख। सौंदर्य। अपरिमित
आनंद। आलीशान आनंद।

स्वण = का०, २४७। ल० ७१, ७५।
[सं० पु०] (सं०) सोना। सुवर्ण। वचन। धतूरा।
स्वणनश = का० १८१।
[सं० पु०] (सं०) सोने का चट्टा। सुवर्ण घट।

स्वण किरण सी = का०, २२८।
[वि०] (सं०) सुनहली किरण के समान।
स्वण किरन = का०, ८१।
[सं० श्री०] (हि०) सुनहरी किरण। वनक किरण।

स्वणत्तचित = का०, १७।
[वि०] (सं०) स्वर्ण का बना हुआ। स्वणजटिल।

स्वणघट = ऋ० ५९।
[सं० पु०] (सं०) स्वर्ण बल्लभ सोने का घटा।
स्वण धन = चि०, ४८।
[सं० पु०] (सं०) सोने का ताज। सोने का धाता।
स्वण जल = का० कु०, ८।
[सं० पु०] (सं०) सुनहला पानी। सोने का पानी।

स्वणमय = ऋ०, ५८।
[वि०] (सं०) सोने से युक्त। स्वर्णिम। साने की।
स्वणमयी = ल०, ७०।
[वि०] (सं०) 'स्वणमय' का स्त्रीलिङ्ग।

स्वण विलास = ऋ०, ६६।
[वि०] (सं०) धन का वासनामय आनंद।
स्वण शालियो = का०, २८।
[सं० श्री०] (हि०) धान की सुनहली चालें।
स्वण शतदल = भा० ६८।
[सं० पु०] (सं०) स्वर्णिम जलज। सोने का कमल।
स्वण-सा = का०, १६०।
[वि०] (हि०) सोने के समान। वनन के समान।

स्वणसृष्टि = भा० ६६।
[सं० पु०] (सं०) क्षणलोक।
स्वर्णाक्षर = म०, ९।
[सं० पु०] (सं०) सोने के अक्षर। (मुद्रा) सदा चमकता
हुआ लेख अमर लेख।

स्ववश = का०, १६७, १८३।
[सं० पु०] (सं०) अपने वश में या अधिकार।
स्वस्थ = का० कु०, ४, १०१। का०, ४ ३१,
८७, ११२, १२६, २१९।
[वि०] (हि०) आरोग्य। नीरोग। तदुत्तर। मला
चगा।

स्वांग = ऋ०, ६४।
[सं० पु०] (हि०) किसी के अनुरूप धारण किया जाने
वाला बनावट। वप या रप। वश।
नकल। आदंबर।

स्वागत = का० कु०, २६, ३०। का०, ११,
[सं० पु०] (सं०) १०२, १६६। चि०, ७२। ल०, ३२।
प्रभिनदन। अग्र्ययना। अग्रयानी।
आदर-सत्कार।

स्वातन्त्र्यमयी = का०, १६१।
[वि०] (सं०) स्वतन्त्र, मुक्तियुक्त।

स्वाती = का०, २२३। ल०, ३१। चि०, १५८।
[सं० जी०] (सं०) एक नक्षत्र का नाम। ज्योतिष के
सत्तार्ईय नक्षत्रों में से पंद्रहवाँ नक्षत्र।

स्वातीकन = का०, २३५।
[सं० जी०] (सं०) स्वाता को बूद।

स्वाती विन्दु = का० कु०, ४३।
[सं० जी०] (सं०) स्वाती नक्षत्र में बरसी हुई जल की बूद।

स्वाद = का० कु०, ३४। प्र०, २३।
[सं० पु०] (सं०) रसजय अनुभव, रसानुभूति। आनन्द।
किसी वस्तु के छाने पीने से जीभ का
होनेवाला अनुभव।

स्वाधिकार = का०, १३६।
[सं० पु०] (सं०) अपना अधिकार, स्वाधीनता, स्वतन्त्रता।

स्वाधीन = का०, १३। म०, १४।
[वि०] (सं०) जो किसी के अधीन न हो। स्वतन्त्र,
प्राजाद।

स्वानुभूति = का० कु०, ९४।
[सं० जी०] (सं०) अपने मन में होनेवाला ज्ञान। अपना
अनुभव, अपना ज्ञान।

स्वाप = का०, २७३।
[सं० पु०] (सं०) निद्रा, नीद। प्रपान।

स्वाभाविकता = का०, ७३।
[सं० जी०] (सं०) स्वभाव से या आप से आप होने का
भाव। प्रकृत, नसंगिकता, शुद्धरतीपन।

स्वामिनि = का०, १६६।
[सं० जी०] (सं०) मालकिन गृहणी।

स्वामी = का० कु०, ८७। का०, १९७। चि०,
[सं० पु०] (सं०) ७४, १६१। म०, ३, १२, १८।
मालिक। पति, शोहर। घर का प्रमुख
व्यक्ति स्वत्वाधिकारी।

स्वायत्त = का०, १।
[वि०] (सं०) जिसपर अपना अधिकार हो। जो
अपने ही अधीन हो।

स्वारथ = चि०, ३६, १७३, १८५।
[सं० पु०] (सं०) अपना लाभ, अपनी भलाई, स्वार्थ।

स्वारथरत्त = चि०, ५७।
[वि०] (सं०) अपनी ही भलाई में लगा रहनेवाला।
स्वार्थी।

स्वाथ = का० कु०, ६३। ११२, ११५। का०,
[सं० पु०] (सं०) १३२। म०, ४१, ७७। प्र०, १०,
१६।
अपना अथवा उद्देश्य, अपना मतनब।

स्वार्थी = चि०, १८६। प्र०, २२०।
[वि०] (सं०) अपना ही अथवा साधनेवाला, अपना ही
मतसब निकालनेवाला, मतलबी,
छुदगर्ज।

स्वार्थी = का०, १६५।
[सं० पु०] (सं०) स्वाथ का बहुवचन।

स्वावलबन = का०, १८२।
[सं० पु०] (सं०) अपने ही शरीर में रहकर अपने ही बल
पर कार्य करना।

स्वास्थ्यकर = म०, २१।
[वि०] (सं०) तंदुरुस्ती बनानेवाला, आरोग्यवधक।

स्वीकार = का०, १८, १६, २३। का० कु०, ११६
[सं० पु०] (सं०) का०, २६।
अपनाने या ग्रहण करने की क्रिया
अंगीकार। मजबूरी।

स्वीकृति = का० १२३, २६८।
[सं० जी०] (सं०) स्वीकार करने का भाव या क्रिया,
अंगीकार, मजबूरी।

स्वेद = का० कु०, २४। का०, १५७। चि०, ५।
[सं० पु०] (सं०) पसीना, अम कण।

स्वेद कण = चि०, २८।
[सं० पु०] (सं०) पसीन की बूद।

ह

हृत् = का०, १३०।
[अ०] (सं०) खेद, शोक या दुःखबोधक शब्द।

हँसना = श्री०, ५ बार। क०, १ बार। का० कु०,
[क्रि०] (हिं०) ६ बार। का०, ४७ बार। चि०, ११
वा०। अ०, ५ बार। म०, १ बार।
ल०, १५ बार।
हाम करना। उपहास करना। मुठ
खोलकर प्रसन्नता प्रकट करने के लिये
हा हा करना।

[हँसी आती है मुझको तभी—सबप्रथम भाषुरा पृष्ठ
२, लै० २, सन् १६२४ मध्या / मे
'कुछ नहीं' शीपक से प्रकाशित तथा
भरना अ संवर्धित। देखिए 'कुछ नहीं'।]

हफनाहफ = चि० ५७।
[स० य०] (प्र० + का०) जवरदस्ती। व्यर्थ।

हजार = चि०, ७२।
[वि०] (का०) बहुत, घनेक। दस सौ।

हजारो = का० कु०, ५।
[वि०] (का०) हजार का बहुवचन।

हट जाना = का० कु०, ७६, १०२। का०, ८६,
[क्रि०] (हिं०) २१६। चि० ६६। प्र०, ९।
सरक जाना। खिसक जाना। न रह
जाना। विचलित हो जाना।

हटना = का० कु० ५ ६। का० २३, २८।
[क्रि०] (हिं०) १३६। म० ४, १२।
सरफना खिसकना। विचलित होना,
न रह जाना।

हठ = का० कु०, ५। का० १६१।
[सं० पु०] (सं०) जिद, दृढ़ प्रतिज्ञा।

हठि = चि०, ६६।
[पूर्व० क्रि०] (प्र० भा०) हठ करके। जिद करके।

हठीले = ल० ६।
[वि०] (हिं०) दृढ़प्रतिज्ञ। जिद्दी। बात के पक्के।

हतचेत = का० २५४।
[वि०] (सं०) बेमुष भवेत् वेहोश।

हत्तचेतन = का० २२८।
[वि०] (सं०) धमुष।

हत्तभाग्य = का० ११। का०, ८८।
[वि०] (सं०) भभाग्या, भाग्यहीन।

हताश = का०, ५२, १/८, १६६, २१४।
[वि०] (सं०) अ० ३३।

जिसरा खाताए षट् हो गई हा, निराश।

हयेली = का० १२७।

[सं० जी०] (सं०) वरतन।

हम = श्री०, ३०, ३१, ३६, १७। का०, १०
[स० य०] (हिं०) ११, १५, १६ २० २५। पा० कु०,

७, १०, २०, ३१, २२, २५, ६१।
का०, ७, ६ २/१, ३२ ७२, ७३,
७४ ६२, ११४ १२७, १२८, १२९,
१३१ १३६ १५७ १६१, १६८,
२२२ २२५, २६०, २६१, २७८,
२७८, २८१। चि० १५, २६, ३१
३३ ५८ ३०, ६१, ६४ ७२, ७३,
७४। अ० ७६।
मैं का बहुवचन।

हमको = श्री०, १७। क०, ११। चि०, ६४
[स० य०] (हिं०) १८६।

मुझका का बहुवचन।

हमहू = चि०, ६५, ७४।
[स० य०] (प्र० भा०) हम भा।

हमारा = श्री० ११, १५ १६, २५ २८, ३०,
[स० य०] (हिं०) ६७। क० १० १२, २० २६।

का० कु० ३१, ३२ ३३ ३६। का०,
१७, १२८, १३१, १३२, १८४, २६७,
१६६, २२८ २६०। चि०, ५०, ६०,
६१ ६४ ६८ ७१, ७३, १५७, १७६,
१८३ १८७। अ०, ५ २६, ३०, ५३,
म०, १२।
मेरा का बहुवचन।

हमारा प्रेमनिधि सुदर सरल है—दो पक्षियों का
अजातशत्रु का गाल जिसमें पद्मावती
का उदयन के प्रति अपने प्रेम का सहज
विश्वास अभिव्यक्त किया है। वह अपने
प्रभ निधि को सुदर और सरल मानती
है। समग्र गल का कोई अंश नहीं है।

[हमारा हृदय—इंद्रु कला ३, किरण १, जनवरी
१९१५ न प्रकाशित। मेरी कलाई मे

जो भाव व्यक्त किए गए हैं वही भाव हम कविता में है। यह कविता किसी सप्रश्न में नहीं तो गई है।]

[हमारे जीवन का उल्लास—अज्ञातशत्रु का गीत। यह कौमल को कुमारी का प्रेमपात है। पुरन टन में उसने केवल यह एक ही गीत गाया है। यह कविता भिन्न पात्र पत्रियों का है।]

[हमारे निबला के बन कहाँ हो—सुदृढ़गुण का गीत। प्रभाव सगान में पृष्ठ ८६ पर सकलित। यह ममत्त्व गान है जिसे स्त्रियाँ पुष्प मिल कर गाते हैं। भगवान् से हममें प्राथमा और मानृगत का गई है कि हृणा स आण मिल। स्त्रिया कहती हैं कि हम निबला के जल और हम बीना के सवन, तुम कहाँ हो? पुष्प कहते हैं भगवान् तुम सचमुच नहीं हो, केवल तुम्हारा नाम हा नाम है? क्या केवल यह सुनने भर का है कि तुम सर्वत्र हो? फिर स्त्रिया कहती हैं सुना था कि जब अन्तो ने तुम्हें पुकारा तभी तुमने उनकी पुकार सुना, यह विश्वास हम को भी दा। सचमुच इस दुनिम न तुम कहाँ हो? मानृगुण कहता है हे प्रभा विश्वास द कर अपना बना ला। चाहे जहाँ भा हा हम स्वच्छन्द विचरण करें, यह शक्ति हम दा।]

[हमारे वक्ष में वन कर हृदय अज्ञातशत्रु का गात। इस गात में उदयन अरुण प्रेम के प्रति आगवा का विश्वास दितान का यत्न करता है। यह गीत चार पंक्ति का है। हमारी छाती में हृदय वन कर तुम्हारा सौंदर्य समा जायगा और स्वयं एकाकार हो कर तुम्हारा छवि का रसीला गान गाएगा। फिर हमारी तुम्हारा हृदय में चेतना ही अन्तर्गत रह पाएगा और सारे ससार में अन्तर्गत यह हृदय तुम्हारी पूजा करेगा।]

हमी = का० कु०, ३३। का०, २८७।
[सव०]।(हि०) मैं भी का बहुवचन।

हमे = का०, १३, २६। का०, २२०। क०,
[सव०]।(हि०) ३०। म०, ५।
हमकी।
हमेश = चि०, ६८।
[अ०य०](ब०भा०) मदा, सदव।
हय = चि०, १८१। म०, ६। ल०, ३२।
[स० पु०] (स०) इद्र। घोड़ा।
हयन = चि०, ११।
[स० पु०] (ब०भा०) हय का बहुवचन, घोड़ा।
हय पद-वज्र = म०, २।
[स० पु०] (हि०) घोड़े के वज्र के समान परा में।
हर = का० कु०, २६। का०, २४४।
[वि०] (स०) हरण करनेवाला। प्रत्येक। शिव।
हर एक = का० कु०, ६, ६१।
[वि०] (का०) एक एक, प्रत्येक।
हरखत = चि० ६६, ७०, १०।
[त्रि०] (ब० भा०) प्रप न हाता है।
हरखात्रो = चि०, १८४।
[त्रि०] (ब० भा०) प्रमत्त करो।
हरखाय = चि०, १५६।
[पू०य० क्रि०] (ब० भा०) प्रसन्न हाकर।
हरखावा = चि०, १५७।
[क्रि०] (ब० भा०) प्रसन्न हुआ।
हरजार्ड = चि०, १६३, १८३।
[वि०] (का०) आचारा। हर जगह घूमने वाला।
[की०] (का०) यमिचारिणा स्त्री। वधवा।
हरण = चि०, ६७, १०७।
[स० पु०] (स०) छीलना, छूटना। मिटाना, नाश।
हरते = का०, ८२।
[क्रि०] (हि०) मिटाते।
हरने = का० कु०, ८। ल०, १३।
[अ०य०] (हि०) मिटाने के लिए।
हर्म = म०, ३।
[स० पु०] (अ०) जनानखाना, अत पुर।
हरमे = ल०, ७७।
[स० स्त्री०] (अ०) खेल स्त्रिया, विवाहिता स्त्रियाँ।
हरयाली = का०, १००।
[स० स्त्री०] (हि०) दे० 'हरियाली'।
हर लेना = का०, २४४।
[त्रि०] (हि०) दे० 'हरना'।
हरपायो = चि०, ४८, ७३।
[क्रि०] (ब० भा०) प्रसन्न हुआ।

हरपावत

हरपावत = चि०, २६।

[क्रि०](प्र०भा०) प्रसन्न करता है।

हरपाहि = चि०, २२।

[क्रि०](प्र०भा०) प्रसन्न होत हैं।

हरपित = चि०, ६२।

[वि०](प्र०भा०) मानदित।

हरपी = चि०, ५६।

[क्रि०](प्र०भा०) प्रसन्न हुई।

हरस = चि०, १८१।

[सं० पु०](प्र०भा०) २० 'हर्य'।

हर हर = चि०, ६५।

[वि०](हि०) दूमीमार, हरहराती हुई।

हरा = का० कु०, १०१। का० १६१, १८२,

[वि०](हि०) १६१, २२३। म०, ५०।

प्रसन्न। ताजा। हरे रंग का।

हरि = चि० १५२, १८४।

[सं० पु०](सं०) शिव, विष्णु वृष्ण। मार्ग। बन्दर।

[पूर्व क्रि०](हि०) हरण कर।

हरिचद = चि०, १६५।

[सं० पु०](प्र०भा०) हरिश्चन्द्र।

हरिचदन = का० कु०, १०७।

[सं० पु०](सं०) एक प्रकार का चदन। चीन्हा।

हरिचन्द्रादि = चि० ४७।

[सं० पु०](सं०) शिव, चन्द्रमा आदि।

हरिण = का० कु०, ७२।

[सं० पु०](सं०) हिरण।

हरित = का० कु०, ३। का०, १७५, २८१।

[वि०](सं०) चि०, १५६, १५७। म०, १६, २३,

७१, १०, १५, २०।

मानदित। हरा।

[हरित वन नुसुमिा है द्रुम वृद्ध—सप्तप्रथम 'मसताप'

मोपन म मापुग वृष्ट २, लंङ २,

सन् ११२४, सस्या २ म प्रनाशित

घोर मरणा में सकलित। दनिए

'मसताप'।]

हरियाली = म०, ६२।

[सं० पु०](हि०) २० 'हरियाली'।

हरियानिन = चि०, ७०।

[सं० पु०](प्र०भा०) २० 'हरियालियों'।

हरियालियों = का० कु०, ५३।

[सं० जी०](हि०) हरियाली का बहुवचन। हरे भरे भूमि

रखे।

हरियाली = का०, १७। का०, कु०, ५२। का०,

[सं० जी०](हि०) २२३, २५७ २८१, २८३, २८५।

चि०, २८, ७०। म०, ३६। म०, २।

हरे भरे पेठ पीवों का विस्तार। हरापन,

हरीतिमा।

हरिश्चन्द्र = का०, ३१।

[सं० पु०](सं०) भूयवश के प्रतापी और सत्यनिष्ठ

एक राजा का नाम।

हरिश्चन्द्रादि = का०, १६०, २२५। प्र०, १४।

[सं० पु०](हि०) हरिश्चन्द्र वर्गह।

हरिहै = चि०, १८५।

[क्रि०](प्र०भा०) हरेगा।

हरिहो = चि०, १८५।

[क्रि०](प्र०भा०) हरेगा।

हरी = चि०, ११, १५१, १६८।

[सं० पु०](प्र०भा०) २० 'हरि'

[वि०] हरित।

हरी भरी = का० २८५, प्र०, १५, २२।

[वि०](हि०)

हरा भरा, हरियाली स पूछ।

हरे = का० ८। का० कु० ३५, ५५ चि०, ११।

[वि०](हि०) प्र०, १।

हरा का बहुवचन।

हरे-हरे = का० कु० २५। प्र० ३। म०, २।

[वि०](हि०) हरे-हरे रंग के। हरा का बहुवचन।

हृप = का० कु०, १२६। का०, १३०, २३५।

[सं० पु०](सं०) चि०, १५३। प्र०, २३। म०, ६।

प्रमत्तता, मानन, खुशा।

हृप-विपाद = चि०, ५६।

[सं० पु०](सं०) प्रमत्तता और मोह।

हृप-शोर = का०, २२७।

[सं० पु०](सं०) प्रमत्तता और विपाद।

हन = का० १८१।

म० पु०](सं०) भूमि वातने का एक प्रविद्ध उपकरण।

हन्ना = का०, १४३।

[वि०](सं०) = छाया। माझा। कम वजनी।

हलकासा = का०, ६८ ।

[वि०] (हि०) ओछा सा ।

हलकी = का०, ११२, १८०, २१५, २१६ ।

[वि०] (हि०) ल०, ६६ ।

हलका वा छोनिग ।

हलकी सी = का०, १०३ । ऋ०, ४८ ।

[वि०] (स०) ओछा सा ।

हलचल = का०, ५, १८, २४, ५०, १६६, १८५,

[स० जी०] (स०) २२१ । ऋ०, १७ ।

सलबली, तहनका, त्राति ।

हलाहल = का०, १३, २६५ । ऋ० ४६

[स० पु०] (पु०) समुद्र मयन से निकला हुमा भयकर विप । प्रचंड विप ।

हवन = प्र० १६ ।

[स० पु०] (स०) होम ।

हवन-धूम = चि०, ३३ ।

[स० पु०] (प्र० भा०) होम का धुमा ।

हवा = ऋ०, ६४ ।

[स० जी०] (प्र०) वायु, पवन । यश, कीर्ति ।

हविष्य = का०, ७ । चि० १३६ ।

[वि०] (स०) बलि । हवन करने योग्य पार्थ ।

हसी = का० कु०, ३३ ।

[स० जी०] (हि०) हास ।

हस्तगत = का० कु०, ११६ ।

[वि०] (स०) हाथ में आया हुआ, प्राप्त, हासिल ।

हस्ता = चि०, १३२ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) हस्त ।

हहराड = चि०, १५८ ।

[प्रत्य०] (प्र० भा०) हहर कर ।

हा = का० कु०, ३० । का०, २५, ४०, ६६,

[अव्य०] (हि०) ६६, २०८, २३३ । म०, २३ । ल०, ७५ ।

स्वीकृति, समर्थन आदि का बोधक शब्द ।

हाफ = का०, ३६ १६८ ।

[वि० पु०] (हि०) श्रम के भार से जल्दी जल्दी चननेवाली साँस का गति ।

हासी = चि०, ४६, ६३, ७० ।

[वि०] (हि०) हसी ।

हाँ हाँ = का० कु०, २०, १२४ ।

[अव्य०] (हि०) ठीक ठीक ।

हाय = का०, २० । का० कु०, ३४, ५८, १०६,

[स० पु०] (हि०) ११६ । का०, ७८, १४६, १६८,

२०१, २१६, २४८ । ऋ०, ३६, ७२ ।

प्र०, २ । ल०, ७३, ७४ ।

कर, हस्त ।

हाथन = चि०, ८ ।

[स० पु०] (प्र० भा०) हाथा ।

हाथी = का०, ६ । का०, १४२ २२६ । ऋ०,

[स० पु०] (हि०) ४७ । प्र०, १६ । ल०, ५३, ७८ ।

हाथ का बहुवचन ।

हानि = का०, ४५ ५० ।

[स० जी०] (स०) क्षति, नुकसान, बाटा । बुराई ।

हाय = का०, १७ २५ २६ । का० कु०, ४८,

[अव्य०] (हि०) १२१ । चि० ३५, ३६, ५७, १०६,

१७० । ऋ०, ३८, ४८, ५४, ६१ ।

प्र०, १३ । ल०, ७४ ।

बोधक, दुःख आदि का बोधक शब्द ।

हार = का० कु०, १८ । का०, १४ । का०,

[स० जी०] (हि०) ११, ५५, ६६ । चि०, ४८, ७१,

१८७ । ऋ०, ४२, ७४, ६३ । ल०, ७३ ।

विफलता, पराजय ।

[स० पु०] (स०) माला ।

हारना = का० कु०, ११२ । का०, १०४ चि०,

[क्रि०] (हि०) ६६ । ल०, २३ ।

पराजित होना । विफल होना ।

हारी = का० कु०, ३३ । का०, १०४, १०६

[वि०] (हि०) पराजिता । हारी हुई ।

हारो = का० १६ । का० १७१, २०६, २६६ ।

[स० जी०] (हि०) म०, २१, २२ ।

पराजयों, विफलताया ।

[स० पु०] (हि०) मालामाल ।

हाल = का० कु०, ११२ । चि० २३ ।

[स० पु०] (हि०) दशा । परिस्थिति । समाचार । विवरण ।

हाला = ल०, ४७ ।

[स० जी०] (फा०) शराब ।

हास = का०, ३८, ८७, १४२, १५३, १६१,

[स० पु०] (स०) २५४ । चि०, १३३ । ऋ०, २३ ।

म०, १४ । ल०, २५ ।

हँसी । ठट्ठाली । हास्य, हँसने की क्रिया या भाव ।

हासी रेखा = चि०, ६७।

[न० जी०] (ब० भा०) हैसी की रेखा।

हासा = का०, १५। ल०, १४।

[स० पु०] (हि०) हास का बहुवचन। हँसिया।

हाहानार = अ०, ७, ७७। का०, १३, १६४।

[स० पु०] (न०) नास से पत्राकार चाखना चिल्लाना।

हाय हाय करना, कुहराम।

हिडोला = का० कु०, ६६।

[स० पु०] (हि०) फलना। झूठा।

हिडोले = का०, २४६। प्र० १।

[स० पु०] (हि०) झूठा।

हिंदी = चि०, १६४।

[वि०] (का०) हिंदू देश का, भारत का, भारतीय।

[स० जी०] हिंदू देश का भाषा। भारत राष्ट्र की भाषा।

हिम = अ०, ६।

[वि०] (स०) भार वाट करनेवाला।

हिसा = का० १४६, २४८।

[स० पु०] (म०) प्रणाल करनेवाला गिदवाँ, गानक।

हिमा = का० २७। का० १३६, १४४, २६६।

[स० जी०] (स०) दूसर का मारने काटने या पाडा पहुँचाने का वृत्ति।

हिमा मुरत = का० १३६।

[म० य०] (हि०) दूसरा को बट पटवाने में मिलनेवाला घनत्व मुख्य।

हिचन = का० ८८।

[स० जी०] (हि०) मानसिक रुकावट।

हिचनना = का० ४२।

[वि०] (हि०) रुकना, आग्रा पाछा करना।

हिचरी = का०, ७६। का० ८४।

[स० जी०] (हि०) पट या कपड़ा का वायु का कुछ रुक रुक कर गन के संग से बाहर निकलने का शारीरिक काम व्यापार। शोभाशुल प्रदर्शन में निरादमयी शालवायु का रुक रुक कर निकलना वा वायु वाहक।

हिचरी सी = का०, १६०।

[वि०] (हि०) हिचरी के समान। प्रवृत्त।

हित = का०, ४६। का०, १४३, २२२,

[स० पु०] (स०) २०८। चि०, १४६८, १३, १०६, १४३, १८८।

बन्धु, मयल।

हितकर = का०, १२। चि०, ६२।

[वि०] (स०) सामप्रद, बन्धुप्रद।

हिम = का० ३०। का०, १४। का० कु०, ६।

[स० पु०] (स०) का०, ३, २३, २४, ८७, २४४, २४७, २६८, २६२, २६३। चि०, ४। का०, ३८, ६०। प्र०, २४।

पाना, तुपार। चद्रमा।

हिमकणिका = का०, ६५।

[न० जी०] (म०) मोला। तुपारकण।

हिमकन = का० २०६, २८४। का०, १७।

[स० पु०] (हि०) ल०, २४, ३६।

दे० 'हिमकण'।

हिमकर = का० १८, ४२, ५१, ५६। का०,

[स० पु०] (स०) १२३, २४३, २४७। ल०, २६।

शोतक, चद्रमा।

हिम खड = का० कु०, १०५। का० ४८। का० २२।

[स० पु०] (स०) हिमकण। बर्फ का खड या टुकड़ा।

हिमगिरि = का०, २८। का० कु०, १०४, १०५।

[स० पु०] (स०) का०, ३, ३०, ५१, ३१। चि०, ६४, ६६।

बर्फ का पहाड़। हिमालय।

[हिम गिरि के उत्तुंग शिखरपर—तत्पश्चात् 'म' का चिन्ता शायक से प्रकटकर १६२८ में प्रकाशित कामायना का आदि पद्य। देखा कामायना' शीरे 'मन का चिन्ता'।

हिमगिरि से = चि० ७२।

[न० पु०] (ब० भा०) हिमालय के समान।

हिमतल = का० १४५।

[स० पु०] (स०) बर्फ की तल या सह। बर्फीली जमान।

हिमचल = का० ३।

[वि०] (स०) बर्फ का जालदार स्थान।

हिमनग सरिता = का०, १६०।

[स० जी०] (स०) बर्फीला नदी हिमालय से निकली हिन्दु नदी।

हिमलता = का० कु०, १०४।

[स० जी०] (स०) बर्फ का सदा, हिम रूपी सदा।

हिमविंदु सी = का० कु०, ६७। ऋ०, ३५। ल०,

[वि०] (हि०) ७६।

श्रम की वृद्धि के समान।

हिमशिलाओ = का०, १६।

[सं० लो०] (हि०) बर्फ की चट्टानों।

हिमशीतल = का०, २४, १६७।

[वि०] (सं०) हिम के समान ठंडा।

हिमशैल = ल० १५।

[सं० पु०] (सं०) हिमगिरि।

हिम शृंगो = का०, ००।

[सं० पु०] (हि०) बर्फ का चोटियों।

हिमसर = का०, कु०, १०५।

[सं० पु०] (प्र० भा०) बर्फ का तालाब।

हिमाशु = का० कु०, ११०।

[सं० पु०] (सं०) चंद्रमा।

[हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती—अलका
न यह उद्बोधन गीत चंद्रगुप्त में गाया
है। यह युद्धकालिक प्रयाग गीत की
भाति हिंदी का एक ओष्ठम ओजस्वी
गीत है जो प्रसाद संगत में पृष्ठ
११७ पर संकलित है। हिमालय
के उच्च शिखर से प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयंप्रभा स्वतन्त्रता तुंगारा उद्बोधन
कर रही है। हे वीर पुत्री, तुम दृढ़
प्रतिज्ञ और अमर हो, सोच लो पुण्य
का रास्ता प्रशस्त है, उसपर बढ़े चलो।
मातृभूमि के सपूता, तुम्हारी इसमें ही
कीर्ति है कि शत्रु सेना का सागर में
साहसा जवानों, तुम बाढ़व ज्वाला की
भाति चलो। तुम महान् वार हो,
विजयी बना और युद्धपथ पर बढ़ते
चलो, बढ़ते चलो।]

हिमानी = का० १८ १७५, २५७।

[सं० लो०] (सं०) पाला। बर्फ। स्नेहिल।

हिमालय = का०, २६। वि०, ५५।

[सं० पु०] (हि०) भारत के उत्तर में स्थित, ससार का
सबसे ऊँचा पर्वत।

[हिमालय ने आगमन में—स्वपुष्ट म बीरो का
समवेत गान जिसमें भारत की महिमा

वर्णित है। यह बड़ा सुंदर राष्ट्रगान
है और पृष्ठ ६८ ६९ पर प्रसाद संगीत
में संकलित है। हिमालय के प्रागण में
ऊँचा न सवप्रथम जागरण का उपहार
दिया। सूर्य का किरणों का हीरक हार
उसे पहनाया और उसका अभिनंदन
किया। भारत आगा, सारे समार को
जगाने लगा और विश्व में फिर ऐसा
आलोक फैला कि सबन से अधिकार नष्ट
हो गया और सारी सत्तति शान्त रहित
हो गई। सप्तसिंधु में न्यून स्वर में
साम संगीत का गान यहाँ हुआ और
प्रलय से ही हमने सारे ससार का रक्षा
का। दबावि जिस तामी हमारी राष्ट्री
यहाँ के विकास का प्रतीक हैं और
पुरंदर जिस सागा के हतित्व से हमारा
इतिहास लिखा गया है। भगवान् बुद्ध
जो हमारा एक निर्वाचित प्रतिनिधि मान
थे, उन्होंने मागर से भी अधिक बिरतुत
और अथाह सागर पार धम का प्रचार
किया। धर्म का नाम पर जो बलि होती
थी उसे हमने बद दिया। सारे ससार
को हमने आति संदेश दिया और
आनंद का संघ प्रकाश पलाया। इस
देश में लोगों को यह बताया कि धन
का प्रलो की नहीं, धर्म की धारा पर जय
होती है और इस दश के (भगवान् जस)
सम्राट् भी भिक्षु का भाति रहते हैं तथा
धर धर धम कर दया का प्रचार करते
हैं। धर्मों का दान की और चीन को
हम ने धम का दृष्टि दी। हमने स्वयं-
भूमि की शीन का रत्न और सिंधल
का धर्म की नई सृष्टि दी। हमने कभी
किसी से कुछ छीना नहीं और हमारा
देश सदा प्रकृति का पालना रहा। हम
आर्यों की जय भूमि यही रही है। हम
कहीं से दया ही है। प्राचीन वर्गों और
भगवान् हम ने जातियों का उत्थान और
पतन देखा है और सब कुछ खड़े हा

कर हँसते हुए भेला है। हम सो ऐसे
 खीर हैं जो प्रलय में पड़े हुए हैं।
 हम चरित्रवान, वात्सल्यवान, नम्र और
 सपन रहे हैं और हम बात का हमें
 मोरव और मय रहा है कि हम जिसा को
 विप न नहीं देख सकते। हम दान करने
 लिये सचय करते रहे हैं और अतिथि
 को देवता मानते रहे हैं। हमारी भाषा
 में सत्य, हृदय में तेज और प्रतिभा में
 अपार दृढ़ता रहा है। हम वही दिव्य
 गाय सत्त्व हैं। हमारे भीतर वही
 रक्त है, वही साहस है, वषा ही मान है,
 वसी ही भाति है, वनी ही शक्ति है
 और हमारा देश भी वही धर्मों का देश
 है। हमारे हृदय में सदा यह अभिमान
 रहे और सदा यह उल्लास बना रहे कि
 हम जीए सो उसा देश के लिए सदा
 जाएँ और अपने प्यारे भारतवर्ष पर
 हम अपना सब कुछ ब्योधावर कर दें।]

हिमालय शृंग = ल०, ७६।

[सं० पु०] (सं०) हिमालय की चोटा।

हिमालय सा = प्रे, २२।

[नि०] (सं०) हिमालय के समान शीतल, उ नम
 और प्रसिद्ध।

हिय = वि०, पृष्ठ ५ से १८६ तक २८ बार।

[सं० पु०] (सं० भा०) हृदय।

हियपट = वि०, ३४।

[सं० पु०] (हि०) हृदय पटन।

हिये = वि०, ५ पृष्ठ से १७६ पृष्ठ तक ३८ बार।

[सं० पु०] (सं० भा०) हृदय में।

[हिये में कुछ गई—चंद्रलला के विवाह के अवसर पर

विशाल गाय गयी सखियों का गाय।

प्रसाद संगीत में पृष्ठ १४ पर संकलित।

हृदय में ऐसा मधुर सुरकांन कुछ गई

जिसने ऐसा झोली का धार बना

बसाया कि मन लुट गया। मन का

बोझ भी भरना मिट गया और उस में

प्रेम का गान उठा। दा पवित्र हृदय
 मित और दो बरार और एवमाग हो
 गए।]

हिये लाई = वि०, ६३।

[पू० नि०] (१० भा०) हृदय में लार।

हियो = वि०, ११, १५०। १८४।

[सं० पु०] (सं० भा०) हृदय भी।

हिरण्यमय = व० १०।

[वि०] (सं०) मुरहला, सोने का।

हिलना = धा०, २६, ५०। व०, १०। व०

[नि०] (हि०) पु०, ३६, ६८। व०, ११। वि०,
 २६, ५५, ६०, १४७। १७८। १८०,
 २३।

अपने स्थान से कुछ दूर या उपर
 होना। कपिन होना।

हिलकोर = व०, ६०, ११०।

[सं० पु०] (हि०) लहर, तरंग।

हिलाता डुलाता = ल०, ३०।

[क्रि०] (वि०) घुमना फिरना। हिलना।

हिलाता = का० पु०, ४८।

[क्रि०] (हि०) झिनने कि क्रिया का ता।

हिलाती = का० पु०, ३६, ७७।

[क्रि०] (हि०) हिलाता का स्त्री लिंग।

हिलाते = का० पु० ११।

[क्रि०] (हि०) हिलाता हुआ।

हिनामिला = का० पु०, ६५।

[वि०] (हि०) अत्यधिक पारस्पर्य वाला। घनिष्ठ मित्र।

हिलोर = धा०, ८ २८। व०, १४०। वि०,

[सं० जी०] (हि०) १५० १६०। १८०, २८।

तरंग, लहर।

हिलोल = का० १०१।

[सं० पु०] (सं०) मोन, उमग, तरंग।

ही = धा०, ३६, ४८, ७२, ७३। क० १८

[अ०] (हि०) २०, २८, ३०। ल०, ६६, ६८, ६९,
 ७०।

निश्चयात्मकता का बोधक अर्थ।

हीतल = वि०, १७३, १८५।

[सं० पु०] (सं०) हृदय पट। हृदय तल।

हीन = मा०, ५४ । का०, १५, ५६ । चि०,
[वि०] (सं०) १५, ३१, ५३, १७० ।
रहित ।

हीय = चि०, ५० ।
[सं० पु०] (ब्र० भा०) हृदय ।

हीरक = चि०, २३, १६० । ऋ०, ७० ।
[सं० पु०] (सं०) हीरा ।

हीरक पात्र = ऋ०, ५३ ।
[सं० पु०] (सं०) हीरे का बतन ।

हीरक गिरि = का०, २५४ ।
[सं० पु०] (सं०) हीरे का पहाड़ । ऐसा पहाड़ जो देखने
में हीरे सा लगता हो ।

हीरकतार = चि०, २४ ।
[सं० पु०] (हि०) हीरे का तार ।

हीरकाभास = चि०, २१ ।
[सं० पु०] (हि०) हीरे का ग्रामावाला ।

हीरन के = चि०, ७१ ।
[सं० पु०] (ब्र० भा०) हीरे के ।

हीरे = मा०, ३० । वा० २८४ ।
[सं० पु०] (हि०) हीरा का बहुवचन ।

हुकार = वा०, कु०, ४३, १०७, ११४ । का०,
[सं० पु०] (सं०) १८४ १८५, २६७ । म०, ५ ।
गरज, गजन ।

हुकारत = चि०, ५३ ।
[क्रि०] (प्र० भा०) हुकार करते हुए । हुकार करते हैं ।

हुकारो = ल०, ४६ ।
[सं० पु०] (सं०) हुकार का बहुवचन ।

हुआ = मा०, १८, २१, ३८, ५५ । क०, ११
[क्रि०] (हि०) २८, २६ । का०, कु०, १६ ३३, ३४,
५०, ५१ । वा०, १०, पृष्ठ से २७७,
पृष्ठ तक १६ बार । म०, ५, ६ । ल०
१०, ७२, ७३, ७५, ७७, ७९ ।
होना क्रिया का भूतकालिक 'रूप' ।

हुआ सा = का०, ८ पृष्ठ से १६८ तक २० बार ।
[क्रि० वि०] (हि०) ऋ०, ३० । म०, ५ ।
हानि के समान । लगभग समान ।

हुई = का०, १११ । म०, २१, १२ ।
[क्रि०] (हि०) होना क्रिया के भूतकालिक रूप हुआ का
छ गिग ।

हुए = वा०, २१६ । ल०, ४२, ५६, ७७,
[क्रि० वि०] (हि०) ७८, ७९ ।
होने के निकट ।

हुलसाइ कै = चि०, ६ ।
[पुर्व० क्रि०] (ब्र० भा०) प्रसन्न करना ।

हुलसावन = चि० १६१ ।
[महापु०] (ब्र० भा०) प्रसन्न करने की क्रिया ।

हुलसावही = चि०, ६६ ।
[क्रि०] (ब्र० भा०) प्रसन्न करते हैं ।

हुलसी = चि०, १४६ ।
[क्रि०] (ब्र० भा०) प्रसन्न हुए ।

हुलसे = चि०, ५६ ।
[क्रि०] (ब्र० भा०) प्रसन्न हुए ।

हुलास = चि०, ६ ।
[सं० पु०] (ब्र० भा०) आनन्द, प्रसन्नता ।

हुक = ल०, ४२ ।
[सं० जी०] (सं०) हृद की वेदना । पीडा ।

हूजिये = का० ११ ।
[क्रि० वि०] (ब्र० भा०) होइये ।

हूत्तरी = ०७४ ।
[सं० जी०] (सं०) हृदय का तार ।

हूत्तरी भ्रमकार = प्र०, १३, १ ।
[सं० पु०] (हि०) हृदय के तारों की भ्रमकार । भ्रत करण
की मधुर ध्वनि ।

हूत्तल = का०, २४८ ।
[सं० पु०] (सं०) भ्रत करण ।

हूत्पल = वा० कु०, १२० ।
[सं० पु०] (सं०) हृदय का परदा ।

हूत्सर = वा० कु०, ८४ ।
[सं० पु०] (सं०) हृदय रूपी तालाव ।

हृदय = घां०, २०। वा०, कु०, २६ गु० मे
[सं० पु०] (सं०) ६३ गृ० तब १६ बार। वा०, १ गु० मे
२४४ गृ० तब ४३ बार। वि०, १७३
१७७, १८६, १८८। ऋ०, १४, १६
२७। प्र०, ५। म०, १६ २०। ल०
१८, ३१।

मनः। मलेना। दिन। मध्य।

[हृदय वा सोदय—भरना वा गत। मयूनि म एर
स ० क १२२ चीजें भीर एर से एर
मनोहर दृश्य हैं। पर तांत हृदय का
सौंदर्य तेजा है जो धवल चामुनी से भी
उज्ज्वल तथा सयाविर रम्य है।]

[हृदय की सब व्यथाओं की तुहाना—विद्याल
का गीत जो प्रसाद संगीत में गूँठ २३
पर सङ्कलित है। विद्याल का अक्षेपा
के प्रति कथन है कि मेरे हृदय में जो
पीड़ा है बाहे तुम सो सी भिड़की दा
में तुमसे अवश्य प्रबल बरगा। यदि
तुम मुझे बताने नहीं सोगी तो घुस हो
कर तुम्हारे प्रेम की धारा में बहूँगा।
हृदय तो मैंने अपना तुम को दे दिया
है। नहीं, नहीं, तुमने स्वयं ही ले
लिया है, इसलिये मैं तुम्हारा हो
गया हूँ।]

[हृदय के कोने कोने से—विद्याल में नरदेव को प्रार्थना।
यह प्राथना अत्यंत पञ्चाक्षरिण व स्वर मे
मुखरित हुई है। प्रसाद संगीत में गूँठ ४०
पर सङ्कलित। हृदय के कोने कोने से कीमल
मध्यम दीर्घ पञ्चम स्वर मन को न से
उठते हैं। चन्द्रमा स्वाम अविचल राखा
है। कोई भाव नहीं उठता है यद्यपि
बहु निमल है क्योंकि हृदय नहीं रहा।
अब उस देख कर सतीव नहीं होता है।
वह मेवों में छिप कर सा रहा है और
तेजोही हो गया है। इसलिये तुम आओ
तो कुछ अच्छा लगेगा और हृदय का
भाव तुम्हारे स्पर्श से अपनी जड़ता
खो देगा। किंतु सबकुछ धन में लज्जित
है क्योंकि जो कुछ मैंने बुरे वन लिए हैं

उनका वन सब मिल रहा है। सब गुन
में धारित पर परमा का तो तांत में भी
हृदय व का तो का मे तुम्हें पुकार गऊँ।

[हृदय यदि मेरा गूँथ था—२३ वना ५, विद्याल
३ गिरावर १६१७ म गर्ग प्रमय
मचरद विदु क धीगा प्ररगित।
धनित मारन विदु बाना कुमुम म गूँड
६३ पर मरगित।]

[हृदय मे दिया गूँठ दम दम से—४३ वना ५,
विद्याल २, गरगा १८१७ म वन
प्रचम प्ररगित और भ्रमा म विनोद
विदु व धनितन सारगित। देतिर
भरना।]

हृदय अंधेरी मोती = ल०, २६।

[सं० ली०] (हि०) हृदय की अंधेरी कानी। अगम से मरा
हृदय।

हृदय-उदार = वा० कु०, ११६।

[वि०] (सं०) दयालु। उदार हृदयवाला।

हृदय-शत = ऋ०, ६२।

[सं० पु०] (सं०) बागल दिल। दूटा हृदय।

हृदय-ममल = घां०, १२। प्र०, १३।

[म० पु०] (सं०) हृदयवाला ममल।

हृदय-कुमुद = वा०, ३५।

[सं० ली०] (सं०) हृदय की कुँई।

हृदय-गगन = वा० कु०, ७६। वा०, ५ ११५

[सं० पु०] (सं०) प्र०, १६ १८।

हृदयवाला आकाश।

हृदय गुफा = ऋ०, ८२।

[सं० ली०] (हि०) हृदय का गुफा।

हृदय-दीर्घत्व = वा० कु० ११४।

[सं० पु०] (सं०) राग। मन की कमजोरी।

हृदय-मदत = वा०, ५८।

[सं० पु०] (सं०) हृदय का परदा।

हृदय-मूछिता = वा०, १८१।

[सं० ली०] (सं०) हृदय का संगीत।

हृदय रत्न = वा० कु०, ५०। ल०, ५०। प्र० २०।

[सं० पु०] (सं०) हृदय का रत्न।

हृदय वीणा = ऋ०, १७।

[म० जी०] (स०) हृदय की वीणा हृदयही वीणा।

हृदयवेदना = का० कु०, २२।

[स० जी०] (स०) दिल का दर्द। घटर का पीड़ा।

[हृदयवेदना]—इदु कला ३, किरण १२, नवंबर १९१२ में प्रकाशित तथा कानन कुसुम में पृष्ठ २२ २३ पर सकलित। हे प्राण प्रिय, मुनो। हृदय की वेदना व्याकुल हो कर क्या कह रही है। तुम्हारी विरह वेदना यह दिन रात सुख से सहती है यद्यपि तुम्हारी यह मधुर पाड़ा पा कर हम दिन रात मस्त रहते हैं और तुम्हारी स्मृति के साथ स्वच्छन्द हो कर क्रीड़ा किया करते हैं। यह वेदना तुम्हारी निवृत्त नूतन मूर्ति चित्रित करती है। तुम्हें न पा कर तुम्हारी स्मृति की छाया में अपना दिन गिनती है और जब तुम्हें वह स्मृति देखती है तो तुम्हारी विनय करती है। तुम्हारी वक्र दृष्टि से भी उसे सताप मिल जाता है। जब तुम थोड़े दयालु हो जाते हो तो उस के मन पर नव धन से छा जाते हो और जो भासू की वषा होनी है वह उसके धावों की सातल बना देती है। तुम्हारी निदम और सद्य दोनों मूर्तियाँ इसे भाती हैं और किसी भी रूप में तुम्हें पा कर हृदय की वेदना को सुख मिलता है। यह हृदय की वेदना ध्यान वचित होने पर व्याकुल हो जाती है और कुछ हो कर बड़ी पीड़ा देती है। इसलिए हे प्रियतम, इसकी केवल तुम्हारा एक सहारा है। इस से अपना खेल खेला करो। मैं तो इन्हें भूल गया हूँ तुम्हारा प्रेममयी पीड़ा पा कर। लेकिन यह तुम्हें कभी नहीं भूलता।]

हृदय-महं = चि०, ७७।

[स० पु०], प्र० मा० हृदय मे।

हृदय-समाधि = भा०, १२।

[म० जी०] (स०) हृदय की समाधि।

हृदय सवस्व = का० कु०, ३१।

[स० पु०] (स०) हृदय की सारी पूँजी।

हृदयाब्धि = का० कु०, ७५। ऋ०, ५६।

[स० पु०] (म०) हृदय रूपी समुद्र।

हृदयासन = चि०, १८०।

[स० पु०] (स०) हृदय का आसन।

हृदयेश = का०, कु०, १४।

[स० पु०] (स०) हृदय का प्रायेश्वर प्राणेश। प्राणप्रिय। स्वामी पति।

हृदयो = भा० २२। का०, १३५, १६४,

[वि० पु०] (हि०) १७१। प्र०, ११, २२। ल०, १७।

हृदय का बहुवचन।

हृदगत = का० कु०, १०२।

[वि०] (स०) आंतरिक, मन में बैठा या जमा हुआ।

हृदयन = का० कु०, ११६।

[स० पु०] (स०) हृदय रूपी यज्ञ।

हे = का०, २१, २५, २६, २७, ३०। का०,

[सबोधन] (हि०) ३७। चि०, १४०। ल०, १४, १६। सबोधन का चिह्न।

[हे सागर सगम श्रृणु नीर—सबप्रथम जागरण में १२ फरवरी, सन् १९३२ में प्रकाशित यद्यपि यह गीत पुरी में कवि ने सागर के किनारे मकर सत्रांति के अवसर पर मर्त्य १९८८ में लिखा था। यह गीत रहस्यवादी है और लहर में पृष्ठ १५ १६ पर सकलित है। महाशरीर अतलात सागर अपना यह नियत काल छोड़ कर, लहरों के भीषण हावा और लारे उच्छ्वासों का छोड़ कर तथा युग युग की मधुर कामना के बधन ढोले कर नदी से मिलता है। जहाँ नदी मिलती है वहाँ नीलिमा धीरे प्रदणामा दोनों हैं। इन नदी की मधु लेखा का तुमने कब वहाँ दर्शन किया। यह अलरव गान करती हुई अतीत के युग का गाथा गाती तुमसे मिलती है जो अनन्त मिलन का स्वर बन कर फेन के रूप में तरता है। वह बधनमयी व्याकुल हो कर तुम

से मिल कर बंधन मुक्त होने के लिए दोही जाती है। एसा करने में वह दास-लोक की धमृता तथा घोर गृहिणी का हरी छाया छोड़ सुमम मिल कर विधायी मोहनी है। यह सुमम परम विधायी मोहनी है। यह परम मुक्ति ही जाय की बंधनमुक्ति का परम सपना है। निस्तार्य गीत यथायथ नीचे धारण प्रपति की यह भाव बंधनमुक्त होनी धमृता विराट् में धमृता का बिलानांतरण ब्रह्म होना यह भाव इत्यम दिताया गया है।]

हेतु = बि०, ३४, ७३ ३२।

[सं० पु०](सं० भा०) हिम, हेतु। बारण।

हेतु = का०, १४, ६४। बि०, ३१ पृष्ठ ३

[सं० पु०](सं०) १७४ पृष्ठ ७४ १३ बार। म०, २२। बारण। अभिप्राय। उद्देश्य

हेम = का०, १७। का०, २४।

[सं० पु०](सं०) हिम, पाता। सोना। नाग बैसर।

हमकूट = का०, २६२। बि०, १६।

[सं० पु०](सं०) हिमालय के उत्तर का एक पर्वत।

हेमलेखा-सी = का०, २२२।

[बि०](हि०) सुवर्ण का रेश बं समान।

हेमवती-ध्याया = का०, १६६।

[सं० जी०](सं०) सर्वाणि ध्याया। स्वरा के समान बंधनवाली ध्याया।

हेमाम = का० कु० १००। प्र०, १

[बि०](सं०) रत्न की झलक, सोने की चमक।

हेमाम रश्मि = का०, ७८।

[सं० जी०](सं०) सर्वाणि किरण। सोने की चमकवाली किरण।

हेरि = बि०, १५० १६१, १७०, १८२।

[पुन० क्रि०](सं० भा०) दशकर। तलकर।

है = सभी पुनर्वा म धनक पुष्ठा पर।

[प्रप०] होना क्रिया का वर्तमानकालिक रूप (एकवचन)।

होइये = बि०, १७८।

[क्रि०](सं० भा०) हो जाइये।

होरे = म०, ९६।

[प्रप० क्रि०](सं० भा०) होकर।

हागा = का०, ४६ ४७ ४६। का०, २३, २४।

[प्रि०](हि०) का०, ३८, ११७, ११६, १२८, १३०, १३२, १४६, १६२। म०, ४०, ४१, ७३।

हिमी की हुना प्रिया का परिवर्त्य वा लभ्य।

होना = का०, पृष्ठ ३८ व ६४ पृष्ठ १८ बार।

[प्रि०](हि०) का० ११, २२। का० कु०, २, ८, १०, ११, १४, ३० ४३। का०, = पृष्ठ से २६० पृष्ठ ७४ बार। म०, १५। म०, ४, ६, १२, १३। म०, १३, २६, ४४, ४२, ७३, ७३।

काना। बाम का सपन किया जाना। उदाहरित, प्रतिरूप धारित गृहित करने-वाला संयुक्त क्रिया।

होय = बि०, ६५, १८५।

[प्रि०](सं० भा०) होय।

हो रहा = का० कु०, ३०। का०, १५, २६,

[क्रि०](हि०) ४४, ८१, ८३, ८९, ११५, १३४, १४५।

होना क्रिया का एक रूप।

होली = का०, ९१।

[क्रि०](हि०) जमाना। भस्म करना। हो गयी।

[सं० जी०](हि०) हिंदुवा का एक प्रसिद्ध धार्मिक त्योहार जो फाल्गुन की पूर्णों की होली जलाकर और उसके दूसरे दिन रंग भरी छेन्न हूए मनाया जाता है। यह नव वर्षारंभ का उत्सव है। पुराणों व अनुसार होलिका हिरण्यकशिपु की बहन और ब्रह्मा के क्रुधा थी।

[होली का गुलाल]—सबप्रथम हनु के हानी विशेषा का सन् ६७ में प्रकाशित। इस कविता में प्रेम के रंग में होली का गुलाल फाग में रजित दिताया गया है।]

[होली की रात]—करना का गीत। जैसे होली की रात में अंग जलती है उसी प्रकार

चाँदनी रात में कोकिल का गान, गुलाल का सौरभ, चंद्रमा की सिंगी प्रभा, जलाशय में तारों की हीरक पाँव, और सभी फाग खेल रहे हैं फिर भी कवि के हृदय में जलन है जब कि सारा ससार शतल है। यह ऐसा झूलिये है कि होली की रात में होलिका भी तो जलामी जाती है। यह उसका प्रतीक है।]

होने = बि०, ३३, ३६।

[क्रि०](ब०भा०) सपना हो, पूर्ण हो।

होस = बि०, १२।

[सं०खी०](वि०) सालसा, बाद, उलट कामना, मन की हविस उल्लाह, सलक।

हृद = का०, २८४।

[सं० पु०] (सं०) सरोवर, तालाब, सर।

ह्रास = का०, १४, ७६।

[सं० पु०] (सं०) नाथ। पाठ। कमी।

ह्वै = बि०, १६६, १६७।

[पूव० क्रि०] (ब० भा०) होकर।

से मिल कर बधन मुक्त होने के लिये दोड़ी प्राप्ती है। ऐसा करने में वह देव-लोक की अमृत कथा और पृथिवी की हरी छाया छोट तुमसे मिल कर विभ्राम मोगनी है। यह तुममें परम विभ्राम यागता है। यह परम मुक्ति ही जाव की बधनमुक्ति का परम सपना है। निस्सीम नील अकाश के नीचे आनन्द उपाति को यह भोल बब बधनमुक्त हांगी भयाव विराट् में मामा का विलीनीकरण कष्ट होगा यह भाव इमम दिखाया गया है।]

हेतु = बि०, ३४, ७३ ३२।

[सं० पु०](अ० भा०) हेतु, हेतु। कारण।

हेतु = का०, १४, ६४। बि०, ३१ पृष्ठ स
[सं० पु०](सं०) १७४ पृष्ठ तक १३ बार। म०, २२।
कारण। अभिप्राय। उद्देश्य

हेम = अ०, ३७। का० २४।

[सं० पु०](सं०) हिम, पाला। सोना। नाग केसर।

हेमपूट = का०, २६२। बि०, ५६।

[सं० पु०](सं०) हिमालय के उत्तर का एक पर्वत।

हेमलेखा सी = का०, २२२।

[बि०](हि०) सुशय का रेल के समान।

हेमवती-छाया = का०, १६६।

[सं० जी०](सं०) सर्वाणि छाया। स्वर्ण के समान
चमकीली छाया।

हेमाम = का० कु०, १००। प्र०, १

[बि०](सं०) रक्षण की भलक, सोने की चमक।

हेमाम ररिम = का०, ७८।

[सं० जी०](सं०) सर्वाणि किरण। सोने की चमकवाली
किरणें।

हरि = बि०, १५० १६१, १७०, १८२।
[प्र० क्रि०](अ० भा०) देवकर। लखकर।

है = सभी पुत्रका में अनेक पृष्ठा पर।

[पद्य०] हाना क्रिया का वर्तमानकालिक रूप
(एकवचन)।

होइये = बि०, १७८।

[क्रि०](अ० भा०) हो जाइये।

होके = स०, ६६।

[प्र० क्रि०](अ० भा०) होकर।

होगा = अ०, ४६ ५४ ५६। क०, २३, २५।

[क्रि०](हि०) का०, ३८, ११७, ११६, १२६, १३०,
१३२, १४६, १६२। स०, ४०,
५१, ७७।

हिंदी की हाना क्रिया का भविष्यत्
कालिक रूप।

होना = अ०, पृष्ठ ३८ से ६४ पृष्ठ तक १८ बार।

[क्रि०](हि०) क० ११, २२। का० कु०, २, ८,
१०, ११, १४, ३०, ५३। का०, ८ पृष्ठ से
२६० पृष्ठ तक ७४ बार। क०, १५।
म०, ५, ६, १२, १३। ल०, १३, २६,
४४, ७२, ७३, ७७।

घटना। काम का संपन्न किया जाना।
उपस्थिति, अस्तित्व आदि सूचित करने-
वाली समुक्त क्रिया।

होय = बि०, ६५, १८५।

[क्रि०](अ० भा०) हाव।

हो रहा = का० कु०, ३०। का०, १५, २६,

[क्रि०](हि०) ५४, ८१, ८३, ८९, ११५, १३४,
१४५।

होना क्रिया का एक रूप।

होली = अ०, ६१।

[क्रि०](हि०) जलाना। भस्म करना। हो गयी।

[सं० जी०](हि०) हिंदुओं का एक प्रसिद्ध धार्मिक त्योहार
जो फाल्गुन की पूर्णों की होली जलाकर
और उसके दूसरे दिन रंग भरीर खेलत
हुए मनाया जाता है। यह नव वर्षारंभ
का उत्सव है। पुराणों के अनुसार
होलिका हिरण्यकशिपु की बहन और
प्रह्लाद की क्रमा थी।

[होली का गुलाल—सबप्रथम इंदु के होली विनोयाक
में संवत् ६७ में प्रकाशित। इस कविता
में प्रेम के रंग में होली का गुलाल फाग
में रजित दिखाया गया है।]

[होली की रात—फरना का गीत। वैसे होली की
रात में भाग जलती है उसी प्रकार

साँदनी रात में कोकिल का गान, गुलाल का सोरम, चंद्रमा की सिगाबी प्रभा, जलाशय में तारा की हीरक पॉल, भौरे सभी फाग खेल रहे हैं फिर भी कवि के हृदय में जलन है जब कि सारा ससार शांत है। यह ऐसा झलिये है कि होती की रात में होलिका भी तो जलायी जाती है। यह उसका प्रतीक है।]

= चि०, ३३, ३६।

[क्रि०](प्र० भा०) सपन हो, पूर्ण हो।

होस = चि०, १२।

[सं० खी०](दि०) लालसा, चाह, उत्कट कामना, मन की हविस उत्पाद, सलक।

हृद = का०, २८४।

[सं० पु०] (सं०) सरोवर, तालाब, सर।

हास = का०, १४, ७६।

[सं० पु०] (सं०) नाश। पात। कमी।

ह्रै = चि०, १६६, १६७।

[पूव० क्रि०] (प्र० भा०) होकर।

★ प्रसाद की रचनाएँ : कालक्रमानुसार

- १ शोकोच्छ्वास—सन् १९१० ।
- २ चित्राधार— ,, १९२४ तथा १९२८ ।
- ३ कानन कुसुम— ,, १९१३ तथा १९२६ ।
- ४ प्रेमपथिक— ,, १९१४ ।
- ५ भरना— ,, १९१८ तथा १९२७ ।
- ६ माँसु—साहित्य सदन, चित्रगाव, कलौरी से सन् १९२४ ।

- में प्रथम सस्करण । सन् १९३३ में भारतीय भंडार, प्रयाग से सशोधित एवं परिवर्द्धित द्वितीय सस्करण ।
- ७ करुणासय—सन् १९२८, भारती भंडार ।
 - ८ महारगणा का महत्व—सन् १९२८, भारती भंडार ।
 - ९ सहृद—सन् १९३५, भारती भंडार ।
 - १० कामायनी—सन् १९३५, भारती भंडार ।
 - ११ प्रसादमगीत—सन् १९५७ ।

★ 'हंदु' में प्रकाशित 'प्रसाद' की कविताओं का कालक्रम

कला—१

- किरण १, व्याख्या ६६ वि०
 किरण २, भाद्रपद ६६ ,,
 किरण ३, भाषिवन ६६ ,,
- किरण ४, कार्तिक ६६ ,,
 किरण ५, धर्महन ६६ ,,
 किरण ६, पौष ६६ ,,
 किरण ७, फाल्गुन ६६ ,,
 किरण ८, वशाख ६७ ,,
 किरण ११, ज्येष्ठ ६७ ,,

किरण १२, मघाद ६७ ,,

१ शारदाष्टक	कविता
१ प्रेमपथिक	श्रद्धाभाषा
१ शारदीय शोभा	कविता चित्राधार
२ मानस	" "
१ प्रेम राज्य, पूर्वादि	" "
१ कलना मुख	" "
१ वनवासिनी बाला	" "
१ रसाल मशरी	" "
१ धयोध्याद्वार	" "
१ भारत	" "
२ समाधि सुमन	" "
१ स्मृति	" "
२ रमाल	" "

कला—२

किरण १, व्याख्या ६७ ,,

किरण २, भाद्रपद ६७ ,,

१ प्रायना	" "
२ सध्या रागा	" "
३ वर्षा मे नदी कुल	" "
१ पावस	" "
२ इद्रवनुप	" "
३ चित्र	" कानन कुसुम
४ नीरद	" चित्राधार

किरण १, भाषित ६७ वि०

किरण २, भाषित ६७ "

किरण ३, भाषित ६७ "

किरण ४, भाषित ६७ "

किरण ५-११, भाषित ६७ से ज्येष्ठ ६८, सप्तमिका

कथा—३

किरण १, भाषित ६८ "

किरण २, भाषित ६८ "

किरण ३, भाषित ६८ "

१ विमा

१ भद्रपूरि

१ शारदीय महापूजन

२ विनय

३ प्रभाति कुमुम

४ शरत् पुष्पिका

५ सता

६ विस्तृत प्रेम

१ जल विहारिणी

१ मोरव प्रेम

१ होपी का मुचल

२ विमर्जन

३ चन्द्रोदय

१ प्रसो

२ रजनीगया

३ देवमंदिर

४ भारतेन्दु प्रकाश

१ एकांते

२ ठहरौ

३ बाल क्रीडा

१ राजराजशरी

२ न० वर्णन

३ कलन विनाश

क—वर्णन

ग—वर्णन

घ—वर्णन

ङ—वर्णन मुद्रण

च—वर्णन

छ—वर्णन

ज—वर्णन

झ—वर्णन

ञ—वर्णन

ट—वर्णन

ड—वर्णन

ध—वर्णन

ढ—वर्णन

कविता विनायाधर

" "

" "

" "

" "

" "

" "

" कानन कुमुम

" विनायाधर

" "

" "

" कानन कुमुम

" "

" विनायाधर

" कानन कुमुम

" "

" "

" कानन कुमुम

" विनायाधर

कविता

कविता

किरण ४, भाषित ६८ "

किरण ५, भाषित ६८ "

कला ३, सन् १९१२

किरण १०, सितंबर
किरण ११, अक्टूबर

१ मर्म वधा	कविता	काननकुसुम
१ विनोद विदु	"	चित्राधार
क—कमला कमल पर	"	
ख—वरत सनमान को	"	
ग—बताओ कौन जोर है	"	
घ—जीवन नया	सवैया	
१ हृदय वेदना	कविता	काननकुसुम

किरण १२, नवंबर
कला ४, सन् १९१३

किरण १, जनवरी

१ सरयवन (चित्रकूट)	"	कानन कुसुम
२ भारत (प्रथम अनुवाद गरिल)	"	
३ कदणालय	कविता	गोसिनाथ
४ वसंतोत्सव		चित्राधार
क—मिलि रहे भाते भणुकर		
ख—भले अनुप्राग मे रहे हों		

किरण ५, मई

१ कदगा स्रग्ग	कविता	काननकुसुम
१ भक्ति योग	"	"
३ निशीथ नदी	"	"
१ दलित कुमुदनी	"	"
२ प्रथम प्रभात	"	"
३ भूल	गजल	"
१ विनोद विदु		चित्राधार
१ ब्रूव हमारी	सवैया	
२ प्रेमोपासक—भद्रो नित प्रेम करत दिन गयो		
३ उत्तर दियो भक्त उत्तर हूँ को मोन		
१ नमस्कार		काननकुसुम

कला ४, सन् १९१३

किरण १, जुलाई
किरण २, अगस्त

१ विदर्भ	चित्राधार	
१ नमस्कार	काननकुसुम	
२ श्रीकृष्ण जयंती		
१ देह चंगा भ प्रीति	चित्राधार	

किरण ३, सितंबर

कला ५, सन् १९१४

किरण १, जनवरी

१ पतित पावन	काननकुसुम	
२ रमणी हृदय	"	
३ खोलो द्वार	भङ्गा	

किरण २, फरवरी	१ याचना २ रंजन ३ विनोद बिंदु क—हृदय में छिप रहे हृदय डर से ख—आया देखो विमल बगल ग—आमा की गरिमे सुंदर राका घ—मिले छोटी इन घरणा की धून	कानन कुसुम " " भरना भरना भरना भरना
किरण ३, मार्च	१ हा सारथे रथ रोव दो २ मकरंद बिंदु क—घोर जग कहिहै सब कहिहै ख—नाथ नहि फीकी परं गुहार ग—मधुप ज्यो बँज देख मकराव घ—मेरे प्रेम की प्रतिकार	कानन कुसुम चित्राधार भरना चित्राधार भरना
किरण ४, अप्रैल	१ गंगा क्षामर २ विरह ३ मोहन	कानन कुसुम " "
किरण ५, मई	१ मिलन है पलक पर दे २ मकरंद बिंदु क—सुम्हारी सचहि निराली बात ख—प्रिय स्मृति कज में लवलीन ग—पाई आँख सुख की घ—आसुन आँहाव	" चित्राधार भरना चित्राधार भरना
किरण ६, जून	१ महाराणा का महत्व	भरना
कला ५, सन् १९१४	१ निधिल १ प्रियतम २ मकरंद बिंदु क—आज इस घन की अधिधारा म ख—हृदय नहि मेरा भूय रहे ग—आज तो नीके नेह निहारो घ—यह सब तो ससुभयो पहिले ही ङ—भूलि भूलि जाव	भरना " " कानन कुसुम चित्राधार " "
किरण ४, अक्टूबर	१ मेरी कचार्ई	भरना
किरण ५, नवम्बर	२ तेरा प्रेम (तेरा प्रेम हलाहल प्यारे) १ प्रेम पथ	भरना प्रेमपथिक
किरण ६, दिसम्बर	१ चमेली	"

कला ६, सन् १९१५

किरण १, जनवरी

किरण २, फरवरी

किरण ३, मार्च

किरण ४, अप्रैल

किरण ५, मई

१ तुम्हारा स्मरण

२ हमारा हृदय

१ अचना

२ प्रत्याशा

१ स्वभाव

१ विनय

२ मधुकर बीत चली अब रात

१ बस न राका

कानन कुसुम

भरना

"

"

"

"

उपशी

भरना

कला ७, सन् १९१५

किरण २, अगस्त

किरण ३, सितम्बर

किरण ४ - ५, अक्टूबर सप्टेम्बर

१ शून्य

१ सुखमयी नींद (स्वप्नलोक)

१ मिल जाओ गये

भरना

भरना

कानन कुसुम

कला ८, सन् १९२७

किरण १, जनवरी

किरण २, फरवरी

किरण ३, मार्च

१ अनुनय (सुधा सीकर स नहला दो) (चंद्रगुप्त)

१ तेरा रूप (मरा नहीं मैं, मन में, रूप) (रुग्ण)

१ जान दो (धूप छाह के लेख सदृश) (स्कंदगुप्त)

★ 'जागरण' में प्रकाशित रचनाओं का कालक्रम

वर्ष १ खंड १, माघ, सं० १९८८

वसंतपंचमी ११ फरवरी १९३२

२२ फरवरी, ३२

२२ मार्च, ३२

१८ जून, ३२

१७ जुलाई, ३२

१ ले चयन वहा भुनावा देकर ?

२ धरी वरुणा का शात नखार

१ हे सागर सगम धरुण नील

२ जाला—ब्रह्म नाम विद्या अचल में
नक्षत्र हूँ जात हूँ

१ मेरी भाषा का की पुतला मैं

१ वे कुछ नि नि तने मुदर मे

लहर

लहर

लहर

भाषा ?

लहर

लहर ?

निरण २, फरवरी

१ याचना

कानन कुसुम

२ रंगन

"

३ विनोद विदु

"

क—हृदय मे छिप रहे दुग डर से

करना

ख—आवा देसो विमल वसन

करना

ग—आवा की बरिये मंदर राका

करना

घ—मिले शीघ्र इन चरणा की धूल

करना

निरण ३, मार्च

१ हा सारथे रथ रोव की

कानन कुसुम

२ मकरद विदु

चित्राधार

क—और जग बहि है सब बहि है

ख—नाथ नहि कीकी परं गुहार

ग—मधुप कपो बज देख मङ्गरावै

घ—मेरे प्रेम की प्रतिहार

निरण ४, अप्रैल

१ गंगा सागर

काननकुसुम

२ धिरह

"

३ मोहन

"

निरण ५, मई

१ मिलन है पलक पर दे

"

२ मकरद विदु

चित्राधार

क—कुम्हारी सबहि निरासी आत

ख—प्रिय स्मृति कज में लवलील

ग—पाई आँच मुख की

घ—आमुन अ हाव

निरण ६, जून

१ महाराजा का महल

कला ५, सन् १९१४

निरण २, अगस्त

१ शिविल

करना

निरण ३, सितम्बर

१ प्रियतम

"

२ मकरद विदु

"

क—आज इस घन की अपिपारा मे

ख—हृदय नहि भरा शून्य रहे

ग—आज तो नोके नेह निहारो

घ—यह सब तो समुझयो पहिले ही

ङ—भूलि भूलि जाव

काननकुसुम

चित्राधार

"

"

निरण ४, अक्टूबर

१ मेरी कवाई

निरण ५, नवम्बर

१ प्रेम पथ

करना

प्रेमपथिक

निरण ६, दिसम्बर

१ चमेती

"

कला ६, सन् १९१५

किरण १, जनवरी

किरण २, फरवरी

किरण ३, मार्च

किरण ४, अप्रैल

किरण ५, मई

१ तुम्हारा स्मरण

२ हमारा हृदय

१ अचना

२ प्रत्याशा

१ स्वभाव

१ विनय

२ मधुकर बात बना भय रात

१ मस न राका

कानन कुसुम

भरना

"

"

"

"

उवशी

भरना

कला ७, सन् १९१५

किरण २, अगस्त

किरण ३, सितम्बर

किरण ४, ५, अक्टूबर सप्तकाक

१ शान

१ मुलभरी नंद (स्वप्नलोक)

१ दिल जाओ गले

भरना

भरना

कानन कुसुम

कला ८, सन् १९२७

किरण १, जनवरी

किरण २, फरवरी

किरण ३, मार्च

१ अनुनय (सुधा साकर से नहला दो)

१ तेरा रूप (भरा ननी मे, मन मे, रूप)

१ जाओ दो (धूप छाह के लेख सदृश)

(चंद्रगुप्त)

(स्कन्दगुप्त)

(स्कन्दगुप्त)

★ 'जागरण' में प्रकाशित रचनाओं का कालक्रम

वर्ष १ खंड १, माघ, स० १९८८

वसंतपंचमा ११ फरवरी १९३२

२२ फरवरी, ३२

२२ मार्च, ३२

१८ जून, ३२

१७ जुलाई, ३२

१ ले चन कहा मुचावा देकर :

२ अरी वरुणा का शात कछार

१ हे सागर सगम अरुण नील :

२ ज्वाला—जब नाम निशा भवत में
नक्षत्र हूँ जात हूँ

१ मेरी माँ का की पुतला म

१ व कुछ दिन चितने मुंदर थ

लहर

लहर

लहर :

माँ ?

लहर

लहर ?

* 'माधुरी' में प्रकाशित रचनाओं का कालक्रम

वर्ष १, खंड १, सन् १९७२ स० ३,
पृष्ठ २, खंड १, सन् १९७३ २४ स० १,

" " " स० ४

पृष्ठ २, खंड २, सन् १९७४ स० २

" " " स० ३

" " " स० ४

" " " स० ५

" " " स० ६

वर्ष ३, खंड १, १९७४ २४ स० १

" " " स० २

वर्ष ३, खंड २, सन् १९७५, स० १

पृष्ठ ४, खंड १, सन् १९७५ २६ स० १

वर्ष ४, खंड २, १९७६ स० १

" " " स० ४

" " " स० ६

पृष्ठ ५, खंड २, १९७६ २७ स० १

" " " स० ३

वर्ष ५, खंड २, १९७७ स० ३

पृष्ठ ६, खंड २, १९७७ २८ स० १

वर्ष ७ स० १, १९७८ २८ स० १

पृष्ठ ८, खंड १, १९७८ ३० स० १

१ दीप धूपर संख्या बली धा रही थी भरना

१ नव शूय हृदय म प्रेम जलधि माला भरना
नव फिर फिर धावेगी

१ अश्वत्थिन विश्व के तारव निर्जन म भरना

१ अमृतोप हरित वन कुसमित हैं द्रुम वृक्ष भरना

१ चसत । तू आता है, फिर जाता है । भरना

१ तुम जीवन जगत व विकास विभव
वद व हो । भरना ।

१ बाबू का बला । मौल बलाकर न
निराशा कर दा । भरना ।

२ कुछ नही हसी घाती है मुझको तभी । भरना

१ हृदय का सौंदर्य नदी की विस्तृत बेला शांत भरना ।

१ दो बूँदें शरद का सुंदर नात आकाश भरना

१ लाइ और समझा शूय गगन में खारता
जम ब द निराश एक दगुप्त

१ विपाद कौन प्रकृति के कवच काय सा भरना

१ मघा के प्रति । क्या झलका का
बल्लव बिरहल्ला । अज्ञातशत्रु

१ अपरिवर्तित निजन गोधुलि प्रा तर म
गान पण कुटा के द्वार । अज्ञातशत्रु

१ पतझड़ समिति चल बसत बाला भवत
स किस घातक सौरभ म मस्त अज्ञातशत्रु

१ माझ मत खिचे वायु के तार अज्ञातशत्रु

१ आह निकल मत बाहर दुर्बल आह अज्ञातशत्रु

१ प्रति पायूप प्रेम का प्रतापित उर उज्ज्वली
सुखाई सुख विनाशकार

१ अनात का गीत सपन वन बल्लरियों
क नीचे वामना

१ बिनाई आह वदना बिना बिदाई एक दगुप्त

१ इद्रजाल । और दला वह सुंदर दृश्य,
नयन का इद्रजाल अभिराम कामायनी

१ कौन कौन हा तुम खोचकर यो मुझ
अपनी ओर । कामायनी ।

★ 'हंस' में प्रकाशित रचनाओं का कालक्रम

मई, १९३०

जनवरी १९३१

मार्च १९३१

१९३२ 'आत्मकथा'

मार्च १९३३

- | | | |
|----------------------------|----------------------|---------|
| १ मानवता का विकास | डरो मत ओ भ्रमृत सतान | कामायनी |
| १ प्रलय का छाया | | लहर |
| १ आह रे वह अघोर जीवन | | " |
| १ मधुप मुनगुना कर कह जाता | | " |
| १ वसुधा के अचल पर यह क्या, | कन कन सा गया बिखर | " |

★ 'प्रेमा' में प्रकाशित रचना का कालक्रम

जनवरी १९३१

- | | | |
|-------------|------------------------------------|---------|
| १ जीवन सगात | क्या कहूँ, क्या कहूँ मैं भ्रमपुत्र | काम यनी |
|-------------|------------------------------------|---------|

★ 'मनोरमा' में प्रकाशित रचनाओं का कालक्रम

सं० २, १९२७, भाग २, सं० ५

अक्तूबर १९२६

१९२७ सं० १

- | | |
|---|------------|
| १ उलकन अगव धूम की श्याम लहरियाँ | स्कंदगुप्त |
| १ तारिका के प्रति बिखरी किरण झलक व्याकुल हो | |
| १ सबोधन उपड कर चली भिगोने धाज | स्कंदगुप्त |

★ 'जागरण' (प्रेमचंद जी द्वारा संपादित)

वर्ष १, २२ अगस्त, १९३२

१९ अक्तूबर १९३३

- | | |
|--------------------------------|---------------|
| १ जग का सजल कालिमा रजनी में | लहर |
| १ शिखर पर परो के नीचे जलघर हो, | |
| बिजली से उनका खेल चने | ध्रुवस्वामिनी |

★ 'सुधा' में प्रकाशित रचनाओं का कालक्रम

वर्ष १, स०, १

वर्ष २, स०, १

- | | |
|---|------------|
| १ अनुरोध सस्त्रि के वे सुदरतम क्षण | स्कंदगुप्त |
| या ही मूल महा जाना | |
| १ मनु का चिंता हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर | कामायनी |

★ 'गंगा' में प्रकाशित रचना का कालक्रम

मागसीय सं० १९८७ वि० नम्बर १९३०

- | | |
|--|-------------------------|
| १ गंगा श्रद्धि सिद्धि तू अचल हिमालय से ते प्रायो | (संघर्ष में अग्रगणित) |
|--|-------------------------|

परिशिष्ट ग

पत्र पत्रिकाएँ जिनमें रचनाएँ का पवन विभा
गया है ।

१ हनु, २ जागरण, ३ माधुरी, ४ सुधा, ५ हनु,
६ प्रेमा, ७ मनारमा, ८ जागरण २, ९ मंता,
१० बीणा, ११ सरस्वती, १२ नागरीवधारिणी पत्रिका,
१३ द्विवेदी अभिनन्दन पत्र ।

परिशिष्ट ख

जीव जलु

अलि, अली, अक्षर हनु उछूटी, कच्छा, कच्छुरी मुग,
कुरग कामधेनु, कुजर कनभ केसरी, केदार, कोर, काविल,
काकिला, कायल राजन, गदद, गाय, गिद्धिनी, चर्चई
चक्क, चकोर चकारी, चक्राव, चातक, चातकी, जुगल
झिल्ली, तिल्ली, तिमिल, तुरग नाहर, पतंग परंग,
पपीहा, पिक, कणा मुग, अमर, मकड़ा, मतंग, मल्लि,
मधुकर, मकर, मधुरी, मधुर, माल, मरालिनी, मराली,
मयूर, मिलिंद, मान, मुग, मृगछोटा, मुगी, मोर, राजहंस,
बुध, बुधम, बुधिक, व्याला, याल, शरद, शलभ, शिली
शुक, शृगाली, रोह, रमाया, सप, तिला, तिहू, तिहिनी,
सुरभा, हंस, हय, हारण, हरिणा, हरिण यावक, हाथी ।

श्रुतुएँ और मास

श्रुतुयावक, श्रुतुपति, कुसुम श्रुतु शीघ्र, चम, व्येष्ट,
निदाघ, पतझड़, पावस, वरसात, मधु श्रुतु माघव श्रुतु,
बसंत शरद, शिशिर, शीत, सावन ।

बेला ।

पर्वत ।

धरावती, धनुंद गिरि, उगार गिरि, केनाग, हिमगिरि,
भूपर मुगति ।

धर्म-उपांग

धनुवा, धौतरी, धमर, धनामिका, धनद्वे, धनि,
धात, धानन, धामानमनन, उँगती, बँड, कप, कटाघ,
बँटि याम, बर, कपु, कुंतन, केत कोड़, गर, गान,
गला, गान, गा, गुन्ना, बल, धमई, बरग, बरन, बन,
बिहुर, बितवन, छाती जटा, जाम, डग, जिन, दंग, दलद,
दौल, दूहि, दूह, कदन, नल, नरि, केर, नल, नलक, पान,
पाय, पुजरी पुतली, बदल, बाल, बाप, बाहूँ, डाल, भुत्र,
भुत्रुटि मोह, रत मरुत, गहिरा, भात, भुत्र, भुत्र रक्त,
दधिर, रोष, रामराता रामाता रामावलि, मर, मरु,
लोचन, बर बरल, बरल गिर, धनल, गिर, गुराण,
मुवद हयेनी, हय, हिय, हियप, रियनत हदाम, हूप ।
जाति और वश

धमर, धनाम, धाय इन्नाट वक, कितरिनी, किराव,
बीरव वक, चन्निप, जूनी, गधव गाव, चद्रकुल, गधकुल,
चाडाल, चारण, तातार मुके, मुवद दस्तु दावक, देर,
दल्य धावर, नाग, पारतिर चाडव, विगाव, धोर, वा
चारी, बनचर, आहाण, भारवी, भारतवासी, ब्रह्माला,
वीर, मुगल, मुगलमान, म्नेवक, यक्ष, यवन यादव, याया
वत, रघुकुल, रघुवसो, विप्र, सारसरत, हिंदी, हिंदू ।

रंग ।

अरुण, अरुणिमा, अरुणारे, आरक्तिम, उग्रजल काला,
कालिमा काले, कुंकुम, गुलाबी गारक, गौर, चक, धवल,
नील, नीला, नीलिमा, नीलाञ्जल, पीत, पीला, रक्ताण,
रक्तिम, साहित, ताल, श्याम, शाल, श्यामल, सुतह्ला,
स्वर्ण, हरित, हरा ।

